प्रस्तावना.

अनेक जैन ग्रंथोंके वेत्ता अरु अन्यमतकेजी वहोत ग्रंथोके अवलोकन करने वाले महामुनि आत्मारामजी आनंदविजयजी हो गये है, इनके तत्वज्ञानकी शक्ति अरु परोपकारबुद्धि तथा सिद्धांतोक्त उत्सर्गापवाद पूर्वक यथार्थ जैनमार्गी सुसाधुयोंकी शुद्ध क्रियामें प्रवृत्त हो कर पृथ्वीमें विहार करने संबंधी प्रख्याती यह जारतवर्षके श्रावक मंमलमें प्रसिद्ध है. इनकी तीव्रबुद्धि अरु धर्माजिरुचि आदिक उत्तम गुण इनका बनाया यह ग्रंथ बांचनेसें सद्बुद्धिमान् आपही जान जायंगे.

अब पूर्वाचार्योंके संस्कृत अरु मागधी जाषामें रचे हूये ग्रंथोका आशय न जाननेवाले और जैनतत्त्वस्वरूपके अज्ञात जनोके उपर उपकार बुद्धि करकें पूर्वोक्त महात्माने यह " जैनतत्त्वादर्श " नामा ग्रंथकी रचना न्यारे न्यारे बारह परिछेदरूपसें करी है. सो इस प्रकारसें किः—

प्रथम परिछेदमें शुद्ध देवतत्त्वका स्वरूप कथन कीया है, दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप वर्णन कीया है, तीसरे परिछेदमें शुद्ध गुरुतत्त्वका स्वरूप कहा है, चौथे परिछेदमें कुगुरुका स्वरूप कथन करा है, पांचवे परिछेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप नव तत्त्वरूपसें कथन कीया है, ठठे परिछेदमें सम्यक्ज्ञानका स्वरूप कथन करने वास्ते चौदह गुणस्थानकोंके स्वरूप कहे हैं, सातवे परिछेदमें सम्यक्दर्शनका स्वरूप कथन करा है, आठवे परिछेदमें सम्यक्चारित्रके स्वरूप कथनमें देशविरतिचारित्र संबंधी श्रावकोंके बारह व्रतोंके स्वरूपका विस्तारपूर्वक वर्णन कीया है, नववे परिछेदमें श्रावकोंका दिनकृत्य, श्राद्धविधि ग्रंथानुसारसें लिखा है, दशवे परिछेदमें श्रावकोंका रात्रिकृत्य, पाक्षिककृत्य, चौमासीकृत्य, संवत्सरीकृत्य अरु जन्मकृत्य, यह पांचो कृत्यका स्वरूप वर्णन करा है, इग्यारहवे परिछेदमें श्रीआदीश्वर जगवान्सें लेकर श्रीमहावीर जगवान् पर्यंतके कितनेक इतिहासोका वर्णन करकें उस्सें जैनमत अनादि है ऐसा सिद्धकरा है, अरु दूसरा नवीन बौद्धादिक पाखंमी धर्मके मतों अमुक अमुक वखतसें निकले हैं यहजी दर्साय दीया है. बारहवे परिछेदमें श्रीवर्द्धमान स्वामीके निर्वाण पीछें के किंचित् इतिहास लिखे है. इस्सेंजी कितनेक नवीन मतों निकलनेका वखत मालुम पमजाता है.

इस प्रकारसें उपर लिखे हूये बारह परिछेदो करिकें यह ग्रंथ समाप्त

कीया है. यह उपर कहे हुये प्रत्येक परिछेदमें मात्र उसमें लिखे गये विषयोंकाही वर्णन कीया है, इतनांही नहीं, परंतु उसके साथ मीमांसकादि अन्यमतवालोंका स्वरूप लिखके पीछें पूर्वाचार्य रचित सम्मतितर्कादि अनेक जैनशास्त्रोंके अनुसार उन मतोंका खंमनजी सविस्तर कीया है, तातें यह ग्रंथके वांचनेवालोंकूं अन्य सांख्यादि दर्शनोंका कतुक स्वरूपजी मालुम हो जावेगा, फेर उसका यथास्थित खंमनजी जाननेमें आवेगा.

जैसें मनःकल्पनासें निकले हूये नवीन दर्शनोंका उछापन करनेमें यह ग्रंथ उपयोगी है तैसेंही कितनेक जैनमतमें प्रवृत्तनेवाले जैनशास्त्रोंकी स्याद्वाद शैलीकों न पीगननेवाले ऐसें विचित्र विकार युक्त अल्पज्ञ जनोंकी अज्ञानता दूर करनेकोंजी यह ग्रंथ बहोत उपयोगी है, क्योंकि, इस वर्तमान कालमें कितने एक जैनमती अपनीअपनी मरजी माफक अध्यात्मज्ञानी बनके व्यवहारपक्षका त्याग करके आवश्यकादि क्रियायोंका उत्थाप के एकही निश्चयमार्गकों स्वीकार करनेकाही उपदेश लोकोंकों करते फिरते हैं; ऐसें अल्पवेत्ता एकांतपक्षके ग्राहक, स्वमतीयोंकोंजी बहोत जैनशास्त्रोंके अनुसार तिनकी आशंकायोंके निवारण पूर्वक क्रियादि शुद्धव्यवहारमें प्रवृत्त करनेका बहोत करके छठे परिछेदमें चौदह गुणस्थानोंके स्वरूपमें जहां छठे सातमे गुणस्थानकका स्वरूप कथन कीया है, तहां विस्तार अरु दूसरे परिछेदोंमेंजी बहोत स्थलोंमें उपदेश कीया है.

तथा अबके समयमें कतुक संस्कृतादि शास्त्राभ्यास करके अरु कोइ ग्रंथ देखे न देखे ऐसें कितनेक लोक अपनी मनःकल्पित बातों कहते हैं कि जैनमत बौद्धमतमेंसें निकला है, कितनेक कहते हैं कि गौतमऋषिने जैनमत चलाया है, ऐसी विविध प्रकारकी कल्पना अज्ञानी लोक करते हैं, तथा वेदोंको सच्चा करने वास्ते उनके पुराना अर्थोंको उलटापके नवीन अर्थ बनाने वाले दयानंदजीने तो जैनमतके शास्त्रादि ग्रंथो आज मोजूद है ति कोइएक ग्रंथके एक पत्रेकोंजी देखे न होवेंगें तोजी विचारे जडक शिष्योंकूं नास्तिक दर्शानेके वास्ते आपके बनवाये हूये पुस्तकोंमें जैन मतोंके अ बौद्ध मत एकही करके लिख दीये हैं, ऐसें ऐसें अपनी कपोलकल्पित बातों करके भोले लोकोंको फसाने वाले कपटी लोकोंका कपट खुलेका छेदन करनेकोंजी यह ग्रंथ कुठार समान है.

॥ अस्य ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिछेदमें देव तत्त्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

शकी जापा जाननेवालेकोंजी वांचनेमें यह ग्रंथ अत्यंत सुगम पडेगा.

निष्पक्षपात बुद्धिवाले तथा धर्मतत्त्वकी जिज्ञासा करनेके अजिमानी, सद्धर्म अंगीकार करनेके अधिकारी, विवेकी जव्यजीवोंकूं इस ग्रंथके वांचने तथा पढने सुननेसें उत्तम प्रकारके सद्बोधका लाज प्राप्त हुवा है अरु होवेगा, असा जानिकें मैंनें यह ग्रंथकि द्वितीयावृति उपा कर प्रसिद्ध कीया है. जैनधर्मकी वृद्धि इछनेवाले हमारे साधर्मिक जाइयोंकों में अर्ज करतां हूं कि, उदारतापूर्वक यह ग्रंथके यथाशक्ति पुस्तकों खरीद करकें मुजकों अवश्य आश्रय देनां. इस ग्रंथकी श्लोकसंख्या (१६०००) आशरे हैं.

यह ग्रंथके पढने वाले समस्त साहेबोंकों में बकी नम्रतापूर्वक विनति करता हूं कि, जो कुछ उपनेमें चूक करी होवे, सो गुणज्ञ जनोंनें मेरेकों मंद प्रज्ञावाला जानकें मेरे पर सुनजरही रखकर दोष सुधार लेनां चाहियें, यही सत्पुरुषके लक्षणका श्रेष्ठ चिन्ह है. किं बहु विलेखनेन.

॥ शा. जाणजी माया ॥



॥ अथ ग्रंथस्यानुक्रमणिका प्रारभ्यते ॥

॥ तत्र ॥

॥ प्रथम परिछेदमें देव तत्वका स्वरूप है तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

॥ अथ दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप है. तिसकी अनुक्रमणिका लिखते हैं ॥

॥ चतुर्थ परिछेदमें कुगुरुका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ पंचम परिछेदमें शुद्ध धर्मतत्त्वका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ षष्ठ परिच्छेदमें चौदह गुणस्थानकका स्वरूप है, तिसकी अनुक्रमणिका॥

॥ सप्तम परिछेदमें सम्यग् दर्शनका स्वरूप लिखा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ अष्टम परिछेदमें चारित्रका स्वरूप कहा है, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥नवम परिछेदमें श्रावकोंका दिन कृत्यविधि कहाहै, तिसकी अनुक्रमणिका॥

दशम परिछेदमें रात्रिकृत्यआदिक पांच कृत्यकहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका

॥ एकादश परिछेदमें श्री ऋषभादिसें महावीर पर्यंत जैनमतादि शास्त्रों ॥
॥ के अनुसार इतिहास कहे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

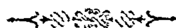
॥ बारहवे परिछेदमें श्री महावीर भगवानसें ले कर आजपर्यंत
॥ कितनेक वृत्तांत लिखे हैं, तिसकी अनुक्रमणिका ॥

॥ ॐ नमः स्याद्वादवादिने ॥

॥ अथ तपागच्छीये ॥

॥ मुनिश्री आनंदविजय आत्मारामजी विरचित ॥

॥ जैनतत्त्वादर्श नामक ग्रंथ प्रारंभः ॥



॥ तत्र प्रथम परिच्छेद ॥

॥ अनुष्टुब् वृत्तम् ॥

॥ स्यात्कारमुद्रितानेक, सदसद्भाववेदिनम् ॥
॥ प्रमाणरूपमव्यक्तं, भगवंतमुपास्महे ॥ १ ॥

॥ अथ प्रथम देव, गुरु औ धर्म इन तीनो ॥
॥ तत्वोंका स्वरूप किंचित् लिख्यते ॥

विदित हो कि जो यह जैनमत है तिसका स्वरूप श्री तीर्थंकर, गणधर और पूर्वाचार्यादिकोंने आगम निर्युक्ति भाष्य चूर्णि टीका औ प्रकरण तर्कादि अनेक ग्रंथद्वारा स्पष्ट निष्टंकन कीया है. परंतु पूर्वाचार्यरचित सर्व ग्रंथ प्राकृत वा संस्कृत भाषामें हैं. सो अब जैन लोगोंके पढणेमें उद्यमके नकर णेसें उन अति उत्तम अद्भुत ग्रंथोंका आशय लुप्तप्राय हो रहा है. सो कितनेक भव्य जीवांकी प्रेरणासें तथा स्वकर्म्म निर्ज्जराकी आशयसें जिनकूं प्राकृत वा संस्कृत पढणी कठिन है तिनोके उपकारार्थ देव, गुरु औ धर्मका स्वरूप किंचित् मात्र इस भाषा ग्रंथमें लिखते हैं.

सर्व श्रीसंघसें नम्रता पूर्वक यह विनती है कि जो इस ग्रंथकूं पढे सो जहां मैने जिनमार्गसें विरुद्ध लिखा हो तहां यथार्थ लिख देवें यह मेरे उपर बडा अनुग्रह होगा. इस ग्रंथके लिखनेका मेरा मुख्य प्रयोजनतो यह है जो इस कालमें बहुत नविन मत लोकोने स्वकपोल कल्पित प्रगट करे हैं तथा अंगरेजोंकी औ मुसलमानोकी विद्यापढणेसें तथा अनेक प्रकारके मत मतांतरोंकी वार्तां सुणनेसें अनेक भव्य जीवांकूं अनेक प्रकारके संशय उत्पन्न हो रहे हैं तिनके दूर करणेके वास्ते इस ग्रंथका प्रारंभ कीया है अब पूर्वोक्त तीनो तत्वोंमे प्रथम देवतत्वका स्वरूप लिखते हैं.

देव नाम परमेश्वरका है. सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनेक प्रकारके विकल्प मतांतरिये पुरुष करते है. सो जैनमतमें परमेश्वरका क्या स्वरूप मान्या है, सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप और विशेषण संयुक्त लिखते है. जैन मतमें जो परमेश्वर मान्याहै सो बारां गुण संयुक्त औ अष्टादश दूषण रहित अर्हंत परमेश्वर है.औ जो परमेश्वर उक्त बारां गुणरहित तथा अष्टादश दूषण सहित होगा तिसमे कदापि परमेश्वरता सिद्ध नहीं होगी यह कथन आगे चलकर लिखेंगे.

अथ प्रथम बारां गुण लिखते है.अशोकवृक्षादि अष्ट महाप्रातिहार्य सर्व जैनलोगोमें प्रसिद्ध हैं. तथा चार मूलातिशय एवं सर्व बारां गुणहैं. तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहते हैं. (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय(३) अपायापगमातिशय(४)पूजातिशय.तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहेहैं केवलज्ञान केवलदर्शन करी भूत भविष्य वर्तमान कालमें जो सामान्य विशेषात्मक वस्तु है तिसकू तथा उत्पाद व्यय ध्रौवयुक्तं सत् त्रिकाल संबंधि जा सत् वस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशय है. दूजी वचनातिशय तिनमें भगवंतका वचन पैंतीस अतिशय करी संयुक्त होता है.तिन पैंतीस अतिशयका स्वरूप ऐसा है.(१) संस्कारवत्त्वं (संस्कृतादि लक्षणयुक्त) (२) औदात्यं (शब्दमें उचपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्वं (ग्रामके रहण हारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगंभीर घोषत्वं (मेघकी तरें गंभीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्व वाजित्रोंके साथ मिलता शब्द) (६) दक्षिणत्वं (वचनकी सरलता संयुक्त) (७)उपनीतरागत्वं (मालव कोशक्यादि ग्राम राग करी युक्तता) ए सातअतिशयतो शब्दकीअपेक्षासें जाननी औ अन्य अतिशय जो है सो अर्थाश्रय जाननी.(८)महार्थता (यथालोटा जिससे अभिधेय कहने योग्य अर्थहै) (९) अव्याहतत्वं(पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्वं (अभिमत सिद्धांतोक्तार्थता) एतावता अभिमत सिद्धांत जो कहना सोइ वक्ताके शिष्टपणेका सूचकहै. (११)संशयानामसंभवः (जिनोंके कहणेमें श्रोताकूं संशय नहीं होता) (१२) निराकृतान्योत्तरत्वं (जिनोंके कथनमें कोइभी दूषण नहीं भतो श्रोताकूं शंका उत्पन्न होवे न भगवान दूसरीवार उत्तर देवें) (१३) हृदयगमता (हृदयग्राह्यत्वं) हृदयमें ग्रहणे योग्य (१४) मिथःसाकांक्षता (परस्पर आपसमें

पद वाक्योंका सापेक्षपणा) (१५) प्रस्तावौचित्यं (देशकाल करके रहित पणा नही) (१६) तत्त्वनिष्टता (विवक्षित वस्तुके स्वरूपानुसारिपणा) (१७) अप्रकीर्णप्रसृतत्वं (सुसंबंध होकर प्रसरणा अथवा असंबंधाधिकारका अतिविस्तार नही) (१८) अस्वश्लाघाऽन्यनिंदता (आत्मोत्कर्ष पर निंदा करके वर्जित) (१९) अभिजात्यं (प्रतिपाद्य वस्तुकी भूमिकानुसारिपणा) (२०) अतिस्निग्धमधुरत्वं (घृत गुडादिवत् सुखकारि) (२१) प्रशस्यता (कहेजो हैं गुण तिनकी योग्यतासें प्राप्त हुइहै श्लाघा) (२२) अमर्मवेधिता (परका मर्म जिसमे उग्घारुणा नहींहै) (२३) औदार्य (अभिधेय अर्थका तुछपणा नही) (२४) धर्मार्थप्रतिबद्धता (धर्म औ अर्थ करके संयुक्त) (२५) कारकाद्यविपर्यासो (कारक काल वचन औ लिंगादि जहां विपर्यय नही) (२६) विभ्रमादि वियुक्तता (विभ्रमवक्ताके मनकी भ्रांति विक्षेपादि दोष रहित) (२७) चित्रकृत्त्व (उत्पन्न कर्याहै छिन्न कौतुहलपणा) (२८) अद्भुतत्वं (अद्भुतपणा) (२९) अनति विलम्बिता (अतिविलंब रहित) (३०) अनेकजाति वैचित्र्य (जातियां वर्णन करणे योग्य वस्तु स्वरूप उनका आश्रय) (३१) आरोपिता विशेषता (वचनांतरकी अपेक्षा करके स्थापन कियाहै विशेषपणा) (३२) सत्त्वप्रधानता (साहसकरी संयुक्त) (३३) वर्णपदवाक्य विविक्तता (वर्णादिकोंका विछिन्नपणा) (३४) अव्युछित्तिः(विवक्षितार्थकी सम्यक् सिद्धि जहां लग न होवे तहां तांइ अव्यवछिन्न वचनका प्रमेयपणा.) (३५) अखेदित्वं (थकेंवा रहित) एह भगवंत की दुसरी वचनातिशयके पैंतीस भेदहैं.तीजी अपायापगमातिशय एतावता उपद्रव निवारक औ चोथी पूजातिशय सो भगवान तीनलोकके पूजनीक हैं इनदोनो अतिशयांकी विस्ताररूप चोंतीश अतिशय होतीहैं सोलिखतेहैं.

(१) तीर्थंकर भगवानकी देहका रूप औ सुगंध सर्वोत्कृष्ट औ रोग रहित देह तथा पसीना औ मल करि वर्जित (२) स्वास निःस्वास पद्म कमलकी तरें सुगंधवाला (३) रुधिर औ मांस गो दुग्ध वत् उज्वल (४) आहार निहारकी विधि चर्मचक्षुवालेकूं नही दीखे ए चार अतिशय जन्मसे साथ (१) एक योजन प्रमाणही समवसरणका क्षेत्रहै, परंतु तिसमें देवता मनुष्य तिर्यंचकी कोटाकोटी भि समायसक्तिहै भीड नही होती. (२) वाणी भाषा अर्द्ध मागधी देवता मनुष्य तिर्यंचकूं अपणी अपणी

देव नाम परमेश्वरका है. सो परमेश्वरके स्वरूपमें अनेक प्रकारके रूप मतांतरिये पुरुष करते है. सो जैनमतमें परमेश्वरका क्या स्वरूप है, सो तिस परमेश्वरका स्वरूप नाम रूप श्रोर विशेषण संयुक्त है. जैन मतमें जो परमेश्वर मान्याहै सो बारां गुण संयुक्त श्रो अष्टादश दूषण रहित अर्हंत परमेश्वर है. श्रो जो परमेश्वर उक्त बारां गुणरहित तथा अष्टादश दूषण सहित होगा तिसमे कदापि परमेश्वरता सिद्ध नही होगी यह कथन आगे चलकर लिखेंगे.

अब प्रथम बारां गुण लिखते है. अशोकवृक्षादि अष्ट महाप्रातिहार्य सर्व जैनलोगोमें प्रसिद्ध हैं. तथा चार मूलातिशय एवं सर्व बारां गुणहैं. तिनमें चार मूलातिशयका नाम कहते हैं. (१) ज्ञानातिशय (२) वागतिशय (३) अपायापगमातिशय (४) पूजातिशय. तत्र प्रथम ज्ञानातिशयका स्वरूप कहेहैं केवलज्ञान केवलदर्शन करी भूत भविष्य वर्तमान कालमें जो सामान्य विशेषात्मक वस्तु है तिसकू तथा उत्पाद व्यय ध्रौवयुक्त सत् त्रिकाल संबंधि जा सत् वस्तुका जानना तिसका नाम ज्ञानातिशय है. दूजी वचनातिशय तिनमें भगवंतका वचन पैंतीस अतिशय करी संयुक्त होता है. तिन पैंतीस अतिशयका स्वरूप ऐसा है. (१) संस्कारवत्त्वं (संस्कृतादि लक्षणयुक्त) (२) औदार्यं (शब्दमें उच्चपणा उपचारपरीतता) (३) अग्राम्यत्वं (ग्रामके रहण हारे पुरुषके वचन समान जिनोका वचन नहीं) (४) मेघगंभीर घोषत्वं (मेघकी तरें गंभीर शब्द) (५) प्रतिनाद विधायिता (सर्व वाजित्रोंके साथ मिलता शब्द) (६) दक्षिणत्वं (वचनकी सरलता संयुक्त) (७) उपनीतरागत्वं (मालव कोशक्यादि ग्राम राग करी युक्तता) ए सातअतिशयतो शब्दकी अपेक्षासें जानने श्रो अन्य अतिशय जो है सो अर्थाश्रय जानने. (८) महार्थता (बमामोटा जिसमे अभिधेय कहने योग्य अर्थहै) (९) अव्याहतत्वं (पूर्वापर विरोध रहित) (१०) शिष्टत्वं (अभिमत सिद्धांतोक्तार्थता) एतावता अभिमत सिद्धांत जो कहना सोइ वक्ताके शिष्टपणेका सूचकहै. (११) संशयानामसंभवः (जिनोके कहणेमें श्रोताकूं संशय नहीं होता) (१२) निराकृतान्योत्तरत्वं (जिनोके कथनमें कोइभी दूषण नहीं नतो श्रोताकूं शंका उत्पन्न होवे न भगवान दूसरीवार उत्तर देवें) (१३) हृदयगमता (हृदयग्राह्यत्वं) हृदयमें ग्रहणे योग्य (१४) मिथःसाकांक्षता (परस्पर आपसमें

अर्थ (१) दान देणेमें अंतराय ए प्रथम दोष (२) लाभगत अंतराय (३) वीर्यगत अंतराय (४) जो एक वेरी भोगीये सो भोग पुष्पमालादि तद्गतो अंतराय सो भोगांतराय (५) वार वार भोगणेमे आवे स्त्यादि घरादि कंकण कुंडलादि तद्गतांतराय सो उपभोगांतराय (६) हास्य (हसना) (७) पदार्थोंके उपरि प्रीति (रति) (८) रतिसे विपरीत सो अरति (९) भय सप्त प्रकारका (१०) जुगुप्सा (घृणा) मलीन वस्तुकूं देखकर नाक चढाणा (११) शोक (चित्तका वैधूर्यपणा) विकलपणा (१२) काम (मन्मथ) स्त्री पुरुष नपुंसक इन तीनोंका वेद विकार (१३) मिथ्यात्वं (दर्शनमोह) (१४) अज्ञानं (मूढपणा) (१५) निद्रा (सोनां) (१६) अविरति (प्रत्याख्यान रहित) (१७) राग (पूर्व सुख तिसके साधनेमे गृद्धिपणा) (१८) द्वेष (पूर्व दुःखांका स्मरण औ पूर्व दुःखमे वा तिसके साधन विषय क्रोध) येह अठारह दूषण जिनमें नही सो अर्हंत भगवंत परमेश्वरहै. इन अठारह दूषणमेंसे एकबी दूषण जिसमे होगा सो कदेभी अर्हंत भगवंत परमेश्वर नही हो सक्ता ॥ प्रथम पांच विघ्न जिसमे लग रहेहे सो परमेश्वर क्युं कर हो सक्ताहै ?

प्रश्नः—दानांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर दान देताहै ? अरु लाभांतरायके नष्ट होनेसे क्या लाभ परमेश्वरको होताहै ? तथा वीर्यांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर सक्ति दिखलाता है ? तथा भोगांतरायके नष्ट होनेसे क्या परमेश्वर भोग करताहै ? उपभोगांतरायके नष्ट होनेसे एतावता क्षय होनेसे क्या परमेश्वर उपभोग करतेहै ?

उत्तर.—पूर्वोक्त पांच विघ्नके क्षय होनेसे भगवतमें पूर्ण पांच शक्तियां प्रगट होतीयांहै. जैसे निर्मल चक्षुका पटलादिक बाधकोंके नष्ट होनेसे देखनेकी शक्ति प्रगट होतीहै. चाहे देखे चाहे नदेखे. परंतु शक्ति विद्यमानहै. तैसेंही अर्हंत भगवंतके पांच शक्तियां प्रगट होतीयांहै. पीछे दानादि चाहे करे चाहे नकरे. परंतु शक्ति विद्यमानहै. जो पांच शक्तियोंसे रहित होगा सो परमेश्वर कैसे होसक्ताहै ?

६ छठा दूषण—"हसना" हास्य जो आनाहै सो अपूर्व वस्तुके देखनेसे वा अपूर्व वस्तुके सुननेसे वा अपूर्व आश्चर्यके अनुभवके स्मरणसे इत्यादिक हास्यके निमित्तहै. औ हास्यका मोहकर्मकी प्रकृतिरूप उपादान कारणहै

सो ए दोनोही कारण अर्हंत जगवंतमें नहीहैं. प्रथम निमित्तकारणका स जव केसें होवे? अर्हंत जगवंत सर्वज्ञ सर्व दर्शीहै, उनके ज्ञानमें कोइ अ पूर्व ऐसी वस्तु नही जिसके देखे सुने अनुजवे आश्चर्य होवे. इसते कोइ जी हास्यका निमित्त कारण नही. ओ मोह कर्मतो अर्हंत जगवंतने स र्वथा क्षय कस्याहे. सो उपादान कारण क्युंकर संजवे? इस हेतुसे अर्हंत में हास्यरूप दूषण नही. ओ जो हसनशील होगा सो अवश्य असर्वज्ञ असर्वदर्शी ओ मोहकरी संयुक्त होगा सो परमेश्वर केसें होवे ?

७ सातमा दूषण–"रति"जिसकी प्रीति पदार्थों उपर होगी सो अवश्य सुंदर शब्द रूप गंध रस स्पर्श स्त्री आदिके उपर प्रीतिमान होगा. जो प्रीतिमान होगा सो अवश्य उस पदार्थकी लालसावाला होगा. अरु जो लालसावाला होगा सो अवश्य उस पदार्थकी अप्राप्तिसें दुःखी होगा सो अर्हंत परमेश्वर केसें होसक्ताहे ?

८ आठमा दूषण–"अरति" जिसकी पदार्थों उपर अप्रीति होगी सोतो आपही अप्रीतिरूपीये दुःखकरी दुःखीयाहे,सो अर्हंत जगवंत केसे होसके?

९ नवमा दूषण–"जय" सो जिसने आपणाही जय दूर नही कीया सो अर्हंत परमेश्वर केसें होवे ?

१० दशमा दूषण–"जुगुप्साहे" सो मलीन वस्तुकूं देखके घृणा करणी (नाक चढाणी) सो परमेश्वरके ज्ञानमे सर्ववस्तुका जासन होताहे. जो परमेश्वरमें जुगुप्सा होवेतो बमा दुःख होवे इस कारणते जुगुप्सामान अर्हंत जगवंत केसें होवे?

११ इग्यारमा दूषण–"शोक" हे. सो जो आपही शोकवाला हे सो परमेश्वर नही ?

१२ बारवां दूषण-"कामहे"सो आपही जो विषयीहे स्त्रीयोके साथ जोग करतहे तिस विषयाजिलाषीकूं कोन बुद्धिमान पुरुष परमेश्वर मानताहे ?

१३तेरवां दूषण-'मिथ्यात्वहे'सो जो दर्शनमोह करी लिप्तहे सो जगवंत नही.

१४ चौदवां दूषण-'अज्ञान हे' सा जो आपही मूढहे सो अर्हंत जगवंत नही.

१५ पंदरवां दूषण–"निद्रा हे"सो जो निद्रामे होता हे सो निद्रामे कुछ नही जानता ओ अर्हंत जगवानतो सदा सर्वज्ञ हे सो निद्रावान् केसे होवे ?

१६ शोलवां दूषण—"अप्रत्याख्यान है" सो जो प्रत्याख्यान रहित है सो सर्वाभिलाषी है सो तृष्णावाला कैसे अर्हंत भगवंत होसके?

१७–१८ सत्तरवां औ अठारवां ये दोनो दूषण—"राग अरु द्वेष" है सो राग द्वेषवान मध्यस्थ नही होता. अरु जो रागी द्वेषी होता है तिसमें क्रोध मान मायाका संभव है. भगवान तो वीतराग, सम शत्रु मित्र, सर्वजीवो पर समबुद्धि, न किसीकूं दुःखी अरु न किसीकूं सुखी करे, जेकर दुःखी सुखी करेतो वीतराग करुणा समुद्र कदेइ न होसक्ता इस कारणतें रागद्वेषवाला अर्हंत भगवंत परमेश्वर नही. ए पूर्वोक्त अठारह दूषण रहित अर्हंत भगवंत परमेश्वरहै, अपर कोइ परमेश्वर नही.

अथ अर्हंतके नाम दो श्लोकों करि लिखतेहै—अर्हन् जिनः पारगत स्त्रिकालवित्. क्षीणाष्टकर्मा परमेष्ट्यधीश्वरः॥ शंभुः स्वयंभूर्भगवान् जगत्प्रभु-स्तीर्थंकरस्तीर्थकरो जिनेश्वरः ॥ १ ॥ स्याद्वाद्यभयदसार्वाः, सर्वज्ञः सर्वदर्शिकेवलिनौ । देवाधिदेवः बोधिदो, पुरुषोत्तमो वीतरागाऽप्तः ॥२॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थः—(१) चौंतीश अतीशय करी सबसें अधिक होनेसें सुरेंद्र आदिकोंकी करी हुइ अष्ट महा प्रातिहार्या जन्म स्नात्रादि पूजाके जो योग्य है सो अर्हन् अथवा ज्ञानावरणीयादि आठ कर्म रूप वैरी हननेसें अर्हन् अथवा बध्यमान कर्म रजके हननेसे अर्हन् अथवा नही है कोइ पदार्थ छाना जिनोके ज्ञानमें सो अर्हन् तथा नामांतरमें अरुहन् नही उत्पन्न होना भवरूपी अंकूर जिनोके सो अरुहन् ए प्रथम नाम. (२) जीते है राग द्वेष मोहादि अष्टादश दूषण जिसने सो जिन. ए द्वितीय नाम. (३) संसारके अथवा प्रयोजन जातके (प्रयोजन मात्रके) पारपर्यंत छेहडेको गत (प्राप्त) हुया है एतावता संसारमें जिनका कोइ प्रयोजन नही सो पारगतः ए तृतीय नाम. (४) भूत, भविष्य, वर्त्तमान, इन तीनों कालोंकूं जो जाणे सो त्रिकालवित्. ए चतुर्थ नाम. (५) क्षीणानि क्षय हूये है आठ ज्ञानावरणीय आदि कर्म जिसके सो क्षीणाष्टकर्मा ए पंचम नाम. (६) परमेश्वरपदे तिष्टतीति परमेष्टी परम उत्कृष्ट पदमे जो रहे है सो परमेष्ठि ए षष्ट नाम. (७) जगतका ईश्वर (स्वामी) सो अधीश्वर ए सप्तम नाम. (८) शं शास्वतं सुखं तिसमे जो होवे सो शंभु ए अष्टम नाम. (९) स्वयं आपही आपणी आत्मा करके तथा भव्यत्वादि सामग्रीके प

रिपक होणेसे परंतु परके उपदेशसे नही यह तिसही जवकी अपेक्षाका कथन् हे ऐसा जो होवे सो स्वयंजू ए नवम नाम.(१०) जग शब्दके चौदह अर्थ हे तिनमेंसे अर्क औ योनि ए दो अर्थ वर्जके शेष बारां अर्थ ग्रहण करणा तिसका नाम कहते हे. (१) ज्ञानवंत, (२) माहात्म्यवंत, (३) शास्वत वेरीयांके वेर उपशमनेतें यशस्वि, (४) राज्य लक्ष्मीके त्यागसे वेराग्यवंत, (५) मुक्तिवंत, (६) रूपवंत, (७) अनंतबल होणेसें वीर्यवंत, (८) तप करनेमें उत्साहवान होनेसे प्रयत्नवंत, (९) इछावंत सो संसार सेती जीवांका उद्धार करणेमें इछावंत, (१०) चोतीश अतिशयरूप लक्ष्मी करी विराजमान होणेसे श्रीमंत, (११) धर्मवंत (१२) अनेक देव कोटि करी सेव्यमान होनेसें ऐश्वर्यवंत ए बारां अर्थ करी संयुक्त सो जगवान् ए दशम नाम. (११) जगत प्रजु ए एकादशम नाम. (१२) तरीये संसार समुद्र जिस करेके सो तीर्थ प्रवचनका आधार चार प्रकारका संघ अथवा प्रथम गणधर तिसके करणेका हे शील जिसका सो तीर्थंकर, ए द्वादशम नाम. (१३) रागादिकोंके जीतनेहारे जिन (केवली) तिनका जो ईश्वर सो जिनेश्वर ए त्रयोदशम नाम. (१४) स्यात् एहजो अव्यय हे सो अनेकांतका वाचक हे वस्तुकों अनेकांतपणे अनेक स्वरूपे कहणेका शील हे जिनका सो स्याद्वादि ए चतुर्दशम नाम. (१५) अजयद जय जो हे सो सात प्रकारका हे (१) मनुष्यादिकोंकों मनुष्यादि स्वजातीयसे अर्थात् एक मनुष्यकूं अन्य मनुष्य सेति जो जय होवे सो इहलोक जय, (२) विजातीय तिर्यंच देवतादिक सेंती जो जय होवे सो परलोक जय, (३) आदान जय सो आदान कहियें धन तिस धनके कारणे चोरादिक सेती जो जय होवे सो आदान जय, (४) बाहिरले निमित्त विना घरादिकों विषे बेठेकूं रात्रि आदिक विषे जो जय होवे सो अकस्मात् जय, (५) आजीविका जय सो में निर्धनहुं केसे दुर्भिक्षादिकमें अपने आपकूं धारण करूंगा ऐसा जो जय सो आजीविका जय, (६) मरणसे जो जय सो मरणजय एह प्रसिद्ध हे. (७) अश्लाघा जय अयशका जय जो में ऐसे करूंगा तो मेरा बडा अपयश होगा अयशके जयमें प्रवर्त्ते नही सो अश्लाघा जय, ए सात प्रकारका जय इसका जो विपक्षी सो अजय सो क्या वस्तु हे विशिष्ट आत्मा

का स्वास्थपणा निश्रेयस धर्मनिबंधन भूमिकाभूत तिस गुणके प्रकर्षतें अचिंत्य शक्ति युक्त होणेसें सर्वथा परहितकारी होणेसें ऐसा अभय देवे सो अभयद ए पंचदशम नाम. (१६) सार्वाः सर्व प्राणीयोंके तांइ जो हित सो सार्वा ए षोडशम नाम. (१७) सर्वज्ञ सर्व जो जाणे सो सर्वज्ञ. ए सप्तदशम नाम. (१८) सर्व जो देखे सो सर्वदर्शि, ए अष्टादशम नाम.(१९) सर्वथा प्रकारें कर्मावरणके दूर होनेसें, जो चेतन स्वरूप प्रगट भया "केवल" केवलज्ञान है इसके सो केवली.ए एकोनविंसतिम नाम. (२०) देवताओंका जो अधिपति सो देवो देवाधिदेव ए विंसतिम नाम. (२१) बोधिः जिनप्रणीत धर्मकी प्राप्ति तिसकूं जो देवे सो बोधिद ए एकविंसतिम नाम. (२२) पुरुषां मांहे उत्तम सहज तथा भव्यत्वादि भव करी श्रेष्ट सो पुरुषोत्तम ए द्वाविंसतिम नाम. (२३) वीतो गतो रागो अस्मात् इति वीतराग ए त्रयोविंसतिम नाम. (२४) आप्त हितोपदेशक होणेसें आप्त कहीयें ए चतुर्विंसतिम नाम. इत्यादिक हजारो नाम परमेश्वरके है ए पूर्वोक्त सर्व परमेश्वरका स्वरूप श्रीहेमचंद्राचार्यकृत ग्रंथोंके अनुसार तथा समवायांग राजप्रश्नीय प्रमुख शास्त्रोंकें अनुसार लिखे है. अन्यथा जिनसहस्रनाम ग्रंथमें तो एकहजार आठ नाम अन्वयार्थ सहित कहे है, सर्व नाम व्युत्पत्ति सहित अर्हंत परमेश्वरके है, सो अर्हंत पद तो एक अनादि अनंतहै, परंतु इसपदके धारक जीव अनंत अतीत कालमें होगये है. क्युंके एकैक उत्सर्प्पिणि अवसर्प्पिणि कालमें भारत वर्षमें चोवीश चोवीश जीव अर्हंत पदकूं धारकर पीछे सिद्धपदकूं प्राप्त हो गये है.

इस वर्त्तमान अवसर्प्पिणिसें पिछलि उत्सर्प्पिणीमें जो जीव अर्हंत पदके धारक हुयें है. तिनके नाम (१) केवलज्ञानी (२) नीर्वाणी (३) सागर (४) महायश (५) विमलनाथ (६) सर्वानुभूति (७) श्रीधर (८) दत्त (९) दामोदर (१०) सुतेज (११) स्वामि (१२) मुनिसुव्रत (१३) सुमति (१४) शिवगति (१५) अस्तांग (१६) नेमीश्वर (१७) अनिल (१८) यशोधर (१९) कृतार्थ (२०) जिनेश्वर (२१) शुद्धमति (२२) शिवकर (२३) स्यंदन (२४) संप्रति ॥

अथ वर्त्तमान चोवीश अर्हंतका नाम. (१) श्रीऋषजनाथ (२) श्री अजितनाथ (३) श्री संजवनाथ (४) श्री अजिनंदननाथ (५) श्री सुमति नाथ (६) श्री पद्मप्रज (७) श्री सुपार्श्वनाथ (८) श्री चंद्रप्रज (९) श्री सुविधिनाथ अपर नाम पुष्पदंत (१०) श्री शीतलनाथ (११) श्री श्रेयांसनाथ (१२) श्री वासुपूज्यस्वामि (१३) श्री विमलनाथ (१४) श्री अनंतनाथ (१५) श्री धर्मनाथ (१६) श्री शांतिनाथ (१७) श्री कुंथुनाथ (१८) श्री अरनाथ (१९) श्री मल्लिनाथ (२०) श्री मुनिसुव्रतस्वामि (२१) श्री नमिनाथ (२२) श्री अरिष्टनेमि (२३) श्री पार्श्वनाथ (२४) श्री महावीर.

अथ चोवीश तीर्थंकर जगवंतोके जो नाम हे, सो नाम किस किस कारणसें हुये हे, तिन नामोका एकतो सामान्यार्थहे, जो सब तीर्थंकरोमें पावे. और दूजा विशेषार्थ हे जो एकही तीर्थंकरके नामका निमित्त हे सोलिखतेहे.

"ऋषति गछति परमपदमिति ऋषजः" जावेजो परम पदकूं सो ऋषज एह अर्थ सब तीर्थंकरोमें व्यापक हे. अथ विशेषार्थ "उर्वोर्वृषनलांछनमजूद्भगवतो जनन्या चतुर्दशानां स्वप्नानामादौ वृषजो दृष्टः तेन ऋषजः" जगवानकी दोनो साथलोमें बैलका लांछनथा, अथवा जगवंतकी माता मरुदेवीने चौदह स्वप्नकी आदिमे बैलका स्वप्नदेखाया, तिसकारणसें ति ऋषज ऐसा नामदीया. ऐसेंही सर्व तीर्थंकरोका प्रथम सामान्यार्थ और दूसरा विशेषार्थ जानना.

२ "परीसहादिजिर्न जिन इत्यजितः" परीसहे बावीश आदि शब्दसे चार कषाय, आवकर्म, चार प्रकारका उपसर्ग, इनो करके जो न जीत्या गया सो अजित तथा "यहा गर्नस्थे ऽस्मिन् द्युते राज्ञा जननी न जिते त्यजितः" जब जगवान गर्नमें थे, तब जूआ खेलता राजा राणीकूं न जीत शका. इस हेतुसे अजित नाम दीया ॥ २ ॥

३ "शंसुखंजवत्यस्मिन्स्तुतेसशंजवः" शं नाम सुखका हे, सुखहोवे जिसकी स्तुतिके करयां सो संजव "यद्वागर्जगतेप्यस्मिन्नन्यधिकसस्यसंजवात्संजवोपि" अथवा जगवान् जब गर्नमें थे तब पृथ्विमें अधिक धान्यका संजव होनेमें संजव ॥ ३ ॥

४ "अजिनंदते देवेंद्रादिजिरित्यजिनंदनः" जिनकी स्तुति करीये हे देवेंद्र

दिकों करी, सो अजिनंदन "यद्वागर्भात्प्रभृत्येवाभीक्ष्णं शक्रेण अजिनंदनादजिनंदनः" अथवा जिसदिन जगवान गर्भमें आये उसदिनसे लैके शक्रेंद्रके वार वार स्तुति करनेसें अजिनंदन ॥ ४ ॥

५ "शोजनामतिरस्येति सुमतिः" जलिहै बुद्धि इसके सो सुमति "यद्वा गर्भस्थे जनन्याःसुनिश्चितामतिरजूदिति सुमतिः" अथवा जगवानके गर्भमें आये माताकी बहुत निर्मल निश्चित बुद्धि हुइ इस हेतुसें सुमति नाम ॥५॥

६ "निष्पंकतामंगीकृत्य पद्मस्येवप्रजाऽस्यपद्मप्रजः" विषय तृष्णा कर्म कलंक रूप कीचम करी रहित पद्मकी तरे प्रजाहै इनकी, सो पद्मप्रज "यद्वा पद्मशयनदोहदोमातुर्देवतयापूरित इति पद्मवर्णश्चजगवानितिपद्मप्रजः" अथवा पद्मशयन दोहदो दोहला माताकूं उत्पन्नहुया सो देवताने पूरण कीया इस कारणसे पद्मप्रज अरु पद्म कमल सरीखा जगवानके शरीरका वर्णथा इस हेतुसेजी पद्मप्रज ॥ ६ ॥

७ "शोजनौपार्श्वावस्यसुपार्श्वः" शोजनिक है दोनो पासे इसके, सो सुपार्श्व तथा "यद्वा गर्भस्थेजगवतिजनन्यपिसुपार्श्वाजूदिति सुपार्श्वः" गर्भमें स्थितहूयां जगवान्के माताके दोनो पासे बहुत सुंदर होगये, इस कारणसे सुपार्श्व ॥ ७ ॥

८ "चंद्रस्येव प्रजाज्योत्स्नासौम्यलेश्याविशेषाऽस्यचंद्रप्रजः" चंद्रमाकी तरें है सौम्य लेश्या इसकी सो चंद्रप्रज तथा "गर्भस्थे देव्याश्चंद्रपानदोहदोऽजूत् इति चंद्रप्रजः" गर्भमें जब जगवानथे तब माताकूं चंद्रमा पीनेका दोहद उत्पन्न हुआथा, इस कारणसें चंद्रप्रज ॥ ८ ॥

९ "शोजनो विधिविधानमस्यसुविधिः" जली है विधि इसकी सो सुविधि तथा "यद्वा गर्भस्थेजगवति जनन्यप्येवमिति सुविधिः" गर्भमें जगवानके रहणेसें, माताजि शोजनिक विधि वाली होती जइ, इस कारणसें सुविधि ॥९॥

१० "सकलसत्वसंतापहरणात्शीतलः" सर्व जीवोंका संताप हरणेसें, शीतल तथा "गर्भस्थे जगवति पितुःपूर्वोत्पन्नाचिकित्स्यपित्तदाहोजननीकरस्पर्शाडुपशांत इति शीतलः" जगवतके गर्भमें आनेसें, जगवतके पिताके शरीरमें पित्तदाह रोगथा, वैद्योसें शांति नहुइ जगवतकी माताके हाथका स्पर्श होताही राजेका शरीर शीतल हो गया इस कारणे शीतल ॥ १० ॥

११ "श्रेयान्समस्तभुवनस्यैवहितकरः प्राकृतशैल्याऽऽगंदसत्वाच्चश्रेयांसइत्युच्यते" सर्व जगतको जो हित करे सो श्रेयांस तथा "यद्वा गर्नस्थे अस्मिन् केनापिनाक्रांत पूर्वादेवताधिष्ठितशय्याजनन्याक्रांतेतिश्रेयोजातमिति श्रेयांसः" जगवान् जब गर्भमेंथे तदा जगवतके पिताके घरमें देवताधिष्ठित शय्याथी उस उपरि जो बैठताथा उसहीकूं असमाधि उत्पन्न होतीथी,जगवनकी माताकूं उसी शय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न हूया,माताउसी शय्या उपरि सूती देवता शांतिनया उपद्रव न करया इसहेतुसें श्रेयांस ११

१२"नत्रनसूनांपूज्यःवसुपूज्यःवसवोदेवा" वसूओंकर जो पूज्यनीक होवे सो वसुपूज्यः वसु कहिये देवता "वसुपूज्यनृपतेरपत्यं वासुपूज्यः" वसुपूज्य नामा राजेका जो पुत्र सो वासुपूज्य "वासवो देवराया तस्स गब्भगयस्स अनिरकणं अनिरकणं जणणीए पूयंकरेति तेणवासुपूज्योति अहवा वसूणि रयणाणि वासवो वेसमणो सो गब्भगए अनिरकणं अनिरकणं तं रायकुलं रयणेहिं पूरेयति वासुपूज्योत्ति ॥ अस्यार्थः—वासव नाम इंद्रका है सो जगवान् जब गर्भमें आये तदा वार वार इंद्रने जगवतकी माताकूं पूज्या, इस कारणसें वासुपूज्य अथवा वसु कहिये रत्न अरुवासव नाम है वैश्रमणका सो वैश्रमण यदा जगवान् गर्भमेंथे तदा वार वार तिस राजाके कुलकूं रत्नाकरी पूरण करता जया इस हेतुसें वासुपूज्य ॥ १२ ॥

१३ "विगतोमलोऽस्यविमलः विमलज्ञानादियोगाद्वाविमलः" दूरहुया है अष्ट कर्मरूप मल जिसका सो विमल अथवा निर्मल ज्ञानादि योग से विमल "यद्वागर्भस्थेमातुर्मतिस्तनुश्च विमलाजातेतिविमलः" तथा जगवान् यदा गर्भमेंथे, तदा माताकी बुद्धि अरु शरीर ए दोनुं निर्मल हो गये इस कारणे "विमल" नाम जानना ॥ १३ ॥

१४ "नविद्यतेगुणानामंतोऽस्यअनंतः अनंतकर्मांशजयाद्वानंतः अनंताजिज्ञानादीनिस्येत्यनंतः" नहीं जाणिये है गुणका अंत जिसका सो अनंत, अथवा अनंत कर्मांश जीतनेसें अनंत, अथवा अनंत है ज्ञानादि गुण जिसके सो अनंत "रयणविचित्तं रयणं, सुविणं अणंतं अनिसद्द एमाणं ॥ दाम सुमिणे जणणीए, दिठं तउ अणंतोत्ति" रत्न विचित्र रत्नजडि

त अति मोटी दाम माला स्वप्नमें माताने देखी तिस कारणे अनंत ॥१४॥

१५ "दुर्गतौ प्रततं सत्वं संघातं धारयतीति धर्म्मः" दुर्गतिमें पड़तां जीवांके समूहकूं जो धारण करे सो धर्म तथा "गर्भस्थेजननीदानादि धर्म्मपराजातेति धर्मः" परमेश्वरके गर्भमे आवणेसे माता दानादिक धर्ममें तत्पर भयी इस कारणे धर्म नाम ॥ १५ ॥

१६ "शांतियोगात्तदात्मकत्वात्तत्कर्तृकत्वाद्वायंशांतिः" शांतिके योगसें वाशांति रूप होणेसें वा शांति करणेसें शांति तथा "गर्भस्थेपूर्वोत्पन्नाशिवंशांतिरभूदितिशांतिः" तथा गर्भमें भगवानके उत्पन्न होणेसे पूर्वे जो अशिव उत्पन्नथा, सो शांति होगया इस कारणे शांति नाम ॥ १६ ॥

१७ "कुःपृथ्वी तस्यांस्थितिवानितिकुंथुः पृषोदरादित्वात्" कु नाम पृथ्वी का है तिस पृथ्वीमें जो स्थित होता भया सो कुंथु तथा "गर्भस्थे भगवति जननी रत्नानां कुंथुंराशिंदृष्टवतीतिकुंथुः" भगवतके गर्भमें स्थित हूया माता रत्नमयी कुंथुओंकी राशि देखती भइ इस हेतुसें कुंथु ॥ १७ ॥

१८ "सर्वोत्तममहासत्वे, कुलेयउपजायते॥तस्याभिवृद्धयेवृद्धैः, रसारवर उदाहृतः॥ १ ॥ इतिवचनादरः" सर्वसे उत्तम महासात्विक कुलमें जो उत्पन्न होवे. और तिस कुलकी वृद्धिके ताइ है तिसकुं वृद्ध पुरुष, प्रधान अर कहते है तथा "गर्भस्थेभगवतिजनन्यास्वप्नेसर्वरत्नमयोऽरोदृष्टइत्यरः" तथा भगवतके गर्भमें स्थित होया माताने स्वप्नमें सर्व रत्नमयी अर देख्या इस कारणसे अर इति नाम ॥ १८ ॥

१९ "परीसहादिमल्लजयनान्निरुक्तान्मल्लिः" परीसहादि मल्लोके जीतनेसें मल्लिः तथा "गर्भस्थे भगवतिमातुः सुरभिकुसुममाल्यशयनीयदोहदोदेवतयापूरितइति मल्लिः" तथा भगवतके गर्भमें स्थित हूया भगवनकी माताकुं सुगंधवाले फूलोकी मालाकी सय्या उपरि सोनेका दोहद उत्पन्न भया. सो देवताने पूरण कीया इस कारणसें मल्लि ॥ १९ ॥

२० "मन्यतेजगतस्त्रिकालावस्थामितिमुनिःशोभनानिव्रतान्यस्येतिसुव्रतः मुनिश्चासौसुव्रतश्चमुनिसुव्रतः" मानेजो जगतकूं तीनोंही कालमें सो "मुनि" भले है व्रत जिसके सो सुव्रत ए दोनो पद एकठे करणेसें मुनिसुव्रत तथा

"गर्भस्थेजननीमुनिवत्सुव्रताजातेतिमुनिसुव्रतः" तथा भगवतके गर्भमें स्थित हूयां माता मुनिकी तरे भले व्रत वाली होतीभइ इस हेतुसें मुनिसुव्रत २०

२१"परीसहोपसर्गादीनांनामनात्नमेस्तुवेतिविकल्पेनोपांत्यस्येकाराभावपक्षेनमिः" परीसह उपसर्गाकूं नमावणेसें नमि तथा "यद्वा गर्भस्थे भगवति परचक्रनृपैरपिप्रणतिः कृतेतिनमिः" भगवतके गर्भमें स्थित होया वैरी राजायोंनेभी नमस्कार करी इस कारणसें नमि ॥ २१ ॥

२२ "धर्मचक्रस्यनेमिवन्नेमिः" धर्मचक्रकी धारावत् सो नेमि तथा "गब्भगएतस्समायाए, रिट्ठरयणामउमहतिमहालउ नेमि ॥ उप्पयमाणो सुमिणे, दिठोत्ति तेणसेरिठ्ठनेमित्ति नामंकयंति" तथा भगवतके गर्भगत हूया माताने अरिष्ट रत्नमय बडा मोटा नेमी (चक्रधारा) आकाशमें उत्पत मान स्वप्नमें देख्या तिस कारणे अरिष्ट नेमि नाम कहा ॥ २२ ॥

२३ "स्पृशतिज्ञानेनसर्वभावानितिपार्श्वः" स्पर्शे जाणे सर्व पदार्थोंकूं ज्ञान करी सो पार्श्व तथा "गर्भस्थेजनन्यानिशिशयनीयस्थयांऽधकारेसर्प्पो दृष्टइतिगर्भानुभावोयमितिपश्यतीतिनिरुक्तात्पार्श्वः पार्श्वोऽस्यवैयावृत्त्यकरोयक्षस्तस्यनाथः पार्श्वनाथः भीमोभीमसेनइतिन्यायाद्वापार्श्वः" तथा भगवतके गर्भमें स्थित होणेसे माता निशि रात्रिमें शय्या उपर बैठीने अंधेरेमे जाता हूया सर्प्प देख्या माता पिताने विचार्या जो ए गर्भका प्रभाव है देखे सो पार्श्वः अथवा पार्श्व नामा वैयावृत्त करणहारा देवता तिसका जो नाथ सो पार्श्वनाथ ॥ २३ ॥

२४"विशेषेणईरयतिप्रेरयतिकर्माणीतिवीरः" विशेष करके प्रेरेजो कर्मां कूं सो वीर तथा वडे उग्र परीसह उपसर्ग सहणेसें देवताने नाम कर्या श्रमण भगवान् महावीर तथा माता पिताका नाम दीया वर्द्धमान ॥२४॥

इस प्रकार यह अवसर्प्पिणीमें जो तीर्थंकर हो गये तिनोके नाम अरुकिस हेतुसें यह नाम रक्खे गये सो समाप्त हूये.

यह चोवीश तीर्थंकर है इनमेंसु बावीश अर्हंततो इक्ष्वाकु कुलमें उत्पन्न हूये है एतावता ऋषभ देवकी संताननमें है, इक्ष्वाकु कुल ऋषभदेवहीसें प्रसिद्ध है, यह स्वरूप आगें चलकर लिखेंगे. और एक तो वीशमे मुनि

सुव्रत स्वामी तथा दूसरा वावीशमें श्रीअरिष्टनेमि जगवान्, ए दोनो तीर्थ कर हरिवंशमें उत्पन्न हूये थे तथा इन चोवीसों तीर्थंकरोंमे छठा पद्मप्रज और वारहवा वासुपूज्य ए दोनो तीर्थंकर रक्तवर्ण शरीरवाले हूये है. तथा आठवां चंद्रप्रज और नवमे सुविधिनाथ (पुष्पदंत) ए दोनो तीर्थ कर, स्वेत वर्ण स्फटिकवत् उज्वल शरीरवाले हूये है, तथा उन्नीसवा म ल्लिनाथ और तेइसवां पार्श्वनाथ ए दोनो तीर्थंकर हरित वर्ण शरीर वा ले हूये है, तथा वीसवां मुनिसुव्रत स्वामी और वावीसवां अरिष्टनेमि ज गवान् ए दोनो तीर्थंकर स्यामवर्ण अलसीके फूलवत् रंगवाले शरीरके धा रक हूये है, अरु शेष शोलां तीर्थंकर सुवर्णवर्ण शरीरवाले हूये हैं.

अथ चोवीश तीर्थंकरोंके चिह्न उनके दक्षिण पगोंमे रहे हूये वा उ नकी ध्वजामे ए चिन्ह होते है अथवा इनकी प्रतिमाके आसनमें ए चिन्ह होते है, सो कहेते है. (१) ऋषजदेवजीके वैलका चिन्ह. (२) अजितनाथजीके हाथीका चिन्ह. (३) संजवनाथजीके घोडेका चिन्ह. (४) अजिनंदनजीके वंदरका चिन्ह. (५) सुमति नाथजीके क्रौंच पक्षीका चिन्ह. (६) पद्मप्रजजीके कमलका चिन्ह. (७) सुपार्श्वनाथजीके सा थीयेका चिन्ह. (८) चंद्रप्रजजीके चंद्रमाका चिन्ह. (९) सुविधिनाथ (पुष्पदंतजी) के मकरका चिन्ह. (१०) शीतलनाथजीके श्रीवत्सका चिन्ह. (११) श्रेयांसनाथजीके गैंडेका चिन्ह. (१२) श्रीवासुपूज्यजीके महिषेका चिन्ह. (१३) श्रीविमलनाथजीके सूअरका चिन्ह. (१४) अनंत नाथजीके वाजका चिन्ह. (१५) धर्मनाथजीके वज्रका चिन्ह. (१६) शांति नाथजीके हरिणका चिन्ह. (१७) कुंथुनाथजीके वकरेका चिन्ह. (१८) अरनाथजीके नंदावर्त्तका चिन्ह. (१९) श्रीमल्लिनाथजीके कुंजका चिन्ह. (२०) मुनिसुव्रत स्वामीजीके कछुका चिन्ह. (२१) नमी नाथजीके नीले कमलका चिन्ह. (२२) अरिष्टनेमिजीके शंखका चिन्ह. (२३) श्रीपार्श्वनाथजीके सर्प्पका चिन्ह. (२४) श्रीमहावीरजीके सिंह का चिन्ह. यह चिन्ह चोवीश तीर्थंकरोंके पगोंमे होते है.

अथ चोवीश तीर्थंकरोंके पितायोंके नाम तथा मातायोंके नाम कहतेहैं. (१) नाजिनह्यत्यन्यायिनोहकारादिन्निर्नीतिजिरितिनाजिरंत्यकुलकरः,(२)

जिताःशत्रवोऽनेनजीतशत्रुः (जीतेहे शत्रु जिसने सो जितशत्रु) (३) जिताअरयोऽनेनजितारिः (जीतेहे वेरी जिसने सो जितारि, (४) संवृणो तींद्रियाणिसंवरः (वस करीया हे इंद्रिया सो संवर, (५) सकलसत्वसंता पहरणात् मेघइवमेघः (सकल जीवांका संताप हरणेसें मेघकी तरें मेघ, (६) धरतिधात्रीमितिधरः (धारण करे जो पृथ्वीकुं सो धर, (७) प्रतिति ष्ठति धर्मकार्ये प्रतिष्ठः (धर्मके कार्य कार्यमें जो रहे सो प्रतिष्ठ, (८) मह तीपूज्यासेनाऽस्यमहासेनः (मोटी पूजने योग्य हे सेना जिसकी सो महासे न, सचासौनरेश्वरश्च महासेननरेश्वरः, (९) शोभनाग्रीवाऽस्यसुग्रीवः (भली हे ग्रीवा जिसकी सो सुग्रीव, (१०) दृढोरथोस्य दृढरथः (दृढ बलवान हे रथ जिसका सो दृढरथ, (११) विवेष्टि बलैः पृथिवीविष्णुः (विवेष्टन कीया हे पृथवीकुं सेना करी जिसने सो विष्णु, (१२) अन्यैराजभिर्वसुभिर्धनैः पूज्यते इतिवसुपूज्यः सचासौराट्च वसुपूज्यराट् (दूसरे राजाउंने धन करी पूज्या सो वसुपूज्य राजा, (१३) कृतंवर्मानेन कृतवर्मा (करयो हे मनाह जिसने सो कृतवर्मा, (१४) सिंहवत्पराक्रमवतीसेनास्य सिंहसे नः (सिंहकीतरे हे पराक्रमवाली सेना जिसकी सो सिंहसेन, (१५) भा तित्रिवर्गेणभानुः) सोभे हे जो अर्थ काम अरु धर्म करके सो भानु,(१६) विश्वव्यापिनीसेनाऽस्यविश्वसेनः (जगतमें व्यापनेवाली सेना हे जिसकी सो विश्वसेन सचासौराट्चविश्वसेनराट् (१७) तेजसासूरइवसूरः (तेज करके सूर्यवत् सो सूर, (१८) शोभनंदर्शनमस्यसुदर्शनः (भला हे दर्शन जिसका सो सुदर्शन, (१९) गुणपयसामाधारभूतत्वात् कुंभइव कुंभः (गु णरूप पाणीका आधारभूत होणेसे कुंभकी तरे कुंभ, (२०) शोभनानि मित्राण्यिस्यसुमित्रः (भले हे मित्र जिसके सो सुमित्र, (२१) विजयते शत्रूनितिविजयः (जीते हे शत्रुयांकूं सो विजय, (२२) गांभीर्येण समुद्रस्या दिविजितासमुद्रविजयः(गांभीर्यना करी समुद्रकूं जीतनेवाला समुद्रविजय, (२३) अश्वप्रधानासेनास्यअश्वसेनः (घोडों करी प्रधान हे सेना जिसकी सो अश्वसेन, (२४) सिद्धार्थाःपुरुषार्था अस्य सिद्धार्थः॥ ए इसतरें आ दि चोवीस तीर्थंकरोंके क्रम करके चोवीस पितायोंके नाम कहे.

अथ चोवीश तीर्थंकरोकी माताओंके नाम लिखते हैं. (१) मरुन्निर्दीव्यतेस्तूयतेमरुदेवा पृषोदरादित्वात् तलोपःमुरदेव्यपि स्यात् (देवतां करी जो स्तवीये सा मरुदेवा मुरदेवी एसान्नी नाम है, (२) विजयतेविजया (जयवंतविजया. (३) सहअनेनजितारिस्वामिनावर्त्ततेसेना (जितारिराजा के साथ जो वर्त्ते सा सेना, (४) सिद्धोऽर्थोऽस्याःसिद्धार्थाः (सिद्धहूया है अर्थ जिसका सा सिद्धार्थाः (५) मंगलहेतुत्वात्मंगला (मंगलके हेतुजूत होनेसें मंगला, (६) शोजनासीमामर्यादाऽस्याः सुसीमा (जली है मर्यादा जिसकी सा सुसीमा, (७) स्थैर्येणापृथ्वीवपृथ्वी (स्थिर है पृथ्वी की तरे पृथ्वी. (८) लक्ष्मीशोजाऽस्त्यस्याः लक्ष्मणा (लक्ष्मीकीतरें शोजा है जिसकी सा लक्ष्मणा. (९) धर्मकृत्येपुरमतेरामा (धर्मकृत्यमें जो रमे सा रामा. (१०) नंदतिसुपात्रेणनंदा (वृद्धिवान् होवे जो सुपात्र दान देणेसें सा नंदा, (११) विवेष्टिगुणैर्जगदिति विष्णुः (लपेटे जो गुणा करी जगत् सा विष्णु. (१२) जयतिसतीत्वेनजया (उत्कृष्टपणेवर्त्ते है सती पणे करी सा जया, (१३) श्यामवर्णत्वात्श्यामा (श्यामवर्ण होनेसें श्यामा, (१४) शोजनंयशोऽस्याःसुयशा (जला है यश जिसका सा सुयशा, (१५) शोजनंव्रतमस्याःसुव्रतापतिव्रतत्वात् (जला है व्रत जिसके सा सुव्रता, (पतिव्रता होनेसें सुव्रता, (१६) नचिरयतिधर्मकार्येष्वऽचिराः (नही चिर करती धर्मकार्यो विषे सा अचिरा. (१७) श्रीरिवश्रीदेवीवदेवीप्रजाऽस्त्यस्याःश्री (लक्ष्मीकी तरें प्रजा है जिसकी सा श्री, (१८) देवीकी तरे प्रजा है जिसकी सा देवी. (१९) प्रजावतीप्रजावती,(२०) पद्मइवपद्मावती (पद्मकी तरे पद्मावती. (२१) धर्मवीजमितिवप्रा. (२२) शिवहेतुत्वात्शिवा (निरुपद्रव होणेके हेतुसें शिवा. (२३) मनोज्ञत्वाद्वामा पापकार्येषुप्रतिकूलत्वाद्वामा (मनोज्ञ होणेसें वामा) अथवा पापकार्यो विषे प्रतिकूल होनेसें वामा. (२४) त्रिशिज्ञानदर्शनचारित्राणिशलयनि प्राप्नोतीतित्रिशला (तीन ज्ञान दर्शन औ चारित्रकूं प्राप्ति होवे सा त्रिशला. इस क्रम करके रूषनादि चोवीस तीर्थंकरोंके माताओंका नाम है ॥ अथ या सुगमताके कारण चोवीस तीर्थंकरोंके साथ बावन बोलका संबंध है तिसका स्वरूप यंत्र बंध लिखते है. प्रथम बावन बोलका नाम लिखे है.

बावन बोलका नाम कहेते हैं.

१ श्रीतीर्थंकरका नाम.	२८ गणधरोंकी संख्या.
२ चवणतिथि.	२९ साधुओंकी संख्या.
३ किस विमानसें आये.	३० साधवीयोंकी संख्या.
४ किस नगरीमें जन्म हूये.	३१ वैक्रिय लब्धिवंतोंकी संख्या.
५ जन्म तिथि.	३२ अवधि ज्ञानीयोंकी संख्या.
६ पिताओंका नाम.	३३ केवल ज्ञानीयोंकी संख्या.
७ माताओंका नाम.	३४ मनःपर्यवज्ञानीयोंकी संख्या.
८ किस नक्षत्रमें जन्मे.	३५ चौदह पूर्वधारियोंकी संख्या.
९ जन्मराशि.	३६ वादिओंकी संख्या.
१० लांछनका नाम.	३७ श्रावकोंकी संख्या.
११ शरीरके उच्च पणेका मान.	३८ श्राविकायोंकी संख्या.
१२ आयुके वर्षका प्रमाण.	३९ शासनके यक्षोका नाम.
१३ शरीरका वर्ण.	४० शासनके यक्षणीयोका नाम.
१४ पदवी.	४१ प्रथम गणधरका नाम.
१५ विवाहे के कुमारे?	४२ प्रथम आर्याका नाम.
१६ कितने जनोके साथ दीक्षा लीई.	४३ मोक्ष होनेका स्थान.
१७ दीक्षा कोनसी नगरीमें लीई.	४४ मोक्ष पोहोचनेकी तिथि.
१८ दीक्षा दिने कितना तप.	४५ मोक्ष दिने तप.
१९ प्रथम पारणे क्या आहार मिला	४६ मोक्ष जानेके आसन.
२० प्रथम पारणेका घर.	४७ परस्पर अंतरका मान.
२१ कितने दिनका पारणा.	४८ गण नाम.
२२ दीक्षाकी तिथि.	४९ योनि नाम.
२३ छद्मस्थ पणेका कालमान.	५० मोक्ष परिवार.
२४ किस नगरीमें केवलज्ञान प्राप्त हूया	५१ सम्यक्त्वपायां पीछे महोटे भव.
२५ ज्ञानोत्पत्ति दिने क्या तप.	५२ किस कुलसें उत्पन्न हूया.
२६ किस वृक्षके हेठ दीक्षा लीनी.	५३ गर्भवासका कालमान.
२७ किस तिथिमें ज्ञान उत्पन्न हूया.	

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहेते हैं.

१ श्रीतीर्थंकरनाम.	१ श्रीरुपजदेव.	२श्रीअजितनाथ	३ श्रीसंजवनाथ.
२ चवणतिथि.	आपाढवदि ४	वैशाखशुदि १३	फाल्गुनशुदि ७
३ विमाननाम.	सर्वार्थसिद्धि	विजयविमान	उपरलाग्रैवेयक
४ जन्मनगरी.	विनीताजूमि	अयोध्या	सावत्थी
५ जन्मतिथि.	चैत्रवदि ७	माहशुदि ७	माहशुदि १४
६ पिताका नाम.	नाजिकुलकर	जितशत्रु	जितारि
७ माताका नाम.	मरुदेवी	विजया	सेना
७ जन्मनक्षत्र.	उत्तरापाढा	रोहिणी	मृगशिर
ए जन्मराशि.	धन	वृष	मिथुन
१० लांउननाम.	वृषज	हस्ती	अश्व
११ शरीरमान.	५००) धनुप	४५०)धनुप	४००)धनुष
१२ आयुमान.	७४) लक्षपूर्व	७२)लक्षपूर्व	६०)लक्षपूर्व
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४ पदवी राजकी.	राजपदवी	राजपदवी	राजपदवी
१५ पाणिग्रहण.	विवाह हूया	विवाह हूया	विवाह हूया
१६ कितनेसाथ दीक्षा.	४०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७ दीक्षानगरी.	विनीता	अयोध्या	सावत्थी
१७ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१ए प्रथमपारणेंकाआ०	इक्षुरस	परमान्नक्षीर	परमान्नक्षीर
२० पारणेका स्थान.	श्रेयांसके घरें	ब्रह्मदत्तके घरें	सुरेंद्र दत्तके घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	एकवर्षपीछे	दो दिन पीछे	दो दिन पीछे
२२ दीक्षातिथि.	चैत्रवदि ७	महावदि ए	मागसिरशुदि १५
२३ छद्मस्थकाल.	१०००)वर्ष	१२)वर्ष	१४)वर्ष
२४ ज्ञाननगरी.	पुरिमताल	अयोध्या	सावत्थी
२५ ज्ञानतप.	तीनउपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृक्ष.	वटवृक्ष	सालवृक्ष	प्रियालवृक्ष
२७ ज्ञानतिथि.	फागुणवदि ११	पोषवदि ११	कार्त्तिकवदि ५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	८४)	९५)	१०२)
२९	साधुओंकी संख्या	८४०००)	१०००००)	२०००००)
३०	साधवीयोंकी संख्या	३०००००)	३३००००)	३३६०००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	२०६००)	२०४००)	१९८००)
३२	वादिओंकी संख्या.	१२६५०)	१२४००)	१२०००)
३३	अवधिज्ञानी संख्या.	९०००)	९४००)	९६००)
३४	केवलीसंख्या.	२००००)	२२०००)	१५०००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	१२७५०)	१२५५०)	१२१५०)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	४७५०)	३७२०)	२१५०)
३७	श्रावकसंख्या.	३५००००)	२९८०००)	२९३०००)
३८	श्राविकासंख्या.	५५४०००)	५४५०००)	६३६०००)
३९	शासनयक्षनाम.	गोमुखयक्ष	महायक्ष	त्रिमुखयक्ष
४०	शासनयक्षणी.	चक्रेश्वरी	अजितबला	दुरितारि
४१	प्रथमगणधरनाम.	पुंमरीक	सिंहसेन	चारु
४२	प्रथमआर्यानाम,	ब्राह्मी	फाल्गु	श्यामा
४३	मोक्षस्थान.	अष्टापद	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	माघवदि १३	चैत्रशुदि ५	चैत्रशुदि ५
४५	मोक्षसंलेषणा.	७ उपवास	एक मास	एक मास
४६	मोक्षआसन.	पद्मासन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७	अंतर मान.	५०लाखकोटीसा	३०लाखकोटीसा	१०लाखकोटीसा
४८	गणनाम.	मानवगण	मानवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	नकुलयोनि	सर्प्पयोनि	सर्प्पयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	१००००)	१०००)	१०००)
५१	भवसंख्या.	तेर भव कस्या	तीन भव कस्या	तीन भव कस्या
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	नवमासचारदिन	८मास पच्चीशदि.	नवमास ७दिन

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	४ श्रीअजिनंदन	५श्रीसुमतिनाथ	६ श्रीपद्मप्रज
२	चवणतिथि.	वैशाखशुदि ४	श्रावणशुदि २	माघवदि ६
३	विमाननाम.	जयंतविमान	जयंतविमान	उवरिमग्रैवेयक
४	जन्मनगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंवी
५	जन्मतिथि.	माघशुदि २	वैशाखशुदि ८	कार्त्तिकवदि १२
६	पिताका नाम.	संवरराजा	मेघराजा	श्रीधरराजा
७	माताका नाम.	सिद्धार्था	मंगला	सुसीमा
८	जन्म नक्षत्र.	पुनर्वसु	मघा	चित्रा
९	जन्मराशि.	मिथुन	सिंह	कन्या
१०	लांछनका नाम.	वंदरका	कौंचपक्षीका	पद्मकमलका
११	शरीरमान.	३५०)धनुष	३००)धनुष	२५०)धनुष
१२	आयुमान.	५०)लाखपूर्व	४०)लाखपूर्व	३०)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	रक्तवर्ण
१४	पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितनेसाथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंवी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	नित्य जक्त	एक उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीर	क्षीर	क्षीर
२०	पारणेका स्थान.	इंद्रदत्त घरें	पद्म घरें	सोमदेव घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दोदिन (२)	दोदिन (२)	दोदिन (२)
२२	दीक्षातिथि.	माघशुदि १२	वैशाखशुदि ९	कार्त्तिकवदि १३
२३	छद्मस्थकाल.	अठारहवर्ष	वीशवर्ष	६ मास
२४	ज्ञाननगरी.	अयोध्या	अयोध्या	कौसुंवी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	चोथ जक्त
२६	दीक्षावृक्ष.	प्रियंगु वृक्ष	साल वृक्ष	छत्र वृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पोषवदि १४	चैत्रशुदि ११	चैत्रशुदि १५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८ गणधरसंख्या.	११६)	१००)	१०७)
२९ साधुओंकीसंख्या.	३०००००	३२००००)	३३००००)
३० साधवीयोंकीसंख्या	६३००००)	५३००००)	४२००००)
३१ वैक्रियलब्धिवंत.	१९०००)	१८४००)	१६१००)
३२ वादीओंकीसंख्या.	११०००)	१०४००)	९६००)
३३ अवधिज्ञानीसंख्या.	९८००)	११०००)	१००००)
३४ केवलीसंख्या.	१४०००)	१३०००)	१२०००)
३५ मनःपर्यवसंख्या.	११६५०)	१०४५०)	१०३००)
३६ चौदहपूर्वीसंख्या.	१५००)	२४००)	२३००)
३७ श्रावकसंख्या.	२८८०००)	२८१०००)	२७६०००)
३८ श्राविकासंख्या.	५२७०००)	५१६०००)	५०५०००)
३९ शासन यक्ष नाम.	नायक यक्ष	तुंबरु यक्ष	कुसमय यक्ष
४० शासनयक्षणीनाम.	कालिका	महाकाली	श्यामा
४१ प्रथमगणधरनाम.	वज्रनाभ	चरम	प्रद्योतन
४२ प्रथमआर्यानाम.	अजिता	काश्यपी	रति
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षतिथि.	वैशाखशुदि ८	चैत्रशुदि ९	मागसिरवदि ११
४५ मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग	कायोत्सर्ग
४७ अंतरमान.	एकलाखकोडीसा.	एकहजारकोडीस	एकहजारकोडीसा
४८ गणमान.	देवगण	राक्षसगण	राक्षसगण
४९ योनिनाम.	नागयोनि.	मूषकयोनि	महिषयोनि
५० मोक्षपरिवार.	१०००)	१०००)	३०८)
५१ भवसंख्या.	तीननवकीया	तीननवकीया	तीननवकीया
५२ कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३ गर्भकालमान.	९मास२८दिन	नवमास६दिन	नवमास६दिन

अह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	७श्रीसुपार्श्वनाथ	८ श्रीचंद्रप्रभ	९श्रीसुविधिनाथ
२	चवणतिथि.	भाद्रववदि ८	चैत्रवदि ५	फागणवदि ९
३	विमाननाम.	मध्यिमग्रैवेयक	विजयंत	आनतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	वणारसी नगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकंदीनगरी
५	जन्मतिथि.	ज्येष्ठसुदि १२	पोषवदि १२	मगसिरवदि ५
६	पिताका नाम.	प्रतिष्ठराजा	महासेनराजा	सुग्रीवराजा
७	माताका नाम.	पृथिवीमाता	लक्ष्मणामाता	रामाराणीमाता
८	जन्मनक्षत्र.	विशाखानक्षत्र	अनुराधानक्षत्र	मूलनक्षत्र
९	जन्मराशि.	तुलराशि	वृश्चिकराशि	धनराशि
१०	लांछननाम.	साथीयाकालंछन	चंद्रकालंछन	मगरमछकालंछन
११	शरीरमान.	२००)धनुष	१५०)धनुष	१००)धनुष
१२	आयुमान.	२०)लाखपूर्व	१०)लाखपूर्व	२)लाखपूर्व
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	श्वेतवर्ण	श्वेतवर्ण
१४	पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितनेसाथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	बनारसीनगरी	चंद्रपुरीनगरी	काकंदीनगरी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरकाभोजन	क्षीरकाभोजन	क्षीरका भोजन
२०	पारणेका स्थान.	माहेंद्र घरें	सोमदत्त घरें	पुष्प घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	ज्येष्ठसुदि १३	पोषवदि १३	मगसिरवदि ६
२३	छद्मस्थकाल.	नव मास रह्या	त्रण मास रह्या	चार मास रह्या
२४	ज्ञाननगरी.	वणारसी नगरी	चंद्रपुरी नगरी	काकंदी नगरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	सरीसवृक्ष	नागवृक्ष	सालीवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	फागणवदि ६	फागणवदि ७	कार्त्तिकसुदि ३

यह वावन वोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८	गणधरसंख्या.	(९५)गणधर	(९३)गणधर	८८)गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या.	३०००००)	२५००००)	२०००००)
३०	साधवीयोंकीसंख्या	४३००००)	३८००००)	१२००००)
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	१५३००)	१४०००)	१३०००)
३२	वादिओंकीसंख्या.	८४००)	७६००)	६०००)
३३	अवधिज्ञानीसंख्या	९०००)	८०००)	८४००)
३४	केवलीसंख्या.	११०००)	१००००)	७५००)
३५	मनःपर्यवसंख्या.	९१५०)	८०००)	७५००)
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	२०३०)	२०००)	१५००)
३७	श्रावकसंख्या.	२५७०००)	२५००००)	२२९०००)
३८	श्राविकासंख्या.	४९३०००)	४७९०००)	४७१०००)
३९	शासनयक्षनाम.	मातंगयक्ष	विजययक्ष	अजिता यक्ष
४०	शासनयक्षणीनाम	शांता	भृकुटी	सुतारिका
४१	प्रथमगणधरनाम.	विदर्भ	दिन्न	वराहक
४२	प्रथमआर्यानाम.	सोमा	सुमना	वारुणी
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	फागणवदि ७	भाद्रवावदि ७	भाद्रवाशुदि ९
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतर मान.	९सोकोमीसागर	९०कोमीसागर	९ कोमीसागर
४८	गणनाम.	राक्षसगण	देवगण	राक्षसगण
४९	योनिनाम.	मृगयोनि	मृगयोनि	वानरयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५००)	१०००)	१०००)
५१	भवसंख्या.	तीन भव कीया	तीन भव कीया	तीन भव कीया
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिन१९	मासनवदिनसात	मास८दिनछवीस

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

१ श्रीतीर्थंकरनाम.	१०शीतलनाथ	११ श्रेयांसनाथ	१२ श्रीवासुपूज्य
२ चवणतिथि.	वैशाखवदि ६	ज्येष्टवदि ६	ज्येष्टशुदि ९
३ विमाननाम.	अच्युतदेवलोक	अच्युतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४ जन्मनगरी.	भद्दिलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
५ जन्मतिथि.	महावदि १२	फागणवदि १२	फागणवदि १४
६ पिताका नाम.	दृढरथराजा	विष्णुराजा	वसुपूज्यराजा
७ माताका नाम.	नंदामाता	विष्णुमाता	जयामाता
८ जन्मनक्षत्र.	पूर्वाषाढा	श्रवणनक्षत्र	शतभिषानक्षत्र
९ जन्मराशि.	धनराशि	मकरराशि	कुंभराशि
१० लांछननाम.	श्रीवत्सकालांछन	गेंडाका लांछन	पाडाका लांछन
११ शरीरमान.	नेवुं धनुष	अेंशीधनुष	सीत्तेर धनुष
१२ आयुमान.	एकलाख पूर्व	(८४)लाख वर्ष	(७२)लाख वर्ष
१३ शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	लालवर्ण
१४ पदवी राजकी.	राजा	राजा	कुमार
१५ पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६ कितने साथदीक्षा.	(१०००) साधु	(१०००)साधु	(६००) साधु
१७ दीक्षानगरी.	भद्दिलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
१८ दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९ प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२० पारणेका स्थान.	पुनर्वसुके घरें	नंदके घरें	सुनंदके घरें
२१ कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२ दीक्षातिथि.	महावदि १२	फागणवदि १३	फागणशुदि १५
२३ छद्मस्थकाल.	तीन मासरह्या.	दो मासरह्या	एक मासरह्या
२४ ज्ञाननगरी.	भद्दिलपुर	सिंहपुरी	चंपापुरी
२५ ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६ दीक्षावृक्ष.	प्रियंगुवृक्ष	तंडुकवृक्ष	पाडलवृक्ष
२७ ज्ञानतिथि.	पोषवदि १४	महावदि २	महाशुदि २

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८ गणधरसंख्या.	८१)गणधर	७६)गणधर	६६)गणधर
२९ साधुओंकीसंख्या.	१०००००	८४०००	७२०००
३० साधवीयोंकीसंख्या	१००००६	१०३०००	१०००००
३१ वैक्रियलब्धिवंत.	१२०००	११०००	००००
३२ वादीओंकीसंख्या.	५८००	५०००	४७००
३३ अवधिज्ञानीसंख्या.	७२००	६०००	५४००
३४ केवलीसंख्या.	७०००	६५००	६०००
३५ मनःपर्यवसंख्या.	७५००	६०००	६५००
३६ चौदहपूर्वीसंख्या.	१४००	१३००	१२००
३७ श्रावकसंख्या	२८९०००	२७९०००	२१५०००
३८ श्राविकासंख्या.	४५८०००	४४८०००	४३६०००
३९ शासन यक्ष नाम.	ब्रह्मायक्ष	जक्षेटयक्ष	कुमारयक्ष
४० शासनयक्षिणीनाम	अशोका	मानवी	चंडा
४१ प्रथमगणधरनाम.	नंद	कछप	सुभूम
४२ प्रथमआर्यानाम.	सुयशा	धारणी	धरणी
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	चंपापुरी
४४ मोक्षतिथि.	वैशाखवदि २	श्रावणवदि ३	आषाढशुदि १४
४५ मोक्षसंलेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७ अंतरमान.	एककोडीसागर	चोपनसागर	त्रीशसागर
४८ गणनाम.	मानवगण	देवगण	राक्षसगण
४९ योनिनाम.	नकुलयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
५० मोक्षपरिवार.	१०००)परिवार	१०००)परिवार	६००)परिवार
५१ भवसंख्या.	तीन भव कख्या	तीन भव कख्या	तीन भव कख्या
५२ कुलगोत्रनाम.	इक्षागकुल	इक्षागकुल	इक्षागकुल
५३ गर्भकालमान.	मासनव दिन ८	मास नव दिन ८	मास ८ दिन२०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१३ विमलनाथ	१४अनंतनाथ	१५श्रीधर्मनाथ
२	चवणतिथि.	वैशाखशुदि १२	श्रावणवदि ७	वैशाखशुदि ७
३	विमाननाम.	सहसारदेवलोक	प्राणतदेवलोक	विजयविमान
४	जन्मनगरी.	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरीनगरी
५	जन्मतिथि.	महाशुदि ३	वैशाखवदि१३	महाशुदि ३
६	पिताका नाम.	कृतवर्मराजा	सिंहसेनराजा	भानुराजा
७	माताका नाम.	श्यामामाता	सुयशामाता	सुव्रतामाता
८	जन्म नक्षत्र.	उत्तराभाद्रपद	रेवतीनक्षत्र	पुष्यनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मीनराशि	मीनराशि	कर्कराशि
१०	लांछनका नाम.	वराहका लांछन	सिचाणाका लां०	वज्र लांछन
११	शरीरमान.	शाठ धनुष	पचाशधनुष	पीस्तालीशधनुष
१२	आयुमान.	शाठलाखवर्ष	त्रीशलाखवर्ष	दशलाखवर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी.	राजा	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथदीक्षा.	१०००)साधु	१०००)साधु	१०००)साधु
१७	दीक्षानगरी.	कंपिलपुर	अयोध्या	रत्नपुरी
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारणेका स्थान.	जयराजाकेघरें	विजयराजाकेघरें	धनसिंहके घरें
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	महाशुदि ४	वैशाखवदि१४	महाशुदि १३
२३	छद्मस्थकाल.	दो मास	तीन वर्ष	दो वर्ष
२४	ज्ञाननगरी.	कंपिलपुरी	अयोध्या	रत्नपुरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	जंबूवृक्ष	अशोकवृक्ष	दधिपर्णवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पोषशुदि ६	वैशाखवदि १४	पोषशुदि१५

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं

२८ गणधरसंख्या.	५७)गणधर	५०) गणधर	४३)गणधर
२९ साधुओंकी संख्या.	६८०००)	६६०००)	६४०००)
३० साधवीयोंकीसंख्या	१००८००)	६२०००)	६२४००)
३१ वैक्रियलब्धिवंत.	९०००)	८०००)	७०००)
३२ वादिओंकीसंख्या.	३६००)	३२००)	२८००)
३३ अवधिज्ञानीसंख्या.	४८००)	४३००)	३६००)
३४ केवलीसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३५ मनःपर्यवसंख्या.	५५००)	५०००)	४५००)
३६ चौदहपूर्वीसंख्या.	११००)	१०००)	९००)
३७ श्रावकसंख्या.	२०८०००)	२०६०००)	२०४०००)
३८ श्राविकासंख्या.	४२४०००)	४१४०००)	४१३०००)
३९ शासनयक्षनाम.	षण्मुखयक्ष	पातालयक्ष	किन्नरयक्ष
४० शासनयक्षिणी.	विदिता	अंकुशा	कंदर्प्पा
४१ प्रथमगणधरनाम.	मंदरगणधर	जस गणधर	अरिष्ट
४२ प्रथमआर्यानाम.	धरा	पद्मा	आर्यशिवा
४३ मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४ मोक्षतिथि.	आपाढवदि ७	चैत्रशुदि ५	ज्येष्ठशुदि ५
४५ मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६ मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७ अंतर मान,	नवसागरोपम	चारसागरोपम	तीनसागरोपम
४८ गणनाम.	मानवगण	देवगण	देवगण
४९ योनि नाम.	छागयोनि	हस्तियोनि	मंजारयोनि
५० मोक्षपरिवार.	६००)	७००)	१०८)
५१ भवसंख्या.	तीनभवकरया	तीनभवकरया	तीनभवकरया
५२ कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३ गर्भकालमान.	मास ८ दिन २१	मासनवदिन ७	मास८दिनछवीश

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थकरोमें कहते हैं

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१६श्रीशांतिनाथ	१७श्रीकुंथुनाथ	१८श्रीअरनाथ
२	चवणतिथि.	भाद्रवावदि ७	श्रावणवदि ९	फागणशुदि २
३	विमाननाम.	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध	सर्वार्थसिद्ध
४	जन्मनगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
५	जन्मतिथि.	ज्येष्टवदि १३	वैशाखवदि १४	मागशिरशुदि१०
६	पिताका नाम.	विश्वसेन	सूरराजा	सुदर्शन
७	माताका नाम.	अचिराराणी	श्रीराणी	देवीराणी
८	जन्मनक्षत्र.	भरणीनक्षत्र	कृत्तिकानक्षत्र	रेवतीनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मेषराशि	वृषराशि	मीनराशि
१०	लांछननाम.	हरिणकालांछन	बकराका लांछन	नंदावर्तकालांछन
११	शरीरमान.	४० धनुष	३५ धनुष	३० धनुष
१२	आयुमान.	एकलाखवर्ष	(९५०००)वर्ष	(८४०००) वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण	सुवर्णवर्ण
१४	पदवीराजकी.	चक्रवर्त्ती	चक्रवर्ती	चक्रवर्त्ती
१५	पाणिग्रहण.	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री	(६४०००) स्त्री
१६	कितनेसाथदीक्षा.	(१०००) साधु	(१०००) साधु	(१०००) साधु
१७	दीक्षानगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारणेका स्थान.	सुमित्रघरें	व्याघ्रसिंहघरें	अपराजितघरें
२१	कितने दिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	ज्येष्टवदि १४	चैत्रवदि ५	मागसिरशुदि११
२३	छद्मस्थकाल.	एकवर्ष	शोलवर्ष	तीनवर्ष
२४	ज्ञाननगरी.	गजपुर	गजपुर	गजपुर
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	नंदीवृक्ष	भीलकवृक्ष	आंबाकावृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	पोषशुदि ९	चैत्रशुदि ३	कार्त्तिकशुदि१२

यह वावन वोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं.

२८	गणधरसंख्या.	३६ गणधर	३५ गणधर	३३ गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या	६२०००	६००००	५००००
३०	साधवीयोंकीसंख्या	६१६००	६०६००	६००००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	६०००	५१००	७३००
३२	वादिओंकीसंख्या.	२४००	२०००	१६००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	३०००	२५००	२६००
३४	केवलीसंख्या.	४३००	३२००	२८००
३५	मनःपर्यवसंख्या.	४०००	३३४०	२५५१
३६	चौदपूर्वीसंख्या.	८००	६७०	६१०
३७	श्रावकसंख्या.	१९००००	१७९०००	१८४०००
३८	श्राविकासंख्या.	३९३०००	३८१०००	३७२०००
३९	शासनयक्षनाम.	गरुडयक्ष	गंधर्वयक्ष	यक्षेदयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम	निर्वाणी	वला	धणा
४१	प्रथमगणधरनाम.	चक्रयुध	सांव	कुंभ
४२	प्रथमआर्यानाम.	सुचि	दामिनी	रक्षिता
४३	मोक्षस्थान.	समेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	ज्येष्टवदि १३	वैशाखवदि १	मागशिरशुदि १०
४५	मोक्षसंलेपणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतरमान.	०॥पल्यापम	०। पल्योपम	१००० क्रोडवर्ष
४८	गणनाम.	मानवगण	राक्षसगण	देवगण
४९	योनिनाम.	हस्तियोनि	छागयोनि	हस्तियोनि
५०	मोक्षपरिवार.	९०० परिवार	१००० परिवार	१००० परिवार
५१	भवसंख्या.	बारांभव करया	तीनभव करया	तीनभव करया
५२	कुलगोत्रनाम.	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल	इक्ष्वागकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिनछ	मासनवदिनपांच	मासनवदिन ८

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	१९ श्रीमल्लीनाथ	२० श्रीमुनिसुव्रत	२१ श्रीनमीनाथ
२	च्यवतिथि.	फागुणशुदि ४	श्रावणशुदि १५	आशोशुदि १५
३	विमाननाम.	जयंतविमान	अपराजितविमा	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
५	जन्मतिथि.	मागशिरशुदि ११	ज्येष्टवदि ८	श्रावणवदि ८
६	पिताका नाम.	कुंजराजा	सुमित्रराजा	विजयराजा
७	माताका नाम.	प्रभावती	पद्मावती	विप्राराणी
८	जन्मनक्षत्र.	अश्विनीनक्षत्र	श्रवणनक्षत्र	अश्विनीनक्षत्र
९	जन्मराशि.	मेषराशि	मकरराशि	मेषराशि
१०	लांछननाम.	कलशका लांछन	कछपका लांछन	कमलका लांछन
११	शरीरमान.	पचीशधनुष	वीशधनुष	पंदरधनुष
१२	आयुमान.	५५०००) वर्ष	३००००) वर्ष	१००००) वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	नीलावर्ण	श्यामवर्ण	पीलावर्ण
१४	पदवी राजकी.	कुमार	राजा	राजा
१५	पाणिग्रहण.	नहीं परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा.	३००) साधु	१०००) साधु	१०००) साधु
१७	दीक्षानगरी.	मिथिलानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
१८	दीक्षातप.	तीन उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारणेका स्थान	विश्वसेन	ब्रह्मदत्त	दिन्नकुमार
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दिन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	मागशिरशुदि ११	फागणशुदि १२	आषाढवदि ९
२३	छद्मस्थकाल.	एक अहोरात्र	इग्यार मास	नव मास
२४	ज्ञाननगरी.	मथुरानगरी	राजगृहीनगरी	मथुरानगरी
२५	ज्ञानतप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	अशोकवृक्ष	चंपकवृक्ष	बकुल वृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	मागशिरशुदि ११	फागणवदि १२	मागशिरशुदि ११

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोंमें कहते हैं.

२८	गणधरसंख्या.	२८) गणधर	१८) गणधर	१७) गणधर
२९	साधुओंकीसंख्या.	४००००	३००००	२००००
३०	साध्वीयोंकीसंख्या	५५०००	५००००	४१०००
३१	वैक्रियलब्धिवंत.	२९००	२०००	५०००
३२	वादिओंकीसंख्या.	१४००	१२००	१०००
३३	अवधिज्ञानीसंख्या.	२२००	१८००	१६००
३४	केवलीसंख्या.	२२००	१८००	१६००
३५	मनःपर्यवसंख्या.	१७५०	१५००	१२५०
३६	चौदहपूर्वीसंख्या.	६६८	५००	४५०
३७	श्रावकसंख्या.	१८३०००	१७२०००	१७००००
३८	श्राविकासंख्या.	३७००००	३५००००	३४८०००
३९	शासनयक्षनाम.	कुबेरयक्ष	वरुणयक्ष	भृकुटीयक्ष
४०	शासनयक्षिणीनाम.	धरणप्रिया	नरदत्ता	गंधारी
४१	प्रथमगणधरनाम.	अभीक्षकगणधर	मल्लीगणधर	शुभगणधर
४२	प्रथमआर्यानाम.	बंधुमती	पुष्पमती	अनिला
४३	मोक्षस्थान.	सम्मेतशिखर	समेतशिखर	समेतशिखर
४४	मोक्षतिथि.	फागुणसुदि १२	ज्येष्ठवदि ९	वैशाखवदि १०
४५	मोक्षसंलेषणा.	एकमास	एकमास	एकमास
४६	मोक्षआसन.	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग	काउस्सग्ग
४७	अंतरमान.	५४००००० वर्ष	६००००० वर्ष	५०००००) वर्ष
४८	गणनाम.	देवगण	देवगण	देवगण
४९	योनि नाम.	अश्वयोनि	वानरयोनि	अश्वयोनि
५०	मोक्षपरिवार.	५०० परिवार	१००० परिवार	१००० परिवार
५१	स्तवसंख्या.	तीनतत्त्वकथ्या	तीनतत्त्वकथ्या	तीनतत्त्वकथ्या
५२	कुलोत्पत्तिनाम.	इक्ष्वागवंशकुल	हरिवंशकुल०	इक्ष्वागवंशकुल
५३	गर्भकालमान.	मासनवदिनमान	मासनवदिन ८	मासनवदिनमान

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

१	श्रीतीर्थंकरनाम.	२२श्रीनेमिनाथ	२३ श्रीपार्श्वनाथ	२४ श्रीमहावीर.
२	चवणतिथि.	कार्त्तिकवदि १२	चैत्रवदि ४	आषाढशुदि ६
३	विमाननाम.	अपराजित	प्राणतदेवलोक	प्राणतदेवलोक
४	जन्मनगरी.	सौरीपुर	बणारसी	क्षत्रीकुंड
५	जन्मतिथि.	श्रावणशुदि ५	पौषवदि १०	चैत्रवदि १३
६	पिताका नाम.	समुद्रविजय	अश्वसेन	सिद्धार्थराजा
७	माताका नाम.	शिवा देवी	वामादेवी	त्रिशलादेवी
८	जन्मनक्षत्र.	चित्रानक्षत्र	विशाखानक्षत्र	उत्तराफाल्गुनी
९	जन्मराशि.	कन्याराशि	तुलराशि	कन्याराशि
१०	लंछननाम.	शंखलंछन	सर्पलंछन	केशरीलंछन
११	शरीरमान.	दश धनुष	नव हाथ	सात हाथ
१२	आयुमान.	हजार वर्ष	शो वर्ष	बहोंत्तेर वर्ष
१३	शरीरका वर्ण.	श्यामवर्ण	नीलावर्ण	पीलावर्ण
१४	पदवी राजकी.	कुमारपदवी	कुमारपदवी	कुमारपदवी
१५	पाणिग्रहण.	नहीं परण्या	परण्या	परण्या
१६	कितने साथ दीक्षा.	१०००)साधु	३००) साधु	एकाकी दीक्षा
१७	दीक्षानगरी.	सौरीपुर	बणारसी	क्षत्रीकुंड
१८	दीक्षातप.	दो उपवास	दो उपवास	दो उपवास
१९	प्रथमपारणेकाआ०	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन	क्षीरभोजन
२०	पारणेका स्थान.	वरदिन्न	धन्यनाम	बहुलब्राह्मण
२१	कितनेदिनकापारणा	दो दीन	दो दिन	दो दिन
२२	दीक्षातिथि.	श्रावणशुदि ६	पौषवदि ११	मागसिरवदि ११
२३	छद्मस्थकाल.	चोपनदिन	चोरासीदिन	बारां वर्ष
२४	ज्ञाननगरी.	गिरनार	बणारसी	ऋजुबालुकानदी
२५	ज्ञानतप.	तीन उपवास	तीन उपवास	दो उपवास
२६	दीक्षावृक्ष.	वेतसवृक्ष	धातकीवृक्ष	सालवृक्ष
२७	ज्ञानतिथि.	आसोवदि ०)	चैत्रवदि ४	वैशाखशुदि १०

यह बावन बोल प्रत्येक तीर्थंकरोमें कहते हैं.

२८ गणधरसंख्या.	११)गणधर	१०) गणधर	११)गणधर
२९ साधुओंकीसंख्या.	१८०००)	१६०००)	१४०००)
३० साध्वीयोंकीसंख्या	४००००)	३८०००)	३६०००)
३१ वैक्रियलब्धियंत.	१५००)	११००)	७००)
३२ वादियोंकीसंख्या.	८००)	६००)	४००)
३३ अवधिज्ञानीसंख्या.	१५००)	१०००)	१३००)
३४ केवलीसंख्या.	१५००)	१०००)	७००)
३५ मनःपर्यवसंख्या.	१०००)	७५०)	५००)
३६ चौदहपूर्वीसंख्या.	४००)	३५०)	३००)
३७ श्रावकसंख्या.	१६९०००)	१६४०००)	१५९०००)
३८ श्राविकासंख्या.	३३६०००)	३३९०००)	३१८०००)
३९ शासनयक्षनाम.	गोमेधयक्ष	पार्श्वयक्ष	मातंगयक्ष
४० शासनयक्षिणीनाम.	अंबिका	पद्मावती	सिद्धायिका
४१ प्रथमगणधरनाम.	वरदत्त	आर्यदिन्न	इंद्रभूति
४२ प्रथमआर्यानाम.	यक्षदिन्ना	पुष्पचूला	चंदनबाला
४३ मोक्षस्थान.	गिरनार	समेतशिखर	पावापुरी
४४ मोक्षतिथि.	आषाढसुदि८	श्रावणसुदि ८	कार्त्तिकवदि०)
४५ मोक्षसंलेखना.	एकमास	एकमास	दोउपवास कथ्या
४६ मोक्षआसन.	पद्मासन	काउस्सग्ग	पद्मासन
४७ अंतरमान	८३७५०)वर्ष	२५०) वर्ष	चर्मजिनेश्वर
४८ गणनाम	राक्षसगण	राक्षसगण	मानवगण
४९ योनि नाम.	महिषयोनि	मृगयोनि	महिषयोनि
५० मोक्षपरिवार.	५३६)परिवार	३३)परिवार	एकाकी आप
५१ व्रतसंख्या.	नव नव कन्या	दश नव कन्या	सनार्वाशनव क०
५२ कुलगोत्रनाम.	हरिवंश	इक्ष्वाककुल	इक्ष्वाककुल
५३ गर्भकालमान.	मासनव दिन ८	मास नव दिन ७	मासनवदिन ७॥

इस यंत्रके अनुसार एकैक तीर्थंकरके साथ वावन वावन वोलका संवंध जान लेनां. इनमेंसूं मातादिक कितनेक द्वार जो प्रथम न्यारे लिखे गये हैं, सो व्युत्पत्तिके कारणसें लिखे हैं.

इन चोवीश तीर्थंकरोंमें नववां, दशवां, इग्यारवां, वारवां, तेरवां, चौंदवां अरु पंदरवां, ए सात तीर्थंकरोके निर्वाण हुवा पीछें इन सातोंका शासन जो द्वादशांग वाणीरूप शास्त्र अरु साधु तथा साधवि, श्रावक, औ श्राविका. ए चतुर्विध श्रीसंघरूप तीर्थ सो कितनेक काल तांइ प्रवृत्त होकर पीछेसें व्यवछेद गया, तव तो भारत वर्षमें जैन मतका नामभी न रहा था, तवहीसें अनेक मत मतांतर और कुशास्त्रोंकी प्रायें प्रवृत्ति भयी सो अवतांइ होतीही चली जाती है, वहुत लोकोने स्वकपोल कल्पित शास्त्र वना करकें पूर्व मुनि, वा ऋषि, वा ईश्वरप्रणीत प्रसिद्ध करे हैं औसे तीनसो त्रेशठ मत प्रवृत्त कर दीये अरु आर्य चारों वेद व्यवछेद हो गये अरु नवीन वेद वना लीये उन नवीनोकोंभी कइ वार लोकोने नवी नवी रचनासें वना कर उलट पुलट कर दीये जो कुछ वन वनाके शेष रहे उनकीभी अनेक तरेंके भाष्य, टीका, दीपिका रच कर अर्थोंकी गरु वरु कर दीनी सो अवतांइ करतेही चले जाते हैं; ए सर्व स्वरूप जहां वेदोंकी उत्पत्ति लिखेंगे तहां स्पष्ट करके लिखेंगे. वेद जो नाम है सोतो वहुत प्राचीन कालसें है, अरु जिन पुस्तकोंका नाम वेद अव प्रसिद्ध है सो पुस्तक प्राचीन नहीं है, इसका प्रमाण आगें चलके लिखेंगे ॥ इति श्री तपगछीये मुनि श्री वुद्धिविजय शिष्य मुनि आनंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्वादर्शे प्रथमः परिछेदः सम्पूर्णः ॥ १ ॥

॥ अथ द्वितीयः परिछेद प्रारंभः ॥

अव दूसरे परिछेदमें कुदेवका स्वरूप लिखते हैं, कुदेव उसकुं कहते हैं जो भगवान् तो नहीं परंतु लोकोंने अपनी वुद्धिसें परमेश्वरका आरोप कर लीया है सो कुदेवका स्वरूप तो उक्त देव स्वरूपसें विपर्यय सर्व वुद्धिमान् आपही जान लेंगे, परंतु विस्तारसें लिखाही जो समझ सके हैं तिनोंके तांइ लिखते हैं.

॥श्लोक॥ ये स्त्रीशस्त्राक्षसूत्रादि, रागाद्यंककलंकिताः ॥ निग्रहानुग्रहपरा,

स्तेदेवास्युर्न मुक्तये ॥ १ ॥ नाट्याट्टहाससंगीता, द्युपप्लवविसंस्थुलाः ॥ लं जयेयुः पदं शांतं, प्रपन्नान्प्राणिनः कथं ॥२॥ इति योगशास्त्रे ॥ अस्यार्थः॥ जिस देवके पास स्त्री होवे तथा तिसकी प्रतिमाके पास स्त्री होवे क्युंकि जैसा पुरुष होता है उसकी मूर्त्तिजी प्रायें वैसीही होती है. आज काल सर्व चित्रोंमें वैसाही देखनेमें आता है, सो मूर्त्ति द्वारा देवकाजी स्वरूप प्रगट हो जाता है. इस कारणें मूर्त्तिद्वारा तथा मतावलंबी पुरुषोंके ग्रंथानु सार समझ लेनां. तथा शस्त्र, धनुष्य, चक्र, त्रिशूलादि जिसके पास होवे तथा अक्षसूत्र, जपमाला, आदि शब्दसें कमंडल प्रमुख होवे, फेर कैसा वो देव होवे ? राग द्वेषादि दूषणोंका जिनमें चिन्ह होवे अरु स्त्रीकूं जो पास रखेगा वो जरूर कामी और स्त्रीसें जोग करनेवाला होगा, इस्से अधिक रागी होणेका दूसरा कोनसा चिन्ह है ? इसी काम रागके वश होकर कुदेवोंने परस्त्री, स्वस्त्री, बेटी, माता, बहिन, अरु पुत्रकी वधू प्र मुखसे अनेक कामक्रीडा कुचेष्टा करी है.

अब जो पुरुष मात्र होकर परस्त्री गमन करता है उसकूं आज कालके मतावलंबीयोमेंसें कोइजी अछा नहीं कहता, तो फेर परमेश्वर हो कर जो परस्त्रीसें काम कुचेष्टा करे, तो उसके कुदेव होनेमें कोइजी बुद्धिमान् शं का नहीं कर सक्ता; जो आपणी स्त्रीसें काम सेवन करता है औ परस्त्री का त्यागी है उसकूंजी परस्त्रीका त्यागी, धर्मी गृहस्थ, लोक कह सके हैं, परंतु उसको मुनि वा ऋषि वा ईश्वर कजी नहीं कहेंगे क्युंकि जो आप ही कामाग्निके कुंडमें प्रज्ज्वलित हो रहा है तिसमें कजी ईश्वरता नहीं हो सक्ती, इस हेतुसें जो रागरूप चिन्ह करी संयुक्त है, सो कुदेव है पुनः जो द्वेषके चिन्ह करी संयुक्त है वोजी कुदेव है. द्वेषके चिन्ह शस्त्रा दि धारण करणां क्युं के जो शस्त्र, धनुष, चक्र, त्रिशूल प्रमुख रखेगा उस ने अवश्य किसी वैरीकुं मारणा है, नहींतो शस्त्र रखणेसें क्या प्रयोजन है? तो जिसकूं वैर विरोध लगा हुवा है सो परमेश्वर नहीं हो. जो ढाल वा खड्ग रखेगा यह जयकरी अवश्य संयुक्त होगा अरु जो आप ही जय संयु क्त है तो उसकी सेवा करनेसें हम निर्जय कैसें हो सके है? इस हेतुसें द्वेष संयुक्तकों कौन बुद्धिमान्, परमेश्वर कह सक्ता है? परमेश्वर जो है सो तो वीतराग है अरु जो राग द्वेष करी संयुक्त है सो कुदेव है.

तथा जिसके हाथमें जपमाला है, सो असर्वज्ञताका चिन्ह है जेकर सर्वज्ञ होता तो मालाके मणिकियों विना भी जपकी संख्या कर सक्ता, अरु जो जपको करता है, सोभी अपणेसें उच्चका करता है, तो परमेश्वरसें उच्च कौन है जिसका वो जप करता है ? इस हेतुसें जो मालासें जप करता है सो कुदेव है.

तथा जो शरीरकूं भस्म लगाता है, औ धूणी तापता है, नंगा होकर कुचेष्टा करता है; भांग, अफीम, धतूरा, मदिरा प्रमुख पीता है तथा मांसादि अशुद्ध आहार करता है; वा हस्ती, ऊंट, बैल, गर्दभ प्रमुखकी जो असवारी करता है सोभी कुदेव है, क्युंकि जो शरीरको भस्म लगाता है, अरु जो धूणी तापता है सो किसी वस्तुकी इछा वाला है, सो जिसका अभीतक मनोरथ पूरा नहीं हूआ सो परमेश्वर नहीं वो तो कुदेव है.

अरु जो नशे, अमलकी चीजें खाता पीता है, सो तो नशेके अमलमें आनंद और हर्ष ढूंढता है, अरु परमेश्वर तो सदा आनंद औ सुखरूप है, परमेश्वरमें वो कौनसा आनंद नहीं था जो नशा पीनेसें उसकूं मिलता है ? इस हेतुसें नशा पीने वाला अरु मांसादि अशुभ आहार करनेवाला जो है सो कुदेव है.

और जो असवारी है सो परजीवोंकूं पीडाका कारण है, अरु परमेश्वर तो दयालु है, सो पर जीवोंकूं पीडा कैसें देवे ? इस हेतुसें जो असवारी करे, सो कुदेव है.

और जो कमंडल रखता है, सो शुचि होणेके कारण रखता है अरु परमेश्वर तो सदाही पवित्र है उनकूं कमंडलसें क्या काम है ?

यतः ॥श्लोक॥ स्त्रीसंगः काममाचष्टे, द्वेषं चायुधसंग्रहः ॥व्यामोहं चाक्षसूत्रादि, रशौचं च कमंडलुः ॥ १ ॥ अर्थ—स्त्रीका जो संग है सो कामकूं कहता है, शस्त्र जो है सो द्वेषकूं कहता है. जपमाला जो है सो व्यामोहकूं कहती है. अरु कमंडलु जो है सो अशुचिपणेकूं कहता है तथा निग्रह जो (जिसके उपर क्रोध करे) तिसकूं वध, बंधन, मारण, रोगी, शोकी, अतीष्ट वियोगी, नरकपात, निर्धन, हीन, दीन, क्षीण करे, सोभी कुदेव है. और जो जिसके उपरि अनुग्रह (तुष्मान) होवे तिसकूं इंद्र, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, महामंडलिक, मंडलिकादिकोंको राज्यादि पदवीका वर देवे तथा

सुंदर स्वर्गसदृश स्त्रीका संयोग, पुत्र परिवारादिकोंका संयोग जो करे, सो कुदेव है, क्युंकि जो ऐसा रागी द्वेषी है वो मोक्षके तांइ कदी नहीं हो सक्ता, सो तो भूत, प्रेत, पिशाचादिकोंकी तरें क्रीडाप्रिय देवता मात्र है. ऐसा देव अपने सेवकोंकूं कैसें मोक्ष दे सक्ता है? आपही यदि वो रागी, द्वेषी, कर्म परतंत्र है, तो सेवकोंका क्या कार्य सार सक्ता है? इस हेतुसें वोभी कुदेव है.

पुनः कुदेवके लक्षण लिखते हैं. जो नाद, नाटक, हास्य, संगीत, इनके रसमें मग्न है वाचंत्र (बाजा) बजाता है अरु आप नृत्य करता है तथा औरोंको नचाता है, आप हसता अरु कूदता है, विषयी रागोंकों गाता है, अरु संगीन बोलता है इत्यादिक मोहकर्मके वश संसारकी चेष्टा करता है, स्वभाव जिसका अस्थिर हो रहा है, जो आपही ऐसा है तो फेर सेवकोंकूं शांतिपद कैसें प्राप्त कर सक्ता है? जैसें एरंडवृक्ष कल्पवृक्षकी तरें इच्छा नहीं पूर सक्ता, किसी मूढ पुरुषने जो एरंडकूं कल्पवृक्ष मान लीया तो क्या वो कल्पवृक्षका सारा काम दे सक्ता है? ऐसेंही किसी मिथ्यादृष्टि पुरुषने जो कुदेवकूं परमेश्वर मान लीया तो क्या वो परमेश्वर हो सक्ता है? कदी नहीं सक्ता. इसी वास्ते प्रथम परिछेदमें जो लक्षण परमेश्वरके लिखे हैं तिनही लक्षणों वाला परमेश्वर देव है शेष सर्व कुदेव हैं.

प्रश्नः—हमने तो ऐसा सुन रक्खा है जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते, उनका जो मत है, सो अनीश्वरीय है और तुमने तो प्रथम परिछेदमें कह जगे अर्हंत भगवंत परमेश्वर लिखा है अरु प्रथम परिछेद तो भगवान्‌के स्वरूपकथनमें समाप्त किया है, यह कैसें संभव हो सक्ता है?

उत्तरः—हे भव्य! जे केइ कहते हैं कि जैनमतावलंबी ईश्वरको नहीं मानते ऐसा कहना उनका मिथ्या है. उनोंने कदी जैनमतका शास्त्र पढा या सुना न होगा तथा किसी बुद्धिमान् जैनीका संसर्गभी न करा होगा, जेकर जैनमतका शास्त्र पढा वा सुना होता तो कदी ऐसा न कहता, जो जैनी ईश्वरको नहीं मानते. जेकर जैनी ईश्वरको न मानते तो यह जो श्लोक लिखे जाते हैं, सो किसकी स्तुतिके हैं ॥श्लोकः॥ त्वामव्ययं विभुमचिंत्यमसंख्यमाद्यं, ब्रह्माणमीश्वरमनंतमनंगकेतुम् ॥ योगीश्वरं विदितयोगमनेकमेकं, ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदंति संतः ॥१॥ व्याख्याः—हे जिन! (संतः) सत्पुरुष (त्वां) तेरे प्रति (अव्ययं) अव्यय (प्रवदंति) कहते हैं, अव्यय व्ययकूं जो न प्राप्ति होवे

सो द्रव्यार्थ नयके मतसें अव्यय तीनो कालोंमें एक स्वरूप है. विभाति–शोभता है परमेश्वर पणा करी सो (विभु) अथवा विभवति–समर्थ होवे कर्मोन्मूलन करकें सो (विभु) अथवा इंद्रादिक देवताओंका जो स्वामी सो विभु, सत्पुरुष इस वास्ते तुजकूं विभु कहते हैं. पुनः कैसें तुजकुं? (अचिंत्यं) अध्यात्म ज्ञानीभी तुजकूं चिंतवन करनेकूं समर्थ नहीं. फेर कैसें तुजकूं? (असंख्यं) गुणाकी संख्या (गिणती) नहीं कि इतने गुण है भगवान्में इस हेतुसें सत्पुरुष तुजकूं असंख्य कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (आद्यं) आदिमें जो होवे सर्व लोक व्यवहारके प्रवर्त्तावणेसें संत तेरेकूं आद्य कहते हैं, अथवा अपने तीर्थकी आदि करणेसें आद्यं. फेर कैसें तुजकूं? (ब्रह्माणं) अनंत आनंद करी जो सर्वसें अधिक वृद्धि वाला है सो ब्रह्म, सत्पुरुष तुजकूं ब्रह्म कहते हैं. फेर कैसें तुजकूं? (ईश्वरं) सर्व देवताओंमें ठाकुर कहते है. फेर कैसें तुजकूं? (अनंतं) अनंत ज्ञान दर्शनके योगतें अनंत अथवा नही है अंत जिसका सो अनंत कहते हैं अथवा अनंत चारों करी संयुक्त १ अनंतज्ञान, २ अनंतवल, ३ अनंतसुख, ४ अनंतजीवन, सो अनंत कहते हैं. फेर कैसे तुजकूं? (अनंगकेतुं) कामदेवकूं केतुके उदय समान नाशकारक सो अनंगकेतु कहेते हैं अथवा नहीं है अंग औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस, कार्मण शरीर रूपी चिन्ह जिसके सो अनंगकेतु. भविष्य नैगमके मत करी कहते है. फेर कैसें तुजकूं? (योगीश्वरं) योगी जो चार ज्ञानके धरनारे तिनोंका ईश्वर कहते हैं. फिर कैसे तुजकूं? (विदितयोगं) जाण्या है सम्यक् ज्ञानादिरूप जिसने अथवा योगो(ध्यानादि जाण्या है जिसने) अथवा विशेष करके दितः खंडित कीया है कर्मका संयोग जीवके साथ जिसने सो विदितयोग कहते हैं, फेर कैसे तुजकूं? (अनेकं) ज्ञान करकें सर्वगत होनेसें अथवा अनेक सिद्धांके एकत्र रहनेसें अथवा गुण पर्यायकी अपेक्षा करकें अथवा ऋषभादि व्यक्ति भेदसें अनेक कहते हैं. फिर कैसे तुजकूं? (एकं) अद्वितीय उत्तमोत्तम अथवा जीव द्रव्यापेक्षया एक कहते हैं. फेर कैसे तुजकूं? (ज्ञानस्वरूपं) ज्ञान क्षायिक केवल है स्वरूप जिसका सो ज्ञानस्वरूप कहते है. फेर कैसे तुजकूं? (अमलं) नहीं है अष्टादश दोपरूप मल जिसके सो अमल कहते है, ए पूर्वोक्त पंदरा विशेषण ईश्वरके मतांतरोमें प्रसिद्ध है.

तथा ॥श्लोक॥"बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चितबुद्धिबोधात्, त्वं शंकरोसि भुवन त्रयशंकरत्वात् ॥ धातासि धीर शिवमार्गविधेर्विधानात्, व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोसि ॥ २ ॥ अर्थः—हे विबुधार्चित! विबुध जो देवताओं करी पूजित सातो सुगतामेसें कोइएक सुगत, तिसकूं बुद्ध कहीयें, सो बुद्ध तुंही है, किस कारणसें? धर्मबुद्धि प्रगट करणेसें फेर तूं शंकर है किस कारणसें? तीन भुवनमें शं जो सुख करे सो शंकर. हे धीर! त्वं धाता (ब्रह्मा है) किस कारणसें? शिव मोक्ष तिसका मार्ग जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र रूप तिसकी विधि करणे सें तुं विधाता है. हे भगवन्! तुं व्यक्त प्रगट पुरुषोमें उत्तम है ॥२॥ इत्यादि लाखों श्लोक परमेश्वरकी स्तुतिके है, जे कर जैनी ईश्वरकों न मानते तो इन श्लोकोसें उनोने किसकी स्तुति करी है? इस कारणसें जो कहते हैं कि जैनी लोग ईश्वरकूं नहीं मानते, वे प्रत्यक्ष मृषावादी हैं.

प्रश्नः—बहुत अच्छा हूआ जो मेरे मनका संशय दूर हूआ. परंतु एक बातका संशय मेरे मनमें है, जो तुमने ईश्वर तो मान्या परंतु जगत्का कर्त्ता ईश्वर जैनमतमें तुमनें मान्या है वा नहीं?

उत्तरः—हे भव्य! जगत्का कर्त्ता जो ईश्वर सिद्ध हो जावे तो जैनी क्युं नहीं माने? परंतु सर्व वस्तुका कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता.

प्रश्नः—जे कर किसी प्रमाणसें ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध नहीं होना तो (१) नवीन वेदांती (२) नैयायिक, (३) वैशेषिक, (४) पातांजल, (५) नवीन सांख्य, (६) ईसाइ, (७) मुसलमान प्रमुख अनेक मतावलंबी पुरुष ईश्वरको जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता मानते है क्या इनमेसूं कोइभी ईश्वरकूं जगत्का कर्त्तापणामें निषेध करनेवाला समज वार न भया?

उत्तरः—हे भव्य! (१) जैन, (२) बौद्ध, (३) प्राचीन सांख्य, (४) पूर्वमीमांसाकारक जैमनीय मुनिके संप्रदायी भट्ट प्रभाकर इत्यादिक अनेक मतावलंबीयोमेंसें कोइभी समजवार न भया जो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता स्थापन करता.

प्रश्नः—जैन बौद्ध अरु प्राचीन सांख्यादि उक्त मतावलंबी सर्व अज्ञानी हूवे हैं इस हेतुसें ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता नहीं मानते?

उत्तरः—नवीन वेदांती, नैयायिक अरु वैशेषिकादि यहभी सर्व अज्ञानी हूवे है, जो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानते है.

प्रश्नः—ईश्वर जगत्का वा सर्व वस्तुका कर्त्ता है, ऐसें जो मानियें, तो क्या दूषण है ?

उत्तरः—ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेसें बहुत दूषण आते हैं.

प्रश्नः—तुम तो अपूर्व बात सुणाते हो, हमने तो कदेइ नहीं सुना जो ईश्वरकूं जगत् कर्त्ता वा सर्व वस्तुका कर्त्ता माननेमें दूषण आता है? अब तो आपकूं कहनां चाहियें जो जगत्का कर्त्ता माननेसें ईश्वरकूं क्या दूषण आता है?

उत्तरः—हे भव्य! प्रथम तुम यह बात कहो की तुम कोणसा ईश्वर जगत्का कर्त्ता मानता हो ?

प्रश्नः—क्या ईश्वरभी कइक तरेंके हैं, जो आप हमसें ऐसा पूछते हो?

उत्तरः—क्या तुम नहीं जानते जो दो तरेंके ईश्वर मतावलंबीयोंने माने हैं? एक तो जगदुत्पत्तिसें पहिलां केवल एकही ईश्वर था जगत्का उपादानादिक कोइभी कारण वा दूसरी वस्तु नहीं थी, एकही शुद्ध बुद्ध सच्चिदानंदादि स्वरूप युक्त परमेश्वर था. एकेक जीवोंके तो ऐसा ईश्वर, जगत् वा सर्व वस्तुका रचने वाला अभिमत है. और दूसरोंने तो (१) जीव, (२) परमाणु, (३) आकाश, (४) काल, (५) दिशादि सामग्री वाला. एतावता एक तो ईश्वर उक्त विशेषण संयुक्त, और दूसरी सामग्री जिससें जगत् रचा जावे. ए दोनो वस्तु अनादि हैं, एतावता एक तो ईश्वर और दूसरी जगत् उत्पन्न करणेकी सामग्री, ए दोनो किसीने बणाये नहीं ऐसे माने है, तुमकूं इन दोनो मतोंमेंसूं कोनसा मत सम्मत है ?

पूर्वपक्ष—हमकूं तो प्रथम मत सम्मत है, क्युं के वेदादि शास्त्रोंमें ऐसा लिखा है, "एतस्मादात्मनआकाशः संभूतः आकाशाद्वायुः वायोरग्निः अग्नेरापः अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः ओषधिभ्योऽन्नं अन्नाद्रेतः रेतसः पुरुषः सवा एषपुरुषोऽन्नरसमयः" यह तैत्तिरीय शाखाकी श्रुति है. तथा "सदेव सौम्येदमग्रआसीदेकमेवाद्वितीयं तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति" यह श्रुति छांदोग्य उपनिषद्की है, तथा "नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमापरोयत् किमावरीवः कुहकस्य शर्मन्नंभः किमासीद्गहनं गभीरं" यह श्रुति ऋग्वेदकी है. "आत्मा वा इदमेकएवाग्रआसीत् नान्यत् किंचिन्मिषत् स ईक्षत लोकान्नुसृजा इति" यह ऐतरेय आरण्यककी श्रुति है. इत्यादि अनेक श्रुतियोंमें लिख

होता है, जो सृष्टिसें पहेलें एक केवल ईश्वरही था, न जगत् था श्रोर न जगत्का कारण था, एकही ईश्वर शुद्ध स्वरूप था, तथा ईसाइ वा मुसलमान मतवालेभी श्रैसे ही मानते हैं. इस हेतुसें हम प्रथम पक्ष मानते हैं.

उत्तरः—हे पूर्वपक्षी ! तुमारा यह कहनां ईश्वरकूं बडा कलंकित करता है?

पूर्वपक्षः—जगत्के रचनेसें ईश्वरकूं क्या कलंक प्राप्त होता है ?

उत्तरपक्षः—प्रथम तो जगत्का उपादान कारण है नहीं, इस हेतुसें जगत् कदेभी उत्पन्न नहीं हो सक्ता, जिसका उपादान कारण नहीं है, सो कार्य कदापि उत्पन्न नहीं हो सक्ता; जैसें गधेका सींग.

पूर्वपक्ष—ईश्वरनें श्रपणी शक्ति, नामांतर कुदरतसें जगत्कूं रचा है ईश्वरकी जो शक्ति है, सोइ उपादान कारन है.

उत्तरपक्षः—ईश्वरकी जो शक्ति है सो ईश्वरसें भिन्न है, वा अभिन्न है? जे कर कहोगे भिन्न है, तो फेर जड है वा चेतन है? जेकर कहोगे जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जेकर कहोगे नित्य है, तो फेर यह जो तुमारा कहनां था जो सृष्टिसें पहिलें एक केवल ईश्वर था दूसरा कुछभी नही था; यह श्रैसा हुवाकि जैसें उन्मत्तोंका वचन, अपने ही वचनकुं आप ही जूठ करा. जे कर कहोगे अनित्य है, तो फेर उसका उपादान कारण श्रोर ईश्वरकी शक्ति हुइ तिस शक्तिकी उत्पन्न करणे वाली श्रोर शक्ति हुई, इसी तरें करतां अनवस्थादूषण आता है, जे कर कहोगे चेतन है, तो फिर नित्य है, वा अनित्य है? दोनोही पक्षोमें पूर्वोक्त अपरापरस्ववचनव्याहत अरु अनवस्था दूषण है, जेकर कहोगे ईश्वर शक्ति ईश्वरसें अभिन्न है, तो सर्व वस्तुकों ईश्वरही कहनां चाहियें, जब सर्व वस्तु ईश्वरही हो गइ तो फेर अछा श्रोर बुरा, नरक श्रोर स्वर्ग, पुण्य श्रोर पाप, धर्म श्रोर अधर्म, ऊंच नीच, रंक राजा, सुशील श्रोर दुःशील, राजा श्रोर प्रजा, चोर श्रोर साधु,(संत) सुखी श्रोर दुःखी. इत्यादिक सर्व कुछ ईश्वरही आप बना, तब तो ईश्वरने जगत् क्या रचा, आपही आपणा सत्तानाश कर लीया, ए प्रथम कलंक ईश्वरकूं लगता है. (२) तथा जब ईश्वर आपही सब कुछ बन गया, तो फेर वेदादिक शास्त्र क्युं बनाये ? अरु उनके पढणेसें क्या फल हुआ ? ए दूसरा कलंक. (३) तथा जब वेदादिक बणाये तब आपणे आपकूं ज्ञानी होणे वास्ते पहिलें तो अज्ञानी था ए, तीसरा कलंक. (४) तथा शुद्धसें अ

शुद्ध बना, जो जगत्रूप होणेकी मेहनत करी, सो निष्फल हुई. ए चौथा कलंक. (५) कोइ वस्तु जगत्में अछी वा बूरी नहीं ए पांचवा कलंक. (६) क्युं आपणे आपकूं संकटमें डाला? ए छठा कलंक. इत्यादि अनेक कलंक तुम ईश्वरकूं लगाते हो.

पूर्वपक्षः—ईश्वर सर्व शक्तिमान् हें; इस हेतुसें ईश्वर, विनाही उपादान कारणसें जगत् रच सक्ता है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहनां है सो प्यारी भार्या, वा मित्र मानेगा परंतु प्रेक्षावान् कोइभी नहीं मानेगा. क्युंकि इस तुमारे कहनेमें कोइभी प्रमाण नहीं, परंतु जिसका उपादान कारण नहीं वो कार्य कदेभी न हो सक्ता. जैसे गधेका सींग. ऐसा प्रमाण तुमारे कहनेकूं बाधने वाला तो है, परंतु साधने वाला कोइभी नहीं, जेकर हठ करके स्वकपोलकल्पितही कूं मानोगे तो परीक्षा वालोंकी पंक्तिमें कदेभी नहीं गिने जाउगे. तथा इस तुमारे कहनेमें इतरेतराश्रय दूषणरूप वज्रका प्रहार पडता है. यथा सृष्टिसें पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध हो जावे तो सर्वशक्तिमान् सिद्ध होवे, जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तो सृष्टिसें पहिलें उपादानादि सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे. इन दोनोंमेंसूं जब तक एक सिद्ध न होवे तब तक दूसरा कभी सिद्ध नहीं होता. तथा इस तुमारे कहनेमें चक्रकदूषण होता है. सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होवे; तदा सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे. जब सर्व शक्तिमान् सिद्ध होवे तब सृष्टिसें पहिलें सामग्री रहित केवल शुद्ध एक ईश्वर सिद्ध होवे, तब सृष्टिकर्त्ता सिद्ध होवे. ऐसे प्रगट चक्रक दूषण है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरतो प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध है, फेर तुम उसकूं सृष्टिकर्त्ता क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्षः—जे कर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता प्रत्यक्ष प्रमाणसें सिद्ध होवे, तो किसीकूंभी अमान्य न होवे. औ तुमारा हमारा ईश्वर विषयिक विवाद कभी नहीं होवे. क्युंकि प्रत्यक्षमें विवाद नहीं होता है; तथा ईश्वरका प्रत्यक्ष देखणांभी तुमारे वेद मंत्रसें विरुद्ध है. तथा च वेदमंत्रः॥ अपाणिपादो जवनोग्रहीता, पश्यत्यचक्षुःशृणोत्यकर्णः॥ स वेत्ति विश्वं न च तस्यास्ति वेत्ता,

तमाहुरग्र्यं पुरुषं पुराणम् ॥ इस मंत्रसें कहता है ईश्वरकों जानने वाला कोइन्नी नहीं,

पूर्वपक्षः–विना कर्त्ताके जगत् कैसें हो गया? इस अनुमान प्रमाणसें ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता सिद्ध होता हैं, सो तुम क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्षः–इस तुमारे अनुमानकूं दूसरे ईश्वरपक्षमें खंमन करेंगे, ऐसे उक्त प्रकारसें एक केवल उपादानादि सामग्री रहित, ऐसे सृष्टिसें पहिलें परमेश्वर नहीं सिद्ध हुआ, तोन्नी हम आगें चलते हैं कि जब ईश्वरने इन जीवोंकूं रचे थे तब (१) निर्मल रचे थे? (२) पुण्य वाले रचे थे? (३) पाप वाले रचे थे? (४) मिश्रित पुण्य पाप अर्द्धो अर्द्ध वाले रचे थे? (५) पुण्य थोडा पापाधिक ऐसें रचे थे? (६) किंवा पुण्याधिक पाप थोडे वाले रचे थे? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करो गे तो जगत्में सर्व जीव निर्मलही चाहियें, फेर वेदादि शास्त्रों द्वारा उनकूं उपदेश करना वृथा है, अरु वेदादि शास्त्रोंका कर्त्तान्नी मूढ सिद्ध हो जावेगा, क्युंकि जब आगेंही जीव निर्मल हैं तो उसके वास्ते शास्त्र काहेकूं रचने थे, जो वस्त्र निर्मल होता है तिसकूं कोइन्नी बुद्धिमान् धोता नहीं, जे कर धोवे तो महामूढ है, इस कारणसें जो निर्मल जीवोंके उपदेश निमित्त शास्त्र रचे सोन्नी मूढ है.

पूर्वपक्षः– ईश्वरनेंतो जीवोंकूं शुद्ध निर्मल एतावता अछाही बनाया था, परंतु जीवोनें अपणी इछासें अछा वा बुरा (जूंमा) काम कर लीया है, इसमें ईश्वरकूं कुछ दोष नहीं?

उत्तरपक्षः–जब ईश्वरने जीवोंमें अछा वा बुरा काम करणेकी शक्ति नहीं रची, तो फेर जीवोंकूं पुण्य वा पाप करणेकी शक्ति कहांसें आई?

पूर्वपक्षः–शक्तियां तो जीवमें सर्व ईश्वरनेही रचियां है. परंतु जीवोंकूं बुरा काम करणेमें प्रवृत्त नहीं करता, बुरे कामोंमें जीव आपही प्रवृत्त हो जाता है, जैसें कोइ गृहस्थने अपणे प्रिय पुत्र बालककूं खेलणे वास्ते एक खिलोना दीया है, परंतु जो वो बालक, उस खिलोनेसें अपणी आंख निकाल लेवे तो माता पिताका क्या दूषण है? तैसेंही जीवोंकूं ईश्वरने जो हाथ, पग, प्रमुख वस्तु दइ है, सो नित्य केवल धर्म करणेके कारणे दइ हैं. पीछें जो जीव उनसें अपणी इछासें पाप कर लेवे तो इसमें ईश्वरकूं क्या दूषण है?

उत्तरपक्षः—हे भव्य ! यह जो तुमने बालकका दृष्टांत दीया सो यथार्थ नहीं. क्युंकि बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान नहीं है. जो हम इस बालकके खेलणे वास्ते खिलोना देते हैं, सो हमारा बालक इस खिलोनेसें अपणी आंख फोड लेगा. जेकर बालकके माता पिताकूं यह ज्ञान होता जो हमारा बालक. इस खिलोनेसें अपणी आंख फोड लेगा तो माता पिता कभी उसके हाथमें खिलोनां न देते. जे कर जान करकें देवें तो वो माता पिता नहीं किंतु ? उस बालकके परम शत्रु है. इसीतरें ईश्वर. माता पिता तुल्य है अरु तुम हम उसके बालक हैं. जे कर ईश्वर जानता था जो में इसकूं रचा इसके ताइ हाथ. पग. मन. इंद्रियादि सामग्री दीनी है. इस जीवने इस सामग्रीसें बहुत पाप करकें नरक जाना है तो फेर ईश्वरने उस जीवकूं क्युं रचा ? जे कर कहोगे ईश्वर यह बात नहीं जानता था जो मेरी धर्मकरणेकी दीनी हुइ सामग्रीसें पाप करकें यह जीव नरक जावेगा. तो फेर ईश्वर तुमारे कहनेहीसें अज्ञानी असर्वज्ञ सिद्ध होता है. जेकर कहोगे ईश्वर जानता था जो यह जीव मेरी देइ हुइ सामग्रीसें पाप करके नरकें जायगा तो फेर हमारा रचने वाला ईश्वर. परम शत्रु हुआ के नहीं ? विना प्रयोजन रंक जीवोंकूं सामग्रीद्वारा पाप करायकें क्युं उनकूं नरकमें नाखे ? जब सामग्रीद्वारा प्रथम पाप करानां और पीछें नरकपात करनेका दंड देना इस तुमारे कहनेसें ईश्वरसें अधिक अन्यायी कोइ नहीं. क्युं के उस जीवकूं प्रथम तो रचा. फेर नरकमें डाला. बस येही तुमने ईश्वरकूं अन्यायी. असर्वज्ञ. निर्दयी. अज्ञानी. वृथा मेहनतीरूप कलंक दीने. इस वास्ते निर्मल जीव ईश्वरने नहीं रचा. ए प्रथम पक्षोत्तर.

अथ दूसरा पक्षोत्तरः—जेकर कहोगे ईश्वरने पुण्य वालेही जीव रचे हैं तो यहभी कहनां तुमारा मिथ्या है. क्युंकि जब पुण्यही वाले सर्व जीव थे तो गर्भमेंही अंधे. लंगडे. लूले. बहिरे होनां. कूबडारूप. नीच वा निर्धनके कुलमें उत्पन्न होनां. जाव जीव दुःखी रहनां. खाने पीनेकों पूरा न मिलनां. महा कष्ट कारक मेहनत करकें पेट भरनां. यह पुण्यके उदयसें नहीं हो सके. अरु विनाही करे पुण्यके जीवोंकूं ईश्वरने पुण्य क्युं लगा दीया ? जेकर विनाही करयां जीवोंकूं ईश्वरने पुण्य लगा दीया तो ऐसे विनाही धर्म करयां जीवोंकूं स्वर्ग तथा मोक्ष क्युं नहीं पहुंचाय देता ? इसलीये

देश करायकें, भूखें मारकें, तृष्णा छुडायकें, राग द्वेष मिटायकें, घर बार छुडायकें, साधु बनायकें, टुकडे मंगायकें, दया, दम, दान, सत्यवचन, चोरी का त्याग, स्त्रीका त्याग, इत्यादिक अनेक साधन करायकें पीछे स्वर्ग मोक्ष में पहुंचानां, यह संकट ईश्वरने व्यर्थ खमा करकें क्युं जीवोंकूं दुःख दीना इस वातसें तो ऐसा प्रतीत होता है, जो ईश्वरकूं कुछभी समझ नहीं. इति.

अथ तृतीय पक्षोत्तरः—जे कर कहोगे ईश्वरने पाप संयुक्त ही जीव रचे हैं, तो फेर विनाही जीवोंके करयां पाप लगा दीयां तो फेर जब ईश्वरने ही हमारा सत्तानाश करा, तो हम किस आगें विनति करें जो विना गुना ह हमकूं यह ईश्वर पाप लगाता है, तुम इसकूं मने करो, जो विनांही करे पाप लगा देवे, ऐसें अन्यायी ईश्वरकातो कभी नामही न लेनां चाहियें. तथा जेकर ईश्वरने पाप संयुक्तही सर्व जीव रचे हैं, तो राजा, आमात्य (मंत्री) श्रेष्ठ, सेनापति, धनवानोके घरमें उत्पन्न होनां, नीरोगकाय, सुंदर रूप, सुंदर संहनन, घरमें आदर, बाहिर यशोकीर्त्ति, पंचेंद्रियविषय जोग, इत्यादिक सामग्री पापसें कदेइ संभव नहीं होती. इस वास्ते जीवों कूं केवल पापवान् ईश्वरने नहीं रचे ॥ इति तृतीय पक्षोत्तर ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ पक्षोत्तरः—जेकर कहोगे अर्द्धोऽर्द्ध पुण्य पाप वाले जीव ईश्वरने रचे हैं, यह पक्षभी अछा नहीं, क्युंकि आधे सुखी आधे दुःखी ऐसे भी सर्व जीव देखनेमें नहीं आते ॥ इति चतुर्थपक्षोत्तर

अथ पंचमपक्षोत्तरः-पांचवा पक्ष सोभी ठीक नहीं,सुख थोमा ओर दुःख बहुत ऐसेभी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते, परंतु सुख बहुत अरु दुःख अल्प, ऐसें बहुत जीव देखणेमें आते हैं ॥ इति पंचमपक्षोत्तर ॥

अथ षष्ठ पक्षोत्तरः—छठा पक्षभी समीचीन नहीं, सुख बहुत अरु दुःख थोडा ऐसेंभी सर्व जीव देखणेमें नहीं आते है, दुःख बहुत अरु सुख अल्प, ऐसे बहुत जीव देखणेमें आते हैं. इन हेतुओंसें ईश्वर जीवोंकूं किसी व्यवस्था वाला नहीं रच सक्ता, तो फेर ईश्वर सृष्टिका कर्त्ता क्युं कर सिद्ध हो सक्ता है? कभी नहीं हो सका. तथा जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकूं क्या दुःख था? अरु जब सृष्टिरची तब क्या सुख हुआ.

पूर्वपक्ष—ईश्वर तो सदाही परम सुखी है, क्या ईश्वरमें कुछ न्यूनता

है जो उस न्यूनताके पूर्ण करणेकूं सृष्टि रचे ? वो तो जगत्में अपणी ई
श्वरता प्रगट करणेकूं सृष्टि रचता है.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने सृष्टि नहीं रची थी तब तो ईश्वरकी ईश्वर
ता प्रगट नहीं थी अरु जब सृष्टि रची तब ईश्वरता प्रगट नइ, तो प्र
थम जब ईश्वरकी ईश्वरता प्रगट नहीं नइ थी तब तो ईश्वर बडा उदा
स अरु असंपूर्ण मनोरथ ईश्वरताकों प्रगट करणेमें विव्हल था. इस हे
तुसें अवश्य ईश्वरकूं दुःख होनां चाहियें. जब ईश्वर सृष्टिसें पहिलें ऐ
सा दुःखी था तब तो खाली क्युं बेठ रहा था? इस सृष्टिसें पहिले अ
पर सृष्टि क्युं नहीं रचकें अपणा दुःख दूर करा?

पूर्वपक्षः—ईश्वरने जो सृष्टि रची हें सो जीवोसें धर्म करकें उनकूं अ
नंत सुख देगा इस परोपकारकें वास्ते ईश्वरने सृष्टि रची है.

उत्तरपक्षः—धर्म करायकें जीवोंकूं सुख देनां यह तो तुमारे कहनेसें प
रोपकार हुआ. परंतु जो पाप करकें नरक गये उनके उपरि क्या उपका
र करा ? उनकूं दुःखी करणेसें क्या ईश्वर परोपकारी हो सक्ता है ?

पूर्वपक्षः—उनकूं नरकसें निकालकें फेर स्वर्गमें स्थापन करेगा.

उत्तरपक्षः—तो फेर प्रथमही नरकमें क्युं जाने दीये?

पूर्वपक्षः—ईश्वरही सर्व कुछ पुण्य पापादि कराता है, जीवके अधीन
कुछभी नहीं. ईश्वर जो चाहता है सो कराता है, जैसें काठकी पुतलीकूं
बाजीगर जैसें चाहता है तैसें नचाता है, पुतलीके कुछ अधीन नहीं.

उत्तरपक्षः—जब जीवके कुछ अधीन नहीं, तो जीवकूं अछे बुरेका फ
लभी नहीं चाहियें. क्युं के जो कोइ सिरदार किसी नोकरकूं कहै जो तुम
यह काम करो, फेर नौकर सिरदारके कहनेसें वो काम करे, अरु वो काम
अछा वा बुरा है तो क्या फेर वो सिरदार उस नौकरकूं कुछ दंड दे सक्ता?
कुछभी नहीं दे सक्ता. ऐसेंही ईश्वरकी आज्ञासें जब जीवने पुण्य वा पाप
करे, तो फेर पुण्य पापका फल जीवकूं नहीं चाहियें. जब पुण्य पाप जी
वके करे न हुए तब स्वर्ग अरु नरक एभी जीवकूं न होंगे, तब जीवकूं
नरक, स्वर्ग, तिर्यग् अरु मनुष्य, ए चार गतिभी न होगी. जब चार गति
न होवेगी, तब संसारभी न होगा, जब संसार न होगा तब तो वेद, पुरा
ण, कुरान, तौरे, तजबूर, इंजील प्रमुख शास्त्रभी न होंगे. जब शास्त्र न

होंगे तब शास्त्रका उपदेशकर्त्ता न होगा. जब शास्त्रका उपदेशकर्त्ता नहीं तो ईश्वरत्ता नहीं. जब ईश्वरही नहीं तो फेर सर्व शून्यता सिद्ध जइ. ए कलंक क्युंकर मिटेगा?

पूर्वपक्षः—यह जो जगत् हे सो बाजीगरकी बाजीवत् हे, अरु ईश्वर इसका बाजीगर हे, सो इस जगतकूं रच कर ईश्वर इस खेलसें खेलता, (क्रीडा करता) हे, नरक, स्वर्ग, पुण्य, औो पाप कुछ नहीं.

उत्तरपक्षः—जब ईश्वरने क्रीडाहीके वास्ते जगत् रचा, तो क्रीडाहीमात्र फल होनां चाहियें, परंतु इस जगत्में तो कुष्टी, रोगी, शोकी, धनहीन, बलहीन, महादुःखी, महाप्रलाप कर रहे हें, जिनकूं देखनेसें दयाके वश होकर हमारे रोंगटे (रोम) खडे होते हें, तो क्या फेर ईश्वरकूं इन दुःखी यांकूं देख कर दया नहीं आती? जब ईश्वरकूं दया नहीं तों फेर निर्द यीजी कदेइ ईश्वर हो सक्ता हे? अरु जो क्रीडा करने वाला हे, सो बालक की तरें रागी, द्वेषी, अज्ञ होता हे, जब राग द्वेष हे, तो उसमें सर्व दूषण हें. जब आपही औगुणोंसें जरया हे, तो वो ईश्वर काहेका? वोतो संसा री जीव हे. अरु जब राग, द्वेष वाला होवेगा तब सर्वज्ञ कदापि न हो वेगा, जब सर्वज्ञ नहीं तो उसकूं ईश्वर कोन कह सक्ता हे?

पूर्वपक्षः—जीवोंके करे हूये पुण्य पापके अनुसार ईश्वर दंड देता हे इस हे तुसें ईश्वरकूं क्या दोष हे? जेसा जिसने कीया, वेसाही उसकूं फल दीया.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें यह संसार अनादि सिद्ध हो गया, अरु ईश्वर कर्त्ता नहीं, ऐसा सिद्ध हुआ. वाह रे मित्र! तेने अपणे हा थसें अपणां मुंह काला किया, क्युं के जे जीव अब हें, अरु जो कुछ इ नकूं इहां फल मिला हे, सो पूर्व जन्ममें करा हुआ ठहरा अरु जो पूर्व जन्म था उसमें जो दुःख सुख जीवकूं मिला था, वो उससें पूर्व जन्म में करा था, इसी तरें पूर्व पूर्व जन्ममें दुःख सुख करणां अरु उत्तरोत्तर जन्म में सुख दुःखका जोगणां इसी तरें संसार अनादि सिद्ध होता हे. अब शोचो कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर केसें सिद्ध हूआ?

पूर्वपक्षः—हम तो एकही परम ब्रह्म पारमार्थिक सद्रूप मानते हें.

उत्तरपक्षः—जे कर एकही परम ब्रह्म सद्रूप हे, तो फेर यह जो सरल,

रसाल, प्रियाल, हिंताल, ताल, तमाल, प्रवाल प्रमुख पदार्थ अग्रगामि पणे करकें जो प्रतीत होते हैं, ते क्युं कर सत् स्वरूप नहीं है?

पूर्वपक्षः—ए पूर्वोक्त जो पदार्थ प्रतीत होते हैं, वे सर्व मिथ्या है तथा च अनुमान प्रपंच मिथ्या है, प्रतीत होणेसें जो ऐसा है, सो ऐसा है. यथा सीप, चांदीरूप, तैसाही यह प्रपंच है, इस अनुमानसें प्रपंच मिथ्या रूप है; अरु एक ब्रह्मही पारमार्थिक सद्रुप है.

उत्तरपक्षः—हे पूर्वपक्षी! इस अनुमानके कहनेसें तुं तीक्ष्ण बुद्धिमान् नहीं है, सोइ बात कहते है; यह जो प्रपंच तुमने मिथ्यारूप माना है सो मिथ्या तीन तरेंका होता है, एक तो अत्यंत असत् रूप, अरु दूसरा है तो कुछ और, अरु प्रतीति होवे औरतरें. अरु तीसरा अनिर्वाच्य इन तीनोंमेंसूं कौनसा मिथ्यारूप प्रपंचकूं माना है?

पूर्वपक्षः—इन तीनों पक्षोमेंसें प्रथम दो पक्ष तो मेरे स्वीकारही नहीं इस कारण में तो तीसरा अनिर्वाच्य पक्ष मानता हूं; सो यह प्रपंच अनिर्वाच्य मिथ्यारूप है.

उत्तरपक्षः—प्रथम तो तुम यह कहो कि अनिर्वाच्य क्या वस्तु है? ए तावता तुम अनिर्वाच्य किस वस्तुकूं कहते हो? (१) क्या वस्तुका कहने वाला शब्द नहीं है? (२) वा शब्दका निमित्त नहीं है? प्रथम विकल्प तो कल्पनाही करने योग्य नहीं है? यह सरल है, यह रसाल है, ऐसा शब्द तो प्रत्यक्ष सिद्ध है. अथ दूसरा पक्ष है तो शब्दका निमित्त ज्ञान नहीं है? वा पदार्थ नहीं है? प्रथम पक्ष तो समीचीन नहीं. सरल, रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान तो प्राणी प्राणी प्रत्यें प्रतीत है, सर्व जीव देखने वाले जानते है जो सरल रसाल, ताल, तमाल प्रमुखका ज्ञान हमकूं है. अथ दूसरा पक्ष तो पदार्थ भावरूप नहीं है? कि अभावरूप नहीं है? जे कर कहोगे पदार्थ भावरूप नहीं अरु प्रतीत होता है. तो तुमकूं विपरीत ख्याति माननी पडी अरु अद्वैतवादीयोंके मतमें विपरीतख्याति माननी महा दूषण है. अथ दूसरा पक्ष. जो पदार्थ अभावरूप नहीं तो भावरूप सिद्ध भया, तब तो सत् ख्याति माननी पडी. अरु जब अद्वैतवादि मतांगीकार कीया. अरु सत्ख्याति माननी पडी. तब तो सत् ख्यातिके माननेसें अद्वैत मतकी जडकूं कुहाडेसें काटा. कदापि अद्वैतमत नहीं सिद्ध होगा.

पूर्वपक्षः—भावरूप तथा अभावरूप ए दोनोही प्रकारें वस्तु नहीं.

उत्तरपक्षः—हम तुमकूं पूछते है जो भाव अरु अभाव इन दोनोका अर्थ जो लौकिकमें प्रसिद्ध है वही तुमने माना है? वा इससें विपरीत और तरें का अर्थ, भाव अरु अभावका तुमने माना है? जे कर प्रथम पक्ष मानोगे तो जहां भावका निषेध करोगे तब तो तहां अवश्यमेव अभाव कहनां पडेगा, अरु जहां अभावका निषेध करोगे, तहां अवश्यमेव भाव कहनां पडेगा, जो परस्पर विरोधी है, तिसमें एकका निषेध करोगे तो दूसरेकी विधि अवश्य कहनी पडेगी. अनिर्वाच्यता तो जडामूलसें नष्ट हो गइ. अथ दूसरा पक्षः—तब तो हमारी कुछ हानी नहीं, क्युं के अलौकिक एतावता तुमारे मनःकल्पित शब्द अरु शब्दका निमित्त जो नष्ट हो जावेगा, तो लौकिक शब्द अरु लौकिक शब्दका निमित्त कदापि नष्ट नहीं होगा तो फेर अनिर्वाच्य प्रपंच किस तरें सिद्ध होगा? जब अनिर्वाच्य न सिद्ध हुआ, तो प्रपंच मिथ्या कैसें सिद्ध हुआ? तब एकही अद्वैत ब्रह्म कैसें सिद्ध हुआ?

पूर्वपक्षः—हम तो जो प्रतीत न होवे, उसकूं अनिर्वाच्य कहते हैं.

उत्तरपक्षः—इम तुमारे कहनेमें तो बहुत विरोध आवे है, जे कर प्रपंच प्रतीत नहीं होता तो तुमने अपणे प्रथम अनुमानमें जो प्रपंचकों प्रतीयमान हेतु स्वरूप पणे क्युं कर ग्रहण कीया? अरु प्रपंचकुं अनुमान करतां वेळां धर्मीपणे क्युं कर ग्रहण कीया? जे कर कहोंगे धर्मी पणे वा प्रतीयमान हेतुपणे प्रपंचकुं ग्रहण करणेमें क्या दूषण है? तो फेर तुमने यह जो उपर प्रतीज्ञा करी थी, कि हम तो जो प्रतीत नही होवे, उसकुं अनिर्वाच्य कहते है, तो फेर प्रपंच अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध हुआ? जब प्रपंच अनिर्वाच्य नहीं तब या तो भावरूप प्रपंच सिद्ध होगा, यातो अभावरूप प्रपंच सिद्ध होगा. इन दोनोंही पक्षोमें एकरूप प्रपंचके माननेमें पूर्वोक्त विपरीतख्याति तथा सत्ख्याति रूप दोनो दूषण फेर तुमारे गळेमें रस्सी डालते हैं, अब भाग कर कहां जावोगे? हम फेर तुमकों पूछते है कि यह जो तुंम इस प्रपंचकुं अनिर्वाच्य मानते हो, सो प्रत्यक्ष प्रमाणसें मानते हो? वा अनुमान प्रमाणसें मानते हो? प्रत्यक्ष प्रमाण तो इस प्रपंचकुं सत्रूपही सिद्ध करता है. जैसा जैसा पदार्थ है, तैसा तैसाही प्रत्यक्ष ज्ञान उत्पन्न होता है. अरु प्रपंच जो है सो पर

स्पर (आपसमें) न्यारी न्यारी जो वस्तु हैं सो अपणे अपणे स्वरूपमें भाव रूप है. अरु दूसरे पदार्थके स्वरूपकी अपेक्षासें अभाव रूप है. इस इतरेतर विविक्त वस्तुओंकूंही प्रपंच रूप माना है. तो फेर प्रत्यक्ष प्रमाण प्रपंचकूं अनिर्वाच्य कैसें सिद्ध कर सक्ता है?

पूर्वपक्षः—पूर्वोक्त जो हमारा पक्ष है. तिसकूं प्रत्यक्ष प्रतिक्षेप नहीं कर सका. क्युं कि प्रत्यक्ष तो विधायकही है, जे कर प्रत्यक्ष इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूपका निषेध करे, तो हमारे पक्षकूं बाधक ठहरे. परंतु प्रत्यक्ष प्रमाण तो ऐसा है नहीं. प्रत्यक्ष प्रमाणतें इतर वस्तुमें इतर वस्तुके स्वरूप निषेध करणेकूं कुंठ है.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहनां असत्य है. अन्य वस्तुके स्वरूपके बिना निषेध्यां वस्तुके यथार्थ स्वरूपका कदापि बोध न होगा, पीतादिक वर्णों करी रहित जब बोध होगा, तबही नील ऐसे रूपका बोध होगा. तथा जब प्रत्यक्ष प्रमाण करी यथार्थ वस्तु स्वरूप ग्रहण कीया जायगा, तब तो अवश्य अपरवस्तुके स्वरूपका निषेधभी तिहां जाना जायगा. जे कर अन्य वस्तुके निषेधकूं अन्य वस्तुमें प्रत्यक्ष न जानेगा तो तिस वस्तुके विधि स्वरूपकूंभी प्रत्यक्ष न जान सकेगा, केवल जो वस्तुके स्वरूपकूं ग्रहण करणा है, सोइ अन्य वस्तुके स्वरूपका निषेध करनां है. जब प्रत्यक्ष प्रमाण विधि अरु निषेध दोनोंहीकूं ग्रहण करता है, तब तो प्रपंच मिथ्यारूप कदापि सिद्ध न होगा, जब प्रपंच मिथ्यारूप प्रत्यक्ष प्रमाणसें न सिद्ध भया, तब तो परम ब्रह्मरूप एकही अद्वैत तत्त्व कैसें सिद्ध भया? तथा जो तुम प्रत्यक्षकूं नियम करकें विधायकही मानोगे, तब तो विद्यावत् अविद्याकीभी विधि तुमकूं माननी पडेगी. सो यह ब्रह्म अविद्यारहित प्रत्यक्ष प्रमाणसें ग्रहण कीया, तब तो अविद्याभी प्रत्यक्षसें निषेध ग्रहण होगी. फेर जो तुमारा यह कहनां है की 'प्रत्यक्ष जो है, सो विधायकही है, परंतु निषेधक नहीं.' ऐसे वचन कहने वालेकूं क्युं न उन्मत्त कहनां चाहियें. अब जो आगें अनुमान कहेंगे, तिस करकेंभी पूर्वोक्ततेरे अनुमानका पक्ष बाधित है, सो अनुमान हमारा ऐसे है, प्रपंच मिथ्या नहीं है, असत्सें विलक्षण होणेसें जो असत्सें विलक्षण है, सो ऐसा है. यथा आत्मा तैसा ही यह प्रपंच है, तथा प्रतीयमान जो तुमा

रा हेतु है, सो ब्रह्मात्माके साथ व्यभिचारी है, जैसें ब्रह्मात्मा प्रतीयमान तो है, परंतु मिथ्यारूप नहीं है, जे कर कहोगे कि ब्रह्मात्मा अप्रतीयमान है तो वचनगोचर न होगा, जब वचनगोचर नहीं तब तो तुमकूं गुंगे बनना ठीक है, क्युं कि ब्रह्म बिना अपर तो कुछ है नहीं, अरु जो ब्रह्मात्मा है, सो प्रतीयमान नहीं, तो फेर तुमकूं हम गुंगेके बिना और क्या कहे ? प्रथम अनुमानमें जो तुमने सीपका दृष्टांत दीया था, सो साध्य विकल है, क्युं कि जो सीप है सोज्ञी प्रपंचके अंतर्गत है, अरु तुम तो प्रपंचकूं मिथ्यारूप सिद्ध करा चाहते हो, यह कन्नी नहीं हो सक्ता है, जो साध्य होवे सोइ दृष्टांतमें कहा जावे, जब सीपकान्नी अन्नीतक सत् असत् पणा सिद्ध नहीं, तो उसकूं दृष्टांतमें काहेकूं लानां ? तथा हम तुमकूं पूछते है कि यह जो तुमने प्रथम अनुमान प्रपंचके मिथ्या साधनेकूं कीना था सो अनुमान इस प्रपंचसें निन्न है वा अनिन्न है ? जे कर कहोगे निन्न है, तो फेर सत्य है, वा असत्य है ? जे कर कहोगे सत्य है, तो तिस अनुमान सत्यकी तरें प्रपंचन्नी सत्यही स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्य स्वरूप है, तो फेर क्या शून्य है ? वा अन्यथा ख्यात है ? वा अनिर्वचनीय है ? प्रथम दोनो पक्ष तो कदापि साध्यके साधक नहीं है. मनुष्यके श्रृंगकी तरें, तथा सीपके रूपेकी तरें. अरु तीसरा जो अनिर्वचनीय पक्ष है तिसका तो संन्नवही है नहीं; सो अपणे साध्यकुं कैसें साधेगा ?

पूर्वपक्षः—हमारा जो अनुमान है, सो व्यवहार सत्य है, इस कारणें असत्य नहीं, फेर आपणे साध्यकूं क्युं कर नहीं साध्य सक्ता ? अपितु साध्यही सक्ता है.

उत्तरपक्षः—हम तुमसें पूछते है कि जो यह व्यवहारसत्यका क्या स्वरूप है ? व्यवह्रतीति (व्यवहारः) असें जो व्युत्पत्ति करियें तब तो ज्ञानका ही नाम व्यवहार ठहरा, ज्ञानसें जो सत्य है, सो परमार्थिकही है, इस पक्षमें सत् ख्यातिरूप प्रपंच सिद्ध हुवा. जब प्रपंच सत् सिद्ध हुवा, तब तो एकही परम ब्रह्म सद्रुप अद्वैततत्त्व किसी तरहन्नी सिद्ध नहीं हो सक्ता, जे कर कहोगे व्यवहार नाम शब्दका सत्य है, तो फेर हम तुमकूं पूछते है जो व्यवहार नाम शब्दका है, तो फेर शब्द स्वरूपसें सत्य है ?

वा असत्य है? जे कर कहोगे शब्द सत्स्वरूप है तो शब्दकी तरे प्रपंचभी सत् स्वरूप है, जे कर कहोगे असत्स्वरूप शब्द है, तो फेर ब्रह्मादि शब्दसें कहे हुये, केसें सत् स्वरूप हो सकेंगे? क्युं कि जो आपही असत् स्वरूप है, सो परकी व्यवस्था करणे वा कहनेका हेतु कभी न हो सक्ता.

पूर्वपक्षः–जैसे खोटा रूपक सत्य रूपकके क्रय विक्रयादिक व्यवहारका जनक होणेसें सत्य रूपक माना जाता है, तैसें ही अनुमान हमारा यद्यपि असत् स्वरूप है तोभी जगत्में सत् व्यवहार करकें प्रवर्त्तक होणेसें व्यवहार सत् है, इस वास्ते आपणे साध्यका साधक है.

उत्तरपक्षः–हे भव्य! इस तुमारे कहनेसें तुमारा अनुमान पारमार्थिक असत् स्वरूप है, फेर तो जो दूषण असत् पक्षमें दीने हैं, सो सर्व इहां पमेंगे, जे कर कहोगे कि हम प्रपंचसें अभेद अनुमानकूं मानते है, तव तो प्रपंचकी तरें अनुमानभी मिथ्यारूप ठहरा, तव तो आपणे साध्यकूं कैसें साध सकेगा? इस पूर्वोक्त विचारसें प्रपंच मिथ्यारूप नहीं, किंतु आत्माकी तरें सत्रूप है, तो फेर एक ही ब्रह्म अद्वैततत्त्व है यह तुमारा कहनां क्युं कर सत्य हो सक्ता है? कभी नहीं हो सक्ता.

पूर्वपक्षः–हमारी उपनिषदोमें तथा शंकर स्वामीका शिष्य आनंदगिरि, शंकरदिग्विजयके तीसरे प्रकरणमें लिखता है कि "परमात्मा जगडुपादानकारणमिति" परमात्मा जो है, सोइ इस सर्व जगत्का कारण है, कारणभी कैसा उपादान रूप है. उपादान कारण उसकूं कहते है कि जो कारण होवे सोइ कार्यरूप हो जावे, इस कहनेसें यह सिद्ध हुआ जो कुछ जगत्में है, सो सर्व कुछ परमात्मा ही आप वन गया, तव तो जगत् परमात्मा रूप ही है. फेर तुम सृष्टि कर्त्ता ईश्वर क्युं नहीं मानते?

उत्तरपक्षः–वाह रे नास्तिक शिरोमणि! तुम अपणे कहणेकूं कभी विचार शोच कर कहते हो, वा नहीं? इस तुमारें कहनेसें तो पूर्ण नास्तिक पणा तुमारे मतमें सिद्ध होता है, यथा जव सर्व कुछ जगत् स्वरूप परमात्मरूपही है, तव तो न कोइ पापी हैं, न कोइ धर्मी है, न कोइ ज्ञानी है न कोइ अज्ञानी है, न तो नरक है, न तो स्वर्ग है, साधुभी नहीं, अरु चोर भी नहीं, सत्शास्त्र भी नहीं, अरु मिथ्या शास्त्रभी नहीं, तथा जैसा गोमांसभक्षी, तैसाही अन्नभक्षी है, जैसा स्वभार्यासें कामभो

ग सेवन कीया तैसा ही माता, बहिन, बेटीसें कीया, जैसा चंडाल तैसा ब्राह्मण, जैसा गधा तैसा संन्यासी, क्युं के जब सर्व वस्तुका कारण ईश्वर परमात्माही ठहरा, तब तो सर्व जगत् एकरस एक स्वरूप है, दूसरा तो कोइ है नहीं.

पूर्वपक्षः–हम एक ब्रह्म मानते है, अरु एक माया मानते है, सो तुमने जो उपर बहुतसें आल जंजाल लिखे है, सो सर्व मायाजन्य है अरु ब्रह्म तो सच्चिदानंद एकही शुद्ध स्वरूप है.

उत्तरपक्षः–हे अद्वैतवादी! यह जो तुमने पक्ष माना है सो बहुत असमीचीन है. यथा माया जो है सो ब्रह्मसें भेद है, वा अभेद है? जेकर भेद है तो जड है, वा चेतन है? जे कर जड है, तो फेर नित्य है, वा अनित्य है? जे कर कहोगे नित्य है, तो अद्वैत मतकें मूलहीकूं दाह करती है, क्युंकि जब ब्रह्मसें भेद रूप हुइ, अरु जड रूप भइ, अरु नित्य हुइ, फेर तो तुमने द्वैतपंथ आपही आपणे कहनेसें सिद्ध कर लीया. अरु अद्वैत पंथ जड मूलसें कट गया, जे कर कहोगे कि अनित्य है, तो द्वैतता दूर कभी नहीं होगी, क्युंकि जो नाश होने वाला है, सो कार्य रूप है, अरु जो कार्य है, सो कारण जन्य है, तो फेर उस मायाका उपादान कारण कौन है? सो कहनां चाहियें. जे कर कहोगे अपर माया. तब तो अनवस्था दूषण है, अरु अद्वैत तीनो कालोमें कदापि सिद्ध नहीं होगा, जे कर ब्रह्महीकूं उपादान कारण मानोगे, तब तो ब्रह्मही आप सर्व कुछ बन गया, तब तो पूर्वोक्त दूषण आया. जे कर मायाकों चैतन्य मानोगे, तोभी यही पूर्वोक्त दूषण होगा, जे कर कहोगे माया ब्रह्मसें अभेद है तब तो ब्रह्मही कहनां चाहियें, माया नहीं कहनां चाहियें.

पूर्वपक्षः–हम तो मायाकूं अनिर्वचनीय मानते है.

उत्तरपक्षः–इस अनिर्वचनीय पक्षकूं उपर खंडन कर आये हैं, तैसें खंडन करणा. इहांभी कह देनां तथा अनिर्वचनीय जो शब्द है तिसमें निर् जो उपसर्ग है, तिसका अर्थ तो निषेध रूप कीया है, फेरआपके व्याकरणमें शेष जो शब्द है, सो या तो भावका वाचक है या अभावका वाचक है? जब भावकूं निषेध करोगे, तब तो अभाव आ जायगा, अरु जे कर अभावकूं निषेधोगे तब तो भाव आ जायगा, ए भावाभाव दोनो वर्ज

के तीसरा वस्तुका रूप कोइ नहीं. इस वास्ते अनिर्वचनीय जो शब्द है, सो द्वेषी पुरुषोनें छलरूप रचा प्रतीत होता है; इस कहनेसें तो द्वैत ही सिद्ध होता है. अद्वैत नहीं.

पूर्वपक्षः—यह जो अद्वैत मत है, इसके मुख्य आचार्य शंकरस्वामी है, जिनोंने सर्वमतोंकूं खंडन करकें अद्वैत मत सिद्ध कीया है. तो फेर ऐसे शंकर स्वामी साक्षात् शिवका अवतार, सर्वज्ञ, ब्रह्मज्ञानी, शीलवान्, सर्वसामर्थ्ययुक्त. उनोंके अद्वैत मतकों खंडने वाला कौन है ?

उत्तरपक्षः—हे वल्लभ मित्र ! तुमारी समज मूजब तो जरूर जैसें तुम कहते हो, तैसेंही है; परंतु शंकरस्वामीके शिष्य आनंदगिरिने शंकरदिग्विजय के अठावनवे प्रकरणमें जो शंकरस्वामीका वृत्तांत लिखा है, उसके पढनेसें तो ऐसा प्रतीत होता है, जो शंकरस्वामी सर्वज्ञ नहीं; अरु कामी है, अरु अज्ञानी है, अरु असमर्थ है, तिस लिखनेसें ऐसाभी प्रतीत होता है कि वेदांतीयोंका अद्वैत ब्रह्मज्ञान जब ताइ यह स्थूल देह रहेगी, तब तांइ रहेगा, परंतु इस शरीरके छूट्या पीछें किसी वेदांतीयोंको ब्रह्म ज्ञान नहीं रहेगा.

पूर्वपक्षः—वो कौनसा शंकरस्वामीका वृत्तांत है जिस्सें तुमारी पूर्वोक्त वातें सिद्ध होती है ?

उत्तरपक्षः—जो तुमकूं वृत्तांत सुनना है, तो हमारे क्या ढील है, हम इसी जगे लिख देते हैं. जब शंकरस्वामीने ५ डनमिश्रकूं [illegible] सवा[illegible] मंडनमिश्रने यतिव्रत लीया, अरु मंडनमिश्रकी भार्या जिसका [illegible] सरस[illegible]वाणी था, सो सरसवाणी आपणे पतिकूं यतिव्रत लीया देख कर [illegible] सरसवाणी ब्रह्मलोककूं चली, सरसवाणीकूं जातीकूं देख कर शंकरस्वामी जीवन दुर्गामिंत्र करकें दिग्बंध करते हुये, तिसके पीछें हे सरसवाणी ! तुं ब्रह्मशक्ति है. ब्रह्मके अंशभूतमंडनमिश्रकी तुं भार्या है, उपाधि करकें सर्वकूं फलित है. तिस कारणसें मेरे साथ प्रसंग करकें फेर तुमकूं जाणां योग्य है. ऐसे शंकरस्वामीने कहा. पीछें सरसवाणी शंकरस्वामी प्रतें कहती हुई किः—पतिके संन्याससें प्रथम ही वैधव्य होणेके भयसें मैनें पृथिवी त्यागी है. तिस कारणसें फेर में पृथिवीका स्पर्श न करूंगी. हे यति! तूं तो पृथिवीमें स्थित है कैसें तेरे प्रसंगके तांइ एक विषय स्थिति होवे, ऐसे शंकरस्वामीकूं कहती प्रतें फेर शंकरस्वामी कहते भये किः—हे माता!

तोजी नूमिकाके उपरि ठ हाथ प्रमाण उंची आकाशमें रहो मेरे साथ सर्व वचनका प्रपंच संचार करकें पीछेसें जानां ऐसें आदर पर होकर शंकरस्वामीके साथ सर्वशास्त्रों विषे वेद, इतिहास, पुराणों विषे समय प्रसंग करकें पीछें शंकरकूं तिरस्कारके ताइं जिसमें दुःखें प्रवेश है, ऐसा जो कामशास्त्र, तिस विषे नायिका, अरु नायक इनके नेद विस्तारसें सरसवाणी शंकरकों पूछे. तव तो शंकरस्वामी इस विषयकूं जानते नहीं थे, तातें शंकरस्वामी उत्तर न दे सके, मौनी होते नये, तिस पीछें सरसवाणी शंकरस्वामीकूं सत्य करकें कहती हुइ किः–तुमारे जाननेमें यह शास्त्र नहीं आया, निश्चय करकें तिस शास्त्रकूं मेंही जानती हूं, कालका जानकार शंकरस्वामी सरसवाणी प्रति कहते हुये किः–हे माता! तुम इहांही ठ महीने रहो, पीछे में सर्व अर्थोका निश्चय करकें तेरे कहेका उत्तर कहुंगा. ऐसे कह कर शंकरस्वामी आग्रह पूर्वक सरसवाणीकूं तिहांही आकाश मंमलमें स्थापन करकें सर्व शिष्योंकूं यथास्थान नेज करकें चार शिष्यो सहित (१) हस्तामलक, (२) पद्मपाद, (३) विधिवत्, (४) आनंदगिरि, ए चार नामक प्रधान शिष्यों करी सेव्यमान तिस नगरसें पश्चिमदिशा नाम गढमें गये, सरसवाणीके प्रश्नोके उत्तर जानने के ताइ उस नगरका राजा मर गया था, उसका शरीर तिस अवसरमें चितामें जलानेके रूपणे [illegible] था, उस शरीरकूं देख कर शंकरस्वामीने अपणां शरीरकर ब्रह्महीरकें प्रांत एक पर्वतकीगुफामें स्थापन करकें, शिष्योंकूं कह [illegible] तुमने इस शरीरकी रक्षा करनी. अरु आप शंकरस्वामी परकाय प्रवेश विद्या करकें, लिंगशरीर संयुक्त अनिमान सहित उस राजाके शरीरमें ब्रह्मरंध्रमें प्रवेश कर गये, तब तो राजाजी उठा शीतोपचार करा, औ उत्सवसें नगरमें ले आये, राजा मरा नहीं था यह वात प्रसिद्ध कर दीनी, तब तो शंकरस्वामीकूं लोकोनें राजसिंहासन उपर बिठलाया. पश्चात् राजसिंहासनसें उठ कर स्वामीजी बमी राणीके घरमें गये. तहां जाकर उस राणीसें काम क्रीडा करने लगे, तब तो शंकरस्वामीकी कुशलतासें तिसके आलिंगन करनेसें उत्पन्न हुआ जो सुख संजोग ताकरिके शंकरस्वामीनें उस राणीके मुखके साथ तो अपणा मुख जोडा, औ अपणी ठाती उस राणीके दोनो कुंचों (स्तनो) के उपर जोमी, तैसेही उस राणीकी

नाजीसें अपनी नाजी जोमी, श्रो अपणे पगों करकें राणीके पग संकोचे. एतावता जंघोमें जंघा फसाइ अर्थात् एक शरीरवत् हो गये, दोनो जने व हूत गाढा आलिंगन करनेमें तत्पर हुये, तव तो शंकरस्वामी राणीके कक्षा स्थानो विपे हाथों करी स्पर्श करते हुये, वहुत सुखमें मग्न हुये, तव तो राणी उनकी आलाप, चतुराइ देख कर चित्तमें विचार करनें लगी कि देह मात्र करी तो मेरा जर्त्ता है, परंतु इसका जीव मेरा जर्त्ता नहीं, एतो कोइ सर्वज्ञ है. एसा विचार करकें राणीने आपणे नौकरोकूं चारों दिसामें जेजा. अरु कह दीया कि जो पर्वतोमें, वा गुफाउमें वारह योजनोके विचमें जितने शरीर जीव रहित होवे सो सर्व शरीर चितामें रख कर जला दिउ. शंकरस्वामी तो विषयमें मूर्छित हो गये, तव तो राणीके नौकरोनें चार शिष्योंकूं रक्षक देख कर शंकरस्वामीके शरीरकूं चितामें रख कर उनके शरीरकूं अग्नि करकें दाह करने लगे, तव तो शंकरस्वामीके चारों शिष्य, उस नगरमें गये, जिहां शंकरस्वामी थे, उहां शंकरस्वामिकूं काम लोलुपी अति विषयमें वद्धवुद्धि देख कर शंकर राजाकें आगें नाटक करने लगे, शंकरस्वामीकूं परोक्ति करकें प्रतिवोध करने लगे सो यह है, जो लिखते हैंः—

(१) "यत्सत्यमुख्यशब्दार्थानुकूलं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्!(२) नह्येतत्त्वं विदित्तं नृपु जावं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन् (३) विश्वोत्पत्यादिविधिहेतुतत्त्वं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (४) सर्वचिदात्मकं सर्वमद्वैतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (५) परतार्किकैरीश्वरसर्वहेतु, स्तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (६) यद्वेदांतादिजिर्ब्रह्मसर्वस्थं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (७) यज्जैमिनिनोक्तमखिलकर्म, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (८) यत्पाणिनिःप्राइ शब्दस्वरूपं तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्!(९) यत्सांख्यानां मतहेतुजूतं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्!(१०) अष्टांगयोगेन अनंतरूपं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (११) सत्यं ज्ञानमनंतं ब्रह्म तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (१२) नह्येतदहश्यप्रपंचं, तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (१३) यद्ब्रह्मणोब्रह्मविपावीश्वराह्यजवन्, ? तत्त्वमसि तत्त्वमसि राजन्! (१४) त्वडुपमेवमस्माजिर्विदितं राजन् तव पूर्वयत्या श्रमस्यम्" ॥ इन परोक्तियां करकें राजा प्रतिवोध हुआ, सर्वके सन्मुख तिस राजाकी देहसें निकल कर जव गये तव तो उस पर्वतकी कंदरामें

अपणे शरीरकूं न प्राप्ति हुवे तब तो अपणे शरीरकूं चितामें देखा, देख कर कपालमध्यमें हो कर प्रवेश करा; तब शरीरके चारो ओर अग्नि प्रज्वलित हो रही थी, तब तो निकलनां दुष्कर हो गया, फेर शंकरस्वामीने लक्ष्मी नृसिंहकी स्तुति करी तब लक्ष्मीनृसिंहने शंकरस्वामीकुं जीता अग्निमेंसें बाहिर निकाला॥ इति कथा समाप्ता ॥ अब हे नव्य? तुं विचार कर देख जो में पूर्वे तुजकूं वार्त्ता कही थी सो सर्व सत्य हे या नहीं ? क्युंकि (१) जब सरस वाणीके कहनेके प्रश्नका उत्तर नहीं आया, तब तो शंकरस्वामीकूं सर्वज्ञ कोन बुद्धिमान् निष्पक्षी मान सक्ता हे? कोइजी नहीं मानेगा (२) अरु जब राजाकी राणीसें विषय सेवन करा, तब तो कामी होणेमें कोइ शंकाजी रहती हे ? (३) अरु जब शिष्योंने आकर प्रतिबोध करा, तब तो अज्ञानी अवश्य हो चूके. (४) जब चितामेंसें न निकल सके, तब लक्ष्मीनृसिंहकी स्तुति करी तब नृसिंहने आय करकें ज्वलती अग्निमेंसें निकाले, तब शंकरस्वामी असमर्थ सिद्ध होगये, जब शंकरस्वामीने फेर आकर सरसवाणीके प्रश्नोका उत्तर दीया, तब तो सरसवाणीने कहा; हे स्वामी ! तुं सर्वज्ञ हे. क्या मृतकके शरीरमें प्रवेश करके उसकीराणीके साथ विषय सेवन करकें राणी पासों कतुंक कामशास्त्रकी वातां शीख के सर्वज्ञ हो सक्ता हे ? सर्वज्ञ तो नहीं हो सक्ता, परंतु गऊ खुरकणी तो हो गइ. सरसवाणीकूं उसने सर्वज्ञ कह दीया, अरु शंकरकूं सरसवाणीने सर्वज्ञ कह दीया. वाह क्याही सर्वज्ञोंकी जोमी मिली हे? सरसवाणी तो ब्रह्मकी शक्ति हो कर फेर स्त्री बन कर मंडनमिश्रसें विषय सेवन करती रही अरु सर्वज्ञजी बन बेठी, अरु शंकरस्वामी परस्त्रीसें विषयसेवन करकें अरु कतुक काम शास्त्र शीख कर सर्वज्ञ बन बेठे, क्या यह गऊ खुरकणी न होइ तो और क्या हुआ? जब शंकरस्वामी अपणां स्थूल शरीर छोट कर राजाके शरीरमें गये, अरु ब्रह्मविद्या सर्व जूल गये, जे कर न जूले होते तो उनके शिष्य काहेकूं तत्त्वमसिका उपदेश करते? जब शंकरस्वामी स्थूल शरीरके बदल जाने परब्रह्म विद्या जूल गये, तब तो ब्रह्मविद्याका संबंध. न तो लिंग शरीरके साथ रहा, न आत्माके साथ संबंध रहा. किन्तु स्थूल शरीरहीके साथ रहा, इस्में यह सिद्ध हुआ किः—जब वेदांती मर जाते हे, तब उनका ज्ञानजी नष्ट हो जाता हे, अरु स्थूल शरीरहीके

साथ ज्ञानका संबंध रहा परंतु आत्माके साथ नहीं. अरु जो तुमने कहा था किः—शंकरस्वामीके प्रगट कथन कीये अद्वैत मतकूं कौन खंडन कर सक्ता है? सो हे भव्य! जब शंकरस्वामीका चरित्रही असमंजस है, तो फेर उनके कहे हुये मतकूं कौन सयौक्तिक समज सक्ता है?

पूर्वपक्षः—"पुरुषएवेदं" इत्यादि श्रुतियोंसें अद्वैतही सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहनां असत् है, क्युंकि जो पुरुष मात्र रूप अद्वैततत्त्व होवे तब तो यह जो दिखलाइ देता है कोइ सुखी, कोइ दुःखी, ए सर्व परमार्थसें असत् हो जावेंगे. जब ऐसें होगा तब तो यह जो कहनां है, "प्रमाणतोऽधिगम्य संसारनैर्गुण्यं तद्विमुखया प्रज्ञया तदुछेदाय प्रवृत्तिरित्यादि" अस्यार्थः—संसारका निर्गुणपणा प्रमाणसें जान कर, तिस संसारसें विमुख बुद्धि हो करकें तिस संसारके उछेदके तांइ प्रवृत्ति करे, यह जो कहनां है, सो आकाशके फूलकी सुगंधिका वर्नन करने सरिखा है. क्युं कि जब अद्वैत रूपही तत्त्व है, तब तो नरकादि भवभ्रमण रूप संसार कहां रहा? जिस संसारकूं निर्गुण जान कर तिसके उछेद करणेकी प्रवृत्ति होवे.

पूर्वपक्षः—तत्त्वतः पुरुष अद्वैत मात्रही है. अरु यह जो संसार निर्गुण वर्णन करा है, सो सदा सर्व जीवोंकूं जो प्रतिभासन हो रहा है, सो सर्वे चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग ऊंचे नीचे जैसे प्रतीत होते है, तैसे सर्व संसार प्रतीत होता है. परंतु सर्व चित्रामकी स्त्रीके अंगोपांग उच्च नीचकी तरे भ्रांतिरूप है वा भ्रांतिजन्य है.

उत्तरपक्षः—यह जो तुमारा कहनां है सो असत् है. इस बातमें कोइ वास्तव्य प्रमाण है नहीं. तद् यथा जे कर अद्वैत सिद्ध करणे वास्ते कोइ पृथग्भूत प्रमाण मानोंगे. तब तो द्वैतापत्ति होगी. क्युंकि प्रमाणके विना किसीकाभी मत नहीं सिद्ध होता. जे कर प्रमाणके विनाही सिद्ध मानोंगे तब तो सर्ववादी अपने अपने अभिमतकूं सिद्ध कर लेवेंगे. तथा भ्रांतिभी प्रमाणभूत अद्वैतमें भिन्नही माननी चाहिये. अन्यथा प्रमाणभूत अद्वैत अप्रमाणही हो जावेगा. भ्रांति जब अद्वैतवादी रूप हुइ तब तो पुरुषका रूप हुइ. ताते भ्रांतिरूपत्वाभाव पुरुषही है नहीं. तब तो तत्त्वव्यवस्था कुछभी सिद्ध न होइ. जे कर भ्रांति भिन्न मानोंगे, तब

तो द्वैतापति होवेगी, अद्वैत मतकी हानि हो जावेगी, जेकर स्थंभकूं कुंजादिकोंसें भेद माननां इसीकूं भ्रांति कहोगे, तब तो निश्चय करकें सतुस्वरूप कुंभादिक किसी जगें तो जरूर होंगे. अभ्रांतिके देखे विना कदापि भ्रांति देखनेमें नहीं आवेगी, पूर्वे जिसने सच्चा सर्प नहीं देखा, तिसकूं रज्जुमें सर्पकी भ्रांति कदापि न होवेगी ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ न दृष्टपूर्वसर्पस्य, रज्ज्वां सर्पमतिः क्वचित् ॥ ततः पूर्वानुसारित्वाद्, भ्रांतिरभ्रांतिपूर्विका ॥ १ ॥ इस कहनेसेंभी अद्वैत तत्त्व खंडन हो गया. तथा पुरुष अद्वैतरूप तत्त्व अवश्य करकें दूसरेकूं निवेदन करनां, अपणे आपकूं नहीं. आपणेमें तो व्यामह है नहीं जे कर कहने वालेमें व्यामोह होवे तब तो अद्वैतकी प्रतिपत्ति कदीनी नहीं होवेगी.

पूर्वपक्षः—जब आत्माकूं व्यामोह है तब ही तो अद्वैत तत्त्वका उपदेश कीया जाता ?

उत्तरपक्षः—जब आत्माका व्यामोह दूर होगा तब तो आत्मा अवश्य अवस्थांतरकूं प्राप्ति होगी, जब अवस्था बदलेगी, तब तो अवश्य द्वैतापत्ति हो जावेगी, तथा जब अद्वैत तत्त्वका उपदेशक पुरुष परकूं उपदेश करेगा, तब तो परकूं अवश्य मानेगा, फेर अद्वैत तत्त्व परकूं निवेदन करनां अरु अद्वैत तत्त्व माननां, यह तो ऐसें हुआ के, जेसें मेरा पिता कुमार ब्रह्मचारी है, इस वचनके कहनेसें जरूर वो पुरुष उन्मत्त है, जेकर अपणेकूं अरु परकूं इन दोनोंकूं जब मानेगा, तब तो द्वैतापत्ति अवश्य होगी, इस कारणसें जो अद्वैत माननां है, सो युक्ति विकल है.

पूर्वपक्षः—परमब्रह्मरूप सिद्धही सकल भेद ज्ञान प्रत्ययोंके निरालंबन पणेकी सिद्धि है.

उत्तरपक्षः—ए कथन भी तुमारा ठीक नहीं है, क्युंके परम ब्रह्महीकी सिद्धि नहीं है. जे कर है तो स्वतः सिद्धि है, वा परतःसिद्धि है ? तहां स्वतःसिद्धि तो है नहीं, जे कर होवे तब तो किसीकाभी विवाद न रहे, जे कर कहोगे परतःसिद्धि है, तो क्या अनुमानसें है, वा आगमसें है ? जे कर कहोगे अनुमानसें है तो वो अनुमान कौनसा है ? कहो.

पूर्वपक्षः—सो अनुमान यह है कि विवादरूप जो अर्थ है सो प्रतिभासांत प्रविष्ट ब्रह्मात्मके अंदर है. प्रतिभाससमान होणेसें जो जो प्रतिभा

समान है सो सो प्रतिजासांत प्रविष्टही देखा है, जैसें प्रतिजास आत्मा प्रतिजासमान है सकल अर्थ सचेतन अचेतन विवादरूप है तिस कारणसें प्रतिजासांत प्रविष्ट है, घटपटादि यह अनुमान है.

उत्तरपक्षः—यह अनुमान तुमारा सम्यक् नहीं है, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, इन तीनोंके प्रतिजासांत प्रविष्ट होणेसें साध्यरूपही हुये.

पूर्वपक्षः—तब तो (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत. इन तीनोके न होनेसें अनुमानही नहीं बन सक्ता. जे कर कहोगे कि, (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत, ए तीनो प्रतिजासांत प्रविष्ट नहीं है, तो इनोंहीके साथ हेतु, व्यभिचारी होगा. जे कर कहोगे अनादि अविद्या वासनाके बलसें हेतु दृष्टांत जो है, सो प्रतिजासके बाहिरकी तरें निश्चय करते हैं, जैसें प्रतिपाद्य, प्रतिपादक, सजा, सजापति जनकी तरें तिस कारणसें अनुमानजी हो सक्ता है, अरु जब सकल अनादि अविद्याका विलास दूर हो जावेगा, तब तो प्रतिजासांत प्रविष्टही प्रतिजास होगा. विवादजी न रहेगा, प्रतिपाद्य प्रतिपादक, साध्य साधन जावजी नहीं रहेगा. तब तो अनुमान करनेकाजी कुछ फल नहीं, आपही अनुजवमान परम ब्रह्मके होते हुये देश काल अव्यवछिन्न स्वरूपके होयां निर्व्यजिचार, सकल अवस्था व्यापकपणे वालेमें अनुमानका कुछ प्रयोगजी नहीं चाहियें है.

उत्तरपक्षः—जो अनादि अविद्या प्रतिजासांत प्रविष्ट है, तब तो विद्याही हो गइ. तब तो असतूरूप (१) धर्मी, (२) हेतु, (३) दृष्टांत आदिक जेद कैसें दिखा सके? जे कर कहोगे प्रतिजासके बाहिरजूत है, तब तो (१) अविद्या प्रतिजासमान है? वा (२) अप्रतिजासमान है? तिस अविद्याकू प्रतिजासमान रूप होणेसें अप्रतिजासमान तो नहीं. जे कर कहोगे प्रतिजासमान हैं, तो तिसहीके साथ हेतु व्यजिचारी है तथा प्रतिजासके बाहिरजूत होणेसें तिसके प्रतिजासमान होणेसें जेकर तुमारे मनमें ऐसा होवेकी अविद्या जो है, सो नतो प्रतिजासमान है, न अप्रतिजासमान, न प्रतिजासके बाहिर, न प्रतिजासके अंदर प्रविष्ट है. न एक है, न अनेक है, न नित्य है, न अनित्य है, न व्यजिचारिणी है, न अव्यजिचारिणी है, सर्वथा विचारके योग नहीं सकल विचा

रांतर अतिक्रांत स्वरूप हे. रूपांतरके अभावसें अविद्या जो हे, सो नि रूपता लक्षण हे, यहभी तुमारी वडी अज्ञानताका विस्तार हे, तैसी निरूपता स्वभावकूं यह अविद्या हे, यह अप्रतिभासमान हे, ऐसें कौन कथन करनेकूं समर्थ हे? जे कर कहोगे यह अविद्या प्रतिभासमान हे, तो फेर क्युंकर अविद्या नीरूपसिद्ध होगी, जो वस्तु, जिस स्वरूप कर कें प्रतिभासमान हे, सो तिसही वस्तुका रूप हे; तथा अविद्या जो हे, सो विचार गोचर हे, वा विचार गोचर रहित हे? जे कर कहोगे विचार गोचर हे तब तो नीरूप नहीं, जें कर विचार गोचर नहीं, तब तो तिसके मानने वाला महा मूर्ख हे, जब विद्या अविद्या दोनोही सिद्ध हे, तब तो एक परमब्रह्म अनुमानसें कैसें सिद्ध हुआ? इस कहने करकें जो उप निषद्में ऐक ब्रह्मके कहनेवाली श्रुति हे सोभी खंडन हो गइ, तथा "स र्वंवेखल्विदंब्रह्मेत्यादि" वचनकूं परमात्माके अर्थांतर होणेसें द्वैतापत्ति हो जावेगी, जे कर कहोगे अनादि अविद्यासें ऐसा प्रतीत होता हे त ब तो पूर्वोक्त दूषणोंका प्रसंग होगा, तिस वास्ते अद्वैतकी सिद्धि वंध्या के पुत्रकी शोभावत् हे. इस कारणसें अद्वैतमत युक्तिविकल हे. इस हे तुसें एकही ईश्वर जगत्सें प्रथम था, यह कहनां मिथ्या हे. यह प्रथम ईश्वर के माननेवालोंके मतका खंडन हुआ.

अथ दूसरा ईश्वर जगत्के उपादान कारणवाला एक ईश्वर अरु दू सरी सामग्री, ए दो पदार्थ अनादि हे, तिन दोनोमेंसें सामग्री जो हे, सो ऐसे हे, (१) पृथिवी, (२) जल, (३) अग्नि, (४) वायु इन चारों के परमाणु, (५) आकाश, (६) दिशा, (७) आत्मा, (८) मन, (९) काल, ए नव वस्तु नित्य हें, अनादि हे, किसीके बनाइ होइ नहीं सो ईश्वर इस पूर्वोक्त कारणोसें इस सृष्टिकों रचता हे. अथ मतावलंबीयोंनें जिस रीतिसें ईश्वरकों जगत्का कर्त्ता माना हे, सो रीती इहां लिखते हे.

उपजातिवृंद ॥ कर्त्तास्ति कश्चिज्जगतः सचैकः, ससर्वगः सस्ववशः सनि त्यः ॥ इमाः कुहेवाकविडंवनास्यु, स्तेषां न येषामनुशासकस्त्वम् ॥ १ ॥ अस्यार्थः—जगत् जो हे, सो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करकें लक्ष्यमाण (दीसता) हे, चराचर रूप तीनो जगत्का कोइक जिसका स्वरूप कह नहीं सक्ते ऐसा पुरुष विशेष रचनेवाला हे, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानने वाले

वादी ऐसें अनुमान करते हैं किः—पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक सर्व बुद्धिवा लें कर्त्ताके करे हुये है, कार्य होणेसें जो जो कार्य है, सो सो सर्व बुद्धि वालेके करे हुये हैं. जैसें घट तैसेंही यह जगत् है, तिस कारणसें जगत् बुद्धि वालेका रचा हुआ है, जो बुद्धिवाला है, सोही भगवान् ईश्वर है, ऐसाभी मत कहनां, जो यह तुमारा हेतु असिद्ध है, किस कारणसें अ सिद्ध है? सो कहते है किः—पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक अपणे अपणे कार णके समूह करकें उत्पन्न होये है, इस वास्ते कार्य रूप है तथा अवय वी है, इस करकें कार्यरूप है; सर्व वादीयोकूं निश्चित है. तथा ऐसेंभी न कहनां जो यह तुमारा हेतु अनेकांतिक है तथा विरुद्ध है क्युंकि हमारा हेतु विपक्षसें अत्यंत हटा हुआ है, तथा ऐसेभी मत कहनां जो यह तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है, क्युंकि प्रत्यक्ष अनुमान आगम करकें बाध्या नहीं है, धर्म धर्मी अनंतर कहनेसें. तथा यहभी मत कहनां जो तुमारा हेतु प्रकरण सम है, क्युं कि अनुमानसें जो साध्य है, तिसका शत्रु भूत दूसरे साध्यके साधने वाले अनुमानके अभावसें. तथा ऐसेंभी मत कहनां जो ईश्वर पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिकोंकां कर्ता नहीं है, विना शरीरके होणेसें मुक्त आत्माकी तरें. यह पीछले तुमारे अनुमानका वैरी अनुमान है,सो ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होणे देता; क्युं कि तुमने तो ईश्वरकूं शरीर रहित सिद्ध करकें जगत्का अकर्त्ता सिद्ध कीया, परंतु हमने तो ईश्वर शरीरवाला माना है इस कारणे तुमारा अनुमान असत्य है, अरु हमारा जो हेतु है, सो निरवद्य है. तथा ईश्वर जो है सो एक है, क्युं कि जो बहुत ईश्वर मानीयें, तब तो एक कार्य करनेमें ईश्वरोंकी न्यारी न्यारी बुद्धि हो जावे, तब तो इनके मने करने वाला तो और कोइ है नहीं, फेर कार्य कैसें उत्पन्न होवे? कोइ ईश्वर तो अपणी इच्छासें चार पगवाला मनुष्य रच देवे, अरु दूसरा ईश्वर ७ पग वाला रच देवे, तथा तीसरा दो पग वाला रचदेवे अरु चौथा आठ पग वाला रच देवे, इसी तरें सर्व वस्तुकूं विलक्षण वि लक्षण रच देवे, तब तो सर्व जगत् असमंजस रूप हो जावे. परंतु सो है नहीं. इस हेतुसें ईश्वर एकही होनां चाहियें, तथा ईश्वर सर्वगत् सर्व व्यापी है, जे कर ईश्वर सर्व व्यापक न होवे, तब तो तीन भुवनमें एक साथ जो उत्पन्न होणे वाले कार्य है, सो सर्व एक कालमें कभी उत्पन्न

न होंगे, जैसे कुंभारादिक जहां होवेंगे, तहांही कुंभादिक कर सकेंगे, परंतु देशांतरमें कभी कार्य न कर सकेंगे. तथा ईश्वर जो है, सो सर्वज्ञ है, जे कर सर्वज्ञ न होवेगा तब तो सर्व कार्योंका उपादान कारण कैसें जानेगा? जब कार्योंके उपादान कारणकूं न जानेगा, तब तो जगत् विचित्र कैसें रच सकेगा? तथा स्ववशः ईश्वर जो है, सो स्वतंत्र हैं किसि दूसरेके अधीन नहीं. ईश्वर अपणी इछासें सर्व जीवोंकूं सुख दुःखका फल देता है ॥ उक्तं च ॥ ईश्वरप्रेरितो गछेत्, स्वर्गं वा श्वभ्रमेव वा ॥ अन्यो जंतुरनीशोय–मात्मनः सुखदुःखयोरिति ॥ १ ॥ अस्यार्थः–ईश्वर हीकी प्रेरणाहीसें जगत्वासी जीव, स्वर्ग तथा नरकमें जाता है, क्युंकि ईश्वरके विना और सर्व जीव आपणे आपकूं सुख दुःखका फल देनेकूं समर्थ नहीं है, जे कर ईश्वरकूं भी परतंत्र (पराधीन) मानीयें, तब तो मुख्य कर्त्ता ईश्वर न रहेगा, अपर अपरके अधीन माननेसें अनवस्था दूषणभी लग जायेगा, इस हेतुसें ईश्वर अपणेही वश है, परंतु पराधीन नहीं. तथा "सनित्यः" (सो ईश्वर) नित्य है जेकर ईश्वर अनित्य होवे तब तो तिसके उत्पन्न करने वाला कोइ और चाहियें, सोतो है नहीं, इस हेतुसें ईश्वर नित्यही है, ऐसें पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त ईश्वर (भगवान्) जगत्का कर्त्ता है, इति पूर्वपक्षः

उत्तरपक्षः–हे वादी! जो तुमारा यह कहनां है. पृथिवी, पर्वत, वृक्षादिक बुद्धिवाले कर्त्ताके रचे हुये है, सो अयुक्त है, क्युं के इस तुमारे अनुमानसें व्याप्तिका ग्रहण नहीं हो सक्ता है, अरु हेतु जो होता है, सो सर्वत्र व्याप्तिसें प्रमाण करके सिद्ध हुया होयाही अपणे साध्यका गमक होता है. इस कहनेमें सर्व वादियोंकी सम्मति है.

अब प्रथम तुम यह कहो जब ईश्वर जगतकूं रचता है, तो ईश्वर शरीर वाला है? वा शरीर रहित है? जेकर कहोगे ईश्वर शरीर वाला है, सो हमारा सरीखा दृश्य शरीर अर्थात् दिखलाइ देने वाला शरीर है अथवा पिशाच आदिकोंकी तरे अदृश्य (न दिखलाइ देने वाले) शरीर करी संयुक्त है? जेकर प्रथम पक्ष मानोगे तब तो प्रत्यक्ष बाधा है. जिस ईश्वरके बिनाही अब भी उत्पन्न होते हुये तृण, वृक्ष, इंद्रधनुष, बादल प्रमुख का

योंके देखनेसें. जैसें "अनित्यशब्दप्रमेयत्वात्" जैसें यह प्रमेयत्व हेतु साधारण अनेकांतिक है, तैसें ही यह कार्यत्व हेतुसाधारण अनेकांतिक है.

२ जेकर दूसरा पक्ष मानोगे, तब जो ईश्वरका शरीर नहीं दिखलाइ देता (१) सो ईश्वरके माहात्म्य करकें नहीं दिखलाइ देता? (२) वा हमारी बुरी अदृष्टका प्रभाव है? एतावता हमारे खोटे कर्मके प्रभावसें नहीं दिखलाइ देता है? जे कर प्रथम पक्ष ग्रहण करोगे जो ईश्वरके माहात्म्यसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता, इस पक्षमें कोइ भी प्रमाण नहीं है, जिससें ईश्वरका माहात्म्य सिद्ध होवे, परंतु हे वादी! जे कर त्रपु (जिस्त) तपा कर पीवें ऐसी सच्ची सौगंद करे तो कदाचित् मान भी लेवे, अन्यथा नहीं. अरु इस तुमारे कहनेमें इतरेतर आश्रय दूषण भी है, जब माहात्म्य विशेष सिद्ध हो जावे तब अदृश्यशरीर वाला सिद्ध होवे, जब अदृश्य शरीर वाला सिद्ध होवे, तब माहात्म्य विशेष सिद्ध होवे, इतीतरेतराश्रय दूषण. जे कर दूसरा पक्ष पिशाचादिकोंकी तरे अदृश्य शरीर ईश्वरका है ऐसे मानोगे तब तो संशय की निवृत्ति न होवेगी सो कैसें कि:—क्या ईश्वर है नहीं जिस करकें उसका शरीर नहीं दीख पडता? तब तो वांझके पुत्रके शरीरकी तरें, किंवा हमारे पूर्व पापोंके प्रभावसें ईश्वरका शरीर नहीं दीखता; यह संशय कभी दूर न होवेगा. जे कर कहोगे हमारा ईश्वर शरीररहित है, तब तो दृष्टांत अरु दार्ष्टांतिक यह दोनो विषम हो जावेंगे और हेतु विरुद्ध हो जावेगा, क्युंकि घटादिक कार्योंका कर्त्ता शरीरवालाही कुंभारादिक दीख पडता है, अरु ईश्वरकूं जब शरीर रहित मानोगे तब तो ईश्वर कुछभी कार्य करणेकूं समर्थ न होवेगा, आकाशकी तरें नित्यव्यापक अक्रिय जो है, सो अकर्त्ता है, इस हेतुसें शरीर सहित तथा शरीर रहित ईश्वरके साथ कार्यत्व हेतुकी व्याप्ति सिद्ध नहीं होती है; तथा तेरा हेतु कालात्ययापदिष्टभी है, तेरे साध्यके धर्मीका एक देश, वृक्ष, वीजली, वादल, इंद्रधनुषादिकोंका अबभी कोइ बुद्धिमान् कर्त्ता नहीं दीख पडता है, इस वास्ते प्रत्यक्ष करकें बाधित होयां पीछे तुमने अपणा हेतु कहा. इस वास्ते तुमारा हेतु कालात्ययापदिष्ट है. इस तुमारे कार्यत्वहेतुसें बुद्धिमान् (बुद्धिवाला) ईश्वर जगत्का कर्त्ता कभी सिद्ध नहीं होता है.

तथा दूसरी तरे जगत् कर्त्ताके खंडन करनेका स्वरूप लिखते है; जो

कोइ ईश्वरवादी यह कहते हैं. जगत् सर्व ईश्वरका रचा हुआ है, यह उनका कहनां समीचीन नहीं है. काहेतें कि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्षः—ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता सिद्ध करनेवाला अनुमान प्रमाण है, तथाहि जो ठहर ठहर करकें अभिमत फलके संपादन करनेके तांइ प्रवृत होवे, तिसका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर होनां चाहियें. जैसें वसोला आरी प्रमुख शस्त्र, काष्टके दो टुकडे करणेमें प्रवर्त्तते हैं, तैसेंही ठहर ठहर कर सर्व जगत्कूं सुख दुःखादिक जे फल देते हैं तिनका अधिष्ठाता कोइ बुद्धिमान् जरूर चाहियें है, तुमने ऐसें न कहनां जो वसोला आरी प्रमुख आपही काष्टके दो टुकडे करणेमें प्रवृत्त होते हैं, क्युं कि वोतो अचेतन हैं आपही कैसें प्रवृत्त हो सकें? जे कर कहोगे वसोला आरि प्रमुख स्वभावसें प्रवृत्त होते हैं तव तो तिनकूं सदाही प्रवृत्त होना चाहियें, वीचमें कभी ठहरनां न चाहियें, परंतु ऐसें है नहीं, इस पूर्वोक्त हेतुसें जो ठहर ठहर कर अपणे अपणे फलके साधनेवाले जीव हैं, तिनका अधिष्ठाता ईश्वर (भगवान्) ही सिद्ध हो सक्ता है, तथा दूसरा अनुमान जो परिमंडलादिक, वृत्त, त्र्यंश, चतुरंश, संस्थान वाले गाम, नगरादिक हैं; वे सर्व ज्ञानवान्के करे हुये हैं, जैसें घटादिक पदार्थ, तैसेंही पूर्वोक्त संस्थान संयुक्त पृथिवी, पर्वत प्रमुख हैं. इस अनुमानसेंभी जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है, इति पूर्वपक्षः ॥

उत्तरपक्षः—जिस अनुमानसें तुमने जगत्का कर्त्ता ईश्वर सिद्ध करा है, सो तुमारा अनुमान अयुक्त है, क्योंकि यह तुमारा पूर्वोक्त अनुमान हमारे मतमें जैसें आगें सिद्ध है, तैसेंही सिद्ध करता है, इस वास्ते सिद्ध साधन दूषण तुमारे अनुमानमें होता है, जैसें हमारे मतमें आगेंही सिद्ध है तेसें लिखते हैं:—संपूर्ण यह जगत्की विचित्रता जो है सो सर्व कर्मके फलसें है, ऐसे हम मानते हैं, क्योंकि यह जो भारतवर्षमें अनेक देशोमें, अनेक टापुओंमें, अनेक हेमवंत आदिक पर्वतोंमें, अनेक प्रकारके मनुष्यादि प्राणी जो वास करते हैं, अरु जो उनकूं सुख दुःखादिक अनेक तरेंकी अवस्था वण रही है, तिन सर्व अवस्थायोंका कारण कर्म ही जानने. दूसरा कोइ नहीं. अरु देखनेमेंभी कर्मही कारण हो सके हैं.

क्योंकि जब कोइ पुण्यवान् राजा राज करता है. तब उसके राजमें सुका ल, निरुपद्रव देशोमें होता है, तो वो उस राजाके शुभ कर्मका प्रभाव है, इस कारणसें जो ठहर ठहर जीवोंकूं फल देते हैं सो कर्म हैं. कर्म जो हैं सो जीवोंके आश्रय हैं. अरु जीव जो हैं सो चेतन होणेसें बुद्धि वाले हैं तब तो बुद्धिवालेके अधीन हो कर कर्म ठहर ठहर कर फल देते हैं. इस कारणसें सिद्ध साधन दूषण है. जे कर कहोगे हम तो विशिष्ट बुद्धिवाला ईश्वरही सिद्ध करते है, परंतु सामान्य बुद्धिवाले जीव नहिं सिद्ध करते? तब तो तुमारा दृष्टांत साध्यविकल है, वसोला आदि प्रमुख विषे ईश्वर अधिष्ठितका व्यापार नहीं उपलंभ होता है. किंतु कुंभकारादिकोंका व्या पार तहां तहां अन्वय व्यतिरेक करकें उपलब्ध होता है.

पूर्वपक्षः—वर्द्धक्यादिकभी ईश्वर प्रेरणाहीसें तिस तिस काममें प्रवृत्त होते है, इस वास्ते हमारा दृष्टांत साध्य विकल नहीं है.

उत्तरपक्षः—तब तो ईश्वरभी और ईश्वरकी प्रेरणाहीसें प्रवृत्त होवेगा प रंतु आप नहीं प्रवृत्त होता. सोभी ईश्वरकी दूसरे ईश्वरकी प्रेरणासें प्रवृत्त होगा. तब तो अनवस्था दूषण होगा.

पूर्वपक्षः—वढइ प्रमुख जीव तो सर्व अज्ञानी हैं. इस वास्ते ईश्वरकी प्रेरणाहीसें अपणे अपणे काममें प्रवृत्त होते हैं, अरु ईश्वर (भगवान्)तो सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है, इस वास्ते अनवस्था दूषण नहीं है.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि इस तुमारे कहनेमें इतरेतर दूषण होता है. प्रथम ईश्वर सर्व पदार्थका यथावस्थित स्वरूप ज्ञाता सिद्ध हो जावे. तब अन्यकी प्रेरणा विना ईश्वर आपही प्रवृत्त होता है ऐसा सिद्ध होवे, जब अन्यकी प्रेरणा विना ईश्वर आपही प्र वृत्त होता है ऐसें सिद्ध हो जावे तब तो ईश्वर सर्व पदार्थका यथाव स्थित स्वरूप जाननेवाला सर्वज्ञ सिद्ध होवे, जब तांइ दोनोंमेंसे एक सिद्ध न होवे. तब तांइ दूसरेकी सिद्धि कभी न होगी, तथा हे ई श्वरवादी! हम तुमकूं पूछते हैं जे कर ईश्वर सर्वज्ञ अरु वीतराग है तो काहेकूं और जीवोंकूं असत् व्यवहारमें प्रवर्त्तावे है? क्यों कि जो विवेकी होते है वे मध्यस्थही होते हैं. फेर तो जीवोंकूं सत्व्यवहा रहीमें प्रवृत्त करनां चाहियें. परंतु असत् व्यवहारमें नहीं प्रवृत्त करनां

चाहियें अरु ईश्वर तो असत् व्यवहारोंमेंजी जीवोंकूं प्रवृत्त करता है,तब तो ईश्वरकूं सर्वज्ञ श्रो वीतराग क्यों कर कहना चाहियें ?

पूर्वपक्षः–ईश्वर (जगवान्) तो सर्व जीवोंकूं शुज कर्म करनेहीमें प्रवृत्त करता है, इस वास्ते जगवान् सर्वज्ञ श्रोर वीतरागही है. अरु जो जीव अधर्म करनेवाले है, उनकूं असत् व्यवहारमें प्रवृत्त करकें पीछे नरकपात करकें उनकूं फल देता है, जो फेर वो जीव इस दुःखसें मरता हुआ फेर पाप न करे, इस वास्ते उचित फल देणे करकें ईश्वर (जगवान्) विवेकवान् अरु वीतराग सर्वज्ञ है, उसमें कोइजी दूषण नहीं है.

उत्तरपक्षः–यहजी तुमारा कहना विना विचारेका है. क्योंकि प्रथम पाप करनेमेंजी तो ईश्वरही प्रवृत्त करता है, ईश्वर विना दूसरा तो कोइ प्रेरक है नहीं. अरु जीव आप तो कुछ कर सक्ता है नहीं, क्योंकि जीव तो अज्ञानी है पापमें वा धर्म्ममें आप नहीं प्रवृत्त हो सक्ता,तो फेर प्रथम पाप करानेकूं जीवोंकूं प्रवृत्त करनां, पीछे नरकमें डालके उस जीवकूं फल जुक्तानां, पीछें धर्ममें प्रवृत्त करनां, क्या यही ईश्वरकी ईश्वरता, अरु विचार पूर्वक करणां है ?

पूर्वपक्षः–ईश्वर (जगवान्) जीवोंकूं कदेइ नहीं प्रवृत्त कर्त्ता, किंतु जीव आपही प्रवृत्त होता है, तब तो जो जीव जैसा जैसा कर्म करता है, उस कर्मके वशसें ईश्वर (जगवान्) जी तैसा तैसा फल उन जीवोंकूं देता है, जैसें राजा राज करता है, परंतु राजा चोरकूं असें नहीं कहता जो तूं चोरी कर, किंतु चोरी करनेकी मनाइ तो करता है. फेर जे कर वो चोर जो आपही चोरी करेगा, तब दंम तो राजा देवेगा, तैसें ईश्वर (जगवान् (पाप तो नहीं कराता, परंतु पाप करने वालोंकों दंम देता है.

उत्तपक्षः–यहजी तुमारा कहना अयुक्त है, क्योंकि दूसरे जो राजा हैं, सो चोरोंकूं निषेध करनेमें समर्थ नहीं हैं; क्योंकि कैसाही उग्र (कठिन) हुकम वाला राजा होवें श्रोर मन वचन काया करकें कितनाही चोरी आदिक पाप कर्म मने करा चाहे, परंतु लोक चोरी आदिक पापकर्म कदापि सर्वथा न छोडेंगे. अरु ईश्वर (जगवान्) तो सर्व शक्तिमान् तुम मानते हो, तो फेर सर्व जीवोंकूं पाप करनेमें प्रवृत्त होतोंकूं क्यो नहीं मने करता ? जब ईश्वर जीवोंकूं पाप करतां मने नहीं करता, तब तो ईश्वर ही जीवोंपासों पाप कराता है, फेर उनकूं दंम देता है, तो फेर वोही

पूर्वोक्त दूषण है. जेकर कहोगे कि जीवोंकूं पापमें प्रवृत होतोंकूं ईश्वर म ने करने समर्थ नहीं, तो फेर ऊंचे शब्दसें ऐसें न कहनां जो "सर्व कुछ ईश्वरनेही करा है, और ईश्वर सर्व शक्तिमान् है" तथा जेकर जीव पापभी आपही करता है, अरु धर्मभी आपही करता है, तो फलभी आपही भोग लेवेगा, तो फेर हे पूर्वपक्षी! ईश्वर कर्त्ताकी कल्पना व्यर्थ है.

पूर्वपक्षः–धर्म अधर्म तो जीव, आपही करते हैं, परंतु उनका फल प्रदान तो ईश्वरही कर्त्ता है, जीव जो हैं, सो आपणे करे हुवे धर्म अधर्मका फल आप भोगनेकूं समर्थ नहीं है, जैसें चोर चोरी करता है सो चोरी तो आपही करता है, परंतु उस चोरीका फल (बंदीखाना) भोगना आप नहीं भोग सक्ता, कोइ दूसरा बंदीखानेमें डालने वाला चाहियें.

उत्तरपक्षः–यहभी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जब जीव, धर्म अधर्म करने समर्थ है, तो फेर फल भोगनेमें समर्थ क्युं नहीं? इस संसारमें जैसा जैसा जो जीव पाप, धर्म करता है, तैसा तैसा पाप धर्मके फल भोगनेमें निमित्तभी बन जाता है, जैसें चोर चोरी करता है, तिस चोरीका फल राजा देता है, तथा कुष्ट हो जाता है, तथा शरीरमें कीडे पड जाते हैं, तथा अग्निमें जल मरता है, तथा पाणीमें डूब मरता है, तथा खड्गसें कट जाता है, तथा तोप बंदूककी गोला गोलीसें मर जाता है, तथा हाट, हवेली, औ माटीके खानेके नीचें दब कर अनेक तरेंके संकट भोग कर मर जाता है, निर्धन हो जाता है, इत्यादि असंख्य निमित्तोंसें अपणे करे कर्मके फलकूं भोक्ता है. इहां विना निमित्तके दूसरा ईश्वर फलदाता कोइ नहीं दीखता, ऐसें ही नरक स्वर्गादि परलोकमें भी शुभाशुभ कर्म फल भोगनेके असंख्य निमित्त हैं. जे कर कहोगे जो परस्त्री गमन करनेसें इत्यादि पापफलमें क्या निमित्त मिलेगा, जिसके जोगसें फल भोगनां होगा? यह बात तो में (ग्रंथकार) नहीं जानता, जो इस पुण्य पापका यह निमित्त तुमकूं मिल कर फल होगा, क्युंकि मेरेकूं इतना ज्ञान नहीं जो ठीक ठीक पूरा पूरा निमित्त बता सकूं? परंतु इतना कह सक्ता हूं कि जो जो जीव पुण्य पाप करते हैं, उनके फल भोगनेमें अवश्य कोइक निमित्त जरूर होगा. अरु इस तरेंसें फल भोगेगा, यह निमित्त मिलेगा, अमुक देशमें, अमुक कालमें, इत्यादि सर्व प्रत्यक्षपणे तो अर्हंत, भगवंत

(परमेश्वर) सर्वज्ञके ज्ञानमें जासन होता है. निमित्त कोइजी विना फल न हीं जोग सक्ता, इस वास्ते ईश्वर फलदाता कल्पना व्यर्थ है, क्या यहजी बुद्धिमानोका कहना है कि जो रोटी पका तो सक्ता है, परंतु आप खा नहीं सक्ता, तथा ईश्वरकूं फलदाता कल्पना करनेसें एक औरजी कलंक तुम परमेश्वरकूं लगाते हो, जैसें किसी पुरुषकूं किसी दूसरे पुरुषने खड्गा दि शस्त्रसें मारे, तब तो मरने वालेने जो संकट पाया, सो किसके योग सें? किसकी प्रेरणासें पाये? जे कर कहोगे ईश्वरने उस शस्त्र वालेकूं प्रेरा, तब तिसने उसकूं मारा, तो फेर उस मारने वालेकूं फांसी क्युं मिलती है? क्या ईश्वरका यही न्याय है, जो प्रथम पुरुषके हाथसें उसकूं मरवा मालनां, अरु पीछे फेर उस मारने वालेकूं फांसी देनां, इस तुमारी सम कने ईश्वरकूं वडा अन्यायी सिद्ध करा है जे कर कहोगे ईश्वरकी प्रेरणा के विना ही उस पुरुषने दूसरे पुरुषकूं मारा, अरु दुःखदीया, तब तो नि मित्तहीसें सुख दुःखका जोगनां सिद्ध हो गया, फेरजी ईश्वर फलदाता कल्पना करनां यह अल्प बुद्धिवालोंका काम है, तथा हे ईश्वरवादी! तुमकूं एक और बात पूछते हैं कि जो धर्मका फल है कि उन्मत्त देवांगनाउं के सुकुमार शरीरका स्पर्श करना सो तो जीवोंकूं सुखका कारण है, इस वा स्ते ईश्वरने यह फल तो जीवोंकूं दीया. परंतु जो अधर्मका फल घोर नरक के कुंभमें पडनां, नाना प्रकारके दुःख. (संकट) त्रास कुंजीपाक चर्मउत्क र्त्तन, अग्निमें ज्वलना, इत्यादि महा दुःख ईश्वर उस जीवकूं क्यों देता है?

पूर्वपक्षः—उस जीवने जो पाप करे थे, उनका फल उस जीवकूं जरू र होनां चाहियें इस वास्ते ईश्वर फल देता है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेसें तो ईश्वर व्यर्थ ही जीवोंकूं पीडा देता है, क्योंकि जब ईश्वर उस जीवकूं पापका फल न देगा, तब तो जीव कर्म का फल आप तो जोग सक्ता नहीं. फेर नतो शरीर धारेगा अरु नवीन पापजी न करेगा; फेर बेठे बेठायें ईश्वरकूं क्या गुदगुदी उठती है जो फेर उन जीवोंकूं नरकमें डाल देता है? जो मध्यस्थ जाव वाला अरु प रम दयालु होता है, वो किसी जीवकूं कजी निरर्थक पीडा नहीं देता.

पूर्वपक्षः—ईश्वर (जगवान्) अपणी क्रीडाके वास्ते किसीकूं नरकमें डाल ता है, किसीकूं तिर्यंचयोनिमें उत्पन्न करता है, किसीकूं मनुष्य जन्ममें,

किसीकूं स्वर्गमें उत्पन्न करता है, जब वो जीव नाचते, कूदते, रोते, पीटते, विलाप करते हैं, तब ईश्वर अपणी रची हुइ बाजीका तमासा देखता है, इस वास्ते जगत् रचता है.

उत्तरपक्षः—जब ऐसें है, तब तो ईश्वर प्रेक्षावान् नहीं है, क्युं कि उसकी तो क्रीडा होती है, अरु रंक जीव तडफ तडफके महा करुणास्पद हो कर मर रहें हैं. तो फेर ईश्वरकूं दयालु माननां यह कैसी तुमारी अज्ञानता हे? क्योंकि जो महा पुरुष दयालु सर्वज्ञ होते हैं वै कदापि किसी जीवोंकूं दुःख दे कर क्रीडा नहीं करते, तो फेर ईश्वर क्रीडार्थी कैसें हो सक्ता है? तथा क्रीडा जो है, सो सरागीकूं होती है अरु ईश्वर (भगवान्) तो वीतराग है, तो फेर ईश्वर (भगवानकूं) क्रीडारसमें मग्न होणा कैसें संभवे ?

पूर्वपक्षः—हमारा जो ईश्वर हे सो रागी द्वेषी हे इस कारणसें उसमें क्रीडा करणेका संभव हो सक्ता है.

उत्तरपक्षः—तब तो तुमने मुख चोपडनेके बदले आपणा मुख काला कर लीया, क्योंकि जब रागी द्वेषी होगा, तब तो ईश्वर शेष जीवोंकी तरें सरागी हुवा, वीतराग न हुवा, अरु सर्वज्ञभी न हुवा, तब तो हमारे सरीखा हुवा फेर जगत्का रचने वाला क्यों कर हो सक्ता हे ?

पूर्वपक्षः—हम तो ईश्वरकूं राग द्वेष संयुक्त सर्वज्ञ मानते हैं, इस वास्ते सर्व जगत्का कर्त्ता हे.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें कोइभी प्रमाण नहीं हे, जिस प्रमाणसें ईश्वर रागी, द्वेषी, सर्वज्ञ सिद्ध होवे ?

पूर्वपक्षः—ईश्वरका स्वभाव ही ऐसा जो रागी द्वेषीभी होनां, अरु सर्वज्ञभी रहनां, स्वभावमें कोइ तर्क नहीं हो सक्ती जैसें अग्नि तो दाहक हे, परंतु आकाश दाहक क्यों नहीं? इस प्रश्नमें उत्तर यह दीया जायगा जो अग्निमें दाहक स्वभाव हे, आकाशमें नहीं. इसी तरें ईश्वर भी स्वभावसें ही रागी, द्वेषी अरु सर्वज्ञ हे.

उत्तरपक्षः—ऐसें तो कोइक वादी भी कह सक्ता हे जो यह हमारे सन्मुख गधा खडा हे, सो सर्व जगत्का रचने वाला हे, जे कर कोइ वादी पूछेकि किस हेतुसें यह गर्दभ जगत्का रचने वाला हे? तब तो तिसकूं

ऐसा उत्तर दीया जायगा जो इस गर्दनका स्वनाव ही ऐसा है, जो जगतकूं रचके राग द्वेष वाला सर्वज्ञ हो कर फेर गर्दन बन जाता थे, इसी तरें महिष आदिक सर्व जीव जगत्के कर्त्ता वादी सिद्ध कर देवेंगे, तब तो ईश्वर क्या हुआ जो कुछ अपने मनमें मान्या सो बना लीया, यह तो ईश्वरकूं बमा कलंक लगाना है. इस हेतुसें ईश्वर (जगवान्) सर्वज्ञ अरु वीतराग है, फेर क्रीमाके अर्थे कन्नी जगत्कूं न रचेगा, तथा हे ईश्वरवादी! तेरे कहनेसें जब ईश्वरनेही सर्व कुछ रचा है तब तो सर्व तीनसो त्रेशठ पाखंड मतके सर्व शास्त्रनी ईश्वरहीने रचे हैं, अरु शास्त्र सर्व आपसमें विरुद्ध हैं, तब तो अवश्य कितनेक शास्त्र सत्य अरु कितनेक असत्य हैं, तब तो जुठ अरु सत्य दोनोंका उपदेशक ईश्वर ही ठहरा, तब तो ईश्वर आपही सर्व मतांतरीयोंकों आपसमें लमाता है, हजारों लाखों मनुष्य इन मतोंके जगडोंमें मर जाते हैं, तब तो ईश्वरने शास्त्र क्या रचे? एक जगत्में बडा उपद्रव रचा, ऐसें जूठे सचे शास्त्र रचनेवालेकूं महा धूर्त्त कहनां चाहियें, नतु ईश्वर. जे कर कहोगे ईश्वरने तो सचे शास्त्र ही रचे हैं, जूठे नहीं रचे. जूठें तो जीवोनें आपही बना लीयें हैं, तब तो ईश्वरने जगत् नी नहीं रचा होगा, जगत् नी जीवोंने ही रचा होगा क्योंकि ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता सिद्ध हुआ नहीं.

तथा तुमने जो पूर्वे दूसरा अनुमान करा था, कि जो जो आकार वाली वस्तु है, सो सो सर्व बुद्धिवालेकी रची हुइ है, जैसें पुराना कूवा देखेंगे यद्यपि कारीगर तहां नहींनी उपलब्ध होता, तोनी कारीगर ही कर्त्ता अनुमानसें सिद्ध होगा, जैसें नवे कूवेका कर्त्ता उपलब्ध होता है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां समीचीन नहीं, क्यों कि आकार वाला हेतु, तुमारा संध्या, बादल, सर्प्पकी वंवी प्रमुख संस्थान वालोमें है, परंतु बुद्धिवाला कर्त्ता कोइ नहीं है. जे कर कहोगें बादल, इंद्रधनुष, सर्प्पकी वंवी प्रमुख संगाण वाले बुद्धिमान्के करे हुये नहीं माने जाते है तैसें ही पृथिवी, पर्वत नी बुद्धिमान्के करे हुये नहीं मानने चाहियें.

इन पूर्वोक्त प्रमाणोसें किसी तरें नी ईश्वर जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, अब जे पुरुष, ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता मानते है, उनसें हम यह कहेते है, कि जब तक इन हमारी युक्तियोंका उत्तर सर्वथा न दीया जावे,

तब तांई ईश्वरकूं जगत्का कर्त्ता न मानना चाहियें. जब कोइ ईश्वरवा दी इन युक्तियोंका उत्तर, पूरा दे देवेंगा, तब तो हमभी जगत्का कर्त्ता ईश्वर मान लेवेगें, अन्यथा कभी नहीं माना जायगा.

पूर्वपक्षः—ईश्वर तो जगत्का कर्त्ता सिद्ध नहीं होता, परंतु एक ईश्व र है ऐसा तो सिद्ध होता है कि नहीं?

उत्तरपक्षः—ईश्वर एकही है, यह बात सिद्ध करनेवाला कोई प्रमाण नहीं है, तब तो ईश्वर एक सिद्ध कैसें होवे?

पूर्वपक्षः—ईश्वरके एकत्व सिद्ध होणेमें यह प्रमाण है, कि जहां बहुते एकठे हो कर एक कामकूं करने लगते हैं, तब तो अन्य अन्य मति हो णेसें एक कार्यभी नहीं बन सक्ता, ऐसेही जब ईश्वर अनंत होंगे, तब तो सृष्टि प्रमुख एकही कार्यके करनेमें न्यारी न्यारी मति होणेसें अस मंजस कार्य उत्पन्न होवेगा, इस वास्ते ईश्वर एकही होना चाहियें.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे प्रमाणसें तो ईश्वर, एक नहीं सिद्ध होता है, क्यों कि इश्वर तो किसी वस्तुका कर्त्ता उक्त प्रमाणोंसें सिद्ध नहीं होता है, तथा एक मधुछत्तेके बनानेमें सर्व मक्षीयोंका एक मता तो हो जाता है, अरु ईश्वर, परमात्मा, निर्विकार, निरुपाधिक, ज्योतिःस्वरूपोंका एक मता नहीं हो सक्ता, यह बडे आश्चर्यकी बात है? क्या तुमने ईश्वरोंकूं कीडों सेंभी बुद्धिहीन, अभिमानी, अरु अज्ञानी बना दीया. जो उन स र्वका एक मता नहीं हो सक्ता?

पूर्वपक्षः—मक्षिका जो बहुत एकठी हो कर एक मधुछत्ता आदिक कार्य बनाती हैं, तहांभी एक ईश्वरहीके व्यापारसें एक मधुछत्ता बनता है.

उत्तरपक्षः—तब तो घडा बनानां, चोरी करनां, परस्त्रीगमन करनां, इ त्यादिक सर्व काम, ईश्वरके व्यापारसें बने सिद्ध होंगे, अरु जीव सर्व, अकर्त्ता सिद्ध हो जावेंगे; फेर पुण्य पापका फल किसकूं होगा? अरु न रक स्वर्गमें जीव, क्यों भेजे जायगे.

पूर्वपक्षः—जीव, कुंभारादिक चोरादिक सर्व स्वतंत्रतासें अपना अपना कार्य करते हैं, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है.

उत्तरपक्षः—क्या मक्षीयोंहीने तुमारा कुछ अपराध करा है जो उनकूं स्वतंत्र नहीं कहते हो? इस तुमारे एक ईश्वरके माननेसें तो ऐसाभी प्र

तीत होता हे; जेकर अनंत ईश्वर माने जावे, तब जो कदाचित् एक सृष्टि रचनेमें विवाद हो जावे, तो फेर उस विवादकूं दूर कोन करे? शिर,पंच तो कोइ हे नहीं; तथा एक ईश्वरकूं देख के दूसरा ईश्वर इर्ष्या करेगा, जो यह मेरे तुल्य क्युं हे? इत्यादिक अनेक उपद्रव उत्पन्न हो जावेंगे; इस वास्ते ईश्वर एकही मानना चाहियें, यहजी तुमारी समज अज्ञानरूपी घुणकी खाइ हुइ हे, क्युं कि जब ईश्वर (जगवान्) सर्वज्ञ हे, तब तो सर्वज्ञ के ज्ञानमें एकही सरीखा जान होनां चाहियें, तो फेर विवाद क्यों कर होगा? तथा ईश्वर तो राग, द्वेष, ईर्ष्या, अजिमानादि सर्व दूषणो सें रहित हे, तब दूसरे ईश्वरकूं देख कर ईर्ष्या अजिमान क्यों कर करेंगे? जे कर ईश्वर हो करजी आपसमें विवाद, जगडे, ईर्ष्या अजिमान करेंगे? तो तिन पामरोंकूं ईश्वरही केसें माना जायगा? जब जगत्कर्त्ताही ईश्वर सिद्ध नहीं होता, तब तो विवाद जगडाही ईश्वरोंका आपसमें काहेकूं होगा? इस वास्ते ईश्वर अनंते माननेमें कुछजी दूषण नहीं. तथा "सर्वगतत्वं" ईश्वर सर्व व्यापक हे, यहजी जो मानते हे, सो जी प्रामाणिक नहीं हे, क्योंकि जब ईश्वरकूं सर्व व्यापक, वादी मानते हें, तब शरीर करकें व्यापक मानते हें? वा ज्ञान स्वरूप करकें व्यापकमानते हें? जे कर शरीर करकें ईश्वरकूं व्यापक मानेगे,तब तो ईश्वरका शरीरही सर्व जगा समाजायगा, दूसरे पदार्थोके रहने वास्ते कोइजी अवकाश न मिलेगा? इसवास्ते ईश्वर देह करकें तो सर्वत्र व्यापक नहीं हे.

प्रश्नः—क्या ईश्वरकेजी शरीर हे, जो तुम ऐसे विकल्प करते हो?

उत्तरः—हे जव्य! ऐसेजी इस जगत्में मत हे,जो ईश्वरकूं देहधारी मानतेहें.

प्रश्नः—वो कोनसें मत हे, जिनोंने शरीरधारी ईश्वर माना हे?

उत्तरः—तोरेतनामा ग्रंथ हे, तिसमें ऐसें लिखा हे, जो ईश्वरने अबरहामके यहां रोटी खाइ इस लिखनेसें, तथा याकूबके साथ कुस्ती करी, इस लिखनेसें प्रतीत होता हे जो ईश्वर देहधारी हे तथा शंकरदिग्विजयके दूसरे प्रकरणमें शंकरस्वामीका शिष्य, आनंदगिरि जोकी इसी ग्रंथकी आदिमें लिखता हे, जो में सर्वज्ञ हुं सो लिखता हे कि जब नारदजीने देखा की इस लोकमें बहुत कपोलकल्पित मत उत्पन्न हो गये, अरु सनातन धर्म लुप्त हो गया हें, तब तो नारदजी शीघ्रही ब्रह्मा

जीके पास पहुंचे, अरु जा कर कहने लगे कि हे पिताजी ? तुमारा मत तो प्रायः नहीं रहा, अरु लोकोने अनेक मत बना लीये हैं. सो इस वातका कुछ उपाय करनां चाहियें. तव तों ब्रह्माजी वहुत काल तांइं चिंता करकें पुत्र, मित्र, भक्त जनोंकूं साथ ले कर अपणे लोकसें चल कर शिवलोक में प्रवेश करते हुये. आगें क्या देखते हैं कि जैसे मध्यान्हमें कोटि सूर्यों का तेज तथा कोटि चंद्रमा समान शीतल, और पांच जिसके मुख हैं, चंद्रमा मुकुट है, विजलीवत् पिंगल जटाका धारक, औ पार्वती जिसके वामा ऊ अंगमें है, सर्वका ईश्वर महादेव देखा. फेर ब्रह्माजीने नमस्कार करके स्तुति करी, और कहते हुये कि जो महादेव, सर्वज्ञ, सर्वलोकेश, सर्व साक्षी सर्वमय, सर्वकारण, इत्यादि इस लिखनेसें प्रगट प्रतीत होता है जो ईश्वर देहधारी है, जे कर देहधारी ईश्वर न होवें, तो फेर पांच मुख कैसें होवे ? इस लिखनेसें ईश्वर शरीर रहित नहीं सिद्ध हो सक्ता है. अव जे कर शरीरधारी ईश्वर होवे तव तो इस लोकमें एकिला ईश्वरही व्यापक हो कर रहेगा, दूसरे पदार्थोंके वास्ते कोइ दूसरा लोक रहनेकूं चाहियें ? जे कर कहोगे ज्ञानात्मा करकें ईश्वर सर्व व्यापक है, तव तो सिद्ध साध्य नहीं है, हमभी तो ज्ञानस्वरूप करकें भगवानकूं सर्व व्यापी मानते हैं, परंतु जे कर तुमारे वेदसें न विरोध होवे ? क्युंकि वेदोमें शरीर करकेही सर्व व्यापक कहा है ॥ तथाच ॥ "विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखो विश्वतो वाहुरुत विश्वतस्पादित्यादि श्रुतेः" ईस श्रुतिसें सिद्ध है, जो ईश्वर शरीर करकें सर्व व्यापक है, फेर तो पूर्वोक्त दूषण है, ईस वास्ते ईश्वर व्यापक नहीं. तथा तुम कहते हो जो ईश्वर सर्वज्ञ है, परंतु तुमारा ईश्वर सर्वज्ञ भी नहीं. क्यों के हम जो ईश्वर सृष्टिकर्त्ताके खंडन वाले है, सो उससें विपरीत चलते हैं, फेर हमकूं उसने क्यों रचा ? जे कर कहोगे जन्मांतरोंमें उपार्जित जो जो तुमारे शुभाशुभ कर्म, तिनोंके अनुसारसें तुमकूं ईश्वर फल देता है, तो फेर तुमारे कहनेहीसें ईश्वरके स्वतंत्रपणेकूं जलांजलि दीनी गई, क्यों कि जव हमारे कर्मोंके विना ईश्वर फल नहीं दे सक्ता, तव तो ईश्वरके कुछ अधीन नहीं, जैसें हमारे कर्म होंगे, तैसा हमकूं फल मिलेगा. जे कर कहोगे ईश्वर जो इछे, सो करे. तव तो क्यों न जानता है जो ईश्वर क्या करेगा, धर्मीयोंकूं नरकमें, पापीयोंकूं स्वर्गमें भेजेगा? जे कर

कहोगे परमेश्वर न्यायी है, जैसा जैसा जो करेगा, उसकूं वैसा वैसा फल देता है, तो फेरजी वोही परंतत्रतारूप दूषण ईश्वरमें लगता है, तथा ईश्वर नित्य है, यह जी कहनां उनका अपणे घरहीमें सुंदर लगता है, क्यों कि नित्य तो उस वस्तुकूं कहते हैं, जो तीनों कालोंमें एक रूप रहे, जब ईश्वर नित्य है, तो क्या जगत्को बनानेवाला स्वजाव है वा नहीं? जे कर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वजाव है, तब तो ईश्वर निरंतर जगतकूं रचाही करेगा, कदापि रचनेसें न बंध होगा, क्योंकि जगत्के रचनेका स्वजाव तो ईश्वरमें नित्य है. जेकर कहोगे ईश्वरमें जगत् रचनेका स्वजाव नहीं है, तब तो ईश्वर कदापि जगत्कूं न रचेगा, क्योंकि जगत् रचनेका स्वजाव ईश्वरमें हैही नही. तथा जे कर ईश्वरमें एकांत नित्य जगत् रचनेका स्वजाव है, तब तो प्रलय कदेइ न होगी, क्यों कि ईश्वरमें प्रलय करनेका स्वजाव नहीं है. जे कर कहोगे ईश्वरमें रचनेकी अरु प्रलय करनेकी दोनोंही शक्तियां नित्य है, तब तो न कदापि जगत् रचा जायगा अरु न कदेइ प्रलय होगी, क्योंकि दो शक्तियां परस्पर विरुद्ध एक जगे एक कालमें कदापि नहीं रहेगी. जे कर रहेगी. तब तो जगत् न रचा जावेगा न प्रलय करा जायगा, क्योंकि जिस कालमें रचने वाली शक्ति रचेगी, तिसी कालमें प्रलय करनेवाली शक्ति प्रलय करेगी, अरु जिस कालमें प्रलयशक्ति प्रलय करेगी, तिसी कालमें रचने वाली शक्ति रच देवेगी, ऐसें जब शक्तियोंका परस्पर विरोध होगा, तब तो न जगत् रचा जावेगा, न प्रलय कीया जावेगा, तब तो हमाराही मत सिद्ध हो गया, क्योंकि न किसीने जगत् रचा है, अरु न इस जगत्की कदेइ प्रलय होती है, तातें यह जगत् अनादि. अनंत सिद्ध हो गया. जे कर कहोगे ईश्वरमें दोनोंही शक्तियां नहीं है, फेरजी तो जगत् न रचा, न प्रलय किया जायगा, तब तो अनादि, अनंत सिद्ध हुवा. जेकर कहोगे ईश्वर जब चाहता है तब रचनेकी इच्छा कर लेता है, अरु जब प्रलय करता है, तब प्रलयकी इच्छा कर लेता है, इसमें क्या दूषण है? तब तो ईश्वरकी शक्तियां अनित्य होवेगी, सो सुखेन अनित्य होवे इसमें हमारी क्या हानी है? जे कर ईश्वरकी शक्तियों अनित्य है, तब तो ईश्वर जी अनित्य हो जावेगा. क्यों कि ईश्वर अपनी शक्तियोंमें अजेद है. जे कर कहोगे शक्तियां ईश्वरमें

भेदरूप है, तबभी शक्तियांके नित्य होणेसें जगत् न रचा जायगा, न प्रलय कीया जायगा, अरु ईश्वर अकिंचित्कर सिद्ध हो जावेगा, क्यों कि जब ईश्वर सर्व शक्तियोंसें रहित है, तब तो ईश्वर कुछभी करने समर्थ नहीं है; फेर जगत् रचनेमें क्यों कर समर्थ होवेगा? अरु शक्तियोंका उपादान कारण कोन होवेगा? अरु ईश्वरका अभाव हो जावेगा. क्योंकि जब ईश्वरमें शक्तिही कोइ नहीं, तब तो ईश्वर काहेका? वो तो आकाशके फूल समान असत् है, फेर जगत्का कर्त्ता किसकूं मानोगे?

अथाग्रे खरड ज्ञानीयोंका ईश्वरवाद लिखते हैं. खरडज्ञानी कहता है, कि जगत्में जितने पदार्थ है, उनके विलक्षण विलक्षण संयोग, आकृति, तथा गुण, और स्वभाव, दीख पडते हैं, जे कर इनका तथा इनके नियमोंका कर्त्ता कोइ न होगा, तो ये नियम कभी न बनेंगे, क्योंकि जड पदार्थोंमें तो मिलने वा जुदे होनेकी यथावत् समर्थता नहीं, इस हेतुसें ईश्वर कर्त्ता अवश्य होनां चाहियें.

उत्तरः—प्रथमही हम जगत् कर्त्ता ईश्वरका खंडन कर चूके है, तो फेर आप जगत् कर्त्ता क्यों कर मानते है? अरु जो तुमने लिखा है कि जगत्के पदार्थोंमें न्यारे न्यारे स्वभाव दीख पडते है, इस्सें ईश्वर सिद्ध होता है, इस कहनेसें ईश्वर जगत्कर्त्ता नहीं सिद्ध होता, क्यों कि सर्व पदार्थोंमें अनंत शक्तियां हैं. सो अपणी अपणी शक्तियोसें सर्व पदार्थ अपणें अपणें कार्यकूं करते हैं, इनके मिलनेमें निमित्त यह है, एक तो काल, दूसरा पदार्थका स्वभाव, तीसरी नियती, चउथा जीवोंका कर्म, पांचवा जीवोंका उद्यम, इन पूर्वोक्त पांचों निमत्त वीना कोइभी और निमित्त नहीं है. ईन पांचोंका स्वरूप, आगें चल कर लिखेंगे?

प्रत्यक्षमेंभी इन पांचोंके निमित्तसें ही सर्व कुछ उत्पन्न होता है, जैसें बीजांकुर जब बीज वोया जाता है, तब कालही यथानुकूलही होना चाहियें, अरु बीज तथा जल, पृथिवी, इत्यादिकोंका स्वभावभी अवश्य होनां चाहियें. तथा नियतीभी जो जो पदार्थोंका स्वभाव है. तिन पदार्थोंका तथा तथा जो परिणाम होता है. तिसका नाम नियती है, सोभी कारण है. तथा अष्टविध कर्मभी कारण है तथा पुरुषाकार (जीवोंका उद्यमभी) कारण है. ए पांचों वस्तु अनादि है, कीसीनेभी प्रयत्न रची

नहीं है, क्योंकि जो जो वस्तुका स्वजाव है, सो सो सर्व अनादिसें है. जे कर वस्तुमें अपणा अपणा स्वजाव न होवेगा, तब तो वस्तुही कोइ सत्रूप न रहेगी. सर्व शशशृंगवत् असत् हो जायगी; अरु प्रत्यक्ष जो दृष्ट पृथिवी, आकाश, सूर्य, चंद्रमा, आदि पदार्थ दीख पमते है, सो इसी तरें अनादि रूपसें सिद्ध हैं, अरु पृथ्वी उपर जो जो रचना दीखती है, सो सर्व प्रवाहसें ऐसेंही चली आती है; अरु जो जो जगत्के नियम है, वे सर्व इन पांचो निमित्तोंके विना नहीं हो सक्ते हैं. इस वास्ते सर्व पदार्थ अपणे अपणे नियममें है, जे कर तुम द्रव्यकी शक्तिकूं ईश्वर मान लोगे, तब तो हमारी कुछ हानी नहीं; क्यों कि हम द्रव्यकी अनादि शक्तिका नाम ईश्वर रख लेवेंगे, अरु तुम अनादि द्रव्यकी शक्तिकूं ईश्वर मान लेवेंगे, तब तो तुमारा हमारा विवाद दूर हो जावेगा. अरु तुमने लिखा जो जडमें यथावत् मिलनेकी शक्ति नहीं हैं, यहजी तुमारा कहनां मिथ्या है, क्यों कि जगत्में अनेक तरेके जम पदार्थ आपसें आप ही इन पूर्वोक्त पांच निमित्तोंसें आपसमे मिल जाते हैं, जैसे सूर्यके किरणां बादलोंमे पडती है, तब इंद्रधनुष बन जाता है, तथा संध्याका होनां, पांच वर्णके बादलोंकी चिनी हुइ घटा, चंद्रमा सूर्यके गिरद कुंडला, आकाशमें पवनोंके मिलनेसें जल, ओर अग्निका उत्पन्न होनां, अरु वर्षाके होनेसें उन पूर्वोक्त पांचों निमित्तोसें अनेक प्रकारके घास तृणादि अनेक प्रकारकी वनस्पती, तथा अनेक प्रकारके कीट पतंग प्रमुख जीव उत्पन्न हो जाते हैं, इन पांचो निमित्तोंके विना किसी वस्तुको बनाता हुआ ईश्वर नहीं दिखलाइ देता; जरा पक्षपात छोम कर विचार कर देखो के, ईश्वर कर्त्ता किस तरेंसे हो सक्ता है? क्यों कि पृथिवी, आकाश, चंद्र, सूर्य, इत्यादिक तो द्रव्यार्थिक नयके मतमें अनादि हैं, फेर इनके वास्ते पूछना कि यह किसने बनाये हैं? तो फेर हम पूछते हैं, ईश्वर किसने बनाया? जे कर कहोगे ईश्वर नो. किसीनेही बनाया नहीं, वो तो अनादिसें बना बनायाही है, तो फेर पृथिवी प्रमुख कितनेक पदार्थोंकों बने बनाये अनादिसेंही है, ऐसे माननेमें क्युं शङ्का करते हो?

परंतु ज्ञानी कहते है की स्वजावसें जगत्की उत्पत्ति जो मानते हैं, उनके मतमें यह दोष आवेगा. यह पृथिवी स्वजावसें होती, तो इसका कर्त्ता ओर

नियंता न होता. इस पृथिवीसें भिन्न दशमे कोश अंतरिक्षमें दूसरा आ पसें आप पृथिवी बन जाती, सो आज तक नहीं बनी, इस्सें जाना जा ता है, जो ईश्वर कर्त्ता है.

उत्तरः—तुमकूं कुछ विचार है, वा नहीं? जे कर है, तो पूर्वोक्त तुमारा कहनां अयुक्त है, क्यों कि जब हम तो यह कहते है, जो पृथ्वी आदिक अनादि है, किसीनें नहीं बनाये अरु तुम कहते हो आकाशमेंउंची दश को शके अंतरे दूसरी पृथिवी क्यों नहिं बन जाती? अब विचारो यह तुमारा प्रश्न मूर्खताइका है, वा नहीं? तथा इस प्रश्नके उत्तरमें जो कोइ तुमकूं पूछे, जो ईश्वर स्वभावसें बना होवे, तब तो ईश्वरसें अलग दूसरा ईश्वर क्यों नहीं उत्पन्न होता? जे कर कहोगे ईश्वर तो अनादि है, वो क्यों कर नवा दूसरा ईश्वर बन जावे? इस तरे हमभी कह सके है जो पृथ्वी अनादि है, नवीन नहीं बनती. तो फेर दश कोश आकाशमें क्यों कर बन जावे?

पूर्वपक्षः—जे कर आपसें आपही वस्तु बनती होवे, तब सर्व परमाणु एकठे क्यों नहीं मिल जाते? अथवा एकैक हो कर विखर क्यों नहीं जाते?

उत्तरपक्षः—हमारी कुछ आज्ञा जड नहीं मानते हैं, जो हमारे कहे सें एकठे होकर एकरूप हो जावे, अथवा एक एक हो कर विखर जा वे, पूर्वोक्त पांच निमित्त मिलनेके जहां होंगे, तहां मिल जावेंगे, जहां निमित्त नहीं होवेंगे, तहां नहीं मिलेंगे.

पूर्वपक्षः—सर्व परमाणुउंके एकत्र मिलनेके पांच निमित्त क्यों नहीं मिलते?

उत्तरपक्षः—जो अनादि संसारकी नियतीरूप मर्यादा है, वो कदापि अन्य था नहीं होती, जे कर हो जावे, तब तो संसारमें जो जीव जन्म लेते है, सो सर्व, स्त्रीयोंहीके वा पुरुषोंकेही रूपसें क्यों नहीं उत्पन्न होते? जे कर कहोगे जैसे जैसे कर्म करे थे, वैसा वैसा ही उनकूं फल मिलता है, फेर एक स्त्री आदिक स्वरूपसें कैसें उत्पन्न होवे? तब हम यह पूछते है, जो सर्व जीवोंने स्त्री होनेके वा पुरुष होनेके न्यारे न्यारे कर्म क्यों करे? एकही सरीखे कर्म क्यों न करे? जे कर कहोगे संसारमें यह सनातनसें रीति है, जो सर्व जीव, एक सरीखे कर्म कदापि नहीं करते, तब तो पर माणुओंनेंभी यही सनातन स्वभाव है, जो एकत्र कदेही न मिलनां, त था एक एक हो कर विखरभी नहीं जानां? हे पूर्वपक्षी! यह तुमारा ई

श्वर जगत् जो रचता हे, सो तुमारे कहनेसें आगें अनंत सृष्टियां रच चुका हे, अरु एकेक जीवकूं अशुज कर्मोका फल, अनंत वेर दे चूका हे, तोजी वो जीव आज तांइ पाप करतेही चले जाते हें, तो फेर दंड देने सें ईश्वरकूं क्या लाज हुआ? जो अनंत कालसें इसी विडंबनामें फस रया हे? तथा ईश्वरकूं सृष्टि रचनेसें क्या प्रयोजन था?

पूर्वपक्षः–ईश्वरकूं सृष्टि नहीं रचनेका क्या प्रयोजन था?

उत्तरपक्षः–वाह रे वलडेके बावा! यह तूंने क्या उत्तर दीया, क्या यह उत्तर देखके विद्वान् तेरा उपहास्य न करेंगे? ईश्वर जे कर सृष्टि रचे, तो ईश्वरताही नष्ट हो जावे, यह वृत्तांत उपर अछी तरेंसे लिख आये हे.

पूर्वपक्षः–ईश्वरकी जो सर्व शक्तियां हें, सो सर्व अपनां अपनां कार्य करती हे, जेसें आंख देखनेका काम करती हे, कान सुननेका काम करते हे, तेसेही जो ईश्वरमें रचना शक्ति हे, सो रचनेसेंही सफल होती हे, इस वास्ते जगत् रचता हे.

उत्तरपक्षः–जब तुमनें ईश्वरकूं सर्व शक्तिमान् माना, तब तो ईश्वरकी सर्व शक्तियां सफल होनी चाहियें, तब तो ईश्वर एक सुंदर पुरुषका रूप रच कर १ सर्व जगत्की सुंदर सुंदर स्त्रीयोंसें जोग करे, अरु २ चोर बन कर चोरी करे, ३ विश्वास घातीपना करे, ४ जीवहत्या करे, ५ जूठ बोले, ६ अन्याय करे, ७ अवतार हो कर गोपीयोंसें कल्लोल करे, ८ अरु कुजासें जोग करें, ९ दूसरेकी मांगकूं जगा कर ले जावे, १० तथा, शिरपर जटा रक्खे, ११ तीन आंख बनावे, १२ बेल उपर चढे, १३ तनमें विजूति लगावे, १४ एक स्त्रीकूं वामाङ्गमें रक्खे, १५ किसी मुनिके आगें नंगा हो कर नचे, १६ किसीकूं वर देवे, १७ किसीकूं शाप देवे, इसी तरें १८ चार मुख बनाके एक स्त्री रक्खे, अरु १९ अपनी पुत्रीसें जोग करे, तथा २० संग्राम करे, २१ स्त्रीकों चोर ले जावे, तो पीछे उस स्त्रीके वास्ते रोता फिरे, २२ एक अपना जाइ बनावे, उसकूं जब संग्राममें कोइ शस्त्र लगे, तब जाइके दुःखमें बहुत रोवे, २३ अपणे आपकों नो अज्ञानी समजे, २४ जाइकी चिकित्सा वास्ते वैद्य बुलावे, २५ मर्य कुछ खावे, २६ पीवे, २७ नाचे, २८ कूदे, २९ रोवे, ३० पीटे, पीछेसें ३१ निर्मल, ३२ ज्योतिःस्वरूप, ३३ निरहंकार, ३४ सर्वव्यापक, बन बेठे. इत्यादिक पूर्वोक्त शक्तियां हे

श्वरमें है, वा नहीं? जे कर है तो इतने पूर्वोक्त सर्व काम ईश्वरकूं करने पड़ेंगे जे कर न करेगा, तव तो ईश्वरकीयां सर्व शक्तियां सफल न होवेगी? तव तो ईश्वर महा दुःखी हो जावेगा? क्योंकि जिसने नेत्र तो पाये है अरु देखना उसकूं न मिले, तो वो कैसा दुःखी होता है? जे कर कहोगे पूर्वोक्त अयोग्य शक्तियां ईश्वरमें नहीं है, तव तो सर्व शक्तिमान् ईश्वर है असे फिर कदापि न कहनां चाहियें. जे कर कहोगे कि योग्य शक्तियांकी अपेक्षा हम सर्व शक्तिमान् मानते है, तव तो जगत् रचनेकीभी शक्ति अयोग्यहीहै, यहभी परमात्मामें नहीं. इस शक्तिकी अयोग्यता उपर लिख आये है. तथा हे पूर्वपक्षी! जव ईश्वरने प्रथमही सृष्टि रची थी, तव तो स्त्री पुरुषादिक थे नहीं, तव तो माता पिताके विना मनुष्य क्यों कर उत्पन्न होये होंगे?

पूर्वपक्षः—जव ईश्वरने सृष्टि रची थी, तव ही वहुत पुरुष, अरु वहुत स्त्रीयों माता पिताकें विनाही रच गये थे, उनके आगें फिर गर्भसें उत्पन्न होने लगे.

उत्तरपक्षः—यह अप्रामाणिक कहनां कोइभी विद्वान् नहीं मानेगा, क्योंकि माता पिताके विना कभी पुत्र नहीं उत्पन्न हो सक्ता है? जेकर ईश्वरने प्रथम माता पिताके विनाहि मनुष्य, स्त्री, उत्पन्न करे थे, तो अव भी घडे घडाये, वने वनाये, स्त्री पुरुष क्यों नहीं भेज देता? गर्भ धारण कराणां, स्त्री पुरुषका मैथुन कराणां, गर्भवासका दुःख भोगानां, योनियं द्वारा खेंचके निकालनां. इत्यादि संकट काहेकूं रचने थे? अनंत वार ईश्वरने सृष्टि रची, अरु प्रलय करी, तव तो इश्वर थाका नहीं तो क्या मनुष्योंहीके वनानेसें थकेंवा चक गया? जो घडे घडाये, वने वनाये, नहीं भेज सक्ता? यह कभी नहीं हो सक्ता, जो माता पिताके विना पुत्र उत्पन्न हो जावे. इस हेतुसेंभी जगत्का प्रवाह अनादिसें इसी तरे तारतम्य रूपसें चला आता सिद्ध होता है.

पूर्वपक्षः—जे कर ईश्वर सर्व वस्तुका कर्त्ता न होवे, अरु जीवही कर्त्ता होवे, तव तो जीव आपही शरीर धारण कर लेवेगा, अरु शरीरकूं कदेइ न छोडेगा, अरु आपणे आपकूं अछा फल लगा लेवेंगे, फेर तो कभी मरेंगे नहीं.

उत्तरपक्षः—जो तुमने कहा है सो सर्व कर्मोके वश है, परंतु जीवके अधीन नहीं. जे कर कहोगे कर्मभी तो जीवनेही करे थे. तव क्यों जीवने अशुभ कर्म करे? क्योंकि कोइ भी अपणा वुरे करणेमें नहीं है, इन

का उत्तर तो दीया गया है, परंतु तुमारी समझ थोडी है,जो नहीं समझे. क्यों कि जो जो अवस्था जीवोंकी शुभ अशुभ है, सो सर्व कर्मोका फल है. तथा जीव जो है, सो कर्म करणेमें तो प्रायः स्वतंत्रही है, परंतु फल जोगनेमें स्ववश नहीं. क्योंकि जैसें कोइ जीव धनुषसें तीर चलावे, अरु फिर उस तीरकूं पकडने सामर्थ्य नहीं. तथा कोइ जीव विष खावे, सो तो स्ववश है, परंतु उस विषवेगके रोकणेमें जीव समर्थ नहीं, ऐसेही जीव कर्म तो स्वतंत्रतासे प्रायः करता है, परंतु फल जोगनेमें जीव पर वश है, जैसें वर्तमानमें रेलगाडी सर्व जीवोंहीने इस तरेंकी बनाइ है, परंतु उस चलती हुइ रेलके तथा तारके वेगकूं जितना चिर, उस कलकी प्रेरणाशक्ति नहीं हटती, इतना चिर, कोइ जीव नहीं रोक कर सक्ता. ऐसेही कर्मफल वेगके रोकणेकूं जीवजी समर्थ नहीं है, तथा जीव कूं जवांतरमें कौन ले जाता है ? तथा जीवके शरीरकी रचना आंखोके पडदे तथा नाना प्रकारके रंग बरंगके हाड, चाम, लोहु, वीर्य, इत्यादिक रचना कौन रचता है ? इसका पूर्ण स्वरूप जहां कर्म प्रकृति (१४८) का स्वरूप लिखेंगे, तहांसें जाननां. इस हेतुसें ईश्वर जगत् कर्त्ता किसी तरेंजी सिद्ध नहीं होता, विशेष करकें जगत् कर्त्ता ईश्वरकाखंमन देखनां होवे, तो श्री (१) सम्मतितर्क, (२) द्वादशसार नयचक्र (३) स्याद्वादरत्नाकर, (४) अनेकांतजयपताका, (५) शास्त्रसमुच्चय स्याद्वादक ल्पलता. (६) स्याद्वादमंजरी, (७) स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, (८)सूत्रकृतांग, (९) नंदीसिद्धांत, (१०) शब्दांजोनिधिगंधस्तीमहाजाष्य, (११) प्रमाणसमुच्चय, (१२) प्रमाणपरीक्षा, (१३) प्रमाणमीमांसा, (१४) आत्ममीमांसा, (१५) प्रमेयकमलमार्त्तंड, (१६) प्रमेयरत्नमार्त्तंड, (१७) न्यायावतार, (१८) धर्मसंग्रहणी, (१९) तत्वार्थ, (२०) षट्दर्शनसमुच्चय. इत्यादि जैनमतके ग्रंथ देख लेने. इस वास्ते जो कामी, क्रोधी, छली,धूर्त्त परस्त्री स्वस्त्री गमन करनेवाला, नाचने वाला, गाने वजाने वाला, रोने पीटने वाला, जस्म लगाने वाला, माला जपने वाला, संग्राम करने वाला, तथा डमरु आदिक वाजे वजाने वाला, वर वा शापके देने वाला, विना प्रयोजन अनेक संक्लेशोंमें फसने वाला, इत्यादिक जो अगारह दूषण करी सहित है, सो कुदेव है, उसकूं ईश्वर मानना सोइ मिथ्यात्व है.

इन कुदेवोंकूं मानने वाले पथ्थरकीं नावो उपर वैठे है, इस वास्ते लिखनेका प्रयोजन इतना ही है, जो कुदेवकूं कदेइ अर्हंत भगवंत परमेश्वर करी नमाननां ॥ इतिश्री तपागछीयमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्यमुनिआनंदविजयआत्मारामविरचिते, जैनतत्त्वादर्शे, कुदेवनिर्णयनामा द्वितीयःपरिछेदःसंपूर्णः २

॥ अथ तृतीयपरिछेदःप्रारंभः ॥

॥ यह तीसरे परिछेदमें गुरुतत्त्वका स्वरूप कहते हे, जेनमतमें गुरुके लक्षण ऐसे लिखे हें ॥ अनुष्टुब् वृत्तं ॥ महाव्रतधरा धीरा, भैक्षमात्रोपजीविनः ॥ सामायिकस्था धर्मोप–देशका गुरवो मताः ॥१॥ अस्यार्थः–अहिंसादि पांच महाव्रतका धारने पालने वाला होवे, अरु आपदा आ पडे, तब धीर साहसिकपणा करे, अपणे जो व्रत हैं, तिनकूं दूषण लगा के कलंकित न करे, तथा वेंतालीश दूषण रहित, भिक्षावृत्ति माधुकरीवृत्ति करी, अपणे चारित्र धर्मके तथा शरीरके निर्वाह वास्ते भोजन करे, भोजनभी पूरा पेट भरकर न करे, भोजनके वास्ते अन्न, पाणी, रात्रिकूं न राखे, तथा धर्मसाधनके उपकरण वर्जके और कुछभी संग्रह न करे तथा धन, धान्य, सुवर्ण, रूपा, मणि, मोती, प्रवालादि परिग्रह न राखे. तथा राग, द्वेषके परिणाम रहित, मध्यस्थ वृत्ति हो कर, सदा वर्त्ते, तथा "धर्मोपदेशक" जो धर्म, जीवोंके उद्धार वास्ते सम्यग् ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप परमेश्वर, अर्हंत, भगवंतें स्याद्वादअनेकांत स्वरूप निरूपण कीयाहै, उस धर्म्मकूं जो भव्य जीवोंके तांइ उपदेश करे, परंतु ज्योतिषशास्त्र, अष्ट प्रकारका निमित्त शास्त्र, तथा वैद्यशास्त्र, धन उत्पन्न करनेका शास्त्र, राजसेवा आदिक अनेक शास्त्र, जिनसें धर्मकूं बाधा पहुंचे, तिनका उपदेशक न होवे, क्यों कि लौकिक जो शास्त्र है, सो तो बुद्धिमान् पुरुष वर्त्तमानमेंभी बहुत सीखते है, तथा नवीन नवीन अनेक सांसारिक विद्याके पुस्तक बनाते हुये चले जाते हैं, तथा अंगरेजोकी बुद्धि देख कर इस देशके लोकभी बहुत सांसारिक विद्यामें निपुण होते चले जाते हैं. इस वास्ते साधुकूं धर्मोपदेशही करनां चाहियें, क्यों कि धर्मही जीवोंकूं पाना कठिन है; ऐसे गुरुके लक्षण जैन मतमें हैं.

तथा प्रथम जो पांच महाव्रत साधुकुं धारने कहे हैं, सो कोन कोनसें वे पांच महाव्रत हैं? सो कहते हैं:—श्लोक ॥ अहिंसा सूनृतास्तेय, ब्रह्मचर्यापरिग्रहाः ॥ पंचभिः पंचभिर्युक्ता, जावनाभिर्विमुक्तये ॥ २ ॥ अस्यार्थः—(१) अहिंसा, (जीवदया,) (२) सूनृत, (सत्य वचन बोलनां,) (३) अस्तेय (साधुके उचित, वस्तुकूं बिना दीयां न लेनां) (४) ब्रह्मचर्यका पालनां, (५) सर्व परिग्रहका त्याग. इन पांचोंका नाम महाव्रत कहते हैं, तथा ए पांच महाव्रतोंमें एकेक महाव्रतकी पांच पांच जावना हैं, यह पांच महाव्रत, अरु पचीश जावना, ए सर्व मोक्षके वास्ते पाले.

अथ इन पांचो महाव्रतोंमेंसु प्रथम महाव्रतका स्वरूप लिखीये हैं ॥ ॥ श्लोक ॥ न यत् प्रमादयोगेन, जीवितव्यपरोपणं ॥ त्रसानां स्थावराणां च, तदहिंसाव्रतं मतं ॥ ३ ॥ अस्यार्थः—त्रस, (द्वींद्रियादिक जीव) अरु स्थावर, (१) पृथवीकाया, (२) अप्काया, (३) अग्निकाया, (४) पवनकाया, (५) वनस्पतिकाया, ए पांचोंकूं स्थावर जीव कहते हैं. इन सर्व पूर्वोक्त जीवोंकूं प्रमाद वश हो कर मारे नहीं प्रमाद नाम है, राग, द्वेष, असावधानपणा, अज्ञान, मन वचन कायाका चंचल पणा, धर्मके विषे अनादर, इत्यादि प्रमादके वश हो कर जो प्राणातिपात करना इसका जो त्याग करणां, इसका नाम अहिंसा व्रत है.

अथ दूसरे महाव्रतका स्वरूप लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ प्रियं पथ्यं वचस्तथ्यं, सूनृतव्रतमुच्यते ॥ तत्तथ्यमपि नो तथ्य, मप्रियं चाहितं च यत् ॥ ॥ ४ ॥ अस्यार्थः—जिस वचनके सुननेसें दूसरा जीव हर्ष पावे, तिस वचनकूं प्रिय वचन कहियें, तथा जो वचन जीवोंकूं पथ्यकारी होवे, परिणामसुंदर होवे, एतावता जिस वचनमें जीवके आगे बहुत सुधारा होवे, तथा जो वचन सत्य होवे, ऐसा जो वचन बोले, सो सूनृतव्रत कहियें, इस व्रत विषे कतुक विशेष लिखते हैं, जो वचन व्यवहारमें चाहो सत्यही होवे, परंतु जो आगले जीवकूं दुःखदायी होवे, ऐसा वचन न बोले, जैसे कानेकूं काना कहनां, चोरकूं चोर कहनां, कुष्टीकूं कुष्टी कहनां, इत्यादिक जो वचन दूसरेकूं दुःख दायी होवे, सो न बोले, तथा जो वचन जीवोंकूं आगे अनर्थका हेतु होवे, बहुराजावत सोभी न बोले. जे कर

यह दोनों वचन बोले, तब तो उस साधुके सूनृत व्रतमें कलंक लग जावें, क्योंकि ए दोनो वचन जूठहीमें गिने हैं.

अब तीसरा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ अनादानमदत्तस्या, स्तेयव्रतमुदीरितं ॥ बाह्याः प्राणानृणामर्थो, हरतात्तहताहिते ॥ ५ ॥ अस्यार्थः—अदत्त, मालिकके विना दीया ले लेणां, तिसका जिसके नियम है, सो अस्तेय व्रत कहियें, अचोरीव्रत नामांतर है, अदत्तादान चार प्रकारका हैं. (१) जो वस्तु साधुके लेने योग्य है, अचित्त जीव रहित वस्तु तृण, काष्ट, पाषाणादिक वस्तुयोंके स्वामीकूं विना पूछे ले लेनां. सो स्वामी अदत्त. (२) तथा जैसें कोइ भेरु, बकरी, गौ प्रमुख कोइ इनका स्वामी दूसरे हिंसक जीवकूं मोल लेकर दे देवे, अथवा विना मोल दे देवे, अरु लेनेवालेने देइ होइ वस्तु लीनी है, परंतु उस जीवने तो अपणा शरीर नहीं दीया है, इस हेतुसें जीवअदत्त. (३) तथा जो जो वस्तु आधाकर्मादिक आहार, अचित्त जीव रहितभी है, अरु दीनीभी उस वस्तुकें स्वामीने है, परंतु तीर्थंकर भगवंतें निषेध करी है, फेर जो साधु उस वस्तुकूं लें लेवे, सो तीर्थंकर अदत्त. (४) तथा जो वस्तु निर्दोष है, वस्त्र आहारादिक अरु उस वस्तुके स्वामीने वो दीनी है, अरु तीर्थंकर भगवंतें निषेध नहीं करी है, परंतु गुरुकी आज्ञा विना वो वस्तुकूं साधु ले लेवे, सो गुरु अदत्त. इस महाव्रतमें ए चार प्रकारका अदत्त न लेणां. जितने व्रत नियम हैं, वे सर्व अहिंसाव्रतकी रक्षा वास्ते वाडी समान हैं, यह पूर्वोक्त तिसरे व्रतका जो पालनां है, सो अहिंसा व्रतहीकी रक्षा होती है. अरु जो तीसरा महाव्रत न पाले तो अहिंसा व्रतकूं दूषण लगे है, यही बात कहते हैं ॥ "बाह्याः प्राणा नृणां" मनुष्योंका अर्थ,(लक्ष्मी) जो है, सो बाहिरला प्राण है. जब कोइ किसीकी चोरी करता है, सो निश्चय करकें उसके प्राणोंहीका नाश करता है. इसी हेतुसें चोरी करनां महा पाप है, सर्व चोरीका जो त्याग करना है, इसीका नाम तीसरा अदत्तादान त्यागरूप महा व्रत है.

अब चोथे महाव्रतका स्वरूप लिखते है ॥श्लोक॥ दिव्यौदारिककामानां, कृतानुमतिकारितैः ॥ मनोवाक्कायतस्त्यागो, ब्रह्माष्टदशधा मतम् ॥ ६ ॥ अस्यार्थः—दिव्य (देवताके) वैक्रिय शरीर संबंधि जो काम भोग,अरु औदारिक शरीर तिर्यंच मनुष्यका, तिन संबंधी जो काम भोग, एताबता वैक्रिय

शरीर अरु औदारिक शरीर, ए दोनोंके साथ वीपय सेवन करनां, और दूसरायोंसें विषय सेवन करावणां, विषय सेवन जो करे उसकूं अछा जाननां, ए ठ नेद मन करकें, ठ वचन करकें, अरु ठ काया करकें, एवं अष्ठारह प्रकारका जो मैथुन सेवनका त्याग करे, उसकूं ब्रह्मचर्य व्रत कहते हैं.

अब पांचवा महाव्रत लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ सर्वजावेषु मूर्छाया, स्त्यागस्यादपरिग्रहः ॥ यदि सत्स्वपि जीयेत, मूर्छया चित्तविप्लवः ॥ १ ॥ अस्यार्थः—सर्व संपूर्ण जो अछाजाव पदार्थ, ड्रव्य, क्षेत्र, कालजावरूप वस्तु तिस विषे जो मूर्छा, ममत्वजाव मोह, तिसका जो त्याग करे, तिसका नाम अपरिग्रह व्रत कहियें, परंतु जिसके पास अपणे शरीरके विना दूसरी कोइ वस्तु नहीं, तोजी तिसकूं निष्परिग्रहपणा न कहियें. किंतु जिसकी मूर्छा ममत्व, सर्व वस्तुसें दूर जावे, उसीको निष्परिग्रह व्रत कहियें, क्योंकि जिसके पास कोइ वस्तु नहीं. अरु अण होइ वस्तुकी जिसकूं चाहना लग रही है, वो त्यागी नहीं, जे कर ज्ञान द्वारा मूर्छा त्यागे विना, त्यागी हो जावे, तव तो कुत्ते अरु गद्धेजी त्यागी होना चाहियें अरु जो पुरुष ममत्व रहित है, सो निष्परिग्रह है, चाहो उसके पास धर्म साधनके कितनेक उपकरणजी हैं, तोजी मूर्छाके न होनेसें वो परिग्रह नहीं.

अब इन पूर्वोक्त एकेक महाव्रतकी पांच पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ जावनाजिर्जावितानि, पंचजिः पंचजिः क्रमात् ॥ महाव्रतानि नो कस्य, साधयंत्यव्ययं पदम् ॥ १ ॥ अस्यार्थः—यह जो पांच महाव्रतोंकी पचीश जावना हैं, जो कोइ इन जावना करकें अपणे अपणे महाव्रतकूं रंजित वासित करे, एतावता पांच पांच जावना पूर्वक अखंरु महाव्रत पाले तो ऐसा कोइ जीव नही है, जिसकूं ए महाव्रत मोक्षपदमें न पहुंचावे?

अब प्रथम महाव्रतकी पांच जावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ मनोगुप्त्येषणादाने, र्याजिः समितिजिः सदा ॥ दृष्टान्नपानग्रहणे, नाहिंसा जावयेत्सुधिः ॥१॥ अस्यार्थः—मनकूं पापके काममें न प्रवर्त्तावे, किंतु पापके काममें अपणे मनकूं हटा लेवे, इसका नाम मनोगुप्ति कहते हैं. जेकर पापके काममें मनकूं प्रवर्त्तावे, अरु चाहो बाह्यवृत्ति करकें हिंसा नहींजी करता. तोजी प्रसन्नचंड राजर्षिकी तरें सातमी नरकके जाने योग्य कर्म उत्पन्न कर लेता है, इस वास्ते मुनिकूं अवश्य, मनोगुप्ति करनी चाहियें, ए

प्रथम नावना. दूसरी नावना एषणासमिति. सो आहारादिक चार वस्तु आधाकर्मादिक बेतालीश दूषण रहित लेवे, बेतालीश दूषणका पूरा स्वरूप देखनां होवे, तो पिंमनिर्युक्ति शास्त्र (७०००) श्लोक प्रमाण है, सो देख लेनी, ए दूसरी नावना. तीसरी नावना आदाननिक्षेप नामा है, जो कुछ पात्रक, दंम, फलक प्रमुख लेना पडे, तथा नूमिकाके उपरि रखना पडे, तब प्रथम नेत्रोसें देख लेनां, पीछें रजोहरण करकें पूंज लेवे, पीछेसें लेना अरु रखना करे क्योंकि विछु सर्पादिक अनेक जहेरी जीव, जे कर उस उपकरणके उपर बैठे होवें, तब तो काट खावें, अरु दूसरा जीव विचारा अनाथ कोइ बैठा होवे, तो हाथके स्पर्शसें मर जावे, तब तो जीवहत्याका पाप लग जावे. इस वास्ते जो काम करनां, सो यत्नपूर्वक करनां ए तीसरी नावना. चोथी नावना जब चलनेका काम पडे, तब अपणी आखोंसें चार हाथ प्रमाण धरती देख कर चले, जो कोइ नीचा देख कर चलता है, उसकूं इस लोकमें कितनेक गुण प्राप्त हो जाते है, प्रथम तो पगकूं ठोकर नहीं लगती, दूसरा जिसके परिग्रहका त्याग न होवे, उसकूं गिरा पडा पैसा, रूपक, आदि मिल जावे, तीसरे लोकमें नला मनुष्य किसीकी वहू बेटीकूं देखता नहीं, असा प्रसिद्ध हो जाता है, चोथे जीवकी रक्षा करनेसें धर्मकी प्राप्ति होती है, ए चोथी नावना. पांचमी नावना जो अन्न, पाणी, साधु लेवे, सो प्रकाशवाली जगासें लेवे अंधकारवाली जगासें न लेवे, क्योंकि अंधकारवाली जगामें एक तो जीव नहीं दीख पमता, और दूसरा साप विछुके काटनेका मर रहेता है, तथा गृहस्थका कोइ आनूषण प्रमुख जाता रहे, तब उसके मनमें शंका उत्पन्न हो जावे, कि क्या जानें अंधेरेमेंसें साधुही ले गया होगा? तथा खंधेरेमें सुंदर साधुकूं देख कर कदा चित् कोइ उत्कट विकार वाली स्त्री लिपट जावे, अरु उस वखत कोइ दूसरा देखता होवे, तो धर्मकी वमी निंदा होवे, तथा साधुहीका मन अंधेरेमें स्त्रीकूं देख कर विगम जावे, साधु स्त्रीकूं पकम लेवे, स्त्री पुकार कर देवे, तब तो वमी धर्मकी हानी होवे, तथा साधुओंकी अप्रीति हो जावे, इस वास्ते अंधेरेकी जगासें साधु अन्नादिक न लेवे, ए पांचमी नावना. ए प्रथम महाव्रतकी पांच नावना हैं.

अब दूसरे महाव्रतकी पांच नावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ हास्यलोनन

नचुंबन, चौरासी कामासनसें विषयसेवन प्रमुख क्रीडा करी होवे, तीसकों फेर मनमें कदेइ न स्मरण करणां, क्योंकि पूर्व क्रीडास्मरण रूप इंधनसें कामाग्नि फिर धुखने लग जाती है, ए तीसरी भावना. तथा अविवेकी जनोंकूं देखने. अरु चांहने योग्य स्त्रीके अंग जो मुख, नयन, स्तन, जघन, होठ प्रमुख तिनोंको सराग दृष्टिसें देखनां तथा अपूर्व विस्मय रसके पूरमें मग्न हो कर अंग पांग देखनां वर्जे, परंतु जो राग रहित दृष्टि करी कदाचित् देखने में आ जावें, तो दोष नहीं- तथा अपणे शरीरकूं संस्कार करणां, स्नान, विलेपन, धूप करणी, नख, दांत, केश, समा रचनां, कंगी सुरमासें विभूषा करणी, इत्यादिक शरीरसंस्कार न करे, क्योंकि स्त्रीके रमणीक अंग देखनेसें जैसें दीप शिखामें पतंगीया जल जाता है, ऐसें कामी पुरुषभी कामाग्निमें जल जाता है, क्योंकि शरीर जो है, सो सर्व अशुचिका मूल है, इसका जो शृंगार करणां है, सो अज्ञानता है, जैसे मलिन वस्तुकी कोथलीके ऊपर जे कर चंदन घस कर लगा दिया, तो क्या वह कोथली सुगंधित हो जाती है? यह शरीर अंतमें मसानकी एक मुठी राखकी बन जायेगी, फिर किस वास्ते इस शरीरकी शोभा करणेमें व्यर्थ काल खोवे है? ए चौथी भावना. तथा प्रणीत, स्निग्ध, मधुरादि रस. इनका अधिक आहार करणां, तथा रूखा भोजनभी कंठ उदर पूर कर खानां, ए दोनांही प्रकारके आहारका त्याग करे, क्योंकि जो पुरुष, निरंतर स्निग्ध, मधुर रसका आहार करेगा उसके जरूर धातुपुष्ट होवेगी, तब तो वेदोदय करी अवश्य कुशील सेवेगा. अरु रूक्ष विशुद्धिका भोजनभी प्रमाणसें अधिक नहीं करणां, क्योंकि रूक्ष भोजन अधिक करणेमें काम उत्पन्न हो जाता है, अरु अधिक खानेसें शरीरकूं पीडा उत्पन्न हो जाती है, विशूचिका प्रमुख रोग हो जाते हैं, इस वास्ते प्रमाणसें अधिक भोजनभी न करे, पूर्व पुरुषोंने खानेकी ऐसें मर्यादा लिखी है कि ॥ यतः॥ अद्धमसणस्स सव्वं, जणस्स कुज्जा दवस्स दो भाए ॥ वाउपवियारणठा, छब्भायं ऊणगं कुज्जा ॥ १ ॥ अस्य भावार्थः—बुद्धि कल्पित अपणे उदरके छ भाग करणे, तिनांमें तीन भाग तो अन्न से भरने, अरु दो भागमें पानी. एक भाग खाली रखणां, जिस्में सुखें सुखें उच्छ्वास निःश्वास आता जाता है, ए पांचमी भावना. ए चौथे व्रतकी पांच भावना.

अब पांचमे महाव्रतकी पांच भावना लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ स्पर्शे रसे च

गंधे च, रूपे शब्दे च हारिणि ॥ पंचस्वपींद्रियार्थेषु, गाढं गार्द्ध्यस्य वर्जनं ॥ १ ॥ एतेष्वेवामनोज्ञेषु, सर्वथा द्वेषवर्जनं ॥ अकिंचन्यव्रतस्यैवं, भावना पंच कीर्त्तिताः ॥ २ ॥ युग्मं ॥ अस्यार्थः—स्पर्शादिक मनोहर पांच विषयों में जो अत्यंत गृद्धिपणा सो वर्जनां, अरु स्पर्शादिक अमनोज्ञ पांच विषयोंमें द्वेष न करणां. ए पांचमे महाव्रतकी पांच भावना. एवं पूर्वोक्त पांच महाव्रत, अरु पच्चीश भावना जिसमें होवे, सो गुरु. तथा चरणसित्तरी अरु करणसित्तरी करकें संयुक्त होवे,सो जैनमतमें गुरु है.

अथ चरण सित्तरीके सित्तर भेद लिखते हैं ॥ गाथा ॥ वय समणध म्मसंजम, वेयावच्चं च बंभ गुत्तीओ ॥ नाणाइ तियं तव को, ह निग्गहाइं इ चरणमेयं ॥ १ ॥ अर्थः—व्रत पांच प्रकारका, श्रमणधर्म दश प्रकारका, संयम सत्तर प्रकारका, वैयावृत्त्य दश प्रकारका, ब्रह्मचर्य गुप्ति नव प्रकार की, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, ए तीन प्रकारका, तप बार प्रकारका, निग्रह क्रोधादिक चार प्रकारका, ए सर्व सित्तर हुये, तीनमेंसूं पांच व्रतका स्वरूप तो उपर भावना संयुक्त लिख आये है, सो जाननां.

तथा श्रमणधर्म दश प्रकारका लिखीयें हैं ॥ गाथा ॥ खंतिय मद्दव अज्जव मुत्ती तव संजमे य बोधव्वा॥सच्चं सोयं आकिं, चणं च बंभं च जइधम्मो ॥ १ ॥ अस्यार्थः—(१) क्षांतिः(क्षमा) करणी, चाहो सामर्थ्य होवे, चाहो असामर्थ्य होवे, परंतु दूसरेके दुर्वचन सहनेके जो परिणाम मनोवृत्ति है,तिसका नाम क्षमा कहते हैं, सर्वथा क्रोधका त्याग क्षमा, (२) कोमल कहीयें अहंकार रहित, तिसका जो भाव, वा कर्म सो कहियें मार्द्दव, नीचा हो कर अभिमान रहित होणां, (३) रुजु कहियें मन, वचन, काया करी सरल, तिसका जो भाव, वा कर्म, सो आर्जव, मन वचन कायाकी कुटिलताइसें रहित, (४) मोचनं मुक्तिः बाहिर, अंदर, तृष्णाका त्याग लोभका त्याग, (५) रसादिक धातु अथवा अष्ट प्रकार कर्म, जिस करकें तपे सो तप अनशनादि बारा प्रकारका, (६) संयम, आश्रवकी त्यागवृत्ति, (७) सत्यं, मृषावाद विरति जूठका त्याग, (८) शौच, अपणी संयमवृत्तिमें कोइ कलंक न लगावनां, (९) नहीं है किंचित् मात्र द्रव्य जिसके पास सो आकिंचन, (१०) नव ब्रह्मचर्यकी गुप्ति, ए दश प्रकारका यतिधर्म. तथा मतांतरमें दश प्रकारका

यतिधर्म ऐसेभी कहते हैं ॥गाथा॥ खंती मुत्ती अज्जव, मद्दव तह लाघवे तवे चेव ॥ संजम चियाग किंचण, बोधवे बंभचेरेय ॥१॥ अस्यार्थः सुगमः॥

अथ सत्तर भेद संयमके लिखते हैं ॥ गाथा ॥ पंचासवाविरमणं, पंचिंदिय निग्गहो कसाय जर्ज ॥ दंडत्तयस्स विरई, सत्तरसहा संजमो होइ ॥ १ ॥ अथवा ॥ पुढवि दग अगणि मारुय, वणसइ वि ति चउ पणिंदि अजीवा ॥ पेहु प्पेहपमज्जण,परिठवण मणो वई काए॥२॥ इनोंका अर्थः- उत्पन्न करीयें कर्म इनों करकें सो आश्रवः सो आश्रव पांच प्रकारका है, जो पांच महाव्रतोमें त्यागने लिखे हैं. (१) हिंसा, (२) जूठ, (३) चोरी, (४) अब्रह्म, (५) परिग्रह, ए पांच आश्रवका त्याग करे, तथा स्पर्शन, रसन, घ्राण, चक्षु अरु श्रोत्र, ए पांचों इंद्रियका स्पर्शादिक पांचों विषयोंविषे लंपटपणा त्यागे, तथा क्रोध, मान, माया अरु लोभ, इन चारों कषायका जीतनां. इन चारोंके उदय होयाकूं निःफल करणां, अरु जो नहीं उदय आये उनकूं उत्पन्न न करणां तथा दंमीयें चारित्र धर्मरूप लक्ष्मी जीव पासों इनों करकें सो खोटा मन, खोटावचन,खोटी काया. इन तीनों दंडकी विरती करणी. एवं सत्तर भेद करिकें संयम है, अथवा प्रकारांतर करकें सत्तर भेदसें संयम कहते हैं, (१)पृथिवी,(२) उदक, (३) अग्नि (४) पवन, (५) वनस्पति, (६) द्वींद्रियजीव, (७) त्रींद्रियजीव, (८) चतुरिंद्रिय जीव, (९) पंचेंद्रिय जीव, इन पूर्वोक्त नवविध जीवोंकूं मन, वचन, अरु काया करी करणां, करावणां, अरु करणे वालेकूं भला जाननां, सरंभ समारंभारंभ, इन नव विकल्पोंसें पूर्वोक्त नवविध जीवोंकी हिंसा त्यागनी ए नव प्रकारका संयम. जो प्राणीके प्राणकूं विनाशनेका संकल्प करणां, इसका नाम सरंभ है, जीवके प्राणकूं जो परिताप करना, (पीडा देनी) इसका नाम समारंभ है, तथा जीवोंका प्राणका जो विध्वंस करनां, इसका नाम आरंभ है; तथा (१०) अजीव संयम जिस अजीव वस्तुके राखणेसें संयम कलंकित हो जावे, जैसें मांस, मदिरा, सुवर्ण प्रमुख सर्व धातु, मोति आदिक सर्व रत्न, अंकुशादिक सर्व शस्त्र, इत्यादिक अजीवके रखनेसें संयममें कलंक होवे, सो अजीव वस्तु न रखणी; तथा अजीव रूप जो पुस्तक, अरु शरीरोपकरणादि, सो दुःखमादि दोषसें तैसी बुद्धि नहीं, आयु लंबी नहीं, श्रद्धा, संवेग, उद्यम, बल, ए सर्व हीन हो

गये हैं, विद्या कंठ रहती नहीं, इस वास्ते इस कालमें जो पुस्तक रखणां, सो प्रतिलेखणा, प्रमार्जनापूर्वक यतनोसें राखणां, ए दसवा अजीव संयम. (११) प्रेक्षासंयम. सो नेत्रोंसें देख करके बीज. हरि प्रमुख जीवों करी रहित स्थानमें सोनां, वैठणां, चलनां, इत्यादिकके करणेसें प्रेक्षासंयम. तथा (१२) उपेक्षासंयम सो गृहस्थकूं पापका व्यापार करतेकूं उपेक्षणां सो (उपदेश देणां) कि यह काम तुम एसें करो, ऐसें जो गृहस्थकूं कहनां. सो उपेक्षा संयम, अथवा केइ साधु संयमसें चलायमान हो गया होवे. उसकूं हित करकें जो उपदेश करनां, सो प्रेक्षासंयम. तथा पार्श्वस्थादिक जो साधुकी समाचारीसें भ्रष्ट हो गये हैं, अरु वो नष्ट साधु कोइ अनुचित काम कर रहा है. अरु साधुजी अपणे मनमें जान जावे जो इसकूं उपदेश करुंगा, तो इसने माननां नहीं है, इस वास्ते जो औदासीन्य रहणां, उसका नाम उपेक्षासंयम, (१३) प्रमार्जन संयम. सो देखे हुये स्थानमें वस्त्र पात्रादिक जो लेने, वा रखने पडे. तब प्रथम रजोहरणादिकसें प्रमार्जन करकें पीछेसें लेनां, रखनां, सोनां, वैठनां करे. तब प्रमार्जना संयम, तथा (१४) जात, पाणी, वस्त्र, पात्रादिक जिसमें जीव पड गये होवे, तब तिनकूं जीवों रहित शुद्ध भूमिकामें शास्त्रोक्त विधि कर जो परिष्ठापना करे, सो परिष्ठापनासंयम, तथा (१५) मनमें द्रोह, ईर्ष्या, अभिमान, तो न करणां, अरु धर्मध्यानादिकमें मन प्रवृत्त करणां, सो मनःसंयम तथा (१६) हिंसाकारी कठोर वचनकों त्यागनां, अरु शुभ वचनमें प्रवृत्त होनां सो वचनसंयम, तथा (१७) गमनागमन करणेमें अरु अवश्यकरणे योग्य कामोंमें उपयोग पूर्वक जो कायाकूं प्रवृत्तावे, सो कायासंयम, ए सत्तरभेद संयमके जाननां.

अथ वैय्यावृत्तके दश भेद कहते हैं ॥ गाथा ॥ आयरिय उवझाए, तवस्सि सेहे गिलाण साहुसु ॥ समणोन्न संघ कुल गण, वेयावच्चं हवइ दसहा ॥१॥ अर्थः—(१) ज्ञानादिक पांच आचारकूं जो पाले, सो आचार्य, तथा सेवीयें जो, सो आचार्य तथा (२) जिनके समीप आ कर पढीयें, सो उपाध्याय, तथा (३) तप जो करे, सो तपस्वी, तथा (४) जिसनें नवाही साधुपणा लीया है, सो शिष्य, तथा (५) ज्वरादि रोग वाला जो साधु सो ग्लान, तथा (६) जो धर्मसें डिगतेकूं स्थिर करे, सो स्थविर साधु,

तथा (७) जिस साधुकी अपणे समान एक समाचारी होवे, सो समनोज्ञ, तथा (८) साधु, साधवी, श्रावक अरु श्राविका इन चारोंको जो समुदाय सो संघ, तथा (९) बहुते एक सरिखे गछोंका सजातियोंका जो समूह, सो कुल चंद्रादिक जाननां, तथा (१०) एक आचार्यकी वाचनावाले साधुयोंको समूह, गण गछ कोटिकादिक. इन पूर्वोक्त आचार्यादिक दसोंका अन्न, पाणी, वस्त्र, पात्र, मकान, पीठ, फलक, संस्तारक प्रमुख धर्म साधनों करकें जो साहाय्य करणां, शुश्रुषा करणी, भेषज करणी, उजाड़ (जंगल) में रोग उत्पन्न होनेसें. तथा नाना प्रकारके उपसर्गोंमें पालना करणी, इसका नाम वैय्यावृत्त्य है.

अथ जो शीलवान् साधु होवे, सो नव वाड सहित शील पाले, उनकूं नवविध ब्रह्मचर्यकी गुप्ति कहते है, सो लिखते है ॥ गाथा ॥ वसहि कह निसिज्जिंदिय, कुड्डंतर पुव्वकीलिय पणीए ॥ अइमायाहार विभू, सणाइ नव बंभ गुत्तीओ ॥१॥ अर्थः-१ (वसहि के०) वसती सो जो ब्रह्मचारी साधु होवे सो स्त्री, पशु, पंडक इनों करी संयुक्त जो वसती होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, तिनमें सुं प्रथम तो स्त्री जो है, सो दो तरेंकी है, एक तो देवी, दूसरी मनुष्यणी, इन दोनोंके दो दो भेद है, एक तो असल, और दूसरी इनकी मूर्त्ति, वा चित्रामकी मूर्त्ति. यह दोनो प्रकारकी स्त्री जहां न होवे, तिस वस्तिमें रहे, तथा पशु जो तिर्यंचिणी, गौ, महिषी, घोडी, बकरी भेड प्रमुख जिस वस्तिमें नहीं रहे, तहां तथा पंडक सो नपुंसक, तीसरे वेद वाला, महा मोह वाला काम करनेहारा, स्त्री अरु पुरुष, इन दोनोंके साथ विषय सेवन वाला, जिस वस्तिमें रहना होवे, तहां ब्रह्मचारी न रहे, क्योंकि इन तीनो करी संयुक्त वस्तिमें रहते थके उनोंकी कामविकारकी चेष्टा देखनेसें, ब्रह्मचारीके मनमें विकार उत्पन्न होनेमें ब्रह्मचर्यकूं बाधा होती है, जैसें मूषा अरु बिल्ली दोनु एक जगे रहे, तो मूषेकूं सुख नहीं; तेमेंही इन तीनो संयुक्त वस्तिमें रहणेमें शीलकूं उपद्रव होवे, ए प्रथम ब्रह्मचर्य गुप्ति.

२ तथा (कह के०) कथा सो केवल स्त्रीयोंहीकूं तथा एकली स्त्रीकूं धर्मदेशना वचनका प्रबंधरूप कथा न कहे, तथा स्त्रीकी कथा नकरे ॥ यथा ॥ कर्णाटी सुरतोपचारचतुरा, लाटी विदग्धा प्रिया॥इत्यादिक कथा न करे, क्योंके यह कथा जो है, सो राग उत्पन्न करनेकी हेतु है. जो स्त्रीके देश, जाति,

कुल, वेष, जाषा, गति, (चलनां) विभ्रम, इंगित, हास्य, लीला, कटाक्ष, स्नेह, रति, कलह, शृंगार, इत्यादिक जो विषयरसकी पोखने वाली कामिनीकी कथा है, सो कदेइ न करे. जे कर करे, तो अवश्य मुनिकाजी मन विकारकूं प्राप्त हो जावे. ए दूसरी ब्रह्मचर्यकी गुप्ति है.

३ तथा (निसिज्ज के०) आसन सो स्त्रीयोंके साथ एक आसन ऊपर न वैठनां. तथा जिस जगेसें स्त्री उठी होवे, उस आसन वा स्थानमें दो घमी तक साधु न वैठे, क्यों कि उस जगे तत्काल वैठनेसें स्त्रीकी स्मृति होती है, औ स्त्रीके वैठनेसें शय्या वा आसन, मैलसें मलिन होता, स्त्रीके स्पर्शवाले आसनादि स्पर्शसें विकार उत्पन्न हो जाता है, ए तीसरी ब्रह्मचर्यगुप्ति.

४ तथा (इंदिय के०) इंद्रिय सो अविवेकी लोकोकूं देखने योग्य, स्त्रीयोंके अंगोपांग जो नाक, स्तन जघन प्रमुख है, उसकूं ब्रह्मचारी साधु अपूर्व रसमें मग्न हो कर, नेत्र फाड कर, न देखे, कदाचित् दृष्टि पम जाय, तो पीछेसें ऐसी चिंतवनाजी न करे, जैसें कि वने सुंदर लोचन है! नासिका वहुत सीधी है! चांठने योग्य दोनो कुच हैं! जे कर स्त्रीके पूर्वोक्त अंगोपांग एकाग्र रस मग्न हो कर चिंतवना करे, तो अवश्य मन मोहे, तथा विकारकूं प्राप्त होवे.

५ तथा (कुड्डंतर के०) कुड्यांतर सो जिन जींतके तट्टीके, कनातके, अंतर वीचमें होनेसें स्त्री पुरुष, मैथुन करते होवें, अरु उनका शब्द सुणाइ देवे, तहां साधु ब्रह्मचारी न रहे. ए पांचमी गुप्ति.

६ तथा (पुव्वकीलिय के०) पूर्वक्रीमा सो पूर्वगृहस्थ अवस्थामें स्त्रीके साथ जो विषय जोग क्रीमा करी होवे, तीसकूं स्मरण न करे; जे कर करे, तो कामाग्नि प्रज्ज्वलित हो जाता है ए उठी गुप्ति.

७ तथा (पणीय के०) प्रणीत सो अति चीकणा, मीठा, दूध, दधि प्रमुख अति धातुपुष्ट करनेवाला आहार निरंतर न करे: जे कर करे, तो वीर्यकी वृद्धि होनेसें अवश्य वेदोदय होगा, फेर जरूर विषय सेवेगा, क्यांकि जो थोडी कोथलीमें वहुत रुपिये जरेगा, तो जरूर फाट जायगी.

८ तथा (अइमायाहार के०) अतिमात्राहार. सो रूखी जिक्षाजी प्रमाणसें अधिक न खावे, क्यों कि अधिक खानेसें विकार हो जाता है, अरु शरीरकूं पीडा विसूचिकादिक होनेका कारण है, ए आठमी गुप्ति.

ए तथा(विजूसणाइ के० विजूषणादि शरीरकी विजूषा सो स्नान, विले

पन, धूप, नख, दांत, केश. इनकी सुंदरताइके वास्ते समारणां, तथा तिलक, सुरमा, कज्जल, विजूषाके वास्ते नेत्रोमें गेरनां, तथा ऊवेंसें पग मांजने, साबु, तेल प्रमुख मसल कर गरम पाणीसें सुकोमलताइके वास्ते धोनां, इत्यादिक शरीरकी विजूषा न करे, ए नवमी ब्रह्मचर्यगुप्ति. ए नव प्रकारकी गुप्ति सो ब्रह्मव्रतकी रक्षा रूप नव वाड हे.

अथ ज्ञानादि तीन कहेते हें. उसमें यथार्थ वस्तुका जो बोधक सो ज्ञान, सो ज्ञानवरणीय कर्मके क्षय तथा क्षयोपशमके होनेसें जो उत्पन्न हूया हे बोध, तिसका हेतु जो द्वादशांग श्रो द्वादशोपांग, तथा प्रकीर्णक उत्तराध्ययनादिक, सो सर्व ज्ञान कहियें. तथा दूसरा दर्शन सो १ जीव, २ अजीव, ३ पुण्य, ४ पाप, ५ आश्रव, ६ संवर, ७ निर्जरा, ८ बंध, ए मोक्ष, इन जीवादिक नव तत्त्वका जो स्वरूप, तिनमें श्रद्धा (रुचि) करनी, जे सेंकी ए नव तत्त्व तथ्य हें, मिथ्या नहीं, ऐसी तत्त्वरुचि तिसका नाम दर्शन हे, तथा तिसरा सर्व पापके व्यापारोंसें ज्ञान, श्रद्धान पूर्वक जो निवृत्त होनां इसका नाम चारित्रहे, इस चारित्रकेजी दोजेद हें, एक देशविरतिचारित्र, दूसरा सर्व विरतिचारित्र; उसमें देशविरति चारित्र तो जहां गृहाश्रम धर्मका स्वरूप लिखेंगें, तहांसें जान लेनां, श्ररु जो सर्वविरति चारित्र हे, तिसका ही स्वरूप, इसी गुरुतत्त्वमें लिखने लग रहे हें, ए ज्ञानादिक तीन जाननां.

अथ बारा प्रकारका तप लिखते हें ॥ गाथा ॥ अणसण मूणोयरिया, वित्तीसंखेवणरसच्चाउं ॥ कायकलेसो संली, णया य वज्जो तवो होइ ॥ १ ॥ पायच्छित्तं विणउं, वेयावच्चं तहेव सप्ताउं ॥ ज्जाणं उस्सग्गोविय, श्रप्रिंत रउं तवो होइ ॥ २ ॥ इनका अर्थ—१ व्रत करणां, २ थोडा खाणां, ३ नाना प्रकारके अजिग्रह करणे, ४ रस जो दूध, दहीं, घृत, तेल, मीठा पकान्न, इनोका त्याग करनां, ५ कायक्लेश, वीरासन, दंडासन आदिक करी अनेक तरेंका कायक्लेश करनां, ६ पांचो इंड्रियांकूं अपणे अपणे विषयोंसें रोकनां, ए ७ प्रकारका बाहिर तप हे, १ जो कुछ अयोग्य काम करा अरु पीछेसें गुरुके आगें आपणा पाप जेसें करा था, वेसेही प्रगट पणे कहना, आगेकूं फेरवो पाप न करना, अरु पूर्वें जो करा हे, उसकी निवृत्तिके वास्ते गुरु पासों यथा योग्य दंड लेनां, इसका नाम प्रायश्चित तप हे. तथा २ अपनेस गुणाधिककी विनय करनी, तथा ३ वेय्यावृत्त जक्ति करनी,

तथा ४ एक आप दूसरायोंकों पढानां, दूसरा संशय उत्पन्न हूया गुरुकूं पूछनां, तीसरा अपने सीखे हूयेकूं वारंवार उच्चारन करनां, चौथा जो कुछ पढा है, उसके तात्पर्यकूं एकाग्रचित्त करकें चिंतनां, इसका नाम अनुप्रेक्षा है. पांचमी धर्मकथा करनी, ए पांच प्रकारका स्वाध्याय तप है, तथा ५ एक आर्त्तध्यान, दूसरा रौद्रध्यान, तीसरा धर्मध्यान, चौथा शुक्लध्यान. इन चारोंमेंसें आर्तध्यान अरु रौद्रध्यान, ए तो दोनो त्यागने, औ धर्मध्यान अरु शुक्लध्यान, ए दोनो अंगीकार करने, ए ध्यानतप तथा ६ सर्व उपाधियोंको त्याग देनां सो व्युत्सर्ग तप है, ए छ प्रकारका अभ्यंतर तप है; ए सर्व मिल कर बारा प्रकारका तप हैं.

क्रोध, मान, माया, अरु लोभ, इन चारोंका निग्रह करनां. यह पांच व्रत, दश श्रमणधर्म, सत्तर प्रकारका संयम, दश प्रकारका वैय्यावृत्त, नव प्रकारकी ब्रह्मचर्यगुप्ति, तीन ज्ञान, दर्शन, चारित्र, बारां प्रकारका तप, अरु क्रोधादिक चारका निग्रह, ए सर्व मिल कर सित्तर भेद चारित्रके है इस वास्ते इनकूं चरणसित्तरी कहते हैं.

अथ करणसित्तरीके भेद लिखते हैं ॥ गाथा ॥ पिंडविसोही समिई, भावण पडिमाय इंदिय निरोहो ॥ पडिलेहण गुत्तीओ, अभिग्गह चेव करणंतु ॥ १ ॥ इसका अर्थः—पिंडविशुद्धि सो एक आहार, दूसरा उपाश्रय, तीसरा वस्त्र, चौथा पात्र, ए चार वस्तुकूं साधु बेंतालीश दूषण करकें रहित लेवे. तिसका नाम पिंडविशुद्धि है. बेंतालीश दूषणका जो पूरा स्वरूप देखनां होवे. तब तो पिंडनिर्युक्ति ग्रंथ भद्रबाहुस्वामिकृत उसकी मलयगिरिसूरि कृत टीका सात हजार श्लोक प्रमाण है, सो देखनी. तथा पिंडविशुद्धि ग्रंथ जिनवल्लभसूरिकृत औ उसकी जिनपतिसूरिकृत टीकासें जान लेनां, तथा प्रवचनसारोद्धार श्रीनेमिचंद्रसूरिकृतसूत्र, तथा उसकी सिद्धसेनसूरिकृतटीकासें जान लेनां; तथा श्रीहेमचंद्र सूरिकृत योग शास्त्रसें जान लेनां.

अथ समिई सो पांच समिति, उसका स्वरूप लिखते हैं. प्रथम ईर्या समिति, सो चलनेका नाम ईर्या कहते है; अरु समिति कहियें सम्यक् आगमके अनुसार जो प्रवृत्ति चेष्टा करणी, सो समिति कहियें. त्रस स्थावर जीवोंकूं अभयदान दाता जो मुनि है, तिस मुनिकूं अवश्य प्रयोज

नके वास्ते चलनां पडे, तब किस रीतिसें चलनां? प्रथम तो प्रसिद्ध रस्तेसें चलनां, जो रस्ता सूर्यकी किरणोंसें प्रतप्त होवे, प्रासुक जीव रहित होवे. जिसमें स्त्री पुरुषका संघट्ट न होवे, जीवोंकी रक्षा निमित्त अथवा अपने शरीरकी रक्षा निमित्त पगके अंगूठेसें ले कर चार हाथ प्रमाण भूमिका आगेसें देख कर चलनां इसका नाम ईर्यासमिति है. इस रीतिसें जो साधु चले, तथा दूसरा कोइ काम करे, तिस काममें कदाचित् कोइ जीव मरभी जावे, तोभी साधुकूं पाप नहीं लगता, क्योंकि उसका उपयोग बहुत शुभ है, यह प्रथम ईर्यासमिति. तथा पाप सहित भाषा, तथा कठोर भाषा, जैसें के तूं धूर्त है, कामी है, राक्षस है, चार्वाक प्रमुखके कहे शब्दोंकों न कहे, जो शब्द जगत्में निंदनिक होवे, सो न बोले, परंतु सुखदाइ बोलनेमें थोडा बहुत प्रयोजनोंका साधनेवाला संदेह रहित ऐसा वचन बोले, सो दूसरी भाषासमिति. तथा बेंतालीश दूषण रहित आहारादिक ग्रहण करे, सो तीसरी एषणासमिति, तथा आसन, संस्तारक, पीठ, फलग, वस्त्र, पात्र, दंडादिककों नेत्रोंसें देख कर उपयोग पूर्वक लेनां, अरु रखनां करनां, सो चौथी आदाननिक्षेप समिति, तथा पुरीष, प्रश्रवण थूक, नाकका श्लेष्म, शरीरमल, वस्त्र, अन्न, पानी, जो शरीरका अनुपकारी होवे, इन सबकूं जीव रहित भूमिकामें स्थापन करनां, सो पांचमी परिष्ठापना समिति, यह पांच समिति कही.

अथ बार भावना लिखते हैं. प्रथम अनित्यभावना, दूसरी अशरणभावना, तीसरी संसारभावना, चौथी एकत्वभावना, पांचमी अन्यत्वभावना, छठी अशुचित्वभावना, सातमी आश्रवभावना, आठमी संवरभावना, नवमी निर्जराभावना, दशमी लोकस्वभावभावना, अग्यारमी बोधिदुर्लभ भावना. बारमी धर्मका कथन करने वाला, अर्हन् है, यह बारा भावना जिस तरेंसें भावने योग्य रात दिनमें है, तैसें अभ्यास करनां, इन बारां भावनायोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं,

१ अनित्यभावना. जो जिनका वज्रकी तरें सार अरु कठिन शरीर था, वोभी अनित्य रूप राक्षसने ग्रहण कर लीये, तो फेर केलेके गर्भकी तरें निःसार जो जीवोंका शरीर है, सो यह अनित्य रूप राक्षसमें कैसें बचेगे? तथा लोक, विभूतिसें तरें आनंदित हो कर, विषय सुखका

दूधकी तरें स्वाद लेते है, परंतु लाठीकी मारकूं नहीं देखते हैं, भावार्थः– विषयसुख भोग कर आनंद तो मानते है, परंतु जन्मांतरमें नरकपतन रूप संकटसें नहीं मरते है, तथा जीवोंका शरीर तो पाणीके बुल बुलेकी तरें है, अरु जीवोंका जो जीवित है, सो ध्वजाकी तरें चंचल है, तथा लावण्य, स्त्री, परिवार, आंखकी पापण, (भांफण) की तरें चंचल है, अरु यौवन जो है, सो हाथीके कानकी तरें चंचल है, तथा स्वामीपणा जो है, सो स्वप्नश्रेणीकी तरें है, अरु लक्ष्मी जो है सो चपला (वीजली) की तरें चपल है, इसी तरें सर्व पदार्थोंकूं अनित्य पणा विचारता प्यारा पुत्रादिकभी मर जाये, तोभी अपणे मनमें शोच न करे, तथा जो मूर्ख जीव सर्व भावकूं नित्य माने है, वो जीर्ण पत्रोकी झोंपमीके भंग होनेंसें रात दिन रुदन करता है; तिस वास्ते तृष्णाका नाश करकें ममत्व रहित शुद्ध बुद्धि वाला जीव अनित्य भावना भावे ॥ इति प्रथम भावना ॥ १ ॥

२ दूसरी असरण भावनाका स्वरूप कहते हैं. पिता, माता, पुत्र, भार्या, प्रमुखके आगें वहुत आधि व्याधिके समूह रूप शृंखलामें बंधा हुये रुदन करते हुयेकूं कर्मरूप योद्धोनें यमके (कालके) मुखमें प्रक्षेप करता थकां वमा दुःख है, जो लोक शरण रहित अनाथ है, वे क्या करेंगे ? तथा नाना प्रकरके शास्त्र विषयोंकूं जो जानते हैं, तथा नाना प्रकारके मंत्र यंत्रोकी क्रिया जो जानते है. तथा जो ज्योतिषविद्याकूं जानते हैं, तथा जो नाना प्रकारकी औषधि, रसायन प्रमुख वैद्यक क्रियाओंमें कुशल हैं. ए सर्व विद्यावानोंकी क्रिया कालके आगें कुछभी करनेकूं समर्थ नहीं है, तथा नाना प्रकारके शस्त्रों वाले उद्भटजोद्धाओंकी सेना करकें परिवेष्टितभी है, नाना प्रकारके मदझर हाथीयोंकी वाडभी है. ऐसे इंद्र, वासु, देव, चक्रवर्त्ती सरीखे वलवान्भी कालके घरमे खैंचे हुये चले जाते हैं, वडा दुःख है कि जो प्राणियोकूं कोइभी त्राण नहीं. तथा जो मेरुका दंड अरु पृथ्वीका छत्र करनेकूं समर्थ थें, अरु योमाभी जिनकूं क्लेश नहीं था, ऐसें अनंतवली तीर्थकरभी लोकोकूं कालसें वचानेकूं समर्थ नहीं, तो फेर दूसरा कौनसा समर्थ है ? स्त्री, मित्र पुत्रादिकोके स्नेहरूप भूतके दूर करणे वास्ते शुद्धमति जीव अशरण भावना भावे. ए दूसरी अशरण भावना.

३ तीसरी संसार भावना कहते है बुद्धिमान् तथा बुद्धि रहित, सुखी,

दुःखी, रूपवान् तथा कुरूपवान् स्वामी तथा दास, प्यारा तथा वैरी, राजा तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक इत्यादिक अनेक प्रकारकें कर्मोंके वशसें सांग धार कर, इस संसार रूप अखाडेमें यह जीव नाटक करता है, तथा अनेक पाप बांध करकें महारंभ, मांस भक्षण, मदिरापानादिक कारणों करकें, महा अंधकार जहां कुछ नहीं दीखता, ऐसी नरकभूमिकामें जा करकें पकता है, तिहां अंग छेदन, अग्निमें बलनादि क्लेश रूप महा दुःख जो जीवकूं होते हैं, उन दुःखोंकूं केवलीभी कथन नहीं कर सक्ता. यह प्रथम नरकगति कही. तथा छल, जूआदिक कारणोंसें प्राणी तिर्यंच गतिमें सिंह, वाघ, हाथी, मृग, बैल, बकरे प्रमुखके शरीर धारण करता है. अरु तिस तिर्यंच गतिमें क्षुधा, तृषा, वध, बंधन, ताडन, रोग, हल प्रमुखमें वहनां. इत्यादिक दुःख सदा जो जीव सहता है, वो दुःख कौन कहनेकूं समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यग्गति कही.

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी, गमन करनेमें एक समान निःशुक्ता बहुत है, तहां जो अनार्य मनुष्य हैं, वोतो निरंतर जीवघात, मांस भक्षण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख कारणां करकें बडा भारी पापकर्म महा दुःखोंका देने वाला उत्पन्न करते है, तथा आर्यदेशमेंभी क्षत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो हैं, वेभी अज्ञान, दरिद्र, कष्ट, दौर्भाग्य, रोगादिक करकें पीडत हैं. दूसरोंका काम करणां, मानभंग, अपमान प्रमुख अनेक दुःख निरंतर भोग रहे हैं, तथा अग्निवत् रक्त रंग है जिनका ऐसीयां सूइयों एक एक रोममें एकेक सूइ किसी जुवान पुरुषके एक कालमें चोभेसें जैसा उसकूं दुःख होवे तिस दुःखसें आठ गुणा दुःख जीव स्त्रीके गर्भ जब रहता है तब पाता है, इस दुःखसें अनंत गुणां दुःख जन्म समय होते है, तथा बाल अवस्थामें मूत्र, पुरीष, धूलिमें लोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्की निंदा, योवनमें धन अर्जन करनां, इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका संयोग, अरु वृद्ध अवस्थामें शरीरका कंपनां, नेत्रोंका बलहीन हो जानां, श्वास, खांसी प्रमुख करकें महा दुःखी होनां तो वो कौनसी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइभी नहीं यह मनुष्यगति कही. तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसें जो जीव देवता होता है, सोभी शोक, विषाद, मत्सर, भय, थोडी ऋद्धि करकें ईर्ष्या, काम, मद,

दुःखी, रूपवान् तथा कुरूपवान् स्वामी तथा दास, प्यारा तथा वैरी, राजा तथा प्रजा, देवता, मनुष्य, तिर्यग्, नारक इत्यादिक अनेक प्रकारके कर्मोंके वशसें सांग धार कर, इस संसार रूप अखाडेमें यह जीव नाटक करता है, तथा अनेक पाप बांध करकें महारंज, मांस जक्षण, मदिरापानादिक कारणों करकें, महा अंधकार जहां कुछ नहीं दीखता, ऐसी नरकजूमिकामें जा करकें पमता है, तिहां अंग छेदन, अग्निमें बलनादि क्लेश रूप महा दुःख जो जीवकूं होते हैं, उन दुःखोंकूं केवलीजी कथन नहीं कर सक्ता. यह प्रथम नरकगति कही. तथा छल, जूठादिक कारणोंसें प्राणी तिर्यंच गतिमें सिंह, वाघ, हाथी, मृग, वैल, वकरे प्रमुखके शरीर धारण करता है. अरु तिस तिर्यंच गतिमें क्षुधा, तृषा, वध, वंधन, ताडन, रोग, हल प्रमुखमें वहनां. इत्यादिक दुःख सदा जो जीव सहता है, वो दुःख कौन कहनेकूं समर्थ है ? यह दूसरी तिर्यग्गति कही.

तथा खाद्य, अखाद्य, विवेकशून्य, मनमें लज्जा नहीं, माता, बेटी, गमन करनेमें एक समान निःशुक्ता बलुत है, तहां जो अनार्य मनुष्य हैं, वोतो निरंतर जीवघात, मांस जक्षण, चोरी, परस्त्रीगमन प्रमुख कारणों करकें वडा जारी पापकर्म महा दुःखोंका देने वाला उत्पन्न करते है, तथा आर्यदेशमेंजी क्षत्रिय, ब्राह्मण प्रमुख जो हैं, वेजी अज्ञान, दरिद्र, कष्ट, दौर्जाग्य, रोगादिक करकें पीमत हैं. दूसरोंका काम करणां, मानजंग, अपमान प्रमुख अनेक दुःख निरंतर जोग रहे हैं, तथा अग्निवत् रक्त रंग है जिनका ऐसीयां सूइयों एक एक रोममें एकेक सूइ किसी जुवान पुरुषके एक कालमें चोजनेसें जैसा उसकूं दुःख होवे तिस दुःखसें आठ गुणा दुःख जीव स्त्रीके गर्ज जव रहता है तव पाता है, इस दुःखसें अनंत गुणां दुःख जन्म समय होते है, तथा वाल अवस्थामें मूत्र, पुरीष, धूलिमें लोटनां, अज्ञानी पणा, जगत्की निंदा, योवनमें धन अर्जन करनां, इष्ट वस्तुका वियोग, अनिष्ट वस्तुका संयोग, अरु वृद्ध अवस्थामें शरीरका कंपनां, नेत्रोंका वलहीन हो जानां, श्वास, खांसी प्रमुख करकें महा दुःखी होनां तो वो कोनसी दशा है कि जिसमें प्राणी सुख पावे ? कोइजी नहीं यह मनुष्यगति कही. तथा सम्यग् दर्शनादिकके पालनेसें जो जीव देवता होता है, सोजी शोक, विषाद, मत्सर, जय, थोमी ऋद्धि करकें ईर्ष्या, काम, मद,

क्षुधा प्रमुख करके पीडित हो कर, आपणां आयु दीनमन होकर पूर्ण करते है. यह देवगति कही. इस तरेसें मोक्षाभिलाषीपुरुष तीसरी संसार भावना भावे.

४ चोथी एकत्व भावना कहते है. एकलाही जीव उत्पन्न होता है, अरु एकलाही मृत होता है. एकलाही कर्म करता है, अरु एकलाही तिनका फल भोगता है. तथा जो जीवने बहुत कष्ट करके धन उपार्ज्या है, सो धन, स्त्री. मित्र पुत्र. भाइ प्रमुख खा जावेंगे अरु जो पाप कर्म उपार्ज्या है. उसका फल तो करने वाला जीव एकलाही नरक, तिर्यंच गतिमें जाकर भोगता है. देखो यह कैसा आश्चर्य है! तथा यह जो जीव इस देहके वास्ते रात दिन फिरता है. अरु दीनपणा अवलंबन करता है, धर्मसें भ्रष्ट होता है. अपणे हितकुं ठगाता है, न्यायसें दूर होता है, सो देह इस आत्माके साथ एक पग तकभी परभवमें न चलेगी, तो फेर यह देह क्या करेगी? क्या साहाय्य देगी? अरु स्वजन जो है. सो अपने स्वार्थमें तत्पर है, तेरा वास्तवमें कोइभी नहीं. इस वास्ते हे बुद्धिमान्! तूं अपने हितके वास्ते धर्म करनेमें प्रयत्न कर. इस तरेसें चोथी एकत्व भावना भावे.

५ पांचमी अन्यत्वभावना कहते है. जीव इस देहकूं छोड कर परलो ककूं जाता है, इस वास्ते इस शरीरसें जीव भिन्न है, तो फिर नाना प्रकारका सुगंधि लेपन करनां व्यर्थ है, इस वास्ते इस शरीरकूं कोइ दंडादिक करके मारे तो समता रस पीना चाहिये, क्रोध न करनां. जो पुरुष अन्यत्व भावना भावे. तिसकूं शरीर धन, पुत्रादिकके वियोग होनेसेंभी शोक नहीं होता है. यह पांचमी अन्यत्व भावना कही.

६ छठी अशुचि भावना लिखते है. जैसें लूणकी खानमें जो पदार्थ पडता है वो सर्व लूण हो जाता है. तैसेंही इस कायामें जो कुछ आहार पडता है सो सर्व मलरूप हो जाता है. ऐसी यह काया अशुचि है, तथा यह काया लोहि. अरु शुक्र इन दोनोके मिलनेसें गर्भ उत्पन्न होता है. जरा करके वेष्टित होता है. जो कुछ माता खाती है. उसीके रससें वो गर्भ. वृद्धिकूं प्राप्त होता है. अरु स्थिर धातुयों करी पूर्ण है. ऐसी देहकूं कौन बुद्धिमान् शुचि मानता है? तथा जो सुस्वाद. शुभ गंध वाले मोदक, दहीं. दूध, इक्षुरस. शालि. ओदन, द्राक्ष. पापड. अमृती. घेवर, आंब प्रमुख खाता है. सो तत्काल मलरूप हो जाता है, ऐसी अशुचि कायाकूं

महा मोहांध पुरुष, शुचि माने हें. तथा पानीके सो (१००) घमोंसें स्नान करकें सुगंधि, पुष्प, कस्तूरि प्रमुख द्रव्यों करकें बाहिरली त्वचा तो कितनेक कालतांइ मुग्धजीव शुचि सुगंधित करते हें, परंतु विष्टका कोठा मध्य जागमें केसें शुचि होवें ? तथा बडे हर्ष वृद्धिवाले द्रव्य कर कें वासित हे, दिशा, तथा चंदन, कस्तूरी, कर्पूर, अगरु, कुंकुम प्रमुख वस्तुका शरीरके साथ जब संबंध होता हे, तब ए पूर्वोक्त सर्व वस्तु डुर्गंध रूप क्षण मात्रमें हो जाती हे, फेर इस कायाकूं कौन बुद्धिमान् शुचि मानता हे ? असे शरीरकी अशुचिरूपता विचार करकें बुद्धिमान् पुरुष, इस शरीरकी ममत्व नकरे. यह उठी अशुचि जावना कही.

७ सातमी आश्रवजावना कहते हे. मन, वचन, औ कायाके योग करकें शुजाशुज कर्म जो जीव ग्रहण करते हें, तिसका नाम आश्रव, जिनेश्वर देव कहते हें. सर्व जीवों विषे मैत्र जावना, गुणाधिक जीवमें प्रमोद जावना, अविनीत शिष्यादिकमें मध्यस्थ जावना, डुःखी जीवोमें कारुण्यजावना, इन चारो जावनाओं करकें जिस पुरुषका अंतःकरण निरंतर वासित होवे, वो पुण्यवान् जीव, बेंतालीश प्रकारका पुण्य उपार्जन करता हे. तथा रौद्रध्यान, आर्त्तध्यान, पांच प्रकारका मिथ्यात्व, शोल प्रकारकी कषाय, पांच प्रकारका विषय, इनो करकें जिनोका मन वासित हे, वे जीव, व्यासी प्रकारका अशुज कर्म उपार्जन करते हें, तथा सर्वज्ञ अर्हंत जगवंत, गुरु, सिद्धांत द्वादशांग, चार प्रकारका संघ, इन सर्वका जो गुणानुवाद कीर्त्तन करता हे, अरु सत्य वचन हितकारी बोलता हे, वे जीव, शुजकर्म उपार्जन करते हें. तथा श्रीसंघ, गुरु, सर्वज्ञ धर्म, अरु धर्म्मी इन सबके जो अवर्णवाद बोले, जूठे मतका, वा कपोल कल्पित मतका जो उपदेश करे, वो जीव अशुज कर्म उपार्जन करता हे. तथा जो पुरुष वीतराग देवकी पुष्पादिकें करी पूजा करे तथा साधुकी जक्ति, विश्रामण प्रमुख करे, तथा पापसें काया गुप्त करे, वो जीव, शुज कर्म उपार्जन करता हे. तथा जो, जीव, मांसजक्षण, सुरापान, जीवघात, चोरी, जूआ, परस्त्रीगमनादिक करे, वो अशुज कर्म उपार्जन करता हे. ए अनुक्रमसें मन, वचन, काया करकें शुजाशुज आश्रव उपार्जन करता हे, इस प्रकारसें यह आश्रव जावना जो जीव जावे हे, सो अनर्थ परंपराकूं त्याग देता हे, अरु महानंदस्व

रूप, दुःख दावानलकूं मेघसमान ऐसी शर्मावलि मोक्षकी देने हारी अंगीकार करता है. इस तरेसें सातमी आश्रवभावना भावे.

८ आठमी संवरभावना कहते है, सो आश्रवोंका जो निरोध करनां, तिसकूं संवर कहते हैं, सो संवर दो प्रकारका होता है; एक देशसंवर; दूसरा सर्व संवर. उसमें सर्व करिकें संवर तो अयोगी केवलीमें होता हैं, अरु जो देशसें संवर है; सो एक दो प्रमुख आश्रवके निरोध करने वालेमें होता है. तथा वली संवर दो प्रकारका है, एक द्रव्यसंवर, दूसरा भावसंवर, उसमें जो कर्मपुद्गल आश्रव करकें जीव ग्रहण करता है; तिनका जो देशसें वा सर्वसें छेदन करनां, सो द्रव्यसंवर अरु जो भव हेतु क्रियाका त्याग, सो भावसंवर. मिथ्यात्व कषाय प्रमुख आश्रवोंकों जो बुद्धिमान् उपाय करकें निरोध करे, अरु आर्त्त, रौद्र ध्यान जो बुद्धिमान् वर्जे, धर्मध्यान शुक्लध्यान ध्यावे; क्रोधकूं क्षमा करकें जीते, मानकूं मृदुभाव करकें जीते, मायाकूं सरलता करकें जीते, लोभकूं संतोष करकें जीते, इंद्रियोंके विषय इष्टानिष्टकूं राग द्वेषके त्यागनेसें जीते, इस प्रकारसें जो बुद्धिमान् संवरभावना भावे, तो स्वर्ग मोक्षरूप लक्ष्मी अवश्य उसके वशीभूत हो जाती है.

९ नवमी निर्ज्जरा भावना लिखते हैं. संसारकी हेतुभूत जो कर्मकी संतति है, तिसकी अतिशय करकें जो हानी करे, तिसका नाम निर्ज्जरा है. सो निर्ज्जरा दो प्रकारकी है. एक सकाम निर्ज्जरा, दूसरी अकाम निर्ज्जरा, इन दोनोंमेंसूं जो सकाम निर्ज्जरा है, सो उपशांति चित्तवाले साधुकूं होती है; अरु अकामनिर्ज्जरा, शेष जीवोंकूं होती है. शेष जीवोंकूं जो अकाम निर्ज्जरा होती है, सो कर्मका पाक स्वयमेव होता है, अरु उपायसें भी कर्मका पाक होता है, जैसें आंबका फल स्वयमेवही वृक्षकी डालीमें लगा हूवाही पक जाता है, अरु कोद्रवादिक पलाल गर्त्ताक्षेप करनेसेंभी पक हो जाता है, ऐसेही निर्ज्जराभी दो प्रकारकी है. हमारे कर्मोंकी निर्ज्जरा होवे ऐसे आशय वाले पुरुष जो तप प्रमुख करते हैं, उनोंके सकाम निर्ज्जरा होती है, अरु एकेंद्रिय जो जीव है, तिनकूं विशेष ज्ञान तो नहीं परंतु शीतोष्ण, वर्षा, दहन, छेदन, भेदनादिक करकें सदा जो वो कष्ट भोगनेसें कर्म निर्ज्जरा होती है; उसका नाम अकाम निर्ज्जरा है, ऐसें तप प्रमुख करकें जो निर्ज्जराकी वृद्धि करे, सो नवमी निर्ज्जरा भावना जाननी.

१० दशमी लोकस्वजाव जावना कहते हैं. यह पृथिवी, चंद्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारे अरु लोकाकाश, नरक, स्वर्ग प्रमुख सर्वकूं मिलाके एक लोक कहनेमें आता है, तिस संपूर्ण लोकका आकार जैनमतके सिद्धांतमें ऐसें लिखा है. जैसें कोइ पुरुष जामा पहिरकें कमरमें दोनो हाथ लगा कर खमा होवे, जैसा उसका आकार है, ऐसाही लोकका आकार है, षट्द्रव्य करकें पूर्ण है, उत्पत्ति स्थिति, अरु व्यय, इन तीनों स्वरूपों करी संयुक्त है. अनादि अनंत है, किसीका रचा हूआ नहीं है, ऊर्ध्वलोक, अधोलोक, तिर्छालोक, इन तीन स्वरूपोमें वढा हूया है जो जीवपुजल, सव इसीके अंदर है, वाहिर नहीं. लोकसें वाहिर तो केवल एक आकाशही है, वो आकाशजी अनंत है, इसी आकाशका नाम जैन शास्त्रोंमें अलोक नाम करके लिखा है; अधोलोकमें न्यारी न्यारी हेठ उपरि सात पृथिवी हैं, उनमें नरकवासी जीव रहते हैं, अरु किसी जगे जवनपति व्यंतरजी रहते हैं, तिरछे लोकमें मनुष्य अरु तिर्यंच और व्यंतर रहते हैं, ऊर्ध्व लोकमें देवता रहते हैं, विशेष करकें जो लोकस्वरूप देखना होवे, तो लोकनाली द्वात्रिंशतिकासें तथा लोकप्रकाश ग्रंथसें जान लेनां. इसतरें लोकके स्वरूपका जो चिंतन करनां है, सो दशमी लोकस्वजावजावना है.

११ अगीयारमी वोधिदुर्लजत्व जावना कहते हैं, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति, इनमें अपणे करे हूये क्लिष्ट कर्मो करकें जीव ज्रमण करता है, इस जयानक संसारमें अनंतानंत पुजलपरावर्तन करता हूवा यह जीव अकाम निर्जरा करकें, अरु पुण्य उपार्जन करकें, बेंद्रिय, त्रींद्रिय, चउरिंद्रिय पंचेंद्रिय रूप त्रस पणा पावे है, फेर आर्यक्षेत्र, सुजाति, जला कुल, रोग रहित शरीर, संपदा, वडा राज्यसुख, हलके कर्म, तत्वातत्वके विवेचन करने वाली वोधवीजके वोने वाली, कर्मक्षय करकें मोक्ष सुखोंकी जननी, ऐसी श्री सर्वज्ञ अर्हंतकी देशना मिलनी वहुत डुर्लज है, जे कर जीव एक वारजी सम्यक्त्वरूप वोधि पामता, तो इतने काल तांइ कदापि संसारमें पर्यटन न करता, जो अतीत कालमें सिद्ध हूये, जो वर्त्तमानमें सिद्ध होते हैं, अरु जो अनागत कालमें सिद्ध होयेंगे, वे सर्व वोधिहीके माहात्म्य है, इस वास्ते जव्य जीवकूं वोधिकी प्राप्तिमें यत्न करनां चाहियें; क्योंकि कि

तनेक जीवोंने अनंत वार द्रव्य चारित्र पाया है, परंतु बोधिके विना सर्व निष्फल हूवा. यह अगीआरमी जावना कही.

१२ बारमी धर्म कथाके कथन करनेवाला अर्हन् है यह जावना लिखते हैं. जो पुरुष परहित करनेमें उद्यत है, अरु वीतराग है, वो किसी ज गामेंजी जूठ न बोलेगा. ईस वास्ते उसके कहे हूये धर्ममें सत्यता है, असा तो लोकालोककूं केवलज्ञान करकें प्रकाश करनहार अर्हतही हो सक्ता है, दूसरा नहीं, क्षांत्यादि दश प्रकारका धर्मकूं जिनेश्वर कहते हूये उस धर्म करकें जीव, संसार समुद्रमें डुबता नहीं, जो अर्हतकी वाणी है, सो पूर्वापर अविरूद्ध है, अरु तिन वचनोंमें हिंसाका उपदेश नहीं. वचन जो कहते है, सो निर्ज्जरा वास्ते. दूसरेका उपदेश विना विचित्र तरेंसें कह जाते है, तथा कुतीर्थीयोंके जो वचन हे सो सर्व सन्नतिके वैरी हैं, क्यों के यज्ञादिकोंमें पशुवध रूप हिंसा करकें कलंकित हैं, पूर्वापरविरोधी है, निरर्थक वचनजी बहुत है, इस वास्ते जो कुतीर्थी धर्म कहते हैं, वोजी धर्माजास हैं, धर्म नहीं. ईस हेतुसें तिनका वचन किस तरें प्रमाण हो सक्ता है ? अरु जो जो कुतीर्थीयोंके शास्त्रोंमें कहीं कहीं दया सत्यादिकोंका कथन है, सोजी कहनेही मात्र है, परंतु तत्वमें वोजी कुछ नहीं हे, क्यों के यथार्थ ईनका स्वरूप वे जानते नहीं हैं, अरु यथार्थ पालते नहीं हैं, प्रथम तो उन शास्त्रोंके जो उपदेशक हैं, वेही सर्व कामाग्निमें प्रज्वलित थे, यह वात सर्व सुज्ञ जनोंकों विज्ञात है, ईस वास्ते अर्हत जगवंतही सत्यार्थके उपदेशक हैं, तथा वडे मदऊर हाथीयोंकी घटा संयुक्त जो राज्यका पावनां, औ सर्व जनोंकों आनंद देने वाली संपदाका पावनां, तथा जो चंद्रमांकी तरें निर्मल गुणका समूह पावनां, अरु जो उत्कृष्ट सौजाग्यका विस्तार पावनां, यह सर्व धर्महीका प्रजावहै, तथा समुद्र जो पृथिवीकूं अपणी कल्लोलां करी वहाता नहीं है, तथा मेघ जो पृथिवीकूं रेल पेल नहीं करता, अरु चंद्रमा, सूर्य, जो उदय होते हैं, सर्व अंधकारका विछेद करते हैं, सो सर्व जयवंत धर्महीका प्रजाव हे. जिसका जाई नहीं, जिसका मित्र नहीं जिस रोगीका कोइ वैद्य नहीं, जिसके पास धन नहीं जिसका कोई नाथ नहीं, जिसमें गुण नहीं, ईन सर्वका जाई, मित्र, वैद्य, धन, नाथ, गुणोंका निधान, धर्म हे. तथा यह जो अर्हतका कथन

कीया हुया धर्म है. सो महापथ्य है, ऐसें जो भव्य जीव मनमें ध्यावे, सो धर्ममें दृढतर होवे. एकही निर्मल धर्म भावनाकूं निरंतर जो जीव भावे, सो भव्य, अशेष पापकर्म नाश करकें अनेक जीवोंकूं उपदेश द्वारा मुक्ती करकें, परम पदकूं प्राप्त होता है, तो फेर जो बारांही भावना भावे, तिसके परमपद प्राप्ति होनेमें क्या आश्चर्य है ? यह बारां भावना समाप्ति होगइ हैं ॥ १२ ॥

अथ बारां प्रतिमा लिखते हैं. एक माससें ले कर सात मास पर्यंत एक एक मासकी वृद्धि जान लेनी, ए सात प्रतिमा होती हैं. जैसें प्रथम एक मासकी, दूसरी दो मासकी, ऐसेही एक एक मास वृद्धि कर सात मास पर्यंत सात प्रतिमा होती हैं, श्रो आठमी सात दिन रातकी, नवमी सात दिन रातकी, दशमी सात दिन रातकी, अग्यारमी एक दिन रातकी अरु बारमी प्रतिमा एक रात्रि प्रमाण जाननी एवं बारा प्रतिमा. अभिग्रह, अरु प्रतिज्ञा, ए एकही नाम है.

अथ जो साधु, इन बारां प्रतिमाकूं अंगीकार कर सक्ता है, तिसका स्वरूप लिखते हैं. "संहननधृतियुक्तः" तहां जिसका संहनन वज्रऋषभनाराच होवे, सो परीषह सहनेमें अत्यंत समर्थ होता है, "धृति" सो चित्तका स्वस्थपणा होवे, तो रति, अरति करकें पीडित नहीं होता है, "महासत्वः" महासात्त्विक जो होवे, सो अनुकूल, प्रतिकूल उपसर्ग सहनेमें विषादकों नहीं धरता है, "भावितात्मा" सद्भावना करकें भावित अंतःकरण होवे, जिसकी भावना पांच हैं, तिनका विस्तार व्यवहार भाष्यटीकामें जानना. ए भावना कैसें भावे ? जैसें आगममें हैं, तथा जैसें गुरु आचार्य आज्ञा देवे. जे कर गुरुही प्रतिमा अंगीकार करे, तदा नवीन आचार्य स्थापन करकें उसकी आज्ञामें, तथा गच्छकी आज्ञा ले कर करे, तथा प्रथम आरंभे गच्छमेंही रह कर प्रतिमा अंगीकार करणेका प्रतिकर्म करे. सो प्रतिकर्म यह है:-

मासादिक सात जो प्रतिमा हैं. तिनका प्रतिकर्मभी तितनाही है, वर्षाकालमें ए प्रतिमा नहीं अंगीकार करी जाती है, अरु परिकर्मभी वर्षाका लमें नहीं करणा तथा आदिकी दो प्रतिमा एक वर्षमें होती है, तीसरी एक वर्षमें, चौथी एक वर्षमें, शेष पांचमी, छठी, सातमी, इन तीनों प्र

तिमाओंका एक वर्षमें परिकर्म एक वर्षमें प्रतिमा, ऐसें नव वर्षमें आदिकी सात प्रतिमा समाप्त करिये हैं.

अथ जो यह प्रतिमा अंगीकार करता है, उसकूं कितना ज्ञान होता है? यावत् किंचित् न्यून दश पूर्व होता है, क्युंकि जिसकूं पूर्ण दश पूर्वकी विद्या होती है, उसका वचन अमोघ होता है, इस वास्ते उसकूं धर्मोपदेश देना चाहियें. उसके उपदेशसें बहुत जव्योंकूं उपकार अरु तीर्थकी वृद्धि होनेसें प्रतिमादि कल्प करना चाहियें; अरु प्रतिमा अंगीकार करनेवालोंकों जघन्य ज्ञान नवमे पूर्वकी तीसरी वस्तु, आचार वस्तु जिसका नाम हैं, तहां तांइ होवे. इतना ज्ञान सूत्र तथा अर्थ, दोनोही पूरे होवें, क्योंकि निरतिशय ज्ञानी होनेसें कालादिककों नहीं जान सकेगा, तथा "व्युत्सृष्ट" शरीरकी सार संजाल त्यागी है, देवतादिकका उपसर्ग सहै, जिनकल्पीकी तरें उपसर्ग सहै, तथा एषणापिंमग्रहण प्रकार, जिक्षाग्रहण विधि, गछसें बाहिर रहे. इत्यादि शेष वर्णन देखना होवे तो प्रवचनसारोद्धारकी वृहद्वृत्ति देख लेनी. ए बारां प्रतिमा कही ॥ १२ ॥

अथेंद्रियनिरोध कहते है. "स्पर्शनं रसना घ्राणं चक्षुः श्रोत्रं चेति." यह पांच इंद्रिय. अरु स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, ए पांच, पूर्वोक्त पांच इंद्रियोंके यथाक्रम विषय हैं, इन पांचों विषयोंका निरोध करनां, क्यों के जो इंद्रिय वशमें न होंगी. तो बडी अनर्थकारी होगी, अरु क्लेश सागरमें गेरेंगी॥ यदत्यधायि॥ आर्या वृत्तं ॥ सक्तः शब्दे हरिणः, स्पर्शे नागो रसे च वारिचरः ॥ कृपणपतंगो रूपे, जुजंगो गंधेन च विनष्टः ॥१॥ पंचसु सक्ताः पंच, विनष्टा यत्र गृहीतपरमार्थाः ॥ एकः पंचसु सक्तः, प्रयाति जस्मांततां मूढः ॥ २ ॥ तुरंगैरिव तरतरलै, र्दुर्दतैरिंद्रियैः समाकृष्य ॥ उन्मार्गे नीयंते, तमोघने दुःखदे जीवः ॥ ३ ॥ अनुष्टुब्वृत्तं ॥ इंद्रियाणां जये तस्मा, द्यत्नः कार्यः सुबुद्धिजिः ॥ तज्जयो येन जविनां, परत्रेह च शर्मणे ॥४॥

अथ प्रतिलेखना जैन साधुओंमें प्रसिद्ध हैं, उस वास्ते नहीं लिखी.

अथ तीन गुप्ति लिखते हैं. मनोगुप्ति, वचनगुप्ति, कायागुप्ति. ए तीन गुप्ति है. इनका स्वरूप ऐसे है कि अशुद्ध मन, वचन, कयाका निरोध करणां, अरु अछी मन, वचन, कायाकी प्रवृत्ति करणी. अभिप्राय यह है कि, मनोगुप्ति तीन प्रकारकी हैं, आर्त्त, रौद्र ध्यानानुबंधी कल्पनाका वियोग, ए प्रथम म

कीया हुया धर्म है, सो महापथ्य है, ऐसें जो नव्य जीव मनमें ध्यावे, सो धर्ममें दृढतर होवे. एकही निर्मल धर्म नावनाकूं निरंतर जो जीव नावे, सो नव्य, अशेष पापकर्म नाश करकें अनेक जीवोंकूं उपदेश द्वारा सुखी करकें, परम पदकूं प्राप्त होता है, तो फेर जो बारांही नावना नावे, तिसके परमपद प्राप्ति होनेमें क्या आश्चर्य है? यह बारां नावना समाप्ति होगइ हैं ॥ १२ ॥

अथ बारां प्रतिमा लिखते हैं. एक माससें ले कर सात मास पर्यंत एक एक मासकी वृद्धि जान लेनी, ए सात प्रतिमा होती हैं. जैसें प्रथम एक मासकी, दूसरी दो मासकी, ऐसेही एक एक मास वृद्धि कर सात मास पर्यंत सात प्रतिमा होती हैं, ओ आठमी सात दिन रातकी, नवमी सात दिन रातकी, दशमी सात दिन रातकी, अग्यारमी एक दिन रातकी अरु बारमी प्रतिमा एक रात्रि प्रमाण जाननी एवं बारा प्रतिमा. अनि ग्रह, अरु प्रतिज्ञा, ए एकही नाम है.

अथ जो साधु, इन बारां प्रतिमाकूं अंगीकार कर सक्ता है, तिसका स्वरूप लिखते हैं. "संहननधृतियुक्तः" तहां जिसका संहनन वज्रऋपननारा होवे, सो परीषह सहनेमें अत्यंत समर्थ होता है, "धृति" सो चित्तका स्वस्थपणां होवे, तो रति, अरति करकें पीडित नहीं होता है, "महासत्त्वः" महासात्त्विक जो होवे, सो अनुकूल, प्रतिकूल उपसर्ग सहनेमें विषादकों नहीं धरता है, "नावितात्मा" सन्नावना करकें वासित अंतःकरण होवे, तिसकी नावना पांच हैं, तिनका विस्तार व्यवहार नाष्यटीकासें जानना. ए नावना कैसें नावे? जैसें आगममें हैं, तथा जेसें गुरु आचार्य आज्ञा देवे, जे कर गुरुही प्रतिमा अंगीकार करे, तदा नवीन आचार्य स्थापन करकें उसकी आज्ञासें, तथा गछकी आज्ञा ले कर करे, तथा प्रथम आपणे गछमेंही रह कर प्रतिमा अंगीकार करणेका प्रतिकर्म करे, सो प्रतिकर्म यह हैः—

मासादिक सात जो प्रतिमा हैं, तिनका प्रतिकर्मनी तितनाही है, वर्षा कालमें ए प्रतिमा नहीं अंगीकार करी जाती है, अरु परिकर्मनी वर्षाकालमें नहीं करणां तथा आदिकी दो प्रतिमा एक वर्षमें होती है, तीसरी एक वर्षमें, चौथी एक वर्षमें, शेष पांचमी, छठी, सातमी, इन तीनों प्र

तिमाओंका एक वर्षमें परिकर्म एक वर्षमें प्रतिमा, ऐसें नव वर्षमें
दिकी सात प्रतिमा समाप्त करिये हैं.

अथ जो यह प्रतिमा अंगीकार करता है, उसकूं कितना ज्ञान होता है?
यावत् किंचित् न्यून दश पूर्व होता है, क्युंकि जिसकूं पूर्ण दश पूर्वकी
विद्या होती है, उसका वचन अमोघ होता है, इस वास्ते उसकूं
देश देना चाहियें. उसके उपदेशसें वहुत जव्योंकूं उपकार अरु तीर्थ
वृद्धि होनेसें प्रतिमादि कल्प करना चाहियें; अरु प्रतिमा अंगीकार
वालोंकों जघन्य ज्ञान नवमे पूर्वकी तीसरी वस्तु, आचार वस्तु
नाम हैं, तहां तांइ होवे. इतना ज्ञान सूत्र तथा अर्थ, दोनोंही
क्योंकि निरतिशय ज्ञानी होनेसें कालादिककों नहीं जान
"व्युत्सृष्ट" शरीरकी सार संजाल त्यागी है, देवतादिकका
जिनकल्पीकी तरें उपसर्ग सहे, तथा एषणापिंमग्रहण प्रकार
हण विधि, गढसें वाहिर रहे. इत्यादि शेष वर्णन देखना
चनसारोद्धारकी वृहद्वृत्ति देख लेनी. ए वारां प्रतिमा

अर्थेंद्रियनिरोध कहते है. "स्पर्शनं रसना घ्राणं चक्षुः ... के उठे
पांच इंद्रिय. अरु स्पर्श, रस, गंध, वर्ण, शब्द, ए पांच ... ोंसें तीर्थ
योंके यथाक्रम विषय हैं, इन पांचों विषयोंका निरोध ... गा, मुख्य
इंद्रिय वशमें न होंगी. तो वडी अनर्थकारी होंगी ... सो प्रायः
रेंगी ॥ यदन्यधायि ॥ आर्या वृत्तं ॥ सक्तः शब्दे ... ाद मार्गकी
वारिचरः ॥ कृपणपतंगो रूपे, जुजंगो गंधेन ... जावे ? कदा
पंच, विनष्टा यत्र गृहीतपरमार्थाः ॥ एकः ... नाराच हैं,
ततां मूढः ॥ २ ॥ तुरंगैरिव तरतरले, ... काल है, न
नीयंते, तमोघने दुःखदे जीवः ॥ ३ ॥ ... सके ?
स्मा, यत्नः कार्यः सुवुद्धिन्निः ॥ तज्जया ... ी काहेकूं

अथ प्रतिलेखना जैन साधुओंमें

अथ तीन गुप्ति लिखते हैं. मनो ... ववहारसूत्र
प्ति है. इनका स्वरूप ऐसे है कि ... ायण ते
अरु अच्छी मन, वचन, कायाकी ... ॥ सत्र
तीन प्रकारकी हैं, ... ेहे त

नोगुप्ति शास्त्रनुसारी,परलोकके साधनेवाली धर्मध्यानानुबंधवाली, माध
परिणति करणी, ए दूसरी मनोगुप्ति. संपूर्ण शुजाशुज मनोवृत्तिका नि
अयोगी गुणस्थान अवस्थामें स्वात्मारामरूपता, ए तीसरी मनो गु

वचनगुप्ति दो प्रकारकी है. उसमें मुख, नेत्र जूविकार, अंगुलीक
ऊंचा होना, खांसी करणी, हुंकारा करणां,पत्थर फेंकणा, इन पूर्वोक्त
वोंसें अपणा सूचन कराणा वर्जनां, ए प्रथम वचनगुप्ति. क्यों के
चेष्टा द्वारा सर्व कुछ सूचन करा दीया, तब मौन रहनां व्यर्थ है. बोल
दूसरेके प्रश्नका उत्तर देनां,सो लोकसें अरु आगमसें अविरोध होवे,
वस्त्रादिकसें मुखका यत्न करकें बोलनां, ए दूसरी वचनगुप्ति, इन द
जेदों करकें वचनका निरोध अरु सम्यक् जापण रूप वचनगुप्ति जान

कायागुप्ति दो प्रकारसें है. एक चेष्टाका निषेध, दूसरी आगमानु
चेष्टाका नियम करणां. तहां देवता मनुष्यादि उपसर्गमें क्षुधा तृषा
रीसहोंके संजव होयां, जो कायोत्सर्ग करणादि करकें कायाकूं निश्चल
रणां,तथा अयोगी अवस्थामें जो सर्वथा कायाकी चेष्टाका निरोध कर
ए प्रथम कायगुप्ति. तथा गुरुप्रछन्न शरीर संस्तारक, जूम्यादि प्रतिलेख
प्रमार्जनादि, जैसें शास्त्रमें है, तिसी तरें क्रियाकलाप पूर्वक शयनादिक
धुकूं करणी, शयनासन लेनां, रखनां, इन सर्व कृत्योमें स्वछंद चेष्टाका
ग देनां, मर्यादा सहित कायाकी चेष्टा करणी. ए दूसरी कायगुप्ति.

अथ अजिग्रह प्रतिज्ञा लिखते हैं. सो अजिग्रह द्रव्य, क्षेत्र, काल
जाव करि चार प्रकारके हैं, इसका विस्तार प्रवचनसारोद्धार वृत्तिमें है
करणसित्तरीकी गणती कहते है. यद्यपि आहारादिकके बैंतालीस दूषण
तथापि पिंड, शय्या, वस्त्र, पात्र, ए चारही वस्तु सदोष नहीं ग्र
करणी. इस वास्ते संख्यामें ए चारही दूषण लिये हैं. तथा पांच समि
बारा जावना, बारा प्रतिमा, पांच इंद्रियनिरोध, पच्चीश प्रतिलेखना, त
गुप्ति, चार अजिग्रह, ए सर्व एकठे करेंसें सित्तरे, करण सित्तरीके जेद

प्रश्नः—चरण सित्तरी औ करण सित्तरी, ए दोनोमें क्या विशेष है

उत्तरः—जो नित्यकरनां सो चरण, अरु जो प्रयोजन हुया तो का
नां, औ प्रयोजन नहीं होवे तदा न करणां, सो करण यह इनका
है. ए चरण सित्तरी औ करण सित्तरीके जेद समाप्ति हुये हैं.

इत्यादि जैनमतके गुरु तत्वके स्वरूप लिखनेमें लखों श्लोक लिखे जायगे, तोनी संपूर्ण जैनमतके गुरुका स्वरूप नहीं जाना जायगा, इस वास्ते थोडाहीसा स्वरूप लिखा है. जेकर विशेष जाननेकी इछा होवे, तदा श्रीउघनिर्युक्ति, श्रीआचारांग, दशवैकालिक, वृहत्कल्पजाष्य वृत्ति, पंचकल्प चूर्णी, जितकल्पवृत्ति, महाकल्पसूत्र, कल्पसूत्र, निशीथजाष्यचूर्णी, महानिशीथसूत्र, इत्यादि पदविजाग समाचारीके शास्त्र देख लेने.

प्रश्नः—जैसा जैनमतके शास्त्रोमें गुरुका स्वरूप लिखा है, वैसी वृत्तिवाला कोइजी जैनका साधु देखनेमें नहीं आता है, तो फेर जैनमतके साधुओंको इस कालमें गुरु क्युं कर माननां चाहियें ?

उत्तरः—तुमने किसी गीतार्थकी संगत नहीं करी होगी, क्योंकि जे कर जैनमतके चरण करणानुयोगके शास्त्र पडे होते, अथवा किसि गीतार्थ गुरुके मुखारविंदसें वचन रूप अमृत पान करा होता, तो पूर्वोक्त संशय रूप रोगकी कसमसी कदापि न उत्पन्न होती ? क्योंकि जैनमतमें ८ प्रकारके निर्ग्रंथ कहे. इस कालमें जो जैनके साधु हैं, वे सर्व पूर्वोक्त ८ प्रकारमेंसें दो प्रकारके है, क्योंकि श्रीजगवती सूत्रके पच्चीशमें शतकके ८ठे उद्देशेमें लिखा है, कि पंचम कालमें दो तरेंके निर्ग्रंथ होगें, उनोंसें तीर्थ चलेगा. कषाय कुशील निर्ग्रंथ तो किसिमें परिणामापेक्षा होगा, मुख्य तो दोही रहेंगे. अरु जो जैन शास्त्रोमें गुरुकी वृत्ति लिखी है, सो प्रायः उत्सर्ग मार्गकी अपेक्षा है, और इस कालमें तो प्रायः अपवाद मार्गकी प्रवृत्ति है, सो उत्सर्गवृत्तिवाले मुनि इस कालमें क्योंकर हो जावे ? कदाचित् होइ नहीं सके हैं. क्योंकि न तो वो संहननवज्रऋषभनाराच हैं, न मनोबल वैसा है, न जीवोंके वैसी श्रद्धा है, न वैसा देश काल है, न धैर्य है, तो फेर इस कालके जीव वैसी उत्सर्ग वृत्ति कैसें कर सके ?

प्रश्नः—जे कर वैसी वृत्ति इस कालमें नहीं तो उनकूं साधुजी काहेकूं कहनां चाहिये ?

उत्तरः—यह तुमारा कहनां बहुत बेसमझका है, क्यों के व्यवहारसूत्र जाष्यमें ऐसें लिखा है ॥ गाथा ॥ पोक्खरिणी आयारे, आणयण ते गाय गीयत्थे ॥ आयरिय उवए, आहरण हुंति नायवा ॥ १ ॥ तत्र परिखा उक्काय, अहिगमो पिंम उत्तरिवाए ॥ रुक्के वसहे जूहे, जोहे सोहीय पु

स्करिणी ॥२॥ "दार गाहा दो" इन दोनो द्वार गाथाका व्याख्यान जाष्य कारने पंदरा जाष्यगाथा करकें कीया है, जे कर जाष्यगाथा देखनेकी इछा होवे, तो व्यवहारजाष्य देख लेनी, इहां तो उन पंदरां गाथाओंका अर्थ जाषामें लिख देता हुं, अर्थः—जैसीयों पूर्वकालमें सुगंधित फूलों वा लियों पुस्करिणीयों वावमीयों थी, वैसे फूलो वालीयों अब हे नहीं, तोजी पुस्करिणीयों वावमीयों तो हैं, लोक इन सामान्य वावमीयोंसें अपना कार्य करते हैं ॥ १ ॥ तथा संपूर्ण आचारप्रकल्प, नवमे पूर्वमें था, उस नवमे पूर्वसें उद्धार करकें पूज्यपाद वैशाख गणिनें निशीथ रचा, तो क्या उस निशीथकूं आचारप्रकल्प न कहनां चाहियें ? ॥२॥ पूर्वकालमें तालो दघाटिनी, अवस्वापिनी आदिक विद्याके धारक चोर थे, औ इस कालमें वो विद्या तो नहीं हे, तो फिर क्या चोरी करने वालोंकूं चोर न कहनां चा हियें ? ॥ ३ ॥ पूर्वकालमें तो चौदह पूर्वके पाठीकूं गीतार्थ कहते थे, तो इस कालमें जघन्य आचार प्रकल्प, निशीथ औ मध्यम आचार प्रकल्प बृहत्कल्पके पढे हूयेकूं इस कालमें क्या गीतार्थ न कहनां चाहियें ?॥४॥ पूर्वकालमें श्रीआचारांगका शस्त्रप्रज्ञा अध्ययनके पढनेसें, छेदोपस्थापनीय चारित्रमें स्थापन करते थे, तो क्या अब दशवैकालिकके छ जीवनीय अ ध्ययनके पढनेसें न स्थापन करना चाहियें ? ॥ ५॥ दूसरे ब्रह्मचर्यके पां चमे उद्देशमें जो आमगंधी सूत्र है, उस सूत्रानुसार पूर्वे मुनि आहार ग्र हण करते थे, तो क्या अब पिंडेषणा अध्ययन अनुसारें न करना चाहि यें ? ॥६॥ पूर्वे आचारांगके पीछे उत्तराध्ययन पढते थे, तो क्या अब दश वैकालिकके पीछे न पढना चाहियें ? ॥ ७ ॥ पूर्वे मत्तांगादिक दश प्रका रके वृक्ष थे, तो क्या अब अंबादिक वृक्ष न कहने चाहियें ? ॥ ८ ॥ पूर्वे बहुत गौवोंके समूहवाले नव गोपकूं ग्वाल कहते थे, तो क्या अब थोडी गौवों वालेकूं ग्वाल न कहनां चाहियें ? ॥ ए ॥ पूर्वे सहस्र मल्ल योद्धे थे, तो अब क्या किसीकूं योद्ध न कहनां चाहियें ? ॥ १० ॥ पूर्वे छ मासी तपका प्रायश्चित्त था, तो क्या उसके बदले निवी प्रमुख प्राय श्चित्त न लेनां चाहिये ? ॥ ११ ॥ इसी तरें जो पूर्वकाल मुनियोंकी वृत्ति नहीं, तो क्या आचार्य वा साधु न कहनां चाहियें ? किंतु जरूरही साधु माननां चाहियें. तथा जीतानुशासन सूत्रकी वृत्तिमेंजी लिखा है कि पांच

मे कालमें साधु असाजी होवे, तोजी संयमी कहनां चाहियें, तथा निशीथमेंजी लिखा है ॥ जाष्य गाथा ॥ जा संजमया जीवे, सु ताव मूले गुणुत्तर गुणाय ॥ इत्तरियछेय संजम, नियंठवउे सा पमिसेवी ॥ १ ॥ इस गाथाकी चूर्णीकी जाषा लिखते हैं, ठकायोंके जीवों विषे जब तांइ दयाके परिणाम है, तब तांइ वकुश निर्ग्रंथ औ प्रतिसेवना निर्ग्रंथ रहेंगे, इसवास्ते प्रवचन शून्य औ चारित्र रहित पंचमकाल कदापि न होवेगा, तथामूलोत्तरगुणोमें दूषण लगनेसें तत्काल चारित्र नष्टजी नहीं होता, मूलगुणजंगमें दो दृष्टांत है, उत्तरगुण जंगमें मंडपका दृष्टांत है, निश्चयनयमें एक व्रत जंग हूया सर्व व्रत जंग हो जाता है, परंतु व्यवहारनयके मतसें जो व्रत जंग होवे, सोइ जंग होवे. दूसरे नहीं. इस वास्ते वहुत अतिचारके लगनेसें संयम नहीं जाता, परंतु जो कुशील सेवे, अरु धन रक्खे, औ कच्चा सचित्त पानी पीवे, प्रवचन अनपेक्ष, वो साधु नहीं. जहां तांइ छेद प्रायश्चित्त लगे, तहां तांइ संयम सर्वथा नहीं जाता. तथा जो इस कालमें साधु न माने, सो मिथ्यादृष्टि है, क्यों कि स्थानांगसूत्रमें लिखा हैं, जो अतिचार वहुत लगते देखके औ आलोचना प्रायश्चित्त यथार्थ कोइ लेता देता नहीं है, इस वास्ते साधु कोइ नहीं जो ऐसे कहे के वो चारित्र जेदिनी विकथाका करनेवाला है, तथा श्रीजगवती सूत्रके पच्चीशमे शतकके ठठे उद्देशेकी संग्रहणीकार श्रीमदजयदेवसूरि, इन दोनो निर्ग्रंथोका जो स्वरूप है सो लिखते हैं, सो इहां जाषामें प्रगट लिखा जाता है ॥ गाथा ॥ वउसं सवलं कव्वर, मेगठंतमिह जस्स चारित्तं ॥ अइयार पंकजावा, सो वउसो होइ निग्गंथो ॥ १ ॥ व्याख्याः— वकुश, शवल, कर्बुर, ए तीनो एकार्थ हैं एकही वस्तुको कहते हैं, ऐसा है चारित्र जिसका, अतिचार रूप पंक होनेसें सो वकुशनामा निर्ग्रंथ है, इस जारत वर्षमें इसकालमें वकुश औ कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ हैं, शेष तीनो तो व्यवछेद हो गये हैं ॥ तथा चोक्तं परम मुनिजिः ॥ "वकुश कुशीला दो पुण, जातित्थं तावहो हंति इति ॥" इसका अर्थ वकुश कुशील ए दोनो निर्ग्रंथ जहां लग तीर्थ रहेगा तहां तक रहेंगे.

अब जो वकुश निर्ग्रंथ है, तिसके दो जेद हैं, सो कहते हैं. तहां जो वस्त्र पात्रादि उपकरणकी विजूषा करे सो उपकरण वकुश, ए प्रथम जेद

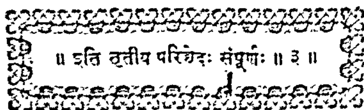
औ जो हाथ, पग, नख, मुखादिक देहके अवयवोंकी विभूषा करे, सो शरीरबकुश, ए दूसरा भेद जाननां. ए दोनों भेदोंके पांच भेद हैं ॥ गाथा ॥ उवगरणसरीरेसु, सो दुहा दुविहोवि होइ पंचविहो ॥ अभोग अणा भोग. असंवुम संवुडे सुहुमे ॥ १ ॥ अर्थः—इसमें दो पदोंका अर्थ तो उपर लिखा है, अगले दो पदोंका अर्थ लिखते हैं. साधुकूं यह करने योग्य नहीं, ऐसें जानताभी है, तोभी उस कामकों जो करे, सो प्रथम आभोग बकुश, और जो अजाण पणोंसें करे सो दूसरा अनाभोग बकुश. मूल गुण, उत्तर गुणोंमें जो छिप कर छाना दोष लगावे, सो तीसरा संवृत बकुश, जो मूलगुण उत्तरगुणोंमें प्रगट दूषण लगावे, सो चौथा असंवृत बकुश. नेत्र, नासिका, मुखादिककी जो मल दूर करे, सो पांचमा सूक्ष्म बकुश जाननां.

अथ जो उपकरन बकुश है, तिसका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ जो उवगरणे बउसो, सो धुवइअ पाउसे विवत्थइ ॥ इच्छइ लण्हयाइं, किंचि विभूसाइ भुंजइय ॥ १ ॥ व्याख्याः—जो उपकरण बकुश है, सो प्रावृट् (पावस) ऋतु विनाभी जल क्षारसें वस्त्र धोता है, पावस ऋतुमें तो सर्व गच्छवासी साधुवोंकूं आज्ञा है. जो एकवार वर्षासें पहिले आपणे सर्व उपकरण जल क्षारसें धो लेवे, नहीं तो वर्षाऋतुमें मलके संसर्गसें निगोदादिक जीवोंकी उत्पत्ति हो जावेगी, औ यह जो बकुशनिर्ग्रंथ है, सो पावस ऋतु विना अन्य ऋतुवोंमेंभी जल क्षारसें वस्त्रादिक धो लेता है, औ बकुश निर्ग्रंथ, सुंदर, सुकुमाल, वस्त्रभी, वांछता है, और उपकरण विभूषा होनाके वास्तेभी कछुक पहिरता है ॥ गाथा ॥ तह पत्त दंडयाई, घट्ठंमट्ठं सिणेह कयतेह ॥ धारेइ विभूसाए, बहुं च पत्थेइ उवगरणं ॥ १ ॥ व्याख्याः—तथा पात्र, दंड प्रमुख घोटमें घोटेके सुकुमार करे, तथा घी, तेल प्रमुख करी चोपडके तेजवंत चमकदार करके रक्खे, अरु विभूषाके वास्ते बहुत उपकरण रखने चाहे पनावना रक्खे.

अथ शरीर बकुशका स्वरूप लिखते हैं ॥ गाथा ॥ देह बउसो अकर्ज, करचरण नहाइयं विभूसेइ ॥ दुविहोवि इमो इड्ढिं, इच्छइ परिवार पभिइय ॥ १ ॥ व्याख्याः—देहबकुश जो है, सो विना कारण हाथ, पग, नखादिककी विभूषा करे, जलादिसें धोवे, ऐसें उपकरण औ शरीर ए दोनों प्रकारका ब

नाजोग बकुश कहियें, ए दूसरा भेद. मूलोत्तर गुणों करी संयुक्त है, लोक ऐसें जानते हैं, परंतु छाना (गुप्त) दोष लगावे है, तिसकूं संवृत बकुश कहियें. ए तीसरा भेद. अरु जो प्रगट मूलोत्तर गुणमें दोष लगावे, तिसकूं असंवृत बकुश कहियें. ए चोथा भेद ॥ २ ॥ तथा जो आंख मुखादि मांजे, मलादि दूर करे सो यथा सूक्ष्मबकुश कहियें. ए पांचमा भेद.

अथ कुशील निर्ग्रंथका स्वरूप लिखते हैं, शील कहियें चारित्र सो चारित्र जिसका कुत्सित है, सो कुशील निर्ग्रंथ, इसके दो भेद हैं ॥३॥ एक प्रतिसेवना कुशील, दूसरा कषायों करी कुशील, सो संज्वलनकी कषायों करकें जो कुशील सो कषाय कुशील, ए दोनोही भेद पांच प्रकारसें हैं, सो कहते हैं, जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ चारित्र, ४ तप, ५ यथा सूक्ष्मतः ॥ ४ ॥ इहां ज्ञानादि कुशील तो जो ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अरु तप, यह चारो आजीविकाके वास्ते करे, सो इन चारोंका प्रतिसेवना कुशील तथा एह तपस्वी है, इत्यादि प्रशंसा सुणके बहुत खुशी होवे, सो पांचमा यथासूक्ष्मप्रतिसेवना कुशील जाननां. तथा जो १ ज्ञान, २ दर्शन, ३ तपांसि तप, संज्वलन, कषायके उदय करकें इनका व्यापार करे, सो ज्ञान, दर्शन, चारित्रका कषाय कुशील जाननां. जो कषाय कुशील है, सो कषायके वश हो कर कें शाप दे देता है, मन करकें जो क्रोधादिकोंकों सेवे, सो यथासूक्ष्मकषायकुशील, अथवा कषायों करकें जो ज्ञानादिकोंकों विराधे, सो ज्ञानादिक कुशील जाननां. कोइक आचार्य, तप कुशीलके स्थानमें लिंगकुशील कहते हैं, यह दो प्रकारके निर्ग्रंथ पांचमे आरेके पर्यंत तक रहेंगे. जो कोइ इस तरेके साधुकूं साधु वा गुरु न माने, वो जीव मिथ्यादृष्टि बहुल संसारी जिनमतका उछापक है, ऐसे मिथ्यादृष्टिकी संगतभी करनी योग्य नहीं ॥ इतिश्री तपगछीये मुनिश्री बुद्धिविजयशिष्य मुनिआनंदविजय आत्माराम विरचिते, जैनतत्वादर्शे गुरुतत्त्वस्वरूपनिर्णयनामा तृतीयःपरिछेदःसंपूर्णः॥३॥


॥ इति तृतीय परिछेदः संपूर्णः ॥ ३ ॥

नहीं होतेहै, तथा षट् ऋतुवोंका विन्नाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ पलितादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सक्ती हैं, जो जो प्रति नियत काल विन्नागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर का लकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीन्नी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूंग रांधता है, सो न्नी काल विना नहीं रांधे जाते हैं, नहीं तो हांमी इंधनादि सामग्रीके संयोगसें प्रथम समयेहीमें मूंग रंध जाते ? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथा-चोक्तं ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्न्नबाल शुन्नादिकं॥ यत्किंचिज्जायते लोके. तदसौ कारणं किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुद्गपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्थाल्यादि सन्निधानेऽपि, ततः कालादसौ मतः॥ २॥ कालन्नावे च गर्न्नादि, सर्वं स्याद व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसद्भाव, मात्रादेव तदुद्भवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका न्नावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ कालः पचति न्नूतानि, कालः संहरते प्रजाः ॥ कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालोहि डुरतिक्रमः ॥४॥ इहां परेष्ट हेतुके सद्भाव मात्रादिकसें डूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके संयोग मात्र हेतुसें गर्न्नकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं हो जाते है ? इस वास्ते कालही गर्न्नकी उत्पत्तिका हेतु है. तथा जब स्त्रीकूं गर्न्न होनेमें ऋतुकाल है तिसके विना स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं गर्न्न होता है ? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक न्नूतोंकों परिणामांतरकों पहुंचता है, तथा "कालः संहरने प्रजाः" कालही पूर्व पर्यायसें पर्यायांतरमें लोकोंकों स्थापन करता है तथा "कालः सुप्तेषु जागर्त्ति" कालही सूते हूये जनोंकी रक्षा करता है. तिस वास्ते प्रगट है कि काल डुरतिक्रम है, कालकों डूर करणेमें कोइन्नी समर्थ नहीं है, यह कालवादीका विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरें डूसरा विकल्पन्नी कह देनां, परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां "यथा अस्ति जीवः स्वतो नित्यः ईश्वरतः" जीव अपणे स्वरूप करकें नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा हूया मानते हैं, ईश्वर उसकूं कहते हैं, कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वतः सिद्ध होवें, अरु जीवोंकों स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्तं ॥

तीनमें जो क्रियावादी हैं सो ऐसे कहते है कि कर्त्ताके विना पुण्यबंधादिलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो आत्माके साथ समवाय संबंधवाली है, ऐसे कहनेका शील स्वजाव है जिनका सो क्रियावादी हैं. यह जो क्रियावादी हैं, सो आत्मादिक नव पदार्थोंकों एकांत अस्तिस्वरूप पणे माने हैं, तिसं क्रियावादीके एक सौ अस्सी मत इस उपाय करकें जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रव, ४ बंध, ५ संवर, ६ निर्ज्जरा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य, ९ मोक्ष, यह नव पदार्थ अनुक्रम करकें पट्टी पत्रादिकमें लिखने. फेर जीव पदार्थके हेठ स्वतःअरु परतः यह दो जेद स्थापन करने, फेर इन स्वतः परतःके हेठ न्यारे न्यारे नित्य अरु अनित्य यह दो जेद स्थापन करने, फेर नित्य अनित्यके इन दोनोके हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वजाव, यह पांच स्थापन करने, पीछेसें विकल्प कर लेनें, सो आगें लिखते हैं. यंत्रस्थापना ॥

जीव.			
स्वतः		परतः	
नित्य.	अनित्य.	नित्य.	अनित्य.
१ काल.	१ काल.	१ काल.	१ काल.
२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.
३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.
४ नियति.	४ नियति.	४ नियति	४ नियति.
५ स्वजाव.	५ स्वजाव.	५ स्वजाव.	५ स्वजाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं. अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः इत्येकोविकल्पः ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा निश्चय अपने रूप करके कालसें उत्पन्न हुए है, कालवादीके मतमें यह विकल्प है, कालवादी उनकूं कहते हैं कि जो कालहीसें जगत्की उत्पत्ति, स्थिति अरु प्रलय मानते हैं, तेसेंही कालवादी कहते है कि चंपक, अशोक, सहकार, नींब, जंबू. कदंबादि जो वनस्पति है, सो कालके विना फूलोंका लगनां. फलका बंधादिक नहीं हो सक्ता है. तथा हिमकण संयुक्त शीतका पडनां. तथा नक्षत्र गर्भका धारण, वर्षाका होणां, यह काल विना

नहीं होतेहै, तथा षट् ऋतुवोंका विभाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ पलितादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सक्ती हैं, जो जो प्रति नियत काल विभागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर कालकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीभी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूंग रांधता है, सो भी काल विना नहीं रांधे जाते हैं, नहीं तो हांडी इंधनादि सामग्रीके संयोगसें प्रथम समयेहीमें मूंग रंध जाते? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है. तथाचोक्तं ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्भबाल शुभादिकं॥ यत्किंचिज्जायते लोके. तदसौ कारणं किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुद्गपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्थाल्यादि सन्निधानेऽपि, ततः कालादसौ मतः ॥ २ ॥ कालभावे च गर्भादि. सर्वं स्याद् व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसद्भाव, मात्रादेव तदुद्भवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका भावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ कालः पचति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः ॥ कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालोहि दुरतिक्रमः ॥४॥ इहां परेष्ट हेतुके सद्भाव मात्रादिकसें दूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके संयोग मात्र हेतुसें गर्भकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं हो जाते है? इस वास्ते कालही गर्भकी उत्पत्तिका हेतु है. तथा जब स्त्रीकूं गर्भ होनेमें ऋतुकाल है तिसके विना स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं गर्भ होता है? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक भूतोंकों परिणामांतरकों पहुंचता है, तथा "कालः संहरते प्रजाः" कालही पूर्व पर्यायसें पर्यायांतरमें लोकोंकों स्थापन करता है तथा "कालः सुप्तेषु जागर्त्ति" कालही सूते हूये जनोंकी रक्षा करता है. तिस वास्ते प्रगट है कि काल दुरतिक्रम है, कालकों दूर करणेमें कोइभी समर्थ नहीं है, यह कालवादीका विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरें दूसरा विकल्पभी कह देनां, परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां "यथा अस्ति जीवः स्वतो नित्यः ईश्वरतः" जीव अपणे स्वरूप करकें नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा हूया मानते हैं, ईश्वर उसकूं कहते हैं. कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वतः सिद्ध होवें, अरु जीवोंकों स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्तं ॥

तीनमें जो क्रियावादी हैं सो ऐसे कहते हैं कि कर्त्ताके विना पुण्यबंधादिलक्षण क्रिया नहीं होती है, तिस वास्ते क्रिया जो है, सो आत्माके साथ समवाय संबंधवाली है, ऐसे कहनेका शील स्वभाव है जिनका सो क्रियावादी हैं. यह जो क्रियावादी हैं, सो आत्मादिक नव पदार्थोंकों एकांत अस्तिस्वरूप पणे माने हैं, तिस क्रियावादीके एक सौ अस्सी मत इस उपाय करकें जान लेने, १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रव, ४ बंध, ५ संवर, ६ निर्ज्जरा, ७ पुण्य, ८ अपुण्य, ९ मोक्ष, यह नव पदार्थ अनुक्रम करकें पट्टी पत्रादिकमें लिखने. फेर जीव पदार्थके हेठ स्वतःअरु परतः यह दो भेद स्थापन करने, फेर इन स्वतः परतःके हेठ न्यारे न्यारे नित्य अरु अनित्य यह दो भेद स्थापन करने, फेर नित्य अनित्यके इन दोनोके हेठ न्यारे न्यारे १ काल, २ ईश्वर, ३ आत्मा, ४ नियति, ५ स्वभाव, यह पांच स्थापन करने, पीछेसें विकल्प कर लेनें, सो आगें लिखते हैं. यंत्रस्थापना॥

जीव.			
स्वतः		परतः	
नित्य.	अनित्य.	नित्य.	अनित्य.
१ काल.	१ काल.	१ काल.	१ काल.
२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.	२ ईश्वर.
३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.	३ आत्मा.
४ नियति.	४ नियति.	४ नियति	४ नियति.
५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.	५ स्वभाव.

विकल्प करणेकी रीति कहते हैं. अस्ति जीवः स्वतोनित्यः कालतः त्येकोविकल्पः ॥ १ ॥ इस विकल्पका यह अर्थ है कि यह आत्मा निश्चय अपणे रूप करकें कालसें उत्पन्न हुइ है, कालवादीके मतमें यह विकल्प है, कालवादी उसकूं कहते हैं कि जो कालहीसें जगतकी उत्पत्ति, स्थिति अरु प्रलय मानते हैं, तैसेंही कालवादी कहते हैं कि चंपक, अशोक, सहकार, नींव, जंबू, कदंबादि जो वनस्पति हैं, सो कालके विना फूलोंका लगनां, फलका बंधादिक नहीं हो सक्ता है, तथा हिमकण संयुक्त शीतका पडणां, तथा नक्षत्र गर्भका धारण, वर्षाका होणां, यह काल विना

नहीं होतेहै, तथा षट् ऋतुवोंका विभाग, तथा बाल, कुमार, यौवन, औ पलितादिक अवस्था विशेष काल विना नहीं हो सक्ती हैं, जो जो प्रति नियत काल विभागादिक हैं, तिन सबका कालही नियंता है, जे कर कालकों नियंता न मानीयें, तो किसी वस्तुकीभी व्यवस्था नहीं होवेगी, क्यों कि जैसे कोइ पुरुष, मूंग रांधता है, सो भी काल विना नहीं रांधे जाते हैं, नहीं तो हांभी इंधनादि सामग्रीके संयोगसें प्रथम समयेहीमें मूंग रंध जाते? तिस वास्ते जो करता है, सो कालही करता है, तथाचोक्तं ॥ न कालव्यतिरेकेण, गर्भबाल शुभादिकं ॥ यत्किंचिज्जायते लोके, तदसौ कारणं किल ॥ १ ॥ किंचित्कालादृते नैव, मुद्गपंक्तिरपीक्ष्यते ॥ स्थाल्यादि सन्निधानेऽपि, ततः कालादसौ मतः ॥ २ ॥ कालभावे च गर्भादि, सर्वं स्याद व्यवस्थया ॥ परेष्टहेतुसद्भाव, मात्रादेव तदुद्भवात् ॥ ३ ॥ इन श्लोकोंका भावार्थ उपर लिख आये हैं तथा ॥ कालः पचति भूतानि, कालः संहरते प्रजाः ॥ कालः सुप्तेषु जागर्त्ति, कालोहि डुरतिक्रमः ॥४॥ इहां परेष्ट हेतुके सद्भाव मात्रादिकसें डूसरायोंने जो मान्या है, कि स्त्री पुरुषके संयोग मात्र हेतुसें गर्भकी उत्पत्ति, सो एक वर्षके स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं हो जाते है? इस वास्ते कालही गर्भकी उत्पत्तिका हेतु है, तथा जब स्त्रीकूं गर्भ होनेमें ऋतुकाल है तिसके विना स्त्री पुरुषके संयोगसें क्यों नहीं गर्भ होता है? तथा कालही पकाता है, औ कालही पृथिवी आदिक भूतोंकों परिणामांतरकों पहुंचता है, तथा "कालः संहरते प्रजाः" कालही पूर्व पर्यायसें पर्यायांतरमें लोकोंकों स्थापन करता है तथा "कालः सुप्तेषु जागर्त्ति" कालही सूते हूये जनोंकी रक्षा करता है. तिस वास्ते प्रगट है कि काल डुरतिक्रम है, कालकों डूर करणेमें कोइभी समर्थ नहीं है, यह कालवादीका विकल्प है ॥ १ ॥

इसी तरें डूसरा विकल्पभी कह देनां, परंतु कालकी जगे ईश्वर कह देनां "यथा अस्ति जीवः स्वतो नित्यः ईश्वरतः" जीव अपणे स्वरूप करके नित्य है परंतु ईश्वर उत्पन्न करता है, क्योंकि ईश्वरवादी सर्व जगत् ईश्वरहीका करा हूया मानते हैं, ईश्वर उसकूं कहते हैं. कि जिसके १ ज्ञान, २ वैराग्य, ३ धर्म, ४ ऐश्वर्य, ए चारो स्वतः सिद्ध होवें, अन जीवोंकों स्वर्ग, मोक्ष, नरकादिकके जानेमें जो प्रेरक होवे ॥ तदुक्तं ॥

ज्ञानमप्रतिघं यस्य, वैराग्यं च जगत्पतेः ॥ ऐश्वर्यं चैव धर्म्मश्च, सहसिद्धं चतुष्टयम् ॥ १ ॥ अज्ञोजंतुरनीशोय, मात्मनः सुखदुःखयोः ॥ ईश्वरप्रेरितो गछे, त्स्वर्गं वा श्वभ्रमेव च ॥ इत्यादि ॥ २ ॥

तीसरा विकल्प आत्म वादीयोंका हे. आत्मावादी उनको कहते हैं कि जो "पुरुष एवेदं सर्वं मित्यादि" (जो कुछ दीखता) हे, सो सर्व पुरुषही हें ऐसें मानते हे ॥ ३ ॥

चौथा विकल्प नियतवादीयोंका हे, वो नियतवादी ऐसें कहते हें कि पदार्थोंमें एक ऐसी सामर्थ्य हे कि जिसकी सामर्थ्यसें सर्व पदार्थ अपणे अपणे स्वरूप नियमों करकें वैसे वैसेही होते हें, परंतु अन्यथा पणे नहीं होते हें, सोइ कहते हे, जो पदार्थ जिसकालने जिस करिकें होता हे, सो पदार्थ तिस कालने तिस करिकें नियत रूप करकेंही होता दीखता हे, अन्यथा नहीं, तो कार्य कारण भावकी व्यवस्था नियामकके अभावसें कदापि न होवेगी, तिस वास्ते ऐसें कार्य नियततासें प्रतीत होती हे जो नियति, तिसको कौन पुरुष प्रमाणपंथका कुशल हे जो बाध सक्ता हे ? जे कर नियति बाधित हो जावेगी तो और जगेभी प्रमाण मिथ्या हो जावेंगे, तथा चोक्तं ॥ नियतेनैव रूपेण, सर्वे भावा भवंति यत् ॥ ततो नियतिजा ह्येते, तत्स्वरूपानुवेधतः ॥ १ ॥ यद्यदेव यतो यावत्, तत्तदेव ततस्तथा ॥ नियतं जायते न्यायात्, क एनां बाधितुं क्षमः ॥ २ ॥ इन दोनो श्लोकोंका अर्थ ऊपर लिख दीया हे ॥ ४ ॥

पांचमा विकल्प, स्वभाववादीयोंका हे, वो स्वभाववादी ऐसें कहते हे कि इस संसारमें सर्व पदार्थ स्वभावहीसें उत्पन्न होते हें, सो कहते हें कि माटीसें घट होता हे, परंतु वस्त्र नहीं होता हे, अरु तंतुओंसें वस्त्र होता हे, परंतु घटादिक नहीं होता हे, यह जो मर्यादा संयुक्त होनां हे सो स्वभाव विना कदापि नहीं हो सक्ता हे, तिस वास्ते यह जो कुछ होता हे, सो सर्व स्वभावसेंही होता हे, तथा अन्यकार्य तो दूर रहो, परंतु यह जो मूंगोका रंध जाणा हे, सोभी स्वभाव विना नहीं रंधते हें, तथाहि हांमी, इंधन, कालादि सामग्रीका संभवभी हे तोभी कोकडु (कठिनमूंग) नहीं रंधते हें, तिस वास्ते जो जिसके होयां होवे, जिसके न होयां जो

न होवे. सो सो अन्वय व्यतिरेक करकें तिसका कर्त्ता है, स्वभावहीसें मूंग रंधते है इस वास्ते स्वभावही सर्व वस्तुका हेतु है. ए पांचमा विकल्प॥५॥

यह पांच विकल्प स्वतः ईशपद करकें होते हैं ऐसेही पांच परतः ईश पद करकें उपलब्ध होते हैं. परतः शब्दका अर्थ तो ऐसा है. की पर पदार्थोंसें व्यावर्त्त रूप करकें यह आत्मा निश्चय करकें है. ऐसें नित्य शब्द करकें दश विकल्प हूये हैं. ऐसेही अनित्य पद करकेंभी दश विकल्प होते हैं. सर्व विकल्प एकठे करेसें वीश होते है. यह वीश विकल्प जीव पदार्थ करकें होते है. ऐसेही अजीवादिक पदार्थोंके साथ, न्यारे न्यारे वीश विकल्प जान लेनें. तब वीशकों नवसूं गुणाकार कस्यां सब मिलिके एक शो अस्सी मत क्रियावादीके होते हैं ॥ इति क्रियावादी ॥

अथ अक्रियावादीके चौराशी मत लिखते हैं अक्रियावादी कहते हैं कि क्रिया. पुण्य पाप रूपादि नहीं है, क्योंकी क्रिया, पुण्य पाप रूपादि स्थिर पदार्थकों लगती है, अरु स्थिर पदार्थ तो जगत्में कोइ भी नहीं है,क्यों के उत्पत्त्यनंतरही पदार्थका विनाश हो जाता है. ऐसें जो कहते हैं, सो क्रियावादी ॥ तथा चाहुरेके ॥ श्लोक ॥ क्षणिकाः सर्वसंस्कारा, अस्थिराणां कुतः क्रिया ॥ भूतिर्येषां क्रिया सैव, कारकं सैव चोच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थः— सर्व संस्कार पदार्थ क्षणिक है. इस वास्ते अस्थिर पदार्थोंकूं पुण्य पापादि क्रिया कहांसें होवे? पदार्थोंका जो होणा है, सोइ क्रिया है, सोइ कारक हैं, इस वास्ते पुण्यापुण्यादि क्रिया नहीं. यह जो अक्रियावादी हैं. सो आत्माकूं नहीं मानते हैं. तिनके चौरासी मत जाननेका यह उपाय है कि १ जीव, २ अजीव, ३ आश्रय. ४ संवर. ५ निर्ज्जरा, ६ बंध. ७ मोक्ष. यह सात पदार्थ लिखने. पीछे यह जीवादि सातो पदार्थोंके हेठ न्यारे न्यारे स्व अरु पर यह दो विकल्प लिखने. फेर इन दोनोके हेठ न्यारे न्यारे १ काल. २ ईश्वर. ३ आत्मा. ४ नियति, ५ स्वभाव. ६ यदृछा. यह छै लिखने. इहां नित्यानित्य यह दो विकल्प इस्से वास्ते नहीं लिखे हैं कि जब आत्मादि पदार्थही नहीं है, तो फेर नित्य अनित्यका संभव कैसें होवे? तथा जो यह यदृछावादी हैं. सो सर्व नास्तिक अक्रियावादी हैं, इस वास्ते क्रियावादी यदृछावादी नही हैं, इस वास्ते क्रियावादीके मतमें यदृछापद नहीं ग्रहण कीया है. इस मतके चौरासी भेद इसी रीतिसें जानने सो कहते हैं.

"नास्ति जीवः स्वतः कालतश्त्येकोविकल्पः" नहीं है जीव अपणे स्वरूप करकें कालसें उत्पन्न हूया, यह एक विकल्प, ऐसेही ईश्वरादिसें लेकर यदृच्छा पर्यंत सर्व छे विकल्प हूये इनका अर्थ पीछली तरें जाननां, परंतु इतना विशेष है जो यहां यदृच्छावादी अधिक हैं.

प्रश्नः—यदृछावादीयोंका क्या मत है ? उत्तरः—जो पदार्थोंकूं संतानकी अपेक्षा नियत कार्य कारण भाव नहीं मानते, किंतु "यदृच्छया" जो कुछ होता है, सो सर्व यदृच्छासें होता है, एतावता कार्य कारण भाव नहीं यदृच्छाहीसें होता है, यदृच्छावादी ऐसें कहते हैं, कि नहीं है नियम करकें पदार्थोंकों आपसमें कार्य कारण भाव, क्यों कि कार्य कारण भाव प्रमाणसें ग्रहण नहीं कस्या जाता है, तथाही मृतक मेंडकसेंभी मेंडक उत्पन्न होता है अरु गोवरसेंभी मेंडक उत्पन्न होता है अग्निसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है. अरणीके काष्टसेंभी अग्नि उत्पन्न होती है, धूमसेंभी धूम उत्पन्न होता है, अरु अग्निसेंभी धूम उत्पन्न होता है, कदलीके कंदसेंभी केला उत्पन्न होता है, अरु केलेके बीजसेंभी केला उत्पन्न होता है, बीजसेंभी वटवृक्ष उत्पन्न होता है, अरु वटवृक्षकी शाखासेंभी वट वृक्ष उत्पन्न होता है, इस वास्ते प्रति नियत कार्य कारण भाव किसी जगेंभी नहीं देखणेमें आता है, इस वास्ते यदृच्छा करीकें किसी जगें कुछ होता है, ऐसें माननां चाहियें, क्योंकि जब जान लीया कि जो कुछ होता है, सो यदृच्छासें होता है, तो फेर काहेकों बुद्धिमान् कार्य कारण भावकों माने, औ आत्माकों क्लेश देवे यह जेसें स्वतःके साथ छे विकल्प करे है, एसेंही नास्ति परतःके साथभी छे विकल्प होते हैं, यह जब सर्व विकल्प मिलाइयें तब बारा विकल्प होते हैं. इन बारांकूं जीवादिक सात पदार्थों करकें सात गुणा कस्या चौरासी भेद अक्रिया वादीके हो ते हैं ॥ इति अक्रियावादी ॥ २ ॥

अथ तीसरा अज्ञानवादीका भेद कहते है, कि कुत्सित ज्ञान है, जिनका सो अज्ञानवादी जाननां, अथवा अज्ञान करकें जो प्रवर्त्ते, सो अज्ञानिकाः अज्ञानवादी ऐसें कहते हैं कि ज्ञान अछी वस्तु नहीं है, क्योंकि ज्ञान जब होवेगा, तब परस्पर विवाद होगा, जब विवाद होगा तब चित्त मलिन होगा, जब चित्त मलिन हूवा. तब संसारकी वृद्धि होवेगी, जेसें किसी पुरुषने को

इ वस्तु उलटी कही. तब जो ज्ञानीने सुण करकें ज्ञानके अभिमानसें उस पुरुषके उपर वहुत मलिन चित्त करकें उसके साथ विवाद करणे लगा. विवाद करते थके अत्यंत तीव्रचित्त मलिन अरु अहंकार वढा, उस अहंकार औ चित्तकी मलिनतासें महा पाप कर्म उत्पन्न हूवा, तिस पापसें दीर्घतर संसारकी वृद्धि हूइ. इस वास्ते ज्ञान अछी वस्तु नहीं. अरु जब अज्ञानी अपणेकों मानीयें, तब तो अहंकारका संभव नहीं होता है, अरु दूसरोंके उपर चित्तका मलिन पणाभी नहीं होता है, तिस वास्ते कर्मका बंधभी नहीं होता है, तथा जो कार्य विचार करीयें है, तिसमें महा कर्मका बंध होता है, उसका फलभी महा भयानक होता है, अरु जो काम, मनोव्यापार विना करीयें है, तथा मनोव्यापार विना किसी जीवका वध करीये हैं, तिसको फल अवश्यमेव भोगनेमें नहीं आता है, अरु जो उस काममें किंचित् कर्मबंध होता है, सोभी चूने गजभीतके उपरि वालु (रेतिकी) मुष्टिकें संबंधवत् स्पर्शमात्र है, परंतु बंध नहीं होता है. इस वास्ते अज्ञानही मोक्षगामीयों पुरुषोंको अंगीकार करणां श्रेय है, परंतु ज्ञान अंगीकार करणां श्रेय नहीं है. यह अज्ञानवादी कहते हैं की ज्ञान हम मानभी लेवें, जे कर ज्ञानका निश्चय करणेमें सामर्थ्य होवें ? क्योंकि प्रथम तो ज्ञान सिद्धही नहीं हो सक्ता है, तथाहि जितने मतावलंबी पुरुष हैं, सो सर्व परस्पर भिन्नही ज्ञान अंगीकार करते है, इस वास्ते क्यों कर निश्चय करणेमें समर्थ होवे ? जो इस मतका ज्ञान सम्यग् है, अरु इस मतका ज्ञान सम्यग् नहीं है, जे कर कहोगे किजो सकल वस्तुके समूहको साक्षात् कारी ऐसे ज्ञानवाला जो भगवान् है, तिसके उपदेशसें जो ज्ञान होवे सो सम्यग् ज्ञान है, अरुजो इसके विना दूसरे मत है, उनका ज्ञान सम्यग् नहीं. क्योंकि उनके मतमें जो ज्ञान है, सो सर्वज्ञका कथन कीया हुआ नहीं है.

अज्ञानवादी कहते हैं कि यह तुमारा कहनां है, सो तो सत्य है. किंतु सकल वस्तु समूहका साक्षात् करणेवाला ज्ञानी सुगत, ईश्वर, विष्णु, ब्रह्मादिककों हम माने ? किंवा भगवान् वर्द्धमान महावीर स्वामीकों सकल वस्तु समूहके साक्षात् करणे वाला माने ? फेरभी वोही संशय रहा. निश्चय न हूआ. जो कोन सर्वज्ञ है ? जे कर कहोगे कि जिस भगवान्के पादार

विंद युगल सर्व देवता, इंद्र, परस्पर अहं पूर्वक विशिष्ट विशिष्टतर विभूति द्युति करकें संयुक्त, सैंकमों विमानोमें बेठ करकें सकल आकाश मंमलकों आछादित करते हूये पृथिवीमें उत्तर करकें पूजते भये हैं, सो भगवान् वर्द्धमान स्वामी सर्वज्ञ हे. परंतु सुगत, शंकर, विष्णु, ब्रह्मादिक नहीं; क्योंकि सुगतादिक सर्व, अल्प बुद्धिवाले मनुष्य हुये हैं, इस वास्ते वो देव नहीं हूये हैं; जे कर सुगतादिकभी सर्वज्ञ होते, तो तिनकीभी देवता, इंद्र, पूजा करते, परंतु किसीभी देवता, इंद्रने पूजा नहीं करी. इस वास्ते सुगतादिक सर्वज्ञ नहीं हूये हैं. हे जैन! यह जो तुमने वात कही हे, सो अपणे मतके राग करकें कही हे, परंतु इस वातसें इष्टसिद्धि नहीं हे, क्यों कि वर्द्धमान स्वामीकी देवता, इंद्र, देवलोकसें आ करकें पूजा करते थे, यह तुमारा कहनां हम क्योंकर सच्चा मान लेवे? भगवान् श्री महावीरकों तो वहुत काल हूयांकों हो गया हे, उनके सर्वज्ञ होणेमें कोइभी साधक प्रमाण नहीं हे ? जे कर कहोगे कि संप्रदायसें एतावता महावीरके शासनसें महावीर सर्वज्ञ सिद्ध होता हे, तो इसमें यह तर्क होगी कि यह जो तुमारी संप्रदाय हे, सो कौन जाने किसी धूर्त्तकी चलाइ हुइ हे ? वा किसी सत्पुरुषकी चलाइ हुइ हे, हम क्यों कर जान सके ? इस वातके सिद्ध करने वाला कोइभी प्रमाण नहीं हे, अरु विना प्रमाणके हम मान लेवे, तो हम प्रेक्षावान् काहे के? तथा मायावान् पुरुष आप सर्वज्ञ नहींभी होते तोभी अपणे आपकूं जगत्में सर्वज्ञ होनां प्रगट कर देते हैं. इंद्रजालके (२७) पीठ हैं, तिनमेंसूं कितनेक पीठोंके पाठक अपणे आपकों तीर्थंकरका रूप अरु इंद्र, देवता, पूजा करते हुये वना सक्ते हैं, तो फेर देवताओंका आगमन पूजा देखनेसें सर्वज्ञपणा क्यों कर सिद्ध होवे, जो हम श्रीमहावीरजीकूं सर्वज्ञ मान लेवें? तुमारे मतका आचार्य समंतभद्र स्तुतिकारभी कहता हे ॥ श्लोक ॥ देवागमनभोयान, चामरादिविभूतयः ॥ मायाविष्वपि दृश्यंते, नातस्त्वमसि नो महान् ॥१॥ इस श्लोकका भावार्थः–देवताओंका आगमन आकाशमें चलनां, छत्र चामरादिककी विभूति, यह सर्व आमंबर, इंद्रजालीयमेंभी हो सक्ता हे, इस हेतुसें तो हे भगवन्! तुं हमारा महान् स्तुति करणे योग्य नहीं हो सक्ता हे. तथा हे जैन! तेरे कहनेसें महावीरही सर्वज्ञ होवे, तोभी यह जो आचारांगादिक शास्त्र हें, सो म

हावीर सर्वज्ञहीके कथन करे हूये हैं, यह क्यों कर जाना जाये? क्या जाने किसी धूर्त्तने रच करकें महावीरका नाम रख दीया होवेगा? क्योंकि यह वात इंद्रिय ज्ञानका विषय नहीं है, अरु अतींद्रिय ज्ञानकी सिद्धिमें कोइनी प्रमाण नहीं है.

नला कदी यहनी होवे कि जो आचारांगादिक शास्त्र हैं सो महावीर सर्वज्ञहीके कहे हुये हैं, तोनी श्रीमहावीरजीके कहे हुये शास्त्रका यही अनिप्राय, यही अर्थ है, और अर्थ नहीं, यह क्योंकर जान्या जाय? क्योंकि शब्दोंके अनेक अर्थ हे. सो इस जगत्में प्रगट सुननेमें आते हैं, क्या जाने इनही अक्षरों करकें श्रीमहावीर स्वामीजीने कोइ अन्यही अर्थ कह्या होवे, अरु तुमारी समजमें उनही अक्षरों करकें कछु और अर्थ नासन होता होवे, फेर निश्चय क्यों कर होवे जो इन अक्षरोंका यही अर्थ नगवानने कह्या है. जे कर तुमने यह मान रखा होवे कि नगवानके समयमें गौतमादिक मुनि थे, उनोने नगवानके मुखारविंदसें साक्षात् जो अर्थ सुना था, सोइ अर्थ आज तांइ परंपरासें चला आता है, इस वास्ते आचारांगादिक शास्त्रोंका यही अर्थ है, अन्य नहीं. यहनी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि गौतमादिकनी छद्मस्थ थे. अरु छद्मस्थकों दूसरेकी चित्तवृत्तिका ज्ञान नहीं होता है. दूसरेकी चित्तवृत्ति तो अतींद्रिय ज्ञानका विषय है, छद्मस्थ तो इंद्रिय द्वारा जान सक्ता है, इंद्रियज्ञानी सर्वज्ञके अनिप्रायकों क्यों कर जान सके, जो सर्वज्ञका यही अनिप्राय है? इस अनिप्रायसें सर्वज्ञनें यह शब्द कह्या है? इस वास्ते नगवान्का अनिप्राय तो गौतमादिक नहीं जान सके है, केवल जो वरणावली नगवान् कहते नये सोइ वरणावली नगवानके पीछें लगे हूये गौतमादिक उच्चारण कहते आये, परंतु नगवान्का अनिप्राय किसीने नहीं जाना, जैसें आर्य देशोत्पन्न पुरुषके शब्द उच्चारणसें म्लेछनी वैसा शब्द उच्चार सक्ता है, परंतु तात्पर्य कुछ नहीं जानता. असेही महावीरके शब्दके अनुवादक गौतमादिक हैं, परंतु महावीरका अनिप्राय नहीं जानते, इस वास्ते सम्यग् ज्ञान किसी मतमेंनी सिद्ध नहीं होता है. एक तो ज्ञान होणेसें पुरुष अनिमानसें बहुत कर्म बांध कर दीर्घ संसारी हो जाता है, दूसरा सम्यग्ज्ञान किसी मतमें है नहीं, इस वास्ते अज्ञानही श्रेय है.

॥ इत्यज्ञानवादीका श्रद्धान ॥सो अज्ञानी सडसठ प्रकारके हैं, तिनके जान नेका यह उपाय है कि जीवादिक नव पदार्थ किसी पट्टादिकमें लिखने, अरु दशमे स्थानमें उत्पत्ति लिखनी, तिन जीवादि नव पदार्थोंके हेठ न्यारे न्यारे सत्वादिक सात पद स्थापन करणे,सो यह हैं किः—१ सत्वं, २ असत्वं, ३ सदसत्वं, ४ अवाच्यत्वं, ५ सदवाच्यत्वं, ६ असदवाच्यत्वं, ७ सदसदवाच्यत्वं, तहां १ सत्वं, सो स्वरूप करकें विद्यमान पणां, २ असत्वं, सो पररूप करकें अविद्यमानपणां ३ सदसत्वं, सो स्वरूप पररूप करकें विद्यमान पणां. तहां यद्यपि सर्व वस्तु स्वपररूपों करकें सर्वदाही स्वनावसें सदसत् स्वनाव है, तोनी किसी जगे कदाचित् उद्भूत रूप करकें विवक्ष करियें हैं, तिस हेतुसें यह तीन विकल्प होते हैं, तथा ४ सोइ सत्व असत्व, जब युगपत् एक शब्द करकें सहनेकी इछा करियें, तदा तिसका वाचक कोइनी शब्द नहीं है,इस वास्ते अवाच्यत्त्वं. यह चारों विकल्प सकलादेशा ऐसा नाम कहीयें, क्यों के यह चारों सकल वस्तु विषयकों ग्रहण करते है, ५ अरु यदा एक नागमें सत्, दूसरे नागमें अवाच्य, युगपत् विवक्षा करियें, तदा सदवाच्यत्वं, ६ यदा एक नागमें असत्, दूसरे नागमें अवाच्य, तदा असत् अवाच्यत्त्वं, ७ यदा एक नागमें सत्, दूसरे नागमें असत्, तीसरे नागमें अवाच्य युगपत् कल्पना करियें, तदा सदसदवाच्यत्वं. इन सातों विकल्पोंसें अन्य (दूसरा) विकल्प कोइनी नहीं है, जे कर कोइ करनी लेवे,तो इन सातोहीके अंतरनाव हो जायगे, परंतु सातोंसें अधिक विकल्प कदापि न होवेंगे, यह जो सात विकल्प कहे हैं इन सातोंकों नव गुणा करे, तब त्रेशठ होतेहैं, अरु उत्पत्तिके चार विकल्प आदिकेही होते हैं. १ सत्वं. २ असत्वं, ३ सदसत्वं, ४ अवाच्यत्वं, यह चार विकल्प त्रेशठमें प्रक्षेप करीयें, तब सडसठ मत अज्ञानवादीके होते है. अब इन सातों विकल्पोंका अर्थ लिखते हैं, कि कौन जानता है जो जीव सत्य है, यह एक विकल्प हूया. काइनी नहीं जानता है सत् जीव है इसका ग्रहण करनेवाला प्रमाण कोइनी नहीं है जेकर कोइ जाणनी लेवेगा जो जीव सत् है तो कौनसे पुरुषार्थकी सिद्धि हो गइ क्यों कि जब ज्ञान हो जावेगा तब अनिनिवेश,अनिमान,चित्त मलिन लोकोंसें विवाद,जगमा,

बढ जावेगा, तब तो ज्ञानवान् बहुत कर्म बंध करकें दीर्घतर संसारी हो जावेगा, ऐसेंही असत् आदिक शेष विकल्पोंकाभी अर्थ जान लेनां ॥इति॥

विनय करकें जो प्रवर्त्ते, सो वैनयिकाः इन विनयवादीयोंके लिंग अरु शास्त्र नहीं होता है, केवल विनयहीसें मोक्ष मानते हैं, तिन विनय वादीयोंके बत्तीस मत हैं, सो इस तरेंसे हैं, कि १ सुर, २ राजा, ३ जाति, ४ ज्ञाति, ५ स्थविर, ६ अधम, ७ माता, ८ पिता, इन आठोंकी मन करकें, वचन करकें, काया करकें, अरु देशकाल उचित्त दान देने करकें विनय करे, इन चारोंसें आठकों गुण्या बत्तीस हूये ॥ इति विनयवादी ॥ ४ ॥

ए सब मिल कर तीनसौ त्रेशठ मत हुये. ए सर्व मतधारी तथा इन मतोंके प्ररूपणे वाले सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि यह सर्व मत मिथ्यादृष्टियोंके है, यह सब एकांतवादी हैं, परंतु स्याद्वादरूप अमृत स्वादसें रहित हैं, इनका जो अभिमत तत्त्व है, सो प्रमाण करकें बाधित है, इनके मतोंकों पूर्वाचार्योंने अनेक युक्तियोंसें खंडन करा है, सो भव्य जीवोंके जानने वास्ते मैं भी पूर्वाचार्योंकी युक्तियां इन भाषाग्रंथमें किंचित् मात्र नीचें लिखता हुं.

प्रथम जो कालवादी कहते हैं कि सर्व वस्तुकां कालही कर्त्ता है, तिसका खंडन लिखता हुं. हे कालवादी ! यह जो काल है सो क्या १ एक स्वभाव नित्य व्यापी है ? २ किंवा समयादिक रूप करकें परिणामी है ? जे कर आदि पक्ष मानोगे सो तो अयुक्त है, क्योंकि ऐसे कालकों सिद्ध करने वाला कोइभी प्रमाण नहीं है, जैसा आद्य पक्षमें तूंनें काल मान्या है, तैसा काल, प्रत्यक्ष प्रमाणसें उपलब्ध नहीं होता है, अरु ऐसे कालका कोइ लिंगभी अविनाभावरूप नहीं दीखता, इस वास्ते अनुमानसेंभी सिद्ध नहीं होता है.

पूर्वपक्षः—क्योंकर अविनाभावलिंगका अभाव कहते हो ? क्योंकि दिखता हैकि भरत रामचंद्रादिकों विषे पूर्वापर व्यवहार सो पूर्वापर व्यवहार वस्तुरूप मात्र निमित्त नहीं है ? जे कर वस्तुरूप मात्र निमित्त होवे, तदा वर्त्तमानकालमें वस्तु रूपके विद्यमान होणे करकें तैसें व्यवहार होना चाहियें, तिस वास्ते जिस करकें यह भरत रामादिकोविषे पूर्वापर व्यवहार है, सो काल है. तथाहि पूर्वकालयोगी, पूर्व भरतचक्रवर्त्ती, अपरकालयोगी अपर रामादि.

नहीं, क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारें तिस तिस अर्थका निश्चय हो जाता है, अरु गोतमादिकोंनें जिस जिस जगे जिस जिस शब्दका जैसा जैसा अर्थ करा है, सो जगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेजी जाना जाता है, जो गौतमादिकने यथार्थही जाना है, अरु यथार्थही शब्दोंका अर्थ करा है, अरु जो कुछ गोतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविछिन्न परंपरा करकें अब तांइ तैसेही अर्थका अवगम होता है, ऐसेंजी न कहनां कि आचार्योंकी परंपरा हमकूं प्रमाण नहीं ? क्यों कि अविपरीतार्थ कहने करकें आचार्योंकी परंपराकों कोइजी जूठी करने समर्थ नहीं.

एक औरजी बात है, कि तुमारा जो मत है, सो आगम मूल है ? वा अनागम मूल है ? जे कर कहोगे कि आगम मूल है, तब तो आचार्योंकी परंपरा क्योंकर अप्रमाणिक हो सक्ति है ? आचार्योंकी परंपरा विना, आगमका अर्थही क्योंकर जाना जाये ? जे कर कहोगे कि अनागममूल है तब तो उन्मत्तके विरचित वचनवत् प्रामाणिक न होवेगा.

पूर्वपक्षः—यद्यपि हमारा मत अनागम मूल है, तोजी युक्ति संयुक्त है, इस वास्ते हम मानते हैं.

उत्तरपक्षः—अहो "डुरंतः स्वदर्शनानुरागः" कैसा जारी अपणे मतका राग है, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध जापण तो अज्ञान मतका जूषण है ?

पूर्वपक्षः—किसी तरें हमारा पूर्वापर विरुद्ध बोलनाही हमारे मतका जूषण है ?

उत्तरपक्षः—युक्तियां जो होतीयां हैं, सो ज्ञानमूलही होतीयां हैं; अरु तुम तो अज्ञानहीकूं श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें सत् युक्तियों का कैसें संजव होवे ? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके जापक हो, इस हेतुसें तुमारा मत किसीजी कामका नहीं है ॥ इति अज्ञानवादि मत खंमनं॥

अथ विनयवादीके मतका खंमन लिखते हैं. अब जो विनयहीसें मोक्ष मानते हैं सोजी एकांत वादके मोहसें हैं, क्योंके विनय मुक्तिका अंग है, जो मुक्ति मार्गमें चलते हैं, तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः इति वचनात्" सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, अरु सम्यक् चारित्र रूप है, ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण है, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार जूत जो बहुश्रुतादिक

पुरुष है, तिनकी जो विनय करे, बहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, सो परंपरा करकें मुक्तिका अंग हो सक्ता है; परंतु जो सुर, नरपति आदिककी विनय है, सो संसारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय करता है, वो उसके गुणोंकों बहु मान देता है; अरु सुर, नरपति, प्रमुखोंमें तो विषय भोगनेका प्रधान गुण है, जब उनकी विनय करी, तब तो उनके भोगोंकूं बहु मान दीया, जब भोगोकूं बहु मान दीया, तब दीर्घ संसार पथकी प्रवृत्ति कर लीनी, इस वास्ते एकांत विनयसें जो मोक्ष मानते हैं, सोभी असत् वादी हैं, क्योंकी ज्ञानादिकोंसें रहित विनय साक्षात मुक्तिका अंग नहीं है. ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें रहित पुरुष, केवल पादपतनादिक विनयसें मुक्ति नहीं पा सक्ता है, किंतु ज्ञानादिक सहितही पा सक्ता है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अंग हूये विनय नहीं.

पूर्वपक्षः—कैसे हम जानीयें जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अंग है?

उत्तरपक्षः—इस संसारमें मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोही करकें कर्म वर्गणाका संबंध आत्माकों होता है; अरु कर्मकालका जो क्षय होना है, सोइ मोक्ष है. "मुक्तिः कर्मक्षयादिष्टेति वचनप्रामाण्यात्" अरु कर्मका क्षय तो तब होगा, जब कर्मबंधका कारण उछेद होगा, अरु कर्मका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है; इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष सम्यक् दर्शन है; अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरतिका प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र है, जब इन तीनोकों सेवता हुवा, यह तीनो प्रकर्ष भावकों प्राप्त होगे, तब सर्वथा कर्मोंका कारण दूर होवेगा. जब कारण उछेद होवेगा, तब निर्मूल कर्मोछेदके होनेसें मोक्ष होवेगी, इस वास्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अंग है, परंतु विनय मात्र नहीं. अरु जो ज्ञानादिकों विषे विनय करता हूवा परंपरा करकें मुक्ति अंग है, अरु साक्षात् मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोंमें केइ जगें लिखा है कि "सर्वकल्याणभाजनं विनयः" सो ज्ञानादिकोंकी प्रवृत्ति वास्ते है, अरु जेकर विनयवादीभी इसी तरें मानता है, तब तो विनयवादीभी हमारे मतमेंही वर्त्ते है, तब तो विवादकाही अभाव है ॥ इति विनयवादी मत खंडनं ॥ यह समुच्चय (३६३) मतका किंचित् मात्र स्वरूप लिखा है.

अथ भव्यजीवोंके शीघ्र बोध होनें वास्ते षट् दर्शनोंका किंचित् स्वरू

नहीं, क्योंकि तिस तिस प्रकरणके अनुसारें तिस तिस अर्थका निश्चय हो जाता हे, अरु गौतमादिकोंनें जिस जिस जगे जिस जिस शब्दका जैसा जैसा अर्थ करा हे, सो भगवानने निषेध नहीं करा, इस वास्तेभी जाना जाता हे, जो गौतमादिकने यथार्थही जाना हे, अरु यथार्थही शब्दोंका अर्थ करा हे, अरु जो कुछ गौतमादिकोंने कहा था, सोई आचार्योंकी अविछिन्न परंपरा करके अब तांइ तैसेही अर्थका अवगम होता हे, ऐसेंभी न कहनां कि आचार्योंकी परंपरा हमकूं प्रमाण नहीं? क्यों कि अविपरीतार्थ कहने करके आचार्योंकी परंपराकों कोइभी जूठी करने समर्थ नहीं.

एक औरभी बात हे, कि तुमारा जो मत हे, सो आगम मूल हे? वा अनागम मूल हे? जे कर कहोगे कि आगम मूल हे, तब तो आचार्योंकी परंपरा क्योंकर अप्रमाणिक हो सक्ति हे? आचार्योंकी परंपरा विना, आगमका अर्थही क्योंकर जाना जाये? जे कर कहोगे कि अनागममूल हे तब तो उन्मत्तके विरचित वचनवत् प्रामाणिक न होवेगा.

पूर्वपक्षः—यद्यपि हमारा मत अनागम मूल हे, तोभी युक्ति संयुक्त हे, इस वास्ते हम मानते हें.

उत्तरपक्षः—अहो "दुरंतः स्वदर्शनानुरागः" केसा भारी अपणे मतका राग हे, क्योंकि यह पूर्वापर विरुद्ध भाषण तो अज्ञान मतका भूषण हे?

पूर्वपक्षः—किसी तरें हमारा पूर्वापर विरुद्ध बोलनाही हमारे मतका भूषण हे?

उत्तरपक्षः—युक्तियां जो होतीयां हें, सो ज्ञानमूलही होतीयां हें; अरु तुम तो अज्ञानहीकूं श्रेय मानते हो, तो फेर तुमारे मतमें सत् युक्तियां का केसें संभव होवे? इस वास्ते तुम पूर्वापर विरुद्धार्थके भापक हो, इस हेतुसें तुमारा मत किसीभी कामका नहीं हे॥ इति अज्ञानवादि मत खंडनं।

अथ विनयवादीके मतका खंडन लिखते हें. अब जो विनयहीसें मोक्ष मानते हें सोभी एकांत वादके मोहसें हें, क्योंके विनय मुक्तिका अंग हे, जो मुक्ति मार्गमें चलते हें, तिनकी विनय करे अरु मुक्तिमार्ग तो "सम्यक्दर्शनज्ञानचारित्राणि मोक्षमार्गः इति वचनात्" सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, अरु सम्यक् चारित्र रूप हे, ऐसा तत्त्वार्थ सूत्रका प्रमाण हे, इस वास्ते ज्ञानादिकोंकी तथा ज्ञानादिकोंके आधार भूत जो बहुश्रुतादिक

पुरुष है, तिनकी जो विनय करे, वहुमान देवे, ज्ञानादिककी वृद्धि करे, सो परंपरा करकें मुक्तिका अंग हो सक्ता है; परंतु जो सुर, नरपति आदिककी विनय है, सो संसारका हेतु है, क्योंकि जो जिसकी विनय करता है, वो उसके गुणोंकों वहु मान देता है; अरु सुर, नरपति, प्रमुखोंमें तो विषय नोगनेका प्रधान गुण है, जब उनकी विनय करी, तब तो उनके नोगोंकूं वहु मान दीया, जब नोगोकूं वहु मान दीया, तब दीर्घ संसार पथकी प्रवृत्ति कर लीनी, इस वास्ते एकांत विनयसें जो मोक्ष मानते हैं, सोन्नी असत् वादी हैं, क्योंकी ज्ञानादिकोंसें रहित विनय साक्षात मुक्तिका अंग नहीं है. ज्ञान, दर्शन, चारित्रसें रहित पुरुष, केवल पादपतनादिक विनयसें मुक्ति नहीं पा सक्ता है, किंतु ज्ञानादिक सहितही पा सक्ता है, तब तो ज्ञानादिकही साक्षात् मुक्तिके अंग हूये विनय नहीं.

पूर्वपक्षः—कैसे हम जानीयें जो ज्ञानादिकही मुक्तिके अंग है?

उत्तरपक्षः—इस संसारमें मिथ्यात्व, अज्ञान, अविरति, इन तीनोही करकें कर्म वर्गणाका संवंध आत्माकों होता है, अरु कर्मकालका जो क्षय होना है, सोइ मोक्ष है. "मुक्तिः कर्मक्षयादिष्टेति वचनप्रामाण्यात्" अरु कर्मका क्षय तो तब होगा, जब कर्मवंधका कारण उछेद होगा, अरु कर्मका कारण तो मिथ्यात्वादि तीन है, इस वास्ते मिथ्यात्वका प्रतिपक्ष सम्यक् दर्शन है, अरु अज्ञानका प्रतिपक्ष सम्यक् ज्ञान है, अरु अविरतिका प्रतिपक्ष सम्यक् चारित्र है, जब इन तीनोकों सेवता हुवा, यह तीनो प्रकर्ष नावकों प्राप्त होगे, तब सर्वथा कर्मोंका कारण दूर होवेगा. जब कारण उछेद होवेगा, तब निर्मूल कर्मोछेदके होनेसें मोक्ष होवेगी, इस वास्ते ज्ञानादिकही मोक्षका अंग है, परंतु विनय मात्र नहीं. अरु जो ज्ञानादिकों विषे विनय करता हूवा परंपरा करकें मुक्ति अंग है, अरु साक्षात् मोक्षका हेतु तो ज्ञानादिक है, अरु जो जैनशास्त्रोंमें केइ जगें लिखा है कि "सर्वकल्याणनाजनं विनयः" सो ज्ञानादिकोंकी प्रवृत्ति वास्ते है, अरु जेकर विनयवादीनी इसी तरें मानता है, तब तो विनयवादीनी हमारे मतमेंही वर्त्ते है, तब तो विवादकाही अनाव है॥ इति विनयवादी मत खंडनं॥ यह समुच्चय (३६३) मतका किंचित् मात्र स्वरूप लिखा है,

अथ नव्यजीवोंके शीघ्र वोध होनें वास्ते षट् दर्शनोंका किंचित् स्वरू

[illegible] लिखते हैं, जिनमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं, बौद्ध मतके साधु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक मूंडा हुआ, २ चामका टुकडा, ३ कमंडलु, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उनका वेष है, अरु शौचक्रिया बहुत है, कोमल शय्यामें सोनां, सवेरे उठकर पेया पीनां, मध्याह्न कालमें भात खानां, अपराह्नमें पानी पीनां, द्राक्षा, खांड, मिश्री, अर्धरात्रिमें [illegible], यह बौद्धोंका चलन है, तथा मनगमता भोजन करना, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी अच्छी सामग्रीसें मुनि अच्छा ध्यान करता है, अरु भिक्षा पात्रमें जो कुछ पड जावे, सो सर्व शुद्ध, ऐसे मान करकें मांसभी खा लेते हैं, अरु ब्रह्मचर्यादि अपनी क्रियामें बहुत दृढ होते है, यह उनका आचार है. १ धर्म, २ बुद्ध, ३ संघ यह तीनोंकों रत्नत्रय कहते हैं, अरु शासनके विघ्नोंका नाश करने वाली तारा देवी मानते हैं, अरु विपश्य [illegible] बौद्धमतके जिनोंकी मूर्त्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं भगवान् मानते हैं, तिसकूं सर्वज्ञ मानते हैं.

अब बुद्ध भगवान्को जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं. १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बोधिसत्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान, १२ षडभिज्ञ, १३ दशार्ह, १४ दशभूमिग, १५ चतुस्त्रिंशज्जातकज्ञ, १६ दशपारमिताधर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशबल, १९ त्रिकाय, २० श्रीघन, २१ अद्वयवादी, २२ समंतभद्र, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मारजित्, २७ लोकजित्, २८ खजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमातृक, ३१ महामैत्र, ३२ मुनीन्द्र, यह बत्तीस नाम बुद्ध भगवान्के कहते हैं. अरु सात बुद्ध मानते हैं. १ विपश्यी, २ शिखी, ३ विश्वभू, ४ क्रकुच्छंद, ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. सातवा जो शाक्यसिंह बुद्ध है, तिसके नाम. १ शाक्यसिंह, २ अर्कबान्धव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्थसिद्ध, ५ [illegible] ६ [illegible] ७ [illegible] ८ [illegible] तथा १ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] ५ [illegible] ६ [illegible] यह [illegible] १ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] ४ [illegible] १ [illegible] २ [illegible] ३ [illegible] इत्यादि [illegible].

१ तर्कजाषा, २ न्यायविंडु, ३ हेतुविंद, ४ अर्वट, ५ तर्ककमलशैत ६ न्याय प्रवेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बौद्धोंकी शाखा चार हे, सो कहते है, १ वैजाषिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ डुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो डुःख है, सो पांच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ संस्कारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो विना अपर कोइजी आत्मादिक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, रस विज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कंध. २ सुखा डुःखा, अडुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोसें होती है. ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध. ४ पुण्य अपु ण्यादिक धर्म समुदाय जो हैं, सो संस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्रवोधसें पूर्व अनुजवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आ दिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोसें अतिरिक्त आत्मादि क कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे सर्व एक क्षणमात्र रहते हैं, नित्यजी नहीं है, अरु कितनेक काल तांइ रहनेवालेजी नहीं है, यह डुःख तत्वके पांच जेद कहे.

अथ डुःख तत्त्वका कारणजूत समुदाय तत्वका स्वरूप लिखते हैं, जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है? कि "आत्माआत्मीयजावाख्यः" मैं हु, यह मेरा है, ऐसा जो संबंध, तथा यह डूसरा है, यह डूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो संबंध, सोइ है नाम जिसका इस करकें जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते है, तिसका नाम समुदायतत्त्व है. अथ डुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों हैं, सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु हे.

अब इन दोनोंके जो विपक्षीजूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं. कि "परमनिःकृष्टं कालःक्षणं" तिसमें जो होवे सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं, आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं, पूर्व क्षणके नाश होनेसें तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वासना सो उत्तर ज्ञानमें शक्ति है. अरु क्षणोंकी परंपरा करकें जो मान

प लिखते हें. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप हे सो कहते हें, बौद्ध मतमें गुरु जो होते हें, तिनका लिंग ऐसा होता हे. १ मस्तक मुंड्या हुवा, २ चामका टूकडा, ३ कमंडलु, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उनका वेष हे, अरु शौचक्रिया बहुत हे, कोमल शय्यामें सोनां, सवेरे उठकर पेय पीनां, मध्यान्ह कालमें नात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, डाख, खंड, मिसरी. अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका चलन हे, तथा मनगमता नोजन करनां, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी अछी सामग्रीसें मुनि अछा ध्यान करता हे, अरु निक्षा पात्रमें जो कुछ पड जावे, सो सर्व शुद्ध, ऐसे मान करकें मांसनी खा लेते हें, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते हे, यह उनका आचार हे, १ धर्म्म, २ बुद्ध, ३ संघ यह तीनोंको रत्नत्रय कहते हें, अरु शासनके विघ्नोंके नाश करने वाली तारा देवी मानते हें, अरु विपश्या दिक सात बौद्धावतार जिनोंकी मूर्त्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता हे, तिसकूं नगवान् मानते हें, तिसकूं सर्वज्ञ मानते हें.

अरु बुद्ध नगवान्को जितने नामों कर कहते हें, सो लिखते हें. १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्म्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बोधिसत्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान, १२ षडनिज्ञ, १३ दशार्ह, १४ दशनूमिग, १५ चतुस्त्रिंशज्जातकज्ञ, १६ दशपारमिताधर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशबल, १९ त्रिकाय, २० श्रीघन, २१ अद्वय, २२ समंतनद्र, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मारजित्, २७ लोकजित्, २८ मुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमातृक, ३१ महामैत्र, ३२ मुनींद्र. यह बत्तीस नाम, बुद्ध नगवान्के कहते हें. अरु सात बुद्ध मानते हें, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वनू, ४ ककुछंद. ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. पीउला जो शाक्यसिंह बुद्ध हे, उसके नाम, १ शाकसिंह, २ अर्कबांधव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्थसिद्ध, ५ गोतम, ६ मायासुत, ७ शुद्धोदनसुत, ८ देवदत्ताग्रज, तथा १ निक्षु, २ सौगत, ३ शाक्य, ४ शौद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवादी बौद्धोंके नाम हें. तथा १ शौद्धोदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्चट, ४ धर्मकीर्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ दिग्नाग, ७ रामट. इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हें. तथा

१ तर्कनापा, २ न्यायबिंदु, ३ हेतुबिंद, ४ अर्वट, ५ तर्ककर्मलशैत ६ न्याय प्रवेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बौद्धोंकी शाखा चार है, सो कहते है, १ वैज्ञापिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ संस्कारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो विना अपर कोइन्नी आत्मादिक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, रस विज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कंध. २ सुखा दुःखा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोसें होती है. ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध. ४ पुण्य अपुण्यादिक धर्म समुदाय जो हैं, सो संस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्रबोधसें पूर्व अनुन्नवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आदिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोसें अतिरिक्त आत्मादिक कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे सर्व एक क्षणमात्र रहते हैं, नित्यन्नी नहीं है, अरु कितनेक काल तांइ रहनेवालेन्नी नहीं है; यह दुःख तत्त्वके पांच न्नेद कहे.

अथ दुःख तत्त्वका कारणन्नूत समुदाय तत्त्वका स्वरूप लिखते हैं, जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है ? कि "आत्माआत्मीयन्नावाख्यः" मैं हु, यह मेरा है, ऐसा जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो संबंध, सोइ है नाम जिसका इस करकें जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते है; तिसका नाम समुदायतत्त्व है. अथ दुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों हैं, सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु है.

अब इन दोनोंके जो विपक्षीन्नूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं. कि "परमनिःकृष्टं कालःक्षणं" तिसमें जो होवे सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं; आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं, पूर्व क्षणके नाश होनेसें तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वासना सो उत्तर ज्ञानमें शक्ति है, अरु क्षणोंकी परंपरा करकें जो मान

प लिखते हैं. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं, बौद्ध मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक मूंड्या हुवा, २ चामका टूकडा, ३ कमंडलु, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उनका वेष है, अरु शौचक्रिया बहुत है, कोमल शय्यामें सोनां, सवेरे उठकर पेया पीनां, मध्यान्ह कालमें जात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, द्राक्षा, खंड, मिसरी. अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका चलन है, तथा मनगमता जोजन करनां, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी अछी सामग्रीसें मुनि अछा ध्यान करता है, अरु निक्षा पात्रमें जो कुछ पड जावे, सो सर्व शुद्ध, ऐसे मान करकें मांसजी खा लेते हैं, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते है, यह उनका आचार है, १ धर्म्म, २ बुद्ध, ३ संघ यह तीनोंको रत्नत्रय कहते हैं, अरु शासनके विघ्नोके नाश करने वाली तारा देवी मानते हैं, अरु विपश्या दिक सात बौद्धावतार जिनोंकी मूर्त्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं जगवान् मानते हैं, तिसकूं सर्वज्ञ मानते हैं.

अरु बुद्ध जगवान्कों जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं. १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्म्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बोधिसत्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान, १२ षड्जिज्ञ, १३ दशार्ह, १४ दशजूमिग, १५ चतुस्त्रिंशज्जातकज्ञ, १६ दशपारमिताधर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशबल, १९ त्रिकाय, २० श्रीघन, २१ अद्वय, २२ समंतजद्र, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मारजित्, २७ लोकजित्, २८ मुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमात्रक, ३१ महामैत्र, ३२ मुनींद्र. यह बत्तीस नाम, बुद्ध जगवान्के कहते हैं. अरु सात बुद्ध मानते हैं, १ विपश्शी, २ शिखी, ३ विश्वजू, ४ ककुछंद, ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. पीछला जो शाक्यसिंह बुद्ध है, उसके नाम, १ शाकसिंह, २ अर्कबांधव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्थसिद्ध, ५ गोतम, ६ मायासुत, ७ शुद्धोदनसुत, ८ देवदत्ताग्रज. तथा १ जिक्षु, २ सौगत, ३ शाक्य, ४ शौद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवादी बौद्धोंके नाम हैं. तथा १ शौद्धोदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्चट, ४ धर्मकीर्त्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ दिग्नाग, ७ रामट. इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हैं. तथा

१ तर्कजाषा, २ न्यायविंडु, ३ हेतुविंद, ४ अर्चट, ५ तर्ककर्मलशैत ६ न्याय प्रवेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बौद्धोंकी शाखा चार है, सो कहते है, १ वैजाषिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है, उसका नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ संस्कारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो विना अपर कोइजी आत्मादिक पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, रस विज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कंध. २ सुखा दुःखा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत कर्मोंसें होती है. ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध. ४ पुण्य अपु ण्यादिक धर्म समुदाय जो हैं, सो संस्कारस्कंध है, इसही संस्कारके प्रबोधसें पूर्व अनुजवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथिवी, धातु आ दिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोसें अतिरिक्त आत्मादि क कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे सर्व एक क्षणमात्र रहते हैं, नित्यजी नहीं है, अरु कितनेक काल तांइ रहनेवालेजी नहीं है, यह दुःख तत्वके पांच जेद कहे.

अथ दुःख तत्त्वका कारणजूत समुदाय तत्वका स्वरूप लिखते हैं, जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न होता है, वो राग द्वेषका समूह कैसा है? कि "आत्मात्मीयजावाख्यः" में हुं, यह मेरा है, ऐसा जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह दूसरेकी वस्तु है, ऐसा जो संबंध, सोइ है नाम जिसका इस करकें जो राग द्वेषादिक उत्पन्न होते हैं, तिसका नाम समुदायतत्व है. अथ दुःख, अरु समुदाय, यह जो दोनों हैं, सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु है.

अब इन दोनोंके जो विपक्षीजूत १ मार्ग २ निरोध तत्त्व है, सो लिखते हैं. कि "परमनिःकृष्ट कालःक्षणं" तिसमें जो होवे सो क्षणिक है, सर्व पदार्थ क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं. आत्मा कोइ सर्वकाल स्थायी नहीं, पूर्व क्षणके नाश होनेसें तत्सदृश उत्तर क्षण उत्पन्न होता है, पूर्वज्ञान जनिता वासना सो उत्तर ज्ञानमें शक्ति है. अरु क्षणोंकी परंपरा करकें जो ज्ञान

प लिखते हैं. उसमें प्रथम बौद्ध दर्शनका स्वरूप है सो कहते हैं, बौद्ध मतमें गुरु जो होते हैं, तिनका लिंग ऐसा होता है. १ मस्तक मूंडा हुवा, २ चामका टूकरा, ३ कमंडलु, ४ धातुरक्त वस्त्र, यह तो उनका वेष है, अरु शौचक्रिया बहुत है, कोमल शय्यामें सोनां, सवेरे उठकर पेया पीनां, मध्यान्ह कालमें भात खानां, अपरान्हमें पानी पीनां, द्राक्ष खंड, मिसरी. अर्द्धरात्रिमें मरणांतमें मोक्ष, यह बौद्धोंका वचन है, तथा मनगमता भोजन करनां, मनगमती शय्या, आसन, अरु मनगमता रहने का स्थान, ऐसी अच्छी सामग्रीसें मुनि अच्छा ध्यान करता है, अरु भिक्षा पात्रमें जो कुछ पड जावे, सो सर्व शुद्ध, ऐसे मान करके मांसभी खा लेते हैं, अरु ब्रह्मचर्यादि अपणी क्रियामें बहुत दृढ होते है, यह उनका आचार है, १ धर्म्म, २ बुद्ध, ३ संघ यह तीनोंको रत्नत्रय कहते हैं, अरु शासनके विघ्नोके नाश करने वाली तारा देवी मानते हैं, अरु विपश्या दिक सात बौद्धावतार जिनोंकी मूर्त्तियोंके कंठमें तीन तीन रेखाका चिन्ह होता है, तिसकूं भगवान् मानते हैं, तिसकूं सर्वज्ञ मानते हैं.

अरु बुद्ध भगवान्कों जितने नामों कर कहते हैं, सो लिखते हैं. १ बुद्ध, २ सुगत, ३ धर्म्मधातु, ४ त्रिकालवित्, ५ जिन, ६ बोधि सत्त्व, ७ महाबोधी, ८ आर्य, ९ शास्ता, १० तथागत, ११ पंचज्ञान, १२ षडभिज्ञ, १३ दशार्ह, १४ दशभूमिग, १५ चतुस्त्रिंशज्जातकज्ञ, १६ दशपा रमिताधर, १७ द्वादशाक्ष, १८ दशबल, १९ त्रिकाय, २० श्रीघन, २१ अद्वय, २२ समंतभद्र, २३ संगुप्त, २४ दयाकूर्च, २५ विनायक, २६ मा रजित्, २७ लोकजित्, २८ सुखजित्, २९ धर्मराज, ३० विज्ञानमातृक ३१ महामैत्र, ३२ मुनींद्र. यह बत्तीस नाम, बुद्ध भगवान्के कहते हैं अरु सात बुद्ध मानते हैं, १ विपशी, २ शिखी, ३ विश्वभू, ४ ककुछंद ५ कांचन, ६ काश्यप, ७ शाक्यसिंह. पीछला जो शाक्यसिंह बुद्ध है, ति सके नाम, १ शाकसिंह, २ अर्कबांधव, ३ राहुलसू, ४ सर्वार्थसिद्ध, ५ गोतम, ६ मायासुत, ७ शुद्धोदनसुत, ८ देवदत्ताग्रज. तथा १ भिक्षु, २ सौगत, ३ शाक्य, ४ शौद्धोदनी, ५ सुगत, ६ तथागत, यह शून्यवादि बौद्धोंके नाम हैं. तथा १ शौद्धोदनी, २ धर्मोत्तर, ३ अर्चट, ४ धर्मकीर्ति, ५ प्रज्ञाकर, ६ दिग्नाग, ७ रामट. इत्यादि ग्रंथोंके करने वाले गुरु हैं. तथा

१ तर्कजाषा, २ न्यायबिंदु, ३ हेतुबिंद, ४ अर्चट, ५ तर्ककर्मलशैत ६ न्याय प्रवेश, ७ ज्ञानपारं, इत्यादि नाम उनके तर्कशास्त्रोंके हैं. तथा बौद्धोंकी शाखा चार हैं, सो कहते है, १ वैजाषिक, २ सौतांत्रिक, ३ योगाचार, ४ माध्यमिक.

अथ बौद्धमतं. बौद्ध चार वस्तु मानते हैं, सो लिखते हैं, १ दुःख, २ समुदाय, ३ मार्ग, ४ निरोध. तहां जो दुःख है, सो पांच स्कंधरूप है. उसका नाम लिखते हैं. १ ज्ञानस्कंध, २ वेदनास्कंध, ३ संज्ञास्कंध, ४ संस्कारस्कंध, ५ रूपस्कंध. इन पांचो विना अपर कोइजी आत्मादि पदार्थ नहीं है, यह पांच स्कंधका अर्थ लिखते हैं. १ रूपविज्ञानं, विज्ञानं, इत्यादिक निर्विकल्पक जो विज्ञान हैं, सो विज्ञान स्कंध. दुःखा, अदुःख सुखा, यह वेदनास्कंध है, यह वेदना पूर्वकृत होती है. ३ सविकल्पक ज्ञान जो है, सो संज्ञास्कंध. ४ एयादिक धर्म समुदाय जो हैं, सो संस्कारस्कंध है, प्रबोधसें पूर्व अनुजवका स्मरणादिक होता है, ५ पृथि... दिक अरु रूपादिक, यह रूपस्कंध है, इन पांचोसें क कोइ पदार्थ नहीं. अरु यह जो पांचों स्कंध हैं, वे रहते हैं, नित्यजी नहीं है, अरु कितनेक काल तां है, यह दुःख तत्वके पांच जेद कहे.

अथ दुःख तत्त्वका कारणजूत समुदाय जो इस जगत्में राग द्वेषोंका समूह उत्पन्न समूह कैसा है ? कि "आत्माआत्मीयजाव ऐसा जो संबंध, तथा यह दूसरा है, यह संबंध, सोइ है नाम जिसका इस कर है. तिसका नाम समुदायतत्त्व है. ...यान. दोनों हैं, सो संसारकी प्रवृत्तिके हेतु हैं. वास्ते

अब इन दोनोंके जो विपक्षीजूत ... कहते कि "परमनिःकृष्टं कालःक्षणं" ... गत्स्यायन क्षणमात्र रह कर नाश हो जाते हैं ... का, वाच क्षणके नाश होनेसें तत्सदृश ... ंकार वृत्ति, वासना सो उत्तर ज्ञानमें ... . तिसविषे

भी प्रतीति होवे. तिसका नाम मार्ग है, सो निरोधका कारण जानना. अथ चौथा निरोध नामा तत्त्व लिखते हैं. निरोध नामा तत्त्व मोक्षको कहते हैं. चित्तकी जो निःक्लेश अवस्था तिसका नाम निरोध तत्त्व है, नामांतर करिके मोक्ष कहते हैं, यह दुःखादि चारकों आर्यसत्त्व कहते हैं, अरु यह जो चारों तत्त्व अनंतर कहे हैं, सो सौतांत्रिक बौद्ध मतकी अपेक्षा है.

अरु जेकर भेद रहित समुच्चय बौद्धमतकी विवक्षा करियें, तब तो बौद्धमतमें बारा पदार्थ होते हैं, उसमें १ श्रोत्र, २ चक्षु, ३ घ्राण, ४ रसन, ५ स्पर्शन, यह पांच तो इंद्रिय, अरु इन पांचों इंद्रियोंके पांच विषय, तथा १ चित्त, २ शब्दायतन धर्म जो है, सुख दुःखादि तिनका जो आयतन (घर) सो क्या है ? कि शरीर है यह सर्व द्वादश वस्तुओंका नाम आयतन कहते हैं, अरु यह बारा आयतन क्षणिक हैं, क्षणः प्रकारसें. चार तत्त्व तो सौतांत्रिकके मतके, अरु सामान्य प्रकारसें बौद्धमतके बारा आयतन कह करकें अथ बौद्धमतके प्रमाण लिखते हैं, बौद्धमतमें एक प्रत्यक्ष, दूसरा अनुमान, यह दो प्रमाण मानते हैं ॥ इति संक्षेप मात्र बौद्धदर्शनं ॥ १ ॥

अथ नैयायिक दर्शन लिखते हैं. नैयायिक मतका अपर नाम यौगमतभी कहते हैं; इन नैयायिकोंके गुरु १ दंड रखते हैं, २ बडी कौपीन पहेरते हैं, ३ कांबली ओढते हैं, ४ जटा रखते हैं, ५ शरीरको भस्म लगाते हैं, ६ नीरस आहार करते हैं, ७ बांहके मूलमें तूंबी रखते हैं, ८ प्रायः करके वनोंमें रहते हैं, ९ आतिथ्य कर्ममें तत्पर होते हैं, १० कंद, मूल, फल खाते हैं, ११ कितनेक स्त्री रखते हैं, और कितनेक नहीं रखते हैं, १२ जो स्त्री नहीं रखते हैं, सो तिनमें उत्तम गणे जाते हैं, १३ पंचाग्नि तापते हैं, १४ जटामें प्राणलिंग धरते हैं, १५ उत्तम संयम अवस्थामें जब प्राप्त होते हैं, तब नग्न हो कर भ्रमण करते हैं, १६ सवेरे दंत धावनादि शौच करके शिवका ध्यान करते हैं. १७ भस्म करकें तीन तीन वार अंगकूं स्पर्श करते हैं. १८ जो उनका भक्त वंदना करता है, सो "ॐनमः शिवाय" कहता है, अरु १९ गुरु तिसकूं तांइ "शिवाय नमः" ऐसे कहता है. उनका कहना ऐसा है, कि जो पुरुष शैवी दिक्षा बारां वर्षताइ करके छोड देवे, जे कर दीक्षे सो दास दासीभी होवे, तोभी निर्वाण

पद पाता है, अरु शंकर इनका देव है, सो शंकर कैसा हैकिः—सर्व सृष्टिका संहारका कर्त्ता है.

तिस शंकरके अठारह अवतार मानते हैं, तिसका नाम लिखते हैं, १ नकुलीश, २ कौशिक, ३ गार्ग्य, ४ मैत्र, ५ कौरुप, ६ ईशान, ७ अपर गार्ग्य, ८ कपिलांड, ९ मनुष्यक, १० अपर कुशिक, ११ अत्रि, १२ पिंग लाक्ष, १३ पुष्पक, १४ बृहदाचार्य, १५ अगस्ति, १६ संतान, १७ राशिकर, (१८) विद्यागुरु, यह अठारह उनके तीर्थेश हैं, इनकी बहुत सेवा करते हैं, इनका पूजन, अरु प्रणिधान तिनके शास्त्रोंसें जान लेनां.

अरु इनका अक्षपाद मुनि अर्थात् गौतम मुनि गुरु है, तिनके मतमें भरट पूजनिक है, सो कहते हैं, देवतावोंके सन्मुख हो कर नमस्कार न करणी, जैसा नैयायिक मतमें लिंग, वेष, देवादि स्वरूप है तैसाही वैशेषिक मतमेंभी जान लेनां, क्योंकि नैयायिक वैशेषिकोंके प्रमाण अरु तत्त्वोंमें थोडासा भेद है, इस वास्ते यह दोनो मत तुल्य ही है, इन दोनों हीकों तपस्वी कहते हैं, अरु तिनके शैवादिक चार भेद हैं, एक शैव, दूसरा पाशुपत, तीसरा महाव्रतधर, चौथा कालमुख. इनके अवांतर भेद भरट, भक्तलैंगिक, तापसादिक है, भरटादिकोंकों व्रत ग्रहणेमें ब्राह्मणादि वर्णोंका नियम नहीं, किंतु जिसकी शिव विषे भक्ति होवे, सो व्रती भरटादिक होता है, परंतु नैयायिक जो है, सो सर्व सदाशिवभक्त होनेसें उनका नाम शैव कहते है, अरु वैशेषिकोंकों पाशुपत कहते है.

इन नैयायिकोंके मतमें १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शाब्द, यह चार प्रमाण मानते है, अरु १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत, ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२ वितंडा, १३ हेत्वाभास, १४ छल, १५ जातय, १६ निग्रहस्थान. यह सोला पदार्थ मानते हैं, इनका विस्तार बहुत है, इस वास्ते नहीं लिखा, अरु आत्यंतिक दुःखोंका जो वियोग तिसकूं मोक्ष कहते हैं. इनके १ न्यायसूत्र, अक्षपाद मुनि कर्त्ता, २ भाष्य, वात्स्यायन मुनि कर्त्ता, ३ न्याय वार्त्तिक, उद्योतकर कर्त्ता, ४ तात्पर्य टीका, वाचस्पति कर्त्ता, ५ तात्पर्य परिशुद्धि, उदयन कर्त्ता, ६ न्यायालंकार वृत्ति, श्रीकंठाभयतिलकोपाध्याय कर्त्ता, ७ भासर्वज्ञप्रणीत, न्यायसार. तिसविषे

अगरह टीका है, तिनमेंसूं न्यायजूषण नामक टीका प्रसिद्ध है, न्याय कलिका जयंत रचित, न्याय कुसुमांजलि यह सब इन नैयायिकोंके तर्क ग्रंथ हैं, यह नैयायिकदर्शन, संक्षेपसें लिखा.

अथ वैशेपिकजी यही लिख देते हैं. कि वैशेपिकोंका मत नैयायिकों के तुल्यही है, परंतु यह विशेष है कि, यह मतवाले प्रत्यक्ष अरु अनुमान यह दो प्रमाण मानते हैं, अरु १ इव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, यह जावरूप ७ तत्त्वों मानते हैं, इन सर्वका विस्तार देखनां होवे, तदा वैशेषिक मतके ग्रंथोमें देख लेनां, तथा तपा गछाचार्य श्रीगुणरत्नसूरिविरचित षट्दर्शन समुच्चय ग्रंथकी टीका देख लेनी, अरु यह वैशेपिकमतके जो तर्कग्रंथ हैं, सो कहते हैं, एक तो ६००० श्लोक प्रमाण, कंदली श्रीधर आचार्य कर्त्ता, वैशेपिक सूत्र, ३००० श्लोक प्रमाण, प्रशस्तकर जाप्य, ७०० श्लोक मान, व्योमशिवाचार्यकृत व्योममतीटीका, ९००० श्लोक मान, उदयनकी करी हूइ किरणावली ६००० श्लोकमान, श्रीवत्स आचार्यकृत लीलावती टीका ६००० श्लोकमान, अरु एक आत्रेय तंत्र था, सो व्यवछेद हो गया है. यह वैशेपिक मतवाले कहते हैं की शिवजीने उलूकका रूप करके कणाद मुनिके आगें यह वैशेपिक मत प्रकाश करा था, इस वास्ते इस मतका नाम औलूक्य मतजी कहते हैं ॥ इति वैशेपिक मतं ॥

अथ सांख्यमत लिखते है. प्रथम तो सांख्यमतके साधुओंके जानने वास्ते उनका लिंगादिक लिखते हैं. सो त्रिदंमीजी होते हैं, कौपीन पहेरते हैं, धातुरक्त वस्त्र रखते हैं, कोइ शिर उपर शिखा रखते हैं, अरु कोइ जटा रखते हैं, कोइ मस्तक क्षुरमुंड कराते है, मृगचर्मका आसन रखते हैं, द्विजके घरका अन्न खाते हैं, केइ पांचही ग्रास खाते हैं, अरु बारा अक्षरका जाप करते हैं, तिनके जक्त, जब गुरुकूं वंदना करता है, तब "ॐ नमो नारायणाय" ऐसें कहते है, तब गुरु उनकूं "नमो नारायणाय" ऐसे कहते है, अरु महाजारतमें जिसका नाम "वीटा" ऐसा लिखा है, यह काष्टकी मुखवस्त्रिका मुखके निःश्वास निरोधके वास्ते रखते हैं, जिससें मुखश्वाससें जीवहिंसा न होवे. यदाहुः" ॥ श्लोक ॥ ते घ्राणादनुयातेन, श्वासेनैकेन जंतवः ॥ हन्यंते शतशो ब्रह्म, न्नणुमात्राक्षरवादिनः ॥१॥ ते सांख्य गुरु, ज

खके जीवोंकी दया वास्ते अपने पास पाणीके छानने वास्ते गलनां राखते हैं, अरु अपनें भक्तोकूं पाणीके छानने वास्ते तीस अंगुल प्रमाण लांबा और वीश अंगुल प्रमाण चोडा, दृढ छलना, राखनेका उपदेश करते है, अरु जो जीव पानीके छाननेसें निकले; वो उसी पाणीमें पीछे प्रक्षेप करने, क्योंकि मीठे पाणी करकें खारे पाणीके पूरे मर जाते हैं, अरु खारे पाणीके मिलनेसें मीठे पाणीके पूरे मर जाते है, इस वास्ते परस्पर पानीयोंका मेल न करनां; वहुत सूक्ष्म पाणीके एक विंदुमें इतने जीव है कि जे कर भ्रमर समान उस जीवोंकी काया वनाइ जावे, तो तीन लोकमें वे जीव न समावे ॥ इति गलनक विचारो मीमांसायां ॥

यह सांख्यभी एक प्राचीन, अरु एक नवीन, ऐसे दो तरेंके है, नवीनोका दूसरा नाम पांतांजलभी कहते है, इनमेंसूं प्राचीन सांख्य ईश्वरको नहीं मानते है, अरु नवीन सांख्य ईश्वरको मानते है, जो निरीश्वर है वो नारायण पर है, अरु उनके जो आचार्य है, सो विष्णु प्रतिष्टा कारका चैतन्य प्रमुख शब्दो करके कहे जाते है, अरु सांख्य मत कहने वाले यह आचार्य है सो लिखते है. कपिल, आसुरी, पंचशिख, भार्गव, उलूक, ईश्वर, कृष्ण, यह शास्त्रोंके कर्त्ता है. सांख्यमत वालोंको कापिलाभी कहते है, तथा कपिलाका परमर्षि ऐसा दूसराभी नाम है, इस वास्ते तिनको पारमर्षाभी कहते है, वाणारसीमें सो वहुत होते है, मासोपवासभी करते है. अरु ब्राह्मण जो है, सो अर्चिमार्गसें विरुद्ध धूममार्गानुगामी है, अरु सांख्य जो है, सो अर्चिमार्गानुयायी है, तिस वास्ते ब्राह्मणोको तो वेद प्यारे है, अरु यज्ञमार्गानुयायी है, अरु सांख्य जो है सो हिंसा करकें पूर्ण ऐसे जो वेद, तिनोंसें निवर्त्त हूये है, अध्यात्मवादी है सो सांख्य अपने मतकी महिमा ऐसी मानते है. माठर शास्त्रके प्रांतमें लिखा है ॥श्लोक॥ हस पिब खाद मोदं. नित्यं भुंक्ष्व च भोगान् यथाऽभिकामं ॥ यदि विदितं कपिलमतं. तत्प्राप्स्यसि मोक्षसौख्यमचिरेण ॥१॥ अस्यार्थः—जे कर तुमने कपिल मत जाना है तो हसो. पीयो. खेलो. खाओ. सदा खुशी रहो. जैसें रुचि होवे. तैसें भोगोंको सदा भोगो. तो तुमको थोडेसे कालमें मुक्ति सुख प्राप्त होवेगा, शास्त्रांतरमेंभी कहा है ॥ श्लोक ॥ पंचविंशति तत्त्वज्ञो. यत्र तत्राश्रमे रतः ॥ शिखी मुंडी जटी वापि. मुच्यते नात्र संशयः ॥ १ ॥

अस्यार्थः—पच्चीश तत्वोंका जो जानकार होवे, सो चाहो किसी आश्रममें रहे, शिखावाला होवे, वा मुंडित होवे, अथवा जटावाला होवे, वे सर्व उपाधिसें छुट जाते हैं, इसमें संशय नहीं.

अब सांख्यमतमें सर्वसांख्य पच्चीश तत्त्व मानते हैं, जब पुरुष तीन दुःखोंसें अभिहत होता है, तब तिन दुःखोंके दूर करणे वास्ते जिज्ञासा उत्पन्न होती है, सो तीन दुःख यह हैं १ आध्यात्मिक, २ आधिदेविक, ३ आधिजौतिक, यह तीन दुःख हैं, आध्यात्मिक जो आधि है, सो दो प्रकारकी है, एक शारीरी, दूसरी मानसी, तहां जो वायु, पित्त, श्लेष्म, इन तीनोकी विषमतासें देहमें जो अतिसारादिक होते हैं, सो शारीरिक है. अरु काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, विषयोंके देखनेसें जो होवे, सो मानसी. यह दोनोंही आंतर उपायसें दूर हो सक्ति हैं इस वास्ते इसकूं आध्यात्मिक दुःख कहते हैं, २ अरु जो बाह्य उपाय करकें साध्या जावे सो दुःख दो प्रकारके हैं, एक आधिजौतिक, दूसरा आधिदेविक, तहां जो दुःख मनुष्य, पशु, पक्षी, मृग, सर्प्प, स्थावर आदिके, निमित्त करिकें होता है ताकूं आधिजौतिक कहते हैं, ३ अरु यक्ष, राक्षस, जूतादिकका प्रवेश हो जाना, तथा महामारी अनावृष्टि अतिवृष्टिका होनां तिसका नाम आधिजौतिक है. इन तीनों दुःखो करकें रज परिणामके जेद करकें प्राणीयोंकां दुःखोंके दूर करणे वास्ते तत्वोंके जाननेकी इछा होती है, सो तत्त्व पच्चीश प्रकारके हैं.

अब प्रथम पच्चीश तत्त्वोंका स्वरूप लिखते है. तिनमें प्रथम सत्त्वादि गुणोका स्वरूप कहते हैं. १ प्रथम सत्त्वगुण सुखलक्षण, २ दूसरा रजोगुण दुःख लक्षण, ३ तीसरा तमोगुण मोहलक्षण, इन तीनो गुणोंके यह लिंग हैं, १ सत्त्वगुणका चिन्ह प्रसन्नता, २ रजोगुणका चिन्ह संताप, ३ तमोगुणका चिन्ह दीनपणा, अब १ प्रसाद, २ बुद्धिपाटव, ३ लाघव, ४ प्रश्रय ५ अनजिष्वंग, ६ अद्वेष, ७ प्रीत्यादय, यह सत्त्वगुणके कार्यलिंग हैं. १ ताप, २ शोष, ३ जेद, ४ चलचित्त, ५ स्तंज, ६ उद्वेग, यह रजोगुणके कार्य लिंग हैं, १ दैन्य, २ मोह, ३ मरण, ४ असादन, ५ बीजत्सा, ६ ज्ञानगौरवादि, यह तमोगुणके कार्यलिंग हैं, इन कार्यों करकें सत्त्वादि गुण जाने जाते हैं ॥ तथाहि ॥ लोकमें जो कुछ सुख उपलब्ध होता है,

सो १ आर्जव, २ मार्दव, ३ सत्य, ४ शौच, ५ लज्जा, ६ बुद्धि, ७ क्षमा, ८ अनुकंपा, प्रसादादि, यह सर्व सत्व गुणके कार्य्य हैं. अरु जो कुछ दुःख उपलब्ध होता है, सो १ द्वेष, २ द्रोह, ३ मत्सर, ४ निंदावचन, ५ बंधन, तापादि स्थान है, सो रजोगुणके कार्य्य हैं. अरु जो कुछ मोह उपलब्ध होता है, सो १ अज्ञान, २ मद, ३ आलस्य, ४ भय, ५ दैन्य, ६ कृपणता, ७ नास्तिकता, ८ विषाद, ९ उन्माद स्वप्नादि, यह तमोगुणके कार्य्य हैं. यह सत्वादिक परस्परोपकारी तीन गुणों करकें सर्व जगत् व्याप्त है, परंतु ऊर्ध्व लोकमें देवतायों विषे बाहुल्य करकें सत्वगुण है, औ अधोलोक तिर्यंच नरकों विषे बाहुल्य करकें तमोगुण है, औ मनुष्योंमें बहुलता करकें रजो गुण है. इन तीनो गुणों की जो सम अवस्था है, तिसका नाम प्रकृति है, तिस प्रकृतिकों प्रधान अव्यक्त शब्दो करकेंभी कहते हैं, सो प्रकृति नित्य स्वरूप है. "अप्रच्युतानुत्पन्नस्थिरैकस्वभावं कूटस्थं नित्यं" यह नित्यका लक्षण है. अरु यह जो प्रकृति है सो अन्य, वा असाधारणी, अशब्दा, अस्पर्शा, अरसा, अरूपा, अगंधा, अव्यया, कहते है. अरु जो मूल सांख्यमती है, वे एकैक आत्माके साथ न्यारा न्यारा प्रधान मानते है, अरु जो नवीन सांख्य है, वे सर्वात्माओंमें एक, नित्य, प्रधान मानते हैं, प्रकृति अरु आत्माके संयोगसें सृष्टि होती है, इस वास्ते सृष्टि होनेका क्रम लिखते है.

तिस प्रकृतिसेंती बुद्धि उत्पन्न होती है, गौ आदिकोंके आगें दीखनेंसें यह गौही है घोड़ा नहीं, यह स्थाणुही है, परंतु पुरुष नहीं, ऐसा जो निश्चयरूप अध्यवसाय होता है, तिसका नाम बुद्धि कहते हैं, दूसरा तिसका नाम महत्त्भी कहते है. तिस बुद्धिके आठ रूप हैं. १ धर्म, २ ज्ञान, ३ वैराग्य, ४ ऐश्वर्य, यह चार तो सात्विक बुद्धिके रूप हैं, १ अधर्म, २ अज्ञान, ३ अवैराग्य, ४ अनैश्वर्य्य, यह चारो तामसी बुद्धिके रूप है. तिस बुद्धिसें अहंकार उत्पन्न होता है, तिस अहंकारसेंति सोला गुणका समूह उत्पन्न होता है. सो गुण यह है. १ स्पर्शनं त्वक् २ रसनं जिव्हा. ३ घ्राणं नासिका, ४ चक्षु लोचनं, ५ श्रोत्र श्रवणं इन पांचोकों बुद्धींद्रिय कहते हैं, क्योंकि यह पांचो अपणे अपणे विषयकों जानती है. अरु पांच कर्मेंद्रिय है. १ पायु गुदा, २ उपस्थ स्त्री पुरुषका चिन्ह, ३

कंठादि आठस्थानोसें जो शब्द उच्चरियें है, सो वच,४ हाथ, ५ पग, इन पांचोसें पांच काम होते हैं. १ मलोत्सर्ग, २ संजोग, ३ वचन, ४ पकरुनां. ५ चलनां, इस वास्ते इन पांचोंकों कर्मेंद्रिय कहते हैं. अरु अगी आरवा मन, यह मन जो हैं, सो बुद्धींद्रियोंसें मिलता है, तब बुद्धींद्रियरूप हो जाता है, अरु जब कर्मेंद्रियोंसें मिलता है, तब कर्मेंद्रिय रूप हो जाता है, अरु यह मन जो है, सो संकल्पवृत्ति है, तथा अहंकारसेंती पांच तन्मात्रा जिनकी सूक्ष्म संज्ञा है, सो उत्पन्न होते हैं, तहां १ रूप तन्मात्रा सो शुक्ल कृष्णादिरूप विशेष, २ रस तन्मात्रा सो तिक्तादि रस विशेष, ३ गंध तन्मात्रा सो सुरभ्यादि गंध विशेष, ४ शब्द तन्मात्रा सो मधुरादि शब्द विशेष, ५ स्पर्श तन्मात्रा, सो मृदु काठिन्यादि स्पर्श विशेष, यह षोडशका गण है. अथ पांच तन्मात्राओंसें पांच भूत उत्पन्न होते हैं, सो कहते हैं. १ रूप तन्मात्रा सूक्ष्म संज्ञासें अग्नि उत्पन्न होता है, २ रस तन्मात्रासें जल उत्पन्न होता है, ३ गंध तन्मात्रासें पृथिवी उत्पन्न होती है, ४ औ शब्द तन्मात्रासें आकाश उत्पन्न होता है, तथा ५ स्पर्श तन्मात्रासें वायु उत्पन्न होता है. ऐसें पांच तन्मात्राओंसें पांच भूत उत्पन्न होते हैं, ऐसें यह सब मिल कर चोवीश तत्त्व रूप सांख्य मतमें प्रधान निवेदन कीया, "औ अकर्ता विगुण भोक्ता" ऐसा पुरुष तत्त्व नित्य चिद्रूप मानते हैं, चोवीश तत्त्वरूप प्रधान ऐसे हैं कि १ प्रकृति, २ महान्, ३ अहंकार, ८ पांच ज्ञानेंद्रिय, १३ पांच कर्मेंद्रिय, १४ मन, १९ पांच तन्मात्रा, २४ पांच भूत, यह चोविश तत्त्व हैं. तिनमेंसूं प्रथम एक प्रकृति है, ऐसें अनुत्पन्न होनेसें बुद्धि आदिक सात अगलोंके तो कारण हैं, अरु पीछलोंके कार्य हैं, इस वास्ते इन सातोंको प्रकृति विकृति कहते हैं, अरु षोडशका गण सो कार्यरूप होणेसें विकृति रूप है, अरु पुरुष जो है, सो न प्रकृति है, न विकृति है, न किसीसें उत्पन्न हुआ है, न किसीकों उत्पन्न करता है, इस हेतुसें ॥ तथाचेश्वरः कृष्णः सांख्यसप्ततौ ॥ " मूलप्रकृतिरविकृति–र्महदाद्याः प्रकृतिविकृतयः सप्त ॥ षोडशकश्चविकारो, विकृतयः न प्रकृतिर्न विकृतिः पुरुष इति ॥ अर्थः–तथा ईश्वर कृष्ण सांख्यमतका आचार्य सांख्यसप्तति ग्रंथमें लिखता है, कि मूल प्रकृति अविकृति है, महत् आदिक सात प्रकृति विकृति हैं, षोडशक विकार

विकृति हैं. न प्रकृति है, न विकृति है, सो पुरुष है. तथा महदादिक, प्रकृतिका विकार है. सो व्यक्त हो कर फेर अव्यक्तभी हो जाते हैं, सो अनित्य होनेसें अपणे स्वरूपसें भ्रंश हो जाते है, अरु प्रकृति जो है, सो अविकृतिरूप है, सो कदापि अपणे स्वरूपसें भ्रंश नहीं होती है. तथा महत् आदिकोंका अरु प्रकृतिका स्वरूप सांख्यमतवाले ऐसें मानते हैं. १ हेतुमत्, २ अनित्य,, ३ अव्यापक,४ सक्रिय, ५ अनेक, ६ आश्रित, ७ लिंग, ८ सावयव, ९ परतंत्र, १० व्यक्त, इनसें विपरीत प्रकृति है. तहां १ हेतुमत् कारण वाले हैं, महत् आदिक २ अनित्य, उत्पत्ति धर्मवाले हैं, ३ बुद्ध्यादिक अव्यापी है, सर्वगत नहीं, ४ अध्यवसाय करकें संयुक्त वर्त्ते हैं, इस हेतुसें सक्रिय सव्यापार चलने वाले हैं, ५ अनेक, तेवीस प्रकारके हैं इस वास्ते, ६ आश्रित, आत्माके उपकार वास्ते प्रधानकों अवलंब करिकें रहे हैं, ७ लिंग, जो जिससेतें उत्पन्न होते हैं, सो तिसहीमें "लयं व्रजं गच्छतीति लिंगं," तहां पांच भूत, पांच तन्मात्राओमें लय होते हैं, औ पांच तन्मात्रा, अरु दश इंद्रिय, अरु मन, यह अहंकारमें लय होते हैं, अरु अहंकार बुद्धिमें लय होता है, अरु बुद्धि प्रकृतिमें लय होती है, औ प्रकृति किसीमेंभी लय नहीं होती हैं, ८ सावयव, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधादिकों करकें संयुक्त है, ९ परतंत्र, कारणके अधीन होनेसें, १० ऐसेंही महत् आदिक व्यक्त हैं, प्रकृति इनसें विपरीत है, सो सुगम है, आपही समझ लेनी. यह थोमासा स्वरूप लिखा है, जे कर विस्तार देखना होवे तदा सांख्य सप्तति आदिक. तिनोंके शास्त्रोंसें जान लेनां.

अथ पच्चीशवा पुरुष तत्वका स्वरूप कहते हैं. पुरुष जो है सो "अकर्त्ताविगुणोभोक्ता नित्यचिदभ्युपेतश्च" पुरुष तत्व आत्माकों कहते हैं, १ आत्माजो है. सो विषय सुखादिक तिनका कारण पुण्यादिक नहीं करता है, इस वास्ते "अकर्त्ता" है,क्योंकि आत्मा तृण मात्रभी तोमने समर्थ नहीं है, औ कर्त्ता जो है, सो प्रकृति है, क्योंकि प्रकृतिमें प्रवृत्ति स्वभाव है, तथा २ "विगुणः" सत्त्वादि गुणरहित हैः क्यों कि सत्वादिक जो हैं सो प्रकृतिके धर्म हैं, तथा ३ "भोक्ता" आत्मा भोक्ता भोगने वाला है, भोक्ताभी साक्षात् नहीं किंतु प्रकृतिका विकार भूत उभय मुख दर्पणाकार जो बुद्धि है, तिसमें संक्रमण होय हुवे सुख दुःखोंको पुरुष स्वात्म निर्मलभिपे प्रतिबिंबोदय मात्र

करकें "भोक्ता" कहियें है, "बुद्ध्यावसितमर्थं पुरुषश्चेतते" इति वचनात् ॥ जैसें जाइके फूलोंके सन्निधानके वशसें स्फटिकमें रक्तादि कहनेमें आता है, तैसें प्रकृतिके निकट होनेसें पुरुषजी सुख दुःखोंका भोक्ता कहा जाता है, सांख्यमतका वाद महार्णवजी कहता है, उक्तंच "बुद्धिदर्पणसंक्रांतं समर्थप्रतिबिंबकं॥ द्वितीयदर्पणं कल्पे, पुंसिअध्यारोहति ॥ तदेव भोक्तृत्व मस्य नत्वात्मनोविकारापत्तिरिति" ॥ इसका तात्पर्यार्थ उपर लिखा जानना.

तथा च कपिलका शिष्य आसुरिजी कहता है ॥ श्लोक ॥ विवक्ते दृकूपरिणतौ, बुद्धौ भोगोऽस्य कथ्यते ॥ प्रतिबिंबोदयः स्वच्छे, यथा चंद्रमसोंऽभसि ॥ १ ॥ तथा विंध्यवासी सांख्याचार्य आत्माकों ऐसें भोक्ता कहता है, कि पुरुष जो है, सो अविकृतात्माही है, स्वनिर्भास अचेतनमन करता है, तिस मनकी निकटतासें उपाधि स्फटिकवत् दिखलाइ देती हैं, तथा "नित्या चिच्चेतना तथाऽभ्युपेतः" इस कहने करकें पुरुषही चेतन्य स्वरूप है, "नतु ज्ञानस्य" (परंतु ज्ञान को नहीं) क्योंकि ज्ञानकों बुद्धिधर्म होनेसें. तथा पतंजलीजी ऐसेही कहता है. तथा "पुमान्" यह जो एक वचन है, सो जातिकी अपेक्षा है, परंतु आत्मा अनंत है, क्योंकि जन्म मरण कारणोंके नियम देखनेसें, तथा धर्मादिक प्रवृत्ति नाना देखनेसें. सो सर्व अनंत आत्मा सर्वगत अरु नित्य है ॥ उक्तंच ॥ अमूर्त्तिश्चेतनो भोगी, नित्यः सर्वगतोऽक्रियः ॥ अकर्त्ता निर्गुणःसूक्ष्म, आत्माकापिलदर्शनइति

सांख्यमतमें प्रमाण तीन मानते है १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शाब्द, इस मतका नाम सांख्य वा शांख्य किस वास्ते कहते हैं ? तिसका हेतु कहियें हैं. संख्या प्रकृति तत्त्व पचीस रुप तिनकों जो जाने, वा पढे, इति सांख्य. तथा जे कर तालवी शकारसें बोलियें तब शांख्य, तिनके मतमें शंख ध्वनि है ऐसी वृद्धोंकी आम्नायसें यह नाम है, तथा शंख नामक कोइ आद्य पुरुष हूआ है, "तस्यापत्यं पौत्रादिरिति गर्गादित्वादयत्रीप्रत्यये शांख्यास्तेषामिदं दर्शनं सांख्यं शांखं वा ॥ इति सांख्यमतं संक्षेपतःसंपूर्ण ॥

अथ मीमांसक मत लिखते हैं. इसका दुसरा नाम जैमिनीयाभी कहते हैं, इस मत वाले सांख्यमतकी तरें एकदंडी, त्रिदंडी होते हैं, धातु रक्त वस्त्र पहिरते हैं, मृगचर्मके आसन उपर बैठते हैं, कमंडलु रखते हैं. शिर मुंडित रखते हैं, संन्यासी प्रमुख द्विज इस मतमें होते हैं. नि

नका वेदही गुरु है, परंतु और वक्ता गुरु कोइ नहीं. सो आपणे आपकों सन्नस्तं सन्नस्तं कहते हैं, यज्ञोपवीतको प्रक्षाल करकें तीन वार जल पीते हैं, सो मीमांसक दो प्रकारके हैं. एक याज्ञिकादि हैं, ते पूर्व मीमांसक हैं, दूसरे उत्तर मीमांसावादी हैं, कुकर्मके वर्जक यजनादिक षट् कर्मके करणहार, ब्रह्मसूत्रके धारक, गृहस्थाश्रममें स्थित, शूद्रका अन्नादिक वर्जते हैं, तिनकेभी दो भेद हैं, एक भट्ट, दूसरे प्रभाकर, उसमें भट्ट छे प्रमाण मानते हैं, अरु प्रभाकर पांच प्रमाण मानते हैं, अरु जो उत्तरमीमांसक है, सो वेदांतिक है, ब्रह्माद्वैतही मानते हैं, "सर्वमेवेदं ब्रह्मेति भाषंते" तिस पर प्रमाण देते हैं, कि एकही आत्मा सर्व शरीरोमें उपलब्ध होता है ॥ श्लोक ॥ एकएव हि भूतात्मा, भूते भूते व्यवस्थितः ॥ एकधा बहुधा चैव, दृश्यते जलचंद्रवत् ॥ १ ॥ इतिवचनात् ॥ "पुरुष एवेदं सर्व यद्भूतं यच्चभाव्यमिति वचनात्" ॥ आत्माहीमें लय होना मुक्ति मानते हैं, और कोइ मुक्ति नहीं मानते, सो मीमांसक द्विजही भगवत् जिनका नाम है, सो चार प्रकारके हैं, १ कुटीचर, २ बहूदक, ३ हंस, ४ परमहंस. तिनमेंसूं १ त्रिदंडी, सशिखा, ब्रह्मसूत्री, गृहत्यागी, यजमान, परिग्रही, एकवार पुत्रके घरमें भोजन करता हैं, कुटीमें वसता है, तिनकों कुटीचर कहते हैं. २ तुल्य वेष, पूर्वोक्त विप्रके घरमें नीरस भिक्षाभोजी, विष्णुजाप पर नदीके तीरमें रहता है, तिसकों बहूदक कहते हैं, ३ ब्रह्मसूत्र शिखा करकें रहित, कषाय वस्त्र, दंडधारी, ग्राममें एक रात्रि अरु नगरमें तीन रात्रि रहता है, धूम रहित जब अग्नि हो जावे, तब ब्राह्मणके घरमें भोजन करता है, अरु तप करकें शोषित शरीर, देशोमें फिरता रहता है, तिसकूं हंस कहते हैं, हंसकूंही जब ज्ञान हो जाता है, तब चारों वर्णोके घरमें भोजन कर लेता है, अपनी इछासें दंड रखता है, ईशानदिशाके सन्मुख जाता है, जे कर शक्ति हीन हो जावे, तब अनशन ग्रहण करताहै, ४ वेदांतकध्यायी तिसकूं परमहंस कहते है, इन चारोंमेंसूं परःपरोऽधिक यह चारोंहै। केवल ब्रह्माद्वैतवाद साधनेमें व्यसनी है, इत्यादिक इस मतका स्वरूप है.

अथ पूर्वमीमांसा वादीयोंका मत विशेष करकें लिखते हैं. जैमिनी मत वाले कहते है, कि सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, वीतराग, सृष्ट्यादिकका कर्त्ता, इन

पूर्वोक्त विशेषणों करी संयुक्त कोइजी देव नहीं है, जिस देवका वचन प्रामाणिक होवे, प्रथम तो देवही वक्ता कोइ नहीं, जिसका कह्या हूआ वचन प्रमाण होवे, अनुमानं पुरुष सर्वज्ञ नहीं, मनुष्य होनेसें, रथ्या पुरुषवत्.

पूर्वपक्षः–किंकर हो कर जिसकी असुर, सुर, सेवा करते हैं, औ तीन लोकके ऐश्वर्यकें सूचक, छत्र चामरादि जिसकी विभूति है, सो सर्वज्ञ विना क्यों कर हो सक्ती है ?

उत्तरपक्षः–यह विभूति तो इंद्रजालीयाजी बना सक्ता है, क्योंकि इस बातका साक्षी जैनमतका समंतभद्र आचार्यजी है॥श्लोक॥देवागमनभोयान,चामरादिविभूतयः॥मायाविष्वपि दृश्यंते ह्यतस्त्वमसि नो महान्॥१॥

पूर्वपक्षः–जैसें अनादि सुवर्णका मल, क्षार मृत्पुटपाकादिकोंकी क्रिया विशेषसें शोध्यमान सुवर्णकों सर्वथा निर्मलता हो जाती है, ऐसें आत्माजी निरंतर ज्ञानादिकोंके अभ्याससें निर्मल होनेसें सर्वज्ञ पणेका संभव क्यों कर न होवे ? किंतु होही जावेगा.

उरपक्षः–यह कहनांजी तुमारा ठीक नहीं है, क्योंकि अभ्यास करनेसेंजी शुद्धिकी तारतम्यताही होती है, परंतु परम प्रकर्ष अवस्था नहीं होती है, क्योंकि जो पुरुष चलनेका अभ्यास करे, एतावता कूदनेका, छलांक मारनेका, ठाल मारनेका अभ्यास करेगा, वो दश हाथ कूद जावेगा, बीश हाथ कूद जावेगा, परंतु शत योजन कूदनेका अभ्यास कदापि न होवेगा, सर्व लोककूं कूदके जानेका अभ्यास कदापि न होवेगा, ऐसें आत्माजी अभ्यास द्वारा सर्वज्ञ नहीं हो सक्ती है.

पूर्वपक्षः–मनुष्यकों सर्वज्ञता मत होवो, परंतु ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वरादिकोंकों तो सर्वज्ञता होवे, क्योंकि तिनको तो जगत् ईश्वर मानता है, इस बातकों कुमारिलजी कहता है. अथापि दिव्य देह होनेसें ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, इनकों सर्वज्ञता होवे, मनुष्यकों सर्वज्ञता क्यों कर होवे ?

उत्तरपक्षः–जो राग द्वेषमें मग्न हैं, औ निग्रह अनुग्रहमें ग्रस्त है, काम सेवनमें तत्पर है, ऐसे लक्षण वाले ब्रह्मा, विष्णु, महेश्वर, क्यों कर सर्वज्ञ हो सक्ते हैं ? क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाणजी सर्वज्ञका साधक नहीं है, कारणके इंद्रियों वर्त्तमान वस्तुहीकों ग्रहण करती हैं. अरु अनुमानसेंजी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है, क्योंकि अनुमान प्रत्यक्ष पूर्व

कही प्रवृत्त हो सक्ता है. अरु आगमजी सर्वज्ञको सिद्धि करणेवाला कोइ नहीं. क्योंकि आगम सर्व विवादास्पद हैं. उपमानजी नहीं. क्योंकि दूसरा सर्वज्ञ कोइ होवे. तब उपमान बने. तैसेंही अर्थापत्तिसेंजी सर्वज्ञ सिद्ध नहीं होता है. क्योंकि अन्यथा अनुपपद्यमान ऐसा कोइ पदार्थ नहीं है. जिसके होनेसें सर्वज्ञ सिद्ध होवे. जब नावग्राहक पांच प्रमाणो सें सिद्ध न हूआ. तब सर्वज्ञ अन्नाव प्रमाणका विषय हूआ.यह अनु मानजी सर्वज्ञकी नास्ति सिद्धकर्त्ता प्रयोग नहीं है. सर्वज्ञ प्रत्यक्षादि गोचरके अतिक्रांत होनेसें शशशृंगवत् जब कोइ सर्वज्ञ देव नहीं. अरु उस सर्वज्ञ देवका कथा हूआ कोइ शास्त्र नहीं, तब अतींद्रिय अर्थका ज्ञान कैसें होवे? ऐसी मनमें आशंका करकें जैमिनी कहता है कि "तस्मात्" तिस कारणसें. "अतींद्रिय" इंद्रियोंकी विषय रहित जो आत्मा, धर्माधर्म, काल, स्वर्ग, नरक, परमाणु प्रमुख जो पदार्थ है, तिनका साक्षात् करत लामलकवत् देखने वाला कोइ नहीं. इस हेतुसें नित्य जो वेद वाक्य हैं, तिनोंहीसें यथार्थ तत्त्वका निश्चय होता है. क्योंकि वेद जो हैं, सो अपो रुषेय हैं, एतावता किसीकेजी रचे हूये नहीं. अनादि नित्य हैं, तिन वेद वचनोंसेंही अतींद्रिय पदार्थोंका ज्ञान होता है. परंतु किसी सर्वज्ञके कहे हूये आगमसें नहीं होता है, क्योंकि सर्वज्ञ कोइजी न हुआ है, न वर्त्तमा नमें है, न आगें कोइ होवेगा ॥ यदाहुस्ते ॥ अतींद्रियाणामर्थानां, साक्षा द्रष्टा न विद्यते ॥ वचनेनहि नित्येन, यः पश्यति स पश्यति ॥ १ ॥

प्रश्नः–अपौरुषेय वेदांतका अर्थ कैसें जाना जाये?

उत्तरः–अव्यवछिन्न जो हमारी परंपरा तिससें जाना जाता है, इसी वास्ते सर्वज्ञादिकोंके अन्नाव होनेसें प्रथम वेदोंहीका पाठ प्रयत्नसें करना चाहियें. वेद चार हैं, १ ऋग् २ यजुष, ३ साम, ४ आथर्व. इन चारोंका पाठ करकें तिसके पीछें धर्मकी जिज्ञासा करनी चाहियें, धर्म जो है, सो अतींद्रिय है. अरु जो धर्म है, सो कैसा है? अरु किस प्रमाणसें हम जानेंगे? एसी जो जाननेकी इछा है, तिसका नाम जिज्ञासा है. सो करणी कैसी है? वो जिज्ञासा धर्मसाधनी (धर्मसाधनेका) उपाय है, तब तिस नोदनाके निमित्त दोइ, एक जनक, दूसरा ग्राहक, इहां ग्राहक निमित्त जाननां. इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं.

प्रेरीयें श्रेय साधक द्रव्यादिकों विषे जीवोंकों, इस करकें सो नोदना वेदवचनकी करी हूइ प्रेरणा है ॥ इत्यर्थः ॥ धर्मजो है, सो नोदना करकें जानीयें है. इस वास्ते नोदना लक्षणधर्म है, धर्मको अतींद्रिय होने करकें नोदनाहीसें जानीयें है, और किसी प्रत्यक्षादिक प्रमाणोसें नहीं जाना जाता है, क्योंकि प्रत्यक्षादिक विद्यमानके उपलंजक है, अरु धर्म जो है, सो कर्त्तव्यतारूप है, अरु कर्त्तव्य जो है, सो त्रिकाल स्वजाव वाली है, तिस कर्त्तव्यताका ज्ञान नोदनाही उत्पन्न कर सक्ती है, यह मीमांसकोंका अन्युपगम है.

अथ नोदनाका व्याख्यान करिये हैं. अग्निहोत्र, सर्व जीवोंकी अहिंसा दानादिक क्रिया, इनोके करनें वास्ते जो प्रवर्त्तक प्रेरक वेदोंके वचन हैं, सोइ नोदना है, जैसे "अग्निहोत्रं जुहूयात्स्वर्गकामः" ऐसा जो प्रवर्त्तक वेदवचन है, सो नोदना जाननी. "यथा ॥ न हिंस्यात् सर्वजूतानि, तथा न वै हिंस्रो नवेत्" इन वचनों करकें प्रेर्या हूआ द्रव्य, गुण कर्मोंकर के जो हवनादिक विषे प्रवर्त्त होता है, सो धर्म है, अरु इन वेद वचनों करकें प्रेर्या हूआजी जो न प्रवर्त्ते, वा विपरीत प्रवर्त्ते, तिसकों नरकादि अनिष्ट फल होता है. शाबर जाष्यमेंजी ऐसेंही कहता है.

यह जैमनी षट् प्रमाण मानता है. १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ शब्द, ४ उपमान, ५ अर्थापत्ति, ६ अजाव, इनका विस्तार षट्दर्शन समुच्चय की टीकासें जानना ॥ इति संक्षेपतो मीमांसमतं ॥ ५ ॥

यह पांच दर्शन आस्तिक कहे जाते हैं, अरु बठा जैन दर्शन है, तिसका स्वरूप अगले परिच्छेदमें लिखा जायगा, तथा नास्तिक जो है,सो दर्शनमें नहीं. " नास्तिकं तु नदर्शनमिति राजशेखर सूरिकृत षट्दर्शन समुच्चय वचनात्" तोजी जव्य जीवोंके जाननें वास्ते कबुक स्वरूप लिखते हैं.

कपाली, जस्म लगाने वाले, योगी, ब्राह्मणादि, अंत्य जातिके लोक जिनकों लोक वाममार्गी कहते हैं, तथा कौलिक, इत्यादिक नास्तिक हैं, तिनके मतका नाम नास्तिक चार्वाक कहते हैं, वो जीव पुण्य पापादिक कुछ नहीं मानते हैं, चार जौतिक देह मानते हैं, तथा सर्व जगतही चार जौतिक मानते हैं.

अरु कोइ चार्वाकैकदेशीया आकाशकों पांचमा जूत मानते हैं, पांच

जूतात्मक जगत् है. ऐसें कहते हैं, तिनोंके मतमें जूतोंसेंतीही मद्यशक्तिवत् चैतन्य उत्पन्न होता है, पाणीके बुलबुलेंकी तरें जो शरीर है सोही जीव है. इस मत वाले मद्य मांस खाते हैं, माता, बहिन, बेटी, आदिक जो अगम्य हैं. तिनकोंजी गमन कर लेते हैं. ते नास्तिक वामी, वर्ष वर्ष विषे एक दिनमें सर्व एक जगा एकठे होते हैं. स्त्रीकों नंगी करकें उसकी योनिकी पूजा करते हैं. अरु विषय सेवनजी करते हैं, इत्यादि ऐसा बुरा काम करते हैं, जो इस पुस्तकमें लिखते मुफकों लज्जा आती है, इस वास्ते नहीं लिखा है, सो नास्तिक, कामसें अपर (दूसरा) कोइ धर्म नहीं मानते हैं, किंतु कामहीकूं धर्म मानते हैं.

इस मतकी उत्पत्ति जैनमतके शीलतरंगिणी नामक शास्त्रमें ऐसें लिखी है, सो कहते हैं. एक बृहस्पतिनामा ब्राह्मण था, दूसरा उसका नाम देवव्यासजी था. उसकी एक बहिन थी, वो उसकी बहिन बाल विधवा हो गइ थी. उसके सासरोमें ऐसा कोइ न था, जिनके आश्रयसें वो अपना जीवितव्य संपूर्ण करती, तातें निराधार हो कर, अपनें जाइके घरमें आ रही, वो अत्यंतरूप अरु यौवनवंत थी, अरु जो उसका जाइ था तिसकी जार्या मृत्युकों प्राप्त हो गइ थी. तब तो बृहस्पतिकों कामनें अत्यंत पीमा दीनी, तब उनकूं आपनी बहिनके साथ विषय सेवनकी इछा जइ, अपनी बहिनसें प्रार्थना करी कि हे जगिनी! मेरे साथ तुं संजोग कर, तब तिसकी बहिनने कहा कि हे जाइ! यह बात उजय लोक विरुद्ध है, सो में क्योंकर करुं? क्यों कि प्रथम तो में तेरी बहिन हूं, जे कर जाइके साथ विषय जोग करुं तो अवश्यमेव नरकमें जाउंगी, अरु यह बात जो जगत्में प्रसिद्ध हो जावेगी, तब तो लोक मुफकों धिक्कार देवेंगे. ऐसी बात सुन कर बृहस्पतिने अपने मनमें शोचा कि जब तक इसके मनसें पाप अरु नरकादिकोंका जय दूर न होवेगा, तब तक यह मेरे साथ कजी संजोग न करेगी? ऐसा विचार करकें, बृहस्पति सूत्र रचे, तिन सूत्रोंसें पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरकका अजाव, सिद्ध करकें अपनी बहिनकों शास्त्र सुना करकें प्रतिबोध करा. तब तो तिसकी बहिननें अपने मनमें विचार करा कि यह जो शरीर है, सातो पांच जौतिक है, अरु इस शरीरसें अतिरिक्त आत्मा नामक कोइ पदार्थ नहीं है, तब तो पुण्य, पाप, नरक, स्वर्ग, कु

ऊजी सिद्ध नहीं होता है, तो फेर में इन मूर्ख लोकोंकी लज्जा करकें अपना यौवन वृथा कालेकों खोकं? ऐसे विचार करकें अपने जाइके साथ विष यजोग करनेंमें लुब्ध हो गइ, जब लोकोंकों यह बात जान पमी, तब लोक निंदा करने लगे, तब तो बृहस्पति निर्लज्ज हो कर लोकोंकों नास्तिक मतका उपदेश करने लगा, तब तो जो अत्यंत विषयी अरु अज्ञानी जन थे, वे उसके शिष्य होते जये, कितनेक काल पीछें उनके शिष्योंने अपने मतकों वमा करनेके वास्ते कहते जये कि यह जो हमारा मत है, सो देवतावोंका गुरु जो बृहस्पति नामक आकाशमें ग्रह है, तिसने प्रवृत्त करा है, अरु बृहस्पतिसेंति अन्य कोइ दूसरा बुद्धिमान् नहीं है, इस वास्ते हमारा मत सच्चा है, इस बृहस्पतिका होना हमारे चोवीशमे तीर्थंकर श्रीमहावीरसें पहिले सिद्ध है, क्योंकि श्रीमहावीरके कथन करे हूये शास्त्रोंमें चार्वाकमतका निरूपण है. ऐसें चार्वाक मतकी उत्पत्ति है, इस मतका नाम चार्वाक, लोकायितादि है, "चर्व अदने चर्वंति जक्षयंति तत्त्वतो न मन्यंते पुण्यपापादिकं परोक्षवस्तुजातमिति चार्वाकाः ॥ मयाकश्यामाकेत्यादि सिद्ध है, मोणादि दंमकेनशब्दनिपातनं. लोका निर्विचाराः सामान्या लोकास्त द्वदाचरंति स्मेति लोकायिताः लोकायितकाइत्यपि ॥ बृहस्पतिप्रणीतमतत्त्वेन बार्हस्पत्याश्चेति" चर्व जो धातु है. सो जक्षण अर्थ में है, चर्वण (जक्षण) जो करे, तात्पर्यार्थसें जो पुण्य पापादिक परोक्ष वस्तु समूहकों न माने, सो चार्वाक, मयाक श्यामाक इत्यादि सिद्ध है, हेमव्याकारणके उणादिदंमक करकें निपातसें सिद्ध है, तथा लोक निर्विचार है, सामान्य लोकोंकी तरें जो आचरण करते जये हैं, ते लोकायिता लोकायितका ऐसेंजी है. तथा बृहस्पतिके प्ररूपणेसें इस मतका नाम बार्हस्पत्यजी कहते हैं.

अथ चार्वाकका मत लिखते हैं. नास्तिक ऐसें कहते है कि, जीव चेतना लक्षण परलोकमें जानेवाला नहीं, पांच महाजूतसें जो चेतन उत्पन्न होता है, सोजी इहांही जूतोंके नाश होनेसें नाश हो जाता है, जे कर जीव परलोकसें आया होवे, तब परलोकका स्मरण होना चाहियें, परंतु सो तो होता नहीं, इस वास्ते जीव न परलोकसें आया है, अरु न परलोकमें जाने वाला है. तथा जीव स्थानमें जो देव ऐसा पाव मानीयें, त

व सर्वज्ञादि विशेषण विशिष्ट कोइ देव नहीं. तथा मोक्षजी नहीं, धर्माध र्म नहीं. पुण्य पाप नहीं, पुण्यपापका जो फल नरक, स्वर्ग, सोजी नहीं. "तथाच तन्मतं॥ श्लोक॥ एतावानेव लोकोयं, यावानिंद्रियगोचरः॥ जद्रे वृकपदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुताः॥१॥ अस्यार्थः—इतनाही मनुष्य लोक है, जितना प्रत्यक्ष देखनेमें आता है. क्योंकि जो पदार्थ इंद्रियोंसें ग्रह्या जाता है सोइ पदार्थ है और दूसरा कोइजी पदार्थ नहीं है. यहां लोक शब्द की जगें लोकमें जो रहे हूये पदार्थ हैं, तो ग्रहण करणे. अरु तो इस लोकसें परे हैं, जीव, पुण्य, पाप, अरु तिनका फल जो स्वर्ग नरकादिक सो अप्रत्यक्ष होनेसें नहीं है. जे कर अप्रत्यक्षजी माने जावे तब तो शशशृंग वंध्यापुत्रादिजी होने चाहियें. पंचविध प्रत्यक्ष करकें यथाक्रम १ मृदु कठोरादि वस्तु २ तिक्त, कटु, कषायादि द्रव्य. ३ सुरजि दुरजिरूप गंध, ४ जू, जूधर, जुवन, जूरुह, स्तंज, कुंज, अंजोरुहादि, नर, पशु, श्वा पदादि, स्थावर, जंगम प्रमुख पदार्थोंका समूह. ५ विविध, वेणु वीणादि ककी ध्वनि. इन पांचोंके विना और कुछजी नहीं प्रतीत होता है. पांच जूतोंसें व्यतिरिक्त नरक स्वर्गके जाने वाला जीव जब प्रत्यक्ष प्रमाणसें नसिद्ध जया, तब तो जीवोंके सुखदुःखोंका कारण धर्माधर्म है, अरु तिन धर्माधर्मके उत्कृष्ट फल जोगनेकी जूमि स्वर्ग नरक है, अरु सर्वथा पुण्य पापके क्षय होनेसें मोक्ष सुख जो वर्णन करते हैं, यह सर्व पूर्वोक्त वर्णन ऐसा है, कि जैसा आकाशमें चित्राम करणां है. क्योंकि जीव नतो किसी ने स्पर्शा है. न किसीने खा कर स्वाद चखा है, न किसीने सूंघा है, न किसीने देखा है. न किसीने शब्दवत् सुना है. फेर मूढमति किसतरें जीव कों मान करकें स्वर्गादि सुखोंकी इछा करकें शिर, दाढी, मोंछ मुंनवा करकें नाना प्रकारका दुःकर तप करकें शीत, आतप सह करकें वृथाही इस शरीरकी विंमबना करकें इस मनुष्य जन्मकों खराब कर रहे हैं? यह उनकी समजकी विडंबना है॥ तदुक्तं॥ श्लोक॥ तपांसि यातनाश्चित्राः, संयमो जोग वंचना॥ अग्निहोत्रादिकं कर्म, बालक्रीडेव लक्ष्यते॥१॥ यावज्जीवेत् सुखं जीवेत्. तावद्वैषयिकं सुखं॥ जस्मीजूतस्य देहस्य. पुनरागमनं कुतः॥१॥ इत्यादि. तिस वास्ते यह सिद्ध हूआकि जो इंद्रियगोचर है, सोइ तात्विक है.

अथ जो परोक्ष प्रमाण, अनुमानागमादिकों करकें जीव, अरु पुण्य

पापादिकोंकूं व्यवस्थापन करते हैं, अरु कदाचित् स्थापन करनेसें हटते नहीं है, तिनकें प्रतिबोधने वास्ते दृष्टांत कहते हैं "जडे वृकपदं पश्येत्य त्रायं संप्रदायः" कोइक पुरुष नास्तिक मत करकें वा सत्यांतःकरण अपणी जार्याकों आस्तिक मत विषे दृढ प्रतिज्ञा वाली जान करकें अपणे शास्त्रोक युक्तियों करकें "प्रत्यहं" प्रतिबोध करता है, जब वो प्रतिबोध नहीं होती, तब उसने विचारा जो यह इस उपाय करकें प्रतिबोध होवेगी, ऐसें स्वचित्तमें चिंतन करकें रात्रिके पीछले प्रहरमें तिस स्त्रीके साथ नगरसें निकल करकें तिस आपणी जार्याकों कहता हूआ, हे वल्लजे! यह जो इस नगरके वसने वाले लोक परोक्ष पदार्थोंकों अनुमानादि प्रमाणों करकें सिद्ध करते हैं, अरु लोकमें बहुत शास्त्रोंके पढे हूये कहलाते हैं, अब तूं तिनको चातुर्य देख, ऐसें कह कर नगरके दरवाजेसें ले कर चौंक तक सूक्ष्म धूलीमें अपणे हाथों करकें जेडीयेंके पंजोंका आकार कर दीया, तस पीछे प्रातःकालमें ते जेडीयेंके पंजे देख कर बहुत लोक राज मार्गमें मिलते जये, तब तो बहुश्रुतजी तहां आ गये, सो बहुश्रुत लोकों कहने लगे कि जो लोको! जेडीयेंके पगोंकी अन्यथा अनुपपत्ति करकें निश्चयही कोइक जेडीया रात्रिमें वनसेंती इहां आया था, तब तो वो नास्तिक मती तिनकों तैसें कहते हूआंकों देख करकें निज जार्याकों कहता हूआ कि हे जडे? "वृकपदं" (जेडीयेंका पंजा) तूं देख, जिस पंजेकूं जेडीयेंका पंजा अबहुश्रुत कहते हैं, लोक रूढीमें यह बहुश्रुत कहलाते हैं, परंतु परमार्थसें महा गोठ हैं, क्योंकि ये परमार्थ तो कुछ जानते नहीं हैं, केवल देखा देखी रोला करने लग रहे हैं, परमार्थमें इनका वचन मानने योग्य नहीं है, ऐसेंही बहुत मतोंवाले धार्मिक, बक (धूर्त) दूसरोंके ठगनेमें तत्पर सो कतुक अनुमान आगमादि करकें दृढपणेसें जीवादिकी अस्ति सिद्ध करकें वृथाही जोले लोकोंको स्वर्गादि सुखोंका लोज दिखा कर जक्ष्याजक्ष्य, गम्यागम्य, हेयोपादेयादि, संकटोंमें गेरते हैं, बहुत मूर्खोंकों धार्मिक पणेका व्यामोह उत्पन्न करते हैं, इस वास्ते बुद्धिमानोंकों इनका वचन मानना न चाहियें. तब तो तिसकी जार्या अपने पतिके सवे वचन मानती जइ, तिसके पीछे तिसका पति जो अपनी जार्याकूं उपदेश देता जया सो इहां लिखते हैं.

॥ श्लोक ॥ पिब खाद च चारुलोचने, यदतीतं वरगात्रि तन्न ते॥ नहि जीरु गतं निवर्त्तते, समुदायमात्र मिदं कलेवरं॥ १॥ व्याख्याः—हे चारुलोचने ! शोजन (सुंदर) आंखवाली “ पीव ” पी, तूं पेयापेयकीव्यवस्था गेड कर मदिरापान कर. न केवल मदिराही पी, “खाद च” जक्षाजक्षकी निरपेक्षा करकें मांसादिक खा, तथा गम्यागम्यका विजाग त्याग कर जोगों कों जोग कर अपना यौवन सफल कर, जो कुछ यौवनादि अतिक्रांत, (व्यतीत) हो गया है! हे वरगात्रि ! हे प्रधानांगि ! फेर वो तुजकों न मिलेगा, अति काम राग जनावनेके वास्ते बहुत संबोधन पद कहे हैं, इस वास्ते पुनरुक्ति दोष नहीं है. किसीकी आशंका मनमें ला कर बृहस्पति मत वाला कहता हैं, कि अपनी इच्छा करके जो खान, पान, जोग, विलास करेगा, उसकूं परलोकमें कष्ट परंपरा पावणी बहुत सुलज है, औ जो सुकृत करेंगे, उनकों जवांतरमें सुख यौवनादिक पावनां सुलज है, ऐसी परकी आशंका दूर करने वास्ते बृहस्पति कहता है. नहीं हे जीरु ! परके कहने मात्र करकें नरकादि दुःखोंकी प्राप्ति, इस लोकके यौवनादिकोसें निवर्त्त होनां, एतावता इस लोकमें विषयजोग करकें यौवनका सुख तो नहीं लेना, अरु परलोकमें हमकों यौवनादिक फेर मिलेगा, ऐसे परलोकके सुखोंकी इच्छा करकें तपश्चरणादि कष्ट क्रिया करकें जो इस लोकके सुखोंकी उपेक्षा करनी है. सो महा मूढताका चिन्ह है.

अथ शुजाशुज कर्मके वश करकें इस जीवने अवश्य परलोकमेंजी स्वकर्म हेतुक सुख दुःखादि वेदनाहोवेगी,ऐसी आशंका मनमें ला करकें बृहस्पति कहता है कि “समुदायमात्रं” समुदायजूत चारोंका संयोग मात्रही यह “कलेवरं” (शरीर है.) परंतु चारों जूतोंके संयोग मात्रसें अपर दूसरा जवांतरमें जानेवाला, शुजाशुज कर्मविपाकका जोगने वाला, ऐसा जीव नामक कोइजी पदार्थ नहीं. अरु चारों जूतका जो संयोग है. सो विजलीके उद्योतकी तरें क्षणमात्रमें नष्ट हो जाता है. इस वास्ते परलोकका जय मत कर. हे हरिणाक्षि ! जैसे मन माने, ऐसा खा, पी, जोग विलास कर.

अथ प्रमेय प्रमाण दोनो कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्वी जलं तथा तेजो. वायुर्भूतचतुष्टयं ॥ आधारो जूमिरेतेषां. मानं त्वक्षजमेव हि ॥ १ ॥ अर्थः—१ पृथिवी, २ जल, ३ अग्नि, ४ वायु, यह चारजूत हैं, अरु इन

चारोंकी आधार पृथ्वी है, अरु किसी जगें ऐसा पाठ है कि "चैतन्यभू मिरेतेषां" इन चारोंको चेतन्यभूमि कहते हैं, यह चारों एकठे हो क रसें चैतन्य उत्पन्न करते हैं. तथा इन चार्वाकोंके मतमें यह चारों भूत प्रमाणकी भूमिका प्रमाणका विषय तात्त्विक है, अरु इन चार्वाकोंके मतमें, प्रमाण तो एक प्रत्यक्षही है.

अथ भूतचतुष्टयसें देहको चेतनता क्यों कर हो जाती है? ऐसी आशंका करकें कहता है ॥ श्लोक ॥ पृथ्व्यादिभूतसंहत्या, तथा देह परीणतेः ॥ मदशक्तिः सुरांगेभ्यो, यद्वत्तद्वच्चिदात्मनि ॥ १ ॥ अर्थः—"पृ थिव्यादीनि" पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, तिनकी जो "संहतिः" संयोग तिस करकें जो देहकी परिणाम, तिसतें जेसें मदिराके अंगोंसें (गुरु धातकी आदिकोंसें) उन्माद शक्ति उत्पन्न होती है, ऐसेंही इस देहमें चैतन्य शक्ति उत्पन्न होती है, परंतु देहसें अन्य जीव पदार्थ नहीं होते, और आदि शब्दसें पर्वतादि सर्व पदार्थ चार भूतोंसेंही उत्पन्न है, इस वास्ते दृष्ट सुखोंका त्याग करनां. अरु अदृष्ट सुखोंमें प्रवृत्त होनां, यह तो लोकोंकी बमी मूर्खता है, अरु जो शांतिरसमें मग्न हो कर मोक्ष सुखका वर्णन करते हैं, वेभी महा मूढ है. क्योंकि काम (मैथुन) सेव नसें अधिक न कोइ धर्म है, अरु न कोइ मोक्ष है, न कोइ सुख है ॥ इति चार्वाकमतं संक्षेपतः संपूर्णं ॥

यह जो उपर मत लिखे हैं, इनके जो उपदेशक है, वे सर्व कुगुरु हैं, क्योंकि जो इनोंके मत हैं, वे युक्तिप्रमाणसें खंडित हो जाते हैं, अरु पूर्वापर व्याहत है, पूर्वापर विरोधी है.

पूर्वपक्षः—अहो जैन! अरिहंतके कहे हूये तत्त्वका तुझको बमा राग है, इस करकें तुम अपने मतको तो निर्दोष ठहराते हो, अरु हमारे मतोंको पूर्वापर विरोधी कहते हो, परंतु हमारे मतोंमें कुछभी पूर्वापर व्याहतपणां नहीं है, क्योंकि हमारे जो मत हैं, सो निर्दोष हैं उनको जो पूर्वापर व्याहत (कलंक) देना है, सो ऐसा है कि जैसा अमृतके पुंजमें मक्खीका बिंदु गेर देनां.

उत्तरपक्षः—हे वादीयो! तुम अपने अपने मतका पक्षपात छोड कर मध्यस्थपणेको अवलंबन करकें अरु निरभिमान हो करकें सुंदर बुद्धिको

धार करके सुनो. में तुमारे मतोमें पूर्वापर व्याहत पणा दिखलाता हूं. प्रथम बौद्धमें पूर्वापर विरोध उद्भावन करते हें.

प्रथम तो बौद्ध मतमें सर्व पदार्थ क्षणभंगुर कह करके पीछेसें ऐसें कहा हे. "नाननुकृतान्वयव्यतिरेकं कारणं नाकारणं विषय इति" अस्यार्थः—ज्ञान अर्थके होते हूयांही उत्पन्न होता हे, परंतु अर्थके विना नहि होता हे. ऐसें अनुकृत अन्वयव्यतिरेक अर्थज्ञानका हे अरु कारण जिस थकी अर्थज्ञान उत्पन्न होता हे, तिस कारणहीकों विषय करता हे. इस कहनेसें अर्थकों दो क्षण स्थिति वाला कह्या ॥ तद्यथा ॥ अर्थरूप कारणसें ज्ञान कार्य उत्पन्न होता हे. अरु एकही समयमें कारण, कार्य, उपन्न नहीं होते हें. तब तो ज्ञान अपने जनक अर्थहीकों ग्रहण करता हे. "नापरं नाकारणं विषय इति वचनात्" ॥ जब ऐसें हूआ तब तो अर्थकों दो समयकी स्थिति जोरा जोरी हो गइ. अरु बौद्ध मतमें द्वय समय स्थिति वाला कोइ पदार्थ नहीं. एक तो यह पूर्वापर विरोध हे.

तथा "नाकारणं विषय इत्युक्तं" जो पदार्थ ज्ञानकी उत्पत्तिमें कारण नहीं हे, उस पदार्थकों ज्ञान विषयभी नहीं करता हे, ऐसें कह कर फेर योगी प्रत्यक्ष ज्ञानकों अतीत अनागत पदार्थोका जानने वाला कह्या हे, अरु अतीत पदार्थ तो नष्ट हो गये हे, तथा अनागत पदार्थ उत्पन्न नहीं हूये हें, इस वास्ते अतीत अनागत पदार्थ ज्ञानके कारण नहीं हो सक्के हें, तब अकारणकों योगी प्रत्यक्षका विषय कहनां, यह दूसरा पूर्वापर विरोध है.

ऐसेही साध्य साधनोंकी व्याप्ति और ग्राहक व्याप्ति ग्रहण करानें वालेकूं कारण पणेके अभावसें त्रिकालगत अर्थकों विषय कहने वालेकों क्यों नहीं पूर्वापर व्याघात होवेगा? क्योंकि कारणहीकों प्रमाणका विषय मान्या हे. इस वास्ते तीसरा पूर्वापर विरोध हे.

तथा क्षण क्षय अंगीकार करणेमें जिनका काल भिन्न भिन्न है, ऐसे जो अन्वयव्यतिरेक तिनकी प्रतिपत्ति नहीं संभव होती है, तब तो साध्य साधनोंके त्रिकाल विषय व्याप्ति ग्रहण मानने वालेकों पूर्वापर व्याहति क्यों नहीं ? यह चोथा पूर्वापर विरोध है.

तथा सर्व पदार्थोंकों क्षणक्षयी मान करकें पीछेसें बुद्धनें ऐसें कह्या

है ॥ श्लोक ॥ इतएकनवते कल्पे, शक्त्या मे पुरुषोहतः ॥ तेन कर्मविपाकेन, पादे विद्धोस्मि भिक्षवः ॥ १ ॥ इस श्लोकमें जन्मांतरविषेमें शब्द का प्रयोग क्षण क्षय विरुद्ध बोलता हूआ बुद्ध क्यों कर पूर्वापर विरोध न कहनां चाहियें ? यह पांचमा पूर्वापर विरोध है.

तथा "निरंश सर्व वस्तु है" ऐसें प्रथम कह कर फेर "हिंसा विरति दान चित्तसंवेदनं अरु स्वगतं सद्रूपचेतनत्व स्वर्गप्रापण शक्त्यादिकं एकस्यापि स्वर्गप्रापण शक्त्यादेरंशस्येति सांशतां पश्चाद्वदतः सौगतस्य कथं पूर्वापरविरुद्धं वचो न स्यात् ॥" यह छठा विरोध है.

ऐसेंही निर्विकल्पक प्रत्यक्ष प्रमाण नीलादिक वस्तुओंकों सर्व प्रकार करकें ग्रहण करता हूआभी नीलादिक अंश विषे निर्णय उत्पन्न करता है, परंतु नीलादि अर्थगत क्षणक्षय अंशविषय निर्णय नहीं उत्पन्न करता है, ऐसें सांशताकों कहता हूआं सौगतकों पूर्वापर वचन विरोध सुबोधही है. यह सातमा विरोध है.

तथा हेतुकों तीन रूप वाला मानता हैं, अरुसंशयकों दो उल्लेख वाला मानता है, अरु कहता है फेर सांश वस्तुकों नहीं मानता है, यहभी आठमा पूर्वापर विरोध है.

तथा परस्पर अनमिले हुये परमाणु निकटता संबंध वाले एकठे हो कर घटादि रूपपणे प्रतिभास होते हैं, परंतु आपसमें अंगांगीभाव रूप करकें कोइभी कार्य नहीं आरंभ करते, यह बौद्धोंका मत है, तिसमें यह दूषण है कि आपसमें परमाणुओंके अनमिलनेसें घटका एक देश जब हम हाथमें पकडेंगे तब संपूर्ण घटकों नहीं रहनां चाहियें, तथा घटके उठानेसेंभी एक देशही घटका उठना चाहियें, परंतु संपूर्ण घट नहीं उठना चाहियें, तथा जब घटकों कांठा पकडके हम खेंचेंगे तबभी घटका एक देशही हमारे पास आना चाहियें, परंतु संपूर्ण घट नहीं, अरु जलादि धारण रूप घटका अर्थ क्रियालक्षण सत्व अंगीकार करणे करकें सौगतोंनें परमाणुओंका मिलना मान्या है, अरु तिनके मतमें परमाणुओंका मिलना है नहीं, तिस वास्ते यह नवमा पूर्वापर विरोध है. इत्यादि बौद्ध मतमें अनेक पूर्वापर विरोध है.

अब बौद्धमतका खंडनभी थोडासा लिखते हैं. इन बौद्धोंका यह

मत है कि सर्व पदार्थ नैरात्म्य है, एतावता आत्मस्वरूप आपणे स्वरूप करकें सदा स्थिर रहनेवाले नहीं है, ऐसी जो भावना, तिसका नाम नैरात्म्य भावना है, यह जो नैरात्म्य भावना है, सो रागादि क्लेशोंके नाश करने वाली है, तथाहि जब नैरात्म्य भावना होवेगी, तब अपणे आप विषे तथा पुत्र, भाइ, भार्या, आदिकोंविषेभी आत्मीय अभिनिवेश नहीं होवेगा, एतावता 'यह मेरे हैं' ऐसा मोह न होवेगा, क्योंकि जो आप उपकारी है, सो आत्मीय है, अरु जो आपणा प्रतिघातक है, सो द्वेष हैं, जब आत्माही नहीं है, किंतु पूर्वापर क्षण टूटे हूयांका अनुसंधान है, पूर्व पूर्व हेतु करकें जो प्रतिबद्ध है ज्ञानक्षण, सोइही तैसें तैसें उत्पन्न होते हैं, तब कोन किसीका उपकर्त्ता अरु उपघातक है? क्योंकि क्षणोंकों क्षण मात्र रहने करकें परमार्थसें उपकार अनुपकार नहीं कर सक्ते हैं, इस वास्ते तत्त्ववेदीयोंकों अपने पुत्रादिकोंमें आत्मीय अभिनिवेश नहीं है, अरु वैरीयों विषे द्वेष नहीं है, अरु जो लोकोंकों अनात्मीय पदार्थोंमें आत्मीय अभिनिवेश है, सो अतत्त्व मूल होनेसें अनादि वासनाके परिपाकने करा है, ऐसें जाननां.

प्रश्नः—यदि परमार्थसें उपकार्युपकारक भाव नहीं, तब तो ऐसें तुम कैसें कहते हो कि भगवान् सुगत, करुणां करकें सकल जीवोंके उपकार वास्ते देशना करता हूआ? अरु क्षणिक पणाभी जे कर एकांतही है, तब तो तत्त्ववेदी एक क्षण पीछें नष्ट हो गया, अरु तत्त्ववेदी जानता था जो मैं पीछें नहीं था अरु आगेंकों मैंने होनां नहीं, तो फेर काहेकों मोक्ष वास्ते यत्न करे?

उत्तरः— जो तुमने कहा, सो हमारा अभिप्राय न जाननेसें अयुक्त है. भगवान् जो है, सो प्राचीन अवस्था विषे अवस्थित है, अरु सकल जगत्कों राग द्वेषादि दुखों करकें संकुल जानता थका कैसें यह सकल जगत्का दुःख मेरेकों दूर करणां योग्य है? ऐसी दया उत्पन्न होनेसें नैरात्म्य क्षणिकत्वादिक जानता हूआभी तीन उपकार्य जीवोंके निःक्लेश क्षण उत्पन्न करनेके वास्ते स्वप्रजा हित राजेकी तरें अपणी संतति बुद्धि विषे सकल जगत् साक्षात् करण समर्थ अपणी संततिगत विशिष्ट क्षणकी उत्पत्तिके वास्ते यत्न आरंभ करता है. क्योंकि सकल जगत् साक्षात्कार

करे विना सर्वको अक्षण विधान उपकार करणेकों अशक्य होनेसें तिस वास्ते समुत्पन्न केवल ज्ञान पूर्वस्थापन कृपाके विशेष संस्कार वशतें जग वान् कृतार्थभी है, तोभी देशना देवेमें प्रवृत्त होता है, तब तो देशना सुन करकें निर्मल बुद्धि नैरात्म्य तत्त्व विचारता हूआ जीवकों भावना प्रकर्ष विशेषसें वैराग्य उत्पन्न होता है, तिससेंती मुक्तिलाभ होता है. अरु जो आत्माकों मानता है, तिसकों मुक्तिका संभव नहीं, क्योंकि परमार्थ सें ती आत्माके होते हूयां तिस आत्मामें स्नेह वर्त्तेगा, तिस स्नेहके वश सें तिस आत्माके सुखी होनेकी तृष्णा वाला होता है, अरु तृष्णाके वशसें सुखोंके साधना विषे प्रवृत्त होता है, जब गुण उत्पन्न हूये. तब गुणोमें राग करता है, तिस रागसें यावत्काल आत्माभिनिवेश रहेगा, तावत् काल संसार है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ यः पश्यत्यात्मानं, तत्रास्याह मिति शाश्वतः स्नेहः ॥ स्नेहात्सुखेषु तृष्यति, तृष्णा दोषास्तिरस्कुरुते ॥ १ ॥ गुणदर्शिपरितृष्यन्, ममेति तत्साधनान्युपादत्ते ॥ तेनात्माभिनिवेशो, या वत्तावत्ससंसारः ॥ २ ॥ इति बौद्धमत पूर्वपक्षः ॥

अथ जैनमतकी तरफसें उत्तरपक्षः—यह सर्व कहनां तुमारा अंतःकरणमें वास करणेवाले महा मोहका मोटा विलास है, क्योंकि आत्माके अभाव हूये बंध मोक्षादिकोंका एकाधिकरणत्व नहीं होवेगा, सोइ दिखाते हैं.

हे बौद्धों! तुम आत्मा नहीं मानते हो, किंतु पूर्वापर क्षण टूटाका अनुसंधान ज्ञान क्षणाहीको मानते हो, जब ऐसें माना, तब अन्यकों बंध हूआ, अरु अन्यकों मुक्ति हुई, औ क्षुधा औरकों लगी, अरु तृप्ति औरकों हो गइ, तैसेही अनुभवता और हूआ, अरु स्मर्त्ता और हो गया, जुलाब औरने लीया, अरु राजीरोग रहित तो और हो गया, तपः क्लेश तो औरने करा, अरु स्वर्गादिकका फल औरने भोगा, औ पढनेका अभ्यास और करने लगा, अरु और कोई पढ गया, यह बात अतिप्रसंग होनेसें कोइ युक्तिसंगत नहीं है, जे कर कहोगे कि संतानकी अपेक्षा करकें बंध मोक्षादिकोंका एक अधिकरण हो सक्ता है, सोभी ठीक नहीं, क्योकि संतानभी तुमारे मत में नहीं हो सक्ता है, संतान जो है सो संतानीसें भिन्न है? वा अभिन्न है? जे कर कहोगेकि भिन्न है, तब तो फेर दो विकल्प तुमारी भेट करते हैं, सो संतान नित्य है? वा अनित्य है? जे कर कहोगेकि नित्य है, तब तो तिसकों

बंधमोक्षादिकका संजव नहीं है. क्योंकि सर्वकाल एक स्वजाव होने कर के तिसके अवस्था विचित्र नहीं हो सक्ती है. अरु तुम तो नित्य मानते नहीं हो, "सर्वं क्षणिकमिति वचनात्" अथ जे कर कहोगे कि क्षणिक है, तब तो वोही प्राचीन बंध मोक्षादि वैय्यधिकरण दूषण प्राप्त हूआ,जे कर कहोगे कि अजिन्न है, तब तो तिससें अजिन्न होनेसें तिसके स्वरूपकी तरें संतानीही हूआ, संतान नहीं जइ. जब ऐसें हूआ, तब तो तदवस्थही पूर्वला दूषण है, जेकर कहोगे कि क्षणासेंति अन्य संतान कोइ नहीं. किंतु जो कार्य कारण जाव प्रबंध करकें क्षण जाव है, सोइ संतान है, तिस वास्ते दोष कोइ नहीं है, यहजी तुमारा कहनां अयुक्त है, क्योंकि तुमारे मतमें कार्य कारण जावजी नहीं घटता है, सोइ दिखाते हैं कि प्रतीत्य समुत्पादमात्र कार्य कारण जाव है, तिससें यथाविवक्षित घट क्षणानंतर घट क्षण है, तैसें पटादि क्षणजी है, अरु जैसें घट क्षणसें पहिला अनंतर विवक्षित घटक्षण है, तैसें पटादि क्षणजी है, तब तो कैसें प्रतिनियत कार्य कारण जावका अवगम होवे?

एक औरजी दूषण है, सो यह है कि:-कारणसेंती उत्पन्न होता हूआ जो कार्य, सो सत् उत्पन्न होता है? वा असत् उत्पन्न होता है? जे कर कहोगेकि सत् उत्पन्न होता है, तवतोकार्योत्पत्ति कालमेंजीकारण सत् हूआ, अरु तब कार्य कारणकों समकालताका प्रसंगहूआ, अरु एक कालमें दो पदार्थोंका कार्य कारण जाव मान्यानहीं है,अन्यथा माता पुत्रकाव्यवहार न होवेगा, घट पटादिकोकाजी परस्पर कार्य कारण जावकाप्रसंगहोजावेगा. जे कर असत् पक्ष मानोगे, तो सोजी अयुक्त है, क्योंकि जो असत् है, सो कार्य नहीं हो सक्ता है, अन्यथा खरशृंगसेंतीजी कार्य उत्पन्न होनां चाहियें, अरु अत्यंताजाव, प्रध्वंसाजाव. दोनोंही जगे वस्तुसत्ताका संजव होनेसें इन दोनोका कोइजी विशेष न हूआ, जे कर कहोगेकि प्रध्वंसाजावमें वस्तु थी, इस करकें हेतु है, तब तो जब थी तब हेतु नहीं, अन्यदा हेतु हुआ; ऐसें तो बहुत अछी तत्त्वव्यवस्था जइ.

एक औरजी बात है, कि तद्भावे जाव ऐसे अवगममें कार्य कारण जावका अवगम है, सो जो तद्भावे जाव है. सो क्या प्रत्यक्ष करकें प्रतीत होता है? वा अनुमान करकें प्रतीत होता है? प्रत्यक्ष करकें तो

व तो पूर्वापर विरोध सहजहीमें हो गया, ऐसेंही योगीयांकाजी सर्वार्थ ग्राहक ज्ञानका दुर्धर विरोध जान लेना.

११ कार्य द्रव्यके प्रथम उत्पन्न होनेसें तिसका जो रूप है, सो पीछेसें उत्पन्न होता है, विना आश्रयके गुण क्योंकर उत्पन्न होवे ? यह कह करकें पीछेसें यह कहते हैंकि कार्य द्रव्यके विनाश हूये पीछे तिसका रूप नष्ट होता है, यह पूर्वापर विरोध है, क्योंकि जब कार्यद्रव्य नाश हो गया, तब रूप आश्रय विना पीछे क्यों कर रह सकेगा ?

१२ नैयायिक औ वैशेषिक जगत्का कर्त्ता ईश्वरको मानते हैं, यह बातभी एक महामूढताका चिन्ह है, क्योंकि जगत्का कर्त्ता ईश्वर किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं हो सक्ता है, यह जगत् कर्त्ताका खंडन दूसरे परिछेदमें अच्छी तरें विस्तार पूर्वक लिख आये हैं, तोभी भव्य जीवोंके ज्ञान वास्ते थोमासा इहांभी लिख देते हैं.

कोइक कहते हैंकि साधुवोंके उपकार वास्ते अरु दुष्टोंके संहार वास्ते ईश्वर युग युगमें अवतार लेता है, अरु सुगतादिक कितनेक यह बात कहतेहैं कि मोक्षको प्राप्त हो करकें अपने तीर्थको क्लेशमें देख कर फेर भगवान् अवतार लेता है, "यदाहु रन्ये॥ ज्ञानिनोधर्मतीर्थस्य, कर्त्तारःपरमं पदं॥ गत्वा गछंति भूयोपि, भवंतीर्थनिकारत इति ॥ १ ॥" जो फिर संसारमें अवतार लेता है, वो परमार्थसें मोक्षरूप नहीं हूआ है, क्योंकि उसके सर्व कर्म क्षय नहीं हूये है, जे कर मोहादिक कर्मक्षय हो जाते, तो वो काहेको अपने मतका तिरस्कार देखके पीमा पाता, अरु अवतार लेता, जे कर साधुवोंके उपकारार्थ अरु दुष्टोंके संहार वास्ते अवतार लेता है, तब तो असमर्थ हूआ, क्योंकि विनाही अवतारके लीयां वो यह काम नहीं कर सक्ता था, जे कर कर सक्ता था, तो फेर काहेको गर्भावासमें पडा ? इस वास्ते सर्व कर्म क्षय नहीं हुये, जे कर क्षय हो जाते तो कदापि भी अवतार न लेता॥ यदुक्तं ॥ दग्धे बीजे यथात्यंतं, प्रादुर्भवति नांकुरः ॥ कर्म्मबीजे तथा दग्धे, न रोहति भवांकुरः ॥ १ ॥ उक्तंच श्रीसिद्धसेन दिवाकर पादैरपि ॥ भवाजिगामुकानां, प्रबलमोह विजृंभितं॥ श्लोक॥ दग्धेंधनःपुनरुपैति भवं प्रमथ्य, निर्वाणमप्यनवधारितभीरुनिष्टं॥ मुक्तः स्वयं कृततनुश्च परार्थशूर, स्त्वच्छासनप्रतिहतेष्विह मोहराज्यं ॥ १ ॥ इत्यलंविस्तरेण ॥

पूर्वपक्षः—सुगतादिक ईश्वर मत होवो. परंतु सृष्टिका कर्त्ता तो महादेव ईश्वर है, सो क्यों नहीं मानते ?

उत्तरपक्षः—जगत् कर्त्ता ईश्वरकी सिद्धिमें प्रमाणका अन्नाव है, इस वास्ते नहीं मानते.

पूर्वपक्षः—जगत् कर्त्ताकी सिद्धिमें प्रमाण है. पृथिव्यादिक किसी बुद्धिवानके करे हुये हैं घटादिवत् कार्यरूप होनेसें यह हेतु असिद्ध नहीं है, पृथिव्यादिकोंको सावयव होने करिके कार्यत्वकी प्रसिद्धि होनेसें. तथाहि पृथिवी. पर्वत. वृक्षादिक सर्व सावयव होनेसें घटवत् कार्यरूप है, अरु यह हेतु विरुद्धन्नी नहीं है. निश्चित कर्तृक घटादिकों विषे कार्यत्व हेतुके देखनेसें अरु जिनोंका कर्त्ता नहीं है, उनसें व्यावृत्त होनेसें अनेकांतिकन्नी नहीं है. अरु प्रत्यक्ष आगम करके अबाधित विषय होनेसें कालात्ययापदिष्टन्नी नहीं है. इस निर्दोष हेतुसें जगत्कर्त्ता ईश्वर सिद्ध होता है.

उत्तरपक्षः—तहां प्रथम पृथिवीआदिक बुद्धिमान्के बनाये हुये हैं, इस सिद्धिके वास्ते जो तुमनें कार्यत्व हेतु कहा था, सो हेतु क्या सावयवत्व है ? वा प्राग्वत् स्वकारण सत्ता समवाय है ? वा 'कृतं' ऐसे प्रत्ययका विषयत्व है ? वा विकारित्व है ? इन चारों विकल्पोंमेंसूं कार्यत्व हेतुका कौनसा स्वरूप है ? जे कर कहोगेकि सावयवत्व स्वरूप है, तो यह सावयवपणा अवयवों विषे वर्त्तमानत्व है ? वा अवयवों करकें आरभ्यमाणत्व है ? वा प्रदेशत्व है ? वा सावयव ऐसी बुद्धिविषयत्व है ?

तहां आद्य पक्षविषे अवयव सामान्य करकें यह हेतु अनेकांतिक है, तथा अवयवों विषे वर्त्तमानन्नी निरवयव अरु अकार्य कहते हैं, तथा दूसरे पक्षमें हेतु साध्यके समान है, जैसा पृथिव्यादिकोंको कार्यत्व साध्य है, ऐसेही परमाणु आदिकोंको अवयव आरभ्यत्व पणा है, तथा तीसरे पक्षमें आकाशके साथ हेतु अनेकांतिक है, क्योंकि आकाश प्रदेश वाला तो है, परंतु कार्य नहीं है. तथा चउथे पक्षमेंन्नी आकाशके साथ हेतु व्यन्निचारी है, क्योंकि जो व्यापक होता है, सो निरवयव नहीं होता है, अरु जो निरवयव होता है, सो परमाणुवत् व्यापक नहीं होता है,

तथा प्रागसतः स्वकारण सत्तासमवाय कार्यत्वन्नी नहीं, क्योंकि तिसकों नित्य होने करकें तिसके लक्षणके न होनेसें. जे कर तिसका लक्षण

होवेगा, तब तो पृथिव्यादिकोंके कार्यत्वकोंजी नित्यताका प्रसंग होवेगा, तब बुद्धिमत्का बनाया हूवा क्या सिद्ध करोगे ? एक औरजी दूषण है कि योगीयोंके अशेष कर्मके क्षय हूआं थकां पक्षांतपातिविषे अप्रवृत्त होने करकें यह हेतुजांगा असिद्ध है, क्योंकि योगी प्रत्यक्षकों प्रध्वंसा जाव रूप होने करकें सत्ता स्वकारण समवाय इन दोनोंके अजावसें.

तथा "कृतं" ऐसे प्रत्ययका जो विषयत्व है सोजी कार्यत्व नहीं हो सक्ता है, खनन उत्सेचनादिक करकें कृतं आकासं ऐसें अकार्य आकाशमेंजी वर्त्तमान होने करकें अनेकांतिक है.

तथा विकारत्वकोंजी कार्यत्वका अनुषंग है, सत् वस्तुकों जो अन्यजाव है, सो विकारित्व है. तब तो ईश्वरकोंजी विकारित्व पणा है, अपर बुद्धिमत् हेतुकत्व प्रसंग होनेसें अनवस्था हो जावेगी, जे कर कहोगेकि ईश्वर विकारी नहीं तब तो कार्यका कारित्व पणा डुर्घट है, ऐसें कार्य स्वरूपकों विचारता थका उपपद्यमान न होनेसें "कार्यत्वात्" यह हेतु असिद्ध है, एक औरजी दूषण है कि कदे होनां कदे न होनां, लोकमें उसकों कार्यत्वकी प्रसिद्धि है. अरु यह जो जगत् है, सो तुमारे महेश्वरकी तरें सदा सत्व होनेसें कैसें कार्यत्व होवे ?

पूर्वपक्षः-तिस जगत्के अंतर्गत तृणादिकोंकों कार्यत्व होनेसें जगत्कोंजी कार्यत्व है.

उत्तरपक्षः-महेश्वर अंतर्गत बुद्धिआदिकोंकों तथा परमाणु आदिकोंके अंतर्गत पाकज रूपादिकोंकों कार्यत्व रूप होनेसें महेश्वरकों तथा परमाणु आदिकोंकों कार्यत्वका अनुषंग होवेगा, तब तो इस ईश्वरकों अपर बुद्धिमत् हेतुकत्व प्रसंगसें अनवस्था दूषण आता है, अरु अपसिद्धांतका अनुषंग है, तथा हे ईश्वरवादि ! जैसे तैसें करकें जगत्कों कार्यत्वपणा होवो, तोजी कार्यमात्र इहां हेतु तुमने माना है? वा कार्य विशेष हेतु माना है?

जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तिससेंती बुद्धिमत्कर्त्त विशेष सिद्धि नहीं. क्योंके तिसके साथ व्याप्तिकी सिद्धि नहीं,किंतु कर्त्त सामान्यकी सिद्धि होती है, जे कर ऐसेही मानोगे, तब तो हेतु अकिंचित्कर है, साध्यसें विरुद्ध साधनेसें हेतु विरुद्ध है, तिस वास्ते कार्यत्वकृत बुद्धि उत्पादक बुद्धिमत् कर्त्ताका गमक नहीं, अरु जे कर सर्व सारूप्य मात्र करकें गमकत्व

होवे, तब तो बाष्यादिकोंकोंभी अग्नि प्रतिगमकत्वका प्रसंग होवेगा, अरु महेश्वर आत्मत्व करकें सर्व जीवोंके सदृश होनेसें १ संसारिपणा, २ किंचित् ज्ञत्वपणा, ३ संपूर्ण जगत्का अकर्तृत्वपणेके अनुमापकका अनुषंग है, क्योंकि तुल्य अक्षेप समाधान होनेसें. तिस वास्ते बाष्य अरु धूम इन दोनोकों किसी अंश करकें साम्यभी है, तोभी कोइक ऐसा विशेष है, जिस करकें धूम अग्निका गमक है, परंतु बाष्यादिक नहीं तैसेही पृथिव्यादिकोंकों इतर कार्योंसेंभी कछुक विशेष अंगीकार करो.

जे कर दूसरा पक्ष मानोगे, तब हेतु असिद्ध है, कार्य विशेषके अभावसें. भावे वा जीर्ण कूप प्रासादादिकोंकी तरें अक्रिया देखने वालेकोंभी कृतबुद्धि उत्पादकका प्रसंग है, जे कर कहोगेकि समारोपसें प्रसंग नहिं होता है, सोभी दोनों जगें एक सरीखा होनेसें क्यों नहीं होता है? दोनों जगें कर्त्ताकों अतींद्रियत्वके अविशेषसें पूर्वपक्ष प्रमाणिककों है, यहां कृतबुद्धि उत्तरपक्ष कैसें तहां तिसकों कृतत्वका अवगम होवे? इस अनुमान करकें अथवा अनुमानांतर करकें आद्य पक्षमें परस्पर आश्रय दूषण है, तथाहि सिद्ध विशेषण हेतुसें इस अनुमानका उत्थान है; तिसके उत्थानके होयां हेतुके विशेषणकी सिद्धि है. अरु दूसरे पक्षमें अनुमानांतरकोंभी सविशेषण हेतुसें उत्थान होवेगा, तहांभी अनुमानांतरसें तिसकी सिद्धि. इसी तरें अनवस्था दूषण होता है, इस वास्ते कृत बुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण सिद्धि नहीं, तब तो विशेषण असिद्ध हेतु है.

अरु जो कहते हैं कि खात प्रतिपूरित पृथिवीके दृष्टांत करकें कृतकांकों आत्मविषे कृतबुद्धि उत्पादकत्वका अभाव है, सोभी असत् है, तहां आकृति भूभागादि सारूप्यकों तिसके उत्पादकके अभावसें, तिसके उनुत्पादककी उत्पत्तिसें.

अरु ऐसेंभी न कहनांकि पृथिव्यादिकोंमेंभी अकृत्रिम संस्थान सारूप्य हैं, जिस करकें आकृतिमत्व बुद्धि उत्पन्न होती है, तिसहीके न माननेसें अपसिद्धांतकी प्रसक्ति होवेगी. ऐसें कृतबुद्धि उत्पादकत्व रूप विशेषण असिद्ध होनेसें हेतु विशेषण असिद्ध है, सो सिद्ध होवो. तोभी यह हेतु घटादिकोंकी तरें शरीरादि विशिष्टकोंही बुद्धिमत् कर्त्ताका इहां प्रसाधनसें हेतुविरुद्ध है.

प्रश्नः–ऐसे दृष्टांत दार्ष्टांतिक साम्य अन्वेषणमें सर्व जगें हेतुवोंकी अनुपपत्ति होवेगी.

उत्तरः–ऐसें नहीं है धूमादि अनुमानमें महानस इतर साधारण अग्निकी प्रतिपत्तिसें, यहांनी ऐसेही बुद्धिमत् सामान्य प्रसिद्धिसें हेतु विरोध नहीं, ऐसेंनी कहनां अयुक्त है, क्योंकि दृश्य विशेष आधारकोंही तिस सामान्यकों कार्यत्व हेतुकी प्रसिद्धि है, परंतु अदृश्य विशेषाधारकों नहीं, तिसकी स्वप्नमेंनी प्रतिपत्ति नहीं है, तिस सामान्य वालेका खरशृंग आधार है, तिस वास्ते जेसे कारणसें जेसा कार्य उपलब्ध होता है, तेसाही अनुमान करने योग्य है, यथावत् धर्मात्मक अग्निसें यावत् धर्मात्मकस्य धूमकी उत्पत्ति है सुदृढ प्रमाणसें प्रतिपन्न हैं, तैसेही धूमसें तेसेंही अग्निका अनुमान है, ऐसें कहने करकें साध्य साधन दोनोंका विशेषण करकें व्याप्तिविषे ग्रहण करतां हुआ, सर्वानुमानकी उछेद प्रसक्ति है, इत्यादि जो कहनां है, सोनी खंडन हो गया.

तथा विना बीजके बोयां जो तृणादिक उत्पन्न होते हैं तिनके साथ यह कार्यत्व हेतु व्यनिचारी है, बहुतसें कार्य देखनेमें आते हैं, उनमेंसूं कितनेक तो बुद्धिमान्के करे हुये दीखते हैं, जेसें घटादिक.

अरु कितनेक उक्तसें विपरीत दिखाइ देते हैं, जैसें विना बोयां तृणादिक. जे कर कहोगेकि हम सबकों पक्षमें कर लेवेंगे तब तो "स श्यामस्तत्पुत्रत्वादितरतत्पुत्रवत्" इत्यादिनी गमक होने चाहियें, तब तो कोइनी हेतु व्यनिचारी न होवेगा. जहां जहां व्यनिचार होवेगा, तहां तहां तिसकों पक्षमें कर लेनेसें तथा यह हेतु ईश्वर बुद्धि आदिकों करकेंनी व्यनिचारी है, ईश्वर बुद्ध्यादिकोंकों कार्यत्वके होयां हूयांनी समवायि कारणसें ईश्वरादिकोंसें निन्न बुद्धिमत्पूर्वकत्वके अनावसें, जे कर यहांनी इसी तरें मानोगे तब अनवस्थादूषण होवेगा. तथा यह कार्यत्व हेतु कालात्ययापदिष्टनी है, विना बोयां उत्पन्न हुये तृणादिको विषे बुद्धिमत् कर्त्ताका अनाव प्रत्यक्ष प्रमाणसें अग्निके अनुष्णत्व साध्यविषे द्रव्यत्व हेतुवत् दोष पडता है.

प्रश्नः–अंकुर तृणादिकोंकानी अदृश्य ईश्वर कर्ता है.

उत्तरः–यहनी ठीक नहीं, तहां अदृश्य ईश्वरका होनां इसी प्रमाणसें

है ? अथवा और किसी प्रमाणसें है ? प्रथम पक्षमें चक्रक दूषण है. इस प्रमाणसें तिसका सद्भाव सिद्ध होवे. तब अदृश्य होने ईश्वरके अनुपलंभकी सिद्धि होवे. तिसकी सिद्धिके होयां कालात्ययापदिष्टका अभाव सिद्ध होवे. तिसके पीछे इस प्रमाणकी सिद्धि होवे. दूसरा पक्षभी अयुक्त है. ईश्वरके भावावेदिक प्रमाणके अभावसें होवे. तहां प्रमाणका सद्भाव तोभी १ ईश्वरके अदृश्य होनेमें क्या शरीरका न होनां कारण है ? २ वा विद्यादि प्रभाव है ? ३ वा जाति विशेष है ? प्रथम पक्षमें अशरीरी होनेसें मुक्त आत्मावत् कर्त्तापणेकी अनुपपत्ति है.

प्रश्नः—शरीरके अभाव करकेंभी ज्ञानेछा प्रयत्नाश्रयत्व करकें शरीर उत्पन्न करकें ईश्वर कर्त्ता हो सक्ता है.

उत्तरः—यहभी विना विचारहीका तुमारा कहनां है, क्योंकि शरीर संबंध करकेंही तिसकी प्रेरणा होनेसें शरीरके अभाव हूयां मुक्त आत्मवत् तिसका असंभव होनेसें अरु शरीरके अभावसें ज्ञानादि आश्रयित्वकाभी असंभव है, तिसकी उत्पत्तिमें इसकों निमित्त होनेसें अन्यथा मुक्तात्माकोंभी तिसकी उत्पत्ति होवेगी. अरु विद्यादि प्रभावको अदृश्य पणेमें हेतु हूयां कदाचित् यह दीखना चाहियें, परंतु सर्वदा नहीं. क्योंकि विद्यावान् सदा अदृश्य नहीं रहते हैं, पिशाचादिकोंकी तरें जाति विशेषभी अदृश्यमें हेतु नहीं, क्योंकि ईश्वर एक है, एकमें जाति नहीं होती है, जाति जो होती है, सो अनेक व्यक्ति निष्ट होती है. जेसेही ईश्वर दृश्य अथवा अदृश्य होवे, तोभी १ क्या सत्ता मात्र करकें ? २ वा ज्ञानवत्त्व होने करकें ? ३ वा ज्ञानेछा प्रयत्नवत्त्व करकें ? ४ वा तत्पूर्वक व्यापार करकें ? वा ऐश्वर्य करकें पृथिव्यादिकोंका कारण है ?

तहां आद्य पक्षमें कुंभकारादिकोंकोंभी सत्त्वके अविशेष होनेसें जगत्कर्तृका अनुषंग होवेगा. दूसरे पक्षमें योगीयोंकोंभी जगत् कर्त्ताकी आपत्ति होवेगी. तीसरा पक्षभी ठीक नहीं, क्योंकि अशरीरकों प्रथमही ज्ञानादि आश्रयत्वका प्रतिषेध करनेसें. चउथेकाभी संभव नहिं, क्यों कि अशरीरकों काय वचनके व्यापारवत्त्वका असंभव होनेसें. अरु ऐश्वर्यभी ज्ञातपणा है ? अथवा कर्त्तापणा है ? अथवा अरु कुछ है ? जेकर कहोगे कि ज्ञातपणा है, तब क्या ज्ञातृत्वमात्र है? अथवा सर्वज्ञातृ पणा है? आद्यपक्षमें ज्ञाताही

होवेगा, परंतु ईश्वर न होवेगा. अस्मदाद्यन्यज्ञातृयोंकी तरें. दूसरे पक्षमें सर्वज्ञ पणा इसकों होवेगा परंतु सुगतादिवत् ईश्वरपणां न होवेगा.

अथ जे कर कहोगे कि कर्तृत्वपणा है तब तो कुंजकारादिकोंकोंजी अनेक कार्य करने वालोंकों ऐश्वर्यकी प्रसक्ति होवेगी, अरु इछा प्रयत्नके विना और कोइजी वस्तु ईश्वरके ऐश्वर्यकी निबंधन नहीं है.

एक औरजी वात है, कि ईश्वरकें जगत् बनानेमें यथारुचि प्रवृत्ति है? या कर्मके वश हो करकें है? वा दया करकें है? वा क्रीमा करकें है? या निग्रहानुग्रह करने वास्ते है? वा स्वजावसें है? आद्य विकल्पमें कदाचित् और तरेंकी सृष्टि हो जावेगी, दूसरे पक्षमें ईश्वरकी स्वतंत्रताकी हानी होवेगी. तीसरे पक्षमें सर्व जगत् सुखीही करना था.

पूर्वपक्षः–ईश्वर क्या करे? जेसें जेसें जीवोंने कर्म करे हैं, तिन कर्मोके वशसें ईश्वर तेसा तेसा फुःख सुख देता है.

उत्तरपक्षः–तब तो तिसका क्या पुरुषाकार है? जब कर्महीकी अपेक्षा करकें कर्त्ता है, तब तो ईश्वरकी कल्पना करकें क्या करना है? कर्महीके बनसें सब कुछ हो जावेगा, तथा चउथे पांचमे विकल्पमें ईश्वर, रागी द्वेषी हो जावेगा, तब तो ईश्वर क्यों कर सिद्ध होवेगा? तथाहि क्रीमा करनेसें बालवत् रागवान् ईश्वर है? तथा ईश्वर अनुग्रह निग्रह करनेमें राजाकी तरें राग द्वेष वाला है?

जे कर कहोगे कि ईश्वरका स्वजावही जगत् करने (रचनेका) है, तब तो जगत् स्वजावसेंही हूआ है ऐसे मान लेवो फेर ईश्वरकी कल्पना काहेकों करते हो? इस वास्ते कार्यत्व हेतु बुद्धिमत् कर्त्ता ईश्वरकों नहीं सिद्ध करता है, इस वास्ते नैयायिक, वैशेषिक जो जगत्का कर्त्ता ईश्वरको मानते हैं, सो मूर्खताका सूचक है, विशेष करकें जगत् कर्त्ताका खंमन देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क ग्रंथ देखनां.

अरु जो नैयायिकोंने सोला पदार्थ माने हैं, सोजी बालकोंकी गेल है, क्योंकि सोला पदार्थ घटते नहीं है, सोलां पदार्थ यह है उनका नाम कहते हैं. १ प्रमाण, २ प्रमेय, ३ संशय, ४ प्रयोजन, ५ दृष्टांत, ६ सिद्धांत. ७ अवयव, ८ तर्क, ९ निर्णय, १० वाद, ११ जल्प, १२

वितंडा १३ हेत्वाभास, १४ छल, १५ जाति, १६ निग्रहस्थान, यह सोळा पदार्थ कहे हैं.

तहां हेय उपादेय प्रवृत्तिरूप करकें जिस करकें पदार्थोंकी परिछित्ति करियें हैं "तत्वमीयतेऽनेनेति प्रमाणं" सो प्रमाण, सो प्रमाण १ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ शब्द भेदसें चार प्रकारका है, "तत्रेंद्रियार्थ सन्निकर्षोत्पन्नं ज्ञानमव्यपदेश्यमव्यभिचारिव्यवसायात्मकं प्रत्यक्षं इति गौतम सूत्रं ॥" इसका यह तापर्त्य है कि इंद्रिय अरु अर्थका जो संबंध तिससेंती जो उत्पन्न हूआ व्यपदेश रहित व्यभिचार रहित निश्चयात्मक तिसकों प्रत्यक्ष प्रमाण कहते हैं, परंतु प्रत्यक्ष प्रमाणका यह लक्षण नहीं है, तथाहि जहां आत्मा अर्थ ग्रहण प्रति साक्षात् व्यापारियें, सोइ प्रत्यक्ष प्रमाण है, सो अवधि, मनःपर्यव, अरु केवल है, अरु यह जो प्रत्यक्ष नैयायिकोंने कह्या है, सो उपाधि द्वारा प्रवृत्ति होनेसें अनुमान की तरें परोक्ष है, जो उपचार प्रत्यक्ष मानें, तब तो है, परंतु तत्वचिंतामें उपचारका व्यापार नहीं होता है.

अरु अनुमान प्रमाण तीन भेद करिकें मानते हैं, १ पूर्ववत्, २ शेषवत्, ३ सामान्यतोदृष्ट. तहां कारणसें कार्यका जो अनुमान, सो पूर्ववत्, तथा कार्यसें कारणका जो अनुमान, सो शेषवत् तथा एक आंबका वृक्ष फूला देख कर आंब, जगत्में फुले हैं, ऐसें जाननां; अथवा देवदत्तादिकोंमें गति पूर्वक स्थानसें स्थानांतरकी प्राप्ति देख कर सूर्यमेंभी गतिका अनुमान करनां इसका नाम सामान्यतो दृष्ट है, तहांभी अन्यथानुपपत्तिही गमक है, न तु कारणादिक. क्योंकि अन्यथानुपपत्तिकें विना कारणको कार्य प्रति व्यभिचार होनेसें. अरु जहां अन्यथानुपपत्ति है, तहां कार्य कारणादिकों के विनाभी गमकभाव देखीयें है, सोइ दिखाते हैं. कृत्तिकाके देखनेसें रोहिणीका उदय होवेगा ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अन्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ नान्यथानुपपन्नत्वं, यत्र तत्र त्रयेण किं ॥ १ ॥ तथा एक औरभी बात है कि जब प्रत्यक्ष प्रमाणही नैयायिकका कथा प्रमाण न हूआ तब प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान जो है सो क्योंकर प्रमाण होवे? तथा "प्रसिद्ध साधर्म्यात्" अर्थात् प्रसिद्ध साधर्म्यसें जो साध्यका साधन है, सो उपमान है, जैसा गौ है तैसा रोज है, यहांभी संज्ञा संज्ञी

संबंधकी प्रतिपत्ति उपमानका अर्थ हैं, इहांनी अन्यथानुपपत्तिके सिद्ध होनेसें उपमाननी अनुमानके अंतरजावही है, परंतु पृथग् प्रमाण नहीं, जे कर कहोगे कि इहां अन्यथानुपपत्ति नहीं है, तब तो व्यनिचारी होनेसें उपमान प्रमाणही नहीं है, शाब्दनी सर्व प्रमाण नहीं है, किंतु जो आप्त प्रणीत आगम है, सोइ प्रमाण है, अरु अर्हंत विना दूसरा कोइ आप्त नहीं. इस बातका निर्णय देखनां होवे, तदा सम्मतितर्क, नंदीसिद्धांत, आप्तमीमांसादि शास्त्र देख लेने. तथा एक औरनी बात है, कि यह चारों प्रमाण आत्माका ज्ञान है, अरु ज्ञान वस्तुके गुणोंकों पृथग् पदार्थ मानीयें, तब तो रूपरसादिकोंनी पृथग् पदार्थ माननां चाहियें. जे कर कहोगे कि प्रमेयके ग्रहणे करकें, औ इंड्रियार्थ होने करकें तेनी ग्रहण कीये जाते हैं, यहनी तुमारां कहनां युक्त नहीं है, क्योंकि इव्यसें पृथग् गुणोंका अनाव है, इव्यके ग्रहण करनेसें गुणोंकानी ग्रहण सिद्ध है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ माननां ठीक नहीं,

२ तथा प्रमेयका नेद, १ आत्मा, २ शरीर, ३ इंड्रिय, ४ अर्थ, ५ बुद्धि ६ मन, ७ प्रवृत्ति, ८ दोष ९ प्रेत्यनाव, १० फल, ११ दुःख, १२ अपवर्ग. तहां १ आत्मा सर्वका देखने वाला अरु नोक्ता है, अरु इछा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान, इन करकें अनुमेय है, सो तो हमने जीवतत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु २ शरीर जो है, सो आत्माका नोगायतन है, इंड्रिय नोगोंके साधन हैं, अरु ३-४ इंड्रियार्थ नोग्य हैं, येनी शरीरादिक जीवाजीवके ग्रहण करकें हमने ग्रहण करे हैं, अरु ५ बुद्धि जो है, सो उपयोग रूप ज्ञान विशेष है, सो बुद्धि जीवके ग्रहणहीमें आ गइ, एतावता जीव तत्त्व मेंही ग्रहण हो गइ, अरु ६ सर्व विषय अंतःकरण है, युगपत् ज्ञानका न होनां यह मनका लिंग है, तहां इव्य मन तो पौजलिक है, सो अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु नावमन जो है सो ज्ञानरूप आत्माका गुण हैं, सो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीया है, अरु ७ आत्माकी इछाका नाम प्रवृत्ति है, सो सुख दुःखोंके होनेमें कारण है, सो ज्ञानरूप होणेसें जीवतत्त्वमें ग्रहण करी है, ८ आत्माके जो अध्यवसाय राग, द्वेष, मोहादि दोष हैं, यह दोषनी जीवके अनिप्राय रूप होनेसें जीवतत्त्व मेंही ग्रहण कीया है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ नहीं. ९ प्रेत्यनाव, पर

लोकका सद्भाव होनां सोजी जीवाजीवके विना और कुछ नहीं है, तथा १० फल, जो सुख दुःखका जोगनां है, सोजी जीव गुणोंके अंतर्जाव है, इस वास्ते पृथग् पदार्थ कहनां ठीक नहीं, तथा ११ दुःख यहजी फलसें न्यारा नहीं, अरु १२ जन्म मरण प्रवंध उछेदरूप करकें सर्व दुःखोंकों दूर करणां ऐसा मोक्षका लक्षण है, सो हमने नवतत्त्वमें मान्याही है.

३ तथा यह क्या है? ऐसा अनिश्चयरूप प्रत्ययको संशय कहते हैं, सोजी निर्णय ज्ञानवत् आत्माहीका गुण है.

४ तथा जिस करकें प्रयुक्त हूआ होयां प्रवर्त्ते है, तिसका नाम प्रयोजन है, सोजी इछा विशेप होनेसें आत्माका गुण है.

५ तथा अविप्रतिपत्ति विपयमें प्राप्त है, अर्थ सो दृष्टांत है, सोजी जीवाजीवपदार्थोंसें न्यारा नहीं है, इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं है. क्यों कि अवयवग्रहणेसेंजी आगें इसका ग्रहण हो जावेगा.

६ तथा सिद्धांत चार प्रकारका है, १ सर्वतंत्राविरुद्धः सर्व शास्त्रोमें अविरुद्ध जैसें स्पर्शनादि इंद्रिय है, अरु स्पर्शादि इंद्रियार्थ है, तथा प्रमाणों करकें प्रमेयका ग्रहण होता है, २ समानतंत्रसिद्धः, परतंत्रासिद्धः, प्रतितंत्रासिद्धांतः, जैसें सांख्य मत वालोके असत् आत्म लाजको प्राप्त नहीं होता है, अरु सत्का सर्वथा विनाश नहीं है, तथा ३ जिसकी सिद्धिके हूयां औरजी अर्थ अनुपंग करकें सिद्ध हो जावे, सो अधिकरणसिद्धांत है. तथा ४ "अपरीक्षितार्थाभ्युपगमत्वात्तद्विशेपपरीक्षणमभ्युपगमसिद्धांतः" जैसें किसीने कहा शब्द क्या वस्तु है? कोइक कहता है शब्द द्रव्य है, सो शब्द नित्य है? वा अनित्य है? इत्यादि विचार यह चार प्रकारका सिद्धांत ज्ञान विशेपसें अतिरिक्त नहीं है; अरु ज्ञानविशेप आत्माका गुण है गुणीके ग्रहणेसें ग्रहण कीया है. इस वास्ते पृथक् पदार्थ नहीं,

७ अथावयवाः प्रतिज्ञा, हेतु, उदाहरण, उपनय, निगमन, यह पांचो अवयवकों जे कर शब्दमात्र मानीयें, तव तो पुफ्गल रूप होनेसें अजीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं. जे कर ज्ञानरूप मानीयें, तव तो जीव तत्त्वमें ग्रहण कीये हैं, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कहनां ठीक नहीं, जे

कर ज्ञान विशेषकों पृथक् पदार्थ मानीयें, तब तो पदार्थ बहुत हो जावेंगे, क्योंकि ज्ञानविशेष अनेक प्रकारके हे.

८ संशयसें उपरि जवितव्यता प्रत्ययरूप सदर्थपर्यालोचनात्मक तिसकों तर्क कहते हें, जैसें कि यह स्थाणु अथवा पुरुष जरुर होवेगा, यहजी ज्ञान विशेषही हे, ज्ञानविशेष जो हे, सो ज्ञातासें अजिन्न हे, इस वास्ते पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

९ संशय अरु तर्कसेंती उत्तर काल जावी निश्चयात्मक ऐसा जो ज्ञान, तिसका नाम निर्णय हे, यहजी ज्ञानविशेष हे, अरु निश्चयरूप होणेसें प्रत्यक्षादि प्रमाणोंके अंतर्जाव होनेसें पृथक् पदार्थ कल्पना ठीक नहीं.

१०–११–१२ तथा वाद,जल्प,वितंका,तहां प्रमाण तर्क साधन उपालंज सिद्धांत अविरुद्ध पंचावयव करकें संयुक्त पक्ष प्रतिपक्षका जो ग्रहण करणां, तिसका नाम वाद हे. सो वादतत्त्व ज्ञानके वास्ते शिष्य अरु आचार्यका होता हे, अरु सोइ वाद जिसकों जीतना होवे, तिसके साथ छल, जाति, निग्रह स्थान करकें साधनोपलंज, सो जल्प हे, तथा सो वादही प्रतिपक्ष स्थापना करकेंही वितंडा हे, यह वाद, जल्प, वितंका, इन तीनोका जेद ही नहीं हो सक्ता हे, क्योंकि तत्त्वचिंताविषे तत्त्वके निर्णयार्थ वाद करनां चाहियें, परंतु छल जाति आदिक करकें तत्त्वका निश्चय नहीं होता हे, क्योंकि छलादिक जो हें, सो परके वंचने वास्ते करियें हें, तिनसें तत्त्व निर्णयकी प्राप्ति नहीं होती हे, जे कर इनका जेदजी मानोगे, तोजी ये पदार्थ नहीं हो सक्ते हें, क्योंकि जो परमार्थसें वस्तु हे, सोइ पदार्थ हे. अरु वाद जो हे, सो पुरुषकी इछाके अधीन हे, नियतरूप नहीं हे. इस वास्ते पदार्थ नहीं, तथा एक औरजी बात हे, कि कुकम, लाव, मींढे, इनके वादमेंजी पक्ष प्रतिपक्ष ग्रहण करते हें, तिनोंकोंजी तत्त्वज्ञानकी प्राप्ति होनी चाहियें, परंतु यह तुम नहीं मानते हो, इस वास्ते वाद पदार्थ नहीं हे.

१३ तथा १ असिद्ध, २ अनेकांतिक, ३ विरुद्ध, यह तीनों हेत्वाजास हें. हेतु तो नहीं, परंतु हेतुकी तरें जासन होते हें, इस वास्ते हेत्वाजास कहते हें. जब सम्यक् हेतुवोंकीही तत्त्वव्यवस्थिति नहीं, तो हेत्वाजासोंका तो क्याही कहनां हे ? क्योंकि जो नियत स्वरूप करकें रहे, सो वस्तु

है; अरु हेतु तो किसी साध्यवस्तुमें हेतु है; दूसरे साध्यमें अहेतु है, इस वास्ते नियतस्वरूप वाला नहीं.

१४-१५-१६ तथा छल, जाति, निग्रहस्थान, यह तीनो पदार्थ नहीं. क्योंकि यह तीनोही वास्तवमें कपटरूप हैं, जिनोंने इनकों तत्त्व करकें कथन करे हैं, उनके ज्ञान, वैराग्यका क्या कहनां है? इस संसारमें जो चोरी, ठगी, हथफेरी प्रमुख सिखावे, तिसकोंभी तत्त्वज्ञानका उपदेशक माननां चाहियें? यह नैयायिकमतके सोला पदार्थोंका खंमन कीया, जे कर विशेष करकें देखनां होवे, तो न्यायकुमुदचंद्र देख लेनां. यह खंडन सूत्रकृतांग सिद्धांतसें लिखा है, जे कर विशेष देखनां होवे, तब बारहवा अध्ययन देख लेनां ॥ इति नैयायिक दर्शन खंडनं संपूर्णम् ॥

अथ वैशेषिक मत खंडन लिखते हैं. वैशेषिकोंके कहे हूये तत्त्वभी तत्त्व नहीं है, सोइ दीखाते हैं. १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय, इनोंने यह छ तत्त्व माना है. तहां १ पृथिवी, २ अप्, ३ तेज, ४ वायु, ५ आकाश, ६ काल, ७ दिक्, ८ आत्मा, ९ मन, यह नव द्रव्य हैं. तिनमें पृथिवी, अप्, तेज, अरु वायु, इन चारोंकों भिन्न भिन्न द्रव्य माननेसें ठीक नहीं. क्योंकि परमाणु जो हैं, सो प्रयोग विश्रसा करकें पृथिवी आदिकोंके रूपपणे परिणमतेभी हैं, तोभी अपणे द्रव्य पणेकों नहीं त्यागते है, अरु अति प्रसंग होनेसें अवस्था भेद करकें द्रव्यका भेद माननां युक्त नहीं हैं. अरु आकाश, तथा कालकों तो हमनेभी द्रव्य माना है, अरु दिशा जो है, सो आकाशका अवयवभूत है; इस वास्ते पृथग् द्रव्य नहीं. अरु आत्मा शरीर मात्र व्यापी उपयोग लक्षण तिसकों हमभी द्रव्य मानते हैं, अरु द्रव्य मन जो है, सो पुद्गलद्रव्यकें अंतर्भाव है, तथा भावमन जो है, सो जीवका गुण होनेसें आत्माके अंतर्भाव है, यद्यपि वैशेषिक कहते हैं कि जैसें पृथिवीत्वके योगसें पृथिवी है, यहभी उनका कहनां स्वप्रक्रिया मात्र है, क्योंकि पृथिवीसें अन्य दूसरा कोइ पृथिवीपणा नहीं है, जिसके योगसें पृथिवी होवे, अपि तु सर्वही जो कुछ है, सो सामान्य विशेषात्मक है, नरसिंहाकारवत् उभयस्वभाव है.

तथा चोक्तं ॥ श्लोक ॥ नान्वयः सहि भेदत्वा न्नभेदोन्वयवृत्तितः ॥ मृ

भेद द्रव्यसंसर्ग, वृत्तिजात्यंतरं घटः ॥ १ ॥ इसका भावार्थः–घट जो है तिसमें मृत्तिकाका अन्वय नहीं है, पृथु बुध्न उदराकारादिकों करके इस हेतुसें भेद है, अरु अन्वयवर्त्ति होनेसें घटका मृत्तिकासें एकांत भेदभी नहीं है, एतावता घट मृत्तिका रूपही है, अन्वय व्यतिरेक दोनोके मिलनेसें घमा जो है, सो जात्यंतर रूप है, एतावता मृत्तिकासें कथंचित् भेदाभेद रूप है ॥ तथा ॥ श्लोक ॥ न नरः सिंहरूपत्वा, न्नसिंहो नररूपतः ॥ शब्दविद्ज्ञानकार्याणां, भेदो जात्यंतरं हि सः ॥२॥ भावार्थः–सिंहरूप होनेसें नर नहीं है, अरु नररूप होनेसें सिंहभी नहीं है, तो क्या है, १ शब्द,२ विज्ञान,३ कार्य,इनके भेद होनेसें नरसिंह जो है सो तीसरी जाति है.

२ अथ रूप, रस, गंध, स्पर्श, रूपी द्रव्यमें इनकी प्रवृत्ति है. अरु विशेष गुण है, तथा १ संख्या, २ परिमाण, ३ पृथक्त्व, ४ संयोग, ५ विभाग, ६ परत्व, ७ अपरत्व, ये सामान्य गुण हैं, इनकी सर्व द्रव्यमें वृत्ति है. तथा १ बुद्धि, २ सुख, ३ दुःख, ४ इछा, ५ द्वेष, ६ प्रयत्न, ७ धर्म, ८ अधर्म, ९ संस्कार, ये आत्माके गुण हैं. तथा गुरुत्व, पृथिवी पाणीमें है, द्रव्यत्व पृथिवी, जल, अरु अग्निमें है, स्नेह जलमेंही है, वेग नाम संस्कार ये मूर्त्त द्रव्योंमें हैं, अरु शब्द आकाशका गुण है, तिनमें संख्यादिक सामान्य गुण रूपादिवत् द्रव्यस्वभाव होने करकें, अरु परोपाधिसें गुणही नहीं है, क्योंकि जब गुण, द्रव्यसें पृथग् हो जावेंगे, तब द्रव्यके स्वरूपकी हानी हो जावेगी, "गुणपर्यायवद्द्रव्यं" इस कहने करकें गुण जो है, सो द्रव्यसें न्यारे नहीं हैं, द्रव्यके ग्रहणहीसें गुणका ग्रहणां न्याय है, परंतु पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है, अरु शब्द जो है, सो आकाशका गुण नहीं है, क्योंकि यह तो पौद्गलिक है, अरु आकाश तो अमूर्त्त है, अरु शेष जो वैशेषिकने कहा है सो प्रक्रियामात्र है, साधन दूषणोंका अंग नहीं हैं.

३ अरु कर्मभी गुणवत् पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है.

४ अथ सामान्य दो प्रकारके है, एक पर, दूसरा अपर. तिनमें पर सामान्य महासत्ता नाम है, द्रव्यादि तीन पदार्थोंमें व्यापी है, अरु जो अपर है, सो द्रव्यत्व गुणत्व कर्मत्वादिक है, तिनमें महासत्ताकों पृथक् पदार्थ माननां अयुक्त है. क्योंकि सत्तामें जो सत् यह प्रत्यय है, सो और

किसी सत्ताके योगसें हैं? वा स्वरूप करकें है? जे कर कहोगे कि और सत्ताके योगसें है, तव तो तिस सत्तामें सत् प्रत्यय, और सत्ताके योगसें होनां चाहियें? ऐसें करतां अनवस्था दूषण आता है. अरु जे कर कहोगेकि स्वरूप करकें सत् है, तव तो द्रव्यादिकभी स्वरूप करकें सत् हैं, तव तो अजाके गलेके स्तनोंकी तरे निःफल सत्ताके कल्पनेसें क्या प्रयोजन है. एक औरभी वात है कि द्रव्यादिक जो हैं, सो सत्ताके योग होंनेसें सत् कहे जाते हैं? अथवा सत्ताके संवंध विनाही सत् स्वरूप हैं? जे कर कहोगेकि स्वतः ही सत् स्वरूप हैं, तव तो सत्ताकी कल्पना करनी व्यर्थ है. जे कर कहोगे कि सत्ताके योगसें सत् है, तव तो शशविषाणभी सत्ताके योगसें सत् होंनां चाहियें ॥ तथा चोक्तं ॥ श्लोक ॥ स्वतोऽर्थाः संतु सत्तावत्सत्तया किं सदात्मनां ॥ असदात्मसु नैपास्या, त्सर्वथा तिप्रसंगतः ॥ १ ॥ इत्यादि येही दूषण तुल्य योग क्षेम होनेसें अपर सामान्यमेंभी जोम लेनें. तथा हमभी सामान्य विशेष रूप होनेसें वस्तुकों कथंचित् सामान्यरूप मानतेही हैं, इस वास्ते द्रव्यके ग्रहण करणेसें सामान्यकाभी ग्रहण हो गया, इस हेतुसें सामान्य जो है, सो कुछ द्रव्यसें पृथक् पदार्थ नहीं.

५ अथ विशेष जो है, सो अत्यंत व्यावृत्ति वुद्धिके हेतु होने करकें वैशेषिकोंनें माने हैं. तहां यह विचार करते हैं कि तिन विशेषोंनें जो विशेष वुद्धि है, सो अपर विशेषों करके है? वा स्वतःही स्वरूप करकें है? अपर विशेष हेतुक तो नहीं है, अनवस्था अरु विशेषमें विशेषका अंगीकार नहीं है, जे कर कहोगेकि स्वतःही विशेष वुद्धिके हेतु हैं, तव तो द्रव्यादिकभी स्वतःही विशेष वुद्धिके हेतु है, तो फेर विशेषोंकों द्रव्यसें अतिरिक्त पदार्थ कल्पने व्यर्थ हैं. अरु द्रव्योंसें अव्यतिरिक्त विशेषोंकों सर्व वस्तुओंकों सामान्य विशेषात्मक होनेसें हमभी मानते हैं.

६ अरु समवाय जो है, सो अयुत सिद्ध आधार आधेय भूतोंका जो इह प्रत्ययका हेतु है. सो समवाय कहते हैं, अरु समवाय जो है, सो नित्य अरु एक है, ऐसें वैशेषिक मानते हैं. तिस समवायके नित्य होनेसें समवायीभी नित्य होने चाहियें. जे कर समवायी अनित्य हैं, तो समवायभी अनित्य होना चाहियें? क्योंकि समवायका आधार समवायी हैं; इस

वास्ते. तथा समवायके एक होनेसें समवायीजी एकही होने चाहियें, अथवा समवायीयोंके अनेक होनेसें समवायजी अनेक रूप होना चाहियें, तथा यह जो समवाय पदार्थोंका समवायी संबंध करता है, सो समवाय उन पदार्थोंके साथ अपणा संबंध अपर समवायके योगसें करता है ? किंवा आपही अपणा संबंध करता है ? जे कर कहोगे कि अपर समवायसें करता है, तब तो अनवस्थादूषण है. अरु समवायजी दूसरा है नहीं, जे कर कहोगे कि आपही आपणा संबंध करता है, तब तो गुण क्रियादिकजी द्रव्यसें स्वरूप करकें तथा अविष्वंगजाव संबंध करकें संबंधी है, तब तो समवायजी कल्पना व्यर्थही है.

ऐसें वैशेषिक मतमेंजी सम्यक् पदार्थोंका कथन आप्तोक्त नहीं, तथा नैयायिक वैशेषिक मतमें जो मोक्ष मानी है, सोजी प्रेक्षावानोंकों मानने योग्य नहीं है, क्योंकि जब आत्मा ज्ञानसें रहित होवे, एतावता जमरूप हो जावे, तब आत्माको मोक्ष मानते हैं, ऐसी मोक्षकों कौन बुद्धिमान् उपादेय मानता है ? क्योंकि ऐसा कौन बुद्धिमान् है, जो सर्व सुख और ज्ञानसें रहित पाषाण तुल्य आपणी आत्माकों करना चाहे? इसी वास्तेकि सीने वैशेषिकोंका उपहास्यजी करा हैं, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ वरं वृंदावने रम्ये, क्रोष्टृत्वमजिवांछति ॥ नतु वैशेषिकीं मुक्तिं, गौतमोगंतुमिछति ॥ १ ॥ अस्यार्थः—स्वर्गके जो सुख हैं, सो सोपाधिक, सावधिक, परिमितआनंद रूप हैं, अरु मोक्ष जो है, सो नैरुपाधिक, नैरवधिक, अपरमितानंद ज्ञानसुख स्वरूप, विचक्षण पुरुष कहते हैं, जब मोक्ष होना पाषाणके तुल्य है, तब तो ऐसी मोक्षसें कुछ प्रयोजन नहीं. इस्सेंतो संसारही अछा है कि जिस संसारमें दुःख करकें कलुषित सुख जोगनेमें आता है, जरा विचार तो करो, कि थोडे सुखका जोगनां अछा है ? वा सर्व सुखों का उछेद अछा है ? इत्यादि विशेष चर्चा स्याद्वादमंजरीकी टीकासें जाननी. इस वास्ते नैयायिक मत, अरु वैशेषिक मत उपादेय नहीं है ॥ इति ॥

अथ सांख्य मतका खंडन लिखते हैं. सांख्य मतका स्वरूप तो उपर लिखा है, सो जान लेनां, सांख्यका मत ठीक नहीं हैं, क्योंकि परस्पर विरोधी सत्त्व, रजो, तम, गुणोंका प्रकृति रूपोंका गुणीके विना एकत्र अवस्थान अर्थात् रहणां युक्त नहीं है, जैसें कृष्ण श्वेतादि गुण गुणी विना एकत्र नहीं रह

सक्के हैं, तथा महदादि विकारके होनेमें प्रकृतिमें विषमता उत्पन्न करनेमें कोइभी कारण नहीं है, क्योंकि प्रकृतिके विना और वस्तु, सांख्य कोइ मानते नहीं हैं, अरु आत्माकों अकर्त्ता अकिंचित् कर मानते हैं, जे कर स्वभावसें वैषम्य मानेंगे तब निर्हेतुकताकि आपत्ति होवेगी, क्योंकि जो कार्य कभी होवे, अरु कभी न होवे, वो हेतुके विना नहीं हो सक्ता है, अरु जो खरशृंगादि नित्य असत् हैं, तथा आकाशादिनित्य सत् हैं, सो हेतुसें नहीं होते हैं ॥ उक्तंच ॥ श्लोक ॥ नित्यसत्त्वमसत्त्वं वा, हेतोरन्यानपेक्षणात् ॥ अपेक्षातो हि भावानां, कदाचित्त्वसंभवः ॥ १ ॥

तथा स्वभाव प्रकृतिसें भिन्न है? वा अभिन्न है? भिन्नतो नहीं. क्योंकि प्रकृति विना सांख्योंने अपर कोइ वस्तु मानी नहीं है, जे कर कहोगे कि अभिन्न है, तब तो प्रकृति है "नतुस्वभाव" (स्वभाव नहीं है.)

तथा एक औरभी बात है कि महत् अरु अहंकार ज्ञानसें भिन्न हम नहीं देखते हैं, सोइ दिखावते हैं, कि बुद्धि जो है सो अध्यवसाय मात्र है. अरु अहंकार जो है सो अहं सुखी, अहं दुःखी, ऐसें स्वरूप वाला है, इन दोनोकों चिद्रूप होनेसें आत्माका गुणत्व पणा है, परंतु जडरूप प्रकृतिका विकार नहीं.

तथा यह जो तन्मात्रोंसें भूतोंकी उत्पत्ति मानते हैं, कि जैसें १ गंध तन्मात्रात् पृथिवी, २ रस तन्मात्रासें जल, ३ रूप तन्मात्रासें अग्नि, ४ स्पर्श तन्मात्रासें वायु, ५ शब्दतन्मात्रासें आकाश, यहभी मानना युक्ति नहीं है. जे कर बाह्यभूतकी अपेक्षा करके कहते हो सो अयुक्त है, इन बाह्य पांच भूतोंके सदाही होनेसें उत्पत्ति नहीं "न कदाचिदनीदृशं जगत् इति वचनात्" अर्थात् यह जगत् प्रवाह करके अनादि कालसें ऐसाही चला आता है.

जे कर कहोगेकि प्रति शरीरकी अपेक्षा हम कहते हैं, तिनमेंभी त्वचा. हाड. कठीन लक्षण पृथिवी है. श्लेष्म रुधिर द्रव लक्षण आप (जल) है. पंक्ति लक्षण अग्नि है. प्राणापान लक्षण वायु है. शुषिर अर्थात् पोलाण लक्षण आकाश है. यहभी कहना ठीक नहीं है. क्योंकि तिनमेंभी कितने शरीरोंकी उत्पत्ति पिताका शुक्र. अरु माताके रुधिरसें होती है. तहां तन्मात्राओंकी गंधभी नहीं है. अरु अंडज जन्तुओं [illegible]

कल्पनेमें अति प्रसंग दूषण है, अरु अंमज, उद्भिज्ज, अंकुरादिकोंकीजी उत्पत्ति अपरही वस्तुसें होती दीख पडती है, इस वास्ते महदहंकारादिकोंकी उत्पत्ति जो सांख्योंनें अपनी प्रक्रिया करकें मानी है, सो युक्ति रहित मानी है, केवल अपने मतके रागसेंही यह माननां है. अरु आत्माकों अकर्त्ता माने हैं, तब तो कृतनाश अकृताभ्यागम दूषण है, अरु बंध मोक्षका अजाव है, अरु निर्गुण होनेसें आत्मा ज्ञानशून्य हो जावेगी, इस वास्ते यह सर्व पूर्वोक्त बालप्रलापमात्र है.

अथ सांख्यमतकी मोक्ष विचारियें हैं, "प्रकृतिपुरुषांतरपरिज्ञानात् मुक्तिः" अर्थात् प्रकृति पुरुषसें अन्य है, ऐसा जब ज्ञान होता है, तब मुक्ति होती है. सोइ दिखाते हैं ॥ श्लोक ॥ शुद्धचैतन्यरूपोयं, पुरुषः पुरुषार्थतः ॥ प्रकृत्यंतरमज्ञात्वा, मोहात्संसारमाश्रितः ॥ १ ॥ जावार्थः- पुरुष जो है, सो परमार्थसें शुद्ध चैतन्यरूप है, अपणें आपकों प्रकृतिसें एकमेक समझता है, इस मोहसें संसारकों आश्रित हो रहा है, तिस हेतुसें प्रकृतिसुखादि स्वजावसें जहां लगि विवेक करकें न ग्रहण करेगा तहां लगि मुक्ति नहीं. अरु केवल ज्ञानके उदय होनेसें मुक्ति है, यहजी असत् है, क्योंकि आत्मा एकांत नित्य है, अरु सुखादिक जो हैं, सो उत्पाद व्यय स्वजाव वाले हैं, तब तो विरुद्ध धर्म संसर्गसें आत्मासेंती प्रकृतिका जेद प्रतीतही है, तो फेर मुक्ति क्यों नहीं ?

अथ यही तो संसारी विचार नहीं करता है, इस वास्ते मुक्ति नहीं. जे कर ऐसें कहोगे तब तो तुमारे कहनेसें कदापि मुक्ति नहीं होवेगी, ऐसा विवेकाध्यवसाय संसारीकों कदापि नहीं हो सक्ता है, सोइ दिखाते हैं, जहां लग संसारी है, तहां लग विवेक परिजावना करकें संसारीपणा दूर नहीं होता है, इस वास्ते विवेकाध्यवसायके अजावसें कदापि संसारसें बूटनां नहीं है.

एक औरजी बात है, कि इस सृष्टिके पहिला केवल आत्मा है, ऐसें तुम मानते हो, तब फेर आत्माकों संसार कहांसें लिपट गया ? जे कर कहोगेकि निर्मल आत्माको संसार लिपट जाता है, तब तो मोक्ष हूआ पीछें फेरजी संसार लिपट जायगा, तब तो मोक्षजी क्या हूइ, एक विमंबना खमी हो गई.

पूर्वपक्षः—सृष्टिसें पहिलां आत्माकों दिदृक्षा जइ, तब तिस दिदृक्षाके व शसें प्रधानके साथ आपणा एकरूप देखने लगा, तब संसारी हो गया, अरु जब प्रकृतिका डुष्टपणा विचारमें आया, तब प्रकृतिसें वैराग्य हुआ, फेर प्रकृतिविषे दिदृक्षा नहीं, तब संसारभी नहीं.

उत्तरपक्षः—यहभी तुमारा कहनां स्वकृतांत विरोध होनेसें अयुक्त है; सोई दिखाते हैं. दिदृक्षा सो देखनेकी अभिलाषाका नाम है, सो अभिलाषा पूर्व देखे हूये पदार्थोंमें तथा स्मरणसें होता है अरु प्रकृति तो पूर्वे कदापि देखी नहीं है, तब कैसें तिस विषे स्मरण अभिलाषा होवे? जे कर कहोगेकि अनादि वासनाके वशसें प्रकृतिमेंही स्मरण अभिलाषा है, सोभी अ सत् है, क्योंकि वासनाभी प्रकृतिका विकार होने करकें प्रकृतिके पहिलां नहीं थी, जे कर कहोगेकि वासना जो है, सो आत्माका स्वभावरूप है, तब तो आत्मस्वरूपवत् वसनाका कदापि अभाव नहीं होवेगा, अरु मोक्षभी कदापि नहिं होवेगी, तब तो सांख्यका मतभी बालकोंका खेल जैसा हो गया ॥ इति सांख्यमत खंमनं समाप्तम् ॥

अथ मीमांसक मतका खंमन लिखते ॥ इस मतका स्वरूप उपर लिख आये हैं, अरु वेदांतियोंके ब्रह्म (अद्वैत)का खंमन ईश्वर वादमें अछी तरेसें कर चुके हैं. इस वास्ते यहां नहीं लिखा. इति मीमांसक मत ॥

अथ जैमिनीयमतका खंमन लिखते हैं. जैमिनीया ऐसें कहते हैं, कि जो "हिंसागाध्यांत्" अर्थात् इंद्रियोंके रस वास्ते अथवा कुव्यसन करकें करियें सोइ हिंसा अधर्मका हेतु है, प्रमादके उदय करनेसें शौनिक लु ब्धकादिकोंकी तरें अरु वेदोंमें जो हिंसा कही है, सो हिंसा नहि है, किंतु धर्मका हेतु है, देवता, अतिथि, पितरोंके प्रीतिसंपादक हो नेसें तथाविध पूजा उपचारवत् अरु यह प्रीति संपादकत्व असिद्ध नहीं है, क्योंके कारीरी प्रभृति यज्ञोंके स्वसाध्य विषे वृष्ट्यादि फलोंका जो अ व्यभिचारी पणा है, सो यज्ञ करनेसें जो देवता तृप्त होते हैं, वो वृष्ट्या दिकोंके हेतु हैं. ऐसेही "त्रिपुरार्णववर्णित छगल" अर्थात् बकरेके मां सका होम करनेसें पराराष्ट्रका जो वश होनां है. सोभी उन मांसकी आहु तीयोसें तृप्त हूये होय देवताओंकाही अनुभाव है. अरु अतिथिप्रीतिभी "मधुसंपर्कसंस्कारादिसमास्वादजा" प्रत्यक्षही दीख पडता है. अरु पित

रोंके तांइ जो श्राद्ध करते हैं, उस करकें पितर तृप्त हुवे होयें, स्वसंता नकी वृद्धि प्रत्यक्षही करते दीखते हैं, अरु इस बातमें आगमभी प्रमाण देता हैं, आगममें देव प्रीत्यर्थ अश्वमेध, नरमेध, गोमेधादिक करणे कहे हैं,अरु अतिथि विषय "महोक्षं वा महाजं वा,श्रोत्रियाय प्रकल्पयेदिति" ऐसा कहा है, अरु पितरोंकी प्रीति वास्ते यह श्लोक है ॥ श्लोक ॥ द्वौ मासौ मत्स्यमांसेन,त्रीन् मासान् हारिणेन तु ॥ औरभ्रेणाथ चतुरः, शाकुनेनेह पंच तु ॥ १ ॥ षण्मास छागमांसेन, पार्षतेनेह सप्त वै ॥ अष्टावेणस्य मांसेन, रौरवेण नवैव तु ॥ २ ॥ दशमासांस्तु तृप्यंति, वराहमहिषामिषैः ॥ शशकूर्मयोर्मांसेन, मासानेकादशैव तु ॥ ३ ॥ संवत्सरं तु गव्येन, पयसा पायसेन तु ॥ वाध्रीणस्य मांसेन, तृप्ति र्द्वादशवार्षिकी ॥ ॥ ४ ॥ यह श्लोक स्मृतिके हैं, इनका अर्थ कहते हैं.

जे कर पितरोंकों मत्स्यका मांस देवे तो पितर दो मास लग तृप्त रहते हैं. जे कर हरिणका मांस पितरोंको देवे, तो पितर तीन मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर मीढेका मांस पितरोको देवे, तब चार मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर जंगली कूकडका मांस पितरोकों देवे, तो पितर पांच मास तृप्त रहते हैं ॥ १ ॥ जे कर बकरेंका मांस देवे, तो पितर छमास लग तृप्त रहते हैं, जे कर पृषतबिंदु करकें युक्त जो हरिण होवे, उसकों पार्षत कहते हैं, तिसका मांस जो पितरोंकों देवे, तो पितर सात मास लग तृप्त रहते हैं, जे कर एण मृगका मांस देवे, तो आठ मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर बडे काले मृगका मांस देवे, तो नव मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर सूवर अरु महिषका मांस देवे, तो दश मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर शश अरु कछु, इन दोनोंके मांस देवे, तो अग्यारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, जे कर गोका दूध अथवा खीर देवे, तो बारह मास लग पितर तृप्त रहते हैं, तथा वाध्रीण कहते हैं जो अति बूढा बकरा होवे तिसका मांस देवे, तो बार वर्ष लग पितर तृप्त रहते हैं, यह मीमांसक मानते हैं.

अब इसका खंडन लिखते हैं. कि हे मीमांसक? वेदोंमें जो हिंसा कही है, सो धर्मका हेतु कदापि नहीं हो सक्ती हैः इस तुमारे कहनेमें प्रकट स्ववचनविरोध है, तथाहि. जे कर धर्मका हेतु है, तब तो हिंसा क्यों कर

है ? अरु जे कर हिंसा है, तो धर्मका हेतु क्यों कर हो सक्ती है ? ॥श्लोक॥ श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चैवावधार्यतां ॥ आत्मनः प्रतिकूलानि, परेषां न समाचरेत् ॥ १ ॥ इत्यादिक जे धर्म कहे हैं, तो हिंसा क्यों कर है ? क्यों के मानाजी है, अरु वंध्याजी है, ऐसा कजी नही होता है.

पूर्वपक्ष —हिंसा कारण है, अरु धर्म तिसका कार्य है.

उत्तरपक्ष —यहनी तुमारा कहना असत् है, क्योंकि जो जिसके साथ अन्वय व्यतिरेक वाला होता है, सो तिसका कार्य होता है, जैसे मृत्पिंडादिकोंका घटादिक कार्य है, तो कुछ धर्म हिंसाहीसे करनेसे नही होता है, क्योंकि तप, दान, ध्यानादिकजी धर्मके कारण है.

पूर्वपक्ष —हम सामान्य हिंसाको धर्म नही कहते है, किंतु विशिष्ट हिंसाको धर्म कहते है, सो विशिष्ट हिंसा वोही है, जो वेदोंमे करनी कही है.

उत्तरपक्ष —जे कर वेदकी हिंसा धर्मका हेतु है, तो क्या जो जीव यज्ञादिकोंमे मारे जाते है, वो मरते नही है? इस वास्ते धर्म है? अथवा क्या उनके मरणेमे उनको आर्त्तध्यानका अभाव है, इस वास्ते धर्म है? अथवा जो यज्ञादिकोंमे मारे जाते है, वो मरके स्वर्गको जाते है? इस वास्ते धर्म है? इसमे आद्य पक्ष तो ठीक नही, क्योंके प्राण त्यागते हुये तो वो जीव प्रत्यक्ष दीख पडते है, तथा दूसरा पक्षजी असत् है, क्योंके उनोंके मनका ज्ञान दुर्लक्ष है, इस वास्ते आर्त्तध्यानका अभाव कहना यह तो [illegible] वचनमात्र है, आर्त्तध्यानका अभाव तो [illegible]

[illegible]

सा निंदनीय कनी नहीं है, क्योंकि तिस हिंसाके करने वाले याज्ञिक ब्राह्मणोंको जगत्में पूजनिक देखते हैं;

उत्तरपक्षः—यहनी तुमारा कहनां असत् है, क्योंकि जितने दृष्टांत तुमने कहे हैं, सो सर्व वैषम्य है, इस वास्ते सिद्धि कुउनी नहीं कर सक्ते हैं. लोहेका जो पिंम, पत्रादि रूप होनेसें जलके उपरि तरता है, सो परिणामांतर होनेसें तरता है, परंतु वेद मंत्रोसें संस्कार करकें जब पशुकों मारते हैं, तब उसमें क्या परिणामांतर होता है? क्या उस परिणामांतरसें उन पशुओंकों मारते दुःख नहीं होता है? दुःख करकें तो वे प्रगट अरराट शब्द करते हैं, तो फेर लोह पत्रका दृष्टांत कैसें समीचीन हो सक्ता है?

पूर्वपक्षः—जो पशु यज्ञमें मारे जाते हैं, वो सर्व देवता हो जोते हैं, यह यज्ञ करनेमें परोपकार है.

उत्तरपक्षः—इस बातमें कौनसा प्रमाण है? तिसमें प्रत्यक्ष प्रमाण तो नहीं है, क्योंकि प्रत्यक्ष तों इंद्रिय संबंध वर्त्तमान वस्तुकाही ग्राहक है, "संबंधोवर्त्तमानं च, गृह्यते चक्षुरादिनेति वचनात्" अरु अनुमाननी नहीं है, क्योंकि तत्प्रतिबद्धलिंग कोइनी नहीं दीखता है, अरु आगम प्रमाणनी नहीं. क्योंकि आगम तो झगडेका घर है, इस वास्ते सिद्ध हूआ नहीं है. तथा अर्थापत्ति अरु अनुमान यह दोनो अनुमानकेही अंतर्गत है, तो अनुमानके खंमनेसें यहनी दोनुं खंमन हो गये.

पूर्वपक्षः—जैसें तुम जिनमंदिर बनाते हूये पृथिवीकायादि जीवोंकी हिंसाको परिणाम विशेष करकें पुण्यके तांइ कल्पते हो, ऐसें हमनी यज्ञमें जो हिंसा करते हैं, सो पुण्यके वास्ते है, क्योंकि वेदोक्त विधि विधान रूप परिणाम विशेष इहांनी निःसंदेह होनेसें पुण्य क्यों कर नहीं होता?

उत्तरपक्षः—परिणाम विशेषनी वेही पुण्यका कारण होते हैं, जहां और कोइ उपाय न होवे, अरु यत्नसें प्रवृत्त होवे, ऐसी प्रवृत्ति जिनमंदिरमें हो सक्ती है, क्योंकि जिनमंदिरके विना श्रीनगवान्की प्रतिमा रहती नहीं जहां प्रतिमा रहेगी उसीका नाम जिनमंदिर है, जे कर कहोगेकि जिनप्रतिमा पूजनेसें क्या लान है? तो हम तुमकूं पूछते हैं कि जो पुस्तकमें ककारादि अक्षर लिखते हो, इनके लिखनेसें क्या लान है? जे कर कहोगे कि ककारादि अक्षरोंकी स्थापना देखनेसें वस्तुका ज्ञान होता है, तो तै

सेंही जिनप्रतिमा देखनेसेंत्नी श्रीजिनेश्वर देवके स्वरूपका ज्ञान होता है, जे कर कहोगेकि प्रतिमा तो कारीगरने पाषाणकी बनाइ है, इससें क्या ज्ञान होता है? तो हम पूछते है कि वेद, कुरान, इंजील, प्रमुख पुस्तक लिखा रीयोंने स्याही. और कागजोंके बनाये हैं, इनसें क्या ज्ञान होता है? जे कर कहोगेकि ज्ञान तो हमारी समजसें होता है, अक्षरोंकी स्थापना तो हमारे ज्ञानका निमित्त है, तैसेही जिनेश्वरदेवका ज्ञान तो हमारी समजसें होता है परंतु उस स्वरूपका निमित्त प्रतिमा है. क्योंकि जो बुद्धिमान् पुरुष, किसी वस्तुका नकशा नहीं देखेगा, अर्थात् चित्र नहीं देखेगा, वो कन्नी उस वस्तुका स्वरूप नहीं जान सकेगा? इस वास्ते जो बुद्धिमान् है. वो अवश्य स्थापना मानता है.

जे कर कहोगेकि परमेश्वर तो निराकार, ज्योतिःस्वरूप, सर्व व्यापक है, तिसकी मूर्त्ति क्योंकर बन सक्ती है?

उत्तरः—यह तुमारा कहनां बडे उपहास्यका कारण है, क्योंकि जब तुमने परमेश्वरका रूप आकार (मूर्त्ति) नहीं मानी, तब तो वेद, वा इंजील, वा कुरान, इनकों परमेश्वरका वचन माननां क्यों कर सत्य हो सकेगा? विना मुखके साक्षर शब्द कदापि नहीं हो सक्ता है.

जेकर कहोगेकि ईश्वर, विनाही मुखके शब्द कर सक्ता है, तो इस बात कहेनेमें कोइ प्रमाण नहीं, इस वास्ते जो साक्षर शब्द है, सो विना मुखके नहीं. अरु शरीरके विना मुख नहीं हो सक्ता है, इस वास्ते जो कोइ वादी किसी पुस्तककों ईश्वरका वचन मानेगा, वो जरूर ईश्वरका मुख और शरीरत्नी मानेगा, अरु जब शरीर माना, तब त्नगवान्की प्रतिमात्नी जरुर माननी पडेगी, जब प्रतिमा सिद्ध हो गइ, तब मंदिरत्नी जरुर बनानां पडेगा, इस वास्ते जिनमंदिरका बनानां जो है. सो आवश्यक है. अरु जो बनाने वाला है, सो यत्न पूर्वक बनाता है. अरु पृथिवी कायादिकके जो जीव हैं, सो अस्पष्ट चैतन्य हैं. उनकी हिंसामें अल्प पाप अरु बहुत निर्ज्जरा है. अरु तुमारे पक्षमें तो श्रुति. स्मृति, पुराण. इतिहास प्रमुखोंमें यम नियमादिकों करकेंत्नी स्वर्गको होना कहा है. तो फेर कृपण, दीन. अनाथ, असें पंचेंद्रिय जीवोंका वध काहेकों यज्ञमें करते हो? इस्सें यही सिद्ध होता है कि जो तुम निरपराध. कृपण, दीन, अनाथ,

उत्तरपक्षः—यहनी कहनां व्यभिचारी है. क्योंकि इह लोकमें विवाह, गर्भाधान, जातकर्मादिकोंके विषे तिन मंत्रोंका व्यभिचार देखनेमें आता है, तो अदृष्ट स्वर्गादिकोंमेंनी तिनोके व्यभिचारका अनुमान करते हैं, क्योंकि वेदोक्त मंत्रो करिके संस्कार करे हूये विवाहसेंनी अनंतरही स्त्री, विधवा, अल्पायुष्या, दारिद्र्यादि उपद्रव करके विधुर होते हूये देखनेमें आते हैं, अरु वेद मंत्रोंके संस्कार विनानी कितनेक विवाह करने वाले सुखी, धनी, आदिक दीखते हैं.

पूर्वपक्षः—जिस विवाहादिकोंमें विधवादि हो जाती हैं तहां क्रियाकी वैगुण्यतासें विसंवाद होता है.

उत्तरपक्षः—इस तुमारे कहनेमें यह संशय कनी दूर नहीं होवेगा, क्या तहां क्रियाकी वैगुण्यता विसंवादका हेतु है ? किंवा वेदमंत्रोंकी असमर्थता विसंवादका हेतु हैं ?

पूर्वपक्षः—जैसे तुमारे मतमें "आरोग्ग बोहिलाभं समाहिवरमुत्तमंदिंतु" इत्यादिक वचनोंका कालांतरमेंही फल चाहते (वांछते) हैं, ऐसें हमारे अनिमत वेद वचनोंकानी इस लोकमें फल नहीं कल्पना करते हैं, किंतु लोकांतरमें फल होता है. इस वास्ते विवाहादिकका उपालंभावकाश नहीं.

उत्तरपक्षः—अहो वचन वैचित्री! जैसे वर्त्तमान जन्मविषे विवाहादिकोंमें प्रयुक्त मंत्र, संस्कारों करकेंआगम जन्ममें तिसका फल है ऐसेंही द्वितीयादि जन्ममेंनी विवाहादिकोंके पुण्य हेतु माननेसें अनंत नवोंका अनुसंधान होवेगा, ऐसें तो कदापि संसारकी समाप्ति नहीं होवेगी, तब तो किसीकोंनी मोक्षप्राप्ति नहीं, इस्से यही सिद्ध हूआ जो वेदही अपर्यवसित संसार वल्लरीका मूल (कंद) है, अरु आरोग्यादि प्रार्थना जो है, सो असत्य अमृषा नाषा है, परिणाम विशुद्धिका कारण होनेसें दोषके वास्ते नहीं, क्योंकि तहां नाव आरोग्यादिककीही विवक्षा है, अरु वो जो आरोग्यपणा है, सो चातुर्गतिक संसार लक्षण नावरोग परिक्षयरूप होनेसें उत्तम फल है. तिस विषयक जो प्रार्थना है, वो कैसें विवेकवानोंको आदरणीय नहीं ? ऐसेंनी मत कहनां जो परिणाम शुद्धिसें तिस फलकी प्राप्ति नहीं. क्योंकि सर्व वादीयोंके नावशुद्धिमें फल पानेमें विवाद नहीं. ऐसेंनी मत कहनां जो वेदविहित हिंसा बुरी नहीं, क्यों

कि सम्यक् दर्शन ज्ञान संपन्न अर्चिमार्गप्रतिपन्न वेदांतवादीयोनेंभी निंदी है. "तथा च तत्वदर्शिनः पठंति ॥ श्लोक ॥ देवोपहारव्याजेन, यज्ञव्याजेन वाथवा ॥ घ्नंति जंतून् गतघृणा, घोरां ते यांति दुर्गतिं ॥ १ ॥ वेदांतिका अप्याहुः ॥ अंधे तमसि मज्जामः, पशुभिर्ये यजामहे ॥ हिंसा नाम भवेद्धर्मो, न भूतो न भविष्यति ॥ १ ॥ "तथा अग्निर्मामेतस्मात् हिंसाकृतादेनसोमुंचतु छांदसत्वान्मोचयतु इत्यर्थः" व्यासेनाप्युक्तं ॥ ज्ञानपालिपरिक्षिप्ते, ब्रह्मचर्यदयांभसि ॥ स्नात्वातिविमले तीर्थे, पापपंकापहारिणि ॥ १ ॥ ध्यानाग्नौ जीवकुंभस्थे, दममारुतदीपिते ॥ असत्कर्मसमित्क्षेपै, रग्निहोत्रं कुरुत्तम ॥ २ ॥ कषायपशुभिर्दुष्टै, धर्मकामार्थनाशकैः ॥ शममंत्रहुतैर्यज्ञं, विधेहि विहितं बुधैः ॥ ३ ॥ प्राणिघातात्तु यो धर्म, मीहते मूढमानसः ॥ स वांछति सुधावृष्टिं, कृष्णाहिमुखकोटरात् ॥ ४ ॥ इत्यादि.

अरु जो यज्ञ करने वालोंकों पूजनिकपणा तुम कहते हो, सोभी असार है, क्योंकि अबुद्ध जनही उनकों पूजते हैं, नतु विविक्त बुद्धिमान्. अरु मूर्खोंका जो पूजनां है, सो प्रामाणिक नहिं, क्योंकि मूर्ख तो कुत्ते औ गऊकोंभी पूजते हैं.

अरु जो तुमने कहा था कि देवता, अतिथी, पितृ प्रीति संपादक होनेसें वेद विहिता हिंसा, दोषके तांइ नाहिं, यहभी जूठ है, क्योंकि देवताओंके संकल्प मात्रसेंही अभिमत आहारके रसका स्वाद प्राप्त हो जाता है, अरु देवताओंका शरीर वैक्रियरूप है, सो तुमारी जुगुप्सित पशुमांसादि आहुतिके लेनेकों उनकी इछाही नही हो सक्ती है, क्योंकि औदारिक शरीर वालेही तिन मांसादिकोंके ग्राहक है, जे कर देवताओंकोभी कवल आहारी मानोगे, तब तो देवताओंका शरीर तुमने मंत्रमय माना है, तिसके साथ विरोध होवेगा, अरु अभ्युपगमकी बाधा है, देवताओंका शरीर मंत्रमय तुमारे मतमें असिद्ध नहीं है, "चतुर्थ्यंतं पदमेव देवता इति जैमिनीय वचनप्रामाण्यात् ॥ तथा च ॥ मृगेंद्रः शब्देतरत्वे युगपद्भिन्नदेशेषु यष्टृषु नसा प्रयाति सांनिध्यं मूर्त्तत्वादस्मादिवदिति"

तथा जिस वस्तुकी आहुति देवताओंकों देते हैं, वोतो भस्मीभावमात्र हो जाती है, तो फेर देवता क्या उस भस्म अर्थात् राखकों खाते हैं? इस वास्ते तुमारा कहना प्रलापमात्र है.

तथा एक औरजी वात है, यो यह त्रेताग्नि है, सो तेतीस कोटि देवताका मुख है, "अग्निमुखा वै देवा इति श्रुतेः" तव तो उत्तम, मध्यम, अधम, सर्व देवता एकही मुख करकें खाने वाले सिद्ध हूये, अरु सर्व आपसमें जूठ खाने वाले वन गये, तव तुरकोंसेंजी अधिक हो गये- क्यों कि तुरकजी एक पात्रमें एकठे खाते हैं, परंतु एक मुख करकें सर्व नहीं खाते हैं.

एक औरजी दूषण है, एक शरीरमें मुख वहुत हैंः यह वात तो हम आगेंजी सुनते थे, परंतु अनेक शरीरोंका एक मुख, यह तो वडा आश्चर्य है. जव सर्व देवताओंका एक मुख माना, तव तो किसी पुरुषने जव एक देवताकी पूजादि करकें आराध्या, अरु अन्य देवताओंकी निंदादि करकें विराध्या, तव तो एक मुख करकें युगपत् अनुग्रह, निग्रह, वाक्यके उच्चारणमें संकरका प्रसंग होवेगा.

तथा एक औरजी वात है कि, मुख जो है सो देहका नवमा जाग है, तो जव उन देवताओंका मुखही दाहात्मक है, तव एक एक देवताका शरीर दाहात्मक होनेसें तीनो जवनही जस्मीजूत हो जाने चाहियें? इत्यलमतिचर्चया ॥

अरु जो कारीरी यज्ञादिकोमें वृष्टयादि फलका अव्यजिचार है, तिस फलमें आहुति करकें प्रीणीत देवताका अनुग्रह जो तुम कहते हो सोजी अनेकांतिक है. किसी जगे व्यजिचारजी देखनेमें आता है, अरु जहां व्यजिचार नहीं, तहांजी आहुतिके जोजन करनेसें अनुग्रह नहीं.किंतु वो देवता विशेष अतिशय ज्ञानी हैं, स्वउद्देश्य पूजोपचारकों देख करकें, अपणे स्थानमेंही स्थित हूये थके पूजा करनें वाले प्रति प्रसन्न हो कर उसका कार्य, अपणी इच्छासें कर देता हैः अनुपयोग करकें अनजानता अथवा जानता थकाजी पूजकके अजाग्य करकें कार्य नहींजी करता? क्योंकि द्रव्य, क्षेत्र, काल, जावादि सहकारियों करकें कार्यका होनां दिख पडा है, अरु वो जो पूजा उपचार है, सो निःकेवल पशुओंहीके मारनेसें नहीं हो सक्ती, दूसरी तरेसेंजी हो सक्ती है, तो फेर पाप एक फल रूप शौनिकवृत्ति करनेसें क्या है?

अरु जो उगल अर्थात् वकरेके मांस होमनेसें परराष्ट्र वश करने वाली सिद्धादेवीके परितोष होनेका जो अनुमान है, तो इसमें क्या आश्चर्य है?

क्योंकि कितनेक क्षुद्र देवताकों तैसेंही प्रीति है, तहांभी वे दुष्ट देव सो अपनी पूजा देखके राजी होते हैं, परंतु मलिन (बीभत्स) मांसके खानेसें नाहिं राजी होते. जे कर होम करी हूइ वस्तुकों खाते हैं, तब तो निंबपत्र, कडुवा तेल, आरनाल, धूमांशादिभी हूयमान द्रव्यभी तिनका भोजन हो जावेगा, वाह क्याही तुमारे देवता सुंदर भोजन करते हैं !

अरु अतिथिकी जो प्रीति है, सो संस्कार संपन्न पक्वान्नादिक करकेंभी हो सक्ती है, तो फेर तिनके अर्थे महोक्ष महाजादिकोंका कल्पनां सो निःकेवल तुमारी निर्विवेकताकों कहता है.

अरु श्राद्धादिकोंके करनेसें पितरोंकी जो प्रीति है, सोभी अनेकांतिक है, क्योंकी कितनेक श्राद्ध नहींभी करते हैं, तोभी तिनकी संतानवृद्धि देखते हैं, गर्त्तशूकरादिके जैसें वृद्धि है. तिस वास्ते श्राद्धादिकोंका जो करणां है, सो मुग्ध जनोकों विप्रतारणमात्रही फल है. जो पितर लोकांतरमें प्राप्त हूये हैं, सो अपणे सुकृत दुःकृत कर्मोके अनुसार सुर नारकादि गतियोंमें सुख दुःख भोग रहे हैं, तो फेर पुत्रादिकोंके दीये हूये पिंडोंकों क्योंकर भोगनेकी इछा कर सक्के हैं ? " तथा च युष्मद्यूथिनः पठंति ॥ श्लोक ॥ मृतानामपि जंतूनां, श्राद्धं चेत्तृप्तिकारणं ॥ तं निर्वाणप्रदीपस्य, स्नेहः संवर्द्धयेच्छिखामिति ॥

तथा श्राद्ध करनेसें पुण्य क्यों कर उस पितरोंके पास चला जाता हैं? क्योंकि वो पुण्य तो औरने करा है, अरु पुण्य जो है, सो आप जडरूप है, औ पगोंसें रहित है. जे कर कहोगेकि उद्देशतो पितरोंहीका है, परंतु पुण्य, श्राद्ध करनेवाले पुत्रादिकोंकों होता है, यहभी कहनां ठीक नहीं पुत्रादिकोंकों पुण्य नहीं होता है, पुत्रादिकोंके मनमें यह वासना नहीं जो हम पुण्य करते हैं, इसका फल हमकों मिलेगा, तो विना पुण्यकी भावनासें पुण्य फल नहीं होता है, इस हेतुसें नतो पितरोंकों, अरु न पुत्रादिकोंकों श्राद्ध करनेका फल हैं, किंतु विचमेंही त्रिशंकुके दृष्टांत करिकें विलीन हो गया.

अरु पापानुबंधी जो पुण्य है, वो तत्त्वसें पाप रूपही है, जे कर कहोगे कि ब्राह्मण जो कुछ खाते हैं, वो उनकों मिलता है, तो इस कहनेकी तुमकोंही सत्यता प्रतीत होती होवेगी, ब्राह्मणोंहीका मोटा उदर दिखला

इ देता है, परंतु उनके पेटमें प्रवेश करके पितर खाते हूये कदापि नहीं दिखते हैं, जोजनावसरमें ब्राह्मणोंके उदरमें प्रवेश करते हूये पितरोंका कोइजी लिंग हम नहीं देखते हैं,केवल ब्रह्मणोंहीकों तृप्त होते देखते हैं.

अरु जो तुमने कहाथाकि हमारे पास आगम प्रमाण है, सो तुमारा आगम पौरुषेय है ? वा अपौरुषेय है ? जे कर कहोगेकि पौरुषेय है, तो क्या सर्वज्ञका करा हूआ है ? वा असर्वज्ञका करा हूआ है ? जे कर आद्य पक्ष मानोगे, तब तो तुमारे मतकी व्याहति होवेगी, क्योंकि तुमारा यह सिद्धांत है, "अतींद्रियाणामर्थानां, साक्षाद्रष्टा न विद्यते ॥ नित्येभ्यो वेदवाक्येभ्यो, यथार्थत्वविनिश्चयः ॥ १ ॥ दूसरे पक्षमें दूषण वाले करता के करे हूये शास्त्रका विश्वास नहीं होता है; जे कर कहोगेकि अपौरुषेय है, तब तो संजवही नहीं हो सक्ता है, स्वरूप निराकरणेसें तुरंगशृंगवत् पुरुषक्रियानुगत रूप इसका है. पुरुष क्रियाके विना यह क्योंकर हो सक्ता है ? इस वास्ते जो साक्षर वचन है, सो पौरुषेयही है, कुमारसंजवादि वचनवत्. वचनात्मकही वेद है, "तथा चाहुः ॥ ताल्वादिजन्मा ननु वर्ण वर्गो, वर्णात्मको वेद इति स्फुटं च ॥ पुंसश्च ताल्वादिरतः कथं स्या,दपौरुषेयोपमिति प्रतीतिः ॥ १॥ इति श्रुतिकों अपौरुषेयत्व " अंगीकार करकेंजी तुमने तदर्थव्याख्यान पौरुषेयही अंगीकार करी है, अन्यथा " अग्निहोत्रं जुहुयात् स्वर्गकामः" इसका अर्थ " श्वमांसं नक्षयेत् इति" नियामकके अजावसें अर्थ क्यों न हो जावे? तिस वास्ते यही अच्छा है जो शास्त्रकों पौरुषेय माननां होवे. तुमारे हठसें अपौरुषेय वेद माने, तोजी तिसकों प्रमाणता नहीं, क्योंकि प्रमाणता जो है, सो आप्त पुरुषाधीन है, जब वेद प्रमाण न हूये, तब तिन वेदोंका कहा हूआ तथा वेदानुसारी स्मृतिजी प्रमाण जूत नहीं, हिंसात्मक याग श्राद्धादिविधि प्रामाण्य विधुरही है.

पूर्वपक्षः—जो यह कहा है कि "न हिंस्यात् सर्वजूतानीत्यादि" करकें जो हिंसाका निषेध करा है, सो औत्सर्गिक मार्ग है, अर्थात् सामान्य विधि है, अरु वेदविहिता जो हिंसा है, सो अपवाद विधि अर्थात् विशेष विधि है, तब तो अपवाद करके उत्सर्गकी बाधा होनेमें वैदिकी हिंसा दोषका कारण नहीं " उत्सर्गापवादयोरपवादविधिर्बलीयानिति न्यायात् " तुमारे जैनोंके मतमेंजी एकांत हिंसाका निषेध नहीं है, कितनेक कारणोंके

होनेसें पृथिव्यादिक जीवोंकी हिंसा करनेकी आज्ञा है, अरु जब साधु रोग पीमित होता है, " असंस्तरे " अर्थात् असामर्थ्य होता है, तब आधाकर्मादि आहारके ग्रहणेकीजी आज्ञा है; ऐसेही हमारे मतमें यज्ञकी हिंसा जो है, सो देवता अतिथिकी प्रीतिके वास्ते पुष्टालंबनरूप होनेसें अपवाद रूप है, इस वास्ते दोष नहीं.

उत्तरपक्ष.—अन्यकार्यके वास्ते उत्सर्ग वाक्य, अरु अन्य कार्यके वास्ते अपवाद पद कहनां, यह उत्सर्ग, अपवाद, कदा जी नहीं हो सक्ता है; किंतु जिस अर्थके वास्ते शास्त्रमें उत्सर्ग कह्या है, तिसी अर्थके वास्ते अपवाद होवे, तवही उत्सर्ग अपवाद हो सक्ता है; तिन दोनोंहीकों उन्नत निम्नादि व्यवहारवत् परस्पर सापेक्ष होनेसेंही एकार्थके साधक हो सके हैं, जैसें जैनोंके संयम पालनेके अर्थ नवकोटि विशुद्ध आहारकों ग्रहणां, सो उत्सर्ग है, तैसेंही द्रव्य, क्षेत्र, काल, जाव, आपत्में पमनेसें गत्यंतरके अजावसें पंचकादि यत्ना करकें अनेषणीयादि आहारकों जो ग्रहण करनों सो अपवाद है; सोजी संयमहीके पालने वास्ते है, ऐसेंजी मत कहनां कि जिस साधुकों मरणाही एक शरणा है;तिसकों गत्यंतर अजावकी असिद्धि है ॥ उक्तं चर्षिजिः ॥ सव्वठ संजमं सं,जमाउ अप्पाणमेव रक्खिज्जा ॥ मुच्चइ अइवायाउ, पुणो विसोही नयाविरई ॥ १ ॥ इत्यागमः ॥ इसका जावार्थः—सर्वत्र संयम करणां, जे कर संयमके दूषित होनेसें प्राण रहित होवे, तो संयममें दूषणजी लगा कर प्राणोंकी रक्षा करणी, प्राणोके रहणेसें प्रायश्चित्त द्वारा उस पापसें छूट करकें शुद्ध हो जावेगा, अरु अविरतिजी नहीं रहेगी, तथा आयुर्वेदमें जी जो वस्तु किसी रोगमें किसी अवस्थामें अपथ्य है, सोइ वस्तु उसी रोगमें उसी अवस्थामें अवस्था, देश, काल, देख कर देवे, तो पथ्य है. देशादि अपेक्षा करकें ज्वरवालेकों दही खानेको देते हैं॥ तथाच वैद्याः ॥ कालाविरोधिनिर्दिष्टं, ज्वरादौ लंघनं हितं ॥ ऋतेऽनिलश्रमक्रोध, शोककामकृतज्वरात् ॥ १ ॥ जैसें प्रथम अपथ्यका परिहार करनां, अरु जो तहांही अवस्थांतरमें तिसीकों जोगनां, सो दोनोंही जगे रोगके दूर करनेका प्रयोजन है. इस्सें यह सिद्ध हूआ जो एकही वस्तुविषयक उत्सर्ग अपवाद है.

अरु तुमारे तो उत्सर्ग, और अर्थ वास्ते है, तथा अपवाद,और अर्थ

वास्ते है, क्योंकि तुमारे तो "न हिंस्यात् सर्वजूतानि" यह जो उत्सर्ग है सो ढुर्गतिके निषेध वास्ते है, अरु जो तुमारी अपवाद हिंसा है, सो देवता, अतिथि, पितरोंकी प्रीति संपादनेके अर्थ है, इस वास्ते परस्पर निरपेक्ष होनेसें उत्सर्ग अपवाद विधि नहीं हो सक्ती है. तब कैसें तुमारा अपवाद, उत्सर्ग विधिकों बाधा कर सक्ता है ?

असेंजी मत कहनां कि वेदिक हिंसाकी जो विधि है, सो स्वर्गहेतु होनेसें ढुर्गति निषेधार्थही है, वेदिकहिंसा स्वर्गका हेतु नहीं है, यह उपर अछी तरेसें लिख आये हैं, वेदिक हिंसाके विनाजी स्वर्गकी प्राप्ती हो सक्ती है, गत्यंतरकें अजावमेंही अपवाद हो सक्ता है, कुछ हमही नहीं यज्ञ करनेसें स्वर्गका निषेध करते हैं, किंतु तुमारा व्यासजीजी कहता है· यदाह व्यास महर्षिः ॥ पूजया विपुलं राज्य,मग्निकार्येण संपदः ॥ तपः पापविशुद्ध्यर्थं, ज्ञानं ध्यानं च मुक्तिदं ॥१॥ यहां अग्निकार्य शब्दवाच्यस्य यागादिविधि उपायांतर करकें जो साध्य है संपदा, तिसहीका हेतु कहता हूआ आचार्य तिस यागकों सुगतिका हेतु अर्थात् ही कदर्थन करता हूआ है, तथा सोइ व्यासजी जावाग्निहोत्र "ज्ञानपाली" इत्यादि श्लोकों करकें स्थापन कर गया है ॥ इति मीमांसकमतखंमनम् ॥ ५ ॥

अथ चार्वाकमत खंमन लिखते हैं ॥ चार्वाक कहता है की आत्माही नहीं है, तब किस वास्ते मतावलंबी पुरुष, वचनकल्हा करते हैं ? जब आत्माही नास्ति है. तब जैन, बौद्ध, सांख्य, नैयायिक, वैशेषिक, अरु जैमिनीय, यह जो षट् दर्शन है, सो निःकेवल लोकोंकों भ्रममें डाल करकें जोग विलास वुका देते हैं; वास्तवमें आत्मानामा कोइ वस्तु नहीं. इस वास्ते हमारा मत अछा है, जे कर आत्मा है, तो कैसें तिसकी सिद्धि है !

उत्तरपक्षः—प्रतिप्राणी स्वसंवेदन प्रमाण चैतन्यकी अन्यथानुपपत्तिसें सिद्ध है, तथाहि यह जो चैतन्य है, सो जूतोंका धर्म नहीं है, जे कर जूतोंका धर्म होवे, तब तो पृथिवीकी कठीनताकी तरें सर्वत्र सर्वदा उपलंज होनां चाहियें, सो सर्वत्र सर्वदा उपलंज होता है नहीं, क्योंकि लोष्टादिकोमें अरु मृत् अवस्थामें चैतन्य उपलंज नहींहोता.

पूर्वपक्षः—लोष्टादिकोंमें अरु मृत् अवस्थामेंजी चैतन्य है, केवल शक्तिरूप करिकें है, तिस वास्ते नहीं उपलंज होता है.

उत्तरपक्षः—दो विकल्पके न उल्लंघनेंसें यह तुमारा कहनां अयुक्त है, तथाहि वो शक्ति, चैतन्यसें विलक्षण है ? अथवा चैतन्यही है ? जे कर कहोगेकि विलक्षण है,तब तो शक्तिरूप करकें चैतन्य है ऐसा मत कहो, क्योंकि नहीं पटके विद्यमान हूआ पटरूप करकें घट रहता है, "आह च ॥ प्रज्ञाकरगुप्तोपि ॥ श्लोक ॥ रूपांतरेण यदित, त्तदेवास्तीति मारटीः ॥ चैतन्यादन्यरूपस्य, नावे तद्विद्यते कथम् ॥१॥ जे कर दुसरा पक्ष मानोगे,तब तो चैतन्यही वो शक्ति हैःतो फेर क्युं नहीं उपलंभ होती ? जे कर कहोगेकि आवृत्त होनेसें उपलंभ नहीं होती, तो यहनी ठीक नहीं, क्योंकि आवृत्ति नाम आवरणका है, सो आवरण क्या विवक्षित परिणामका अन्नाव है ? अथवा परिणामांतर है ? अथवा नूतोंसें अतिरिक्त और वस्तु है ? उसमें विवक्षित परिणामोंका अन्नाव तो नहीं हैं, क्योंकि एकांत तुछ होने कर कें तिस विवक्षित परिणाम अन्नावकों आवरण शक्ति नहीं है, अन्यथा तिसकों अतुछ रूप होनेसें सोनी नावरूप हो जावेगा, अरु जब नावरूप हूआ, तब तो पृथिवी आदिकोंमेंसूं अन्यतम हूआ,क्योंकि "पृथिव्यादिन्येव नूतानि तत्त्वमिति वचनात्" अरु पृथिवी आदिकजो नूत है, सो चैतन्यके व्यंजक हैं, परंतु आवरक नहीं. तब कैसें आवरकत्व सिद्ध होवे ?

अथ जे कर कहोगेकि परिणामांतर है,सोनी अयुक्त है, क्योंकि परिणामांतरकों नूत स्वनाव होने करकें नूतोंकी तरें चैतन्यका व्यंजकही हो सक्ता है, आवरक नहीं.

अथ जे कर कहोगेकि नूतोंसें अतिरिक्त वस्तु है, यह कहनां बहुत ही असंगत है, क्योंकि नूतोंसें अतिरिक्त वस्तु माननेसें "चत्वार्येव पृथिव्यादि नूतानि तत्त्वमिति" इस कहनेंसें तत्त्वसंख्याका व्याघात हो जावेगा.

एक औरनी बात हैकि यह जो चैतन्य है, सो एक एक नूतका धर्म है, वा सर्व नूत समुदायका धर्म है? एक एक नूतका धर्म तो नहीं, क्यों कि एक एक नूतमें दीखतां नहीं औ एक एक परमाणुमें संवेदन उपलंन नहीं होता है. जे कर प्रति परमाणुमें होवे, तब तो पुरुष,सहस्र चैतन्य वृंदकी तरें परस्पर जिन्न स्वनाव होवेगा, परंतु एक रूप चैतन्य नहीं होवेगा, अरु देखनेमें एक रूप आता है, "अहं पश्यामि" अर्थात् मैं देखता हूं, मैं करता हुं, ऐसें सकल शरीरका अधिष्ठाता एक उपलंन होता है.

जे कर समुदायका धर्म मानोगे सोजी प्रत्येकमें अजाव होनेसें असत् है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामें असत् है, वो समुदायमेंजी नहीं होता का है, जैसें रेणुकायोंमें तैल.

जे कर कहोगेकि मद्यांगोमें मद शक्ति नहीं है समुदायमें हो जाती है, ऐसें चेतन्यजी हो जावे, तो क्या दोष है ? यहजी अयुक्त है, क्योंकि प्रत्येक मद अंगोमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते हैं, तथाहि॥ दीखता है माधुर्यादि इक्षुरसमें धातकी फूलोंसें थोमीसी विकलता उत्पादक शक्ति, ऐसें चेतन्य, सामान्य प्रकारसें जूतोंमें नहीं उपलंज होता है, तब केसें जूत समुदायमें चैतन्य हो सक्ता है ? जे कर प्रत्येक अवस्थामें असत् समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुछ हो जानां चाहियें. यह अति प्रसंग होवेगा.

एक औरजी वात है, कि जेकर तुमने चैतन्य धर्म माना है, तब तो अवश्य धर्मके अनुरूप धर्मीजी मानना चाहियें, जे कर अनुरूप न मानोगे, तब तो जल अरु कठीनता इन दोनोकों धर्म धर्मी माननां चाहियें, ऐसेंजी मत कहनां जो जूतही धर्मी हैं, क्योंकि जूत, चैतन्यसें विलक्षण हैं, तथाहि चेतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त्त है, अरु जूत इससें विलक्षण हैं, तब केसें परस्पर धर्म धर्मी जाव हो सक्ता है? अरु यह चैतन्य जूतोंका कार्यजी नहीं है, अत्यंत वैलक्षण्य होनेसें कार्य कारण जाव कदापि नहीं होता है ॥ उक्तंच ॥ काठिन्याबोधरूपाणि, जूतान्यध्यक्षसिद्धितः॥ चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं जवेत् ॥ १ ॥

एक औरजी वात है कि जे कर जूतकार्य चेतना होवे, तब तो सकल जगत् प्राणीमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विशेष सद्भावके अजाव सें सकल जगत् प्राणिमय नहीं होता है, तो वो परिणति विशेष सद्भाव सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होती है? सोजी परिणति जूतमात्र निमित्तकही है, तब केसें तिसका किस जगें होनां न होनां सिद्ध होवे? तथा वो परिणति विशेष किस स्वरूपवाली है, जे कर कहोगेकि कठीनादि रूप है, सो इ दिखाते हैं, कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते हूये काष्ठादिकोंमें दीखते हैं तिस वास्ते जहां कठिनत्वादि विशेष है, सो प्राणिमय हैं, शेष नहीं. यह जी व्यजिचार देखनेसें असत् है तथाहि अविशिष्टजी कठिनत्वादि विशेषके

हूया कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, अरु किसी जगे कठिनत्वादि विशेषके बिनाभी संस्वेदज घने आकाशमें संमूर्छिम उत्पन्न होते हैं.

एक औरभी बात है कि कितनेक जीव समानयौनिकभी विचित्रवर्ण संस्थान वाले दीखते हैं, तथाहि गोवर आदि एक योनिवालेभी कितनेक नीले शरीर वाले हैं, अपर पीत शरीर वाले हैं, अन्य विचित्र वर्ण वाले हैं, अरु संस्थानभी इनका परस्पर भिन्न है, जे कर भूतमात्र निमित्त चैतन्य होवे, तब तो एक योनिक सर्व एक वर्ण संस्थान वाले होने चाहियें. परंतु सोतो होते हैं नहीं, तिस वास्ते आत्माही तिसतिस कर्मके वश तैसें उत्पन्न होती है, यही सिद्ध माननां चाहियें.

जे कर कहोगेकि आत्मा होवे, तब जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध होता ? केवल देहके हुवांही संवेदन उपलब्ध होता है, अरु देहके अभाव होयां भस्म अवस्थामें नहीं दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नहीं. किंतु संवेदन मात्रही एक है, सो संवेदन देहका कार्य है, देहहीमें आश्रित है, भींतके चित्रवत्. चित्र, भींतके विना नहीं रह सक्ता है, अरु दूसरी भींत उपर संक्रमणभी नहीं होता है, किंतु भींत उपर उत्पन्न हूआ है, अरु भींतके साथही विनाश हो जाता है, संवेदनभी ऐसेही जान लेनां. यहभी असत् है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करकें अमूर्त्त है, अरु आंतर शरीर अति सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नहीं ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अंतराभावदेहोपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते॥निःक्रामन् प्रविशन् वात्मा,नाभावोऽनीक्षणादपि ॥१॥ तिस वास्ते आंतःशरीर युक्तभी आत्मा आता जाता हूआ नहीं दीखता है, परंतु लिंगसें उपलब्ध होता है, तथाहि तत्काल उत्पन्न हूआभी कृमी जीवकों अपने शरीर विषे ममत्व है, घातककों जान करके दौड जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वले ममत्वके अभ्यास पूर्वक है, तैसें देखनेसें, अरु जितना चिर किसी वस्तुके गुण दोष नहीं जानता उतना चिर, उस वस्तुमें किसीकोंभी आग्रह नहीं होता है, तब तो जन्मकी आदिमें जो शरीर आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अभ्यासपूर्वक संस्कार निबंधन है, इस वास्ते आत्माका जन्मांतरसें आवनां सिद्ध हूआ॥ उक्तं च ॥ शरीरग्रहरूपस्य, चेतसः संभवो यदा॥ जन्मादौ देहिनां दृष्टः, किन्न जन्मांतरा गतिः ॥ १॥

जे कर समुदायका धर्म मानोगे सोभी प्रत्येकमें अजाव होनेसें असत् है, क्योंकि जो प्रत्येक अवस्थामें असत् है, वो समुदायमेंजी नहीं होता है, जेसें रेणुकायोंमें तेल.

जे कर कहोगेकि मद्यांगोमें मद शक्ति नहीं है समुदायमें हो जाती है, असें चैतन्यजी हो जावे, तो क्या दोष है ? यहजी अयुक्त है, क्योंकि प्रत्येक मद अंगोमें मद शक्त्यनुयायि माधुर्यादि गुण दीखते हैं, तथाहि॥ दीखता है माधुर्यादि इक्षुरसमें धातकी फूलोंसें थोमीसी विकलता उत्पादक शक्ति, असें चैतन्य, सामान्य प्रकारसें जूतोमें नहीं उपलंज होता है, तब केसें जूत समुदायमें चैतन्य हो सक्ता है ? जे कर प्रत्येक अवस्थामें असत् समुदायमें हो जावे, तब तो सर्व समुदायसें सर्व कुछ हो जानां चाहियें. यह अति प्रसंग होवेगा.

एक औरजी बात है, कि जेकर तुमने चैतन्य धर्म माना है, तब तो अवश्य धर्मके अनुरूप धर्मीजी मानना चाहियें, जे कर अनुरूप न मानोगे, तब तो जल अरु कठीनता इन दोनोकों धर्म धर्मी माननां चाहियें, असेंजी मत कहनां जो जूतही धर्मी हैं, क्योंकि जूत, चैतन्यसें विलक्षण हैं, तथाहि चैतन्य बोध स्वरूप, अरु अमूर्त्त है, अरु जूत इससें विलक्षण हैं, तब कैसें परस्पर धर्म धर्मी जाव हो सक्ता है ? अरु यह चैतन्य जूतोंका कार्यजी नहीं है, अत्यंत वैलक्षण्य होनेसें कार्य कारण जाव कदापि नहीं होता है ॥ उक्तंच ॥ काठिन्याबोधरूपाणि, जूतान्यध्यक्षसिद्धितः ॥ चेतना च न तद्रूपा, सा कथं तत्फलं जवेत् ॥ १ ॥

एक औरजी बात है कि जे कर जूतकार्य चेतना होवे, तब तो सकल जगत् प्राणीमय होवे, जे कर कहोगेकि परिणति विशेष सद्भावके अजावसें सकल जगत् प्राणिमय नहीं होता है, तो वो परिणति विशेष सत्ता सर्वत्र किसी वास्ते नहीं होती है ? सोजी परिणति जूतमात्र निमित्तक है, तब कैसें निसका किस जगें होनां न होनां सिद्ध होवे ? तथा वो परिणति विशेष किस स्वरूपवाली है, जे कर कहोगेकि कठीनादि रूप है, सो इ दिखाते हैं, कि घुणादि जंतु उत्पन्न होते हूये काष्टादिकोंमें दीखते हैं निस वास्ते जहां कठिनत्वादि विशेष है, सो प्राणिमय हैं, शेष नहीं. यहजी व्यजिचार देखनेसें असत् है तथाहि अविशिष्टजी कठिनत्वादि विशेष

या कहीं होता है, और कहीं नहीं होता, अरु किसी जगे कठिनत्वादि शेषके विनाज्ञी संस्वेदज घने आकाशमें संमूर्छिम उत्पन्न होते हैं.

एक औरज्ञी वात है कि कितनेक जीव समानयोनिकज्ञी विचित्रवर्ण संस्थान वाले दीखते हैं, तथाहि गोवर आदि एक योनिवालेज्ञी कितने नीले शरीर वाले हैं, अपर पीत शरीर वाले हैं, अन्य विचित्र वर्ण वा हैं, अरु संस्थानज्ञी इनका परस्पर जिन्न है, जे कर जूतमात्र निमित्त चैतन्य होवे, तव तो एक योनिक सर्व एक वर्ण संस्थान वाले होने चाहियें, परंतु सोतो होते हैं नहीं, तिस वास्ते आत्माही तिसतिस कर्मके वश तैसें उत्पन्न होती है, यही सिद्ध माननां चाहियें.

जे कर कहोगेकि आत्मा होवे, तव जाता आता क्यों नहीं उपलब्ध होता? केवल देहके हुवांही संवेदन उपलब्ध होता है, अरु देहके अज्ञाव होयां जस्म अवस्थामें नहीं दीखता है, तिस वास्ते आत्मा नहीं. किंतु संवेदन मात्रही एक है, सो संवेदन देहका कार्य है, देहहीमें आश्रित है, जींतके चित्रवत्. चित्र, जींतके विना नहीं रह सक्ता है, अरु दूसरी जींत उपर संक्रमणज्ञी नहीं होता है, किंतु जींत उपर उत्पन्न हूआ है, अरु जींतके साथही विनाश हो जाता है, संवेदनज्ञी ऐसेही जान लेनां. यहज्ञी असत् है, क्योंकि आत्मा स्वरूप करकें अमूर्त्त है, अरु आंतर शरीर अति सूक्ष्म है, इस वास्ते दृष्टिगोचर नहीं ॥ तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ अंतराजावदेहोपि, सूक्ष्मत्वान्नोपलभ्यते॥ निःक्रामन् प्राविशन् वात्मा, नाजावोऽनीक्षणादपि ॥१॥ तिस वास्ते आंतःशरीर युक्तज्ञी आत्मा आता जाता हूआ नहीं दीखता है, परंतु लिंगसें उपलब्ध होता है. तथाहि तत्काल उत्पन्न हूआज्ञी कृमी जीवकों अपने शरीर विषे ममत्व है, घातककों जान करकें दौड जाता है, जिसका जिस विषे ममत्व है, सो पूर्वसें ममत्वके अन्यास पूर्वक है, तैसें देखनेसें. अरु जितना चिर किसी वस्तुके गुण दोष नहीं जानता उतना चिर, उस वस्तुमें किसीकोंज्ञी आग्रह नहीं होता है, तव तो जन्मकी आदिमें जो शरीर आग्रह है, सो शरीर परिशीलन अन्यासपूर्वक संस्कार निबंधन है, इस वास्ते आत्माका जन्मांतरसें आवनां सिद्ध हूआ ॥ उक्तं च ॥ शरीरग्रहरूपस्य, चेतसः संजवो यदा ॥ जन्मादौ देहिनां दृष्टः, किं न जन्मांतरा गतिः ॥ १ ॥

अथ आगति प्रत्यक्षसें नहीं दीखती है, तब कैसें तिसका अनुमानसें बोध होवे ? यह तुमारा कहनां कुछ दूषण नहीं, क्योंकि अनुमेय अर्थ विषे प्रत्यक्षकी प्रवृत्ति नहीं हो सक्ती है, परस्पर विषयकों परिहार करके प्रत्यक्ष अनुमानका प्रवर्त्तनां बुद्धिमान् मानते हैं, तब कैसें यह तुमारा दूषण है ? आह च ॥ अनुमेयेस्ति नाध्यक्ष, मिति केवात्र दुष्टता ॥ अध्यक्षस्यानुमानस्य, विषयो विषयो नहीं ॥ १ ॥

अरु जो चित्रका दृष्टांत तुमने कहा था, सोजी विषम होनेसें अयुक्त है, तथाहि चित्र जो है सो अचेतन है अरु गमन स्वजाव रहित है, श्री आत्मा जो है सो चैतन्य है सो कर्मोंके वशसें गति आगति करता है, तब कैसें दृष्टांत अरु दार्ष्टांतकी साम्यता होवे ? जैसें देवदत्त किसी विवक्षित ग्राममें कितनेक दिन रह करकें फेर ग्रामांतरमें जाता रहता है, तैसेंही आत्माजी विवक्षित जवमें देहकों त्याग कर जवांतरमें देहांतर रच कर रहता है.

अरु जो तुमने कहा था कि संवेदन देहका कार्य है, सोजी ठीक नहीं. क्योंकि चक्षुपादि इंडिय द्वारें उत्पन्न होनेसें चाक्षुपादि संवेदन कथंचित् देहसेंजी उत्पन्न होता है, परंतु जो मानस ज्ञान है, वो कैसें देहका कार्य हो सक्ता है ? तथाहि सो मानस ज्ञान देहसें उत्पद्यमान होता हुवा इंडियरूपसें उत्पन्न होता है ? वा अनिंडिय रूपसें उत्पन्न होता है ? वा केश नखादि लक्षणसें उत्पन्न होता है ? प्रथम पक्ष तो ठीक नहीं. जेकर इंडियरूपसें उत्पन्न होवे, तब तो इंडिय बुद्धिवत् वर्त्तमानार्थकाही ग्राहक होनां चाहियें, इंडियज्ञान जो है, सो वर्त्तमान अर्थही ग्रहण कर सक्ता है, इस सामर्थ्यसें उपजायमान मानस ज्ञानजी इंडियज्ञानवत् वर्त्तमान अर्थकाही ग्रहण कर सकेगा.

अथ जब चक्षुरूप विषय व्यापार करता है, तब रूप विज्ञान उत्पन्न होता है, शेष काल नहीं. तब वो रूपविज्ञान वर्त्तमानार्थ विषय है, क्योंकि वर्त्तमानार्थ विषयही चक्षुका व्यापार होनेसें अरु रूप विषय व्यावृत्तिके अजावमें मनोज्ञान है, तिस वास्ते नियत काल विषयक नहीं है, ऐसेंही शेष इंडियमेंजी जान लेनां, तब कैसें मनोज्ञानकों वर्त्तमानार्थ ग्रहण प्रसक्ति होवे ? उक्तं च ॥ अक्षव्यापारमाश्रित्य, जवदक्षजमिष्यते ॥ तद्व्यापारो न तत्रेति, कथमक्षजवं जवेत् ॥ १ ॥

अथ अनिंद्रिय रूपसें है, सोभी तिसको अचेतन होनेसें अयुक्त है, अरु केश नखादिक तो मनोज्ञान करकें स्फुरत चिद्रूप नहीं उपलंभ होते हैं, तब केसें तिनसेंती मनोज्ञान होवे ? आह च ॥ चेतयंतो न दृश्यंते, केशश्मश्रुनखादयः ॥ ततस्तेभ्यो मनोज्ञानं, भवतीत्यतिसाहसं ॥ १ ॥

जे कर केश, नखादिकों करकें प्रतिबद्ध मनोज्ञान होवे, तब तो तिनोंके उछेद हूया मूलसेंही मनोज्ञान नहीं होवेगा ? अरु केश नखादिकोंकों उपघात हूआं ज्ञानभी उपहत होनां चाहियें, परंतु सोतो होता है नहीं, इस वास्ते यह तीसरा पक्षभी ठीक नहीं,

एक औरभी वात है, कि मनोज्ञानके सूक्ष्म अर्थ भेतृत्व अरु स्मृतिपाटवादि विशेष जो है, सो अन्वयव्यतिरेक करकें अभ्यासपूर्वक देखे हैं, तथाहि वोही शास्त्र, इहा अपोहादि प्रकार करकें जे कर वार वार विचारियें, तब सूक्ष्म सूक्ष्मतर अर्थाववोध उल्लास होता है, अरु स्मृति पाटव अपूर्व वृद्धि होती है, ऐसें एक शास्त्रविषे अभ्याससेंती सूक्ष्मार्थ भेतृत्व शक्तिके होयां, अरु स्मृतिपाटवके हूयां अन्य शास्त्रोमेंभी सहजसेंही सूक्ष्मार्थाववोध, अरु स्मृतिपाटव उल्लास होती है, ऐसें अभ्यास हेतुक सूक्ष्मार्थ भेतृत्वादिक मनोज्ञानके विशेष देखे हैं, अरु किसीकों अभ्यासके विनाभी देखियें है, तिस वास्ते अवश्य परलोकका अभ्यास हेतु है, सो काहेतें ? कि कारणके साथ कार्यका अन्यथानुपपन्न पणा है, तिस प्रतिबंधसें अदृष्ट तिसके कारणकीभी सिद्धि है, तिस वास्ते जीवका परलोकमें जानां सिद्ध हूआ.

अरु देह, क्षयोपशमका हेतु है, इस वास्ते देहभी कथंचित् ज्ञानकों उपकारी हम मानते है. नहीं देहके दूर होनेसें सर्वथा ज्ञानकी निवृत्ति होती. जैसें अग्नि करकें घटकों कुछ विशेषता है, परंतु अग्निकी निवृत्ति हूया घट मूलसेंही उछेद नहीं हो जाता है, केवल कतुक विशेष दूर हो जाता है, जैसें सुवर्णकी द्रवता. ऐसें इहांभी देहकी निवृत्ति हूआ कोइक ज्ञानविशेष तत्प्रतिबद्धही निवृत्त होता है, परंतु समूल ज्ञानका उछेद नहीं होता है, जे कर देहही ज्ञानका निमित्त मानेंगे, अरु देहकी निवृत्तिसें ज्ञान निवृत्तिवाला मानोगे, तब तो स्मशानमें देहके भस्म हूयां तो ज्ञान न होवे, परंतु देहके विद्यमान हूआ मृत अवस्थामें किस वास्ते नहीं होता ?

जे कर कहोगे कि प्राण, अपानजी ज्ञानके हेतु हैं, तिनके अजावसें ज्ञान नहीं होता है, यहजी कहनां ठीक नहीं, क्योंकि प्राणापान ज्ञानके हेतु नहीं हो सके हैं, किंतु ज्ञानहीसें तिनकी प्रवृत्ति होनेसें. तथाहि जब प्राणापानका करने वाला मंद इछा करता है, तब मंद होता है, अरु जब दीर्घकी इछा करता है, तब दीर्घ होता हैः जे कर देहमात्र नैमित्तिक प्राणापान होवे, अरु प्राणापान नैमित्तिक विज्ञान होवे, तब तो इछाके वशसें प्राणापानकी प्रवृत्ति न होवेगी; क्योंकि जिनका निमित्त देह है, असी जो गोरता औ श्यामता, वो इछाके वशसें प्रवृत्त नहीं होती है, जे कर प्राणापान ज्ञानका निमित्त होवे, तब तो प्राणापानके थोडे वा बहुतेके होनेसें ज्ञानजी थोमा वा बहुत होनां चाहियें, क्योंकि जिसका कारण हीन अथवा अधिक होवेगा, तब उसका कार्यजी हीन अधिक होवेगा. जैसें माटीका पिंम वडा किंवा ठोटा होवेगा, तब घटजी वडा अरु ठोटा होवेगा, अन्यथा वो कारणजी नहीं. तुमारेजी तो प्राणापानके न्यून अधिक होनेसें ज्ञान, न्यून अधिक नहिं होता है, किंतु विपर्यय होता तो दिखता है क्योंकि मरणावस्थामें प्राणापान अधिकजी होते हैं, तोनी विज्ञान घट जाते हैं.

जे कर कहोगे कि मरणावस्थामें वात पित्तादि दोषो करकें देहके विगुणी हो जानेसें प्राणापानकी वृद्धिसेंनी ज्ञानकी वृद्धि नहीं होती है ऐसेंही मृतावस्थामेंजी देहके विगुणीनूत होनेसें चेतनता नहीं है, यहनी असमीचीन है, जे कर असें होवे, तब तो मरा हूआनी जिंदा होनां चाहियें ॥ तथाहि ॥ "मृतस्य दोषाः समीनवंति" अर्थात् मरण पीछे वात पित्तादि दोष नहीं रहते हैं, औ ज्वरादि विकारके न देखनेसें दोषोंका न रहनां प्रतीत होता है, अरु जो दोषोंका समपणा है, सोइ आरोग्यता है, "तेषां समत्वमारोग्यं क्षयवृद्धिविपर्ययः ॥ इति वचनात्" ॥ आरोग्य हुआ में देहको फेर जिंदा होनां चाहियें, अन्यथा देह कारणही नहीं, चित्तके साथ देहका अन्वय व्यतिरेक नहीं. जे कर मारा हुवा जी उठे, तो हम देहकों कारणनी मान लेवे.

पूर्वपक्षः–यह फेर जी उठनेका प्रसंग तुमारा अयुक्त है क्योंकि यद्यपि दोष देहकों वैगुण्य करकें निवृत्त हो गये हैं, तोनी तिनका वैगुण्यकरा

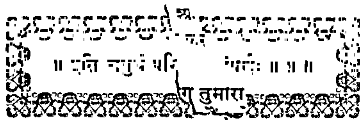
करा हुआ नहीं निवृत्त होता है, जैसें अग्निका करा हुआ काष्ठमें विकार अग्निके निवृत्त होनेसेंभी नहीं निवृत्त होता है.

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां अयुक्त है;क्योंकि विकारभी दो प्रकारका है, एक निवृत्त होता है, एक नहीं निवृत्त होता है, अनिवृत्त विकार जैसें काष्ठमें अग्निका करा हूआ श्यामता मात्र अरु निवृत्त विकार जैसें अग्नि कृत सुवर्णमें द्रवता. वायु आदिक जो दोष हैं, सो निवृत्त विकार है, चिकित्सा प्रयोग देखनेसें. जे कर वायु आदि दोषभी अनिवृत्त विकार होवे, तब तो चिकित्सा वैफल्य हो जावेगी, ऐसेंभी मत कहनां मरणेंसें पहिलां दोषनिवृत्त विकारारंभक है, अरु मरण कालमें अनिवृत्त विकारारंभक है, क्योंकि एककों एक जगें निवृत्त अनिवृत्त विकार दो रूप नहीं हो सके हैं,

पूर्वपक्षः—व्याधि दो प्रकारकी लोकमें प्रसिद्ध है, एक साध्य, दूसरी असाध्य, उसमें साध्य जो है, सो चिकित्सासें दूर हो सक्ती है, अरु दूसरी दूर नहीं होती है, तब दो प्रकारकी व्याधि क्यों नहीं सिद्ध हो सक्ती है?

उत्तरपक्षः—यहभी असत् है, क्योंकि तुमारे मतमें असाध्य व्याधिही नहीं हो सक्ती है. तथाहि व्याधिका जो असाध्यपणा है, सो आयुके क्षय होनेसें होता है. क्योंकि तिसी व्याधिमें समान औषध वैद्यके योगसें भी कोइ मर जाता है, कोइ नहीं मरता है, अरु जो प्रतिकूल कर्मोके उदय करकें चित्रादि व्याधि है, वो हजार औषधसेंभी साधी नहीं जाती है, यह दोनों प्रकारकी व्याधि परमेश्वरके वचनोंके जानने वालोंके मतमेंही सिद्ध होती हैं. परंतु तुमारे भूतमात्र तत्त्ववादीयोंके मतमें नहीं हो सक्ती है. कहीक असाध्य व्याधि इस वास्ते हो जाती है, दोषकृत विकारके दूर करणेमें समर्थ औषधि, अरु वैद्यके अभावसें जब औषधि अरु वैद्यके अभावसें व्याधि वृद्धिमान हो कर सकल आयुकों उपक्रम करती है, अर्थात् क्षय कर देती है. तथा कोइक दोषोंके उपशम होनेसें अकस्मात् मर जाता है. अरु कोइक अति दुष्ट दोषोंके होनेसेंभी नहीं मरता है. यह बात तुमारे मतमें नहीं हो सक्ती है ॥ आह च ॥ श्लोक ॥ दोषकोपशमेऽप्यस्ति, मरणं कस्यचित्पुनः ॥ जीवनं दोषदुष्टत्वे, प्येतन्न त्वा भवन्मते ॥ १ ॥ हमारे मतमें तो जहां लगि आयु है, तहां लगि दोषों करके पीडितभी जीता रहता है, अरु जब आयु क्षय हो जाता है, तब

दोषोंके विकार विनाभी मर जाता है, इस वास्ते देह ज्ञानका निमित्त नहीं है, एक औरभी बात है कि देह जो तुम ज्ञानका कारण मानते हो, सो सहकारी कारण मानते हो ? वा उपादान कारण मानते हो ? जे कर सहकारी कारण मानते हो, तब तो हमभी देहकों क्षयोपशमका हेतु मानते है, कथंचित् विज्ञानका हेतु मानते है, जे कर उपादान कारण मानोगें तब तो अयुक्त है, उपादान वो होता है, कि जिसके विकारी होनेसें कार्यभी विकारी होवे, जैसें मृत्तिका और घट. देहके विकार करकें संवेदन विकारी नहीं होता है, अरु देह विकारकें विनाभी भयशोकादिकों करके संवेदनकों विकारी देखते है, इस वास्ते देह संवेदनका उपादान कारण नहीं ॥ उक्तं च ॥ अधिकृत्य हि यद्वस्तु, यः पदार्थो विकार्यते ॥ उपादानं न तत्तस्य, युक्तं गोगवयादिवत् ॥ १ ॥ इस कहने करकें जो कहते हैं, कि माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यका उपादान कारण है, सोभी खंडन हो गया. तहा माता पिताके विकारी होनेसें पुत्र विकारी नहीं होता है, अरु जो जिसका उपादान होता है, सो अपने कार्यसें अभेद होता है, जैसें माटी, और घट. जब माता पिताका चैतन्य, पुत्रके चैतन्यके साथ अभेदरूप हूआ, तब तो पुत्रका चैतन्य, माता पिताके चैतन्यसें अभेद होनां चाहियें. इसी वास्ते तुमारा कहनां किसी कामका नहीं है, इस हेतुसें भूतोंका धर्म वा भूतोंका कार्य चैतन्य नहीं है, इस वास्ते आत्मा सिद्ध है. विशेष करकें चार्वाकमतका खंडन देखनां होवे तदा सम्मतितर्क, स्याद्वाद रत्नाकरादि शास्त्र देख लेनां ॥ इति चार्वाक मत खंडनं ॥ इस परिच्छेदमें जो कुगुरुके लक्षण कहे हैं, वे लक्षण चाहो जैनके साधुमें होवें चाहो अन्यमतके साधुमें होवे, उन सर्वकों कुगुरु कहनां चाहियें ॥ इतिश्री तपगछीये मुनि श्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आनंदविजयआत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे कुगुरुस्वरूपनिर्णयनामा चतुर्थः परिच्छेदः संपूर्णः ॥ ४ ॥



॥ अथ पंचम परिछेद प्रारंजः ॥

यह पंचम परिछेदमें धर्मतत्त्वका स्वरूप लिखते हैं. धर्म उसको कहते हैं, जो डुर्गति जाते हुवे आत्माकों धरी राखे, एतावता डुर्गतिमें न जाने देवे, उसकूं धर्म कहते हैं. तिस धर्मके तीन जेद हैं. १ सम्यक् ज्ञान, २ सम्यक् दर्शन, ३ सम्यक् चारित्र, इन तिनोमेंसूं प्रथम ज्ञानका स्वरूप संक्षेपसें लिखते हैं ॥श्लोक॥ यथावस्थिततत्त्वानां, संक्षेपाद्विस्तरेण वा ॥ योवबोधस्तमत्राहुः, सम्यग्ज्ञानं मनीषिणः ॥ १ ॥ अस्यार्थः– यथावस्थित नय प्रमाणों करकें प्रतिष्ठित है स्वरूप जिनका, असें जो जीव, अजीव, आश्रव, संवर, निर्ज्जरा, बंध, मोक्ष रूप सप्त तत्त्व, तथा प्रकारांतरें पुण्य पापके अधिक होनेसें नव तत्त्व होते हैं, इनका जो अवबोध अर्थात् ज्ञान सो सम्यक् ज्ञान जाननां. अरु वह जो ज्ञान है, सो क्षयोपशमके विशेषसें किसी जीवकों संक्षेप करकें अरु किसी जीवकों विस्तार करकें होता है. इन नव तत्त्वोंमें प्रथम जो जीवतत्त्व है तिसका स्वरूप असा है कि जीव कहो अथवा आत्मा कहो यह दोनो एकही वस्तुके नाम है.

प्रश्नः– जैनमतमें आत्माका क्या लक्षण है ?

उत्तरः–चैतन्य लक्षण है,

प्रश्नः– जैनमतमें जीव प्राणी आत्मा किसकों कहते है ?

उत्तरः–॥ श्लोक ॥ यः कर्त्ता कर्मजेदानां, जोक्ता कर्मफलस्य च ॥ संसर्त्ता परिनिर्वाता, सह्यात्मा नान्यलक्षणः ॥ १ ॥ इस श्लोकसें जान लेनां, इसका जावार्थ कहते हैं, कि जो मिथ्यात्वादिकों करकें कलुषित अर्थात् मैला हो करकें वेदनीयादिक कर्मोंका कर्त्ता, (करनेवाला) अरु तिन अपने करे हूये कर्मोंका जो फल सुख डुःखादिक तिनोंका जोगनेवाला, अरु नारकादि जावों विषे कर्म विपाकके उदय करकें जो ज्रमण करनेवाला अरु सम्यक्दर्शनादि तीन रत्नोंके उत्कृष्ट अज्यास करकें संपूर्ण कर्मांशको दूर करकें जो निर्वाण रूप होनेवाला, सोइ प्राणी है, सोइ जीव हैं, सोइ आत्मा है, यह नंदीसूत्रमें लिखा है. आत्माकी सिद्धि चार्वाकमतखंमनमें लिख आये हैं. जे कर आत्माकी सिद्धि विशेष करकें देखनी होवे, तदा शुऊांजोनिधि, गंधहस्ती महाजाष्य देख लेनी. यह आत्मा सर्व व्यापी जी नहीं है, औ एकांत नित्य, कूटस्थजी नहीं है, एकांत अनित्यक्षणिकजी नहीं है, किंतु

शरीरमात्रव्यापी कथंचित् नित्यानित्य रूप है. इनका खंमन मंमन स्या द्वादरत्नाकर, स्याद्वादरत्नाकरावतारिका, अनेकांतजयपताका प्रमुख शास्त्रोंसें देख लेनां. इस वास्ते मेंनें नहीं लिखा है. जो ग्रंथ बडा जारी हो जावेगाः अरु पढनेवाले आलस कर जायेंगे.

तहां जे जीव हैं सो दो प्रकारके हैं. एक मुक्त रूप, दूसरा संसारी, यह दोनोंही प्रकारके जीव अनादि अनंत है. अरु ज्ञान दर्शन इनका लक्षण है, अरु जो मुक्त स्वरूप आत्मा है वो सर्व एक स्वजाव है. जन्मादि क्लेशों करकें वर्जित है अनंत दर्शन, अनंत ज्ञान, अनंतवीर्य, श्रो अनंत आनंदमय स्वस्वरूपमें स्थित है, निर्विकार निरंजन ज्योतिःस्वरूप है.

अरु जो संसारी जीव हैं, सो दो प्रकारकें हैं. एक स्थावर, दूसरा त्रस, उसमें स्थावरके पांच जेद हैं, १ पृथिवीकाय, २ अप् काय, ३ तेजस्काय ४ वायुकाय, ५ वनस्पतिकाय. तथा त्रस जीवके चार जेद हैं. १ दोइंद्रिय, २ तीनइंद्रिय, ३ चारइंद्रियः ४ पांचइंद्रिय. स्थावर जो हैं सो सर्व एकही स्पर्शेंद्रिय वाले हैं. कृमी, गंमोला, जलोक, सुंमी, इत्यादि जीव एक स्पर्शन अर्थात् शरीर इंद्रिय, दूसरा रसनेंद्रिय अर्थात् मुख, इन दो इंद्रिय वाले हैं. कीडी, जू, सुरसली, ढोरा, इत्यादि जीव, दो पूर्वोक्त अरु एक नासिका, यह तीन इंद्रियवाले हैं. माखी, भ्रमर, सहेतकी माखी, कंमु, धमडी, वींछू, इत्यादि जीव, तीन पूर्वोक्त अरु चउथा नेत्र, इन चार इंद्रिय वाले हैं. नारक, तीर्यंच, मनुष्य, अरु देवता, ये पंचेंद्रिय जीव हैं. यह सर्व स्पर्शन, रसना, घ्राण, नेत्र, कान, इन पांच इंद्रिय वाले हैं. स्थावर जीव दो तरेके हैं, एक सूक्ष्म नामकर्मके उदयवाले सूक्ष्म, दूसरा बादर नामकर्मके उदय वाले बादर, यह जो स्थावर अरु त्रस जीव है, सो समुच्चय पर्याप्ति वाले हैं. इन छ पर्याप्तिका नाम लिखते हैं. १ आहारपर्याप्ति, २ शरीरपर्याप्ति, ३ इंद्रियपर्याप्ति, ४ श्वासोश्वासपर्याप्ति, ५ जाषापर्याप्ति, ६ मनःपर्याप्ति

अथ पर्याप्तिका स्वरूप लिखते हैं. आहार (जोजन) तिसके ग्रहणकी जो शक्ती, तिसका नाम आहारपर्याप्ति कहते हैं. २ शरीर रचनेकी जो शक्ति, तिसका नाम शरीरपर्याप्ति कहते हैं. ३ इंद्रिय रचनेकी शक्ती, सो इंद्रियपर्याप्ति है. ऐसेंही सर्वत्र जान लेनां. जिस जीवके पूर्वोक्त छ शक्ती अपूरी है, उसकूं अपर्याप्ति कहते हैं. स्थावर जीवोंमें आदिकी चार पर्याप्ति

ति है अरु दोइंद्रिय, तीनइंद्रिय चौरिंद्रिय, इन जीवोंमें एक मन विन पांच पर्याप्ति हैं. पंचेंद्रिय जीवोंमें व्ही पर्याप्ति है. १ पृथिवीकाय, २ जलकाय, ३ तेजस्काय, ४ वायुकाय, (पवन) इन चारोमें असंख्य जीव हैं. तथा वनस्पतिकायमें जो प्रत्येक वनस्पति है, उसमें तो असंख्यजीव हैं. अरु साधारण वनस्पतिमें अनंत जीव हैं. इन स्थावर अरु त्रसोंके जघन्य तो चौदह भेद हैं. मध्यम (५६३) भेद हैं. अरु उत्कृष्ट अनंत भेद हैं. तिनमें मध्यम चौदह भेद नरक वासीयोंके हैं. अमतालीश भेद तिर्यंच गतिवालोंके हैं, श्रौ तीनसो तीन भेद मनुष्यगति वालोंके हैं. (१ए७) भेद देवगति वालोंके हैं. यह सर्व मध्यम भेद (५६३) हैं. इनका विचार पूरा देखनां होवे, तदा प्रज्ञापन्न सिद्धांत, तथा जीव समास प्रकरणादि शास्त्रोंसें देख लेनां.

प्रश्नः– हे जैन! दो इंद्रियादिक जीव तो जीव लक्षण संयुक्त होनेसें जिव सिद्ध हो जाते हैं. परंतु पृथिवीआदि पांच स्थावरोंमें जीव कैसें हम मान लेवे? क्योंकि पृथिवी आदिकोंमें जीवका कोइन्नी चिन्ह उपलब्ध नहीं होता है.

उत्तरः–यद्यपि पृथिवी आदिकमें प्रगट जीवके होनेका चिन्ह नहीं दीखता. तोन्नी अव्यक्तपणेमें जीवके चिन्हसें जीव सिद्ध होते हैं. जैसें धत्तूरेके तथा मदिरापानादिकके नशे करकें मूर्छित हूये जीवोंके व्यक्त लिंगके होने तेंन्नी जीवपणा है: तैसेंही पृथिवी आदिककोंन्नी सजीव माननां चाहियें.

प्रश्नः–मदिरेकी मूर्छामें उच्छ्वासादिकोंके देखनेंसें अव्यक्तमेंन्नी चेतना लिंग है. परंतु पृथिवी आदिकोंमें तैसा चेतनताका लिंग कोइन्नी नहीं. तिनकों कैसें चैतन्य माना जावे?

उत्तरपक्षः–जैसें तुमने कहा है.सो अैसें है नहीं. क्योंकि पृथिवीकायमें प्रथम स्व स्व आकारमें रहे हूये लवण. विद्रुम. पाषाणादिकोंको अर्श मांस अंकुरकी तरें समान जातीय अंकुरउत्पत्ति पणा है. वनस्पतिकी तरें चैतन्यपणेका चिन्ह है. इस वास्ते अव्यक्त उपयोगादि लक्षणके होनेसें पृथिवी सचेतन है यह सिद्ध हुआ.

प्रश्नः–विद्रुम पाषाणादि पृथिवी कठिन रूप है. तो फेर कठिन रूप होनेसें कैसें पृथिवी सचेतन हो सक्ती है?

उत्तरः—जैसें शरीरमें अस्थि अर्थात् हाम अनुगत है, सो कठिनजी है तोजी सचेतन है,ऐसेंही जीवानुगत पृथिवीका शरीरजी सचेतन है. अथवा पृथिवी, अप्, तेज, वायु, वनस्पति, इनके शरीर जीव सहित हैं. छेद्य, उत्क्षेप्य, जोग्य, घ्रेय, रसनीय, स्पृश्य, द्रव्य होनेसें सास्ना विषाणादि संघातवत् पृथिवी आदिकोंकों छेद्यत्वादि जो दिखते हैं, तिनकोंको इजी गोप नहीं सक्ता है. अरु यहजी मत कहनां कि पृथिवी आदिकोंको जीव शरीरत्व जो साधनां है, सो अनिष्ट है, क्योंकि सर्व पुद्गल द्रव्यको हम द्रव्य शरीर मानते हैं, अरु जीव सहित तथा जीव रहित जो विशेष है सो ऐसें है शस्त्र करकें अनुपहत जो पृथिवी आदिक हैं सो हाथ पगके संघातवत्. संघात न होनेसें कदाचित् सचेतन है, ऐसेंही कदाचित् शस्त्रोपहत होनेसें हाथादिकोंकी तरें अचेतनजी है, सो अचेतनही है.

प्रश्नः—प्रश्रवणवत् अर्थात् मूत्रकी तरें जीवके लक्षण न होनेसें जल जीव नहीं है.

उत्तरः—हेतु असिद्ध होणेसें यहजी कहनां ठीक नहीं है, तथाहि हाथीका शरीर कलल अवस्थामें (अधुना उत्पन्न होयेकों) द्रवपणा अरु सचेतन पणा देखते हैं, ऐसेंही जलमेंजी जाननां. तथा अंडेमें रस मात्र है परंतु अवयव कोइ उत्पन्न हूआ नहीं. औ व्यक्त (हाथ पगादिक) जी नहीं, तोजी सचेतन है, इस उपमासें जलजी सचेतन है. यह इसमें प्रयोग है. शस्त्र करकें अनुपहत हूआ द्रवरूप होनेसें हस्तिशरीरके उपादानजूत कललवत् जल सचेतन है. इस हेतुमें विशेषणके उपादानसें अर्थात् ग्रहणेसें प्रश्रवण दूधादिकोंमें व्यजिचार नहीं. तथा अनुपहत द्रव होनेसें अंडेमें रहे कललवत् सात्मक जल है. तथा हिमादि किसीक अवस्थामें अप्काय होनेसें इतर उदकवत् सचेतन है. तथा किसी जगे जूमि खननेंसें स्वाजाविक संजव होनेसें मंमकवत् सचेतन जल है, अथवा आकाशमें उत्पन्न हूआ जल बादलादि विकारके हूवा स्वतःही अर्थात् आपही उत्पन्न हो करकें पडनेंसें मत्स्यवत् सचेतन है, तथा शीतकालमें बहुत शीतके पडते हूये नदी आदीकोंमें अल्पके हूयां अल्प अरु बहुतके हूयां बहुत उष्मा देखते हैं,सो उष्मा सजीव हेतुकही है. अल्पबहुत मिश्रित मनुष्योंके शरीरोंसें जैसें अल्प बहुत उष्म होता है. जलमें शीत स्प

शेही हें, ऐसें वैशेषिक कहते हें; तथा शीतकालमें शीतके बहुत पडनेसें प्रातःकालमें तलावादिकोंके पश्चिम दिशामें खडे हो कर जब तलावादि देखियें, तदा तिस जलसेंती निकलता हूआ वाष्पका समूह दिखता है, सो भी जीवहेतुकही हे; तिसका प्रयोग ऐसे हें कि शीतकालमें जो वाष्प हे, सो उष्ण स्पर्शवाली वस्तुसें होता हे. वाष्प होनेसें शीत कालें शीत जल करकें सींचे हूए मनुष्य शरीर वाष्पवत् अरु जो उकुरिका कूडे कचवरमें सें धूंआ वाष्प निकलता है, तहांभी हम पृथिवीकायके जीव मानते हें. इन हेतुओंसें जल सजीव सिद्ध होता हे.

प्रश्नः—तेजस्कायमें जीव किस तरें सिद्ध होता हे ?

उत्तरः—जैसें रात्रिमें खद्योतका शरीर जीव शक्तिसें बना हूआ, प्रकाश वाला हे, ऐसें अंगारादिकभी प्रकाशमान होनेसें सचेतन हे. तथा जैसें ज्वरकी उष्मा जीवके प्रयोग विना नहीं होती, ऐसेंही अग्निमेंभी गरमी जीवोंके वीना नहीं हे. क्योंकि मृतकके शरीरमें ज्वर कदापि नहीं होता हे. ऐसें अन्वय व्यतिरेक करकें अग्नि सचित्त जाननी. यहां यह प्रयोग हे कि आत्माके संयोगसें प्रगट भया हे अंगारादिकोंको प्रकाश परिणाम शरीरस्थ होनेसें खद्योत देह परिणामवत्. तथा आत्मा संयाग पूर्वक शरीरस्थ होनेसें ज्वरोष्मवत् अंगारादिकोंमें उष्णता हे. ऐसेंभी मत कहनां कि सूर्यके उष्मके साथ अनेकांतिक हेतु हे; तो सूर्यादिकोंमें जो उष्मा हे, सो भी आत्मसंयोग पूर्वकही हम मानते हें; तथा अग्नि सचेतन हे, क्योंकि यथायोग्य आहारके करनेसें, वृद्धिआदि विकारके उपलंभ होनेसें पुरुषके शरीरवत् इत्यादि लक्षणों करकें अग्निको सचेतनता हे.

प्रश्नः—वायुकायमें (पवनमें) सचेतनताकी सिद्धि कैसें करोगे ?

उत्तरः—जैसें देवताका शरीर शक्तिके प्रभाव करकें, अरु मनुष्योंका शरीर अंजनादि विद्यामंत्रके प्रभाव करकें अदृश्य हो जानेसें नेत्रोंसें नहीं दिखता. तोभी विद्यमान चेतना वाला हे, ऐसें सूक्ष्म परिणाम होनेसें परमाणुकी तरें वायुकाय जो नेत्रोंसें नहीं दीखता तोभी विद्यमान चेतना वाला हे. तथा अग्नि करकें दग्ध पाषाण खंडगत अग्निवत्. प्रयोग यह हे कि चेतनावान् वायु हे, विना दूसरायोंके प्रेरणेसें, नियम करकें तिर्यग्ग

ति होनेसें, गवाश्वादिवत् तिर्यग्गतिके नियम करनेसें, परमाणुके साथ व्य
भिचार नहीं. असें वायु शस्त्र करकें अनुपहत सचेतन है.

५ अरु वनस्पतिमें तो प्रत्यक्ष प्रमाणसें जीव सिद्धही है. इस वास्ते
यहा विस्तारसें नहीं लिखा. आगमभी सर्वज्ञके कथन करा हूआ पृथिवी
जल, अग्नि, पवन अरु वनस्पतिमें जीवका होनां कहता है. अरु जो
कोइ द्वींद्रिय, त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय अरु पंचेंद्रियमें जीव नहीं मानते है,
तो तिन मूढोंके न माननेसें कुछ हानी नहीं, यह संक्षेपसें जीवोंका स्वरू
प लिखा है. जब विस्तारसें देखनां होवे, तब जैनमतके सिद्धांत देख ले
ने ॥ इति प्रथम जीवतत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ दूसरा अजीव तत्त्व लिखते हैं, अजीव उसकों कहते हैं, कि जो
जीवके लक्षणोंसें विपरीत होवे, जो ज्ञानसें रहित होवे,औ जो रूप,रस
गंध, अरु स्पर्शवाला होवे,नर अमरादि भवमें न जावे,अरु ज्ञानावरणीया
दिक कर्मका कर्त्ता न होवे, अरु तिनोके फलका भोगने वाला न होवे, ज
डस्वरूप होवे, तिसकों अजीव कहते हैं, सो अजीव द्रव्य पांच प्रकारके
हैं उसका नाम कहते हैं, १ धर्मास्तिकाय, २ अधर्मास्तिकाय, ३ आका
शास्तिकाय, ४ पुद्गलास्तिकाय, ५ काल.

१ तिनमें जो धर्मास्तिकाय है, सो लोकव्यापी है, औ नित्य है, अव
स्थित है, अरूपी है, असंख्य प्रदेशी है, जीव अरु पुद्गलकी गतिमें उपष्टं
भक है, यद्यपि जीव अरु पुद्गल स्वशक्तिसें चलते हैं, तोभी चलनेमें धर्मास्ति
काय अपेक्षा कारण है. जैसें मछी जलमें तरती तो अपनी शक्तिसें है, प
रंतु अपेक्षा कारण जल है. असेंही जीव पुद्गलकों गति सहायक धर्मा
स्तिकाया है. जहां लगि यह धर्मास्तिकाया है, तहां लगि लोककी मर्यादा
है. जे कर धर्मास्तिकाया न मानीयें, तो लोकालोककी मर्यादा न रहेगी. अ
रु जहां लगि धर्मास्तिकाया है, तहां लगि जीव पुद्गल गति करते हैं. इस
का पूरा स्वरूप जैनमतके ग्रंथ पढे विना नहीं जान सक्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

२ दूसरा अधर्मास्तिकाय द्रव्य है. इसका सर्व स्वरूप धर्मास्तिकायकी तरें
जाननां. परंतु इतना विशेष है, कि यह द्रव्य, जीव पुद्गलकों स्थिति सहा
यक है. जैसें पथिक जन जब चलता चलता थक जाता है, तब किसी वृ
क्षादिककी छायामें बैठता है,सो बैठना तो वो आपही है,परंतु आश्रयभिन

नहीं बैठ सक्ता है, ऐसेंही जीव पुद्गल स्थित तो आपही होते है, परंतु अपेक्षा कारण अधर्मास्तिकाय है ॥ इति अधर्मास्तिकाय ॥

३ तीसरा आकाशास्तिकाय द्रव्य है, इसका स्वरूपभी धर्मास्तिकायवत् जाननां, परंतु इतनां विशेष है कि यह द्रव्य लोकालोक सर्वव्यापी है, अरु अवगाह दान लक्षण है. जीवपुद्गलके रहनेमें अवकाश दाता है, यह तीनों द्रव्य आपसमें मिले हूये हैं. जहां लगि आकाशमें धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय है, तहां लगि लोक है, अरु जहां केवल एकला आकाशही है, और कोइ वस्तु नहीं, तिसका नाम अलोक है. इति आकाश द्रव्यं.

४ चउथा पुद्गलास्तिकाय द्रव्य है, पुद्गल नाम परमाणुओंकाभी है, अरु जो परमाणुओंका घट पटादि कार्य है, उसकोंभी पुद्गलही कहते है, एक परमाणुमें एक वर्ण है, एक रस है, एक गंध है, दो स्पर्श है, ओ कार्यही जिनका लिंग है, वर्णसें वर्णांतर, रससें रसांतर, गंधसें गंधांतर, स्पर्शसें स्पर्शांतर हो जाते हैं, यह परमाणु द्रव्यरूप करकें अनादि अनंत है, पर्यायस्वरूप करकें सादि सांत है, इन परमाणुओंका जो कार्य है, सो कोइक प्रवाहसें तो अनादि अनंत है, अरु कोइ सादि सांतभी है, जो यह जड दीखता है, सो सर्व इन परमाणुओंका कार्य है. सूकी हुइ वनस्पति सर्व अरु अग्नि आदिक शस्त्रों करकें परिणामांतरकों प्राप्त हूये पृथिव्यादिक सर्व पुद्गल हैं, समुच्चय पुद्गल द्रव्यमें पांच वर्ण, पांच रस, दो गंध, आठ स्पर्श, पांच संस्थान, उसमें काला, नीला, रक्त, पीत, शुक्ल, यह पांच तो वर्ण है. तीक्ष्ण, कडुआ, कषाय, खाटा, मीठा, यह पांच रस है. सुगंध, दुर्गंध, यह दो प्रकारकी गंध है. खरखरा अर्थात् कठोर, सुकोमल, हलका, भारी, शीत, उष्ण, चीकणा, रूखा, यह आठ स्पर्श है. इनसें अधिक जो वर्णादि है, सो सर्व इनहीके मिलनेसें हो जाते हैं. इन पुद्गलोमें अनंत शक्तियां अनंत स्वभाव हैं. १ द्रव्य, २ क्षेत्र, ३ काल, ४ भाव, इत्यादि तीस तिस निमित्तोंके मिलनेसें विचित्र परिणाम हो जाते हैं, इति पुद्गलद्रव्यं ॥ ४ ॥

५ पांचमा कालद्रव्य है, सो प्रसिद्ध है. यह पांच द्रव्य अजीव है, सो निमित्त जैन श्वेतांबराचार्य श्रीसिद्धसेनदिवाकरकृत सम्मतितर्क ग्रंथमें पांच लिखे हैं. सो कहते हैं, १ काल, २ स्वभाव, ३ नियति, ४ पूर्वकृत

कर्म, ५ पुरुषाकार. इन पांचोंमेंसूं एककों माने, तो वो मिथ्याज्ञान मिथ्यादृष्ट है, अरु इन पांचोंके समवायकों माने, तो सम्यक्ज्ञान सम्यक्दृष्ट है, इन पांच निमित्तोमेंसूं १ काल, २ स्वजाव, ३ नियति, इन तिनो निमित्तोंका स्वरूप क्रियावादिके मतमें लिख आये हैं. अरु चउथा पूर्वकृत कर्म, उनका स्वरूप आगें कर्मोके स्वरूपमें लिखेगें. अरु पांचमा पुरुषाकार, सो जीवके उद्यमका नाम है. इन पांचों निमित्तोंसें जगत्की प्रवृत्ति निवृत्ति हो रही है, इन निमित्तोंहीसें नरकादि गतियोमें जीव जाते हैं, अरु सुख डुःखका फल जोगते हैं, इन निमित्तोके विना फलका दाता ईश्वरादिक कोइजी नहीं, जे कर कोइ वादी इन पांचो निमित्तोंके समवायकों ईश्वर माने, तव तो हमजी ईश्वर कर्त्ता मान लेवेंगें, क्योंकि जैनमतकी तत्त्वगीतामें लिखा है, कि अनादि जो ड्रव्यमें ड्रव्यत्व शक्ति है, सोइ सर्व पदार्थोंको उत्पन्न करती है,औ लयजी करती है, सो शक्ति चेतन्याऽचेतन्यादि अनंत स्वजाव वाली है, तिसकों कर्त्ता ईश्वर माननेंसें जैनमतकी कुछ हानी नहीं है ॥ इति अजीवतत्त्वं संपूर्ण ॥ २ ॥

३ अथ पुण्यतत्त्व लिखते हैं. प्रथम तो पुण्य उपार्जन करनेका नव कारण हैं, "उक्तं च स्थानांगसूत्रे ॥ अन्नपुणे पाणपुणे वत्थपुणे लेणपुणे सयणपुणे मणपुणे वयपुणे कायपुणे नमोक्कारपुणे इति सूत्रं ॥" व्याख्याः–१ पात्रकेतांइ अन्नका दान करनेसें जो तीर्थंकर नामादि पुण्य प्रकृतिका वंध होवे, तिसका नाम अन्न पुण्य है. ऐसेंही २ पीनेंकों जल देवेः३ वस्त्र देवे,४ रहनेकों स्थान देवेः ५ सोने बैठनेकों आसन देवे, ६ गुणिजनकों देख कर मनमें तोष धरे, ७ वचन करकें गुणिजनोंकी प्रशंसा करे, ८ काया करकें पर्युपासन अर्थात् सेवा करे, ९ गुणिजनकों नमस्का करे. यह वात पुण्यकी जो कही, सो कुछ जैनीयोंकेही देनेसें नहीं, किंतु कीसी मत वाला कोइ क्यों न हो, कोइजी अनुकंपा करकें जिसकों दान देवेगा, वो पुण्य उपार्जेगा, परंतु इतना विशेष है, कि पात्रकों जो दान देना है, सो पुण्य अरु मोक्ष इन दोनोकाही हेतु है, अरु जो अनुकंपा करकें सर्वजनोंकों देवेगा, सो केवल पुण्यही उपार्जेगा. जैनमतके किसी शास्त्रमें पुण्य करना निषेध नहीं. क्योंकि जैनमतके ऋषजदेवादि चोवीश तीर्थंकर जये हैं, उनोंनेंजी दीक्षा लेनेसें पहिलां एक क्रोम, आठ लाख, सोनइये दिन दिन

प्रति एक वर्ष तांइ दीये है. इसी कारणसें जैनमतमें प्रथम दानधर्म है. तथा जैनमतके शास्त्रमें औरजी केई तरेंसें पुण्यका उपार्जन लिखा है.

अथ पुण्यका फल बेंतालीस प्रकार करकें नोगनेंमें आता है, सो बेंतालीस प्रकार लिखते हैं. १ जिसके उदयसें जीव शाता नोगता है, सो शातावेदनीय, २ जिसके उदयसें जीव क्षत्रियादि उच्च कुलमें उत्पन्न होता है, सो उच्चगोत्र, ३ जिसके उदयसें जीव मनुष्य गतिमें उत्पन्न होता है, सो मनुष्यगति, ४ जिसके उदयसें जीव देवगतिमें उत्पन्न होता है, सो देवगति, ५ जिसके उदयसें जीव अपांतराल गतिमें नियतदेश अनुश्रेणी गमन करता है, अरु नियत मर्यादापूर्वक अंगोका विन्यास, अर्थात् स्थापन करनेवाली नामकर्मकी प्रकृतिको अनुपूर्वी कहते हैं, उसमें जो मनुष्य गतिमें आने वाली जीवके उदयमें है, सो मनुष्यानुपूर्वी, ऐसेही ६ देवानुपूर्वी, ७ जिसके उदयसें जीव पंचेंद्रिय पणा पाता है, सो पंचेंद्रिय जाति. अथ पांच शरीर कहते हैं. ८ जिसके उदयसें जीव औदारिक वर्गणाके पुजलोंको ग्रहण करकें औदारिक शरीरकी रचना करता है, अर्थात् औदारिक शरीर पणे परिणाम करता है, सो औदारिक शरीर नामकर्मकी प्रकृति है. ऐसेंही ए वैक्रियक, १० आहारिक, ११ तैजस, १२ कार्मण, इन पांचो शरीरोंकी प्रकृतियोंका अर्थ कर लेना. तथा अंगोपांग तीन है, उसमें अंग सो शिर प्रमुख, उपांग सो अंगुली प्रमुख हैं, शेष अंगोपांग हैं, यथा १ शिर, २ गती, ३ पेट, ४ पीठ, ६ दो बाहु, ८ दो साथलां, यह आठ अंग हैं, तथा अंगुल्यादि उपांग है, शेष नखादि अंगोपांग है, जिसके उदयसें जीवको आदिके तीन शरीरोंमें अंगोपांगकी उत्पत्ति होवे, तिसका नाम तिन शरीरके अंगोपांग है सो यह है, १३ औदारिक अंगोपांग, १४ वैक्रिय अंगोपांग, १५ आहारक अंगोपांग. १६ जिसके उदयसें जीव आदिका संहनन जिसका नाम वज्रऋषभनाराच है. तहां वज्र नाम कीलीका है. अरु ऋषभ नाम परिवेष्टन पट्ट अर्थात् उपर लपेटनेका हाड. तथा नाराच सो मर्कटबंध इन तीनों रूपो करके जो उपलक्षित है, तिसको वज्रऋषभनाराच संहनन कहते हैं. हाडके संचय सामर्थ्यका नाम संहनन है. यह संहनन औदारिक शरिरवालोंमेंही होता है, १७ जिसके उदयसें जी

वकों आदिके समचतुरस्र संस्थानकी प्राप्ति होवें, तहां सम हैं चारों अस्र जिसके तुल्य शरीर लक्षण युक्त प्रमाण सहित, ऐसा आद्य संस्थान सुंदराकार मनोहर होवे, सो समचतुरस्र संस्थान नाम कर्मकी प्रकृति जाननी. अब वर्ण, रस, गंध स्पर्श, यह चारों कहते हैं. तिनमें जिसके उदयसें १७ वर्ण कृष्णादिक, १८ रस तिक्तादिक, १९ गंध सुरभ्यादिक, २१ स्पर्श मृदुआदिक, यह चारों शुभ होवे, सो वर्णादि चार प्रकृति जाननी. २२ जिस कर्मप्रकृतिके उदयसें जीवका शरीर न तो भारी होवे, जिसकों जीव उठा न सके, अरु नतो हलका होवे, जो पवन करकें उड़ जावे, तिसका नाम अगुरु लघु है, तिसकी प्राप्ति होवे, सो अगुरुलघु नामकर्म, २३ जिसके उदयसें प्राणी परकों हणे, अरु शरीरकी आकृति ऐसी होवे जिसके देखनेंसें दूसरोंकों अभिभव होवे, सो पराघात नामकर्म, २४ जिसके उदयसें उच्छ्वासन लब्धि अर्थात् उच्छ्वास लेनेकी शक्ति आत्माकों होती है, सो उच्छ्वास नामकर्म, २५ जिसके उदयसें जीव प्रकाश अरु आतप शरीर पावे है, तिसका नाम आतप नामकर्म, २६ जिसके उदयसें जीव, उष्ण प्रकाशरूप उद्योत वाला शरीर पाता है, सो उद्योत नामकर्म, २७ जिस कर्मके उदयसें जीव विहायनाम आकाशका है, तिसमें जो गति सो विहायोगति, सो राजहंस सरखी गति होवे, सो सुविहायोगति नामकर्म, २८ जिसके उदयसें जीवके शरीरके अंगोपांगादिकोंकों नियतस्थानमें स्थापने वाला सूत्रधार (कारीगर) समान अर्थात् नसा, जाल, माथेकी खोपरीके हाड़, आंख, कानके पड़दे, केश, नखादि सर्व शरीरके अवयवोकों रचनेवाला निर्माण नामकर्मकी प्राप्ति होवे सो निर्माण नामकर्म, २९ जिसके उदयसें जीवकों त्रस पणेकी प्राप्ति होवे, उष्णादि करकें तप्त हूआ विवक्षित स्थानसें छायादिकमें जानां, श्रौ दो इंद्रियादिक पर्यायका जो फल भोगनां पावे, सो त्रस नामकर्म, ३० जिसके उदयसें जीव बादर अर्थात् स्थूल शरीर वाला होता है, सो बादर नामकर्म, ३१ जिस कर्मके उदयसें जीव छ पर्याप्ति पीछें कही है वो पूर्ण करता है, सो पर्याप्तनामकर्म, ३२ जिसके उदयसें प्रत्येक एक एक जीवके एक एक शरीर होता है. सो प्रत्येक नामकर्म, ३३ जिसके उदयसें जीवकों हाडादि अवयव स्थिर निश्चल होते हैं, सो स्थि

र नामकर्म, ३४ जिसके उदयसें जीवके शीर प्रमुख अवयव शुभ होते हैं, सो शुभनामकर्म, ३५ जिसके उदयसें जीव सौभाग्यवान् होता है, सो सुभगनामकर्म, ३६ जिसके उदयसें जीवकां स्वर कोकिलावत् रमणिक होवे, सो सुस्वर नामकर्म, ३७ जिसके उदयसें जीवका उपादेय वचन होवे, जो कुछ कहे सो हो जावे, सो आदेय नामकर्म, ३८ जिसके उदयसें जीवकी विशिष्ट कीर्त्ति (यश) जगत्में विस्तरे, सो यशोनाम कर्म, ३९ जिसके उदयसें जीवकों चोशठ इंद्र पूजा करते हैं, अरु उपदेश द्वारा धर्म तीर्थका कर्त्ता होवे, सो तीर्थंकर नामकर्म, ४० तिर्यंचोंका आयु, ४१ मनुष्यायु, ४२ देवायु. आयु उसकों कहते हैं कि जिसके उदयसें तिर्यंचादि भवमें जीव जाता है, जिस्सें यह पूर्वोक्त तीन आयुकी जीवकों प्राप्ति होती है, सो तीन आयुकी प्रकृति जाननी. यह बेंतालीस प्रकार करकें पुण्य फल भोगनेमें आता है ॥ इति पुण्यतत्त्वं संपूर्ण ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा पापतत्त्व लिखते हैं. पाप उसकों कहते हैं, कि जो आत्माका आनंद रस पीवे, यह पाप जो है, सो पुण्यसें विपरीत नरकादि फलका प्रवर्त्तक होनेसें अशुभ है, आत्माके साथ संबंध है, कर्मपुद्गलस्वरूप है, यद्यपि बंधतत्त्वके अंतर्भूतही पुण्य पाप है, तोभी न्यारे जो कहे हैं. सो पुण्य पाप विषे नानाविध परमतभेद निरासार्थ है, सो परमत यह है. सो कहते हैं. कोइक मत वालोंका यह कहनां हैं, कि एक पुण्यही है, परंतु पाप नहीं. तथा कोइक मतवाले कहते हैं, कि एक पाप ही है, परंतु पुण्य नहीं. तथा कोइक कहते हैं कि पापपुण्य दोनों आपसमें अनुविद्ध स्वरूप हैं, मेचक मणि सरीखे, सो मिश्र सुख दुःख फलके हेतु हैं. इस वास्ते साधारण पुण्य पाप एक वस्तु है. कोइक ऐसें कहते हैं कि मूलसेंती कर्मही नहीं है, सर्व जगत्में स्वभावसेंही विचित्रता सिद्ध है. यह सर्व पूर्वोक्त मत मिथ्या हैं, क्यों कि सुख दुःख दोनों न्यारे न्यारे अनुभवमें आते हैं, तिस वास्ते तिनके कारणभूत पुण्य पापभी स्वतंत्रही अंगीकार करणे योग्य हैं, परंतु एकिला पाप वा एकिला पुण्य वा मिश्रित मानने ठीक नहीं.

अथ कर्माभाववादी नास्तिक अरु वैदांतिक कहते हैं, कि पुण्य पाप जो

हैं, सो आकाशके फूल सदृश असत् जानने; परंतु सत् नहीं, तो ... पापके फल जोगनेके स्थान नरक स्वर्ग क्यों कर माने जावे?

उत्तरः—पुण्य पापके अजावसें सुख दुःख निर्हेतुक होनेसें उत्पन्न चाहियें, सो प्रत्यक्ष विरोध हे, सोइ दिखाते हैं, मनुष्यपणा सदृश है, ... जीकोइ स्वामी हे, कोइ दास हे, कोइ अपणाही उदर जर सके हैं, ... अपणाजी उदर नहीं जर सके हैं, कोइ देवताकी तरें निरंतर सुख ... विलास करते हैं, कितनेक नारकीकी तरें दुःख जोग रहे हैं, इस वा... नुजूयमान सुख दुःखांके निबंधनजूत पुण्य पाप जरूर मानने चाहियें. ... प पुण्य पाप माने, तब तिनोंके उत्कृष्ट फल जोगनेके स्थान जो नरक ... गें हैं, सोजी माने गये, जे कर न मानोगे, तब अर्द्ध जरतीय न्यायका ... संग होवेगा, आधा शरीर बूढा, आधा जुवान. इसमें यह प्रयोग अर्थात् ... नुमानजी हे, सुख दुःख कारण पूर्वक हैं, अंकुरवत् कार्य होनेसें इसीवास्ते जे सुख दुःखके कारण हैं, सो मानने चाहियें. जैसें अंकुरका बीज.

पूर्वपक्षः— नीलादिक जे मूर्त्त पदार्थ हैं, जैसें वे नीलादिक स्वप्रतिजासि अमूर्त्त ज्ञानके कारण हैं, ऐसेंही अन्न, फूल माला, चंदन, स्त्रीयादि मूर्त्त दृश्यमानही सुख अमूर्त्तोंके कारण होवेंगे. सर्प विष, कंटकादि ... खोंके कारण हैं, तो फेर काहेकों अदृष्ट पुण्य पापोंकी कल्पना करते हो?

उत्तरपक्षः—यह तुमारा कहनां अयुक्त हे, क्योंकि इस कहनेमें व्यजिचा र है, तथाहि ॥ दो पुरुषोंके पास तुल्य साधनजी हे, तोजी फलमें बड़ा जेद दिखता हे, तुल्य अन्नादिके जोगनेमेंजी किसीकों आल्हाद अर्थात् हर्ष दिखता हे अरु दूसरेकों रोगोत्पत्ति देखते हैं, यह फलजेद अवश्य स... कारण हे, नहीं तो नित्य सत् नित्य असत् होनां चाहियें, क्योंकि जो व स्तु कार्य कदे होवे, कदे न होवे, सो कारणके विना नहीं होता हे, अथ वा कारणानुमानसें कार्य पुण्य पाप जाने जाते हैं, तहां कारणानुमान य ह हे, कि दानादि शुजक्रियाका अरु हिंसादि अशुजक्रियाका फलजूत कार्य कारण होनेसें हे. कृष्यादि क्रियावत्. जो इन क्रियायोंका फलजूत कार्य हे, सो पुण्य पाप जानने. जैसें खेती करनेवालेकी क्रियाका फल शालि, यव, गेहुं, आदिक हे.

पूर्वपक्षः—जैसें कृष्यादि क्रियाका दृष्ट फल शाल्यादिक हे, तैसें दाना

दिक पशु हिंसादिक क्रियाकाजी श्लाघा मांसजक्षी नीर्दय आदि दृष्ट फलही है, तो फेर काहेकों अदृष्ट धर्माधर्मका फल कल्पना करनां? क्योंकि लोक जो हैं सो बाहुल्यता करकें दृष्ट फलमेंही प्रवृत्त होते हैं, खेती वणिज्यादि हिंसादिक क्रियामें बहुत लोक प्रवृत्त हेते हैं, अरु अदृष्ट दान फलादि क्रियामें थोडे लोक प्रवृत्त होते हैं. इस वास्ते कृपि हिंसादि अशुज क्रियायोंका अदृष्टफल पापरूप हम नहीं मानते.

उत्तरपक्षः—जे कर तुमारा कहनां ठीक होवे, तव तों परजवमें फलके अजावसें मरणके अनंतरही सर्व जीव विना यत्नके मोक्ष हो जावेंगे, तव तो प्रायः संसार शून्य हो जावेगा, तव संसारमें दुःखी कोइजी न होवेगा, दानादि शुजक्रियाके करने वाले तथा तिसका शुज फल जोगने वाले ही रहने चाहियें, परंतु संसारमें दुःखी बहुत दीखते हैं, अरु सुखी थोडे दीखते हैं, तिस करकें जाना जाता है कि जे कृषी, वाणिज्य, हिंसादिक्रिया निवंधन अदृष्टपाप रूप फल, यह दुःखित जीवोंकों है, अरु सुखी जीवोंकों दानादि अदृष्ट धर्मका फल है.

वादी कहता है कि जो सुखी है, वो हिंसादि क्रियासें है, अरु जो दुःखी है, वो धर्म दानादिकके फलसें है. ऐसें क्यों न हो जावे?

उत्तरः— ऐसें नहीं होता है, क्योंकि अशुजक्रिया हिंसादिकके करने वालेही बहुत हैं; अरु शुजक्रिया दानादिकके करने वाले थोडे हैं, यह कारणानुमान है. अथ कार्यानुमान कहते हैं कि जीवोंकों आत्मत्वके अविशेषजी हूआ नर पश्वादिकोंकी देहोंमें कार्य होनेसें विचित्रताका कारण है, जैसे घटका दंम, चक्र, चीवरादि सामग्री संयुक्त कुंजकार. तथा ऐसें जी मत कहनां कि दीखते जो है माता, पिता, सोइ इस देहके कारण है. नतु पुण्य पाप, ऐसेंजी मत कहनां क्योंकि माता, पिता, एक सरीखेजी है, तोजी पुत्रोंके देहमें विचित्रता देखते हैं, सो विचित्रता अदृष्ट (शुजाशुज कर्मके) विना नहीं हो सक्ती है, इस वास्ते जो शुज देह है, सो पुण्यका कार्य है, अरु जो अशुज देह है, सो पापका कार्य है, यह कार्यानुमान है. सर्वज्ञके वचन प्रमाणसें पुण्य पापकी सत्ता सिद्धही है, विशेषार्थ पुरुषने विशेषावश्यककी टीका देख लेनी.

पाप अठारह प्रकारसें बंधाता हैं, सो व्यासी प्रकारसें जोगनेमें आता

है, सो भेद यह है कि पांच ज्ञानावरण, पांच अंतराय, नव दर्शनावरण, मोहनीकी छवीश प्रकृति, नामकर्मकी चउत्तीस प्रकृति, एक अशातावेदनी, एक नरकायु, एक नीचगोत्र, यह सब मिल कर व्यासी भेद हूये. इनका विवरा लिखते हैं.

अथ ज्ञानावरण कर्मकी पांच प्रकृति. प्रथम ज्ञान पांच प्रकारका है, उसमें मतिज्ञान, औ श्रुतज्ञान, ए दो अभिलाप प्लावितार्थ ग्रहणरूप ज्ञान हैं, तथा तीसरा इंद्रियोंकी अपेक्षा विना आत्माकों साक्षात् अर्थके ग्रहणे वाला ज्ञान, सो अवधिज्ञान, चउथा मनमें चिंतित अर्थका साक्षात् करनेवाला ज्ञान, सो मनःपर्यवज्ञान, पांचमा केवल संपूर्ण निःकलंक जो ज्ञान, सो केवल ज्ञान. इन पांचों ज्ञानोंका जो आवरण सो ज्ञानावरण है, १ मतिज्ञानावरण, २ श्रुतज्ञानावरण, ३ अवधिज्ञानावरण, ४ मनःपर्यवज्ञानावरण, ५ केवलज्ञानावरण. उसमें १ जिसके उदयसें जीव निर्म्मति निःप्रतिभा होता है, सो मतिज्ञानावरण, २ जिसके उदयसें पठन करते जीवकों कुछभी न आवे, सो श्रुतज्ञानावरण, ३ जिसके उदयसें अवधि ज्ञान न होवे, सो अवधिज्ञानावरण, ४ जिसके उदयसें मनःपर्यवज्ञान न होवे, सो मनःपर्यवज्ञानावरण, ५ जिसके उदयसें केवलज्ञान न होवे, सो केवल ज्ञानावरण यह पांच प्रकृति पापरूप है.

अथ अंतराय कर्मकी पांच प्रकृति कहते हैं. १ जिसके उदयसें देनेवाली वस्तुभी है, गुणवान् पात्रभी है, दानका फलभी जाना है, परंतु दान नहीं दे सक्ता है, सो दानांतराय, २ जिसके उदयसें देने योग्य वस्तुभी है, अरु दाताभी वहुत प्रसिद्ध है, तथा मागने वालाभी मांगनेमें वका कुशल है, तोभी मांगने वालेकों कुछभी न मिले, सो लाभांतराय, ३ जिसके उदयसें एक वार भोगने योग्य वस्तु जो आहारादिक, सो विद्यमानभी है, तोभी भोग नहीं सक्ता सो भोगांतराय, ४ जिसके उदयसें वारंवार भोगने योग्य वस्तु जो शयन अंगनादि, सो विद्यमानभी है, तोभी भोग नहीं सक्ता, सो उपभोगांतराय, ५ जिसके उदयसें अनुपहत पुष्टांगवालाभी शक्ति विकल हो जाता है, सो वीर्यांतराय यह पांच प्रकृति पापरूप हैं.

अथ दर्शनावरण कर्मकी नव प्रकृति लिखते हैं. इहां जो सामान्य बोध है, तिसका नाम दर्शन है, अरु जो विशेष बोध है, सो ज्ञान है, तहां ज्ञानका

जो आवरण, सो ज्ञानावरण; सो तो पूर्व लिख आये हैं. अरु जो दर्शन का आवरण है, सो दर्शनावरण इनके नव भेद हैं, तिनमें जो आदिके चार भेद हैं, सो मूलसेंही दर्शन लब्धियोंके आवरक होनेसें आवरण शब्द करकें कहे जाते हैं. जैसें १ चक्षुदर्शनावरण, २ अचक्षुदर्शनावरण, ३ अवधिदर्शनावरण, ४ केवलदर्शनावरण. अरु निद्रादि जे पांच हैं, सो दर्शनावरण क्षयोपशम करकें लब्ध आत्मलाभका दर्शन लब्धियोंका आवरक है, इसका भावार्थ यह है कि चक्षु करकें सामान्यग्राही जो बोध, सो चक्षुदर्शन, सो जिसके उदय करकें तिसकी लब्धिका विघात करे, सो चक्षुदर्शनावरण. ऐसेंही अचक्षु करकें चक्षु वर्जके शेष चार इंद्रिय तथा पांचमा मन, इन करकें जो दर्शन, सो अचक्षुदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अचक्षुदर्शनावरण, तथा रूपी पदार्थोंका जो पर्यादापूर्वक देखनां, सामान्यार्थका ग्रहण करनां, सो अवधिदर्शन, तिसका जो आवरण, सो अवधिदर्शनावरण. तथा वर, प्रधान, क्षायक होनेसें केवल अनंत ज्ञेयके होनेसें जो अनंत दर्शन, सो केवलदर्शन, तिनका जो आवरण,सो केवलदर्शनावरण. अरु जो चैतन्यकों सर्व तरसें अतिकुत्सित पणा करे, सो निद्रा. दर्शन उपयोग सामान्य ग्रहण रूप, तिसका विघ्न करने वाली, सो निद्रा जाननी. तिस निद्राके पांच भेद हैं. १ निद्रा, २ निद्रा निद्रा. ३ प्रचला. ४ प्रचलाप्रचला. ५ स्त्यानर्द्धि. तहां १ निद्रा उसकों कहते हैं, कि जो चपटी वजानेसें जाग उठे,सो सुखप्रतिबोधनिद्रा; जिसके उदयसें ऐसी निद्रा आवे तिसका नाम निद्रा है. तथा २ अतिशय करकें जो निद्रा होवे, उसका नाम निद्रानिद्रा है, जैसेंकि बहुत हलानेसें दुःखें जागे, कपडे खेंचनेसें जागे, जिसका उदयसें ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मप्रकृतिका नाम निद्रानिद्रा है. तथा ३ जो बैठेकों खडेकों जो निद्रा आवे, तिसका नाम प्रचला है. जिस कर्मके उदयसें ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मका नाम प्रचला है. तथा ४ जो चलतेकों निद्रा आवे, तिसका नाम प्रचलाप्रचला है. जिस कर्मके उदयसें ऐसी निद्रा आवे, तिस कर्मकी प्रकृतिका नामभी प्रचलाप्रचला है. तथा ५ स्त्याना नाम है पिंडीभूतका सो पिंडीभूत है ऋद्धि आत्माकी शक्ति जिस निद्रामें सो स्त्यानर्द्धि, तिस निंदमें वासुदेवके बलसें आधा बल होता है, जिस कर्म

के उदयसें ऐसी निंद आवे, तिसका नाम स्त्यानर्द्धिकर्म है, इस निद्रा में कितनेक कार्यभी कर लेता है, परंतु उसकों कुछ खबर नहीं रहती है.

अथ मोहकर्मकी प्रकृति लिखते हैं. मोहे तत्त्वार्थ श्रद्धानकों विपरीत करे, सो मोहनीय है. उसमें १ मिथ्यात्वही जो मोह, सो मिथ्यात्व मोहनीय कहीयें, मोह कर्मकी उत्तरप्रकृति मिथ्यात्व हैं, यद्यपि यह मिथ्यात्व १ अभिग्रहिक, २ अनभिग्रहिक, ३ सांशयिक, ४ अभिनिवेशिक, ५ अनाभोगादि अनेक प्रकारसें है, तोभी यथावस्थित वस्तुतत्त्वके अश्रद्धानसें सर्वभेदोंका एकही मिथ्यात्वरूप गिना जाता है. यह प्रथम मिथ्यात्व मोह कर्मकीप्रकृति है, अरु सोला भेद कषाय मोहनीयके हैं. क्योंकि यह क्रोधादिकभी तत्त्वश्रद्धानसें भ्रष्ट कर देते हैं, सो सोला भेद ऐसें हैं, १ अनंतानुबंधी क्रोध, २ अनंतानुबंधी मान, ३ अनंतानुबंधी माया, ४ अनंतानुबंधी लोभ. ऐसेंही अप्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ. ऐसेंही प्रत्याख्यानी क्रोध, मान, माया, लोभ. ऐसेंही संज्वलन, क्रोध, मान, माया, लोभ. यह सर्व सोलह भेद कषायमोहनीयके हैं.

जे क्रोधादिक अनंत संसारके मूल कारण हैं, अरु अनंतभवानुबंधि जिनका शील है, उसमें जिसका स्वभाव ऐसा है, कि जैसी पत्थरकी रेखा; जिसके साथ क्लेश हो जावे, फेर जहां लगि जीवे, तहां लगि रोष न छोडे, सो अनंतानुबंधि क्रोध है, तथा मान, पथ्थरके स्थंभ सरिखा कदापि नमे नहीं, तथा माया, वांसकी जड समान, कदापि सरल न होवे, तथा लोभ, कृमीके रंग समान, कदापि दूर न होवे, ऐसें क्रोध, मान, माया, अरु लोभ करकें संयुक्त जो परिणाम है, तिसका नाम अनंतानुबंधि क्रोधादिक कर्म प्रकृति है. तथा अप्रत्याख्यान यहां नञ् अल्पार्थ वास्ते है, सो थोडाभी प्रत्याख्यान जिसके उदय होनेसें नहीं होता है, उसकों अप्रत्याख्यान कहते हैं. इसका स्वरूप कहते हैं, क्रोध पृथिवीकी रेखा समान. मान हाडके स्थंभ समान, माया मेषके सींग समान, लोभ कर्दमके दाग समान, एक वर्ष तांइ रहता है. तथा जिसके उदयसें सर्व विरतिरूपा जीवकों न आवे, सो प्रत्याख्यानावरण कषाय है. उसमें क्रोध, रेतुकी रेखा समान. मान, काष्टके स्थंभ समान, माया, गोके मूत्रके समान, लोभ खंजनके रंग समान. चार मास जिसकी रहनेकी स्थिति है. त

सो जुगुप्सानाम मोहकर्मकी प्रकृति है. यह नव नोकषाय मोह कर्मकी प्रकृति हैं, यह सर्व पंतालीस भेद हुये.

अथ नामकर्मकी चउतिस प्रकृति पापरूप हैं, उसका नाम कहते हैं. १ नरक गति, २ तिर्यंचगति, ३ नरकानुपूर्वी, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ एकेंद्रिय जाति, ६ द्वींद्रियजाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रियजाति, १३ पांच संहनन, १८ पांच संस्थान, १९ अप्रशस्त वर्ण, २० अप्रशस्तगंध, २१ अप्रशस्त रस, २२ अप्रशस्त स्पर्श, २३ उपघात, २४ कुविहायोगति, २५ स्थावर, २६ सूक्ष्म, २७ अपर्याप्त, २८ साधारण, २९ अथिर, ३० अशुभ, ३१ असुभग, ३२ दुःस्वर, ३३ अनादेय, ३४ अयशःकीर्ति.

इनका स्वरूप ऐसे है. १नरकगति उसकों कहते हैं कि जिसके उदयसें नारकी नाम पडे, अरु नरकगतिमें ले जावे, २ ऐसेही तिर्यंचगतिभी जान लेनी, तथा ३ जिसके उदयसें नरकगतिमें जाते हूये जीवकों दो समयादि विग्रहगति करकें अनुश्रेणीमें नियत गमन परिणति होवे, सो नरकगतिके सहचारी होनेसें नरकानुपूर्वी कहियें. ४ ऐसेंही तिर्यंचानुपूर्वी भी जान लेनी. तथा ५ जिसके उदयसें एकेंद्रिय जो पृथिवी, जल, अग्नि, पवन, वनस्पति इनमें जीव उत्पन्न होता है,सो एकेंद्रिय जाति, ६ ऐसेंही द्वींद्रिय जाति, ७ त्रींद्रियजाति, ८ चतुरिंद्रिय जाति.

तथा आद्य संहनन वर्जके शेष ऋषभनाराच,नाराच, अर्द्धनाराच,कीलिका सेवार्त, यह पांचो, संहननोंके नाम हैं. इनका स्वरूप ऐसा है कि "ऋषभ परिवेष्टनपट्टः नाराच उभयतोमर्कटबंधः" दोनो हाडोंकों दोनों पासें मर्कटबंधन बांधके पट्टेकी आकृति समान हाडकी पट्टी उपर वेष्टन जिसके है, सो दूसरा ऋषभनाराच संहनन है. तथा वज्र ऋषभ करकें हीन दोनों पासें मर्कटबंध युक्त. तीसरा नाराच नामक संहनन है, तथा एक पासें मर्कटबंध अरु दूसरे पासें कीलि करकें बींध्या हूआ हाड, यह चउथा अर्धनाराचनामा संहनन है, तथा ऋषभ अरु नाराच,इन करकें वर्जित मात्र कीली करकें बींधे हूये दोनों हाड, ऐसा जो हाडका संचय, सो पांचमा किलीकानामा संहनन है, तथा दोनों हाडका स्पर्श पर्यंत लक्षण है जिसमें, अरु मूर्छी चांपी करानेसें आर्त (पीडीत) सो सेवार्त नामा संहनन है.

तथा १८ आद्य संस्थान वर्जके १ न्यग्रोध परिमंडल, २ सादि,३ वामन

४ कुब्ज. ५ हुंडक, यह पांच संस्थान. इनका स्वरूप लिखते हैं. तहां १ न्यग्रोधवत् बडवृक्षकी तरें परिमंमल, न्यग्रोधपरिमंमल. जैसें वडवृक्ष उपरि संपूर्ण अवयववाला होता है, अरु हेठें तसें नहीं होता है, तैसेंही यह संस्थान नाभिके उपरि तो विस्तार वाहुल्य संपूर्ण लक्षणवाला है; अरु नाभिके हेठे संपूर्ण लक्षण नहीं, सो न्यग्रोधपरिमंमल संस्थान दूसरा है. २ तथा सादि आदि इहां उंचपणा नाभिसें हेठला देहका विभाग; सो लक्षणों करकें पूर्ण, अरु नाभिसें उपरि लक्षण विसंवादी होवे, तिसका नाम सादिसंस्थानहै. तथा ३ हाथ, पग, शिर, ग्रीवा, यथोक्त लक्षणादि युक्त, अरु शेष उदरादिरूप कोष्ट शरीरमध्य लक्षणादि रहित, सो वामननामा संस्थान है. ४ तथा उर उदरादि लक्षण युक्त होवे, अरु हाथ पगादि लक्षणों रहित होवे, सोकुब्जसंस्थान हैं, ५ तथा जिसके शरीरका एक अवयवभी सुंदर न होवे, सो हुंमसंस्थान जान लेनां, यहपांचसंस्थान.

२२ जिसके उदयसें वर्णादि चार अप्रशस्त होवे, सो कहते हैं. कि जों अति विभत्स दर्शन, कृष्णादि वर्ण वाला प्राणी होता है, सो अप्रशस्त वर्णनाम. सो वर्ण कृष्णादि भेदों करकें पांच प्रकारका है, तिनो करकें जो जीव युक्त होवे, सो अप्रशस्त वर्णनाम. ऐसेंही जिसके उदयसें कुथित मृतमूशकादिवत् दुर्गंधता प्राणीयोके शरीरमें होवे, सो अप्रशस्तगंधनाम. तथा जिसके उदयसें प्राणीयोंकी देहमें रसनेंद्रियकों दुःखदायी स्वभाववाला कौडीतोरीकी तरें तिक्त कटुकादि ऐसा असार रस होवे, सो अप्रशस्तरस नाम. तथा जिसके वशसें स्पर्शेंद्रियको उपतापका हेतु ऐसा कर्कशादि स्पर्शविशेष, जीवोंके देहमें होवे, सो अप्रशस्तस्पर्शनाम. यहवर्णादिचार.

२३ तथा जिसके उदयसें अपणेही शरीरके अवयवो करकें प्रतीजिह्वा, गल, वृंद, लंवक, चोर दांतादिक शरीरके अंदर वर्द्धमान हो करकें शरीरहीकों पीमा देते हैं, तिसका नाम उपघातनाम. तथा २४ जिसके उदयसें जीवोंकों खर उंटादिककी तरें चलनां, अप्रशस्त होवे, सो कुविहायोगति नाम. तथा २५ जिसके उदयसें पृथिवी आदिक एकेंद्रिय स्थावरकायमें प्राणी उत्पन्न होता है, अरु स्थावरनामसें कहे जाते हैं, सो स्थावरनाम, २६ जिसके प्रभावसें लोकव्यापि सूक्ष्म, पृथिवी आदि जीवोमें जीव उत्पन्न होता है, सो सूक्ष्मनाम. २७ जिसके उदयसें आहार पर्याप्ति आ

दिक पूर्वोक्त पर्याप्ति पूरी न होवे, सो अपर्याप्तनाम. २८ जिसके उद यसें अनंत जीवोंका साधारण एक शरीर होवे, सो साधारण नाम. २९ जिसके उदयसें जिह्वादि अवयव, शरीरमें अस्थिर होवे, सो अस्थिर नाम. ३० जिसके उदयसें नाजिके हेठले अवयव अशुज होवे, सो अशुज नाम. क्योंकि किसीकों हाथ लग जावे, तो रोष नहीं करता, परंतु पग लगनेसें क्रोध करता है, इस वास्ते अशुजनाम है. ३१ जिसके उदयसें जीवकों जो जो देखे, तिस तिसकों वो जीव अनिष्ट लगे, उद्वेगकारी होवे, सो असुजगनाम. ३२ जिसके उदयसें कठोर, जिन्न, हीन, दीन, स्वर वाला जीव होवे, सो दुःस्वरनाम. ३३ जिसके उदयसें चाहो युक्तियुक्तजी बोले, तोजी तिसका कहनां कोइ न माने, सो अनादेय नाम. ३४ जिस के उदयसें जीव, ज्ञान विज्ञान दानादिक गुण युक्तजी है, तोजी जगत्में उसकी यश (कीर्त्ति) नहीं होती बलके उलटी निंदा जगत्में होती है, सो अयशःकीर्त्तिनाम ॥ इति नामकर्मकी चउत्तीस पापप्रकृति कही.

जिसके उदयसें जात्यादि करकें विकल जीव होता है, सो नीचगोत्र जाननां. नीचगोत्र उसकों कहते हैं, कि जो अधम कैवर्त्त, चांमालादि, "कुलं गूयते संशब्द्यतेऽनेन हीनोयमजातिरित्यादि शब्दैरिति गोत्रं कुलं नीच मिति विशेषणाऽन्यथानुपपत्या नीचैर्गोत्रमित्यर्थः"

प्रश्नः– यह जो तुम नीच गोत्रके उदयसें नीच कुल कहते हो, तिनों के साथ खान, पान, नहीं करते हो, तिनोंकी बूत मानते हो, अरु निंदा जुगुप्साजी करते हो, य तुमारी बडी अज्ञानता है, क्योंकि मनुष त्व धर्म करकें सर्व सरीखे हैं, एक सरीखे हाथ पगादि अवयव हैं, तो फेर एककों उंच माननां, तथा एककों नीच माननां, यह केवल ब्राह्मण, और जेनीयोनें बुरी रसम,जारतवर्षमें जारी कर रक्की है, इस बातमें क्या मुक्तिका अंग है,? क्योंकि जारत वर्षीयोंकों वर्जके और सर्व द्वीप द्वीपांतरमें तथा जारतवर्षमेंजी सर्व विलायतादिकमें कोइजी उंच नीच नहीं गिनते हैं, सर्व निवाले प्यालेमें एक है, यह निःकेवल तुमारी मूढता अर्थात् अंध परंपरा है, वास्तवमें उंच नीच कोइजी नहीं.

उत्तरः–यह तुमारा कहनां बहुत बे समजका है, क्योंकि तुम हमारे कहेका अजिप्राय नहीं जानते, हमारा अजिप्राय तो इह है, कि जो इस

जगत्में होता है, सो निमित्तके विना नहीं होता है, यह जो जिल्ल, कोल, धांगड, भाणक, गधीले, चंमाल, थोरी, वाघरी, सांसी, कंजर प्रमुख असन्य जातिके लोक हैं, सो जंगलोंमें गामोंके बाहिर रहते हैं, अनेक प्रकारके क्लेष सहते हैं, काले, दुर्गंधवाले, रूपमें बुरे शरीर पाते है, सुंदर खानेकों नहीं मिलता है, यह सब इनके निमित्त है,? अथवा निमित्त नहीं? जे कर कहोगेकी विनाही निमित्तके होते हैं, तब तो तुम नास्तिक मती हो, इस नास्तिकमतीका खंमन हम पूर्व लिख आये हैं, जे कर कहोंगेकि सनिमित्तक हैं, तब तो ऐसे असन्य जातिके कुलमें उत्पन्न होनेका कारणन्नी जरुर चाहियें. जिसके उदयसें ऐसें कुलमें उत्पन्न होता है, तिसकाही नाम नीचगोत्र है, इस नीचगोत्रके प्रन्नावसें औरन्नी वहुत पाप प्रकृतियोंका उदय है, जिस्सें वे दुःखादि क्लेश पाते हैं. बुद्धिहीन, जालमस्वन्नाव, निर्दयता, कुत्सित आहार, पशुओंकी तरें जंगलोमें वास, धर्मकर्मसें पराङ्मुख, सत्संग रहीत, गम्यागम्यके विवेक रहीत, न्नक्ष्यान्नक्ष्य पेयापेय विचार शून्य, इन सबका मुख्य कारण नींचगोत्र है, जैसेंही धनवान और निर्धन ए दोनों एक सरीखे सर्वथा नहीं हो सक्ते हैं, तैसें नींचगोत्र वाले उंचगोत्र वालोंके सदृश नहीं हो सक्ते हैं.

जे कर कहोगे कि विलायतमें सर्व एक सरीखे हैं, तो इस वातमें क्यों आश्चर्य है,? जहां उंच नीच पणा नहीं, तहां सर्व जीवोने एक सरीखा गोत्रकर्मका बंध करा है, इस वास्तेही सर्व सरीखे हुये हैं, परंतु जहां उंच नीचपणां माना जायगा, तहां अवश्यमेव उंच नीच गोत्रका व्यवहारु जरुर होवेगा, अरु जो हीन जातियोंकों बुरे जानते हैं, सो बुद्धिमान् नहीं, क्योंकि बुराइ तो खोटे कर्मोंके करनेसें होती है, जे कर ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, हो कर खोटे कर्म, जीवहिंसा, जूठ, चोरी, परस्त्रीगमन, परनिंदा, विश्वासघात, कृतघ्न, मांसन्नक्षण, मदिरापान, इत्यादिक जो कुकर्म करेगा, हम उनकों जरुर बुरा मानेंगे, अरु नीच जातिवाला है, सोन्नी जे कर सुकर्म करेगा. दया, सत्य, चोरीका त्याग, परस्त्रीत्याग, इत्यादि करेगा, तो हम अवश्य उसकों अछा कहेंगे, तो फेर हमारी समझ किसी रीतिसें बुरी है, अरु जो उसके साथ खाते नहीं है, यह कुलरूढी है, अरु जो नीच जातिवालोंकी निंदा (जुगुप्सा) करते हैं, अज्ञानी हैं, निंदा जु

गुप्सा तो किसीकीजी करनी न चाहियें. अरु जो तिनकी छूत मानते हैं, वोजी कुलारूढी है, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करकें सरीखे हैं, तोजी जैसें माता, वहिन, बेटी, जार्या, यह सब स्त्रीत्व स्वरूप करके समान हैं, तोजी जैसें अगम्य गम्यका विजाग है, तैसेंही उंच नीचकाजी विजाग है, यह व्यवहार ब्राह्मण, अरु जैनोने नहीं बनाया है, किंतु अछे बुरे कर्मोके उदयसें है, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार मिश्रदेशमेंजी था, इस वास्ते उंच नीच गोत्रके प्रजावसेंही उंच नीच जाति होती है.

तथा आयुः कर्ममेंसूं नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती है,नरक शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है, "नरान् प्रकृष्टपापफलजोगाय गुरुपापकारिणः प्रणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कायंति शब्दयंतीति नरकास्तेष्वायुस्तद्भवप्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुजवकारणं प्राणधारणं यत्तन्नरकायुष्कं तद्विपाकवेद्यकर्म्मप्रकृतिरपि नरकायुष्कमिति ॥"

तथा वेदनीकर्मकी अशातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती है, सो अशाता नाम दुःखता हैं, जिसके उदयसें जीव दुःख जोगता है, तिसका नाम अशातावेदनी है.

यह ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी नव, मोहनी छवीस, नामकर्मकी चोत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अशातावेदनी एक, सब मिल कर व्यासी जेदें पाप फल जोगनेमें आता है॥ इति पाप तत्त्वं संपूर्णं॥

अथ आश्रवतत्त्व लिखते हैं. मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु हैं. १ असत् देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनों विषे सत् देव, सत्गुरु, अरु सत् धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व है. तथा हिंसादिकसें जो न निवृत्तनां, तिसका नाम अविरति है, तथा प्रमाद मद्यादि, तथा कषाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका व्यापार, ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अरु योग, यह पांच पुनर्बंधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोके बंधके हेतु हैं, इसकों जैन मतमें आश्रव कहते हैं. आश्रवें कर्म जिनोसेंती सो आश्रव. तब तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन,वचन,कायाका व्यापारही शुजाशुज कर्मबंधका हेतु होनेसें आश्रव होय. यह तात्पर्य है.

प्रश्नः—बंधके अजाव होये कैसें आश्रवकी उत्पत्ति है ? जे कर कहोगे कि आश्रवसें पहिलां बंध है: तबतो वो बंधजी आश्रवहेतु विना नहीं

हो सक्ता है, क्योंकि जो जिसका हेतु है, सो तिसके अभाव हूया नहीं हो सक्ता है. जे कर होवेगा, तब अतिप्रसंग दूषण होवेगा.

उत्तरः—यह कहनां असत् है, क्योंकि आश्रवको पूर्वबंध अपेक्षया कार्य पणा है. अरु उत्तरबंधापेक्षया कारणत्व है. ऐसेही बंधकोंभी पूर्वोत्तर आश्रवकी अपेक्षा करकें कार्यत्व कारणत्व जाननां, बीजांकुरकी तरें. बंधाश्रव दोनोंका परस्पर. कार्य कारण भावका नियम है, यहां इतरेतर दूषण नहीं है, प्रवाहापेक्षा करकें अनादि होनेसें.

यह आश्रव पुण्य पापका बंधहेतु होने करकें दो प्रकारें है. यह दोनों भेदोंके मिथ्यात्वादि उत्तर भेदोंके उत्कर्षापकर्ष, अर्थात् अधिक न्युन होनेसें अनेक प्रकार है. इस शुभाशुभ मन वचन कायके व्यापार रूप आश्रवकी सिद्धि अपणी आत्मामें स्वसंवेदनादि प्रत्यक्षसें है, अरु दूसरोंमें वचन काय व्यापारकी प्रत्यक्षसें सिद्धि है, औ शेषकी तिसके कार्य प्रभव अनुमानसें जाननी. तथा आप्तप्रणीत आगमसें जाननी.

अथ आश्रवके उत्तर भेद बेंतालीस हैं. सो लिखते हैं. पांच इंद्रिय. चार कषाय. पांच अव्रत, पच्चीश क्रिया. तीन योग. यह बेंतालीस भेद हैं.

जीवरूप तलावमें कर्मरूप पाणी जिस करकें आवे. सो आश्रव है, तहां इंद्रिय पांच हैं तिनका स्वरूप कहते हैं, १ स्पर्शीयें स्वविषय स्पर्श लक्षण जिस करकें सो स्पर्शनेंद्रिय. २ "रस्यते आस्वाद्यते रसोऽनयेति" आस्वादियें रस लीजीयें जिस करकें सो रसना (जिव्हा) इंद्रिय, ३ सूंघीयें गंध जिस करकें सो घ्राणेंद्रिय. (नासिकेंद्रिय.) ४ चक्षु (लोचन.) ५ सुणियें शब्द जिस करकें सो श्रोत्रेंद्रिय. यह पांच इंद्रिय मूलभेदकी अपेक्षासें पांच कारण आश्रवके हैं.

"क्रुध्यति क्रुध्यति" सचेतन अचेतन वस्तुमें क्रोध जो करे. सनिमित्त, निर्निमित्त वेदन जिस करकें प्राणी. सो क्रोधवेदनीय कर्म है. तिसका उदय भी उपचारसें क्रोध है. ऐसेही मान. माया. अरु लोभमेंभी कह देनां. इसमें मान आठ प्रकारका है. तिसका नाम कहते हैं. १ जातिमद. २ कुलमद, ३ बलमद. ४ रूपमद. ५ तपमद. ६ लाभमद. ७ श्रुतमद. ८ ऐश्वर्यमद. १ जातिमद उसको कहते हैं जो अपनी माताके पक्षका अभिमान करेकि मेरी माता ऐसे बडे घरकी बेटी है. इस करके आपको ऊंचा माने

गुप्सा तो किसीकीजी करनी न चाहियें. अरु जो तिनकी बूत मानते हें, वोजी कुलारूढी हे, अरु जो मनुष्यत्व धर्म करकें सरीखे हें, तोजी जेसें माता, वहिन, बेटी, जार्या, यह सव स्त्रीत्व स्वरूप करके समान हें, तोजी जेसें अगम्य गम्यका विजाग हे, तेसेंही उंच नीचकाजी विजाग हे, यह व्यवहार ब्राह्मण, अरु जैनोने नहीं वनाया हे, किंतु अछे बुरे कर्मोंके उदयसें हे, यह परस्पर जातिका आहार न खानेका व्यवहार मिश्रदेशमेंजी था, इस वास्ते उंच नीच गोत्रके प्रजावसेंही उंच नीच जाति होती हे.

तथा आयुः कर्ममेंसूं नरकायुकी प्रकृति पापमें गिनी जाती हे, नरक शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें हे, "नरान् प्रकृष्टपापफलजोगाय गुरुपापकारिणः प्रणिनोनरानित्युपलक्षणत्वात् कायंति शब्दयंतीति नरकास्तेष्वायुस्तन्नव प्रायोग्यसकलकर्मप्रकृतिविपाकानुजवकारणं प्राणधारणं यत्तन्नरकायुष्कं तद्विपाकवेद्यकर्म्मप्रकृतिरपि नरकायुष्कमिति ॥"

तथा वेदनीकर्मकी अशातावेदनी पाप प्रकृतिमें गनी जाती हे, सो अशाता नाम दुःखता हें, जिसके उदयसें जीव दुःख जोगता हे, तिसका नाम अशातावेदनी हे.

यह ज्ञानावरणी पांच, अंतराय पांच, दर्शनावरणी नव, मोहनी छवीस, नामकर्मकी चोत्तीस, नीचगोत्र एक, नरकायु एक, तथा अशातावेदनी एक, सव मिल कर व्यासी जेदें पाप फल जोगनेमें आता हे॥ इति पाप तत्वं संपूर्ण॥

अथ आश्रवतत्त्व लिखते हें. मिथ्यात्वादि आश्रवके हेतु हें. १ असत् देव, २ असत् गुरु, ३ असत् धर्म, इनों विषे सत् देव, सत्गुरु, अरु सत् धर्म, ऐसी जो रुचि, तिसका नाम मिथ्यात्व हे. तथा हिंसादिकसें जो न निवृत्तनां, तिसका नाम अविरति हे, तथा प्रमाद मद्यादि, तथा कषाय क्रोधादय, अरु योग मन वचन कायाका व्यापार, ये मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय, अरु योग, यह पांच पुनर्वंधक जीवके ज्ञानावरणीयादिक कर्मोंके वंधके हेतु हें, इसकों जैन मतमें आश्रव कहते हें. आश्रवें कर्म जिनोसेंती सो आश्रव. तव तो मिथ्यात्वादि विषयादिक मन, वचन, कायाका व्यापारही शुजाशुज कर्मवंधका हेतु होनेसें आश्रव होय. यह तात्पर्य हे.

प्रश्नः—वंधके अजाव होये केसें आश्रवकी उत्पत्ति हे? जे कर कहोगे कि आश्रवसें पहिलां वंध हेः तवतो वो वंधजी आश्रवहेतु विना नहीं

ग्लानि रोगीकी लघुशंकाको मेघ वर्षतामें गेरनेसें, गुरुके शरीरमें वाय तथा थकेवा दूर करकें मूठी चांपी करनेसें, जो हिंसा होती है, सो सर्व द्रव्यहिंसा है, तथा श्रावकको जिनमंदिर वनानेसें, जिनपूजा करनेसें, सधर्म्मिवत्सल करनेसें, तीर्थयात्रा जानेसें, रथोत्सव, अठाइ उत्सव, प्रतिष्ठा अरु अंजनशलाका करनेसें, तथा भगवान्‌के सन्मुख जानेसें, गुरुके सन्मुख जानेसें, इत्यादि कर्त्तव्यसें जो हिंसा होवे, सो सर्व द्रव्यहिंसा है, परंतु भावहिंसा नहीं. इसका फल अल्प पाप, अरु बहुत निर्ज्जरा है, यह भगवती सूत्रमें लिखा है, यह हिंसा साधु आदि करते हैं परंतु उनका परिणाम उस अवसरमें खोटे नहीं है, इस वास्ते द्रव्यहिंसा है.

प्रश्नः—यज्ञादिमें जो गोमेध प्रमुख जीव मारे जाते हैं, यहभी द्रव्यहिंसा क्यों नहीं ? इसका उत्तर, मीमांसक मत खंडनमें लिख आये हैं, सो देख लेनां यह प्रथम भंग.

दूसरे भंगमें द्रव्यहिंसा नहीं परंतु भाव हिंसा है, तिसका स्वरूप कहते हैं, कि जो पुरुष उपरसें तो शांतिरूप वना हूआ है, परंतु परिणाम अंतःकरण जिसका खोटा है, वो ऐसा चाहता है, कि मेरे शत्रुके घरमें आग लग जावे, मरी पड जावे, नदीमें डूव जावे, चोरी हो जावे, बंदीखानेमें पडे, तथा वेष बदलके भला मानस बनके ठग बाजी करे, तथा अगलेका बुरा करनेके वास्ते अनेक प्रकारसें उसको विश्वास करावे, तथा फकीरीका वेष करकें लोकोसें धन एकठा करे, इत्यादि. तथा साधुके गुण तो उसमें नहीं हैं. परंतु लोकोंमें अपने आपको गुण प्रकट करे, इत्यादिक काममें द्रव्य हिंसा तो नहीं करता, परंतु भावसें तो वो पुरुष हिंसक है.इसका फल संसरमें भ्रमण करने सीवाय और कोइ फल नहीं. यह दूसरा भंग.

तीसरे भंगमें प्रकट इंद्रियोंकी विषयमें गृद्ध हो कर जीवहिंसा कसाइ, (खटिक) वागुरी. अहेरी.(शिकार मारनां) विश्वासघात, इत्यादि करकें जीवहिंसा करनी. अरु मनमें आनंद माननां. इसका फल दुर्गति है, यह द्रव्यसेंभी हिंसा है. अरु भावसेंभी हिंसा है, यह तीसरा भंग.

चौथा भंगमें द्रव्यसेंभी हिंसा नहीं, अरु भावसेंभी हिंसा नहीं. उसको हिंसा कहनां. यह भंग शून्य है,इस भंग वाला कोइभी जीव नहीं॥इति

ऐसेंही जूठकेजी चार जेद हैं. तिसका स्वरूप कहते हैं. १ साधु, र स्तेमें चला जाता है, तिसके आगें हो कर एक जंगली गौआंका तथा मृगादि जानवरोंका टोला निकल जावे, तिसके पीछें शिकारी बंडूक प्रमुख शस्त्र लीयां चला आता है, उनके मारने वास्ते वो शिकारी साधुकों पूछे कि तुमने अमुक जीव जाते देखे हैं? तब साधु मौन कर जावे,, जे कर मौन करजी पीछा न छोडे, साधुकों मारे, तब साधु कह देवे, में नहीं देखे, यद्यपि यह द्रव्यें जूठ है, परंतु जावें जूठ नहीं, क्योंकि जो कोइ इंद्रियोंकी विषय वास्ते तथा अपने लोज वास्ते जूठ बोले, तब जावतः जूठ होवे, परंतु यह तों जीवोंकी दया वास्ते जूठ बोले है. वास्तवमें यह जूठ नहीं. इसी तरें और जगेंजी समझ लेनां, यह प्रथम जंग.

तथा दूसरा जंगमें कोइ पुरुष मुखसें तो कुछ नहीं बोलता, परंतु दूसरों के ठगने वास्ते मनमें अनेक विकल्प धरता है, यह दूसरा जंग. तथा तीसरे जंगमें तो द्रव्येंजी जूठ बोलता है, अरु जावेंजी जूठ बोलता है, तिसका अजिप्रायजी महा छल कपट करनेका है, क्योंकि मुखसेंजी जूठ बोलता है, अरु चित्तमेंजी दुष्टता संयुक्त है, यह तीसरा जंग. तथा चौथा जंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति जूठ स्वरूप.

अथ चोरीका यही चार जंग कहते हैं. तहां प्रथम जंगसें जैसें कोइ स्त्री शीलवान् है औ कोइ दुष्ट राजा उसका शीलजंग करा चाहता है, तब कोइ धर्मज्ञादि पुरुष रात्रिमें अथवा दिनमें उस स्त्रीके शीलकी रक्षा वास्ते उस राजसें बाहिर ले जावे, तो व्यवहारमें उस राजाकी उसने जंगरूप चोरी करी है, परंतु वास्तवमें वो चोर नहीं इसी तरें और जगामेंजी जान लेनां. यह प्रथम जंग. दूसरे जंगमें चोरी तो नहीं करता, परंतु चोरी करनेका मन उसका है, तथा जो जगवान् वीतराग सर्वज्ञकी आज्ञा जंग करनेवाला है. सोजी जाव चोरहै. यह दूसरा जंग. तथा तीसरे जंगमें चोरीजी करता है, अरु मनमेंजी चोरी करनेका जाव है, यह तीसरा जंगहै. अरु चउथा जंग तो पूर्ववत् शून्य है. इति अदत्तादान जंग

ऐसेंही मैथुनके चार जंग कहते है. जो साधु, जलमें डूबती साधवीकों देख कर काढनेके वास्ते पकडे, तथा धर्मी गृहस्थ छतसें गिरती अपनी बहिन बेटीकों पकडे, तथा बावरी होइ दौडतीकों पकडे, यह द्र

व्यें मैथुन है, परंतु भावें नहीं. यह प्रथम भंग. तथा द्रव्यें तो मैथुन नहीं सेवता है, परंतु मैथुन सेवनेकी बमी अभिलाषा करता है, सो भावें मैथुन है. यह दूसरा भंग. तथा तीसरे भंगमें तो द्रव्यें अरु भावें मैथुन सेवता है. अरु चौथा भंग पूर्ववत् शून्य है ॥ इति मैथुन स्वरूपं ॥

ऐसेंही परिग्रहका चार भंग कहते हैं, १ जैसें कोइ मुनि कायोत्सर्ग कर रहा है, उसके गलेमें कोइ हारादिक आनूषण गेर देवे, वो द्रव्यें तो परिग्रह दीखता है, परंतु भावें परिग्रह नहीं है, यह प्रथम भंग. तथा दूसरा द्रव्यें तो उसके पास कौमी एकजी नहीं है, परंतु मनमें धनकी बमी अभिलाषा रखता है, सो भावपरिग्रह है. तथा तीसरेमें धनजी पास है, अरु अभिलाषाजी है, सो द्रव्यजाव करकें परिग्रह है, तथा चौथा भंग पूर्ववत् शून्य है. इन सर्व भंगोमें दूसरा अरु तीसरा भंग निश्चय करकें अविरतिरूप है. यह पांच प्रकारकी अविरति.

अथ पच्चीस क्रियाका नाम अरु स्वरूप कहते हैं. १ काया (देह) करकें जो होवे, सो कायिकीक्रिया, २ आत्माकों नरकादिमें जाने वास्ते जाव अधिकारी करे, इस करकें सो अधिकरण परोपघात करनेसें वागुरादि गल कूटपाशा करकें जो उत्पन्न होवे, सो अधिकरणकी क्रिया, ३ अधिक जो होवे दोष सो प्रदोष कहियें क्रोधादिक, तिनमें जो उत्पन्न होवे, सो प्रदोषक्रिया, ४ जीवकों परिताप देनेसें जो उत्पन्न होवे, सो पारितापनिकी क्रिया, ५ प्राणीयोंके विनाश करनेकी जो क्रिया, सो प्राणातिपातकी क्रिया, ६ पृथिवीआदिक कायाका उपघात करनां यह जिसका लक्षण है, ऐसें जो शुष्क तृणादि छेद, लेखनादि, तिनमें जो क्रिया होवे, सो आरंजकी क्रिया, ७ जो विविध उपायों करकें धन उपार्जन तथा धनरक्षण करणेमें मूर्छाके परिणाम, उसका नाम परिग्रह है, तीनमें जो उत्पन्न होवे क्रिया, सो परिग्रहकी क्रिया. ८ मायाही है हेतु प्रत्यय जिसका मोक्षके साधनोंमें माया प्रधान प्रवृत्ति, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ए मिथ्यात्वही है प्रत्यय कारण जिसका सो मिथ्या दर्शन प्रत्ययकी क्रिया, १० संयमके विघातकारक कषायोंके उदयसें प्रत्याख्यानका न करनां, सो अप्रत्याख्यानकी क्रिया, ११ रागादि कलुषितका जो जीव अजीवको देखनां

सो दृष्टिकी क्रिया, १२ राग, द्वेष, मोह संयुक्त चित्तसें जो स्त्री आदिकोंके शरीरका स्पर्श करनां, सो स्पृष्टिकाक्रिया, १३ पूर्वे अंगीकार करे हूये पापोपादान कारण अधिकरणकी अपेक्षा जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो प्रातीत्यकी प्रत्ययक्रिया, यह तात्पर्यार्थ, १४ "समंतात्" सर्व ओरसें "उपनिपात" आगमन आवणां, स्त्री आदिक जीवोंका जिस स्थानमें जोजनादिकमें, सो समंतोपनिपात, तहां जो क्रिया उत्पन्न होवे, सो सामंतोपनिपातिका क्रिया, १५ जो परोपदेशित पापमें चिर काल प्रवृत्ते, उस पापकी जो नावसें अनुमोदना करे, सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथ करकें जो करे, जैसें कोइ पुरुष बमे अनिमान करकें क्रोधित चित्त हूआ थका जो काम उसके नोकर कर सक्ते हैं, उस कामकों अपने हाथसें करे, सो स्वाहस्तिकी क्रिया, १७ नगवत् अर्हंतकी आज्ञा उल्लंघन करकें अपणी बुद्धिसें जीवाजीवादि पदार्थोंके प्ररूपण द्वारा जो क्रिया, सो आज्ञापनिका क्रिया, १८ दूसरायोंके अण होये खोटे आचरणका प्रकास करणां, उनकी पूजाका नाश करनां, तिस करनेसें जो उत्पन्न होवे,सो वेदारणिका क्रिया, १९ आजोग नाम है उपयोगका, तिस्सें जो विपरित होवे, सो अनाजोग है,तिस करकें उपलक्षित जो क्रिया सो अनाजोग क्रिया. बिना देखे, बिना पूंजे देश अर्थात् नीत नूम्यादिकमें शरीरादिकका निक्षेप करणां,सो अनाजोग क्रिया, २० अपणी अरु परकी जो अपेक्षा करणी, तिसका नाम अवकांक्षा है, इस्सें जो विपरीत तिसका नाम अनवकांक्षा है, सोइ है कारण जिसका सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया. तात्पर्य यह है कि जिनोक्त कर्त्तव्य विधियोमें किसी विधियोंमें जो अपनेकों अरु और जीवोंकों हितकारी है, तिन विधियोंमें प्रमादके वश हो कर आदर न करणां, सो अनवकांक्षा प्रत्ययकी क्रिया, २१ "प्रयोग" दोमना चलनादि कायाका व्यापार, अरु हिंसाकारी कठोर कूठ बोलनादि वचनव्यापार, परानिद्रोह, ईर्ष्या अनिमानादि मनोव्यापार, इन तीनोंका जो करणां, सो प्रयोगक्रिया, २२ जिस करकें विषय ग्रहण करियें, सो समादान इंडिय है, तिसकी जो क्रिया देश सर्व उपघातरूप व्यापार, सो समुदान क्रिया, २३ प्रेम नाम है माया अरु लोनका, तिन करकें जो होवे, सो प्रेमप्रत्यय क्रिया, २४ द्वेष नाम है क्रोध अरु मा

नका, तिन करके जो होवे, सो द्वेषप्रत्ययिकी क्रिया, २५ चलनेसें जो क्रिया होवे, सो ईर्यापथक्रिया. यह क्रिया वीतरागकों होती है.

अथ इन पच्चीश क्रियाका व्याख्यान करते हैं. १ प्रथम कायिकी क्रिया दो प्रकारकी है, एक अनुपरता कायिकी क्रिया, दूसरी अनुपयुक्त कायिकी क्रिया. उसमें प्रदुष्ट मिथ्यादृष्टि जीवके मन वचनकी अपेक्षा रहित पर जीवोंके पीडाकारी ऐसा जो कायाका उद्यम, सो प्रथम भेद है, तथा प्रमत्त संयतके विना उपयोग अनेक कर्त्तव्यरूप कायाका व्यापार, सो दूसरा भेद, यह कायिकी क्रियाका स्वरूप कहा. २ दूसरी अधिकरणकी क्रिया दो प्रकारें है. एक संयोजना, दूसरी निवर्त्तना, उसमें विष, गरल, फांसी, धनु, यंत्र, तलवार, आदि शस्त्रोंकों जीवोंके मारणे वास्ते जो इनका "संयोजन" अर्थात् मिलाप करणां, जैसें धनुष अरु तीरका मिलाप करनां, इसी तरें सर्व जाननां. यह प्रथम भेद. तथा तरवार, तोमर, शक्ति, तोप, बंदुक, इनका जो नवे सिरसें बनानां, यह दूसरा भेद यह दूसरी क्रियाका स्वरूप कहा. ३ जीन निमित्तोंसें क्रोध उत्पन्न होवे, सो निमित्त जीव अजीव हैं, उसमें जीव तो प्राणी, अरु अजीव खूंटा, कांटा, पत्थर कंकरादि, इनके उपर द्वेष करे, यह तीसरी प्रद्वेषक्रिया, ४ तथा अपने हाथों करकें अरु परके हाथों करकें, जीवको ताडनां (पीडा देनी) सो परितापनां, इस परितापनाके दो भेद हैं, एक तो "स्व" (अपणे आपकों) पीडा देनी, जैसें पुत्र कलत्रादिके वियोगसें दुःखी हो कर अपणे हाथों करी छाती शिरका कूटनां, यह प्रथम भेद. तथा पुत्र शिष्यादिकोंकों ताडन, (पीटनां) यह दूसरा भेद, यह चौथी परितापनिकी क्रिया. तथा ५ पांचमी प्राणातिपातकी क्रियाके दो भेद हैं, एक तो अपणे आपकी घात करणी जैसेंकि जान बूझ कर पर्वतसें गिरके मर जानां, भर्त्ताके साथ सती होनेके वास्ते अग्निमें जल मरनां, पाणीमें डूबके मरना, विष खा के मरनां, शस्त्र सें मरनां, इत्यादि स्वप्राणातिपात यह महापाप रूप क्रिया, यह प्रथम भेद तथा दूसरी मोह, लोभ, क्रोधके वश हो कर पर जीवकों स्व अथवा परहाथ करकें मारणां. यह पांचमी क्रिया, ६ जीव, अजीवका आरंभ करणां, सो आरंभकी क्रिया, ७ जीव अजीवका परिग्रह करणां, सो परिग्रहकी क्रिया, ८ माया करणी, सो माया प्रत्ययकी क्रिया, ९ वि

परित वस्तुका श्रद्धान सोइ है निमित्त जिसका सो मिथ्यात्व दर्शन प्रत्ययकी क्रिया, १० जीवके हननेका तथा अजीव मद्य मांसादि पीने खानेका जिसके त्याग नहीं, ऐसा जो असंयती जीव, तिसकों अप्रत्याख्यानकी क्रिया, ११ घोमा, रथ, प्रमुख जीव तथा अजीवोंके देखने वास्ते जानां, सो दृष्टिकी क्रिया, १२ जीव, अजीव, स्त्री, पुतली, आदिकका राग करके स्पर्श करनां. सो स्पृष्टिकी क्रिया, १३ जीव, अजीवकी अपेक्षा जो कर्मका बंध होवे, सो प्रातीत्यकी क्रिया, १४ जीव सो पुत्र, भाइ, शिष्यादिक, अरु अजीव सो भूषण, घर, हाटादि. इनकों लोक सर्व दिशोंसें देखने आवे, देखके प्रशंसा करे, तब तिन वस्तुओंका स्वामी हर्षित होवे, सो सामंतोपनिपातिका क्रिया, १५ जीव मनुष्यादि अरु अजीव ईंटका टुकमा, इनोकों फेंके सो नैसृष्टिकी क्रिया, १६ अपने हाथों करी जीवकों तथा अजीवकों (प्रतिमादिकों) ताडे, वींधे, सो स्वहस्तकी क्रिया, १७ जीव अजीवकी मिथ्या प्ररूपणा करणी, तथा जीव अजीवकों मंत्रसें मंगावा लेनां, सो आज्ञापनीका क्रिया, १८ जीव अजीवकों विदारणां, सो वैदारणिका क्रिया १९ विना उपयोगकुं जो वस्तु लेवे, तथा भूमिकादि उपर छोडे, सो अनाभोगक्रिया, २० इस लोकमें औ परलोकमें जो विरुद्ध ऐसा जो चोरी, परदारागमनादिक है, उनकों सेवे, मनमें, मरे नहीं, सो अनवकांक्षा प्रत्यय क्रिया, २१ मन, वचन, कायाका जो सावद्य (सपाप) व्यापार, सो प्रयोग क्रिया, २२ अष्टविध कर्म परमाणुओंका जो ग्रहणां, सो समुदान क्रिया, २३ राग जनक वीणादिककों जो शब्दादि सो प्रेम प्रत्यय क्रिया २४ अपणे उपर तथा पर उपर द्वेष करनां. सो द्वेषप्रत्ययिकीक्रिया, २५ केवल योगोंसें जो क्रिया, सो केवलीकों ईर्यापथ क्रिया. यह पचिस क्रियाका स्वरूप संक्षेप मात्र लिखा है. यद्यपि इन क्रियाओंमें कितनीक क्रिया आपसमें एक सरखी दीखती हैं, तोभी एक सरखी नहीं है, इनका अर्थी तरें स्वरूप देखनां होवे, तो गंधहस्तीभाष्य देख लेनां.

अथ योग तीन है, सो लिखते हैं. १ मनका व्यापार, सो मनोयोग, २ वचनका व्यापार, सो वचनयोग, ३ कायाका व्यापार, सो काययोग. यह सर्व मिल कर बेंतालीस भेद आश्रव तत्त्वके हुये हैं. इन बेंतालीस भेदोंसें जीवकों शुभाशुभ कर्मकी आमदनी होती है. इति आश्रवतत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ संवरतत्त्व लिखते हैं. पूर्वोक्त आश्रवका जो रोकने वाला सो संवर है. तिस संवरके सत्तावन भेद हैं. सो कहते हैं. पांच समिति. तीन गुप्ति. दश प्रकारका यतिधर्म. बारह भावना. बावीश परिसह. पांच चारित्र. यह सब मिल कर सत्तावन भेद हुये. इनमेंसे पांच समिति. तीन गुप्ति. दशविध यतिधर्म. बारह भावना. इनका स्वरूप गुरु तत्वमें लिख आये है. तहांसें जान लेनां. इहां नहीं लिखते.

अथ बावीश परीषहका स्वरूप लिखते हैं. १ क्षुधापरीषह. सो क्षुधा नाम भूखका है, शेष वेदनासें अधिक भूखकी वेदना है. सो जब क्षुधा लगे. तब अपनी प्रतिज्ञासें न चले. अरु आर्त्तध्यानभी न करे. सम्यक् परिणामोंसें क्षुधा सहे. सो क्षुत्परीषह. २ ऐसेंही पिपासा जो तृषा तिस का परीषहभी जान लेनां. ३ शीतपरीषह सो यद्यपि भारी जब शीत पडे तबभी अकल्पनिक वस्त्रकी वांछा न करे. जैसें जीर्ण वस्त्र होवे, उनोंहीसें शीत सहे, अरु अग्निसेंभी न तापे. इसी रीतीसें सम्यक् शीत परीषह सहे. ४ ऐसेंही उष्णपरीषहभी सहे. ५ दंशमशकपरिषह, सो दंश मशक जब काटे, तब उस स्थानसें चले जानेकी इच्छा न करे. तथा दंश मशकके दूर करने वाले धूमादि यत्नभी न करे, तथा तिनके दूर निवारण वास्ते पंखाभी न करे. ऐसा पुरुष, दंश मशक परीषह सहे, ६ अचेलपरीषह, जो सर्वथा वस्त्रोंका अभाव, तिसका नाम अचेल परीषह नहीं, किंतु आगम में जो वस्त्रादिक रखनेका प्रमाण कहा है, तिस प्रमाण रखनां सो परीग्रह नहीं है, परिग्रह तो उसकों कहते हैं कि जो मूर्छा करकें रक्खे॥ उक्तं च॥ जंपि वत्थं च पायं च, कंबलं पायपुछणं॥ सोपि संजम लज्जठा. धारिंति परिहरंति य॥ १॥ न सो परिग्गहो वुत्तो, नाइपुत्तेण ताइणा॥ मुछापरि ग्गहो वुत्तो. इइ वुत्तं महेसणत्ति॥२॥ चेल नाम वस्त्रका है. सो शीर्ण अर्थात् फटे हूये अरु जीर्णभी होवे, तोभी अकल्पनिक न लेवे. सो अचेलपरीषह, ७ अरतिपरीषह, संयम पालनेकों जो अरति संयममें उत्पन्न होवे, तिसकों सहे. इसके सहनेका उपाय दशवैकालिककी प्रथम चूलामें अठारह वस्तुके चिंतनरूप करनेसें अरतिदूर हो जाती है. ८ स्त्रीपरीषह, सो स्त्रीयांके अंग प्रत्यंग संस्थान सूरति. हसनां. मनोहरपणां. विलासादि चेष्टायोंके मनमें चिंतवना न करे. मोक्ष मार्गमें अर्गलसमान स्त्रीयोंको जान करकें

तिनोंमें कामकी बुद्धि करकें, नेत्रोंसें देखे नहीं. ९ चर्या नाम है चलने का चलनां घर रहित ग्राम नगरादिमें अनियतवास ममत्व रहित मास कल्पादि करणां, सो चर्यापरीषह है, १० निषद्यापरीषह, सो निषद्या यह रहनेके स्थानका नाम है, सो स्थान, स्त्री, पंडक विवर्जित होवे, तिस स्थानमें रहतेंकों इष्टानिष्ट जो उपसर्ग होवे, तोजी अपणे चित्तमें चलायमान न होवे, सो निषद्यापरीषह, ११ 'शेरते' शयन करियें इस विषे सा शय्या, संस्तारक, वसति, तहां संस्तारक सो सोनेंका आसन, कोमल, कठीन, ऊंचा, नीचा, धूल, कूडा, कंकर वाली जगामें होवे, तथा वो स्थान, शीत गर्मी वाला होवे, तोजी मनमें उद्वेग न करे, दुःख सहन करे, सो शय्यापरीषहः १२ आक्रोश परीषह, सो अनिष्ट वचन कोइ कहे तब ऐसें विचारे,जे कर यह पुरुष सच्ची वातके वास्ते अनिष्ट वचन कहता है, तो मुजकों कोप करनां ठीक नहीं, क्योंकि यह पुरुष मुजे शिक्षा देता है, फेर ऐसा काम न करुंगा, जे कर इस पुरुषका मेरे पर झूठा कोप है, तोजी मुजकों कोप करनां युक्त नहीं, ऐसें चिंतन करकें आक्रोशपरीषह सहे, १३ वध नाम है हाथादि करकें ताडनां, (मारनां,) तिसका सहनां सो इसी रीतीसें कि यह जो मेरा शरीर है, सो अवश्य विध्वंस होवेगा, इस शरीरके संबंधसें जो मेरेकों दुःख होता है, सो मेरे करे हूये कर्म का फल है. इस बुद्धिसें वधपरीषह सहे, १४ याचना नाम मांगनेका है सर्वही वस्त्र अन्नादिक साधुकों मागनेसेंही मिलता है, इस बुद्धिसें याचना परीषह सहे, १५ साधुकों किसी वस्तुकी इच्छा है, अरु वो वस्तु गृहस्थ के घरमेंजी वहुत है, साधु मांगनेकों गया, परंतु गृहस्थ देता नहीं, तब साधु मनमें विषाद न करे, अरु देने वालेका बुराजी नहीं चिंतवे, दुर्वचनजी न वोले, समता करे, आज नहीं मिला, तो कलकों मिल जायगा, इस तरें अलाजपरीषह सहे, १६ रोग (ज्वर अतिसारादि) जब हो जावे, तब गछके वहिर जो साधु होवे, सो तो कोइजी औषधि न खावे, अरु जो गछवासी साधु होवे, सो गुरु लाघवता विचार करकें रोग परीषह सहे, अरु जो रीति शास्त्रमें औषध करनेकी कही है, तिस रीतिसें करे, सो रोगपरीषह सहे, १७ तृणस्पर्श परीषह, सो दर्जादिक कठोर तृणका स्पर्श सहे, १८ मलपरीषह, सो साधुके शरीरमें पसीना आनेसें रजका पुं

ज शरीरमें लगनेसें कठीन मैल लग जाता है, अरु उष्ण कालकी तपसें प्रगट हूआ है दुर्गंध तिस करकें उत्पन्न हूआ है उद्वेग, तोजी स्नाना दि शरीरकी विजूषा साधु न करे, यह मलपरीषह है, १९ सत्कारपरीष ह, सो जक्त लोकोंने वस्त्रान्न पानादिक करकें साधुकों बहुत सत्कारजी किया,तोजी मनमें अजिमान न करणां,तथा और और साधुओंकी जक्त लोक पूजा जक्ती करते हैं, अरु जैनमतके साधुकी कोइ वातजी नहीं पूछता, तोजी मनमें विषाद न करे, यह सत्कारपरीषह है, २० प्रज्ञापरीषह, सो बहुत बुद्धि पा कर अजिमान न करे, तथा अल्पबुद्धि होवे तदा "मैं म हा मूर्ख हूं, सर्वके पराजवका स्थान हूं," असी ताप दीनता मनमें नहीं लावे, सो प्रज्ञापरीषह, २१ अज्ञानपरीषह, सो ज्ञान चौदहपूर्व पाठी, एकादशांगपाठी, तथा उपांग, छेद, प्रकर्ण, शास्त्रोंका पाठी, ज्ञानका स मुद्र मैं हूं असा गर्व न करे. अथवा मैं आगम ज्ञान रहित हूं,धिक् है, मुझे निरक्षर कुक्षिजरकों? असी दीनताजी न करे, असें विचारे कि निःके वल ज्ञानावरणका क्षयोपशमके उदयसें मेरा यह स्वरूप है, स्वकृतकर्म का फल है, जांतों जोगमेसें दूर होवेगा, वा तपोनुष्ठानसें दूर होवेगा असें विचारि अज्ञान परीषह सहे, २२ शास्त्रोंमें देवता अरु इंद्र सुनते हैं, परंतु सांनिध्य कोइजी नहीं करता, इस वास्ते क्या जाने देवता इंद्र है? वा नहीं? तथा मतांतरकी ऋद्धि वृद्धि देख कर जिनोक्त तत्त्वमें संमोह करनां, असी विकलता जो मनमें न लावे, सो दर्शनपरीषह. यह बावी स परीषह जो साधु जीते, सो संवरी कहा जाता है, इन परीषहोंका वि स्तार देखनां होवे, तो श्रीशांतिसूरिकृत उत्तराध्ययन सूत्रकी वृहद्वृत्ति, त था तत्त्वार्थ सूत्रकी वृत्ति देख लेनी.

अथ पांच प्रकारका चारित्र लिखते हैं. १ सामायिक चरित्र, २ छेदोप स्थापनिका चरित्र, ३ परिहारविशुद्धि चारित्र, ४ सूक्ष्मसंपराय चरित्र, ५ यथाख्यात चरित्र, यह पांच प्रकारका चारित्र है. इन पांचोंके धारक साधु जी जैनमतमें पांच प्रकारके हैं, इस कालमें प्रथम दो चारित्रके धार क साधु है, अरु तीन चारित्र व्यवछेद गये हैं, इन पांचोंका विस्तार पूर्वक देखनां होवे तदा देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी टीका, तथा ज

गवती अरु पन्नवणासूत्रकी वृत्ति देख लेनी. यह सर्व मिल कर सत्तावन भेद आश्रवके रोकने वाले हैं. इति संवरतत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ निर्जरातत्त्व लिखते हैं. निर्जरा उसकों कहते हे, जो बांधे हूये कर्मोंको खेरु करे, जिस करकें निर्जरा होती है, तिसका नाम तप है. सो तप बारह प्रकारका हैं, उसका स्वरूप गुरुतत्त्वमें संक्षेप करकें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां. अरु जे कर विस्तार देखनां होवे, तदा नवतत्त्वप्रकरणवृत्ति तथा श्रीवर्द्धमानसूरिकृत आचारदिनकर शास्त्र, तथा श्रीरत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप, तथा भगवतीसूत्र, अरु उववाइ शास्त्र देख लेनां ॥ इति निर्जरातत्त्वं संपूर्णं ॥

अथ बंधतत्त्व लिखते हैं, बंध चार प्रकारका होता हे, १ प्रकृतिबंध २ स्थितिबंध, ३ अनुभागबंध, ४ प्रदेशबंध बंध कहते हे. जीवके प्रदेश, अरु कर्मपुरुल,ये दोनों दूध अरु पाणीकी तरें परस्पर मिल जावे,उसकों बंध कहते हैं. अथवा बंध नाम बंदीवानका हे जैसें बंधुआ कैदमें स्वतंत्र नहीं रहता, ऐसें आत्माभी ज्ञानावरणीयादि कर्मोंके वश हो जाता हैं, स्वतंत्र नहीं रहता हे, इस कर्मके बंधमें ठ विकल्प हे, सो कहते हैं.

१ कोइक वादी कहता हैं, कि निर्मलजीव पुण्य पापके बंध रहित था, पीछेसें पुण्य पापका बंध हूआ है, यह प्रथम विकल्प. यह विकल्पमिथ्या हे, क्योंकि निर्मल जीव कर्मका बंध नहीं कर सक्ता है, अरु कर्मके विना संसारमें उत्पन्नभी नहीं हो सक्ता हे, जे कर निर्मल जीव कर्मका बंध करे, तब तो मोक्षस्थ जीवभी कर्मका बंध कर लेवेगा, जब मोक्षस्थ जीवकों कर्मबंध हूआ,तब मोक्षका अभाव हो जावेगा, जब मोक्ष नहीं, तब तो मोक्षोपायके शास्त्र अरु शास्त्रोंके बनाने वाले मिथ्यावादी हो जावेंगे, तब तो नास्तिकमती बन जायंगे,अरु निर्मल आत्मा संसारमें शरीरके अभावसें कर्मभी काहेसें करेगा? इस वास्ते यह प्रथमविकल्प मिथ्या है.

२ दूसरा विकल्प कर्म पहेले थे,अरु जीव पीछेसें बना हे, यहभी मिथ्या हैं, क्योंकि जीवोंके विना वो कर्म किसनें करे थे, कारणकि कर्त्ताके विना कर्म हो नहीं सके हैं, अरु प्रथम कर्मोंका फल इस जीवकों नहीं होवेगा, क्योंकि वो कर्म जीवके करे हूए नहीं हैं, जे कर कर्मके करे विनाभी कर्मका फल होवे, तब तो अतिप्रसंग दूषण होवेगा, अरु विना कर्मके क

रे ईश्वरजी कर्मफल भोगने वास्ते नरककुंडमें जा गिरेगा. अरु जीव भी कैसें काहेसें बनेगा? जीवका उपादान कारण कोइ नहीं. जे कर कहोगे कि ईश्वर जीवका उपादान कारण है. तब तो कारणके समान कार्यभी होनां चाहियें. जैसा ईश्वर निर्मल, निःपाप, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी है, तैसाही जीव होवे. परंतु तैसा नहीं. अरु जो ईश्वर जीवोंका उपादान कारण होवे. तब तो ईश्वरही जीव बन कर नाना क्लेश जन्म मरण गर्भावासादि दुःखोंका भोगने वाला हूआ. तब ईश्वरने यह अपने पगमें आप कुहाडा क्यों मारा? जो पूर्णानंद पद छोड कर संसारकी विटंबनामें फसा? फेर अपने आपकों निःपाप करने वास्ते वेदादि शास्त्र द्वारा कइ तरेंका तप जपादिक क्लेश करनां बताया? इस वास्ते यह सर्व कहनां नशा भूलोंका है. इस वास्ते यह दूसरा विकल्पभी मिथ्या है.

३ तीसरा विकल्प, जीव और कर्म यह दोनों एक साथ उत्पन्न हूये, यहभी मिथ्या है, क्योंकि जो वस्तु समकालमें उत्पन्न होती है. सो आपसमें कारण कार्य रूप नहीं होती है. जब कर्म, जीवके करे सिद्ध न हूये, तब कर्मफलभी जीव नहीं भोगेगा. यह प्रत्यक्ष विरोध है. क्योंकि जीव तो कर्म भोके दीखते है, अरु कर्म तथा जीवका उपादान कारण कोइ नहीं इस वास्ते यह तिसरा विकल्पभी मिथ्या है.

४ चौथा विकल्प, जीव तो है परंतु जीवके कर्म नहीं यहभी मिथ्या है, क्योंकि जब जीवके कर्म नहीं, तो जीव दुःख सुख क्यों भोक्ता है? कर्मके विना संसारकी विचित्रता कदापि न होवेगी? इस वास्ते यह चौथा विकल्प मिथ्या है.

५ पांचमा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनोंही नहीं. यहभी मिथ्या है; क्योंकि जब जीवही नहीं, तब यह कौन कहता है, जो जीव अरु कर्म नहीं है; ऐसा कहने वाला जीव है? कि दूसरा कोइ है? इस वास्ते यह स्ववचनविरोध है. तो यह पांचमा विकल्पभी मिथ्या है. यह पांच विकल्प मिथ्यात्वरूप है, अरु सत्य विकल्प छठा है, सो यह है.

छठा विकल्प, जीव अरु कर्म, यह दोनों अनादि अपश्चानुपूर्वी है.

प्रश्नः—जब जीव अरु कर्म यह दोनों अनादि है, तब तो जीवकी तरें कर्मका नाश कदापि न होनां चाहियें?

उत्तरः—कर्म जो अनादि कहे हैं, सो प्रवाह अनादि हैं इस वास्ते उसका क्षय हो जाता है.

प्रश्नः—यह जो तुम बंध कहते हो, सो निर्हेतुक है ? अथवा सहेतुक है ? जे कर कहोगे कि निर्हेतुक है, तब तो "नित्य सत्त्वं" होवेगा, वा "नित्य असत्त्वं" होवे गा, क्योंकि जिस वस्तुका हेतु नहीं, वो आकाशवत् नित्य सत्व होती है, अथवा खरशृंगवत् नित्य असत् होती है, निर्हेतुक होनेसें मोक्षका अभाव हो जावेगा, जे कर कहोगेकि सहेतुक है, तो हमकों कहो कि इस बंधके क्या हेतु है ?

उत्तरपक्षः—इस बंधके मूल हेतु चार हैं, अरु उत्तर हेतु सत्तावन हैं, यहां प्रथम चार प्रकारका बंध कहते हैं, तिसमें प्रथम तो प्रकृतिबंध है, सो प्रकृति कोनसी है ? अरु उसका बंध क्या है ? तहां मूल प्रकृति आठ हैं, उसमें १ मत्यादि ज्ञानका जो आवरण आछादन, सो ज्ञानावरण, २ सामान्य बोध चक्षु आदिका जो आवरण सो दर्शनावरण, ३ सुख दुःख वेदियें (भोगीयें) सो वेदनीय, ४ मोहे जीवकों विचित्रताकों प्राप्ति करे, सो मोह, ५ सर्वथा जो कर्म चला जावे "एति याति चेत्यायुः" जिसके उदयसें जीव जीता है सो आयु, ६ नमावे जो शुभाशुभ गत्यादि रूप करकें आत्माकों, सो नामकर्म, ७ गोत्र शब्दकी व्युत्पत्ति ऐसें है "गां याचां त्रायतइति गोत्रं" जिसके उदयसें जीव ऊंच नीच कुलका कहाता है. सो गोत्र, ८ अंतर कहियें विचाले लाभादिके जो हो जावे, एतावता दान लाभादिक जीवमें होतांकों न होने देवे, सो अंतराय, यह आठ स्वरूप कर्म जो जीवके साथ क्षीर नीरकी तरें मिथ्यात्वादि हेतुओंसें बंध जावे, तिसका नाम प्रकृतिबंध है. २ इनहीं आठ प्रकृतियोंकी स्थिति अर्थात् काल मर्यादा, जैसी कि यह प्रकृति इतना काल तक आत्माके साथ रहेगी, पीछेंसें न रहेगी, जिस करकें ऐसी स्थिति होवे, सो स्थिति बंध. ३ इनही आठ प्रकृतियोंमें तीव्र, मंद, रसका जो करनां, सो अनुभागबंध, ४ कर्मप्रदेशका जो प्रमाण यथा इतने परमाणु इस प्रकृतिमें है, उन परमाणुओंका जो जो आत्माके साथ बंध सो प्रदेशबंध.

इसका बंध इस तरें चार प्रकारें है. सो नव्य जीवोंके सुबोधके वास्ते चार प्रकारके बंधमें लड्डुका दृष्टांत लिखते हैं, जैसें एक लड्डु है, तिसका

स्वभाव वात हरणेका वा पित्त हरणेका वा कफ हरणेका इत्यादि होता है. ऐसेंही प्रकृति स्वभाव कर्मोंका. किसी प्रकृतिका ज्ञानावरण करनेका स्वभाव. किसी प्रकृतिका दर्शन आवरण करनेका स्वभाव होता है.सो प्रकृतिबंध. २ कोइ लड्डु एक दिन रहके विगड जाता है.कोइ दो, तिन, चार पांच. छ. सात. आठ. नव. दश. इग्यार. बारह. तेरह. चौदह दीन. कोइ पक्ष. मासादि रहता है. पीछें विगड जाता है. ऐसेंही कर्मस्थितिभी कोइ घडी. पहर. दिन. पक्ष. मास.यावत् सीत्तेर कोटाकोटी सागरोपम लग रह कर फल दे कर चली जाती है. यह दुसरा स्थितिबंध. ३ जैसें लडुमें रस है किसीमें कडुवा. किसीमें कषायेला.किसीमें मीठा. ऐसेंही कर्मोंमें रस है किसीमें दुःख रूप. किसीमें सुख रूप. जो जो अवस्था जीवकी संसारमें होती है. सो सर्व कर्मके अनुभागसें होती है. यह तीसरा अनुभाग बंध. तथा ४ जैसे लडुका तोल. सात.कोइ तोला.कोइ छ टांकादि होता है. ऐसें ही कर्मप्रदेशोंकी गिणती किसी कर्ममें थोडी. किसीमें अधिक होती है. यह चोथा प्रदेश बंध यह दृष्टांत कर्मग्रंथमें है.

अथ बंधके हेतु लिखते है. एक तो मिथ्यात्व सो तत्त्वार्थ श्रद्धान रहित होना. दुसरा पापोंसे निवृत्त होनेके परिणाम रहित होना. सो अविरतिपणा. तीसरा कष नाम संसारका है तथा कर्मका है. तिसका जो आय लाभ होवे सो कषाय. क्रोध. मान. माया. लोभ रूप चौथा योग सो मन वचन कायाका व्यापार. यह चारो. बंधके मूलहेतु है.

अब उत्तर हेतु सतावन लिखते है. उसमें प्रथम तो मिथ्यात्व पांच प्रकारका है. १ अभिग्रह मिथ्यात्व २ अनभिग्रह मिथ्यात्व. ३ अभिनिवेश मिथ्यात्व ४ संशयमिथ्यात्व. ५ अनाभोग मिथ्यात्व

१ प्रथम अभिग्रह मिथ्यात्व है सो जो जीव ऐसा जानता है कि जो कुछ मैंने समझा है सो सत्य है आगेकी समझ ठीक नही है सत्य [illegible] परीक्षा [illegible] सत्य असत्यका विचार नहीं करता है यह मिथ्यात्व [illegible] शास्त्रादि [illegible] समय [illegible] होता है [illegible] सत्य जानता है [illegible] जो मत उसने [illegible] [illegible] [illegible] मत सत्य [illegible] है ऐसे जिसके परिणाम होवे सो अभिग्रह मिथ्यात्व

२ दूसरा अनभिग्रह मिथ्यात्व, सो सर्व मतोंकों अछा माने,सर्वमतोंसें मोक्ष है, इस वास्ते किसीकों बुरा न कहनां, सर्वकों नमस्कार करनी, यह मिथ्यात्व, जिनोंने कोइ दर्शन ग्रहण नहीं करा, औसें जो गोपाल बालकादी तिनकों है, क्योंकि यह अमृत अरु विषकों एक सरिखे जानने वाले हैं.

३ तीसरा अभिनिवेश मिथ्यात्व, सो जो पुरुष जान करकें झुठ बोले प्रथम तो अज्ञानसें किसी शास्त्रार्थको भूल गया, पीछें जब कोइ विद्वान् क हे कि तुम इस बातमें भूलते हो, तब झुठे मतका कदाग्रह ग्रहण करे, जात्यादि अभिमानसें कहनां न माने, उलटी स्वकपोलकल्पित कुयुक्तियां बना करकें अपने मनमाने मतकों सिद्ध करे, वादमें हार जावे, तोभी न माने, औसा जीव अतिपापी, अरु बहुल संसारी होता है. औसी मि थ्यात्व प्रायः जो जैनी (जैनमतको) विपरीत कथन करता है, उसमें हो ती है, जैसें गोष्टमाहिलादिक हूये हैं, इस वार्त्ताकों भाष्यकार श्रीअभय देवसूरि नवांगीवृत्तिकारक नवतत्त्वप्रकरणकी भाष्यमें कहता है, "त था च भाष्यकारः ॥ गोढामाहिलमाई णं, जं अभिनिविसिं तु तयं ॥" आ दि शब्दसें बोटिक शिवभूतिकों अभिनिवेशिक मिथ्यात्व जाननां.

४ चौथा संशय मिथ्यात्व सो जिनोक्त तत्त्वमें शंका करणी, क्या यह जीव असंख्य प्रदेशी है ? वा नहीं है ? इस तरें सर्व पदार्थोमें शंका कर णी, तिससेंति जो उत्पन्न होवे, सो सांशयित मिथ्यात्व. "तदाह भाष्य कृत् ॥ सांशयिकं मिथ्यात्वं तदशेषया शंका संदेहोजिनोक्ततत्वेष्विति ॥" संशय मिथ्यात्वके होनेके कारण श्रीजिनभद्रगणिक्षमाश्रमण ध्यानशतकमें लिखते हैं, कि एक तो जैनमत स्याद्वादरूप अनंतनयात्मक है,इस वास्ते सम झनां कठिन है, तथा सप्तभंगीके सकलादेशी, विकलादेशी भंगांका स्वरूप, अष्टपक्ष, सात सौ नय, चार निक्षेप, द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, तथा १ उ त्सर्ग, २ अपवाद, ३ उत्सर्गापवाद, ४ अपवादोत्सर्ग, ५ उत्सर्गोत्सर्ग ६ अपवादापवाद, यह षड्भंगी तथा १ विधिवाद, २ चारित्रानुवाद, ३ वि धिवाद, ४ यथास्थितवाद, इत्यादि अनंतनयापेक्षा जैनमतके शास्त्र कथन कीये हूये हैं; जब तांइ जिस अपेक्षा शास्त्रोमें कथन है वो अपेक्षा न समझे, तब तांइ जैनशास्त्रका यथार्थ अर्थ समझनां कठिन है. इनके स मझनेके वास्ते बडी निर्मल बुद्धि चाहियें, सो थोडे जीवोंकों है, तथा



के जोगविलासमें मग्न में, अरु अनेक प्रकारके शस्त्र जिसके हाथमें हैं, अपनी ठकुराइमें अभिमानी है, हाथमें माला जपता है, सावध जोग पंचेंद्रियका वध चाहाता है, ऐसे देवकों जो पुरुष परमेश्वर माने, अथवा परमेश्वरका अंश अवतार माने, और पूजे, तिसके कहे हूये शास्त्रसें हिंसाकारी यज्ञादि करे, अनेक तरेंके पाप, धर्मके नामसें प्रवृत्त करे, इस लौकिक देवके अनेक भेद हैं. सो मिथ्यात्व सित्तरी प्रमुख ग्रंथोसें जानने. यह प्रथम लौकिक देवगत मिथ्यात्व है.

२ दूसरा लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व, सो जो अगारह पाप सेवे हैं, नव प्रकारका परिग्रह राखे, गृहस्थाश्रम सेवे, स्त्री, पुत्र, पुत्रीके परिवार वाला होवे, तथा कुलिंगी मनःकल्पित नवा नवा वेष बना कर स्वकपोलकल्पित चलावे, अरु आडंबरी होवे, बाह्य परिग्रह तो त्याग दीया है, परंतु अभ्यंतर ग्रंथि छोडी नहीं, गुरु नाम धरावे, मंडलीसें विचरे, जिसकी अनादि भूल मिटी नहीं, औ जिसकों शुद्ध साध्यकी पीछाण नहीं, तिसकों गुरु माने, तिसका बहुमान करे, तिस्सें मोक्ष जाणी दान देवे, उसकों परम पात्र जाणे, सो लौकिक गुरुगत मिथ्यात्व है.

३ तीसरा लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व, सो १ अजापडवा, २ प्रेतदूज, ३ गुरुतीज, ४ गणेशचौथ, ५ नागपंचमी ६ झीलणाछठ, ७ सीयलसातम, ८ बुद्धाष्टमी, ९ नोलीनवमी, १० विजयदशमी, ११ व्रतएकादशी, १२ वत्स द्वादशी, १३ धनतेरस, १४ अनंतचौदश, १५ अमावास्या, १६ सोमवतीअमावास्या, १७ रक्षाबंध, १८ होली, १९ आहोइ, २० दसहरा, २१ सोमप्रदोष २२ लोडी, २३ आदित्यवार, २४ उत्तरायण, २५ संक्रांति, २६ ग्रहण, २७ नवरात्र, २८ श्राद्ध, २९ पीपलकों पाणी देनां, ३० गर्दकों माताका घोडा मानके पूजणां, ३१ गोत्राटी, ३२ अन्नकूट, ३३ अनेक समशान, कबरोंका मेला. इत्यादि यह लौकिक पर्वगत मिथ्यात्व है.

४ चौथा लोकोत्तर देवगतमिथ्यात्व, सो देव श्रीअरिहंत, धर्मका आकर, विश्वोपकार सागर, परमपूज्य, परमेश्वर, सकल दोष रहित, शुद्ध, निरंजन, तिनकी स्थापनारूप जो प्रतिमा, तिसके आगें इस लोकके पौद्गलिक सुखकी आशासें मनमें कल्पना करे, जे कर मेरा यह काम हो जावेगा, तो मैं यही भारी पूजा करूंगा, छत्र चढाउंगा, दीपमालाकी रोशनी करूंगा, रात जा

प्रना करुंगा, ऐसें नावोंसें वीतरागकों माने, इस वास्ते यह मिथ्यात्व है, जो पुरुष चिंतामणिका दातासेंती काचका टुकडा मागे, वो युक्त नहीं. जिसकों अपणे कर्मोदयका स्वरूप मालुम नहीं, वोही जीव ऐसा होता है, यह लोकात्तरदेवगत मिथ्यात्व है.

५ पांचमा लोकोत्तरगुरुगत मिथ्यात्व, सो जो साधुका वेष रक्खे, अरु आप निर्गुणी होवे, जिनवाणीका उत्थापक होवे, अपणे मनःकल्पितका उपदेश देवे, सूत्रका सच्चा अर्थ तोडे, ऐसा लिंगी उत्सूत्रका प्ररूपक तिसकों गुरु जान कर मान, सन्मान करे, तथा जो साधु गुणी, तपस्वी, आचारी वहुक्रियावंत, तिसको इस लोक इछा करकें सेवा करे, वहुमान करे, मनमें ऐसें जाणे कि इनकी वहुत सेवा करुंगा, तव इनकी मेहरवानगीसें धन, ऋद्धि, स्त्री, पुत्रादि मुजकों मिलेंगे, यह लोकोत्तर गुरुगत मिथ्यात्व है.

६ छठा लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यत्व, सो प्रनुके पांच कल्याणिककी तिथि तथा दूसरे पर्वके दिन, तिन दिनोमें धनादिके वास्ते जप, तप, धर्मकरणी करे, सो लोकोत्तरपर्वगत मिथ्यात्व है. इत्यादि मिथ्यात्वके अनेक विकल्प हें, परंतु वो सब पूर्वोक्त अनिग्रहादि मिथ्यात्वमेंही अंतर्नूत हैं. यह पांच प्रकारका मिथ्यात्व कह्या, यह प्रथमबंध हेतु कह्या.

अव वारह प्रकारकी अविरति कहते हें. पांच इंड्रिय, छठा मन, अरु छे काय, यह वारह प्रकार हें. तिसका स्वरूप इस तरेसें हे, पांच इंड्रियोंकां अपणे अपणे विषयमें प्रवृत्तावे, सो पांच अव्रत, अरु छठा किसी पापकी वस्तुसें मनका निरोध न करनांसो अव्रत हे, तथा षड्विध जीवनिकायकी हिंसामें प्रवृत्त होवे, यह वारह प्रकारें अविरति हे, यह दूसरा वंधहेतु कह्या.

तीसरा कषायवंध हेतु हे, उनके सोलां कषाय, अरु नव नोकषाय मिल कर पच्चीस नेद हें. अनंतानुवंधि क्रोध, मान, माया, अरु लोन, ऐसेंही अप्रत्याख्यान क्रोधादि चार, तथा प्रत्याख्यान क्रोधादि चार. अरु संज्वलन क्रोधादि चार, एवं सोलह कषाय, इनके सहचारी नव नोकषाय हें, उसका नाम कहते हें. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ शोक, ५ नय, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ए नपुंसकवेद. इन सवका व्याख्यान पीछे लिख आये हें, इनसें कर्मका वंध होता हे. यही संसार स्थितिका मूल कारण हें. यह तीसरा वंध हेतु कह्या.

चोथा योगनामा बंधहेतु हैं. सो योग, मन, वचन, अरु काया, यह तीन प्रकारका है. इन तीनोंके पंदरा जेद हैं. तहां प्रथम मनोयोग चार प्रकारका हैं, और वचन योग चार प्रकारका है, अरु काययोग सात प्रकारका है, ये सब मिलकर पंदरा जेद हैं.

मन नाम अंतःकरणका है, सो चार प्रकारें है. १ सत्यमनोयोग, २ असत्यमनोयोग, ३ मिश्रमनोयोग, ४ व्यवहारमनोयोग. मन क्या वस्तु है? कायाके व्यापारसें पुजल ग्रहणा करके उन पुजलोंकों जब मनोयोग करके काढता है, तिसका नाम द्रव्यमन कहते हैं, अरु उन पुजलोंके संयोगसें जो ज्ञान उत्पन्न होता है, तिसका नाम जावमन है. उस ज्ञान करकें जो व्यवहार सिद्ध होता है, तिस व्यवहार करकें मनजी सत्यादि व्यपदेशको प्राप्त होता है, अरु उपचार करकें द्रव्यमनजी ज्ञायक है, मनमें जो सत्य व्यवहारका धारण करता सो सत्यमन, सो व्यवहार यह है, कि पापसें निवृत्तनां वचनके उच्चारण विना जो चिंतवन करनां कि मुनि है, जीवादि पदार्थ सत् हैं, इत्यादि मन शब्द करकें इहां मनोयोग नोइंद्रियावरण कर्मके क्षयोपशमसें उत्पन्न हुआ जो मनोज्ञान, उस करकें परिणत आत्माकों वलाधान करने वाला मनोवर्गणाके संबंधसें उत्पन्न हूआ वीर्यविशेष, सो इहां मन जाननां. इसी मनके चार जेद हैं. ऐसेंही वचनयोग, सो वचनकी वर्गणा अर्थात् परमाणुका समूह, उस वचन वर्गणा करकें उत्पन्न जइ सामर्थ्यविशेष, आत्माकी परिणति, सो वचनयोग जाननां.

मनके चार जेदमेंसूं सत्यमनोयोगका स्वरूप उत्तर लिख आये हैं, सो प्रथम जेद. अरु दूसरा मृषामन, सो धर्म नहीं, पाप नहीं, नरक, स्वर्ग, कुछ नहीं. इत्यादिक जो वचन निरपेक्ष चिंतवना करनी, सो जाननां. तिसरा मिश्रमन, सो सच, अरु जूठ, इन दोनोंका चिंतन, जैसें गोवर्गकों देख कर मनमें चिंतन करनां कि यह सर्व गौवां हैं. यह मिश्र इस वास्ते है कि उस गोवर्गमें बलदजी है, इत्यादि मिश्रवचन. चोथा "हे ग्रामं गछ" इत्यादि चिंतन करनां. सो व्यवहारमन, इसी तरें जब वचनयोगसें पूर्वोक्त चारोंका उच्चारण करे, तब वचन योगजी चार प्रकारका जान लेनां. यह चार मनके अरु चार वचनके एवं आठ जेद हूवे.

अब सत्यवचन दश प्रकारका है, १ जनपद सत्य, सो जिस देशमें जि

स वस्तुका जो नाम वोलते हैं, उस देशमें वो नाम सत्य है, जैसें कोंकण देशमें पाणीकों पिछ कहते हैं, कोइ देशमें वमा पुरुषकों वेटा कहते हैं, वा वेटेको काका कहते हैं, किसी देशमें पिताकों जाइ,सासुकों आइ,इत्यादि कहते हैं, सो जनपदसत्य. २ दूसरा सम्मतसत्य, सो जैसें पंकसें उत्पन्न हूआ मेंडक, सिवाल, कमल, तोजी पंकज शब्द करकें कमलही पूर्व विद्वानोनें सम्मत कीया है, परंतु मेंमक, सिवाल नहीं. ३ तीसरा स्थापनासत्य, सो जिसीकी प्रतिमा होवे,तिसकों उसके नामसें कहनां,जैसें महावीर, पार्श्वनाथजी अर्हंतकी प्रतिमा होवे,उस प्रतिमाकों महावीर, पार्श्वनाथ कहे, तो सत्य है, परंतु उसकों पछर कहे, सो मृषावादी है, जैसें स्याही और कागजका नाम, स्थापना करनेसें ऋग्, यजु, साम, अथर्व, कहे जाते हैं, आचारांगादि अंग कहे जाते हैं, तथा काष्टके आकार विशेषकों किवाड कहे जाते हैं, ईंट, पछर, चूनेकों स्थंज कहनां, पुस्तकमें त्रिकोणादि चित्र लिखकें उसकों आर्यावर्त्त, जारतवर्ष, जंबूद्वीपादि कहनां. तथा ककार, खकार, स्याहीकी स्थापनाकों कहनां. इस स्थापनासें पुरुषकी कतुक सिद्धि जरूर होती है, नहीं तो नाना प्रकारकी स्थापना, पुरुष, किस वास्ते करते हैं? इस वास्ते श्रीमहावीर तथा श्रीपार्श्वनाथजीकी स्थापनारूप प्रतिमाकों श्री महावीर पार्श्वनाथजी कहनां, यह स्थापना सत्य है.इसमें इतना विशेष है, किजो देव शुद्ध है, उसकी स्थापनाजी शुद्ध है, अरु जो देव शुद्ध नहीं, उसकी स्थापनाजी शुद्ध नहीं,परंतु उस स्थापनाकों उनका देव कहनां, यह वात सत्य है. ४ चौथा नामसत्य, सो किसीने अपने पुत्रका नाम कुलवर्द्धन रक्खा है, अरु जिस दिनसें वो पुत्र जन्मा है, उस दिनसें उस कुलका नाश होता चला जाता है, तोजी उस पुत्रकों कुलवर्द्धन नामसें पुकारे, तो सत्य है. ५ पांचमां रूपसत्य,सो चाहे गुणोंसें ज्रष्टजी है, तोजी साधुके वेषवालेकों साधु कहे, तो सत्य है, ६ उठा प्रतीतसत्य, अर्थात् अपेक्षासत्य, सो जैसें मध्यमाकी अपेक्षा अनामिकाकों गेटी कहनां. ७ सातमा व्यवहारसत्य, सो जैसें पर्वत जलता है, रसता चलता है. ८ आठमा जावसत्य,सो जैसें तोतेमें पांच रंग हैं, तोजी तोता हरे रंगका कहनां. ९ नवमा योगसत्य, सो जैसें दंडके योगसें दंमी कहनां. १० दशमा उपमासत्य, सो जैसें मुख,चंद्रवत् कहनां. यह दश प्रकारका सत्य है.

अब दश प्रकारके झूठ कहते हैं. १ क्रोधनिश्रित सो क्रोधके वश हो कर जो वचन बोले, सो असत्य, २ ऐसेंही मानके उदयसें बोले, सो असत्य, ३ ऐसें मायाके उदयसें बोले, सो असत्य, ४ लोजके, ५ रागके, ६ द्वेषके उदयसें बोले, सो असत्य, ७ हास्यके वश बोले, ८ नयके वश बोले, ९ विकथा करे, सो असत्य. १० जिस बोलनेमें जीवकी हिंसा होवे, सो असत्य. यह दश प्रकारका असत्य वचन है.

अब दश प्रकारका मिश्रवचन कहते हैं. १ उत्पन्न मिश्रित, सो विना ख वर कह देनां कि इस नगरमें आज दश बालक जन्मे हैं, इत्यादि. २ विगत मिश्रित, सो जैसें विना खबरके कहनां कि इस नगरमें आज दश मनुष्य मरे हैं. ३ उत्पन्नविगतमिश्रित, सो जैसें विना खबरके कहनां कि इस न गरमें आज दश जन्मे हैं, अरु दशही मरे हैं. ४ जीवमिश्रित, सो जीवा जीवकी राशिकों कहनां कि यह जीवहै. ५ अजीवमिश्रित, सो अन्नकी राशिको कहनां कि यह अजीव है.६ जीवाजीवमिश्रित, सो जीवाजीव दो नोंकी मिश्रजाषा बोले. ७ अनंतमिश्रित, सो मूली आदिकोंके अवयवोंमें किसी जगे अनंत जीव हैं, किसी जगे प्रत्येक जीव हैं, उनकों प्रत्येक काय कहें. ८ प्रत्येक मिश्रित, सो प्रत्येक जीवोंको अनंतकाय कहे. ९ अ ध्धामिश्रित,सो दो घडीके तडकेमें कहे कि दिन उग्या है. १० अदद्धामिश्रित, सो घडी एक रात्रि गया,दिनका उदय कहे. यह दश प्रकारका मिश्रवचन है.

अब व्यवहार वचनके बारह नेद कहते हैं. १ आमंत्रण करनां,कि हे नगवन्! २ आज्ञापना, सो यह काम कर, तथा यह वस्तु लाव. ३ या चना, सो यह वस्तु हमकों दीजीयें.४ पृछना, सो अमुक गामका मार्ग कौन सा है? ५ प्रज्ञापना, सो धर्म ऐसें होता है.६ प्रत्याख्यानी,सो यह काम हम नहीं करेंगे. ७ इछानुलोम, सो यथासुखं. ८ अनजिगृहीता,सो मुफकों खबर नहीं. ९ अजिगृहीता, सो मुफे खबर है. १० संशय, सो क्यों कर खबर नहीं है? ११ प्रगट अर्थ कहे. १२ अप्रगट अर्थ कहे. यह बारह प्रकारका व्यवहार वचन है.

औ कायायोगके सात नेद हैं. प्रथम कायायोग उसकों कहते हैं, कि आत्माके निवासजूत पुद्गलद्रव्य घटित बूढेकों दुर्बलकों अवष्टं नजूत जैसें लाठी आदि है, तिसकी तरें विषम काममें जिसके योगसें

जीवके वीर्यका परिणाम सामर्थ्य, सो काययोग है, जैसें अग्निके संयोग सें घटकी रक्तता होती हैं, तैसेंही आत्माकों कायके करण संबंधसें वीर्य परिणाम है. इस काययोगके सात नेद हैं. १ औदारिककाययोग, २ औदारिकमिश्रकाययोग, ३ वैक्रियकाययोग, ४ वैक्रियमिश्रकाययोग, ५ आहारककाययोग, ६ आहारकमिश्रकाययोग, ७ कार्मणकाययोग. उसमेंसूं प्रथमके दो काययोग तो मनुष्य, अरु तिर्यंचमें होते हैं, अगले दो स्वर्गवासी देवताओमें होते हैं, अरु अगले दो चौदह पूर्वपाठी साधुमें होते हैं, अरु जीव जब काल करकें परनवमें जाता है, तब रस्तेमें कार्मण शरीर होता है, तथा समुद्घात अवस्थामें केवलीमें होता है, अरु जो तैजस शरीर, आहार पांचन करनेमें समर्थ युक्त है, सो कार्मण योगके अंतरभूत होनेसें पृथग् ग्रहण नहीं कीया है. यह सप्तविध काययोग हैं. यह सब मिल कर बंधतत्त्वके उत्तर नेद सत्तावन्न हूये हैं ॥ इति बंधतत्त्वं संपूर्णं.

अथ मोक्षतत्त्व लिखते हैं. तहां प्रथम मोक्ष किसकों कहते हैं ?॥ यडुक्तं ॥ जीवस्य कृत्स्नकर्मक्षयेण यत्स्वरूपस्थानं तन्मोक्ष उच्यये ॥ नावार्थः— जीवके संपूर्ण ज्ञानावरणादि कर्मोंके क्षय होने करकें जो स्वरूपमें रहना है, सो मोक्ष कहते हैं. वो जो मोक्ष है, सो जीवका धर्म है. अरु धर्म धर्मीका कथंचित् अनेद होनेसें धर्मी जो सिद्ध, तिनकी जो प्ररूपणा, सो नी मोक्ष प्ररूपणा है, क्योंकि मोक्ष जो है, सो जीवपर्याय है, सो जीव पर्याय कथंचित् सिद्ध जीवसें अनिन्न है, सर्वथा जीवकी पर्याय जीवसें निन्न नहीं हो सक्ती है ॥ तडुक्तं ॥ श्लोक ॥ द्रव्यं पर्यायवियुतं, पर्यायद्रव्यवर्जिताः ॥ क कदा केन किं रूपा, दृष्टा मानेन केन वेति ॥ १ ॥ नावार्थः—द्रव्य पर्यायों करकें रहित अरु पर्यायों द्रव्य वर्जित अर्थात् रहित, किसी जगे, किसी अवसरमें, किसी प्रमाणसें, किसीने कोइ रूप देखा है?

अब सिद्धोंका सरूप नव द्वारोंसें सूत्रकार अरु नाष्यकार कहते हैं. १ सत्पद प्ररूपणा, २ द्रव्यप्रमाण, ३ क्षेत्र, ४ स्पर्शना, ५ काल, ६ अंतर, ७ नाग, ८ नाव, ९ अल्पबहुत्व. इन नव द्वारों करकें सिद्धोंका स्वरूप लिखते है. १ प्रथम सत्पद प्ररूपणा द्वार, सो जो सत्ता विद्यमानता तिसका कहने वाला पद, सो सत्पद सिद्ध है, वा नहीं सिद्ध है ? सो गति आदि चौद पदोमें कहनां. यथा "पंचविधा" १ पांच प्रकार गति है,

१ नरकगति, २ तिर्यग्गति, ३ मनुष्यगति, ४ देवगति, ५ सिद्धगति. तहां सिद्धगति वर्जके शेष चार गतिमें सिद्ध नहीं. यद्यपि १ कर्मसिद्ध, २ शिल्पसिद्ध, ३ विद्यासिद्ध, ४ मंत्रसिद्ध, ५ योगसिद्ध, ६ आगमसिद्ध, ७ अर्थसिद्ध, ८ यात्रासिद्ध, ९ अभिप्रायसिद्ध, १० तपःसिद्ध, ११ कर्मक्षयसिद्ध. ऐसें अनेक तरेंके सिद्ध आवश्यककी निर्युक्तिकारने कहे हैं. तोभी इहां जो कर्मक्षय करकें सिद्ध हूआ है, तिसका अधिकार है, इनहींकों मोक्षपर्याय है, औरोंकों नहीं. २ इंद्रिय स्पर्शनादि पांच है, एक इंद्रिय, दो इंद्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय, पांच इंद्रिय. इन पांचों प्रकारोंमें सिद्ध पणां नहीं, क्योंकि सर्वथा शरीरके परित्यागनेसें सिद्ध होता है, जहां शरीर नहीं, तहां इंद्रियभी कोइ नहीं. इसी वास्ते सिद्ध अतींद्रिय हैं, ३ पृथिवीकाय, २ अप्काय, ३ तेजःकाय, ४ पवनकाय, ५ वनस्पतिकाय, ६ त्रसकाय. इन छही कायोंके जीवोंमें सिद्धपणां नहीं. क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो अकाय (काय रहित हैं,) ४ काय, वचन, अरु मन भेद करकें योग तीन है. उसमें केवल काययोग वाले एकेंद्रिय जीव हैं, अरु काय वचन योग वाले द्वींद्रियादि असंज्ञी पंचेंद्रिय पर्यंत जीव है, अरु काय, वचन, मन योग वाले संज्ञी पंचेंद्रिय पर्याप्त जीव हैं, इन तीनों योगोंमें सिद्धपणेकी सत्ता नहीं, क्योंकि सिद्ध अयोगी हैं, अरु अयोगी पणां तो काय वचन अरु मनके अभावसें होता है. ५ स्त्री, पुरुष, नपुंसक, इन तीनों वेदोमें सिद्ध पदकी सत्ताका अभाव है, क्योंकि सिद्ध जो हैं, सो पूर्वोक्त हेतुसें अवेदी हैं. ६ क्रोध, मान, माया, लोभ, इन चारों कषायोंमें सिद्ध पणां नहीं, है, क्योंकि सिद्ध अकषायी हैं, सो अकषायिपणां कर्मके अभावसें होता है, ७ मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अवधिज्ञान, मनःपर्यायज्ञान, केवल ज्ञान. यह पांच प्रकारका ज्ञान है. अरु मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान, विभंगज्ञान, यह तीन अज्ञान हैं. उसमें आदिके चारों ज्ञानोंमें अरु तीनों अज्ञानोंमें सिद्धपणा नहीं है, एक केवलज्ञानमें सिद्धपणां हैं, सो केवलज्ञान, इहां सिद्धावस्थाका जाननां, परंतु सयोगी अवस्थाका नहीं. ८ सामायिक, छेदोपस्थापनीय, परिहारविशुद्धि, सूक्ष्मसंपराय, अरु यथाख्यात. यह पांच चारित्र, तथा इनके विपक्षी देश संयम, अरु असंयम. तहां पांचविध चारित्रमें तथा दोनो विपक्षोमें सिद्धपणा मोक्षप

जैसेंकि यह करा है, यह करुंगा, यह मैं कर रहा हूं, ऐसा जो त्रिकाल विषय मनोविज्ञानवाले जीव हैं, तिनकों संज्ञी कहते हैं. इनसें जो विप रीत होवे, सो असंज्ञी जानने. यह संज्ञी तथा असंज्ञी, इन दोनोहीमें सि द्ध पद नहीं. क्योंकि सिद्ध तो नोसंज्ञी नोअसंज्ञी हैं, १४ ओज आहार, लोम आहार, प्रक्षेप आहार, ए आहर, तीन प्रकारका है. इन तिनों आहारोमें सिद्ध नहीं. यह प्रथम सत्पद प्ररूपण द्वार कह्या.

दूसरा द्रव्य प्रमाण द्वार लिखते हैं. गिणती करियें तो सिद्धोंके जीव अनंत हैं. तीसरा क्षेत्र द्वार, सो आकाशके एक देशमें सर्व सिद्ध रहते हैं, वो आकाशका देश कितना वडा है? सो कहते हैं, कि धर्मास्तिकायादिक पांच द्रव्य, जहां तक हैं, तहां तक लोक है, ऐसा जो लोक संबंधि आ काश, तिसके असंख्यमे भागमें सिद्ध रहते हैं. चौथा स्पर्शनाद्वार, सो जि तने आकाशमें सिद्ध रहते हैं, स्पर्शना उससें किंचित् अधिक है. पांचमा काल द्वार, सो एक सिद्धके आश्री सादि अनंतकाल है, अरु सर्व सिद्धा श्रित अनादि अनंतकाल जानना. छठा अंतर द्वार, सो सिद्धोंके विचाले अंतर नहीं, सर्व सिद्ध मिलकें एकही रूपवत् रहते हैं. सातमा भाग द्वार, सो सिद्ध जे हैं ते सर्व जीवोंके अनंतमे भागमें हैं. आठमा भाव द्वार, सो सिद्धोंकों क्षायिक परिणामिक भाव है, शेष भाव नहीं. नवमा अल्प बहुत्व द्वार, सो सर्वसें थोडे अनंतर सिद्ध हैं, अनंतर सिद्ध उनकों कहते हैं कि जिनकों सिद्ध हुआ, एक समय हुआ है, तिनसें प रंपर सिद्ध अनंत गुणे हुए हैं, छै मास सिद्ध होनेमें उत्कृष्ट अंतर होता है. यह अल्प बहुत्व द्वार कह्या. यह मोक्षतत्त्वका स्वरूप संक्षेपमात्र लिखा है, जे कर विशेष करकें सिद्धोंका स्वरूप देखनां होवे, तदा नंदीसू त्र, प्रज्ञापन्नसूत्र, सिद्धप्राभृतसूत्र, सिद्धपंचाशिका, देवाचार्यकृत नवतत्त्व प्रकरणकी वृत्ति देख लेनी. तथा आगें चतुर्दश गुणस्थानमेंभी सिद्धोंका कुछक स्वरूप लिखेंगे ॥ इतिश्री तपगछीयमुनिश्रीबुद्धिविजयशिष्य मुनि आ नंदविजय आत्मारामविरचिते जैनतत्त्वादर्शे नवतत्त्व स्वरूपनिर्णयनामा पंचमः परिछेदः संपूर्णः ॥ ५ ॥

अथ षष्ठ परिछेद प्रारंभ ॥

यह षष्ठ परिछेदमें चौदह गुणस्थानका स्वरूप किंचित् मात्र लिखते हैं. यह जैन मतमें भव्य जीवांकों सिद्धिसौधके चढने वास्ते गुणोंकी जो श्रेणी हैं, सोही निसरणी है, तिस गुण निसरणीमें पगथरणरूप गुणोसें गुणांतरकी प्राप्तिरूप जो स्थान, अर्थात् भूमिका है, सो चौदह हैं, तिनके नाम कहते हैं. १ मिथ्यात्व गुणस्थानक, २ सास्वादन गुणस्थानक, ३ मिश्र गुणस्थानक, ४ अविरतिसम्यक्दृष्टि गुणस्थानक, ५ देशविरति गुणस्थानक, ६ प्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ७ अप्रमत्तसंयत गुणस्थानक, ८ अपूर्वकरण गुणस्थानक, ९ अनिवृत्तवादर गुणस्थानक, १० सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानक, ११ उपशांतमोह गुणस्थानक, १२ क्षीणमोह गुणस्थानक, १३ सयोगीकेवली गुणस्थानक, १४ अयोगीकेवली गुणस्थानक. यह चौदह गुणस्थानक अर्थात् गुणरूप भूमिकाके नाम हैं.

तहां प्रथम मिथ्यात्व गुणस्थानकका स्वरूप कहते हैं, उसमेंभी प्रथम व्यक्त, अव्यक्त, मिथ्यात्वका स्वरूप कहते हैं. जो स्पष्टचैतन्यसंज्ञी पंचेंद्रिय जीवोंकी अदेव, अगुरु औ अधर्म, इन तीनोंमें क्रम करकें देव, गुरु, औ धर्मकी बुद्धि होवे, सो व्यक्तमिथ्यात्व है. अरु उपलक्षणसें जीवादि नव पदार्थोंमें जिसकी श्रद्धा नहीं, अरु जिनोक्त तत्वसें जो विपरीत प्ररूपणा करणी, तथा जिनोक्त तत्वमें संशय करणां, तथा जिनोक्त तत्त्वमें दूषणोंका आरोप करणां इत्यादि. तथा आभिग्राहिकादि जो पांच मिथ्यात्व हैं, तिनमें एक अनाभोगिकमिथ्यात्व तो अव्यक्त मिथ्यात्व है, शेष चार भेद, व्यक्त मिथ्यात्वके हैं. तथा "अधम्मे धम्मसन्ना इत्यादि" दश प्रकारकी जो मिथ्यात्व है, सो सर्व व्यक्त मिथ्यात्व है. अरु अपर जो अनादि कालसें मोहनीय प्रकृतिरूप मिथ्यात्व सत् दर्शनरूप आत्माके गुणका आछादक जीवके साथ सदा अविनाभावि है, सो अव्यक्तमिथ्यात्व है.

अथ मिथ्यात्वकों गुण स्थानक किसी रीतीसें कहते हैं? सो लिखते हैं. अनादि अव्यक्त मिथ्यात्व अव्यवहार राशिवर्त्ती जीवमें सदा होती है, परंतु व्यक्त मिथ्यात्वकी जो बुद्धि है, तिस बुद्धिकी जो प्राप्ति है, सोइ मिथ्यात्व गुणस्थानक है.

प्रश्नः– मिथ्यात्व गुणस्थानमें सर्व जीवोंके स्थान मिलते हैं. यह जैनशास्त्रका कथन है, तो फेर कैसें व्यक्त मिथ्यात्वकी बुद्धिकों गुणस्थान रूपता कहते हो ?

उत्तरः–सर्वभाव सर्व जीवोने पूर्वे अनंत वार पाया है, इस वचनके प्रमाणसें जो प्राप्तव्यक्त मिथ्यात्वबुद्धिवाले जीव, व्यवहार राशिवर्त्ती हैं, सोही प्रथम गुणस्थानवाले जीव कहे जाते हैं, नतु अव्यवहार राशि वर्त्ती जीव ? क्योंकि वो अव्यक्तमिथ्यात्व वाले हैं, इस वास्ते दोष नहीं.

अथ मिथ्यात्व रूप दूषणका स्वरूप कहते हैं. जैसें जीव मनुष्यादिक प्राणी मदिरेके उन्मादसें हित, वा अहित, यह कुछभी नष्टचैतन्य होनेसें नहीं जानता है, तैसेंही मिथ्यात्व करके मोहित जीव धर्माधर्म सम्यक् नहीं जानता है, ॥यदाह ॥श्लोक॥ मिथ्यात्वेनालीढचित्ता नितांतं, तत्वातत्वं जानते नैव जीवाः ॥ किं जात्यंधाः कुत्रचिद्वस्तुजाते, रम्यारम्यं व्यक्तमासादयेयुः ॥ १ ॥ इति ॥ अथ मिथ्यात्वकी स्थिति कहते हैं, अभव्य जीवोंकी अपेक्षा मिथ्यात्व जो है, अरु सामान्य प्रकारें अव्यक्त मिथ्यात्व, इनकी अनादि अनंत स्थिति है, सोइ स्थिति भव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है, यह स्थिति सामान्यप्रकार करकें मिथ्यात्वकी अपेक्षा दिखलाइ है, जे कर मिथ्यात्व गुणस्थानककी स्थिति विचारियें, तदा भव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि सांत है. तथा सादि सांतभी है, अरु अभव्य जीवोंकी अपेक्षा अनादि अनंत है. जब मिथ्यात्व गुणस्थानकमें जीव वर्त्तता है. तब एक सौ वीश बंध प्रायोग्य कर्मप्रकृतियोंमेंसूं १ तीर्थंकर नाम कर्मकी प्रकृति, २ आहारकशरीर, ३ आहारकोपांग, यह तीन प्रकृति नहीं बांधता है. शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, तथा एक सौ बावीश कर्म प्रकृति जो उदय प्रायोग्य है, तिनमेंसूं १ मिश्रमोहनीय, २ सम्यक्त्वमोहनीय, ३ आहारक, ४ आहारकोपांग, ५ तीर्थंकर नाम, यह पांच कर्मप्रकृति वर्जके शेष एक सौ सत्तरां प्रकृतिका उदय है, अरु एक सौ अडतालीस कर्म प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति ॥ १ ॥

अथ दूसरा सास्वादन गुनस्थानकका स्वरूप कहते हैं. उसमें प्रथम तो यह गुणस्थानकका कारणभूत उपशम सम्यक्त्व है, जिसका स्वरूप कहते हैं, जीवमें अनादिकालसंभूत (उत्पन्न) मिथ्याकर्मकी उपशां

तिसें अनादिकाल उद्भव मिथ्याकर्मके उपशम होनेसें, ग्रंथिभेद करण कालसें पीछे औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह सामान्य स्वरूप है, अरु विशेषस्वरूप ऐसें है कि औपशमिक सम्यक्त्व दो प्रकारका है, एक तो अंतकरणौपशमिक सम्यक्त्व. अरु दूसरा स्वश्रेणिगत, अर्थात् उपशम श्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व है. तहां अपूर्व करण करकेही करा है ग्रंथिभेद जिसने, अरु मिथ्यात्व कर्म पुद्गल राशिके तीन पुंज करे हैं जिसने. सो तीन पुंज यह हैं, १ अशुद्ध, २ अर्द्धशुद्ध, ३ शुद्ध. इसमें अशुद्ध पुंज जो है, सो मिथ्यात्वमोहनीय है, अरु अर्द्ध शुद्ध जो है, सो मिश्रमोहनीय है. तथा शुद्ध पुंज जो है, सो सम्यक्त्व मोहनीय है. इनका स्वरूप पीछें लिख आये हैं, यह तीन पुंज जिसने नहीं करे हैं, अरु उदय आया मिथ्यात्व क्षय कीया है तथा जो मिथ्यात्व उदय नहीं आया, तिसकों उपशमाया है. अंतर करणमें अंतर्मुहूर्त्तकाल लगें सर्वथा मिथ्यात्वके अवेदककों अंतर करणमें औपशमिक सम्यक्त्व होता है, यह एक भेद. तथा औपशम श्रेणिप्रतिपन्नकों मिथ्यात्व अनंतानुबंधीके उपशम हूआ स्वश्रेणिगत औपशमिक सम्यक्त्व होता है, सो दूसरा भेद. ये दोनो प्रकारकी जो उपशम सम्यक्त्व है, सो सास्वादन उत्पत्तिमें मूल कारण है.

अथ सास्वादनस्वरूप लिखते हैं. औपशमिक सम्यक्त्ववाला जीव शांत हूये अनंतानुबंधी चारों कषायोंमें एकभी क्रोधादिकके उदय हूयां थकां औपशमिकरूप गिरिशिखर तुल्यतें " परिच्युतो भ्रष्टो " अर्थात् गिरा सो जहां लगि मिथ्यात्वरूप भूतलकों नहीं प्राप्त हूआ. तहां लगि एकसमयसें ले कर षट्आवलिकाप्रमाण सास्वादन गुणस्थानवर्त्ती होता है.

प्रश्नः—व्यक्तबुद्धिप्राप्तिरूप प्रथम अरु मिश्रादि गुणस्थानोंको उत्तरोत्तर चढण रूपोंको तो गुणस्थानपणा युक्त है, परंतु सम्यक्त्वसें पडने वाले सास्वादनको गुणस्थानपणा कैसें संभवे ?

उत्तरः—मिथ्यात्व गुणस्थानवर्त्ती अपेक्षा सास्वादनभी ऊर्ध्व आरोहरूप होनेसें गुणस्थान है. क्योंकि मिथ्यात्व गुण अभव्य जीवोंकोभी होता है. अरु सास्वादन तो भव्य जीवोंहीकों होता है. भव्य जीवोंमेंभी जिसका अर्द्ध पुद्गलपरावर्त्त शेष संसार है, तिनहीकों होता है. इस वास्ते सास्वादनकोंभी मिथ्यात्व गुणस्थानसें आरोहरूप गुणस्था

नत्व हो सक्ता हैं. तथा सास्वादन गुणमें वर्त्तता हुआ जीव, १ मि- ४ नरकत्रिक, ८ एकेंद्रियादि जाति चार, ९ आतपनाम, १० स्थावर ११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तनाम, १३ साधारणनाम, १४ हुंडक संस्थ १५ सेवार्तसंहनन, १६ नपुंसकवेद, यह सर्व सोलां प्रकृतिका बंध - छेद करता है, शेष एक सो एक प्रकृतिका बंध करता है, तथा ३ सू त्रिक, ४ आतप, ५ मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी, यह छे प्रकृतिका उ व्यवछेद होनेसें १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थंकरनामकी सत्ता १४७प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे सास्वादन गुणस्थानकका स्वरूप

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. दर्शनमोह... तिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसें जीवविषये जो समकाल समरूप क सम्यक्त्व मिथ्यात्वकें मिलनेसें मिश्रितभाव अंतरमुहूर्त्त यावत् मि गुणस्थान कहते हैं, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र मि नेसें मिश्रभावमें वर्त्ते है, सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि मि णा जो है, सो दोनोंके मिलनेसें एक रूप जात्यंतर है, अथ दोनों भ के एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टांत लिखते हैं. कि जैसें घोडी और ग इन दोनोके संयोगसें जात्यंतर खच्चर उत्पन्न होता है, अथवा जैसें और दहींके मिलनेसें जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है, ही जिस जीवकों सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोंमें समबुद्धिसें स सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर भेदात्मक होनेसें मिश्र स्थानक होता है. जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब प वका आयु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्त्तता हूआ जी मरताभी नहीं है, भातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टि गुणस्थानकमें आरोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टि गुणस्थानकमें पीछा आ कर मरता है, परंतु मिश्रगुणस्थानमें वर्त्तमान नहीं मरता है. यह मिश्रकी तरे बारहवा क्षीणमोह, अरु तेरहवा सयोगि इन दोनो गुणस्थानोमेंभी जीव नहीं मरता है, शेष इग्यारह गुणस्था में काल कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति सम्यक्दृ यह तीन गुणस्थानक जीवके साथ परभवमें जाते हैं. शेष इग्यारह गु स्थानक नहीं जाते हैं, तथा जिन जीवोने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोमें

नत्व हो सक्ता हैं. तथा सास्वादन गुणमें वर्त्तता हुआ जीव, १
४ नरकत्रिक, ८ एकेंद्रियादि जाति चार, ९ आतपनाम, १०
११ सूक्ष्मनाम, १२ अपर्याप्तनाम, १३ साधारणनाम, १४ हुंडक
१५ सेवार्तसंहनन, १६ नपुंसकवेद, यह सर्व सोलां प्रकृतिका बंध
छेद करता है, शेष एक सो एक प्रकृतिका बंध करता है, तथा ३
त्रिक, ४ आतप, ५ मिथ्यात्वोदय, ६ नरकानुपूर्वी, यह छे प्रकृ
व्यवछेद होनेसें १११ कर्मप्रकृति वेदता है, तथा तीर्थंकरनामकी सत्त
१४७प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति दूसरे सास्वादन गुणस्थानकका

अथ तीसरे मिश्रगुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. दर्शनमोहनीय
तिरूप मिश्र मोहकर्मके उदयसें जीवविषये जो समकाल समरूप
सम्यक्त्व मिथ्यात्वकें मिलनेसें मिश्रितभाव अंतरमुहूर्त्त यावत्
गुणस्थान कहते हैं, जो जीव, सम्यक्त्वमिथ्यात्व दोनोंके एकत्र
नेसें मिश्रभावमें वर्त्ते है, सो मिश्रगुणस्थानस्थ होता है, क्योंकि
णा जो है, सो दोनोंके मिलनेसें एक रूप जात्यंतर है, अथ दोनों भा
के एकत्व जात्यंतर होनेमें दृष्टांत लिखते हैं. कि जैसें घोडी और ग
इन दोनोके संयोगसें जात्यंतर खचर उत्पन्न होता है, अथवा जैसें गु
और दहींके मिलनेसें जात्यंतर रस शिखरणी रूप उत्पन्न होता है, त
ही जिस जीवकों सर्वज्ञ असर्वज्ञके कहे दोनो धर्मोमें समबुद्धिसें प
सरीखी श्रद्धा उत्पन्न होवे, सो जात्यंतर भेदात्मक होनेसें मिश्रगु
स्थानक होता है. जब यह मिश्रगुणस्थानस्थ जीव होता है, तब पर
वका आयु नहीं बांधता है, अरु मिश्रगुणस्थानकमें वर्त्तता हूआ जी
मरताभी नहीं है, जातो सम्यक्दृष्टि हो कर चौथे सम्यक्दृष्टि
णस्थानकमें आरोह कर मरता है, अथवा कुदृष्टि हो कर मिथ्यादृष्टि
णस्थानकमें पीछा आ कर मरता है, परंतु मिश्रगुणस्थानमें वर्त्तमान
ही मरता है. यह मिश्रकी तरे बारहवा क्षीणमोह, अरु तेरहवा सयोगि
इन दोनो गुणस्थानोंमेंभी जीव नहीं मरता है, शेष इग्यारह गुणस्था
में काल कर जाता है, अरु मिथ्यात्व, सास्वादन, अविरति सम्यक्दृ
यह तीन गुणस्थानक जीवके साथ परभवमें जाते है. शेष इग्यारह गु
स्थानक नहीं जाते हैं, तथा जिन जीवोंने मिथ्यात्वादि गुणस्थानोंमें

ायु बांधा है, अरु पीछें उनकों मिश्रगुण स्थानक हूआ है, वो जब मरे ा, तब जीस गुणस्थानकमें आयु बांधा है, तिसी गुणस्थानमें जा कर रता है, औ गतिनी उसकी उसी मरण वाले गुणस्थानकके अनुसारें ोती है, तथा मिश्रगुणस्थानक वाला जीव, १ नरकगति, २ नरकायु, नरकानुपूर्वी, ४ स्त्यानर्द्धित्रिक, ७ दुर्भग, ८ दुःस्वर, ९ अनादेय, ३ अनंतानुबंधी चार, १७ मध्यके चार संस्थान, २१ मध्यके चार संहन , २२ नीचगोत्र, २३ उद्योतनाम, २४ अप्रशस्तविहायोगति, २५ स्त्रीवेद ह पच्चीश प्रकृतिका बंधव्यवछेद करता है. तथा मनुष्यायु, देवायु, यह ोनो नहीं बांधता है, यह सत्तावीश प्रकृति विना शेष चोहत्तर प्रकृति ा बंध करता है, ४ तथा अनंतानुबंधी चार, ५ स्थावरनाम, ६ एकेंद्रिय, ! विकलत्रिक, इनके उदयके व्यवछेद होनेसें अरु मनुष्यानुपूर्वी, तथा ीर्यगानुपूर्वी, इन दोनोके उदय न होनेसें एक सौ प्रकृतिका उदय वेदता ;, अरु पूर्वोक्त १४७ प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति मिश्रगुणस्थानकं ॥ ३ ॥

अथ चौथा अविरतिसम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. तहां रथम सम्यक्त्व प्राप्तिका स्वरूप कहते हैं, कि नव्य संज्ञी पंचेंद्रिय जीव ों यथोक्ततत्व यथावत् सर्ववित् प्रणीत तत्वोमें जीवादि पदार्थोमें निस गेसें अर्थात् पूर्वजव अन्यासविशेष करकें उत्पन्न नइ अत्यंतनिर्मल गुणा मक रूप स्वनाव, इन स्वनावसें अथवा गुरुके उपदेश श्रवण करणेसें रु चि नावना प्रगट उत्पन्न होती है. सो सम्यक्त्व, सम्यक्श्रद्धान लक्षण हते हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ रुचिर्जिनोक्ततत्वेषु, सम्यक् श्रद्धानमुच्यते । जायते तन्निसर्गेण, गुरोरधिगमेन वा ॥ १ ॥ अथ अविरति सम्यग्दृ ष्टिपणा जैसें होता है,तैसें कहते हैं. दूसरी कषाय अप्रत्याख्यान,जिसका नाम है. ऐसें जे क्रोध, मान, माया, लोन, तिनके उदय करकें, वर्जित हुआ विरतिपणा इसी वास्ते केवल सम्यक्त्व मात्र जहां होवे, सो चौथे गुणस्थान वालोंको अविरति सम्यग्दृष्टिनामक गुणस्थानक होता है. इस का तात्पर्य यह है, कि जैसें कोइ पुरुष, न्यायोपपन्न धन नोग विलाससें द र्शनादिकसें हस्तनी हुआ है, परंतु दुरंत जूआ आदि व्यसन सेवन करने लगा, इत्यादि अनेक अन्याय करे है, सो अपराध करनेसें उसको राजदंड मिला है, सो दंडित करा है जिनोने अनिमान, ऐसे जो दं

पाशिक कोटवाल तिनों करकें विडंव्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हूआ अपणे कुलके सुंदर सुख संपदाकी अजिला पां करताजी है, परंतु कोटवालोंसें बूटके सुखका उल्लासजी नहीं ले सक्ता है, तैसेंही यह जीवजी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अजिलापाजी करता है, परंतु कोटवाल समान दूसरी कषायके पाशों बूटनेका उत्साहजी नहीं कर सक्ता है, औ अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुजव करता है.

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कतुक अधिक है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीयोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है, तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुजलपरावर्त्त शेष संसार रहता है, तब जीवकों आता है, दूसरोंकों नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसें क्रोध उत्पन्नजी हो गया है, तोजी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, तिसका नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढने वास्ते सोपानसमान सम्यग् ज्ञानादि साधनोंमें उत्साह लक्षण मोक्षाजिलाप, तिसका नाम संवेग है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीखानेसें निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जानां है, तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त जावोंकी अस्तित्वका चिंतनां तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमें होवे, वो जव्यजीव सम्यग् दर्शन करकें अलंकृत होता है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्त्ती जीवोंकी कौनसी गति है? सो कहते हैं. इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों करण कहते हैं, सो करण, तीन प्रकारका होता है, १ यथा प्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनिवृत्तिकरण. तहां पर्वतकी नदीके जल करकें आलोड्यमान पाषाणकी तरें घंचनां (घोलनां) न्याय करकें जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् ऊनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करता हूआ जिन अध्यवसाय विशेष करकें ग्रंथिदेश तक आता है, सो यथाप्रवृत्तिकरण क

पाशिक कोटवाल तिनों करकें विडंब्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हूआ अपणे कुलके सुंदर सुख संपदाकी अभिला षा करताजी है, परंतु कोटवालोंसें बूटके सुखका उल्लासजी नहीं ले सक्ता है, तैसेंही यह जीवजी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है विरतिके सुंदर सुखकी अभिलाषाजी करता है, परंतु कोटवाल समान दूसरी कषायके पाशों बूटनेका उत्साहजी नहीं कर सक्ता है, औ अवि रति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुजव करता है.

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कछुक अधि क है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीयोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुजलपरावर्त्त शेष संसार रहत है, तब जीवकों आता है, दूसरोंकों नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर क रनेकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसें क्रोध उत्पन्न जी हो गया है, तोजी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, तिस का नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढने वास्ते सोपानसमान सम्यग् ज्ञा नादि साधनोंमें उत्साह लक्षण मोक्षाभिलाष, तिसका नाम संवेग है ४ अत्यंत कुत्सितनर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीखानेसें निकल वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जानां है, तिसका नाम निर्वे है. ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त जावोंकी अस्तित्वका चिंतनां तिसका नाम आस्तिक्य है. यह पांच लक्षण जिस जीवमें होवे, वो जव्यजीव सम्यग् दर्शन करकें अलंकृत होता है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्त्ती जीवोंकी कौनसी गति है ? सो क हते हैं. इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों करण कहते हैं, सो करण तीन प्रकारका होता है, १ यथा प्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनि वृत्तिकरण. तहां पर्वतकी नदीके जल करकें आघोलमान पाषाणकी तरें घंचनां (घोलनां) न्याय करकें जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् ऊनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करता हूआ जिस अ ध्यवसाय विशेष करकें ग्रंथिदेश तक आता है, सो यथाप्रवृत्तिकरण क

पाशिक कोटवाल तिनों करकें विडंब्यमान अपने व्यसन जनित कुत्सित कर्मकूं विरूप जानता हूआ अपणे कुलके सुंदर सुख संपदाकी अभिला षा करताजी है, परंतु कोटवालोंसें बूटके सुखका उल्लासजी नहीं ले सक्ता है, तैसेंही यह जीवजी अविरतिपणेंकों खोटे कर्मका फल जानता है, विरतिके सुंदर सुखकी अजिलाषाजी करता है, परंतु कोटवाल समान दूसरी कषायके पाशों बूटनेका उत्साहजी नहीं कर सक्ता है, औ अवि रति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका अनुजव करता है.

अथ चौथे गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं, इस अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानककी स्थिति उत्कृष्टी तो तेत्तीस सागरोपम प्रमाण कतुक अधि क है, सो सर्वार्थ सिद्धादि विमानवासीयोंकी स्थिति मनुष्यायु अधिक है, तथा यह सम्यक्त्व, जब जीवका अर्द्ध पुजलपरावर्त्त शेष संसार रहता है, तब जीवकों आता है, दूसरोंकों नहीं आता है.

अथ सम्यग्दृष्टिका लक्षण कहते हैं, १ दुःखी जीवके दुःख दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम कृपा है, २ किसी कारणसें क्रोध उत्पन्नजी हो गया है, तोजी तीव्र अनुशय अर्थात् तीव्र वैर नहीं रखता है, तिस का नाम प्रशम है, ३ सिद्धिसौधके चढने वास्ते सोपानसमान सम्यग् ज्ञा नादि साधनोंमें उत्साह लक्षण मोक्षाजिलाष, तिसका नाम संवेग है, ४ अत्यंत कुत्सिततर अर्थात् अत्यंत बुरा संसाररूप बंदीखानेसें निकलने वास्ते परम वैराग्य रूप दरवाजेमें जो आ जानां है, तिसका नाम निर्वेद है, ५ श्रीसर्वज्ञ प्रणीत समस्त जावोंकी अस्तित्वका चिंतनां तिसका नाम आस्तिक्य है, यह पांच लक्षण जिस जीवमें होवे, वो जव्यजीव सम्यग् दर्शन करकें अलंकृत होता है.

अथ सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकवर्त्ती जीवोंकी कौनसी गति है ? सो क हते हैं. इहां जीवपरिणामविशेषरूपकों करण कहते हैं, सो करण, तीन प्रकारका होता है, १ यथा प्रवृत्तिकरण, २ अपूर्वकरण, ३ अनि वृत्तिकरण. तहां पर्वतकी नदीके जल करकें आलोड्यमान पाषाणकी तरें घंचनां (घोलनां) न्याय करकें जीव आयु वर्जके शेष कर्मोंकी स्थिति किंचित् ऊनी एक कोटाकोटी सागर प्रमाण स्थिति करता हूआ जिन अ ध्यवसाय विशेष करकें ग्रंथिदेश तक आता है, सो यथाप्रवृत्तिकरण क

हते हैं. २ तथा जिन अप्राप्त पूर्व अध्यवसाय विशेष करकें तिस ग्रंथिकां ग्रंथि घन निबिड रागद्वेष परिणतिरूपकों कहते हैं. तिस ग्रंथिके भेदनेका जो आरंभ, तिसकों अपूर्वकरण कहते हैं, ३ तथा जिन अध्यवसाय विशेष करकें अनिवृत्त, ग्रंथिभेद करकें अति परम आनंद जनक सम्यक्त्व पाता है, तिसका नाम अनिवृत्ति करण है. यह तीनों करणका स्वरूप श्रीजिन भद्रगणिक्षमाश्रमण आचार्य, आवश्यककी शुद्धांभोनिधि गंधहस्ति महा भाष्यमें लिखते हैं. तीन पथिकके दृष्टांतसें तीनों करणका स्वरूप दिखाते हैं. जैसें तीन पथिक उजाडके रस्ते चले जाते थे, तहां चलते चलते वि काल वेला हो गइ, औ सूर्य अस्त हो गया, वे पंथी, मनमें बहुत डरने लगे, इतनेमें उस वखत तहां तत्काल दो चोर आ पहुंचे, तिन चोरोंकों देख कर तिनमेंसूं एक पथिक तो डरता हूआ पीछेकों दौड गया, अरु ए क पथिककों चोरोने पकड लीया, अरु एक पथिक तिन चोरोसें लड भिड मार पीट करकें अगले नगरमें पहुंच गया, यह तो दृष्टांत है. इसका दार्ष्टा त ऐसें हैं, कि उजाड जो है, सो मनुष्य भव है, तिसमें कर्मोंकी जो स्थिति है, सो दीर्घ रस्ता है, औ जो गांठ है, सो भयका स्थानक है, अरु राग द्वेष यह दोनो चोर हैं अब जो पुरुष पीछेंको दौडा हैं, तिसकी तो स्थिति संसारमें रहणेकी अधिक हो जाती है, अरु जो पुरुष, पकडा गया, वो गांठके पास जा कर खडा हो गया; सो रागद्वेष, चोरोनें पकड लीया वोभी दुःखी है, अरु जिसने सम्यक्त्व पा लिया, सो गाममें पहुंच गया, तातें सुखी भया. यह दृष्टांत तीनो करणके साथ जोड लेनां.

अथ कीडीयोंके दृष्टांत करकें तीनों करणोंका स्वरूप लिखते हैं, जैसें कीडीयों बिलमेंसूं निकलके एक खूंटेके तले भ्रमण करती हैं, एकेके की डीयां उस खूंटेके उपरि चढती हैं, अरु कितनिक खूंटेके उपर चढ कर पंख लग जानेंसें उड गइ है. यह तीनों करणभी इसी तरें जान लेने. तब तो जीव यथाप्रवृत्ति करण करकें ग्रंथिदेशकों प्राप्त होता है, अरु अपूर्व करण करकें ग्रंथिका भेद करता है, ग्रंथिभेद करकें कोइक जीव मिथ्यात्व के पुद्गल राशिको विभज्य (वांट) करकें १ मिथ्यात्व मोह, २ मिश्रमो ह, ३ सम्यक्त्व मोह रूप तीन पुंज करता है, जब अनिवृत्तिकरण करकें विशुद्ध मानके उदय हूये अरु मिथ्यात्वके क्षय हूये ? उदय नहीं हूये

के उपशांत हूयें, क्षायोपशमिक सम्यक्त्वकों प्राप्ति होता है. जब जीवों कों क्षायोपशमिक सम्यग् दर्शन उत्पन्न होता है, तब जीवोंकें मनुष्यगति देवगतिकी संपत् होती है. तथा अपूर्व करण करकेंही कृत तीन पुंज वाले जीवकों चौथे गुणस्थानसेंही क्षपकपणेकों जब आरंभ करता है, तब अनंतानुबंधी चार, मिथ्यामोह, मिश्रमोह, अरु सम्यक्त्व मोहरूप तीनों पुंजोंके क्षय हूये, क्षायिक सम्यक्त्व होता है, तब वो क्षायिक सम्यग् दृष्टि जे कर अबद्धायु है, तब तो तिसी भवमें मोक्ष रूप होवेगा. अरु जे कर आयु बांध कर पीछें क्षायिकसम्यक्त्ववान् हूआ है, तब तो तीसरे भवमें मोक्ष होता है. अरु जे कर असंख्यात वर्ष जीवने वाले मनुष्य, तिर्यचका आयु बांध कर पीछेसें क्षायिकसम्यक्त्व पावे, तब चौथे भवमें मोक्ष होता है.

अथ अविरति गुणस्थानकवर्त्ती जीवका कृत्य लिखते हैं. व्रत नियम तो उसके कोइभी नहीं होता है, परंतु देवमें अर्थात् भगवान् श्रीवीतराग में, अरु उक्तलक्षण गुरुमें, तथा श्रीसंघमें, क्रम करकें भक्ति, पूजा, नमस्कार, वात्सल्यादि कृत्य करता है. तथा प्रभावक श्रावक होनेसें शासनकी उन्नति, शासनकी प्रभावना करता है. तथा अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानक वाला जीव, १ तीर्थंकर नामकर्म, २ मनुष्यायु, ३ देवायु. यह तीन प्रकृति तीसरे गुणस्थानसें अधिक बांधता हैं. इस वास्ते सत्तत्तर प्रकृतिका बंध करता है, तथा मिश्र मोहके व्यवच्छेद होनेसें अरु आनुपूर्वी चार, अरु सम्यक्त्वमोहके उदय होनेसें एक सो चार कर्म प्रकृतिकों वेदता है. अरु क्षायिक सम्यक्त्व वालेकों १३७ प्रकृतिकी सत्ता होती है, अरु उपशम सम्यक्त्व वालेकों चौथे गुणस्थानकसें लेकर इग्यारहमे गुणस्थानक पर्यंत १४७ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है. अरु क्षायिकसम्यक्त्व वालेकों जिस जिस गुण स्थानमें जितनी जितनी कर्मप्रकृतिकी सत्ता है, सो आगें चल कर लिख देवेंगे ॥ इति अविरति सम्यग्दृष्टि गुणस्थानकका स्वरूप ॥ ४ ॥

अथ पंचम गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. जीवकों सम्यग् तत्त्वावबोध करकें उत्पन्न हूआ वैराग्य, तिस वैराग्यसें सर्वविरतिकी वांछा करता भी है, तोभी सर्वविरतिघातक प्रत्याख्यान नाम कषायके उदयसें सर्व विरति अंगीकार करणेकों सामर्थ्य नहीं, किंतु जघन्य, मध्यम, उत्कृष्टरूप

देशविरति हो सक्ता है, तिनमें जघन्य देशविरति आकुट्टि स्थूलहिंसादि त्याग. मद्य मांसादि परिहार, अरु परमेष्टि नमस्कारका स्मरण करणां॥यदाह ॥श्लोक॥ आउट्टि थूल हिंसाइ,मद्य मंसाइचायउं ॥ जहन्नो सावउं होइ, जो नमुक्कार धारउं ॥ १ ॥ तथा मध्यम देशविरति "अक्षुद्रादि न्याय संपन्न विभव इत्यादि" धर्म योग्यता गुणों करि आकीर्ण गृहस्थ उचित पट्कर्म धर्ममें तत्पर, द्वादश व्रतका पालक, सदाचारवान् असा होवे, तो मध्यम श्रावक जाननां. तथा उत्कृष्टदेशविरति, सचित्त आहारका वर्जक, प्रतिदिन एकाशन करे, ब्रह्मचारी होवे, महाव्रत अंगीकार करनेकी इछावाला होवे, गृहस्थका धंदा जिसने त्यागा है, असा जो होवे, सो उत्कृष्ट देशविरति. यह तीन प्रकारकी विरति जिसकों होवे, उसकों श्राद्ध, अर्थात् श्रावक कहते हैं. देशविरतिकी उत्कृष्टी स्थिति देशोन कोटिपूर्वकी है.

अथ देशविरति गुणस्थानकमें ध्यानका संभव कहते हैं. यह गुणस्थानमें १ अनिष्टयोगार्त्त, २ इष्टवियोगार्त्त, ३ रोगार्त्त, ४ निदानार्त्त. यह चार पाद रूप आर्त्तध्यान. तथा १ हिंसानंदरौद्र, २ मृषानंदरौद्र, ३ चौर्यानंद रौद्र, ४ संरक्षणानंदरौद्र. यह चार पादवाला रौद्र ध्यान है वे देशविरतिके आर्त्तध्यान मंद होता है, जैसें जैसें देशविरति अधिक अधिकतर होती है, तैसें तैसें आर्त्त रौद्र ध्यान, मंद मंदतर होता जाता है, अरु धर्म ध्यान तो जैसें जैसें देशविरति अधिक होती है, तैसें तैसें अधिक अधिक होता है, मध्यमरूपही रहता है, परंतु उत्कृष्ट धर्मध्यान नहीं होता है. जे कर उत्कृष्ट धर्मध्यान हो जावे, तब सर्व विरति हो जायगा. वो पांचमे गुणस्थान संबंधी धर्मध्यान कैसा है ? जिसमें पट् कर्म, एकादश प्रतिमा, अरु श्रावक व्रत पालनेका संभव है.

उक्त पट् कर्मका नाम कहते हैं. १ तीर्थंकर अर्हंत भगवंत वीतराग सर्वज्ञकी प्रतिमाद्वारा पूजा करे, २ गुरुकी सेवा करे, ३ स्वाध्याय. ४ संयम, ५ तप, ६ दान, यह पट्कर्म हैं ॥ यदुक्तं ॥ देवपूजा गुरूपास्तिः, स्वाध्यायः संयमस्तपः ॥ दानं चेति गृहस्थानां. पट् कर्माणि दिने दिने ॥१॥

प्रतिमा जो है. सो अभिग्रहविशेषकों कहते हैं. सो नाममात्र यह है॥गाथा ॥ दंसण वय सामाइय, पोसह पडिमा अबंभ सचित्ते॥आरंभ पेस उद्दिठ, वज्जए समणभूए य॥१॥इनका विस्तार देखनां होवे, तदा पंचाशकनामा शास्त्रके

प्रतिमा पंचाशकमें देख लेनां. अरु श्रावकके व्रत बारह हें, सो आगें ल कर लिखेंगे. यह षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, बारह व्रत. इनके पालनमें म ध्यम धर्म ध्यान होता हे, तथा देशविरति गुणस्थानस्थ जीव, अप्रत्याख्या न चार कषाय, नरकगति, नरकायु नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक. आद्य संहनन तथा औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग, यह औदारिक द्विक. यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका बंध, व्यवछेद होनेसें सतसठ कर्मप्र कृतिका बंध करता हे. तथा अप्रत्याख्यान चार, मनुष्यानुपुर्वी, तिर्यंचानु पूर्वी,नरकत्रिक,देवत्रिक,वैक्रियद्विक,दुर्भगअनादेय,अयशःकीर्ति. यहसत्तरां कर्मप्रकृतिका उदय व्यवछेद करनेसें सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल जोक्ता हे. अरु एक सो अरुत्तीस प्रकृतिकी सत्ता हे ॥ इति देशविरतिगुणस्थानं ॥५॥

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान हे,तिनमेंसूं तेरहवा गुण स्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति हे.

अथ उठा प्रमत्तसंयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हें. सर्व वि रति साधु, यह उठे प्रमत्त गुणस्थानकमें होता हे, वो साधु केसा हे? कि अहिंसादि पांच महाव्रतका धारक हे, वो साधु किस करके प्रमत्त होता हे? कि प्रमादके होनेसें प्रमत्त होता हे, सो प्रमाद पांच प्रकारका हे ॥

॥यदाह ॥ गाथा ॥ मज्जं विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमी ज णिया ॥ ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसारे ॥ १ ॥ जावार्थः—मद्य, विषय, कषाय, निद्रा, अरु विकथा, यह पांच प्रमाद हें, सो जीवकों सं सारमें गेरते हें, जो साधु इन पांचो प्रमादों करके संयुक्त होवे, अरु सं ज्वलनकी चोथी कषायका उदय होवे, तब महामुनि महाव्रती साधु अ वश्य अंतर मुहूर्त्त काल लगि सप्रमाद होनेसें प्रमादी होता हे. जे कर अंतरमुहूर्त्तसें उपरांतजी सप्रमादी होवे, तदा प्रमत्त गुणस्थानसेंजी नीचे गिर पकता हे. अरु जे कर अंतर मुहूर्त्तसें उपरांतजी प्रमाद रहित होवे, तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता (आरोहता) हे.

अथ प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यानका संजव कहते हें. यह गुण स्थानमें मुख्य तो आर्त्तध्यान, उपलक्षणसें रौद्रध्यानकाजी संजव हे, क्यों कि नोकषाय, हास्यादि षट्कके होनेसें. तथा आज्ञादि आलंबन युक्त ध र्मध्यानकी गौणता हे, १ आज्ञा, २ अपाय, ३ विपाक, ४ संस्थान. इन

चारोंके चिंतनलक्षण आलंबनों करकें संयुक्त धर्मध्यान होता है. इहां धर्मध्यानके चार पाद हैं ॥ उक्तंच ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य विचिंतनात् ॥ इत्थं वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यानं चतुर्विधं ॥ १ ॥ आज्ञा उसकों कहते हैं, कि जो कुछ सर्वज्ञ अर्हंत भगवंतने कहा है, सो सर्व सत्य है, अरु जो बात, मेरी समझमें नहीं आती है, वो मेरी बुद्धिकी मंदता है, तथा दुषम कालके प्रभावसें, संशय मिटाने वाले गुरुके अभावसें, इत्यादि निमित्तोसें मेरी समझमें नहीं आता है, परंतु अर्हंत भगवंतके कहे हुवे वाक्य सत्य है, क्योंकि उनकें मृषा बोलनेका कोइभी निमित्त नहीं है, ऐसा जो चिंतन करनां, सो आज्ञा विचयनामा प्रथम भेद है. तथा राग द्वेष कषायादिकों करकें जो अपाय (कष्ट) उत्पन्न होते है, तिनका जो चिंतन करनां, सो अपायविचयनामा दूसरा भेद हैं. तथा क्षण क्षण प्रति जो कर्मफलोदय विचित्ररूप उत्पन्न होता है, सो विपाकविचयनामा तीसरा भेद है, तथा यह लोक अनादि अनंत है, अरु उत्पाद, व्यय, ध्रुव रूप सर्व पदार्थ हैं, तथा पुरुषकार लोकका संस्थान है, ऐसा जो चिंतन करनां सो संस्थानविचयनामा चौथा भेद है. इत्यादि आलंबना युक्त धर्मध्यानकी गौणता, प्रमत्त गुणस्थानमें है, परंतु सप्रमाद होनेसें मुख्यता नहीं.

अथ जे कर कोइ प्रमत्त गुणस्थानमें निरालंबन धर्मध्यान कहे, तिसका निषेध करते हैं. जिनभास्कर (जिनसूर्य) ऐसें कह गये हैं, कि जो साधु जहां लगि प्रमाद संयुक्त होवे, तहां लगि तिस साधुकों निरालंबनध्यान नहीं होता है, क्योंकि इहां प्रमत्त गुणस्थानमें मध्यमधर्मध्यान कीभी गौणताही कही है, परंतु मुख्यता नहीं. तिस वास्ते प्रमत्तगुणस्थानमें उत्कृष्ट निरालंब धर्मध्यानका संभव नहीं.

अथ जो यह अर्थ न माने, तिसकों कहते हैं, जो साधु प्रमादयुक्तभी आवश्यक सामायिकादि षडावश्यकसाधक अनुष्ठानका परिहार करकें निश्चल निरालंबन ध्यानाश्रित होवे, वो साधु मिथ्यात्वमोहित मिथ्याभाव करकें मूढ हुआ थका जैनागम श्रीसर्वज्ञप्रणीत शास्त्र नहीं जानता, क्योंकि वो साधु व्यवहार तो छोड बैठा है, अरु निश्चयकों प्राप्त नहीं हुआ है. अरु जो जिनागमके जानने वाले हैं, सो तो व्यवहारपूर्वक निश्चयकों साधते हैं ॥यदाह॥ जइ जिणमयं पवज्जाह, ता मा ववहार निछए मूयह ॥

प्रतिमा पंचाशकमें देख लेनां. अरु श्रावकके व्रत बारह हैं. सो आगें ल कर लिखेंगे. यह षट् कर्म, एकादश प्रतिमा, बारह व्रत. इनके पालनमें म ध्यम धर्म ध्यान होता है, तथा देशविरति गुणस्थानस्थ जीव, अप्रत्याख्या न चार कषाय, नरकगति, नरकायु नरकानुपूर्वी, यह नरक त्रिक. आद्य संहनन तथा औदारिक शरीर औदारिक अंगोपांग, यह औदारिक द्विक. यह सब मिल कर दश कर्मप्रकृतिका बंध, व्यवछेद होनेसें सतसठ कर्मप्र कृतिका बंध करता है. तथा अप्रत्याख्यान चार, मनुष्यानुपूर्वी, तिर्यंचानु पूर्वी, नरकत्रिक, देवत्रिक, वैक्रियद्विक, दुर्जगअनादेय, अयशःकीर्ति. यह सत्तरां कर्मप्रकृतिका उदय व्यवछेद करनेसें सत्तासी कर्म प्रकृतिका फल जोक्ता है. अरु एक सो अरुत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति देशविरतिगुणस्थानं ॥५॥

अथ पांचमे गुणस्थानक उपरांत जो गुणस्थान है, तिनमेंसूं तेरहवा गुण स्थान वर्जके शेष सर्वगुणस्थानोमें पृथक् पृथक् अंतर मुहूर्त्तमात्र स्थिति है.

अथ छठा प्रमत्तसंयत गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. सर्व वि ति साधु, यह छठे प्रमत्त गुणस्थानकमें होता है, वो साधु कैसा है? कि अहिंसादि पांच महाव्रतका धारक है, वो साधु किस करकें प्रमत्त होता है? कि प्रमादके होनेसें प्रमत्त होता है, सो प्रमाद पांच प्रकारका है ॥

॥यदाह ॥ गाथा ॥ मज्जं विसय कसाया, निद्दा विगहा य पंचमी ज णिया ॥ ए ए पंच पमाया, जीवं पाडंति संसारे ॥ १ ॥ जावार्थः—मद्य, विषय, कषाय, निद्रा, अरु विकथा, यह पांच प्रमाद हैं, सो जीवकों सं सारमें गेरते हैं, जो साधु इन पांचो प्रमादों करकें संयुक्त होवे, अरु सं ज्वलनकी चौथी कषायका उदय होवे, तब महामुनि महाव्रती साधु अ वश्य अंतर मुहूर्त्त काल लगि सप्रमाद होनेसें प्रमादी होता है. जे कर अंतरमुहूर्त्तसें उपरांतजी सप्रमादी होवे, तदा प्रमत्त गुणस्थानसेंजी नीचें गिर पकता है. अरु जे कर अंतर मुहूर्त्तसें उपरांतजी प्रमाद रहित होवे, तदा फेर अप्रमत्त गुणस्थानमें चढता (आरोहता) है.

अथ प्रमत्तसंयत गुणस्थानमें ध्यानका संजव कहते हैं. यह गुण स्थानमें मुख्य तो आर्त्तध्यान, उपलक्षणसें रौद्रध्यानकाजी संजव है, क्यों कि नोकषाय, हास्यादि षट्कके होनेसें. तथा आज्ञादि आलंबन युक्त ध र्मध्यानकी गौणता है, १ आज्ञा, २ अपाय, ३ विपाक, ४ संस्थान. इन

...त्ति निरोध करकें, इंद्रिय समूह औ इंद्रियोंके ... पीछें पवनकी अर्थात् श्वासोच्छ्वासकी गतागति ...कों अवलंबकें, पद्मासनसें बैठ करकें, शिवके वा ...तकी गुफामें बैठ करकें, एक वस्तु उपरि दृष्टि र... रहनां योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूयां छतां ... मदके शांति हूयां, अरु इंद्रिय समूहके दूर हूयां, ...रके दूर होयां, अरु आनंदके प्रगट बुद्धिमान् ..., ऐसी जीवकों अवस्थामें मेरेकों वनमें रहेकों कु... रक्षा करेंगे? ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रज्ञाचार्यजी ...न्! तुमारा आगमरूप भेषज करकें, राग रूप रोग नि... करकें कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन में समाधि ...? इत्यादि. तथा श्रीहेमचंद्रसूरिजी कहते हैं, कि वनमें ...री गोदमें मृगका बच्चा बैठे, अरु हिरणोंका स्वामी बडा ह...ब. अरु में अपणी समाधिमें, स्थित रहूं ॥१॥ तथा शत्रुमें ...स्त्रीमें, सुवर्ण अरु पाषाणमें, मणि अरु मट्टीमें, मोक्ष ...निर्विशेषमति में कब होवेगा? ॥ ४ ॥ ऐसेंही मंत्री वस्तु...मतमें भर्तृहरिनेभी मनोरथही करा है. ऐसे स्वपमय परस... जो पुरुष हूये हैं, तिनोंने परमात्मतत्त्वसें वे तिसें मनोर...है. अरु मनोरथ जो लोकमें करते हैं, सो दुःप्राप्य वस्तु काही ...परंतु जो वस्तु सुखेन मिल जावे, तिसका मनोरथ कोइभी नहीं ... जो सदा मिष्टान्न खाता है, अरु बडा भारी राज्य भोगता है, ...। मिष्टान्न खानेका अरु राज्य भोगनेका मनोरथ नहीं करता है, ...से सर्व प्रकारसें प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोंने परम संवेग अप्रमत्त गुणस्थानका स्पर्श करानी है. तोभी परम शुद्ध परमा...तिका मनोरथ करणां, परंतु षट्कर्म षडावश्यकादि व्यवहा... परिहार न करनां. अरु जो मूढ, योगमद कर...वार व्यवहारसें पराङ्मुख हैं. तिनका योगभी कि...ह उनका यह लोकभी नहीं अरु परलोकभी ...र जडात्मा है ॥ यतः ॥ योगिनः समतामेतां,

ववहारनउं छेए, तित्थुछेउं जउं जणिओ ॥ १ ॥ अर्थः—जे कर जिनमत कों अंगीकार करते हो, औ जैनमतमें साधु होते हो, तो व्यवहार निश्चयका त्याग मत करो, क्योंकि व्यवहार नयके उछेद होनेसें तीर्थका उछेद हो जायगा, इस वात उपर यह दृष्टांत है, कि जैसें कोइक पुरुष अपने घरमें सदा वाजरेकी रोटी खाता है, किसीने उसकों निमंत्रण करकें अपूर्व मिष्टान्नाहार कराया, तब तो वो उस स्वादका लोलुपी हो कर अपणे घरकी वाजरेकी रोटी निःस्वाद जान कर खाता नहीं, उस दुःप्राप्य मिष्टान्नकी अभिलाषा करता है, तब तो वो अपणे घरका कदन्न तो खाता नहीं, अरु मिष्टान्नभी मिलता नहीं, तब वो उभयभ्रष्ट होता है. तैसें यह जीवभी कदाग्रहरूप भूतके लगनेसें प्रमत्तगुणस्थान साध्यस्थूलमात्र पुण्यपुष्टिका कारण षडावश्यकादि कष्टक्रिया नहीं करता, अरु कदाचित् अप्रमत्तगुणस्थानमें जिसका लाभ है, ऐसा जो निर्विकल्प मनोजनित समाधिरूप निरालंबन, ध्यानांशरूप, अमृत आहारतुल्य पाया है. तब तो तिस करिकें उत्पन्न हूआ जो परमानंद सुखस्वाद, तिस करकें प्रमत्त गुणस्थानगत षडावश्यकादि कष्टक्रिया कर्म, कदन्न समान कर सम्यक्आराधन न करे, अरु मिष्टान्न तुल्य निरालंबन ध्यानांश सो तो प्रथम संहननके अभावसें प्राप्त नहीं होता है, तब तो षडावश्यकके न करनेसें उभयभ्रष्ट हो जाता है, क्योंकि निरालंबन ध्यानका मनोरथही पंचम कालके महामुनि रुपियोने करा है ॥ तथाच पूर्वमहर्षयः ॥ चेतोवृत्तिनिरोधनेन करणग्रामं विधायोद्वशं ॥ तत्संहृत्य गतागतं च मरुतो, धैर्यं समाश्रित्य च ॥ पर्यंकेन मयाशिवाय विधिवत् स्थित्वैकभूभृद्दरीमध्यस्थेन कदाचिदर्पितदृशा स्थातव्यमंतर्मुखं॥ १ ॥ चित्ते निश्चलतां गते प्रशमिते रागादिनिद्रामदे॥ विद्राणेऽक्षकदंबके विघटिते ध्वांते भ्रमारंभके ॥ आनंदे प्रविजृंभिते पुरपते ज्ञाने समुन्मीलते मां द्रक्ष्यंति कदा वनस्थमभितो दुष्टाशयाः श्वापदाः ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रभाचार्याः ॥ चितावदातैर्जैनवदागमानां, वा जैपजेरांगरुजंनिवर्त्य ॥ मया कदा प्रौढसमाधिलक्ष्मी इत्यादि" तथाश्री हेमचंद्र सूरयः ॥ वनपद्मासनासीनं, क्रोडस्थितमृगार्भकं ॥ कदा घ्रास्यति वक्त्रे मां, जरंतो मृगयूथपाः ॥ १ ॥ शत्रौ मित्रे तृणे स्त्रैणे, सुवर्णेऽश्मनि मणौ मृदि ॥ मोक्षे भवे भविष्यामि, निर्विशेषमतिः कदा ॥२॥ इन श्लोकोंका थोडासा अर्थभी

लिख देते हैं, चित्तकी वृत्ति निरोध करकें, इंद्रिय समूह औ इंद्रियोंके विषयोंकों दूर करकें, तिस पीछें पवनकी अर्थात् श्वासोश्वासकी गतागति कों रोक करकें, अरु धैर्यकों अवलंबकें, पद्मासनसें बेठ करकें, शिवके वास्ते विधि संयुक्त किसी पर्वतकी गुफामें बेठ करकें, एक वस्तु ऊपरि दृष्टि रख कर, मुझकों अंतर्मुख रहनां योग्य है ॥१॥ चित्तके निश्चल हूयां छतां राग, द्वेष, कषाय, निद्रा, मदके शांति हूयां, अरु इंद्रिय समूहके दूर हूयां, अरु भ्रमारंभक अंधकारके दूर होयां, अरु आनंदके प्रगट वृद्धिमान् भये, ज्ञानके प्रकाश भये, ऐसी जीवकी अवस्थामें मेरेकों वनमें रहेकों दुष्टाशयवाले सिंह कब रक्षा करेंगे? ॥ २ ॥ तथा श्रीसूरप्रभाचार्यभी कहते हैं कि हे भगवन्! तुमारा आगमरूप भेषज करकें, राग रूप रोग निवर्त्त करकें, निर्मल चित्त करकें कब वो दिन आवेगा कि जिस दिन में समाधि रूपी लक्ष्मीकूं देखुंगा? इत्यादि. तथा श्रीहेमचंद्रसूरिजी कहते हैं, कि वनमें पद्मासन बैठे हुवे मेरी गोदमें मृगका बच्चा बेठे, अरु हिरणोंका स्वामी वडा हरण मेरे मूखकों सूंघे, अरु में अपणी समाधिमें, स्थित रहूं ॥१॥ तथा शत्रूमें मित्रमें, तृण अरु स्त्रीमें, सुवर्ण अरु पाषाणमें, मणि अरु मट्टिमें, मोक्ष अरु संसार में निर्विशेषमति में कब होऊंगा? ॥ ४ ॥ ऐसेंही मंत्री वस्तुपालने तथा परमतमें भर्तृहरिनेभी मनोरथही करा है. ऐसें स्वसमय परसमयमें प्रसिद्ध जो पुरुष हूये हैं, तिनोंने परमात्मतत्त्वसंवित्तिमें मनोरथही करा है, अरु मनोरथ जो लोकमें करते हैं, सो दुःप्राप्य वस्तुकाही करते हैं, परंतु जो वस्तु, सुखेन मिल जावे, तिसका मनोरथ कोइभी नहीं करता है, जो सदा मिष्टान्न खाता हैं, अरु वडा भारी राज्य भोगता है, वो कभी मिष्टान्न खानेका अरु राज्य भोगनेका मनोरथ नहीं करता है, तिस वास्ते सर्व प्रकारसें प्रमत्त गुणस्थानस्थ विवेकी जनोनें परम संवेग आरूढ अप्रमत्त गुणस्थानका स्पर्श कराभी है, तोभी परम शुद्ध परमात्मतत्त्वसंवित्तिका मनोरथ करणां, परंतु षट्कर्म षडावश्यकादि व्यवहार क्रिया जो है, उसका परिहार न करनां. अरु जो मूढ, योगग्रह करकें ग्रस्त हैं, अरु सदाचार व्यवहारसें पराङ्मुख हैं, तिनका योगभी किसी कामका नहीं है, अरु उनका यह लोकभी नहीं अरु परलोकभी नहीं. क्योंकि वो जीव जडात्मा है ॥ यतः ॥ योगिनः समतामेतां,

प्राप्य कल्पलतामिव ॥ सदाहारमयीमस्या, वृत्तिमातन्वतां वहिः ॥ १ ॥ ये तु योगग्रहग्रस्ताः, सदाचारपराङ्मुखाः ॥ एव तेषां च योगोपि, न लो कोपि जन्मात्मनां ॥ २ ॥ तिस वास्ते साधुकों जो दूषण दिन रात्रिमें लगता है, तिसके छेदने वास्ते अवश्यमेव षडावश्यकादि क्रिया करे, जहां लगि उपरिले गुणस्थानों करि साध्य जो निरालंबन ध्यान है, तिसकों न प्राप्ति होवे, तहां लगि करे. तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवछेद होनेसें त्रेशठ प्रकृतिका बंध करता है, तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान चार यह आठ प्रकृतिके उदय उच्छेद होनेसें अरु आहरक तथा आहारकोपां ग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसें एकासी प्रकृति वेदता है: अरु एक सौ अमत्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानकं षष्ठं ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. पांच महाव्रत धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अप्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु सं ज्वलनकी चारों कषायोंका उदय मंद होवे, तथा नोंकषायोंकाभी उदय मंद होवे. तात्पर्य यह है कि संज्वलन कषाइ तथा नोकषायोंका जैसा जैसा मंदोदय होता है, तैसें साधु अप्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ यथा यथा न रोचंते, विषयाः सुलभाअपि ॥ तथा तथा समायाति, सं वित्तौतत्वमुत्तमं ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, संवित्तौतत्वमुत्तमं ॥ तथा तथा न रोचंते, विषयाः सुलभाअपि ॥२॥ अर्थः—जैसें जैसें अप्रमत्तगुण स्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणेमें तथा क्षय करणेमें निपुण होता है, तथा जैसें सद्ध्यानका आरंभ करता है, सोइ स्वरूप कहते हैं, दूर करे हैं सर्व प्रमाद जिसने ऐसा जो जीव, तथा पांच महा व्रतका धारक, अरु अष्टादश सहस्र जो शीलांगलक्षण, तिनो करकें संयुक्त, सदागमका अभ्यासी ज्ञानवान् ध्यान एकाग्रता रूप, ऐसा ज्ञान ध्यानरूप जिसके पास धन है, इसी वास्ते "मोनी" मोनवान् है. क्योंकि मोनवान्‌ही ध्या न रूप धनवान् हो सक्ता है, तिस पीछें ज्ञान ध्यान मोनवान्, उपशम कर णेके अर्थ अथवा क्षय करणेके अर्थ सन्मुख हूआ थका ऐसा पवित्र मुनि संसोत्तर मोहकों पूर्वोक्त सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अरु अनंतानुबंधी चार. यह सात प्रकृतिके विना शेष इक्कीस प्रकृतिरूप मो

हनीय कर्मके उपशम करणेके सन्मुख तथा क्षय करणेके सन्मुख जब होता है, तब सालंबन ध्यान त्यागके निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंभ करता है. यह निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करने वाले योगी, तीन तरेंके होते हैं. १ यथाप्रारंभकाः, २ तन्निष्ठा, ३ निष्पन्नयोगाः ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ सम्यग् नैसर्गिकीं वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सांसर्गिकीं वा ॥ क्वाप्येकांते निविष्टाः, कपिचपलचल, न्मानसस्तंभनाय ॥ शश्वन्नासाग्र पाली, घनघटितदृशो, धीरवीरासनस्थो ॥ ये निःपापाःसमाधे, विदधति विधिना, रंभमारंभकास्ते ॥ १ ॥ कुर्वाणो मरुतासनेंद्रियमनः, क्षुत्तर्षनिद्रा जयं ॥ योंतं जल्पति रूपणान्निरसक्त तत्त्वंसमभ्यस्यति ॥ सत्वानामुपरिप्र मोदकरुणा, मैत्रिभृशं मन्यते ॥ ध्यानाधिष्ठितचेष्टयाऽभ्युदयते, तस्येह तन्नि ष्ठता॥२॥ उपरतबहिरंतर्जल्पकल्लोलमाले, लसदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततममृतमंत र्मानसे यस्य हंसः,पिबति निरुपलेपःसोऽत्र निष्पन्नयोगी.

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमें ध्यानका संभव कहते हैं. सर्वज्ञका कह्या हूआ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक भेदरूप हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक॥ मैत्र्यादि भिश्चतुर्भेदं, यद्वाज्ञादि चतुर्विधं ॥ रूपस्थादि चतुर्धा वा, धर्मध्यानं प्रकी र्त्तितम् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्म ध्यानमुपस्कर्तुं, तद्धि तस्य रसायनं ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य विचिंतनात् ॥ इत्थं वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यानं प्रकीर्त्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पिं डस्थध्यान अपणे अंग अंगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्थध्यान, ३ संकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कल्पनासें रहित रूपातीत ध्या न, ऐसा जो जिनेश्वरका कह्या हूआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थान में मुख्यवृत्ति करके प्रधानपणे होता है. तथा रूपातीतपणे करके शुक्लध्या नभी अंशमात्र करकें गौणपणे है. इहां अप्रमत्त गुणस्थानमें आवश्यक क्रियाका जो अभाव है, तोभी शुद्ध है, यह वार्त्ता कहते हैं.

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकमें सामायिकादि षट् आवश्यक, सोभी नहीं है, "कोर्थः" सामायिकादि छ आवश्यक व्यवहार क्रियारूप, इस गुण स्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सर्व कुछ है, क्योंकि सामायिकादि सर्व आत्माके गुण है, "आया सामाइए. आया सामाइयस्स अठे" अ

प्राप्य कल्पलतामिव ॥ सदाहारमयीमस्या, वृत्तिमातत्वतां बहिः ॥१॥ ये तु योगग्रहग्रस्ताः, सदाचारपराङ्मुखाः ॥ एव तेषां च योगोपि, न अ कोपि जन्मात्मनां ॥ २ ॥ तिस वास्ते साधुकों जो दूषण दिन रात्रि लगता है, तिसके छेदने वास्ते अवश्यमेव षडावश्यकादि क्रिया करे, जहां लगि उपरिले गुणस्थानों करि साध्य जो निरालंबन ध्यान है तिसकों न प्राप्ति होवे, तहां लगि करे. तथा प्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, चार प्रत्याख्यानके बंध, व्यवच्छेद होनेसें त्रेसठ प्रकृतिका बंध करता है, तथा तिर्यग्गति, तिर्यगानुपूर्वी, नीचगोत्र, उद्योत, अरु प्रत्याख्यान चार यह आठ प्रकृतिके उदय उच्छेद होनेसें अरु आहरक तथा आहारकोपां ग, यह दो प्रकृतिके उदय होनेसें एकासी प्रकृति वेदता है. अरु एक सौ अठ्तीस प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति प्रमत्तगुणस्थानकं षष्ठं ॥ ६ ॥

अथ सप्तम अप्रमत्त गुणस्थानकका स्वरूप लिखते हैं. पांच महाव्रत धारी साधु, पांच प्रमाद रहित, अप्रमत्त गुणस्थानस्थ होता है, अरु संज्वलनकी चारों कषायोंका उदय मंद होवे, तथा नोकषायोंकाभी उदय मंद होवे. तात्पर्य यह है कि संज्वलन कषाय तथा नोकषायोंका जैसा जैसा मंदोदय होता है, तैसें साधु अप्रमत्त होता है ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ यथा यथा न रोचंते, विषयाः सुलभाअपि ॥ तथा तथा समायाति, संवित्तौतत्वमुत्तमं ॥ १ ॥ यथा यथा समायाति, संवित्तौतत्वमुत्तमं ॥ तथा तथा न रोचंते, विषयाः सुलभाअपि ॥२॥ अर्थः-जैसें जैसें अप्रमत्तगुण स्थान वाला जीव मोहनीय कर्मके उपशम करणेमें तथा क्षय करणेमें निपुण होता है, तथा जैसें सद्ध्यानका आरंभ करता है, सोइ स्वरूप कहते हैं. दूर करे हैं सर्व प्रमाद जिसने ऐसा जो जीव, तथा पांच महा व्रतका धारक, अरु अष्टादश सहस्र जो शीलांगलक्षण, तिनो करकें संयुक्त सदागमका अभ्यासी ज्ञानवान् ध्यान एकाग्रता रूप, ऐसा ज्ञान ध्यानरूप जिसके पास धन है, इसी वास्ते "मोनी" मोनवान् है. क्योंकि मोनवानही ध्या न रूप धनवान् हो सक्ता है, तिस पीछें ज्ञान ध्यान मोनवान्, उपशम कर णेके अर्थे अथवा क्षय करणेके अर्थे सन्मुख हूआ थका ऐसा पवित्र मुनि सत्तोत्तर मोहकों पूर्वोक्त सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, मिथ्यात्वमोह, अरु अनंतानुबंधी चार. यत सात प्रकृतिके विना शेष इकीस प्रकृतिरूप मो

हनीय कर्मके उपशम करणेके सन्मुख तथा क्षय करणेके सन्मुख जब होता है, तब सालंबन ध्यान त्यागके निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करनेका आरंभ करता है. यह निरालंबन ध्यानमें प्रवेश करने वाले योगी, तीन तरेंके होते हैं. १ यथाप्रारंभकाः, २ तन्निष्ठा, ३ निष्पन्नयोगाः ॥ यदाह ॥ श्लोक ॥ सम्यच् नैसर्गि कीं वा, विरतिपरिणतिं, प्राप्य सांसर्गिकीं वा ॥ क्वाप्येकांते निविष्टाः, कपिचपलचल, न्मानसस्तंभनाय ॥ शश्वन्नासाग्र पाली, घनघटितदृशो, धीरवीरासनस्थो ॥ ये निःपापाःसमाधे, र्विदधति विधिना, रंभमारंभकास्ते ॥ १ ॥ कुर्वाणो मरुतासनेंद्रियमनः, क्षुत्तर्षनिद्रा जयं ॥ योंतं जल्पति रूपणाभिरसक्त त्तत्त्वंसमभ्यस्यति ॥ सत्वानामुपरिप्र मोदकरुणा, मैत्रिभृशं मन्यते ॥ ध्यानाधिष्ठितचेष्टयाऽभ्युदयते, तस्येह तन्नि ष्ठता॥२॥ उपरतवहिरंतर्जल्पकल्लोलमाले, लसदविकलविद्यापद्मिनीपूर्णमध्ये ॥ सततमम्रुतमंतर्मानसे यस्य हंसः,पिवति निरुपलेपःसोऽत्र निष्पन्नयोगी.

अथ अप्रमत्त गुणस्थानमें ध्यानका संभव कहते हैं. सर्वज्ञका कह्या हूआ धर्म ध्यान मैत्र्यादि अनेक भेदरूप हैं ॥ यदाह ॥ श्लोक॥ मैत्र्यादि भिश्चतुर्भेदं, यद्वाज्ञादि चतुर्विधं ॥ रूपस्थादि चतुर्द्धा वा, धर्मध्यानं प्रकी र्त्तितम् ॥ १ ॥ तत्र ॥ मैत्रीप्रमोदकारुण्य, माध्यस्थानि नियोजयेत् ॥ धर्म ध्यानमुपस्कर्तुं, तद्धि तस्य रसायनं ॥ २ ॥ आज्ञापायविपाकानां, संस्थानस्य विचिंतनात् ॥ इत्थं वा ध्येयभेदेन, धर्मध्यानं प्रकीर्त्तितं ॥ ३ ॥ तथा १ पिं डस्थध्यान अपणे अंग अंगीका स्वरूप, २ वाणीव्यापाररूप पदस्थध्यान, ३ संकल्पित आत्मरूप रूपस्थ ध्यान, ४ कल्पनासें रहित रूपातीत ध्या न, ऐसा जो जिनेश्वरका कह्या हूआ धर्मध्यान, सो अप्रमत्त गुणस्थान में मुख्यवृत्ति करकें प्रधानपणे होता है. तथा रूपातीतपणे करकें शुक्लध्या नभी अंशमात्र करकें गौणपणे है. इहां अप्रमत्त गुणस्थानमें आवश्यक क्रियाका जो अभाव है, तोभी शुद्ध है, यह वार्त्ता कहते हैं.

इस पूर्वोक्त अप्रमत्त गुणस्थानकमें सामायिकादि षट् आवश्यक, सोभी नहीं है, "कोर्थः" सामायिकादि छे आवश्यक व्यवहार क्रियारूप, इस गुण स्थानमें नहीं, परंतु निश्चय सामायिकादि सर्व कुछ है, क्योंकि सामायिकादि सर्व आत्माके गुण हैं, " आया सामाइए, आया सामाइयस्स अठे " अ

र्थात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है; यह आगमके वचनसें है.

प्रश्नः– किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार क्रियारूप षट् आवश्यक नहीं?

उत्तरः– अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसें निरंतर ध्यानहीमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाभाविकी सहज नित्य संकल्प विकल्प मालाके अभावसें एक स्वभावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्त्तमान जो जीव हें, वो भावतीर्थ स्नान करकें परम शुद्धकों प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तण्हाइ, छेयणं मलप्पवाहणं चेव ॥ तिहिं अच्छेहिं निउत्तं, तह्मा तं दव्वओ तिछं ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिए, दाहस्सो वसणं हवइ तिछं ॥ लोहंमि उ निग्गहिए, तण्हाइ छेयणं जाए ॥ २ ॥ अठविहं कम्मरयं, बहुएहिं भवेहिं संचियं जम्हा ॥ तवसंयमेव धोयइ, तम्हा तं भावओ तिछं ॥ ३ ॥ अर्थः–दाह उपशांत करे, तृषाका छेद करे, शरीरकी मलकों दूर करे, इन पूर्वोक्त तीनो अर्थों करकें जो नियुक्त होवे, ऐसा जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते द्रव्यतीर्थ कहते हें ॥ १ ॥ तथा क्रोधके निग्रह करणेसें दाह उपशम होती है, अरु लोभके निग्रह करणेसें तृषा छेद होती है,ऐसें जाननां. अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत भवो करकें जो संची है, सो तप संयम करकें जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों भावतीर्थ कहते हें ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमिते, संवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगतें, तर्विकल्पेंद्रजाले ॥ भिन्ने मोहांधकारे, प्रसरति महसि, क्वापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानावलंबी कलयति परमानंदसिंधो प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थः– प्राण, श्वासोछ्वासका प्रचार आना जानां जिसने रोका है, औ जिसने शरीरकों वश कीया है, औ जिसने नेत्रका टपकारनां बंद कीया है, औं पांच इंद्रियकों अपणे अपणे विषयसें रोका है,तथा अंतर विकल्परूप इंद्र जालके लय हूये,मोहरूप अंधकारके नष्ट हूयां, अरु त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, प्रगट हूयें धन्य वो ध्यानावलंबी पुरुष है,सो परमानंदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है.

यह अप्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुभ, ६ अयश, ७ अशातावेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका बंध

व्यवछेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिका बंध करता है. इस वास्ते उणसठ प्रकृतिका बंध करता है, अरु जे कर देवायु न बांधे, तब अठावन प्रकृतिका बंध करता है, तथा स्त्यानर्द्धित्रिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवछेद करे, तब छिहत्तर प्रकृतिका फल वेदता हैं, अरु १३८ प्रकृतिकीसत्ता है॥इति अप्रमत्त गुणस्थानकं सप्तमं ॥ ७ ॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिबादर, दसवा सूक्ष्मसंपराय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्थानोका नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं.

जो अप्रमत्तसंयत सातमे गुणस्थान वर्त्ती दिखलाया है, सोइ संज्वलन कषाय चार, नो कषाय ठें, इनके मंद उदय हूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यंत परमाल्हादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है, इसका नाम अपूर्वकरण इसवास्ते कहते हैं कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्मगुणकी प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, औ अनुभव्या, जो भोग, तिनकी कांक्षारूप संकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप भावोकी निवृत्ति नहीं इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं. अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिबादर कहते हैं, सो इहां अप्रत्याख्यानादि जो द्वादश बादर कषाय हैं, तिनका, अरु नव नोकषायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिबादर कहते हैं. यह नवमा गुणस्थान है.

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वभावनाबल करकें सत्तावीश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंडीभूत लोभकी अस्तित्व जहां है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कषायका है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कह्या.

तथा उपशामकही उपशम मूर्त्तिरूप सहजस्वभाव बल करकें सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है.

तथा क्षपककोंही क्षपकश्रेणि मार्ग करकें दशमे गुणस्थानसेंही निःकषाय शुद्धात्मभावना बल करकें सकल मोहके क्षय करणेसें क्षीणमोह

र्थात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, यह आगमके वचनसें है.

प्रश्नः– किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार क्रियारूप षट् आवश्यक नहीं ?

उत्तरः– अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसें निरंतर ध्यानहीमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाभाविकी सहज नित्य संकल्प विकल्पमालाके अभावसें एक स्वभावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्त्तमान जो जीव हैं, वो भावतीर्थ स्नान करके परम शुद्धिको प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तण्हाइ, छेयणं मलप्पवाहणं चेव ॥ तिहिं अत्थेहिं निउत्तं, तह्मा तं दव्वओ तित्थं ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिए, दाहस्सोवसणं हवइ तित्थं ॥ लोहंमि उ निग्गहिए, तण्हाइ छेयणं जाण ॥ २ ॥ अट्ठविहं कम्मरयं, बहुएहिं भवेहिं संचियं जम्हा ॥ तवसंयमेव धोयइ, तम्हा तं भावओ तित्थं ॥ ३ ॥ अर्थः–दाह उपशांत करे, तृषाका छेद करे, शरीरकी मलकों दूर करे, इन पूर्वोक्त तीनो अर्थों करकें जो नियुक्त होवे, ऐसा जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते द्रव्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा क्रोधके निग्रह करणेसें दाह उपशम होती है, अरु लोभके निग्रह करणेसें तृषा छेद होती है,ऐसें जाननां. अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत भवो करकें जो संची है, सो तप संयम करकें जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों भावतीर्थ कहते हैं ॥ अन्यच्च ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमिते, संवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगते, तर्विकल्पेंद्रजाले ॥ भिन्ने मोहांधकारे, प्रसरति महसि, कापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानावलंबी कलयति परमानंदसिंधौ प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थः– प्राण, श्वासोश्वासका प्रचार आना जानां जिसने रोका है, औ जिसने शरीरकों वश कीया है, औ जिसने नेत्रका टपकारनां बंद कीया है, औं पांच इंद्रियकों अपने अपणे विषयसें रोका है,तथा अंतर विकल्परूप इंद्र जालके लय हूये,मोहरूप अंधकारके नष्ट हूयां, अरु त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, प्रगट हूये धन्य वो ध्यानावलंबी पुरुष है,सो परमानंदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है.

यह अप्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुभ, ६ अयश, ७ अशातावेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका बंध

व्यवच्छेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिका बंध करता है. इस वास्ते उणसठ प्रकृतिका बंध करता है, अरु जे कर देवायु न बांधे, तब अठावन प्रकृतिका बंध करता है, तथा स्त्यानर्द्धित्रिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवच्छेद करे, तब छिहत्तर प्रकृतिका फल वेदता है, अरु १३८ प्रकृतिकीसत्ता है॥इति अप्रमत्त गुणस्थानकं सप्तमं ॥ ७ ॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिबादर, दसवा सूक्ष्मसंपराय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्थानोका नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं.

जो अप्रमत्तसंयत सातमे गुणस्थान वर्णों दिखलाया है, सोइ संज्वलन कषाय चार, नो कषाय ठें, इनके मंद उदय हूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यंत परमाल्हादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है, इसका नाम अपूर्वकरण इसवास्ते कहते हैं कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्म गुणकी प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, औ अनुजव्या, जो जोग, तिनकी कांक्षारूप संकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप नावोकी निवृत्ति नहीं इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं. अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिबादर कहते हैं, सो इहां अप्रत्याख्यानादि जो द्वादश बादर कषाय हैं, तिनका, अरु नव नोकषायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिबादर कहते हैं. यह नवमा गुणस्थान है.

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वजावनाबल करकें सत्तावीश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंडीजूत लोजकी अस्तित्व जहां है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कषायका है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कह्या.

तथा उपशामकही उपशम मूर्त्तिरूप सहजस्वजाव बल करकें सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है.

तथा क्षपककोंही क्षपकश्रेणि मार्ग करकें दशमे गुणस्थानसेंही निःकषाय शुद्धात्मजावना बल करकें सकल मोहके क्षय करणेसें क्षीणमोह

र्थात् आत्माही सामायिक है, अरु आत्माही सामायिकका अर्थ है, यह आगमके वचनसें है.

प्रश्नः– किस वास्ते अप्रमत्त गुणस्थानमें व्यवहार क्रियारूप षट् आवश्यक नहीं ?

उत्तरः– अप्रमत्त गुणस्थानमें निरंतर ध्यानके सत् योगसें निरंतर ध्यानहीमें प्रवृत्त होता है, इस वास्ते स्वाभाविकी सहज नित्य संकल्प विकल्पमालाके अभावसें एक स्वभावरूप निर्मल आत्मा होती है, इस गुणस्थानमें वर्त्तमान जो जीव हैं, वो भावतीर्थ स्नान करके परम शुद्धकों प्राप्त होता है ॥ यदाह ॥ दाहोवसमं तण्हाइ, छेयणं मलप्पवाहणं चेव ॥ तिहिं अत्थेहिं निउत्तं, तह्मा तं दव्वओ तित्थं ॥ १ ॥ कोहंमि उ निग्गहिए, दाहस्सोवसमणं हवइ तित्थं ॥ लोहंमि उ निग्गहिए, तण्हाइ छेयणं जाण ॥ २ ॥ अट्ठविहं कम्मरयं, बहुएहिं भवेहिं संचियं जम्हा ॥ तवसंयमेव धोयइ, तम्हा तं भावओ तित्थं ॥ ३ ॥ अर्थः–दाह उपशांत करे, तृषाका छेद करे, शरीरकी मलकों दूर करे, इन पूर्वोक्त तीनो अर्थों करकें जो नियुक्त होवे, ऐसा जो गंगा मागधादि, तिसकों इस वास्ते द्रव्यतीर्थ कहते हैं ॥ १ ॥ तथा क्रोधके निग्रह करणेसें दाह उपशम होती है, अरु लोभके निग्रह करणेसें तृषा छेद होती है, ऐसें जाननां. अरु आठ प्रकारकी कर्मरज बहुत भवो करकें जो संची है, सो तप संयम करकें जो धोवे, तिस वास्ते तिसकों भावतीर्थ कहते हैं ॥ अन्यच ॥ श्लोक ॥ रुद्धप्राणप्रचारे, वपुषि नियमिते, संवृतेऽक्षप्रपंचे ॥ नेत्रस्पंदे निरस्ते, प्रलयमुपगतें, तर्विकल्पेंद्रजाले ॥ भिन्ने मोहांधकारे, प्रसरति महसि, क्वापि विश्वप्रदीपे ॥ धन्यो ध्यानावलंबी कलयति परमानंदसिंधौ प्रवेशं ॥ १ ॥ अर्थः– प्राण, श्वासोश्वासका प्रचार आना जानां जिसने रोका है, औ जिसने शरीरकों वश कीया है, औ जिसने नेत्रका टपकारनां बंद कीया है, औ पांच इंद्रियकों अपणे अपणे विषयसें रोका है,तथा अंतर विकल्परूप इंद्र जालके लय हूये,मोहरूप अंधकारके नष्ट हूयां, अरु त्रिभुवन प्रकाशक ज्ञान प्रदीपके, प्रगट हूये धन्य वो ध्यानावलंबी पुरुष है,सो परमानंदरूप समुद्रमें प्रवेश करता है.

यह अप्रमत्त गुणस्थानस्थ जीव, १ शोक, २ रति, ३ अरति, ४ अस्थिर, ५ अशुभ, ६ अयश, ७ असातावेदनी. इन सातों प्रकृतियोंका बंध

व्यवछेद करता है, अरु १ आहारक, २ आहारकोपांग, यह दो प्रकृतिका बंध करता है. इस वास्ते उणसठ प्रकृतिका बंध करता है, अरु जे कर देवायु न बांधे, तब अठावन प्रकृतिका बंध करता है, तथा स्त्यानर्द्धित्रिक, अरु आहारक द्विकोदयका व्यवछेद करे, तब छिहत्तर प्रकृतिका फल वेदता है, अरु १३७ प्रकृतिकीसत्ता है॥इति अप्रमत्त गुणस्थानकं सप्तमं ॥ ७ ॥

अथ आठवा अपूर्वकरण, नवमा अनिवृत्तिबादर, दसवा सूक्ष्मसंपराय, इग्यारवा उपशांत मोह, बारहवा क्षीणमोह. यह पांच गुणस्थानोका नामार्थ सामान्य प्रकारसें लिखते हैं.

जो अप्रमत्तसंयत सातमे गुणस्थान वर्त्ती दिखलाया है, सोइ संज्वलन कषाय चार, नो कषाय छे, इनके मंद उदय हूये प्राप्त अप्राप्तपूर्व अत्यंत परमाल्हादरूप अपूर्व पारिणामिक आठवा गुणस्थान है, इसका नाम अपूर्वकरण इसवास्ते कहते हैं कि इस गुणस्थानकमें अपूर्व आत्मगुणकी प्राप्ति होती है.

तथा देखा, सुना, औ अनुभव्या, जो भोग, तिनकी कांक्षारूप संकल्प विकल्प रहित निश्चल परमात्मैकतत्त्वरूप प्रधानपरिणतिरूप भावोकी निवृत्ति नहीं इस वास्ते इसका नाम अनिवृत्ति गुणस्थान कहते हैं. अरु इसका नाम जो अनिवृत्तिबादर कहते हैं, सो इहां अप्रत्याख्यानादि जो द्वादश बादर कषाय हैं, तिनका, अरु नव नोकषायोंका शमक, उपशम करने वास्ते अरु क्षपक, क्षय करणेके वास्ते उद्यमी होता है, इस कारणसें इसका नाम अनिवृत्तिबादर कहते हैं. यह नवमा गुणस्थान है.

तथा सूक्ष्म परमात्मतत्त्वभावनाबल करकें सत्तावीश प्रकृतिरूप मोहके उपशांत हूये, तथा क्षय हूये, एक सूक्ष्म खंडीभूत लोभकी अस्तित्व जहां है, सो सूक्ष्मसंपराय नामक गुणस्थानक है, संपराय नाम कषायका है, इस वास्ते सूक्ष्मसंपराय दशमा गुणस्थानकका नाम कह्या.

तथा उपशामकही उपशम मूर्त्तिरूप सहजस्वभाव बल करकें सकल मोह कर्मके उपशांत करनेसें उपशांत मोहनामक एकादशम गुणस्थान होता है.

तथा क्षपककोंही क्षपकश्रेणि मार्ग करकें दशमे गुणस्थानसेंही निःकषाय शुद्धात्मभावना बल करकें सकल मोहके क्षय करणेसें क्षीणमोह

नामक वारहवा गुणस्थान होता है. यह पांचों गुणस्थानोंका सामान्य प्रकारें नामार्थ कहा.

अथ अपूर्वकरणादि अंशसेंही दोनो श्रेणिका आरोह कहते हैं. तहां अपूर्वकरणस्थानमें आरोह समयमें अपूर्वकरणके प्रथम अंशमेंही उपशमक, उपशमश्रेणिमें चढता है, अरु क्षपक, क्षपकश्रेणिमें चढता है.

अथ प्रथम उपशमश्रेणिके चढनेंकी योग्यता कहते हैं, इहां उमशमक मुनि, शुक्लध्यानका प्रथम पाया, जिसका आगें स्वरूप लिखेंगे उसकों ध्याता हूआ उपशमश्रेणिकों अंगीकार करता है. कैसा वो मुनि है? कि पूर्वगत श्रुतका धारक, निरतिचार, चारित्रवान, आदिके तीन संहनन युक्त, ऐसा मुनि उपशमश्रेणि करता है.

उपशमश्रेणिवाला मुनि जे कर अल्प आयुवाला होवे, तब काल करके "अहमिंद्र" अर्थात् पांच अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होंता है, परंतु जिसके प्रथम संहनन होवे, वो अनुत्तर विमानमें उत्पन्न होता है, क्योंकि अपर संहनन वाला अनुत्तर विमानमें उत्पन्न नहीं होता है, सेवार्त संहननवाला चौथे महेंद्र स्वर्ग तक जा सक्ता है, अरु कीलिकादि चार संहनन वालोंके दो दो देवलोककी वृद्धि कर लेनी, अरु प्रथम संहननवाला तो मोक्ष तक जाता है, अरु जिसकी आयु जे कर सात लव अधिक होती, तों मोक्ष जाता, सोइ सर्वार्थसिद्ध विमानमें उत्पन्न होता है. ॥ यदाह ॥ गाथा ॥सत्त लवा जइ आउं, पहुप्पमाणं नउं हु सिझंता ॥ तित्तियमित्तं न हुयं, तत्तो लव सत्तमा जाया ॥१॥ सवठ सिद्धनामे, उक्कोसठिमु विजयमाइसु ॥ एगावसेस गप्रा, हवंति लव सत्तमा देवा ॥ २ ॥

प्रश्नः—उपशमश्रेणिवाला मोक्षके योग्य कैसें हो सक्ता है?

उत्तरः—सात जो लव है, सो एक मुहूर्तका इग्यारवा हिस्सा है, तब तो लवसत्तमावशेष आयुवालाही खंडित उपशमश्रेणि करने वाला पराङ्मुख सातमे गुणस्थानमें आ करके फेर क्षपकश्रेणिमें चढ कर सात लवके विचहीमें क्षीणमोह गुणस्थानमें होकर अंतःकृत केवली हो कर मोक्ष हो जाता है, इस वास्ते दूषण नहीं. तथा जो पुष्टायु उपशमश्रेणि करता है, सो अखंडित श्रेणि करकें चारित्र मोहनीयका उपशम करकें इग्यारवे गुणस्थानमें पहुंच कर उपशमश्रेणि समाप्ति करकें गिर पडता है.

अथ औपशमकही अपूर्वादि गुणस्थानोमें जो करता है, सो कहते हैं. संज्वलनका लोभ वर्जके शेष वीश प्रकृति मोहनीय कर्मकी. अपूर्व करण, अरु अनिवृत्तिवादर, इन दोनों गुणस्थानोंमें उपशम करता है. तिसके पीछें क्रम करकें सूक्ष्म संपराय गुणस्थानमें संज्वलनके लोभकों सूक्ष्म करता है. तिस पीछें क्रम करकें उपशांतमोह गुणस्थानमें तिस सूक्ष्म लोभका सर्वथा उपशम करता है, तथा इहां उपशांतमोह गुण स्थानमें जीव, एक प्रकृति, शातावेदनीय रूप बांधता है. अरु उणसठ प्रकृति वेदता है, तथा १४७ प्रकृतिकी उत्कृष्टी सत्ता है.

अथ उपशांतमोह गुणस्थानकमें, जैसा सम्यक्त्व चारित्र भाव लक्ष ण तीन है, सो कहते हैं. यह गुणस्थानमें उपशम सम्यक्त्व अरु उपश म चारित्र होता है, अरु इहां भावभी उपशमही होता है, परंतु क्षायि क भाव तथा क्षायोपशमिक भाव नहीं होता है.

अथ उपशांतमोह गुणस्थानसें जैसें पमु जाता है, तैसें कहते हैं. उप शमी मुनि तीव्र मोहोदय अर्थात् चारित्र मोहनीयका उदय पा करकें उपशांतमोह गुणस्थानसें पड जाता है, फेर मोहजनित प्रमादसें पतित होता है. जैसें पानीमें मल हेठ बैठ जाते हैं, तिस करकें उपरसें निर्मल हो जाता है, फेर कोइ निमित्त पा कर मलीन हो जाता है ॥ यदाह ॥ सुय केवलि आहारग, उजुमइ उवसंतगावि हु पमाय ॥ हिंमंति भवमणं तं, तं अणंतरमेव चउ गइया ॥ १ ॥ अर्थः—१ श्रुतकेवली, २ आहारक श रीरी, ३ रुजुमति, ४ उपशांतमोह वाला. यह सर्व प्रमादके वशसें अनं त भव करते हैं, प्रमादके वशसें चार गतिमें वास करते हैं.

अथ उपशमक जीवोंकों गुणस्थानोमें चढनां, अरु पमनां जिस तरें होता है, सो कहते हैं. अपूर्वकरण गुणस्थानसें अनिवृत्तिवादर गुणस्था नमें जाता है, अरु अनिवृत्तिवादर गुणस्थानसें सूक्ष्मसंपराय गुणस्थानमें जाता है, अरु सूक्ष्मसंपराय वाला उपशांतमोह गुणस्थानमें जाता है. तथा अपूर्वकरणादि चारो गुणस्थानसें उपशम श्रेणिवाला पमा हुआ, प्र थम मिथ्यात्व गुणस्थानमें आ जाता है, अरु जे कर चरमशरीरी होवे, तब सातमे गुणस्थान तक आ करकें फेर सातमे गुणस्थानसें क्षपकश्रेणि मांमता है, परंतु एक वार जिसने उपशमश्रेणि करी होवे, सो क्षपक

श्रेणि कर सक्ता है, अरु जिसने एक भवमें दो वार उपशमश्रेणि करी होवे सो क्षपकश्रेणि तिस भवमें नहीं कर सक्ता है ॥यदाह॥गाथा॥जीवो हु एक जम्मंमि,इगसिं उवसामगो॥खयंति कुज्जा नो कुज्जा,दोवारे उवसामगो ॥१॥

अथ उपशमश्रेणि वालेके भवोंकी संख्या कहते हैं. इस संसारमें बहुतभवोंमें चार वार उपशमश्रेणि होती है, अरु एक भवमें दो वार होती है ॥ यदाह ॥ उवसमसेणि चउक्कं, जायइ जीवस्स आभवं नूणं॥ सो पुण दो एगभवे, खवगे स्सेणी पुणो एगा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्थापना इस आगले यंत्रसें जान लेनी. इस यंत्रकी संवादक यह गाथा है.॥ गाथा ॥ अणदंसण पुंसित्थी, वेयछक्कं च पुरिसवेयं च ॥ दो दो एगंतरिए, सरिसे सरिसं उवसमेइ॥१॥ अर्थः–प्रथम अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, अरु लोभ. इन चारोंको उपशम करता है, पीछे मिथ्यात्व मोह, मिश्र मोह, अरु सम्यक्त्व मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीछे नपुंसक वेद, पीछेसें स्त्रीवेद, फेर हास्य, रति, अरति, भय, शोक, जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका उपशम करता है. फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याख्यानी क्रोध अरु प्रत्याख्यानी क्रोध, फेर संज्वलनका क्रोध, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी मान, फेर संज्वलनका मान, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी माया, फेर संज्वलनकी माया, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी लोभ, फेर संज्वलनका लोभ, उपशांत करता है ॥ इति उपशमश्रेणि स्वरूपं ॥

अथ क्षपकश्रेणिका स्वरूप लिखते हैं. जिस क्षपकश्रेणिमें यह क्षपक [illegible] (क्षपक मुनि) कर्म क्षय करणेमें प्रवृत्त होता है, अथ प्रथम गुणस्थान क्रमें रहिके जो कर्मप्रकृति क्षपक मुनि क्षय करता है.सो लिखते हैं. [illegible]शरीरी, अबद्धायु. अक्षपककर्मी, क्षपकके चौथे गुणस्थानमें नरकायु क्षय हो जाता है, नरक योग्य आयुका बंध नहीं करता है. तथा पांचमे गुणस्थानमें तिर्यगायु क्षय होता है, अरु सातमे गुणस्थानमें देवायु क्षय हो जाता है, तथा इहां सातमे गुणस्थानमें दर्शनमोहसप्तक भी क्षय हो जाता है. तिस पीछे क्षपक साधुके एक सौ अडतीस कर्मप्रकृति सत्ता रहती है. तब आठमे गुणस्थानकी प्राप्ति होता है, कथंभूतं ? उत्कृष्ट धर्म ध्यान [illegible] प्रकृत लिये होता है [illegible] जो चार वार उप न करी उसको [illegible], तिस [illegible] । क्षपकप्राप्ति हो

ती हैं ॥ यदाह ॥ अभ्यासेन जिताहारो, ऽभ्यासेनैव जितासनः ॥ अभ्यासेन जितश्वासोऽभ्यासेनैवानिलत्रुटिः ॥ १ ॥ अभ्यासेन स्थिरं चित्त, मभ्यासेन जितेंद्रियः ॥ अभ्यासेन परानंदोऽभ्यासेनैवात्मदर्शनं ॥ २ ॥ अभ्यासवर्जितैर्ध्यानैः, शास्त्रस्थैः फलमस्ति न ॥ भवेन्न हि फलैस्तृप्तिः, पानीयप्रतिबिंबितैः ॥३॥ तिस वास्ते अभ्याससेंही विशुद्ध (निर्मल) तत्वानुयायि बुद्धि होती है.

अथ अष्टम गुणस्थानमें शुक्लध्यानका आरंभ कहते हैं. क्षपक साधु यह आठमे गुणस्थानमें " शुक्लसद्ध्यान" शुक्ल नामक प्रधान ध्यानका प्रथम पाद पृथक्त्व वितर्क सविचार नाम है, तिसका स्वरूप आगें लिखेंगे. ऐसा ध्यान ध्याता है, सो कैसा साधु है ? " आद्यसंहननसमन्वित" वज्रऋषभनाराचनामा प्रथम संहननयुक्त है.

अथ ध्यान करने वालेका स्वरूप लिखते हैं. योगींद्र क्षपक मुनींद्र, ध्येयवहारापेक्ष्य, ध्यान करने योग्य होता है;क्या करकें ? निविड दृढ पर्यंकासन करकें. कथंभूत ? निश्चल आसन करकें, क्योंकि आसनजयही ध्यानका प्रथम प्राण है ॥ यदाह ॥ आहारासणनिद्दा, जयं च काऊण जिणवरमएण ॥ झाइज्ज नियं अप्पा, उवइठ्ठं जिणवरिंदेण ॥१॥ तत्र पर्यंकासन, जंघाके अधोभागमें पग उपर करनेसें होता है, तथा केईक सिद्धासन कहते हैं, तिसका स्वरूप ऐसा है कि ॥श्लोक॥ योनिं वामपदाऽपरेण निविडं, संपीड्य शिश्नं हनुं ॥ न्यस्योरस्यचलेंद्रियः स्थिरमना, लोलां च ताल्वांतरे ॥ वंशस्थैर्यतया सुनिश्चलतया, पश्यन् भ्रुवोरंतरं ॥ योगी योगविधिप्रसाधनकृते, सिद्धासनं साधयेत् ॥ १॥ अथवा आसनका कोइ नियम नहीं, चाहो कोइ आसन होवे. जिस आसनमें चित्त स्थिर हो जावे, सोइ आसन ठीक है सो कैसा योगींद्र है कि नासिकाके अग्रमें दीनी है सत् नेत्रकी दृष्टि, ऐसे प्रसन्न नेत्र है जिसके, क्योंकि नासाग्रन्यस्तलोचनवालाही ध्यानका साधक होता है ॥ यदाह ॥ ध्यानदंडकस्तुतौ ॥ नासावंशाग्रभाग, स्थितनयनयुगो, मुक्तताराप्रचारः ॥ शेषाक्षक्षीणवृत्ति, स्त्रिभुवनविवरो, द्भ्रांतयोगैकचक्षुः॥ पर्यंकातंकशून्यः, परिगलितघनोच्छ्वासनिःश्वासवातः ॥ सद्ध्यानारंभमूर्त्ति, श्चिरमवतु जिनो, जन्मसंभूतिभीतैः ॥ १ ॥ फेर कैसा है योगींद्र ? किंचित् उन्मीलित अर्द्धविकसित है नेत्र जिसके, क्योंकि योगीयोंके समाधिसमयमें अर्द्धविकसित नेत्र होते हैं ॥यदाह॥ गंभीरस्तंभमूर्त्ति, र्व्यपगतक

श्रेणि कर सक्ता है, अरु जिसने एक जवमें दो वार उपशमश्रेणि करी, सो क्षपणश्रेणि तिस जवमें नहीं कर सक्ता है ॥यदाह॥गाथा॥जीवो हु एग जम्मंमि,इक्कसिं उवसामगो॥खयति कुज्जा नो कुज्जा,दोवारे उवसामगो॥१॥

अथ उपशमश्रेणि वालेके जवोंकी संख्या कहते हैं. इस संसारमें बहुतजवोंमें चार वार उपशमश्रेणि होती है, अरु एक जवमें दो वार होती है ॥ यदाह ॥ उवसमसेणि चउक्कं, जायइ जीवस्स आजवं नूणं। तो पुण दो एगजवे, खवगे स्सेणी पुणो एगा ॥ १ ॥ उपशमश्रेणिकी स्थापना इस अगले यंत्रसें जान लेनी. इस यंत्रकी संवादक यह गाथा है। गाथा ॥ अणदंसण पुंसिठी, वेयठक्कं च पुरिसवेयं च ॥ दो दो एगंतरिए, सरिसे सरिसं उवसमेइ॥ १॥ अर्थः–प्रथम अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, अरु लोज. इन चारोंको उपशम करता है, पीछें मिथ्यात्व मोह, मिश्र मोह, अरु सम्यक्त्व मोह, यह तीनोंका उपशम करता है, पीछें नपुंसक वेद, पीछेंसें स्त्रीवेद, फेर हास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका उपशम करता है. फेर पुरुषवेद, फेर अप्रत्याख्यानी क्रोध अरु प्रत्याख्यानी क्रोध, फेर संज्वलनका क्रोध, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी मान, फेर संज्वलनका मान, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी माया, फेर संज्वलनकी माया, फेर अप्रत्याख्यानी अरु प्रत्याख्यानी लोज, फेर संज्वलनका लोज, उपशांत करता है ॥ इति उपशमश्रेणि स्वरूपं ॥

अथ क्षपकश्रेणिका स्वरूप लिखते हैं. जिस क्षपकश्रेणिमें चढ कर योगी (क्षपक मुनि) कर्म क्षय करणेमें प्रवृत्त होता है, अथ अष्टम गुणस्थान करसें पहिलें जो कर्मप्रकृति क्षपक मुनि क्षय करता है,सो लिखतेहैं. चरमशरीरी, अबद्धायु, अल्पकर्मी, क्षपकके चौथे गुणस्थानमें नरकायु क्षय हो जाता है, नरक योग्य आयुका वंध नहीं करता है. तथा पांचमे गुणस्थानमें तिर्यगायु क्षय होता है, अरु सातमे गुणस्थानमें देवायु क्षय हो जाता है, तथा इहां सातमे गुणस्थानमें दर्शनमोहसप्तकजी क्षय हो जाता है, तिस पीछें क्षपक साधुके एक सौ अम्तीस कर्मप्रकृतिकी सत्ता रहती है, तब आठमे गुणस्थानकों प्राप्ति होता है, कथंजूतो ? उत्कृष्ट धर्म ध्यान रूपातीत लक्षण विषे कीया हैं अन्यास जिसनें, जो वारं वार सेवन करनां उसकों अन्यास कहते हैं, तिस अन्यास करकेंही तत्वप्राप्ति हो

है, तब द्वादश अंगुल पर्यंत बाह्यमंडल प्रचार अमृतमय पवन आकर्ष करकें इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अब रेचक प्राणायाम कहते हैं. तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी योगसामर्थ्यसें अरु प्राणायाम अभ्यासके वशसें रेचकनामा पवन नाभिकम लोदरसें हलुवे हलुवे बाहिर काढता है, तिसका नाम रेचकध्यान कहते हैं॥ यदाह॥ वज्रासनः स्थिरवपुः स्थिरधीःसचित्त, मारोप्य रेचक समीरणजन्म चक्रे॥ स्वांतेन रेचयति नाभिगतं समीरं, तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति १

अथ कुंभकध्यान कहते है. योगी कुंभकनामा पवन नाभिपंकजकुंभक ध्यान अर्थात् कुंभककर्म प्रयोग करकें कुंभवत् (घटाकार) करकें अतिशय करकें स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंभकचक्रं, नाडिकासु निबिडीकृतवातः ॥ कुंभवच्चरति यद्भवमध्ये, तद्वदंति किल कुंभककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसें मन जीत्या जाता है, यह बात कहते हैं. क्योंकि जहां मन है, तहां पवन है. अरु जहां पवन है, तहां मन वर्त्तता है ॥ यदाह ॥ दुग्धांबुवत्संमिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, र्यावन्मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिः ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्यनाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः ॥ विध्वस्तयोरिंद्रियवर्गशुद्धि, स्तध्वंसनान्मोक्षपदस्य सिद्धिः ॥ २ ॥ इस प्रकार करकें पूरक, रेचक. कुंभक के क्रम करकें पवनोंका आकुंचन निर्गमन. साम्य करकें वायुका संग्रह, अरु चित्तका एकाग्रपणां चिंतन करकें समाधिविषे निश्चलपणेकों धारण करता है. क्योंकि पवनके जीतनेसेंही मन निश्चल होता है ॥ यदाह ॥ प्रचलति यदि. द्दोर्गी चक्रं. चलंत्यचला अपि ॥ प्रचलपवन. प्रेंखल्लोला. प्रलंति पयोधयः ॥ पवनजयिनः. स्वावष्टंभ.प्रकाशितशक्तयः॥ स्थिरतरधियो. ध्यानध्याना. चलंति न योगिनः ॥ १ ॥

अथ भावकीही प्रधानता कहते हैं. इहां हठयोगादि आदिविषे जो प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अभ्यासक्रम कह्या है. सो प्राणरुंधना अर्थात् नाडि रुके जो प्रसिद्ध है. सो हिंसाधारा है. परंतु जो प्राणायाम ही करे. तो हठयोगादि करे. ऐसा कुछ नियम नहीं. क्योंकि हठयोगका तो बही केवल हठयोगादिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आडंबर नहीं. यदुक्तमपि ॥ नासाग्रं नाडीशुद्धि. वायोधारः प्रत्याहारः ॥ प्राणायामोऽपी

रणं व्यापृतिमंदमंदं ॥ प्राणायामोल्लाट,स्थलनिहितमना, दत्तनासाग्रदृष्टिः ॥ नाऽत्युन्मीलन्निमील, न्नयनमतितरां, बद्धपर्यंकबंधो ॥ ध्याने प्रध्याय शुक्लं, सकलविदजवद्यः स पायाज्जिनो वः ॥ १ ॥ फेर कैसा योगींद्र हे? "मानस" (मन) चित्त अंतःकरण विकल्परूप वावरके बंधनसें दूर करा हे, क्योंकि विकल्पही दृढ कर्मबंधनका हेतु हे ॥ यदाह ॥ शुजा वा ह्यशुजा वापि, विकल्पा यस्य चेतसि ॥ स स्वं बध्नात्ययः स्वर्ण, बंधना तेन कर्मणा ॥ १ ॥ वरंनिद्रा वरं मूर्छा, वरंविकलतापिवा ॥ नत्वार्त्त रौद्रदुर्लेश्या, विकल्पाकुलितं मनः ॥ २ ॥ फेर कैसा हे योगी? संसारके उछेद करने वास्ते उद्यम हे जिसके क्योंकि जवछेदक ध्यानार्थ उत्साह वालोंकेही योगसिद्धि होती हे ॥ यदाह ॥ उत्साहान्निश्चयाद्धैर्या, त्संतोषात्तत्त्वदर्शनात् ॥ मुनेर्जनपदत्यागा, त्षड्भिर्योगः प्रसिद्ध्येदिति ॥१॥ तथा मुनि योगींद्र अनिल (पवनकों) ऊर्ध्व प्रचारासि दशम द्वार गोचरकों प्राप्त करता हे, क्या करकें प्राप्त करता हे? कि अपान द्वार मार्ग करकें गुदाके रस्ते पवन अपणी इछासें निकलतेकों निरुद्ध्य (संकोच) करकें,मूलबंध युक्ति करकें करता हे. सो मूलबंध यह हे, कि ॥ श्लोक ॥ पार्ष्णिजागेन संपीड्य, योनिमाकुंचयेद्गुदं ॥ अपानमूर्द्धमाकृष्य, मूलबंधो निगद्यते ॥ १ ॥ यह आकुंचनकर्मही प्राणायामका मूल हे ॥ यडुक्तं ॥ ध्यानदंरुस्तुतौ ॥ संकोच्यापानरंध्रं हुतवहसदृशं, तंतुवत्सूक्ष्मरूपं ॥ धृत्वा हृत्पद्मकोशे, तदनु च गलके, तालुनि प्राणशक्तिं ॥ नीत्वा शून्यातिशून्यां, पुनरपि खगतिं, दीप्यमानं समंता, ल्लोकालोकावलोकां. कलयति स कलां, यस्य तुष्टो जिनेशः ॥ १ ॥

अथ पूरक प्राणायाम कहते हें. योगी पूरक ध्यानके योगसें अतिप्रयत्न करकें (कोष्ठं) सकल देहगत नाडीसमूहकों पवन करकें पूरता हे, क्या करकें द्वादशांगुल पर्यंत पवनकों आकर्षण करकें, वारां आंगुल प्रमाण बाहिरसें सर्व औरसें खेंच करकें पूरता हे. इहां यह तात्पर्यार्थ हे कि पवन आकाश तत्त्वके वहते हूये नासिकाके अंदरही पवन होता हे, अरु अग्नितत्त्वके वहते हूये चार अंगुल प्रमात बाहिर ऊर्ध्वगति स्फुरत होता हे, अरु वायु तत्त्वके वहते हूयें छे अंगुल प्रमाण बाहिर तिर्यग् फिरता हे, अरु पृथिवी तत्त्वके वहते हूये आठ अंगुल प्रमाण बाहिर मध्यम जागमें रहता हे, अरु जल तत्त्वके वहते हूये बारह अंगुल प्रमाण नीचेकों वहता

है, तब द्वादश अंगुल पर्यंत वारुणमंडल प्रचार अमृतमय पवन आकर्षण करके इसका नाम पूरक ध्यानकर्म कहते हैं.

अथ रेचक प्राणायाम कहते हैं. तब पूरक ध्यानके अनंतर साधक योगी योगसामर्थ्यसें अरु प्राणायाम अभ्यासके वशसें रेचकनामा पवन नाभिकमलोदरसें हळुवे हळुवे बाहिर काढता है, तिसका नाम रेचकध्यान कहते हैं॥ यदाह॥ बद्धासनः स्थिरवपुः स्थिरधीःसचित्त, मारोप्य रेचक समीरणजन्म चक्रे॥ स्वांतेन रेचयति नाभिगतं समीरं, तत्कर्म रेचकमिति प्रतिपत्तिमेति १

अथ कुंभकध्यान कहते है. योगी कुंभकनामा पवन नाभिपंकजकुंभक ध्यान अर्थात् कुंभककर्म प्रयोग करके कुंभवत् (घटाकार) करके अतिशय करके स्थिर करता है ॥ यदाह ॥ चेतसि श्रयति कुंभकचक्रं, नाडिकासु निबिडीकृतवातः॥ कुंभवच्चरति यज्जलमध्ये, तद्वदंति किल कुंभककर्म ॥ १ ॥

अथ पवनके जितनेसें मन जीत्या जाता है, यह बात कहते हैं. क्योंकि जहां मन है, तहां पवन है, अरु जहां पवन है, तहां मन वर्त्तता है ॥ यदाह ॥ दुग्धांबुवत्संमिलितौ सदैव, तुल्यक्रियौ मानसमारुतौ हि ॥ यावन्मनस्तत्र मरुत्प्रवृत्ति, र्यावन्मरुत्तत्र मनःप्रवृत्तिः ॥ १ ॥ तत्रैकनाशादपरस्यनाश, एकप्रवृत्तेरपरप्रवृत्तिः ॥ विध्वस्तयोरेंद्रियवर्गशुद्धि, स्त ध्वंसनान्मोक्षपदस्य सिद्धिः ॥ २ ॥ इस प्रकार करके पूरक, रेचक, कुंभक के क्रम करके पवनोंका आकुंचन निर्गमन, साध्य करके वायुका संग्रह, अरु चित्तका एकाग्रपणां चिंतन करके समाधिविषे निश्चलपणेकों धारण करता है, क्योंकि पवनके जीतनेसेंही मन निश्चल होता है ॥ यदाह ॥ प्रचलति यदि, क्षोणी चक्रं, चलंत्यचला अपि ॥ प्रलयपवन, प्रेंखालोला, श्चलंति पयोधयः ॥ पवनजयिनः, स्वावष्टंभ,प्रकाशितशक्तयः॥ स्थिरपरिणते, रात्म ध्याना, च्चलंति न योगिनः ॥ १ ॥

अथ भावकीही प्रधानता कहते हैं, इहां क्षपकश्रेणि आरोहविषे जो प्राणायामका क्रम प्रौढि पवनका अभ्यासक्रम कह्या है, सो प्रागल्भता अर्थात् रूढि करके जो प्रसिद्ध है, सो दिखलाया है. परंतु जो प्राणायाही करे, तो क्षपकश्रेणि चढे, ऐसा कुछ नियम नहीं, क्योंकि क्षपकका भावही केवल क्षपकश्रेणिका कारण है, परंतु प्राणायामादि आडंबर नहीं. चर्पटिनापि ॥ नासाकंदं नाडीवृंदं, वायोश्चारः प्रत्याहारः ॥ प्राणायामो बी

जग्रामो, ध्यानाज्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं च्रुमध्यस्थं, नासाग्र स्थं श्वासांतःस्थं ॥ तेजः शुद्धं ध्यानं बुद्धः, ॐ काराख्यं सूर्यप्रजाख्यं ॥२॥ ब्रह्माकाशं शून्याज्यासं, मिथ्याजल्पं चिंताकल्पं ॥ कायाक्रांतं जावोपेतं ॥ त्यक्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥३॥ गुर्वादिष्टं चिंत तमिष्टं ॥ देहातीतं चित्तभ्रांतं त्यक्ता द्वंद्वं नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्वं जानीहि त्वं ॥४॥ अन्यच्च ॥ ॐ काराज्यस नं विचित्रकरणैः, प्राणस्य वायोर्जया, त्तेजश्चिंतनमात्मकायकमले, शून्यांत रालंबनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं, चिंतामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्यत ज ल्पकल्पनकला, तीतं स्वजावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्व रूढि करकें क्षपकश्रेणि के आमंबर है,परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् जावही प्रधान है.

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन, वचन, अरु कायाके योग वाले मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है,सो कैसा है ? कि वितर्क कर कें सहित जो वर्त्ते, सो सवितर्क. अरु सह विचार करकें जो प्रवर्त्ते, सो सविचा र. तथा सह पृथक्त्वेन वर्तते इति सपृथक्त्व. इन तीनो विशेषणों करकें संयु क्त होनेसें सपृथक्त्व,सवितर्क,सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है.

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान त्रयात्मक क्रमोत्क्रम करकें गृहीत विशेष तीन रूप हैं,तहां श्रुतचिंता रूप वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करनां है, सो विचार है, अरु द्रव्य गुण पर्यायादि करकें जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, उसमें प्रथम वितर्कका स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होवे सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुजवमय अंतरंगजावगत आगमके अवलंबनसें. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते हैं. जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचाररूप अर्थसें अर्थातरमें संक्रम होवे, शब्दसें शब्दांतरमें संक्रम होवे, योगसें योगांतरमें संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्क सवि चार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपनी शुद्धात्मकी तरें द्रव्यसें द्रव्यांत रमें जाता है, अथवा गुणोंसें गुणांतरमें जाता है, अथवा पर्यायोंसें पर्या यांतरमें जाता है, तहां जो सहजात है, सो गुण है,जैसें सुवर्णमें स्निग्ध

ता पीतता है. अरु जो क्रमजूत है, सो पर्याय है, जैसें सुवर्णमें मुद्रा कुंडलादिक. तिन द्रव्य गुण पर्यायांतरोमें जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते हैं. योगी समाधिवान् ऐसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्रथम शुक्लध्यान है, उसका ध्याता हूआ परम प्रकृष्ट शुद्धिकों प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता ? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है.

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपाति (पतनशील) उत्पन्न होता है, तोजी अतिविशुद्ध होनेसें औ अति निर्मल होनेसें अगले गुणस्थानमें चढनां चाहता है, एतावता अगले गुणस्थानकों दौलता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निद्राद्विक, देवद्विक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय, आहारक तैजस, कार्मण, वैक्रियोपांग, आहारकोपांग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थंकरनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात उच्छ्वास. यह बत्तीस कर्म प्रकृतिका व्यवछेद होनेसें छवीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अंतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह, इन चारके उदय व्यवछेद होनेसें बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है. अरु १३८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ क्षपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता हूआ जौनसी कर्मप्रकृति जहां जैसें क्षय करता है, सो कहते हैं. पूर्वोक्त आठमे गुणस्थानसें अनंतर क्षपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानमें चढता है, तव तिस नवमे गुणस्थानके नव जाग करता है, तिहां प्रथम जागमें सोलां कर्म प्रकृति क्षय करता है, सो यह है. १ नरकगति, २ नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम, ६ उद्योतनाम, ७ सूक्ष्म, ८ द्वींद्रिय जाति, ९ त्रींद्रिय जाति, १० चतुरिंद्रिय जाति, ११ एकेंद्रियजाति, १२ आतप नाम, १५ स्त्यानर्द्धि त्रिक, अर्थात् निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, यह त्रिक, १६ स्थावर नाम. यह सोलां कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानकके प्रथम जागमें क्षय करता है,

जमामो, ध्यानाभ्यासोमंत्रन्यासः ॥ १ ॥ हृत्पद्मस्थं भ्रुमध्यस्थं, नासाग्रस्थं श्वासांतःस्थं ॥ तेजः शुक्लं ध्यानं बुद्धः, ॐ काराख्यं सूर्यप्रकाख्यं ॥ब्रह्माकाशं शून्याभ्यासं, मिथ्याजल्पं चिंताकल्पं ॥ कायाक्रांतं भावोपेतं। त्यक्त्वा सर्वं मिथ्यागर्वं ॥३॥ गुर्वादिष्टं चिंत तमिष्टं ॥ देहातीतं चित्तग्रांतं त्यक्त्वा द्वंद्वं नित्यानंदं, शुद्धं तत्त्वं जानीहि त्वं ॥४॥ अन्यच्च ॥ ॐ काराभ्यसनं विचित्रकरणैः, प्राणस्य वायोर्जया, त्तेजश्चिंतनमात्मकायकमले, शून्यांतरालंबनं ॥ त्यक्त्वा सर्वमिदं कलेवरगतं, चिंतामनोविभ्रमं ॥ तत्त्वं पश्यत जल्पकल्पनकला, तीतं स्वभावस्थितं ॥ १ ॥ यह सर्व रूढि करके रूपकश्रेणिके आडंबर है,परंतु तत्त्वमें मरुदेवादिवत् भावही प्रधान है.

अथ आद्य शुक्लध्यानका नाम कहते हैं. मन, वचन, अरु कायाके योग पाके मुनिके प्रथम शुक्ल ध्यानका पाद होता है,सो कैसा है ? कि वितर्क करके सहित जो वर्त्ते, सो सवितर्क. अरु सह विचार करके जो प्रवर्त्ते, सो सविचार. तथा सह पृथक्त्वेन वर्तते इति सपृथक्त्व. इन तीनो विशेषणों करके संयुक्त होनेसें सपृथक्त्व,सवितर्क,सप्रविचार नामक प्रथम शुक्लध्यानका नाम है.

अथ विशेषण तीनोंका स्वरूप कहते हैं, यह पूर्वोक्त प्रथम शुक्लध्यान त्रयात्मक क्रमोत्क्रम करके रहीत विशेष तीन रूप हैं,तहां श्रुतचिंता का वितर्क है, तथा अर्थ शब्द योगांतरमें जो संक्रमण करनां है, सो विचार है, अरु द्रव्य गुण पर्यायादि करके जो अन्यपणा है, सो पृथक्त्व है.

अथ इन तीनोंका प्रगट अर्थ कहते हैं, उसमें प्रथम वितर्कका स्वरूप कहते हैं, जिस ध्यानमें अंतरंग ध्वनिरूप वितर्कविचार रूप होवे सो सवितर्कध्यान है, क्योंकि स्वकीय निर्मल परमात्मतत्त्व अनुभवमय अंतरंग भावगत आगमके अवलंबनसें. यह सवितर्क ध्यान है.

अथ सविचार कहते हैं. जिस ध्यानमें सपूर्वोक्त वितर्क विचारणा अर्थसें अर्थांतरमें संक्रम होवे, शब्दसें शब्दांतरमें संक्रम होवे, योगमें योगांतरमें संक्रम होवे, सो ध्यान, सविचारससंक्रमण कहते हैं.

अथ पृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें वो पूर्वोक्त वितर्कसविचार अर्थ व्यंजन योगांतर संक्रमणरूपणी शुद्धात्मकी तरें द्रव्यसें द्रव्यांतरमें जाना है, अथवा गुणोंमें गुणांतरमें जाना है, अथवा पर्यायोंमें पर्यायांतरमें जाना है, तहां जो सहभाव है, सो गुण है, जैसें सुवर्णमें स्निग्

ता पीतता है. अरु जो क्रमभूत है, सो पर्याय है, जैसें सुवर्णमें मुद्रा कुं डलादिक. तिन द्रव्य गुण पर्यायांतरोमें जिस ध्यानमें अन्यत्व पृथक्त्व है, सो सपृथक्त्व है.

अथ आद्य शुक्लध्यान करकें जो शुद्धि होती है, सो कहते हैं. योगी समाधिवान् अैसा पूर्वोक्त त्रयात्मक पृथक्त्व वितर्क सप्रविचाररूप जो प्रथम शुक्लध्यान है, उसका ध्याता हूआ परम प्रकृष्ट शुद्धिकों प्राप्त होता है, सो कैसी शुद्धिकों प्राप्त होता ? कि जो शुद्धि मुक्तिरूप लक्ष्मीके मुखके दिखलाने वाली है, तिस शुद्धिकों प्राप्त होता है.

अथ इसहीका विशेष स्वरूप कहते हैं. यद्यपि यह शुक्लध्यान प्रतिपाति (पतनशील) उत्पन्न होता है, तोभी अतिविशुद्ध होनेसें औ अति निर्मल होनेसें अगले गुणस्थानमें चढनां चाहता है, एतावता अगले गुणस्थानकों दौरता है, तथा अपूर्वकरण गुणस्थानस्थ जीव निद्राद्विक, देवद्विक, पंचेंद्रिय जाति, प्रशस्त विहायोगति, त्रसनवक, वैक्रिय, आहारक तेजस, कार्मण, वैक्रियोपांग, आहारकोपांग, आद्य संस्थान, निर्माण, तीर्थंकरनाम, वर्णचतुष्क, अगुरुलघु, उपघात, पराघात उछ्वास. यह बत्तीस कर्म प्रकृतिका व्यवछेद होनेसें छवीश कर्मप्रकृतिका बंध करता है. तथा अंतिम तीन संहनन अरु सम्यक्त्व मोह, इन चारके उदय व्यवछेद होनेसें बहत्तरी कर्मप्रकृति वेदता है. अरु १३८ कर्मप्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपक श्रेणिवालेका आठमा गुणस्थानका स्वरूप ॥

अथ क्षपक अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानकमें आरोहण करता हूआ जोनसी कर्मप्रकृति जहां जैसें क्षय करता है, सो कहते हैं. पूर्वोक्त आठमे गुणस्थानसें अनंतर क्षपक मुनि अनिवृत्तिनामक नवमे गुणस्थानमें चढता है, तब तिस नवमे गुणस्थानके नव भाग करता है, तिहां प्रथम भागमें सोलां कर्म प्रकृति क्षय करता है, सो यह है. १ नरकगति, २ नरकानुपूर्वी, ३ तिर्यग्गति, ४ तिर्यंचानुपूर्वी, ५ साधारणनाम, ६ उद्योतनाम, ७ सूक्ष्म, ८ द्वींद्रिय जाति, ९ त्रींद्रिय जाति, १० चतुरिंद्रिय जाति, ११ एकेंद्रियजाति, १२ आतप नाम, १५ स्त्यानर्द्धि त्रिक, अर्थात् निद्रानिद्रा, प्रचलाप्रचला, स्त्यानर्द्धि, यह त्रिक, १६ स्थावर नाम. यह सोलां कर्म प्रकृतिको नवमे गुणस्थानकके प्रथम भागमें क्षय करता है,

तथा अप्रत्याख्यानकी चोकडी, अरु प्रत्याख्यानकी चोकडी, यह आठ मध्यकी कषायकों दूसरे भागमें क्षय करता है, तीसरे भागमें नपुंसकवेद, अरु चौथे भागमें स्त्रीवेद क्षय करता है, तथा पांचमे भागमें हास्य, रति, अरति, भय, शोक अरु जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका क्षय करता है. शेष छठे भागसें ले कर नवमे भाग तांइ चारों भागमें क्रमसें शुद्ध हूवा थका ध्यानकी अति निर्मलतासें क्रम करकें छठे भागमें पुरुषवेद, सातमे भागमें संज्वलनका क्रोध, आठमे भागमें संज्वलन मान, नवमे भागमें संज्वलनकी मायाकों क्षय करता हैं, तथा यह गुणस्थानमें वर्त्तता हुआ मुनि, हास्य, अरति, भय, जुगुप्सा. इन चारोंके व्यवछेद होनेसें बावीस प्रकृतिका बंध करता हैं. अरु हास्य षट्कके उदय व्यवछेद होनेसें छासठ प्रकृतिकों वेदता है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके क्षय करणेसें पैंत्तीस प्रकृतिके व्यवछेद होनेसें एक सौ तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकके नवमे गुणस्थानकका स्वरूप.

अथ क्षपकके दशमे गुणस्थानका स्वरूप लिखते हैं. पूर्वोक्त नवमे गुणस्थानकसें अनंतर क्षपकमुनि सूक्ष्मसंपरायनामक दशमें गुणस्थानमें चढता है, क्या करता हुआ चढता है? कि क्षणमात्रसें संज्वलनके स्थूल लोभकों सूक्ष्म करता हुआ चढता है, तथा सूक्ष्म संपराय गुणस्थानस्थ जीव, पुरुषवेद तथा संज्वलन चतुष्कके बंध व्यवछेद होनेसें सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन संज्वलन कषायके उदय व्यवछेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवछेद होनेसें एक सौ दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकस्य दशमं गुणस्थानं ॥

अथ क्षपककों इग्यारहवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुणस्थानमें क्षपक, सूक्ष्मलोभांशोंकों सूक्ष्मकृत लोभखंडोंको क्षय करता हूआ बारहमे क्षीणमोह गुणस्थानमें जाता है. इहां क्षपकश्रेणि समाप्त करता है. उसका क्रम यह हैं. कि प्रथम अनंतानुबंधी चार क्षय करता है, फेर मिथ्यात्व मोहनीय, फेर मिश्रमोहनीय, फेर सम्यक्त्व मोहनीय, फेर अप्रत्याख्यान चार कषाय, तथा प्रत्याख्यान चार कषाय. एवं आठ क्षय करता है. फेर नपुंसकवेद, फेर हास्यषट्क, फेर पुरुष वेद, फेर संज्वलन क्रोध, फेर संज्वलन मान, फेर संज्वलन माया, फेर संज्वलन लोभ क्षय करता है.

अथ तहां बारहमे गुणस्थानमें शुक्लध्यानके दूसरे अंशकों आश्रित करता है, यह बात कहते हैं. अथानंतर सो क्षपकक्षीणमोहरूप हो करकें क्षीणमोह गुणस्थानकके मार्गमें परिणतिमान् हो करकें, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करकें दूसरे शुक्लध्यानकों आश्रित होता है, कथंभूतः क्षपक? वीतरागः विशेष करकें "इतो (गतो) रागो यस्मात् स वीतरागः" फेर कैसा है क्षपकमुनि? महायति, यथाख्यातचारित्री. फेर कैसा है मुनि? कि शुद्धतर भाव करकें संयुक्त ऐसा क्षपक, दूसरे शुक्लध्यानकों आश्रित होता है.

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते हैं, सो क्षपक क्षीणमोह गुणस्थानवर्त्ती, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करकें ध्याता है ॥यदाह॥ एकं त्रियोगभाजा, माद्यं स्यादपरमेकयोगवतां ॥ तनुयोगिनां तृतीयं, नियोगानां चतुर्थं हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है? कि " अपृथक्त्वं पृथक्त्व वर्जितं अविचारं विचार रहितं सवितर्कगुणान्वितं वितर्क मात्र गुण संयुक्त " दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है.

अथ अपृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अपृथक्त्वज्ञानकों धारण करता है, सो एकत्वपणा क्या है? जो निजात्मद्रव्य एक केवल अपणा द्रव्य विशुद्ध परमात्मद्रव्य है, अथवा तिसही परमात्मद्रव्यका एक केवल पर्याय, अथवा एक केवल गुण, इस प्रकारसें एक द्रव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहां ध्यावे, सो एकत्व है.

अथ अविचारपणा कहते हैं. इस कालमें सद्ध्यानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जाननहारा है, सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्राम्नायविशेषसें है, परंतु शुक्लध्यानका अनुभवी इस कालमें कोइ नहीं ॥यदाहुः॥ श्रीहेमचंद्र सूरिपादाः ॥ श्लोक ॥ अनविच्छित्त्याम्नायः, समागतोऽस्येति कीर्त्यतेऽस्माभिः ॥ दुष्करमप्याधुनिकैः, शुक्लध्यानं यथाशास्त्रं ॥ १ ॥ जिनसद्ध्यानकोविदोनें शास्त्राम्नायसें शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है. तिनोनें अविचार विशेषण संयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कहा है, सो क्या है? जो पूर्वोक्त स्वरूपोंमें व्यंजन अर्थयोगोंमें एतावता शब्दार्थ योग रूपोंमें परावर्त्त विवर्जित शब्दांतर, इत्यादि क्रमसें रहित चिंतन श्रुतानुसारेंही करियें हैं, सो अविचार है.

तथा अप्रत्याख्यानकी चोकडी, अरु प्रत्याख्यानकी चोकडी, यह आठ मध्यकी कषायकों दूसरे जागमें क्षय करता है, तीसरे जागमें नपुंसकवेद, अरु चोथे जागमें स्त्रीवेद क्षय करता है, तथा पांचमे जागमें हास्य, रति, अरति, जय, शोक अरु जुगुप्सा, यह छे प्रकृतिका क्षय करता है. शेष छठे जागसें ले कर नवमे जाग तांइ चारों जागमें क्रमसें शुरू हूवा यका ध्यानकी अति निर्मलतासें क्रम करकें छठे जागमें पुरुषवेद, सातमे जागमें संज्वलनका क्रोध, आठमे जागमें संज्वलन मान, नवमे जागमें संज्वलनकी मायाकों क्षय करता है, तथा यह गुणस्थानमें वर्त्तता हुआ मुनि, हास्य, अरति, जय, जुगुप्सा. इन चारोंके व्यवछेद होनेसें बावीस प्रकृतिका बंध करता है. अरु हास्य षट्कके उदय व्यवछेद होनेसें बासठ प्रकृतिकों वेदता है, तथा नवमे अंशमें माया पर्यंत प्रकृतियोंके क्षय करणेसें पेंतीस प्रकृतिके व्यवछेद होनेसें एक सो तीन प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकके नवमे गुणस्थानकका स्वरूप.

अथ क्षपकके दशमे गुणस्थानका स्वरूप लिखते हैं. पूर्वोक्त नवमे गुणस्थानकसें अनंतर क्षपकमुनि सूक्ष्मसंपरायनामक दशमें गुणस्थानमें चढता है. क्या करता हुआ चढता है? कि क्षणमात्रसें संज्वलनके स्थूल लोनकों सूक्ष्म करता हुआ चढता है, तथा सूक्ष्म संपराय गुणस्थानस्थ जीव, पुरुषवेद तथा संज्वलन चतुष्कके बंध व्यवछेद होनेसें सत्तरां प्रकृतिका बंध करता है, अरु तीन वेद, तथा तीन संज्वलन कषायके उदय व्यवछेद होनेसें साठ प्रकृति वेदता है, मायाकी सत्ता व्यवछेद होनेसें एक सो दो प्रकृतिकी सत्ता है ॥ इति क्षपकस्य दशमं गुणस्थानं ॥

अथ क्षपककों इग्यारहवा गुणस्थानक नहीं होता है, किंतु दशमे गुणस्थानमें क्षपक, सूक्ष्मलोनांशोंकों सूक्ष्मकृत लोनखंमोंको क्षय करता हूआ बारहमे क्षीणमोह गुणस्थानमें जाता है. इहां क्षपकश्रेणि समाप्त करता है. उसका क्रम यह है. कि प्रथम अनंतानुबंधी चार क्षय करता है, फेर मिथ्यात्व मोहनीय, फेर मिश्रमोहनीय, फेर सम्यक्त्व मोहनीय, फेर अप्रत्याख्यान चार कषाय, तथा प्रत्याख्यान चार कषाय. एवं आठ क्षय करता है. फेर नपुंसकवेद, फेर हास्यषट्क, फेर पुरुष वेद, फेर संज्वलन क्रोध, फेर संज्वलन मान. फेर संज्वलन माया, फेर संज्वलन लोन क्षय करता है.

अथ तहां बारहमे गुणस्थानमें शुक्लध्यानके दूसरे अंशकों आश्रित करता है, यह वात कहते हैं. अथानंतर सो क्षपकक्षीणमोहरूप हो करकें क्षीणमोह गुणस्थानकके मार्गमें परिणतिमान् हो करकें, प्रथम शुक्लध्यानकी रीति करकें दूसरे शुक्लध्यानकों आश्रित होता है, कथंभूतः क्षपक? वीतरागः विशेष करकें "इतो (गतो) रागो यस्मात् स वीत रागः" फेर कैसा है क्षपकमुनि? महायति, यथाख्यातचारित्री. फेर कैसा है मुनि? कि शुद्धतर भाव करकें संयुक्त ऐसा क्षपक, दूसरे शुक्ल ध्यानकों आश्रित होता है.

अथ सोइ शुक्लध्यान सनाम विशेषण कहते हैं, सो क्षपक क्षीणमोह गुणस्थानवर्त्ती, दूसरा शुक्लध्यान एक योग करकें ध्याता है ॥यदाह॥ एकं त्रियोगभाजा, माद्यं स्यादपरमेकयोगवतां ॥ तनुयोगिनां तृतीयं, नियोगानां चतुर्थं हि ॥ १ ॥ कैसा ध्यान है? कि "अपृथक्त्वं पृथक्त्व वर्जितं अविचारं विचार रहितं सवितर्कगुणान्वितं वितर्क मात्र गुण संयुक्त" दूसरा शुक्लध्यान ध्याता है.

अथ अपृथक्त्वका स्वरूप कहते हैं. तत्त्वज्ञाता एकत्व अर्थात् अपृथक्त्वज्ञानकों धारण करता है, सो एकत्वपणा क्या है? जो निजात्मद्रव्य एक केवल अपणा द्रव्य विशुद्ध परमात्मद्रव्य है, अथवा तिसही परमात्म द्रव्यका एक केवल पर्याय, अथवा एक केवल गुण, इस प्रकारसें एक द्रव्य, एक गुण, एक पर्याय, निश्चल, चलन वर्जित जहां ध्यावे, सो एकत्व है.

अथ अविचारपणा कहते हैं. इस कालमें सद्ध्यानकोविद अर्थात् शुक्लध्यानका जो जननहारा है, सो पूर्वमुनिप्रणीत शास्त्राम्नायविशेषसें है, परंतु शुक्लध्यानका अनुभवी इस कालमें कोइ नहीं ॥ यदाहुः॥ श्रीहेमचंद्र सूरिपादाः ॥ श्लोक ॥ अनविछित्याम्नायः, समागतोऽस्येति कीर्त्यते ऽस्माभिः ॥ दुष्करमप्याधुनिकैः, शुक्लध्यानं यथाशास्त्रं ॥ १ ॥ जिनसद्ध्यानकोविदोनें शास्त्राम्नायसें शुक्ल ध्यानका रहस्य जान्या है, तिनोनें अविचार विशेषण संयुक्त दूसरे शुक्लध्यानका स्वरूप कहा है, सो क्या है? जो पूर्वोक्त स्वरूपोमें व्यंजन अर्थयोगोमें एतावता शब्दार्थ योग रूपोमें परावर्त्त विवर्जित शब्दांतर, इत्यादि क्रमसें रहित चिंतन श्रुतानुसारेंही करियें हैं, सो अविचार है.

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लध्यान किससेंति होता है? तहां कहें हैं, कि भावश्रुतके आलंबनसें होता है. सूक्ष्म अंतर्जल्परूप भावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है.

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी भाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्रकार करकें एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान कहा, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्त्तता हुआ ध्यानी समरसी भावकों धारण करता है, सो यह समरसी भाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारणकि आत्मा जो अपृथक्त्व करकें परमात्मामें लीन करीये, सोइ समरस भावका धारण करणां है, समरस किससेंति करे? कि आत्माके अनुभवसें करे.

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके छेहडे क्या करता है? सो कहते हैं. इस पूर्वोक्त ध्यानके योगसें और दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्लुष्यत कर्मंधनो त्कर दह्यमान है, कर्मरूप इंधनका समूह, ऐसा योगींद्र अंतके प्रथम समय अर्थात् बारहवे गुणस्थानकके दूसरे चरम समयमें निद्रा अरु प्रचला, इन दो प्रकृतिका क्षय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गुण स्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ केवलदर्शन. यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पंचविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका क्षय करकें क्षीणमोहांश हो करकें केवल स्वरूप होता है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतुष्क, अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र, यशनाम. यह सोलां प्रकृतिका बंधव्यवच्छेद होनेमें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलनका लोभ, २ ऋषभनाराचसंघयण, इनकें उदय विछेद होनेसें सत्तावन प्रकृति वेदता है. तथा संज्वलनके लोभकी सत्ता दूर होनेसें एक सौ एक प्रकृतिकी सत्ता है. इति क्षपकस्य द्वादश गुणस्थानकस्वरूपं ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं चौथे गुणस्थानसें लेकर क्षय होती हुइ त्रेसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण नष्ट है, सो कहते हैं. एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें क्षय हुइ, एक पांचमें, आठ सातमें, छत्तीस नवमें, सत्तरे बारहमें. यह सर्व त्रेसठ नष्ट. तथा शेष पंचासी

प्रकृति पुराणे वस्त्रकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती हैं.

अथ सयोगी केवलीके जो भाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते हैं. तिस केवल आत्मा भगवतको इहां सयोगी गुणस्थानमें भाव तो क्षायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, औ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट क्षायिक होता है, तथा चारित्र क्षायिक यथाख्यातनामक होता है, इसका तात्पर्य्य यह है, कि उपशम अरु क्षायोपशमिक यह दो भाव नहीं होते हैं.

अथ तिस केवलात्मकों केवल कहते हैं. तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश करकें चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् (हस्त तलेमें ग्रहण करा आमलेकी तरें) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करकें भासन करते हैं. इहां प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसेंति कही है;कारण कि निश्चय करकें तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका वडा अंतर है.

अथ जिसने तीर्थंकरनाम उपार्ज्या है, तिसका विशेष कहते हैं. विशेष करकें अर्हत् भक्ति प्रमुख वीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करता है. सो वीश स्थानक यह हैं ॥ गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवयण, गुरु थेर वहुस्सुए तवस्सी ॥ वछलयाइ एसु, अभिरकणं णो वउग्गेय ॥ १ ॥ दंसण विणए आव, स्सए सीलवए निरइयारे ॥ खणलवच्चियाए, वेयावच्चे समाहीयं ॥ २ ॥ अपुव्वनाण गहणं, सुयभत्ती पवयण पभावणया ॥ एहिं कारणेहिं, तिछयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगें लिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्थानमें तीर्थंकर कर्मोदयसें वो केवली (त्रिजगत्पति) त्रिभुवनपति जिनेंद्र होता है. जिन सामान्य केवलीयोंको कहते हैं, तिनमें जो इंद्रकी तरें होवे, सो जिनेंद्र जाननां.

अथ तीर्थंकरकी महिमा कहते हैं, सो भगवान् तीर्थंकर पूर्वोक्त चउत्तीस अतिशय करकें संयुक्त होता है, औ सर्व देवता जिसको नमस्कार करते हैं, तथा सकल देव मानवोंनें जिसकों नमस्कार करा है, सो सर्वोत्तम, औ सकल शासनोंमें प्रधान, ऐसा तीर्थप्रवर्त्तन प्रगट करता हूआ उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है.

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लध्यान किससेंति होता है? तहां कहे हैं, कि जावश्रुतके आलंबनसें होता है. सूक्ष्म अंतर्जल्परूप जावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है.

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी जाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्रकार करकें एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान को ध्याता, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्त्तता हुआ ध्यानी समरसी जावकों धारण करता है, सो यह समरसी जाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारणकि आत्मा जो अपृथक्त्व करकें परमात्मामें लीन करीये, सोइ समरस जाव धारण करणा है, समरस किससेंति करे? कि आत्माके अनुजवसें क

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके ठेहरके क्या करता है? सो कहते हैं. इ पूर्वोक्त ध्यानके योगसें और दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्लुष्यत कर्मध रकर दह्यमान है, कर्मरूप इंधनका समूह, ऐसा योगींद्र अंतके प्रथ समय अर्थात् वारहवे गुणस्थानकके दूसरे चरम समयमें निद्रा अरु चला, इन दो प्रकृतिका क्षय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गुण स्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ केवलदर्शन. यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पंचविध अंतराय, यह चौदह प्रकृतिका क्षय करकें क्षीणमोहांश हो कर केवल स्वरूप होता है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतुष्क, अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र, यशनाम. यह सोलां प्रकृतिका बंधव्यवछेद होनेसें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलनका लोभ, २ ऋषजनाराचसंघयण, इनकें उदय विछेद होनेसें सत्तावन प्रकृति वेदता है. तथा संज्वलनके लोजकी सत्ता दूर होनेसें एक सौ एक प्रकृतिकी सत्ता है. इति क्षपकस्य द्वादश गुणस्थानकस्वरूपं ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं चौथे गुणस्थानसें ले कर क्षय होती हुइ त्रेसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण जइ है, सो कहते हैं. एक प्रकृति चौथे गुणस्थानमें क्षय हुइ, एक पांचमें, आठ सातमें, छत्तीस नवमें, सत्तरे वारहमें. यह सर्व त्रेसठ जइ. तथा शेष पंचासी

प्रकृति पुराणे वस्त्रकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती हैं.

अथ सयोगी केवलीके जो भाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते हैं. तिस केवल आत्मा भगवतको इहां सयोगी गुणस्थानमें भाव तो क्षायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, औ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट क्षायिक होता है, तथा चारित्र क्षायिक यथाख्यातनामक होता है. इसका तात्पर्य्य यह है, कि उपशम अरु क्षायोपशमिक यह दो भाव नहीं होते हैं.

अथ तिस केवलात्मकों केवल कहते हैं. तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश करकें चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् (हस्त तलेमें ग्रहण करा आमलेकी तरें) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करकें भासन करते हैं. इहां प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसेंति कही है;कारण कि निश्चय करकें तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बडा अंतर है.

अथ जिसने तीर्थंकरनाम उपार्ज्या है, तिसका विशेष कहते हैं. विशेष करकें अर्हत् भक्ति प्रमुख वीश पुण्यके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करता है. सो वीश स्थानक यह है ॥ गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवयण, गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सी ॥ वछलयाइ एसु, अभिरकणं णो वउगेय ॥ १ ॥ दंसण विणए आव, स्सए सीलवए निरइयारे ॥ खणलवत्तियाए, वेयावच्चे समाहीयं ॥ २ ॥ अपुव्वनाण ग्गहणं, सुयभत्ती पवयण पभावणया ॥ एहिं कारणेहिं, तिछयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगें लिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्थानमें तीर्थंकर कर्मोदयसें वो केवली (त्रिजगत्पति) त्रिभुवनपति जिनेंद्र होता है. जिन सामान्य केवलीयोंकों कहते हैं, तिनमें जो इंद्रकी तरें होवे, सो जिनेंद्र जानना.

अथ तीर्थंकरकी महिमा कहते हैं, सो भगवान् तीर्थंकर पूर्वोक्त चउत्तीस अतिशय करकें संयुक्त होता है, औ सर्व देवता जिसकों नमस्कार करते हैं, तथा सकल देव मानवोनें जिसकों नमस्कार करा है, सो सर्वोत्तम, औ सकल शासनोमें प्रधान, ऐसा तीर्थप्रवर्त्तन प्रगट करता हूआ उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है.

अथ सवितर्क कहते हैं, सवितर्क एक गुणसंयुक्त दूसरा शुक्लध्यान किससेंति होता है? तहां कहे हैं, कि जावश्रुतके आलंबनसें होता है. सूक्ष्म अंतर्जल्परूप जावगत अवलंबनमात्र चिंतनसें होता है.

अथ शुक्लध्यानजनित समरसी जाव कहते हैं. इस पूर्वोक्त प्रकारकरकें एकत्वविचार सवितर्करूप तीन विशेषण संयुक्त दूसरा शुक्लध्यान कहा, तिस दूसरे शुक्लध्यानमें वर्त्तता हुआ ध्यानी समरसी जावकों धारण करता है, सो यह समरसी जाव जो है, सो तदेकशरण मान्या है, कारणकि आत्मा जो अपृथक्त्व करकें परमात्मामें लीन करीये, सोइ समरस जावका धारण करणां है, समरस किससेंति करे ? कि आत्माके अनुजवसें करे.

अथ क्षीणमोहगुणस्थानके छेहरूे क्या करता है ? सो कहते हैं. इस पूर्वोक्त ध्यानके योगसें और दूसरे शुक्लध्यानके योगसें प्रदुप्यत कर्मधनकर दह्यमान है, कर्मरूप इंधनका समूह, ऐसा योगींद्र अंतके प्रथम समय अर्थात् बारहवे गुणस्थानकके दूसरे चरम समयमें निद्रा अरु प्रचला, इन दो प्रकृतिका क्षय करता है.

अथ अंत समयमें जो करता है, सो कहते हैं. क्षीणमोह गुणस्थानके अंत समयमें १ चक्षुदर्शन, २ अचक्षुदर्शन, ३ अवधिदर्शन, ४ केवलदर्शन. यह चार दर्शनावरणीय तथा पंचविध ज्ञानावरण, तथा पंचविध अंतराय, यह चोदह प्रकृतिका क्षय करकें क्षीणमोहांश हो कारकें केवल स्वरूप होता है. तथा क्षीणमोह गुणस्थानस्थ जीव, दर्शनचतुष्क अरु ज्ञानांतरायदशक, उच्चैर्गोत्र, यशनाम. यह सोलां प्रकृतिका बंधविच्छेद होनेसें एक शातावेदनीका बंध करता है, तथा १ संज्वलनका लोभ, २ ऋषभनाराचसंघयण, इनकें उदय विछेद होनेसें सत्तावन प्रकृति वेदता है. तथा संज्वलनके लोनकी सत्ता दूर होनेसें एक सौ एक प्रकृतिकी सत्ता है. इति क्षपकस्य द्वादश गुणस्थानकस्वरूपं ॥ १२ ॥

अथ क्षीणमोहांत प्रकृतियोंकी संख्या कहते हैं चोथे गुणस्थानमें क्षय कर क्षय होती हुइ त्रेसठ प्रकृति, क्षीणमोहमें संपूर्ण नष्ट है, सो कहते हैं. एक प्रकृति चोथे गुणस्थानमें क्षय हुइ, एक पांचमें, आठ सातमें, उत्तीस नवमें, सत्तरे बारहमें. यह सर्व त्रेसठ नष्ट. तथा शेष पंचासी

प्रकृति पुराणे वस्त्रकी तरें (अत्यंत जीर्णवस्त्रसमान) तेरहवे सयोगी केवली गुणस्थानमें रहती है.

अथ सयोगी केवलीके जो भाव होता है, अरु जो सम्यक्त्व चारित्र होता है, सो कहते हैं. तिस केवल आत्मा भगवतको इहां सयोगी गुणस्थानमें भाव तो क्षायिक शुद्ध (निर्मल) होता है, औ सम्यक्त्व परम प्रकृष्ट क्षायिक होता है, तथा चारित्र क्षायिक यथाख्यातनामक होता है. इसका तात्पर्य यह है, कि उपशम अरु क्षायोपशमिक यह दो भाव नहीं होते हैं.

अथ तिस केवलात्मको केवल कहते हैं. तिस केवल रूप सूर्यके प्रकाश करके चराचर जगत् हस्तामलक उपमावत् (हस्त तलमें प्राप्त करा आमलेकी तरें) प्रत्यक्ष (साक्षात्कार) करके भासन करते हैं. इहां प्रकाशमान सूर्यकी उपमा जो कही है, सो व्यवहार मात्र कही है, नतु निश्चयसेंति कही है; कारण कि निश्चय करकें तो केवलज्ञानका अरु सूर्यका बना अंतर है.

अथ जिसने तीर्थंकरनाम उपार्ज्या है, तिसका विशेष कहते हैं. विशेष करके अर्हत् भक्ति प्रमुख वीश पुरुके स्थानक जो जीव, आराधन करता है, सो तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करता है. सो वीश स्थानक यह है ॥ गाथा ॥ अरिहंत सिद्ध पवयण. गुरु थेर बहुस्सुए तवस्सी ॥ वच्छयाइ एसु. अभिक्खणं णो वउग्गेय ॥ १ ॥ दंसण विणए आव, स्सए सीलव्वए निरइयारे ॥ खणलवतवच्चियाए. वेयावच्चे समाहीयं ॥ २ ॥ अपुव्वनाण गहणे, सुयभत्ती पवयण पभावणया ॥ एहिं कारणेहिं. तित्थयरत्तं लहइ जीवो ॥ ३ ॥ इनका अर्थ आगे लिखेंगे, तिस वास्ते इहां सयोगी गुणस्थानमें तीर्थंकर कर्मोदयसें वो केवली (त्रिजगत्पति) त्रिभुवनपति जिनेंद्र होता है. जिन सामान्य केवलीयोंको कहते हैं; तिनमें जो इंद्रकी तरें होवे, सो जिनेंद्र जानना.

अथ तीर्थंकरकी महिमा कहते हैं, सो भगवान् तीर्थंकर पूर्वोक्त चउतीस अतिशय करकें संयुक्त होता है. औ सर्व देवता जिसको नमस्कार करते हैं, तथा सकल देव मानवोंमें जिसको नमस्कार करा है; सो सर्वोत्तम, औ सकल शासनोंमें प्रधान, ऐसा तीर्थप्रवर्त्तन प्रगट करता हुआ उत्कृष्ट देशोन पूर्वकोटि लग विद्यमान रहता है.

अथ सो तीर्थंकर नामकर्म जैसें वेदनेमें आता है, तैसें कहते हैं तिस तीर्थंकरनें सो तीर्थंकर नामकर्म जोगीयें हैं, क्या करनेसें? सो कहते हैं. पृथ्वीमंडलमें जव्यजीवोंके प्रतिबोधनेसें, देशविरति औ सर्वविरति करनेसें, तीर्थंकर नामकर्म वेदनेमें आता है. जे कर तीर्थंकर नामकर्म का उदय न होवे, तब कृतकृत्य होनेसें जगवान्कों उपदेश देनेका क्या प्रयोजन है? इस वास्ते जे वादी जगवान्कों निःशरीरी नैरुपाधिक मुख रहित सर्वव्यापी मानते हैं, सो देहादिकके अजावसें धर्मका उपदेशक नहीं हो सक्ता है, जे कर उपाधि रहित सर्वव्यापी परमेश्वरजी उपदेशक होवे, तब तो अब इस कालमें अस्मदादिकोंको क्यों नहीं उपदेश करता है ? क्योंकि पूर्वकालमें अग्नि आदिक ऋषियोंकों उसने प्रेरा, तथा ब्रह्मादि द्वारा चार वेदका उपदेश करा. तथा मूसा, ईसा द्वारा जगत्कों उपदेश करा, तो फेर अब क्यों नहीं उपदेश करता? परोपकारीके क्या ढील है? जे कर कहोगेकि इस कालमें सर्व जीव उपदेश मानने योग्य नहीं है; इस वास्ते उपदेश नहीं देता, तब तो पूर्वकालमेंजी सर्व जीवोने परमेश्वरका उपदेश नहीं माना है. प्रथम तो कालासुर प्रमुख अनेक जीवोंनें नहीं माना, दूसरा अजाजीलने नहीं माना, औ यहूदानें, तथा कितनेक इसराइलियोंनें नहीं माना, इस वास्ते पूर्वकालमेंजी परमेश्वरकों उपदेश देनां योग्य नहीं था. जे कर कहोगेकि उसकी ओही जाने क्यों कर उपदेश दीया अरु अब किस वास्ते उपदेश नहीं देता. तो फेर तुम क्यों कर कहते हो कि परमेश्वरके मुख नहीं? इस वास्ते यही सत्य है, कि जो तीर्थंकर नामकर्मके वेदने वास्ते जगवान् उपदेश करते हैं, अरु जिस वखत उपदेश करते हैं उस वखत देहधारी होते हैं. इत्यलं प्रसंगेन॥ केवली केवलज्ञानवान् पृथ्वीमंडलमें उत्कृष्ट आठ वर्ष ऊणा पूर्वकोटि प्रमाण विचरता है, औ देवताओंके करे हूए कंचनकमलोंके उपरि पग रख कर चालता है, अरु आठ प्रत्याहार करकें संयुक्त अनेक सुरासुर कोटि संसेवित विचरता है. यह स्थिति सामान्य प्रकारें केवलीयोंकी कही है, अरु जिनेंद्र तो मध्यस्थिति वाला होता है.

अथ केवलि समुद्घातकरण कहते हैं. "असौ" वो केवली जब वेदनी कर्मसंतती, आयुःकर्मकी स्थिति थोडी जानता है, तब तिसके तुल्य,

करने वास्ते केवली, समुद्घात करता है, तिस समुद्घातका स्वरूप कहते हैं, तहां प्रथम समुद्घात पदका अर्थ कहते हैं, यथास्वनावस्थित आत्म प्रदेशोंको वेदनादि सात कारणों करके समंतात् उदघातनं स्वनावसें अन्यनावपणे परिणमन करनां, तिसका नाम समुद्घात है. सो समुद्घात सात प्रकारें है. १ वेदनास०, २ कषायस०, ३ मरणस०, ४ वैक्रियस०, ५ तेजःस०, ६ आहारकस०, ७ केवलिस०, इन सातों समुद्घातोंमेंसूं केवलि समुद्घात इहां ग्रहण करणी. तिस केवलिसमुद्घातके अर्थे केवली जगवान् आयु अरु वेदनी कर्मके सम करने वास्ते प्रथम समयमें आत्मप्रदेशों करकें ऊर्ध्वलोकांत लगि दंकत्व (दंमाकार) लांवे आत्मप्रदेश करता है. दूसरे समयमें पूर्व, पश्चिम, दिशामें आत्मप्रदेशों करकें कपाटाकार करता है, तीसरे समयमें उत्तर, दक्षिण, आत्मप्रदेशोंका मंथानाकार करता है, चौथे समयमें अंतर पूर्ण करनेसें सर्व लोकव्यापी होता है. इस तरें केवली, चौथे समय विश्वव्यापी होता है.

अथ इहांसें निवृत्ति कहते हैं. इस प्रकार करकें केवली आत्मप्रदेशोंको विस्तार करनेके प्रयोगसें कर्मलेशको सम करता है. सम करकें पीछे तिस समुद्घातसें उलटा निवर्त्तता है, सो ऐसें है. कि केवली चार समयमें जगत् पूर्ण करके पांचमे समय पूर्णतें निवर्त्तता है. छठे समयमें मंथानपणा दूर करता है, सातमे समयमें कपाट दूर करता है, आठमे समयमें दंकत्व उपसंहार करता हूआ स्वनावस्थ होता है ॥ यदाहुर्वाचकमुख्याः ॥ दंडं प्रथमे समये, कपाटमथ चोत्तरे तथा समये ॥ मंथानमथ तृतीये, लोकव्यापी चतुर्थे तु ॥ १ ॥ संहरति पंचमे त्वं, तराणि मंथानमथ पुनः षष्ठे ॥ सप्तमेके तु कपाटं, संहरति तथाऽष्टमे दंकं ॥ २ ॥

अथ केवली समुद्घात करता हूआ जैसा योगवान्, अरु अनाहारक होता है, सो कहते हैं. केवली समुद्घात करता हूआ प्रथम अरु अंत समयमें औदारिककाय योगवाला होता है. दूसरे, अरु छठे समयमें मिश्रौदारिककाय योगी होता है. मिश्रपणा इहां कार्मण करकें औदारिकका है. तथा तीसरे, चौथे, अरु पांचमे समयोंमें केवल कार्मणकाय योगवाला होता है. जिन समयोंमें केवली केवल कार्मण काययोग वाला होता है, तिनही समयोंमें अनाहारक होता है.

अथ जौनसा केवली समुद्घात करता है, अरु जौनसा नहीं करता है, सो कहते हैं. जिसकी ६ महिनेसें अधिक आयु शेष है, जे कर उसकों केवल ज्ञान होवे, वोतो निश्चय समुद्घात करे, अरु जिसकी ६ महीनेके भीतर आयु होवे, उसकों जो केवल ज्ञान होवे, तो भजना है. वो केवल समुद्घात करेभी, अरु नहींभी करे॥ यदाह॥ छम्मासाऊ सेसा, उप्पन्नं जेसिं केवलं नाणं ॥ ते नियमा समुग्घाइय, सेसा समुग्घाय भइयवा॥

अथ समुद्घातसें निवृत्त हो करकें जो कुछ करता है, सो कहते हैं. वो मन, वचन, अरु काययोगवान् केवली, केवल समुद्घातसें निवृत्त हो कर योग निरोधनके वास्ते शुक्लध्यानका तीसरा पाद ध्याता है, सोइ तीसरा शुक्लध्यान कहते हैं. तिस अवसरमें तिस केवलीकों तीसरा सूक्ष्म क्रिया निवृत्तिक नाम शुक्लध्यान होता है. सो कंपनरूप जो क्रिया है, तिसकों सूक्ष्म करता है.

अथ मन, वचन, कायाके योगोंकों जैसें सूक्ष्म करता है, सो कहते हैं. सो केवली, सूक्ष्मक्रियानिवृत्तिनामक तीसरा शुक्लध्यान ध्याता, अचिंतारमवीर्यकी शक्ति करकें बादरकाययोग स्वभावमें स्थित करकें बादर वचन योग बादर मनोयोग, यह युगलकों सूक्ष्म करता है, तिस पीछें बादरकाय योगको सूक्ष्म करता है, फेर सूक्ष्मकाययोगमें क्षण मात्र रह करकें तत्काल सूक्ष्म वचन, मनोयोग, यह युगलका अपचय करता है. तिस पीछें सूक्ष्म काययोगमें क्षण मात्र रह कर प्रगट सो केवली निजात्मानुभव सूक्ष्मक्रिया चिद्रूपकों स्वयमेवही अपणे स्वरूपका अनुभव करता है, (जानता है.)

अथ जो सूक्ष्मक्रियावाले शरीरकी स्थिति है. सोइ केवलीयोंका ध्यान होता है, अैसी बात कहते हैं. जिस प्रकार करकें छद्मस्थ योगीयों के मनके स्थिरताकों ध्यान कहते हैं, तैसेंही शरीरकी निश्चलताकों केवलीयोंके ध्यान होता है. अथ शैलेशीकरणका आरंभ करने वाला सूक्ष्मकाय योगी जो कुछ करता है, सो कहते हैं. केवलीके ह्रस्वाक्षर पांचके उच्चारण करण मात्र काल जितना आयु शेष रहता है, तब शैलवत् निश्चल कायकों चौथा ध्यानाऽपरिपातरूप शैलेशीकरता होता है. तिस पीछें सो केवली शैलेशीकरणारंभी सूक्ष्मरूप काय योगमेंर हता हुआ शीघ्रही अयोगी गुणस्थानमें जाणेकी इछा करता है.

अथ सो जगवान् केवली सयोगी गुणस्थानके अंत्य समयमें औदारिकद्विक, अस्थिरद्विक, विहायोगतिद्विक, प्रत्येक त्रिक, संस्थान षट्क, अगुरुलघुचतुष्क, वर्णादिचतुष्क, निर्माण, तेजस, कार्मण, प्रथम संहनन, स्वरद्विक, एकतर वेदनीय. यह तीस प्रकृतिका उदय विच्छेद होता है. तब तो इहां अंगोपांगके उदय व्यवच्छेद होनेसें अंत्यांग संस्थानावगाहनासें तीसरे जाग ऊणी अवगाहना करता है, किस कारणसें? अपने प्रदेशोंकों घनरूप करनेसें चरम शरीरके अंगोपांगमें जो नासिकादि छिद्र हैं, तिनकों पूर्ण करता है. तब स्वात्मप्रदेशोंका घनरूप हो जाता है, तिस वास्ते स्वप्रदेशोंका घनरूप होनेसें तीसरा जाग ऊना होता है. सयोगी गुणस्थानस्थ जीव, एकविध बंधक उपांत्य समय तांइ अरु ज्ञानांतराय, दर्शन चतुष्कोदय व्यवच्छेद होनेसें बेंतालीस प्रकृति वेदता है. तथा १ निद्रा, २प्रचला, १२ ज्ञानांतराय दशक, १६ दर्शनचतुष्क रूप सोलां प्रकृतियोंकी सत्ता व्यवच्छेद होनेसें पंचासी प्रकृतिकी सत्ता है ॥इति सयोगी गुणस्थानं ॥१३॥

अथ अयोगी गुणस्थानककी स्थिति कहते हैं. तेरहवे गुणस्थानके अनंतर चौदहवे अयोगी गुणस्थानमें रहते हूए जिनेंद्रकी लघु पंचाक्षर उच्चारणमात्र "अ इ उ ऋ लृ" ये पांच वर्ण उच्चारण करतां जितना काल लगता है, तितनी स्थिति है. यह अयोगी गुणस्थानमें ध्यानका संजव कहते हैं. इहां अनिवृत्ति नामक चौथा ध्यान होता है, इस चौथे ध्यानका स्वरूप कहते हैं. जिस ध्यानमें सूक्ष्मकाययोग रूप क्रियाजी "समुच्छिन्ना" सर्वथा निवृत्त हूइ है, सो समुच्छिन्नक्रियं नाम "चतुर्थ" चौथा ध्यान कहते हैं, कैसा वो ध्यान है? कि मुक्ति महिलका द्वार (दरवाजे)समान है.

अथ शिष्यके करे दो प्रश्न कहते हैं, शिष्य पूछता है कि हे प्रजु! देहके होतें हूआं अयोगी क्यों कर हो सक्ता है? यह प्रथम प्रश्न, तथा जे कर सर्वथा काय योगका अजाव हो गया है, तब देहके अजावसें ध्यान क्यो कर घटेगा? यह दूसरा प्रश्न है.

अथ आचार्य इन दोनों प्रश्नोंका उत्तर देते हैं, आचार्य कहता है कि जो शिष्य! अत्र अयोगी गुणस्थानमें सूक्ष्म काययोगके होतेंजी अयोगी कहते हैं, किस वास्ते? कि १ काययोगके अति सूक्ष्म होनेसें सूक्ष्मक्रिया रूप होनेसें अरु वो काययोग शीघ्रही क्षय होनेवाला है, तथा कायके

कार्य करणेमें असमर्थ होनेसें कायके होतेजी अयोगी है, तथा शरीराश्र य होनेसें ध्यानजी है, इस वास्ते विरोध नहीं. किसके? कि अयोगी गुण स्थानवर्त्ती जगवत् परमेष्ठिके. कैसे परमेष्ठी जगवत्के? कि निज शुद्धात्म चिद्रूप तन्मयपणे उत्पन्न, निर्जर, परमानंद विराजमानके विरोध नहीं.

अथ ध्यानका निश्चय व्यवहारपणा कहते हैं. तत्त्वसें निश्चय नयके मतसें आत्माही ध्याता, आत्माही करणरूप है, आत्माही कर्मरूपताप न्नकों ध्याता है, तिससेंती अन्य जो कुछ उपचाररूप अष्टांग योग प्रवृ त्तिलक्षण, सो सर्वही व्यवहार नयके मतसें जाननां.

अथ अयोगी गुणस्थान वर्त्तीका उपांत्य समयका कृत्य कहते हैं. केवल चिद्रूपमय आत्मस्वरूपका धारक योगी, अयोगी, गुणस्थानवर्त्तीही स्फुट प्रगट उपांत्य समयमें शीघ्र युगपत् समकाल बहत्तरि कर्मप्रकृति क्षय करता है, सो यह है, कि देह पांच, अर्थात् शरीर पांच, बंधन पांच, संघात पांच, अंगोपांग तीन, संस्थान छे, वर्णपंचक, रसपंचक, संहनन षट्क, अथिर षट्क, स्पर्शाष्टक, गंध दो, नीचगोत्र, अगुरुलघुचतुष्क, देवगति, देवानुपूर्वी, खगतिद्विक, प्रत्येकत्रिक, सुस्वर, अपर्याप्त नाम, निर्माणनाम, दोनोंमेंसूं कोइजी एक वेदनी. यह सर्व बहत्तर कर्म प्रकृति, मुक्तिपुरीके द्वारमें अर्गलजूत है, सो उपांत्यसमय द्विचरम समयमें क्षय करता है.

अथ अयोगी अंत समयमें जौनसी प्रकृति क्षय करकें जो कुछ करता है, सो कहते हैं. सो अयोगी अंत समयमें एकतर वेदनी, आदेयत्व, पर्याप्तत्व, त्रसत्व बादरत्व, मनुष्यायु, यशनाम, मनुष्यगति, मनुष्यापूर्वी, सौजाग्य, उच्चगोत्र, पंचेंद्रियत्व, तीर्थंकरनाम. यह तेरां प्रकृति क्षय करकें उसी समयमें सिद्धपर्यायकों प्राप्त होता है. सो सिद्ध परमेष्टी, सनातन जगवान् शाश्वत लोकांतके पर्यंतकों जाता है. तथा अयोगी गुणस्थानस्थ जीव अबंधक है, तथा एकतर वेदनी, आदेय, यश, सुजग, त्रसत्रिक, पंचेंद्रियत्व, मनुष्यगति, मनुष्यायु, उच्चगोत्र, तीर्थंकरनाम, यह बारह प्रकृति वेदता है. अंतके दो समयसें पहिलां पंचासीकी सत्ता रहती है, उपांत्य समयमें तेरह प्रकृतिकी सत्ता रहती है, अरु अंत समयमें सत्ता रहित होता है ॥ इति अयोगी चतुर्दश गुणस्थान स्वरूपं ॥ १४ ॥

आशंकाः—" निःकर्म " (कर्म रहित) आत्मा, तिस समयमें लोकांतमें कैसें जाता है ? इत्याशंक्याह.

समाधानः—सिद्ध, कर्म रहितकी ऊर्ध्वगति होती है, " कस्मात् " किस हेतुसें होती है ? तत्राह ॥ पूर्व प्रयोगसें अचिंत्य आत्मवीर्य करकें उपांत्य दो समयमें पंचासी कर्म प्रकृतिके क्षय करने वास्ते पूर्वे जो व्यापार प्रारंभ कीया था, तिससेंती उर्ध्वगति होती है, यह प्रथम हेतु है. तथा कर्मकी संगति रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह दूसरा हेतु हैं. तथा गाढतर बंधनों करकें रहित होनेसें ऊर्ध्वगति होती है, यह तीसरा हेतु है. तथा कर्म रहित जीवका ऊर्ध्वगमन स्वभाव हैं, यह चौथा हेतु है. यह चार हेतु, चार दृष्टांत करकें सहित कहते हैं. १ जैसें कुंभकारका चक्र पूर्व प्रयोगसें फिरता है, तैसें आत्माकी पूर्वप्रयोगसें ऊर्ध्वगति होती है, २ तथा जैसें माटीके लेपसें रहित होने करकें तूंबेकी जलमें ऊर्ध्वगति होती है, तैसेंही अष्टकर्मरूप लेपकी संगतिसें रहित धर्मास्तिकाय रूप जल करकें आत्माकी ऊर्ध्वगति होती है. ३ तथा जैसें एरंडफल बीजादि बंधनोंसें छुटा हूआ ऊर्ध्वगतिगामी होता है, तैसेंही कर्मबंधके विछेद होनेसें सिद्धकीभी ऊर्ध्वगति होती है. ४ तथा जैसें अग्निका ऊर्ध्व ज्वलन स्वभाव है. तैसेंही आत्माकाभी ऊर्ध्वगमन स्वभाव है.

अथ अधो अरु तिर्यग्गति कर्म रहितको नहीं होती है, यह बात कहते हैं. सिद्धकी आत्मा, कर्म गौरवके अभावसें नीचेको नहीं जाती, तथा प्रेरक कर्मके अभावसें आत्मा, तिर्यग्भी नहीं जाती है, तथा कर्म रहित सिद्ध लोकके उपरभी धर्मास्तिकायके न होनेसें नहीं जाती, क्योंकि ? लोकमेंभी जीव, पुद्गलके चलनेमें धर्मास्तिकाय गतिका हेतु है. मत्स्यादिकोंको जैसेंजल है. सो धर्मास्तिकाय अलोकमें नहीं. इस वास्ते अलोकमें सिद्ध नहीं जाते.

॥ अथ सिद्धोंकी स्थिति ॥ यथा सिद्ध शिलासें उपरि लोकांतमें सिद्ध रहते हैं, सो कहते हैं. ईषत् प्राग्भारानामा सिद्धशिला चौद रज्जुलोकके मस्तकके उपरि व्यवस्थित है, उसको सिद्धोंके निकट होने करकें सिद्धशिला कहते हैं, परंतु सिद्ध कुछ उस शिलाके उपर बैठे हूए नहीं हैं, सिद्धतो उस शिलासें ऊंचे लोकांतमें विराजमान हैं. वो शिला कैसी है ? कि मनोज्ञा मनोहारिणी है, फेर वो शिला कैसी है ? सुरभि कर्पूरसेंभी अ

धिक सुगंधिवाली है, अरु कोमल है, सूक्ष्म है अवयव जिसके. फेर वो शिला कैसी है ? पुण्या, पवित्र, परमजासुरा, प्रकृष्ट तेजवाली है, मनुष्यक्षेत्र प्रमाण लंबी चौमी है, श्वेत छत्रके आकार है, उत्तान छत्राकार है, उसका वक्ता शुज रूप है, वो ईषत् प्रागजारा नामा पृथ्वी सर्वार्थसिद्ध विमानसें बारा योजन उपरि है, अरु वो पृथ्वी, मध्य जागमें आठ योजनकी मोटी है, तथा प्रांतमें घटती घटती मक्षीके पांखसेंजी पतली है, तिस शिलाके उपरि एक योजन लोकांत है, उस योजनका जो चौथा कोस है, उस कोसके छठे जागमें सिद्धोंकी अवगाहना है, सोइ दो हजार धनुष्य प्रमाण कोशके छठे जागमें तीन सौ तेत्तीस धनुष अरु बत्तीस अंगल होता है, उतनी सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहना है.

अथ सिद्धोंके आत्मप्रदेशोंकी अवगाहनाका आकार लिखते हैं. जैसें कुठाली (मूषा) तिसमें मोम जरकें गालियें, तिसके गलनेंसें जो आकाशका आकार है, तैसा सिद्धोंका आकार है.

अथ सिद्धोंके ज्ञान दर्शनका विषय लिखते है. त्रैलोक्योदरवर्त्ती चउदह रज्ज्वात्मक लोकमें जो गुणपर्याय करकें संयुक्त वस्तु है, तिन जीवाजीव पदार्थोंको सिद्धमुक्त जानते हैं, सामान्य रूप करकें देखते हैं, विशेप रूप करकें जानते हैं, क्योंकि वस्तु जो है, सो सर्व सामान्य विशेपात्मक हैं.

अथ सिद्धोंके आठ गुण कहते हैं. १ जिस हेतुसें सिद्धोंको ज्ञानावरण कर्मके क्षय होनेसें केवलज्ञान प्रगट हुआ है, तथा २ सिद्धोंको दर्शनावरण कर्मके क्षय होनेसें दर्शन अनंता हूआ है, तथा ३ सिद्धोंको शुद्ध, सम्यक्त्व चारित्र क्षायिकरूप हूये हैं, किस हेतुसें हुये हैं ? कि दर्शन मोहनीय औ चारित्र मोहनीयके क्षय होनेसें हूये हैं, तथा ४ सिद्धोंको अनंत अक्षयसुख अरु ५ अनंत वीर्य शक्ति हूये हैं, किस हेतुसें हूये हैं ? कि वेदनी कर्मक्षय होनेसें अनंत सुख हूये हैं, अंतराय कर्मके क्षय होनेसें अनंत वीर्य प्रगट हुआ है. तथा ६ सिद्धोंकी अक्षयगति हुइ है, किस हेतुसें ? कि आयुःकर्मके क्षय होनेसें हुइ हैं, तथा ७ नामकर्मके क्षय होनेसें अमूर्तपणा सिद्धको प्रगट जया है, तथा ८ गोत्रकर्मके क्षय होनेसें सिद्धोंकी अनंतावगाहना हैं.

अथ सिद्धोंका सुख कहते हैं, जो सुख, चक्रवर्त्तीकी पदवीका, अरु जो

सुख, इंद्रादि पदवीका है, तिनसेंनी सिद्धोंका सुख अनंत गुणा है, कैसा वो सुख है? कि क्लेश रहित है " अविद्यास्मिता " राग, द्वेष, अभिनिवेश, ए क्लेश हैं, सो जिनमें नहीं. है. फेर कैसा है सुख? " अव्ययं न व्येति स्वस्वनावसेंती इति अव्ययं. "

अथ तिन सिद्ध नगवंतोंने जो पाया है, तिसका सार कहते हैं. सिद्ध नगवंतोंने परम पद पाया है, सो कैसा परम पद पाया है? जो आराधकोंकों आराध्य हैं, सो पद पाया है, तथा जो पद, साधकोंने सम्यग् दर्शनज्ञान चारित्रादि करकें साधीयें हैं, तथा जो पद ध्यायकोंकों ध्येय है, तथा जो पद, सदाही नानाविध ध्यानोपाय करकें ध्याइयें है, तथा जो पद अनव्य जीवोंकों सदा डुर्लन है, अरु कितनेक नव्य जीवोंकोंनी डुर्लन है, अरु डुर्नव्योंकों कष्टसें प्राप्त होता है, ऐसा डुर्लन पद, तिन सिद्ध नगवंतोंने पाया है, सो पद कैसा है? कि तत्परम पद है, चिदानंदमय चिद्रूप परमानंद रूप है.

अथ मुक्तिका स्वरूप कहते हैं. कोइक वादी अत्यंताऽनावरूप मोक्ष मानते हैं, सो बौद्धोंकी मोक्ष है. अरु कोइ वादी जडमयी, ज्ञान अनावमयी मोक्ष मानते है, सो नैयायिक वैशेषिक मत वाले हैं. अरु कोइक वादी मोक्ष हो कर फेर संसारमें अवतार लेनां, फेर मोक्षरूप हो जानां, ऐसी मोक्ष मानते हैं, सो आजीवका मतवाले हैं? अरु कोइ तो क्लिष्ट कर्म करकें विषय सुखमय मोक्ष मानते हैं. वे कहते हैं, कि मोक्षमें नोग करने वास्ते वहुत अप्सरा मिलती हैं, औ खाने पीनेकों वहुत वस्तु मिलती है, तथा पान करनेकों वहुत अछी मदिरा मिलती है, औ रहनेकों सुंदर वाग मिलता है इत्यादि तथा कोइक वादी कहते हैं कि मोक्ष, जीवकी कदापि नहीं होती है, यह जैमिनी मुनिका मत है. तथा कोइ खरूज्ञानी ऐसें कहते हैं कि जो वेदोक्त अनुष्टान करता है, वो सर्वथा उपाधि रहित तो नहीं होता, परंतु शुन पुण्यफलसें सुंदर देह पा कर ईश्वर के साथ मिल कर कितनेक कल्पों लगि सुख नोग करता है, जहां इछा होवे, तहां उड कर चला जाता है. फेर संसारमें जन्म लेता है, फेर पूर्ववत् सुखनोग करता है, इसी तरें अनादि अनंतकाल लगि करता रहेगा, परंतु एक जगे स्थित न रहेगा, ऐसी मोक्ष कहता हैं. अरु सर्वज्ञ अर्हंत परमेश्वरनें तो सतूरूप, ज्ञानदर्शनरूप, तथा असारनूत जो यह संसार

है, तिस्सें सारनूत, निस्सीम आत्यंतिक सुखरूप, अनंत, अतींद्रियानंद अनुनवस्थान, अप्रतिपाति, स्वस्वरूपावस्थानरूप, मोक्ष कही है ॥ यह बृहद्गछीय श्रीवज्रसेनसूरिके शिष्य श्रीहेमतिलकसूरिपट्टप्रतिष्ठित श्रीरत्नशेखरसूरिने चौदह गुणस्थानकका स्वरूप लिखा है, तिसके अनुसारें नाषामय किंचित् गुणस्थानकस्वरूप, मैंनें लिखा है.

प्रश्नः—हे जैन! तुमने सर्ववादीयोंकी कही हुइ मोक्षकों तो अनुपादेय समजी, अरु अर्हंतकी कही हुइ मोक्ष उपादेय समजी, इनमें क्या हेतु है?

उत्तरः—हे नव्य! इन सर्व वादीयोंकी मोक्ष, पीछें षट् दर्शनके निरूपणमें लिख आये हैं, सो जान लेनी. क्यो कि इन वादीयोंकी कही मोक्ष ठीक नहीं. कारण कि जब अत्यंताऽनावरूप मोक्ष होवे, तब तो आत्माहीका अनाव हो गया, तो फेर मोक्षफल किसकों होवेगा? ऐसा कौन है जो आत्माके अत्यंतानाव होनेमें यत्न करे? तथा जो ज्ञानानावकों मोक्ष मानते हैं, सोनी ठीक नहीं. क्यों कि जब ज्ञानही न रहा, तब तो पाषाण नी मोक्षरूप हो गया, तो ऐसा कौन प्रेक्षावान् है, जो अपणी आत्माकों जड पाषाण तुल्य बनानां चाहे? तथा जो सर्व व्यापी आत्माकों मोक्ष मानते हैं, अर्थात् जब आत्माकी मोक्ष होती है, तब आत्मा सर्व व्यापी मोक्षरूप होती है, यह नी कहनां प्रमाणानजिज्ञ पुरुषोंका है, क्योंकि आत्मा किसी प्रमाणसेंनी सर्वलोकव्यापी सिद्ध नहीं हो सक्ती है, इसकी विशेष चर्चा देखनी होवें. तदा स्याद्वादरत्नाकरावतारिका देख लेनी. तथा जो मोक्ष हो कर फेर संसारमें जन्म लेनां फेर मोक्ष होनां, यह तो मोक्षनी काहेकी? यह तो नांडोंका सांग हूआ, इस वास्ते यहनी ठीक नहीं. अरु जो मोक्षमें स्त्रीयोंके नोग मानते हैं, सो विषयके लोलुपी हैं, तथा जो खरूज्ञानीने मोक्ष कही है, सो अप्रामाणिक है, किसी प्रमाणसें सिद्ध नहीं है. इस वास्ते जो अर्हंत सर्वज्ञने मोक्ष कही है, सो निर्दोष है. इति संक्षेपसें ज्ञानस्वरूप कहा ॥ इति श्रीतपगछीये मुनिश्री बुद्धिविजय गणि मणिविजय तच्छिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे धर्मतत्त्वनिरूपणाधिकारे चतुर्दश गुणस्थान ज्ञाननिर्णयनामा षष्ठः परिछेदः संपूर्णः ॥ ६ ॥

॥ अथ सप्तम परिच्छेद प्रारंभः ॥

यह परिच्छेदमें सम्यग्दर्शनका स्वरूप लिखते हैं. इन सम्यग् दर्शनका स्वरूप कछुक उपर लिखभी आये है. तोभी भव्य जीवोंके जानने वास्ते कछुक सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं. यह सम्यक्त्वके दो भेद हैं. एक व्यवहार सम्यक्त्व, अरु दूसरा निश्चयसम्यक्त्व, जो यथार्थतत्त्वरूप विज्ञानपूर्वक रुचि है, तिसका नाम सम्यक्त्व कहते हैं. सो सम्यक्त्व, तीन तत्त्वकी यथार्थ रुचि होनेसें होता है, सो तीन तत्त्व यह हैं, कि एक देव तत्त्व, दूसरा गुरुतत्त्व, तीसरा धर्मतत्त्व. इनकेविषे श्रद्धा (प्रतीति) जो पुरुष करे, सो सम्यक्त्ववान् होता है. तिस श्रद्धाके दो भेद है. एक व्यवहार, दूसरा निश्चय. इन दोनों श्रद्धायोंमें प्रथम व्यवहार श्रद्धाका स्वरूप लिखते हैं.

व्यवहारश्रद्धामें देव तो श्री अरिहंत जिसका स्वरूप, प्रथम परिच्छेदमें लिख आये हैं; सो सर्व इहां जान लेनां. तथा तिस अरिहंतके चार निक्षेप अर्थात् स्वरूप है सो कहते हैं. १ नामनिक्षेप, २ स्थापननानिक्षेप, ३ द्रव्यनिक्षेप, ४ भावनिक्षेप. इन चारोंका स्वरूप विस्तार पूर्वक देखनां होवे, तदा विशेषावश्यक देख लेनां. तिनमें प्रथम, नाम अर्हंत, सो "नमो अरिहंताणं" ऐसा कहनां, इस पदका जाप करकें अनेक जीव संसार समुद्रकों तर गये हैं. तथा दूसरा स्थापनानिक्षेप, सो अरिहंतकी प्रतिमा समस्त दोषके चिन्होंसें रहित, सहज, सुभग, समचतुरस्रसंस्थानवाली, पद्मासन, तथा कायोत्सर्गमुद्रारूप जो जिनबिंब, तिसकों देख कर तिसकी सेवा, पूजा करकें अनंत जीव मोक्षकों प्राप्त हूये हैं.

प्रश्नः—अरिहंतकी प्रतिमाकों पूजणी, तथा उसकों नमस्कार करणी, औ स्थापना, निक्षेप, मान कर मुक्तिकी दाता समझणी, यह निःकेवल मूर्खताइके चिन्ह है, क्यों कि प्रतिमा जडरूप क्या दे सक्ती है ?

उत्तरः—हे भव्य ? तूं किसी शास्त्रकों परमेश्वरका रचा हूआ मानता है, या नहीं ? जे कर तूं शास्त्रकों परमेश्वरका वचन मानता है, अरु उस शास्त्रकों सच्चा संसार समुद्रसें पार उतारने वाला मानता है, तब जिन प्रतिमाके माननेमें क्यों लज्जा करता है ? क्योंकि जैसा शास्त्र जडरूप है, उसमें स्याही अरु कागज रूप वर्जके और कुछभी नहीं है, तैसी जि

नप्रतिमाजी है, जे कर कहोगे कि कागजां उपर स्याहीके अक्षर संस्थानसंयुक्त लिखे जाते हैं, उनके वांचनेंसें परमेश्वरका कहनां मालुम हो जाता है, तब इसी तरें परमेश्वरकी मूर्त्ति देखनेसेंजी परमेश्वरका स्वरूप मालुम होता है.

प्रश्नः—प्रतिमाके देखनेंसें अर्हत स्वरूप तो स्मरण होता है, परंतु प्रतिमाकी जक्ति करनेसें क्या लाज है?

उत्तरः—शास्त्रके श्रवण करनेसें परमेश्वरके वचन तो मालुम हो गये, तो जी जक्त जन जैसें शास्त्रकों उच्चस्थानमें रखते हें. कोइ शिर ऊपर ले कर फिरते हें, कितनेक गलेमें लटका रखते हें, औ कितनेक मंजी उपर, कितनेक चौकी आदि उपर शास्त्रोंकों सुंदर सुंदर रुमालोंमें लपेटके रखते हें, औ नमस्कारादि करते हें, औसेंही जिनप्रतिमाकी जक्ति, पूजाजी जान लेनी.

प्रश्नः—जैसें पत्थरकी गायसें दूधकी गरज पूरी नहीं होती है, औसें प्रतिमासेंजी कोइ गरज पूरी नहीं होती, तो फेर प्रतिमाकों काहे कों माननां चाहियें?

उत्तरः—जैसें कोइ पुरुष मुखसें गौ, गौ, सच्ची गौ कहता है, उस कहनेंसें उसका बरतन क्यां दूधसें जर जाता है? अर्थात् नहीं जरता है. औसें परमेश्वरके नाम लेने और जाप करनेंसेंजी कुछ नहीं मिलता. इस वास्ते परमेश्वरका नामजी न लेनां चाहियें.

प्रश्नः—परमेश्वरका नाम लेनेसें तो हमारा अंतःकरण शुद्ध होता है.

उत्तरः—औसेंही श्रीजिनप्रतिमाके देखनेसेंजी परमेश्वरके स्वरूपका बोध होता है, तातें अंतःकरणकी शुद्धि इहांजी तुल्यही है.

प्रश्नः—परमेश्वरके नाम लेनेसें पुण्य है, तो फेर प्रतिमा काहेकों पूजनी?

उत्तरः—नामसें औसें शुद्धपरिणाम नहीं होते, जैसे स्थापना देखनेसें होते हैं. क्यों कि? जैसें किसी सुंदर यौवनवंती स्त्रीका नाम लेनेसें राग जागता है, अरु जब उस सुंदर यौवनवती स्त्रीकी मूर्त्ति प्रगट सर्वाकार वाली सन्मुख देखीयें, तब अधिकतर विषयराग उत्पन्न होता है, इसी वास्ते श्रीदशवैकालिकसूत्रमें लिखा है, 'चित्तत्तिं न निज्झाए नारी वासुलंकियं" अर्थात् स्त्रीके चित्रामकी जींत देखेसेंजी विकार उत्पन्न होवेगा. यह बात तो प्रगट (प्रसिद्ध) है, कि रागीकी मूर्त्ति देखनेंसें राग उत्पन्न हो

ता है, तथा कोक शास्त्रोक्त स्त्री पुरुषके विषय सेवनके चौरासी चिन्ह देखनेसें तत्काल विकार उत्पन्न होता है. ऐसेंही निर्विकार स्थापनारूप शांतमुद्रा, श्रीवीतरागकी देखनेसें निर्विकार शांतिभाव उत्पन्न होता है, ऐसा नाम लेनेसें नहीं होता है.

प्रश्नः– जैसें किसी स्त्रीके भर्त्तारका नाम देवदत्त है, सो जब देवदत्त मरगया, तब तिसकी स्त्रीने अपने भरतार देवदत्तकी मूर्त्ति बनाइ है, उस मूर्त्तिसें उस स्त्रीका सुहाग तथा संतानोत्पत्ति तथा काम इछा नहीं होती है, इसी तरें भगवान्की मूर्त्तिसेंभी कुछ लाभ नहीं है.

उत्तरः–देवदत्तकी स्त्री देवदत्तके मरे पीछें आसन बिछाय कर देवदत्तके नामकी माला फेरे, तब उस स्त्रीका सुहाग नहीं रहता, तथा भरतारका नाम लेनेसें संतानोत्पत्तिभी नहीं होती? तथा कामेछाभी पूरी नहीं होती? इसी तरें जो कहोंगे तब तो भगवान्के नाम लेनेसेंभी कुछ सिद्धि नहीं होगी. इस दृष्टांतसें तो भगवान्का नामभी न लेनां चाहियें.

प्रश्नः–प्रतिमा तो कारीगर बनाता है, उस कारीगरकोंभी पूजना चाहियें

उत्तरः–वेदादि शास्त्रकोंभी लिखारी लिखते हैं, उनकोंभी पूजनां चाहियें? तथा साधुके मात पिताकोंभी साधुसें अधिक पूजनां चाहियें.

प्रश्नः–स्थापना कोइभी इस कालमें बुद्धिमान् नहीं मानता है.

उत्तरः–बुद्धिमान् तो सर्व मानते हैं. परंतु मूर्ख नहीं मानते हैं.

प्रश्नः–कौनसें बुद्धिमान् स्थापना मानते है? तिनोंका नाम लेनां चाहियें.

उत्तरः–प्रथम तो सांसारिक विद्यावाले सर्व बुद्धिमान्, भूगोल, खगोल, द्वीप, अर्थात् युरोपखंडमें विलायत प्रमुखका चित्र सर्व स्थापनारूप मानते हैं. और बनाते हैं, तथा जो ककार आदि अक्षर हैं, वे सर्व पुरुषके (ईश्वरके) शब्दकी स्थापना करते हैं, तथा जैनीयोंके मतमें एक सौ आठ मणिये. मालामें रखते हैं, परंतु अधिक न्युन नहीं रखते हैं, इसका हेतु यह है, कि जैन, बारह गुण तो अरिहंत पदके मानते है. अरु आठ गुण. सिद्ध पदके मानते हैं, तथा छत्तीस गुण, आचार्यपदके मानते हैं, तथा पच्चीस गुण. उपाध्याय पदके मानते हैं, तथा सत्ताइस गुण. मुनि साधु पदके मानते हैं. यह सर्व मिल कर एक सौ आठ गुण होते हैं. इस वास्ते जैनीयोंके मतमें मालामें जो मणिये हैं, सो एकेक मणिया एके

क गुणकी स्थापना है. यह मालाजी स्थापना है, इसी तरे दूसरे मतो मेंजी जो माला तसबी है, सो सर्व किसीनकिसी वस्तुकी स्थापना है. नहीं तो एक सौ आठ तथा एक सौ एकका नियम न चाहियें. तथा पादरी लोकोंकीजी ठापी हुइ पुस्तकोंके उपर ईशामसीहकी मूर्त्ति उस बखतकी ठापी हुइ है, जिस अवसरमें मसीहकों शूली उपर देनेकों ले जाते थे, उस मूर्त्तिके देखनेसें ईशामसीहकी अवस्था सर्व मालुम होती है, बस स्थापनाका यही तो प्रयोजन है, कि जो उसके देखनेसें असली वस्तुका स्वरूप याद (स्मरण) हो जाता है. आश्चर्य तो यह है कि अब (इस कालमें) कितनेक तुच्छबुद्धिवाले अपनी बनाई पुस्तकमें यज्ञशाला तथा यज्ञोपकरणकी स्थापना अपणे हाथोंसें करकें अपणे शिष्योंकों जनाते हें, जो यज्ञोपकरण इस आकृतिके चाहियें, फेर कहते है कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हें. अब विचार करनां चाहियें कि इनसेंजी कोइ अधिक मूर्ख जगत्में है? जो आप तो स्थापना करते हैं अरु फेर कहते हैं कि हम स्थापनाकों नहीं मानते हें, इस वास्ते जो पुरुष अपने शास्त्रके उपदेशककों देहधारी मानेगा, वो अवश्य उसकी मूर्त्तिकूंजी मानेका अरु जो अपणे शास्त्रके उपदेष्टाकों देह रहित मानते हें, वेजी थोडी बुद्धि वाले हें. क्योंकि जिसके देह नहीं, वो शास्त्रका उपदेष्टा कदापि नहीं हो सक्ता है, कारण कि देह रहित होनां अरु शास्त्रका उपदेश देने वालाजी होनां, इस बातमें कोइजी प्रमाण नहीं है. अरु निराकार सर्वव्यापी परमेश्वरका ध्यानजी कोइ नहीं कर सक्ता है. जेसें आकाशका ध्यान नहीं हो सक्ता है, इस वास्ते अठारह दूषणसें रहित जो परमेश्वर है, तिसकी मूर्त्ति अवश्य माननी पूजनी चाहियें. सो ऐसा देव तो अर्हंतही है, इस वास्ते अर्हंतकी प्रतिमा माननी चाहियें. परंतु किसी दुर्बुद्धिके कुहेतुओंसें गेरनी न चाहियें ॥ इति स्थापना निक्षेप दूसरा.

अब तीसरा द्रव्यनिक्षेप, सो जिस जीवने तीर्थंकर नामकर्मका निकाचित बंध कीना है, तिस जीवमें जावि गुणोंका आरोप अर्थात् ऐसा आगेकों तीर्थंकर जगवान् होवेगा ! ऐसा वर्त्तमानमें आरोप करकें वंदन (नमस्कार) पूजन करकें, अनेक जीव, मोक्षकों प्राप्त हूये हें.

चौथ जावनिक्षेप, सो जो वर्त्तमान कालमें सीमंधर प्रमुख तीर्थंकर

केवलज्ञानसंयुक्त समवसरणमें विराजमान भव्यजीवोंके प्रतिबोधक चतु र्विध संघके स्थापक, सो भाव अर्हंत इनके चरण कमलकी सेवा करकें अनेक जीव मोक्ष होते हैं, यह भावनिक्षेप है. यह चार निक्षेप करकें संयुक्त, ऐसा जो अरिहंत देवाधिदेव, महा गोप, महा माहण, महा निर्याम क, महा सार्थवाह, महा वैद्य, महा परोपकारी, करुणासमुद्र, इत्यादि अनेक उपमा लायक सो भव्य जीवोंके अज्ञानांधकार दूर करणेंकों सूर्य समान, प्रमाण करकें अविरोधि जिसके वचन हैं. औ मुनिमनमोहन, योगीश्वर, चिदानंद घनरूप, ऐसें अरिहंतकों मैं देव, अर्थात् परमेश्वर करिकें मानता हूं, तिसकी सेवा करुं, तिसकी आज्ञा शिर धरुं, ऐसा जो माने, सो प्रथम व्यवहार शुद्ध देवतत्त्व है.

दूसरा निश्चयशुद्ध देवतत्त्व कहते हैं. जो शुद्धात्मस्वरूपकों अनुभव करनां, सो शुद्धात्मस्वरूपही निश्चयदेवतत्त्व है, कैसा है वो आत्मस्वरू प? कि पांच वर्ण, दो गंध, पांच रस, आठ स्पर्श, शब्द, क्रिया, इनोंसें रहित, तथा योगसें रहित, अतींद्रिय, अविनाशी, अनुपाधि, अबंधी, अक्लेशी, अमूर्त्ति, शुद्ध चैतन्य, ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनंत गुणों का भाजन, सच्चिदानंदस्वरूपी ऐसी मेरी आत्मा है, सोइ निश्चयदेव है.

अथ दूसरा गुरुतत्त्व कहते हैं. तिसकेभी दो भेद हैं, एक शुद्ध व्यव हारगुरु, दूसरा शुद्ध निश्चयगुरु. उसमें शुद्ध व्यवहारगुरुका स्वरूप तो गुरु तत्त्वनिरूपण परिछेदमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां, ऐसें सा धुकों गुरु करकें माने. ऐसें गुरुकी आज्ञासें प्रवर्त्ते, ऐसें मुनिकों पात्र बु द्धि करकें शुद्ध अन्नादिक देवे. इति व्यवहार शुद्ध गुरुतत्त्वं। तथा नि श्चय गुरु तत्त्व तो शुद्धात्म विज्ञानपूर्वक है, जो हेयोपादेय उपयोगयुक्त परिहार प्रवृत्तिज्ञान, सो निश्चयगुरुतत्त्व है.

अथ तीसरा धर्मतत्त्व, कहते हैं. धर्मतत्त्वकेभी दो भेद हैं, एक व्यव हारधर्मतत्त्व, दूसरा निश्चयधर्मतत्त्व. तिनमें जो व्यवहाररूप धर्म है, सो दयामुख्य है. क्यों कि जो सत्यादि व्रत हैं, सो सर्व दयाकी रक्षा वास्ते हैं, इस वास्ते दयाका स्वरूप लिखते हैं. यह दयाके आठ भेद हैं, सो क हते हैं. १ द्रव्यदया, २ भावदया, ३ स्वदया, ४ परदया, ५ स्वरूपदया, ६ अनुबंधदया, ७ व्यवहारदया, ८ निश्चयदया.

१ तहां द्रव्यदया उसकों कहते हें, कि जो यत्न पूर्वक सर्व काम करणां, यह तो जैनमतवालेके कुलका धर्म हे, सर्व जैन लोक, पाणी ग़ान के पीते हें, औ अन्न शोधके खाते हें, जे कर कोइ जैनी ठल (कपट) करता हे, झूठ बोलता हे, औ विश्वासघात करता हे, वो पापी जीव हे, सो जैनमतकों कलंकित करता हे, वो सर्व उस जीवकाही दोष हे, परंतु उसमें जैनधर्मका कुछ दोष नहीं हे, जैनधर्म तो असा पवित्र हे, कि जिसमें कोइज्ञी अनुचित उपदेश नहीं हे, यह बात सर्व सुज्ञ जनोंकों विदित हे, इस वास्ते जो काम करणां, सो यत्नपूर्वक जीवरक्षा करकें करणां, सो द्रव्यदया हे.

२ दूसरी ज्ञावदया हे, सो दूसरे जीवोंके गुणप्राप्ति वास्ते तथा दुर्गति पमतेकों रक्षण वास्ते, अंतःकरणमें अनुकंपा बुद्धि संयुक्त जो परजीवकों हितोपदेश करनां, सो ज्ञावदया हे.

३ तीसरी स्वदया हे, सो अपणी आत्मा अनादि कालसें मिथ्यात्व अशुद्ध उपयोग, अशुद्ध श्रद्धानपूर्वक अशुद्ध प्रवृत्ति, कषायादि ज्ञावशस्त्रों करी समय समयमें आत्माके ज्ञानादि गुणोंकी घातरूप ज्ञावप्राणोंकी हिंसा होती हे, असें जिनवचन सुननेसें पूर्वोक्त ज्ञाव शस्त्रोंका त्याग करकें स्वसत्तामें प्रवृत्ति करकें शुद्धोपयोग धारकें विषय कषायोंसें दूर रहनां, अरु शुज्ञ, अशुज्ञ कर्मफलके उदयमें अव्यापक रहनां, अर्थात् सुखदुःखमें हर्ष विषाद न करणां, प्रतिक्षण अशुज्ञ कर्मके निदान दूर करणेकी जो चिंता, तिसका नाम स्वदया हे. इस स्वदयाकी रुचि वाला जीव अपनी परिणति शुद्ध करने वास्ते जिनपूजा, तीर्थयात्रा, रथयात्रा प्रमुख शुज्ञ प्रवृत्ति करे, जिन गुण गावे, बहुमान करकें असत् प्रवृत्तिसें चित्तकों हटा करकें तत्त्वालंबी करे, पुद्गलावलंबीपणां हटावे, इस शुज्ञाश्रवमें यद्यपि देखनेमें कितनेक जीवोंकी हिंसा दीख पमती हे, तोज्ञी आत्माकी अशुद्ध परिणति मिटनेसें आत्मा गुणग्राही हो जाती हे, जब गुणग्राही जइ, तब ज्ञानवान् हो गइ. इस वास्ते सर्व साधक जीवोंकों यह स्वदया परम साधन हे, इस स्वदयाके वास्ते साधुज्ञी नवकल्पी विहार करते हें, औ उपदेश देते हें, चर्चा करते हें, तथा पूजन, प्रतिलेखन करते हें, यद्यपि नदी नाले उतरने पडते हें, तहां योगोंकी चपलतासें आश्रव होता हे, तोज्ञी

चेतन स्वरूपानुयायी रहता है, जिनाज्ञा पालता है, औ कषायस्थान मंद करता है, स्वछंदता दूर करता है, तथा धर्मप्रवृत्तिकी वृद्धि करता है, यह स्वदयाके वास्ते शुन्नाश्रव साधुन्नी अपणे कल्प प्रमाणे आचरण करता है, परंतु यह आश्रव साधकदशामें बाधक नहीं है ॥ इति स्वदया ॥

४ चोथी परदया, सो जो छे कायके जीवोंकी रक्षा करणी, जहां स्वदया है, तहां परदया तो नियम करकें है, अरु जहां परदया है, तहां स्वदयाकी नजना है, अर्थात् होवेन्नी, नहींन्नी होवे.

५ पांचमी स्वरूपदया, सो जो इहलोक परलोकके विषयसुख वास्ते तथा लोकोंकी देखा देखी करकें जीवरक्षा करे, यह स्वरूप दया है. इस दयासें विषय सुख तो मिल जाते हैं. परंतु मेंडुक चर्णवत् संसारकी वृद्धि हो जाती है, यह देखनेमें तो दया है, परंतु नावें हिंसाही है.

६ छठी अनुबंधदया, सो श्रावक वडे आडंबरसें मुनिकों वंदना करनेकों जावे, तथा उपकार बुद्धिसें दूसरे जीवोंकों सन्मार्गमें लाने वास्ते आक्रोश (ताडनादि) करे, कोइकों शिक्षा देवे. यहां देखनेमें तो हिंसा है परंतु अंतमें स्वपरकों लान्नका कारण है, इस वास्ते ये दया है. जैसें साधु, आचार्य, अपणे शिष्य शिष्यणीयोंकों शिक्षा देता है, किसीकों नूल याद करता है, तथा किसीकों अनुचित कामसें मना करता है, किसीकों एक वार कहता है, अरु किसीकों वारंवार शिक्षा देता है, किसी उपर क्रोध न्नी करता है, शासनके प्रत्यनीककों अपणी लब्धिसें दंड देता है, इत्यादि कामोंमें यद्यपि हिंसा दीखती है, तोन्नी फल दयाका है. इती अनुबंधदया.

७ सातमी व्यवहारदया. सो विधिमार्गानुयायी जीवदया पाले, सर्व क्रिया कलाप उपयोग पूर्वक करे. सो व्यवहार दया है.

८ आठमी निश्चयदया, सो शुद्ध साध्य उपयोगमें एकत्व नाव, अन्नेदोपयोग साध्यनावमें एकताज्ञान. सो नावदया. इस दयासेंती उपरिले गुणस्थानोंमें जीव चढता है. तिस वास्ते उत्कृष्ट है. इत्यादि अनेक प्रकारसें दयाके स्वरूप. विज्ञानपूर्वक सूत्र. निर्युक्ति. नाष्य, चूर्णी. वृत्ति. इस पंचांगीसम्मत प्रत्यक्षादि प्रमाणपूर्वक नैगमादिनय. नामादि निक्षेप, सप्तनंगी. ज्ञाननय. क्रियानय. तथा निश्चयव्यवहारनय, तथा द्रव्यार्थिक, पर्यायार्थिक. इत्यादि उन्नय नावमें यथायोग्य अर्पित, अनर्पित नयनिपु

णतासें मुख्य गौण जावें उजयनयसम्मत, शुद्धस्याद्वादशैली विज्ञानपूर्वक, श्रीसिद्धांतोक्त दान, शील, तप, जावनारूप शुज प्रवृत्ति, तिसका नाम शुद्ध व्यवहारधर्म कहियें हैं.

तथा दूसरा निश्चयधर्म, सो अपणी आत्माकी आत्मताकों जाणे, औ वस्तुके स्वजावकों जाणे कि जो मेरी आत्मा है, सो शुद्ध चैतन्यरूप, असंख्यातप्रदेशी, अमूर्त्ति, स्वदेहमात्रव्यापी, सर्व पुजलोंसें जिन्न अखंड, अलिप्त, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सुख, वीर्य, अव्याबाध, सत्चिदानंदादि अनंत गुणमयी, अविनाशी, अनुपाधि, अविकारी, असी मेरी आत्मा है, सोइ उपादेय है. इससें विलक्षण जो परपुजलादिक सो मेरे नहीं, तिस पुज लके पांच विकार हैं, १ शब्द, २ रूप, ३ रस, ४ गंध, ५ स्पर्श. इन पांचों के उत्तर जेद अनेक हैं. इस लोकाकाशमें जो उद्योत, तथा अंधकार, तथा जो शब्द है, तथा सर्व रूपी वस्तुकी जो गया, रत्नकी कांति, शीत, धूप, नानाप्रकारके रूप, रंग, संस्थान, औ नाना प्रकारके सुगंध, उर्गंध, नाना प्रकारके रस, तथा सर्व संसारी जीवोंकी देह, जाषा, औ मनके विकल्प, दश प्राण, छे पर्याप्ति, हास्य, रति, अरति, जय, शोक, जुगुप्सा, औ खुशी, उदासी, कदाग्रह, हठ, लमाइ, क्रोधादि चार कषाय तथा शाता, अशाता, उंच, नीच, निद्रा, विकथा, तथा सर्व पुण्यप्रकृति, सर्व पापप्रकृति, तथा रीज, मोज, खीजना, खेद, तथा छे लेश्या, लाजालाज, यश, अपयश, मूर्ख, चतुरता, स्त्री, पुरुष, नपुंसक वेद, कामचेष्टा, गति, जाति, कुल. इत्यादि आठ कर्मका विपाक फल, यह सर्व वार्तो जीवके अनुजवसें सिद्ध हैं, अरु सूक्ष्मपुजल, इंद्रिय अगोचर है, सो परमाणु आदि लेकें अनेक तरेंका है, इस पूर्वोक्त पुजलके संयोगसें जीव चारों गतिमें जटकता है. यह पुजल, मेरी जाति नहीं, इस पुजलका मेरे साथ कोइ वास्तव संबंध नहीं, औ यह पुजल सर्व त्यागने योग्य है, जो इस पुजलका संसर्ग है, सोइ संसार है, तथा इस पुजलकी संगतिसें ज्ञान, दर्शन, चारित्रादि गुण विगड जाते हैं, जो यह पुजल, द्रव्यकी रचना है, सो मेरी आत्माका स्वजाव नहीं, तथा धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, काल, यह चारों द्रव्य ज्ञेय रूप हैं, इनसेंजी मेरा स्वरूप अन्य है, अरु और जो संसारी जीव हैं, सो सर्व अपणी अपणी स्वजाव सत्ताके स्वामी.

हैं, सो मेरे ज्ञानमे ज्ञेय रूप है, परंतु मैं इन सर्वसें अन्य हूं, ये मेरे नहीं हैं, मैं इनका नहीं, मैं इनका साथीभी नहीं, औ मैं अपणे स्वरूपका स्वामी हूं, मेरा स्वभाव सम्यग् दर्शन, ज्ञान, चारित्ररूप है, वर्णरहित, तथा गंध रहित, रस रहित, चैतन्य गुण, अनंत अव्याबाध, अनंत दान, लाभ, भोग, उपभोग वीर्यादिक अनंत गुण स्वरूप है. तिनकी श्रद्धा भासन पूर्वक गुणस्वादिक रूप चिदानंद घन मेरा स्वभाव है, ऐसा जो मेरा पूर्णानंद स्वभाव, तिसके प्रगट करणे वास्ते सर्वशुद्ध व्यवहारनय निमित्तमात्र है, परंतु मुख्य तो मेरा स्वभाव जो है, तिसहीमें जो रमणता करणी, सोइ शुद्ध साधन है, सोइ धर्म है, यह निश्चय धर्म स्वरूप जाननां॥ इति धर्मतत्त्व तीसरा

इन तीनो तत्त्वोंकी जो श्रद्धा, निश्चल परिणतिरूप, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं. अरु जिस जीवकों इतना बोध न होवे, वो जीव जे कर ऐसें मनमें धारे, पक्षपात न करे, "तं सव्वं निस्संकं, जं जिणेहिं पवेइयं इत्यादि जो जिनेश्वर देवोने कह्या है अर्थ, सो सर्व निःशंकित सत्य है, ऐसी तत्त्वार्थ श्रद्धाकोंभी सम्यक्दर्शन सम्यक्त्व कहते हैं, इस्सें जो विपरीत होवे, तिसकों मिथ्यात्व कहते हैं, इस मिथ्यात्वका स्वरूप नव तत्त्वमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां, इस मिथ्यात्वकों त्यागे, तिसकों सम्यक्त्व कहते हैं. इति व्यवहार सम्यक्त्व स्वरूपं संपूर्ण ॥

अथ निश्चय सम्यक्त्वका स्वरूप लिखते हैं. जो पूर्वे निश्चय देव, गुरु, और धर्मका स्वरूप कह्या है, सोइ निश्चयसम्यक्त्व है. चार अनंतानुबंधी, सम्यक्त्व मोह, मिश्रमोह, अरु मिथ्यात्व मोह, इन सातों प्रकृतिका उपशम करे, तथा क्षयोपशम करे, तथा क्षय करे, तिस जीवकों निश्चय सम्यक्त्व होती है. परंतु निश्चय सम्यक्त्व परोक्ष ज्ञानविषय नहीं. केवली जान सक्ता है, जो इसके निश्चय सम्यक्त्व है, इस सम्यक्त्वके प्रगट भये जीव नरक अरु तिर्यंच इन दोनों गतिका आयु नहीं बांधता है ॥ इति निश्चय सम्यक्त्वं संपूर्ण ॥

अथ सम्यक्त्वकी करणी लिखते हैं, नित्य योगवाइके मिले, अरु शरीरमें कोइ विघ्न न होवे, तब जिनप्रतिमाका दर्शन करिकें पीछेसें भोजन करे, जे कर जिनप्रतिमाका योग न मिले, तो पूर्वदिशि तरफ मुख करकें वर्त्तमान तीर्थंकरोंका चैत्यवंदन करे, अरु जे कर रोगादि कोइ विघ्नसें दर्शन

न होवे, तो जिसका आगार है, उनका नियम नहीं टुटता है, अरु जग वान्के मंदिरमें मोटी दश आशातना न करे, यह दश आशातनाका नाम कहते हैं. १ तंबोल पान, फल, प्रमुख सर्व खानेकी वस्तु जगवान्के मंदिरमें न खावे, २ पाणी, दूध, ठास, अर्क प्रमुख पीवे नहीं, ३ जिनमंदिरमें वेठके जोजन न करे, ४ जूती प्रमुख मंदिरके अंदर न ल्यावे, ५ स्त्रीकसें मैथुन सेवे नहीं, ६ जिनमंदिरमें शयन न करे, ७ जिनमंदिरमें थूके नहीं, ८ जिनमंदिरमें लघुशंका न करे, ९ जिनमंदिरमें दिशा न जावे, १० जिनमंदिरमें जूआ, चोपट, सतरंज प्रमुख न खेले, ये दश आशातना टाले, तथा उत्कृष्टी चोरासी आशातना वर्जे तथा एक मासमें इतना फूलसेरादि चढाउं. एक मासमें इतना आदि घृत देउं, (चढाउं) एक वर्षमें इतना अंगलूहणां चढाउं, वर्षमें इतना केशर, इतना चंदन, इतना जीमसेनी वरास, कर्पूर प्रमुख जगवान्की पूजा वास्ते खरच करुं, अपने धनके अनुसारें वर्ष प्रति धूप अगरवत्ती, कर्पूर, चढाउं. वर्षमें अष्ट प्रकारी सत्तरे प्रकारी इतनीयां पूजा कराउं तथा करुं, औ वर्षमें इतना रूपैया साधारण द्रव्य में खरचुं, वर्षप्रति पूजावास्ते इतना द्रव्य खरचुं, दिन दिन प्रति एक नवकरवाली, अर्थात् माला, पंच परमेष्ठिमंत्रकी मोक्षनिमित्त जाप करुं, जेकर कोइ दिन न जपणां हो जोवे, तो अगले दिन दूणा जाप करुं, परंतु रोगादि कारणें आगार है, दिन प्रति समर्थ होतें नमस्कार सहित, अर्थात् दो घडी दिन चढे तक चार आहारका प्रत्याख्यान करुं, रात्रिमें दुविहार प्रत्याख्यान करुं, औ रस्ते चलते रोगादि कारणसें न होवे, तो आगार. वर्ष प्रति इतना साधर्मिवात्सल्य करुं, (साधर्मि जिमावुं) इस रीतीसें सम्यक्त्व पालुं, अरु सम्यक्त्वके पांच अतिचार टालुं, सो पांच अतिचार कहते है.

प्रथम शंका अतिचार, सो जिनवचनमें शंका करणी, क्यों कि जिन वचन बहुत गंजीर हैं, अरु तिनका यथार्थ अर्थ कहने वाला इस कालमें कोइ गुरु नहीं, अरु शास्त्र जो हैं, सो अनंतनयात्मक है, तिसकी गिणती, तथा संज्ञा, विचित्र सें है, कहीकजगें तो कोरी शब्द कोरूका वाचक है, अरु किसी जगें रूढी वस्तुका वाचक है, क्योंकि श्रीजिनजद्रगणि क्षमाश्रमण सर्वसंघका सम्मत आचार्य, संघयण नामा पुस्तकमें तथा विशे

षणवती ग्रंथमें लिखते हैं, कि कोइक आचार्य कोमी शब्दकों एक क्रोड का वाचक नहीं मानते हैं, किंतु संज्ञांतर मानते हैं, क्यों कि अब वर्त्तमान कालमेंभी वीशकों कोमी कहते हैं, तथा सौराष्ट्र देश अर्थात् सोरठ देश में अब वर्त्तमान कालमेंभी पांच आनेकों एक कोमी कहते हैं, यह जैसें कोडी शब्दमें मतांतर हैं, ऐसेंही शत सहस्र शब्दभी किसी संज्ञाका वाचक होवे तो कुछ दोष नहीं तथा शत्रुंजय तीर्थमें जहां मुनि मोक्ष गये हैं, तहांभी पांच कोमी आदि शब्दोंकी कोइ संज्ञा विशेष है. ऐसेंही छप्पन कुल कोडी यादव कहते हैं, तीहांभी यादवोंके छप्पन कुलोंकी कोडी कोइ संज्ञा विशेष है. इसी तरें सर्व जग्गें शास्त्रोमें चक्रवर्त्तीकी सेना तथा कोणिक चेटक राजाओंकी सेनामें जो कोडी, अरु शत सहस्र शब्द हैं, सो संज्ञाविशेषके वाचक संभव होते हैं, इस वास्ते सर्व शब्दोंका सर्व जग्गे एक सरीखा अर्थ माननां युक्त नहीं. इस कथनमें पूज्यश्री जिन भद्रगणि क्षमाश्रमण पूरे साक्षी देने वाले हैं.

तथा कितनेक भव्य जीवोंने सामान्य प्रकारें ऐसा सुण रक्खा है, जो पांचमे आरेमें उत्कृष्ट एक सो वीश वर्षका आयु है, जब वो जीव कीसी अंग्रेज के मुखसें सुनते हैं, तथा और किसीके मुखसें सुनते हैं, कि डेढ सो तथा दो सो, तथा अढाइ सो वर्षकी आयुवालेभी भोट्टानादि किसी देशमें मनुष्य होते हैं, तब दृढ श्रद्धावाले भोले जीव तो कदापि किसीका कहनां नहीं मानते हैं, चाहो वडी आयु वाला मनुष्य उनके सन्मुखभी खडा कर दो, तोभी वे झूठही मानेंगे. क्योंकि वे जानते हैं, कि जो हमारे जिनेंद्र देवका कथन है, सो कदापि झुठा नहीं है, परंतु जिनकों जैनमतकी दृढ श्रद्धा नहीं है, वे कुछ संसारिक विद्यामें निपुन है, चाहो जैनमत वालेही हैं, उनके मनमें अवश्य शंका पड जायगी, क्यों कि उनोंनेभी सर्व जैन मतके शास्त्र सुने नहीं हैं, शास्त्रमें जो कथन है, सो सापेक्षिक है, बाहुलता करके कहा हुआ है. सो कथंचित् जो अन्यथा होवे तो आश्चर्य नहीं. क्यों कि बहुत शास्त्रोंमें लिखा है. कि ज्योतिषचक्र, अर्थात् तारा मंडल है, सो सर्व तारे मेरु पर्वतकों प्रदक्षिणा देते हैं, ये बात सर्व जैनी मानते हैं. परंतु ध्रुवका तारा कहींभी नहीं जाता है. अरु ध्रुवके पास जो तारे सप्त ऋषि रहितें प्रसिद्ध हैं, जिनको बालक मंजी पहरेदार

कुत्ता, और चोर कहते हैं, तथा औरभी कितनेक तारे ध्रुवके पार्श्ववर्त्ती हैं, वे सर्व ध्रुवकी प्रदक्षिणा देते हैं, परंतु मेरुपर्वतकी प्रदक्षिणा नहीं देते हैं, यह बात हमने आंखोंसें देखी है, अरु औरोंकों दिखा सकते हैं, तो फेर प्रथम जो शास्त्रकारने कहा था कि सर्व तारे मेरुकी प्रदक्षिणा देते हैं यह कहनां जैनी क्यों कर सत्य मानते हैं ?

इसका समाधान ऐसा है, कि प्रथम जो कथन है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा है, क्योंकि बहुत तारा मंडल ऐसा है, जो मेरु पर्वतकी प्रदक्षिणा देता है, अरु कितनेक ऐसे हैं जो ध्रुवकेही आस पास चक्र देते हैं, यह समाधान, पूज्यश्री जिनभद्रगणि क्षमाश्रमणजीने संग्रहणी, तथा विशेषणवती ग्रंथमें लिखा है, कि मेरु पर्वतके चारों ओर चार ध्रुव हैं, अरु उन चारों ध्रुवोंके पास ऐसे ऐसे तारे हैं, जो सदा उन चारों ध्रुवोंकेही आस पास चक्र देते हैं. इस्सें यह सिद्ध हुआकि जो शास्त्रका कहनां है सो बाहुल्यतासें अरु किसी अपेक्षा करके संयुक्त है, अरु किसी जगे स्थूल व्यवहार नयके मतसें कथन है, परंतु सूक्ष्म, अधिक न्यूनताकी विवक्षा नहीं करी है, इसी तरें सौ वर्षसें अधिक आयु जो पंचम कालमें कही है, सो बाहुल्यताकी अपेक्षा तथा आर्यखंडकी अर्थात् मध्यखंडकी अपेक्षा है, जे कर किसी पुरुषकी १५०, २००, २५०, इत्यादि वर्षोंकी आयु हो जावे, तो मनमें जिनवचनकी शंका न करणी कि क्या जाने जिनवचन सत्य हैं कि झूठ हैं ? ऐसा विकल्प मनमें नहीं करनां क्यों कि शास्त्रका आशय अतिगंभीर है, अरु ऐसा गीतार्थ कोइ गुरु नहीं है, जो यथार्थ बतला देवे.

इस आयुके कहनेका यह समाधान है, कि भगवान् श्रीमहावीरकेनिर्वाण पीछे (५८५) वर्षके लग भग जैनमतका आचार्य श्रीआर्यरक्षित सूरि साढे नव पूर्वका पाठक जिनोंके पास शक्रइंद्र, निगोद जीवोंका स्वरूप सुनने आया था, तब शक्रइंद्रने प्रथम वृद्धब्राह्मणका रूप करके श्रीआर्यरक्षित सूरिकों पूछा, कि हे भगवन! मैं वृद्ध हो गया हों जे कर मेरी आयु थोडी होवे, तो मुझे बता दीजीयें, जो मैं अनशन करूं, तब श्रीआर्यरक्षित सूरिजीने दशमे पूर्वके यवका अध्ययनमें उपयोग दे कर देखा, तो तिसकी आयु सौ वर्षसें अधिक जानी, फेर उपयोग दे कर

देखा. तो दोसें वर्षसें अधिक आयु जानी. फेर उपयोग दीया, तो तीनसें वर्षसें अधिक आयु जानी, तब आचार्य श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने विचार कीया. जो यह भारत वर्षका मनुष्य नहीं है. ये कथानक आवश्यकसूत्र की सामायिकअध्ययनकी उपोद्घात् निर्युक्तिमें है. इस कथानकसें ऐसा निकलता है, जो भारत वर्षके मनुष्यकी आयु तीन सौ वर्षकी होवे, तो आश्चर्य नहीं, क्यों कि श्रीआर्यरक्षितसूरिजीने जो तीन सौ वर्षसें जब अधिक आयु देखी, तब कहा ये भारत वर्षका मनुष्य नहीं. इसी कहनेसें कथंचित् तीन सौ वर्षकी आयु भारत वर्षकी होवे, तो क्या आश्चर्य है?

तथा कितनेक जीवोंके मनमें ऐसीभी शंका होवे, तो उसका क्या समाधान है? भरत खंड जैनमतवाले कहां तक मानते हैं? जो कुछ इस कालमें लोकोंके देखने वा सुननेमें आता है, कि अमेरिकादि देश वे सर्व जैनलोक भारत वर्ष मानते हैं, रूस, वा चिनादि देश इन सर्वको भारत वर्ष कहते हैं. अरु अमेरिकादि विलायतादि सर्व मुलकोंके बीचमें जो समुद्र पमा है, सो ऋषभ अरु भरत चक्रवर्त्तीके समयमें नहीं था, किंतु जगती बाहिर जो महासमुद्र है, सोइ था, इस कारणसें अर्थात् समुद्रके अंदर आ जानेसें असली भरत क्षेत्रका स्वरूप बिगम गया, कहीं समुद्र हो गया, और कहीं द्वीप बन गये.

इस विसे जैनमतका शत्रुंजय महात्म्यनामा जो ग्रंथ है, तिसमें लिखा है कि दूसरा सगरनामा चक्रवर्त्ती हूआ है, वो इस समुद्रको भारतवर्षमें जंबू द्वीपके दक्षिणदिशिके विजयंत नामक दरवाजेके रस्तेसें ल्याया है, तिसके लानेसें बर्बरादि अनेक हजारो देश तो जलमें डुब कर समुद्रकी भूमिका बन गये, अरु जो उच्चस्थल थे, वे द्वीप और विलायतादि देशो बन गये, पीछेसें असली देशोका नाम नष्ट होनेसें बहुत देशोंके नाम कल्पित रक्खे गये, अरु भरतखंड कुछ औरका और बन गया, कितनेक देशोंके चारो ओर समुद्र फिर गया, अरु कितनेक देशोंके उत्तर खंडोमें बर्फके पम जानेसें, और समयके बदलनेसें, सर्वथा पानी जम गया, अरु समुद्रके साथ मिल गया, तब तो चारों ओर समुद्रही दीखने लगा है. तिस लिये आना जाना बंद हो गया, अरु हमारे शास्त्रकार तो प्रथम आरेमें तथा ऋषभ देव अरु भरतचक्रवर्तीके समयमें जो इस भारत वर्षका हाल था सोइ तहालें लिखते

स्थिर रहता है; परंतु यह मत जैनीयोंका नहीं है, उनके शास्त्रोंमें जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती है, औ सूर्यके भ्रमण करनेंके एक सौ चौरासी मंडल आकाशमें हैं, उन मंडलोंमें प्रवेश करनां, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटनां, वधनां, अरु मोसमोंका वदलनां, ग्रहणका लगनां, सूर्यके अस्त उदय होनेमें मतोंका विवाद, इत्यादि वात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति शास्त्रोंके पढनेसें अछी तों मालुम पड जाती है.

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके जहाजकी ध्वजा प्रथम दीखती है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समझमें असी आती होवेगी, परंतु हमारी समझमें तो नहीं आती है, हम तो असे समझते हैं, कि हमारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्सें वस्तु गोलादि दीख पडती हैं, क्योंकि जव हम सूधी सडक पर खडे होते हैं, तव हमारे पगोंकी जगें सडक चौडी मालुम पडती है, अरु जव दूर नजरसें देखते हैं, तव वोही सडक संकुचित मालुम पडती है, अरु आकाशमें पक्षीकों जव शिरके उपर उडता देखते है, तव हमकों उंचा दूर दीख पडता है, अरु जव उसी जानवरकों थोडीसी दूर जातेकों देखते हैं तव धरतीसें वहुत निकट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाइ नहीं हो सक्ती हैं, तथा आकाशकों जव देखते हैं तव तंबूसा दिखलाइ देता है, इसमें जो कोइ यह वात कहे कि धरतीकी गोलाइके सववसें आकाशभी गोल दीखता है, यह कहनां ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नहीं हो सकि है, इस वास्ते नेत्रोमें जिस वस्तुके जाननेकी जैसी योग्यता है, वैसी वस्तु दीखती है, यह कहनां ठीक मालुम होता है.

तथा यह पृथ्वी भरतखंडादिककी वहुत जगें उंची, नीची, मालुम होती है, क्योंकि श्रीहेमचंद्रसूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रभचरित्रादि ग्रंथोमें लिखते हैं, कि लंकासेंति इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तव आठ योजन नीचें पाताललंका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवें, तव तो क्या जाने अमेरिकाही पतालालंका होवे। अरु नीची जगा होनेसें वुद्धिमानोंकों पृथ्वी गोल मालुम पडती होवेगी, इसी पाताल लंकाकी तरे और जगेंभी धरती उंची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है। क्योंकि पश्चिम महावि

देहकी धरती एक हजार योजन ऊंची लिखी है, इसी तरें और जगेंभी ऊंची नीची धरतीके सववसें कुछ ओरका और दीख पडे, तो जैनमतीकों श्रीअर्हंत भगवंतके कहनेमें शंका न करनी चाहियें.

तथा कितनेक पुस्तकोमें लिखा देखा और सुनाभी है, जो अमेरिकादि मुलकोमें ऐसी विद्या निकाली है, कि जिस करकें वो दो हजारादि वर्ष पहिलें जो मनुष्य मर गये थे, उनकों बुलातेहैं, अरु उनसें वख्तका सर्व हाल पूछते हैं, अरु वे सर्व अपणी व्यवस्था वतलांते हैं, परंतु परोक्ष शब्द उनका सुणाइ देता है, वे प्रत्यक्ष नहीं दीखते हैं, तथा अनेक तरेंके तमासे दीखाते हैं, कि जिनके देखनेसें अल्पबुद्धियोंकी बुद्धि अस्त व्यस्त हो जाती है, तव उनके मनमें अनेक शंका कंखा उत्पन्न हो जाती हैं. जिसके सववसें अर्हंत कथित धर्ममें अनादर हो जाता है, क्योंकि उन जीवोंनें नतो पूरे जैनमतके शास्त्र पढे है, औ न सुने हैं, इस वास्ते उनके मनकों जलद अधीरज हो जाती है, परंतु अपणे घरकी सर्व पुस्तकों विना वांचे, विना सुने, तुछ वातके वास्ते एक वारगी जिन धर्ममें शंका न लानी चाहियें, क्योंकि यह पूर्वोक्त सर्ववृत्तांत इंद्रजालकी पूर्णविद्या जिसकों आती होवे, वो दिखा सक्ता है, मैंने किसी ग्रंथमें ऐसा लिखा देखा है, जो कुमारपाल राजाके समयमें एक वोधिदेव नामक ब्राह्मण था, उसने राजा कुमारपालकी श्रद्धा जैन मतसें हटानेके वास्ते कुमारपालसें जो प्रथम उनके वंशके मूलराज आदि सात राजाओं हो गये थे, उसकों नरककुंडमें पडे हूए, विलाप करते हूए, अरु ऐसें कहते हूए दिखपडे, कि हे पुत्र! जिस दिनसें तूनें जैनधर्म अंगीकार कीया है, उस दिनसें हम तेरे सात पुरुषों नरक कुंडमें जा पडे हैं, जे कर तूं हमारा भला चाहे, तो जैनधर्म छोड दे, ऐसी वात देख कर राजा कुमारपाल चित्तमें घवराया, तव जा कर अपने गुरु श्रीहेमचंद्राचार्यकों पूछा, कि महाराज! यह क्या वृत्तांत है? तव श्रीहेमचंद्र आचार्यजीने कहा कि हे राजेंद्र! ये सर्व इंद्रजालकी विद्या है, आउ मैंभी तुमकों कुछ तमासा दिखाऊं! तव राजा कुमारपालकों मकानके अंदर ले मकानमें ले जा कर चउवीस तीर्थंकर समसरणमें जूदे जूदे वैठे हैं, अरु कुमारपालके वेही सात पुरुषोंकी तीर्थंकरोंकी सेवा करते हैं, अरु राजा कुमारपा

स्थिर रहता है, परंतु यह मत जेनीयोंका नहीं है, उनके शास्त्रोंमें जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती है, औ सूर्यके भ्रमण करनेके एक सौ चौरासी मंडल आकाशमें हैं, उन मंडलोंमें प्रवेश करनां, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटनां, वधनां, अरु मौसमोंका वदलनां, ग्रहणका लगनां, सूर्यके अस्त उदय होनेमें मतोंका विवाद, इत्यादि वात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति शास्त्रोंके पढनेसें अछी तरें मालुम पड जाती है.

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके जहाजकी ध्वजा प्रथम दीखती है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समजमें असी आती होगी, परंतु हमारी समजमें तो नहीं आती है, हम तो असे समजते हैं कि हमारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्सें वस्तु गोलादि दीखती है, क्योंकि जब हम सूधी सडक पर खडे होते हैं, तब हमारे पगोंकी जगें सडक चौडी मालुम पडती है, अरु जब दूर नजर देखते हैं, तब वोही सडक संकुचित मालुम पडती है, अरु आकाशमें पक्षीकों जब शिरके उपर उडता देखते हैं, तब हमकों उंचा दूर दीख पडता है, अरु जब उसी जानवरकों थोडीसी दूर जातेकों देखते हैं तब धरतीसें बहुत निकट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाई नहीं हो सक्ती है, तथा आकाशकों जब देखते हैं तब तंबूसा दिखलाई देता है, इसमें जो कोइ यह वात कहे कि धरतीकी गोलाइके सबबसें आकाशभी गोल दीखता है, यह कहनां ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नहीं हो सक्ति है, इस वास्ते नेत्रोंमें जिस वस्तुके जाननेकी जैसी योग्यता है. वैसी वस्तु दीखती है, यह कहनां ठीक मालुम होता है.

तथा यह पृथ्वी भरतखंडादिककी बहुत जगें ऊंची, नीची, मालुम होती है, क्योंकि श्रीहेमचंद्रसूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रभचरित्रादि ग्रंथोंमें लिखते हैं. कि लंकासेंति इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तब आठ योजन नीचें पातालखंका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवें, तब तो क्या जाने अमेरिकाही पतालखंका होवे। अरु नीची जगा होनेसें बुद्धिमानोंकों पृथ्वी गोल मालुम पडती होवेगी, इसी पाताल लंकाकी तरें और जगेंभी धरती ऊंची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है। क्योंकि पश्चिम महावि

स्थिर रहता है, परंतु यह मत जैनीयोंका नहीं है, उनके शास्त्रोंमें जो प्रगट लिखा है कि सूर्य चलता है, अरु पृथ्वी स्थिर रहती है, औ सूर्यके भ्रमण करनेंके एक सो चोरासी मंडल आकाशमें हैं, उन मंडलोंमें प्रवेश करनां, अरु दिनमानका रात्रिमानका घटनां, वधनां, अरु मोसमोंका वदलनां, ग्रहणका लगनां, सूर्यके अस्त उदय होनेमें मतोंका विवाद, इत्यादि वात सर्व सूर्यप्रज्ञप्ति वा चंद्रप्रज्ञप्ति शास्त्रोंके पढनेसें अछी तरें मालुम पड जाती है.

अरु जो पृथ्वीके गोल होनेमें समुद्रके जहाजकी ध्वजा प्रथम दीखती है, इत्यादि कहते हैं, सो कहनेवालोंकी समझमें असी आती होवेगी, परंतु हमारी समझमें तो नहीं आती है, हम तो असे समझते हैं, कि हमारे नेत्रोंमें ऐसी ही योग्यता है, कि जिस्सें वस्तु गोलादि दीखपडती है, क्योंकि जव हम सूधी सडक पर खडे होते हैं, तव हमारे पगोंकी जगें सडक चौडी मालुम पडती है, अरु जव दूर नजरसें देखते हैं, तव वोही सडक संकुचित मालुम पडती है, अरु आकाशमें पक्षीकों जव शिरके उपर उडता देखते है, तव हमकों उंचा दूर दीख पडता है, अरु जव उसी जानवरकों थोडीसी दूर जातेकों देखते हैं तव धरतीसें वहुत निकट देखते हैं, इतनी दूरमें पृथ्वीकी इतनी गोलाइ नहीं हो सक्ती हैं, तथा आकाशकों जव देखते हैं तव तंबूसा दिखलाइ देता है, इसमें जो कोइ यह वात कहे कि धरतीकी गोलाइके सववसें आकाशभी गोल दीखता है, यह कहनां ठीक नहीं, क्योंकि पृथ्वीकी इतनी दूर इतनी गोलाइ नहीं हो सकि है, इस वास्ते नेत्रोमें जिस वस्तुके जाननेकी जैसी योग्यता है, वेसी वस्तु दीखती है, यह कहनां ठीक मालुम होता है.

तथा यह पृथ्वी भरतखंडादिककी वहुत जगें उंची, नीची, मालुम होती है, क्योंकि श्रीहेमचंद्रसूरि प्रमुख आचार्य पद्मप्रभचरित्रादि ग्रंथोमें लिखते हैं, कि लंकासें इतने योजन पश्चिम दिशिकों जाइयें, तव आठ योजन नीचें पाताललंका है, जे कर ये प्रमाण योजन होवें, तव तो क्या जाने अमेरिकाही पताललंका होवे। अरु नीची जगा होनेसें वुद्धिमानो कों पृथ्वी गोल मालुम पडती होवेगी, इसी पाताल लंकाकी तरे और जगेंभी धरती उंची नीची होवे, तो क्या आश्चर्य है। क्योंकि पश्चिम महावि

देहकी धरती एक हजार योजन ऊंची लिखी है, इसी तरें और जगेंजी ऊंची नीची धरतीके सबबसें कुछ औरका और दीख पडे, तो जैनमतीकों श्रीअर्हंत जगवंतके कहनेमें शंका न करनी चाहियें.

तथा कितनेक पुस्तकोमें लिखा देखा और सुनाजी है, जो अमेरिकादि मुलकोमें ऐसी विद्या निकाली है, कि जिस करकें वो दो हजारादि वर्ष पहिलें जो मनुष्य मर गये थे, उनकों बुलातेहैं, अरु उनसें वस्तका सर्व हाल पूछते हैं; अरु वे सर्व अपणी व्यवस्था बतलांते हैं, परंतु परोक्ष शब्द उनका सुणाइ देता है, वे प्रत्यक्ष नहीं दीखते है, तथा अनेक तरेंके तमासे दीखाते है, कि जिनके देखनेसें अल्पबुद्धियोंकी बुद्धि अस्त व्यस्त हो जाती है, तब उनके मनमें अनेक शंका कंखा उत्पन्न हो जाती हैं. जिसके सबबसें अर्हंत कथित धर्ममें अनादर हो जाता है, क्यों कि उन जीवोंनें नतो पूरे जैनमतके शास्त्र पढे है, औ न सुने हैं, इस वास्ते उनके मनकों जलद अधीरज हो जाती है, परंतु अपणे घरकी सर्व पुस्तकों विना वांचे, विना सुने, तुछ बातके वास्ते एक बारगी जिन धर्ममें शंका न लानी चाहियें, क्योंकि यह पूर्वोक्त सर्ववृत्तांत इंद्रजालकी पूर्णविद्या जिसकों आती होवे, वो दिखा सक्ता है, मैंने किसी ग्रंथमें ऐसा लिखा देखा है, जो कुमारपाल राजाके समयमें एक बोधिदेव नामक ब्राह्मण था, उसने राजा कुमारपालकी श्रद्धा जैन मतसें हटानेके वास्ते कुमारपालसें जो प्रथम उनके वंशके मूलराज आदि सात राजाओं हो गये थे, उसकों नरककुंडमें पडे हूए, विलाप करते हूए, अरु ऐसें कहते हूए दिखपडे, कि हे पुत्र! जिस दिनसें तूनें जैनधर्म अंगीकार कीया है; उस दिनसें हम तेरे सात पुरुषों नरक कुंडमें जा पडे हैं, जे कर तूं हमारा जला चाहे, तो जैनधर्म छोड दे, ऐसी बात देख कर राजा कुमारपाल चित्तमें घबराया, तब जा कर अपने गुरु श्रीहेमचंद्राचार्यकों पूछा, कि महाराज! यह क्या वृत्तांत है? तब श्रीहेमचंद्र आचार्यजीने कहा कि हे राजेंद्र! ये सर्व इंद्रजालकी विद्या है. आओ मैंजी तुमकों कुछ तमासा दिखाऊं! तब राजा कुमारपालकों मकानके अंदर ले मकानमें ले जा कर चउवीस तीर्थंकर समसरणमें जूदे जूदे बैठे हैं, अरु कुमारपालके वेही सात पुरुषोंकी तीर्थंकरोंकी सेवा करते हैं; अरु राजा कुमारपा

सकों कहते हैं, कि हे पुत्र! तूं बमा पुण्यात्मा है, कि जिसने जैनधर्म अंगीकार कीया है, जिस दिनसें तूंने जैनधर्म अंगीकार कीया है, उस दिनसें हम नरककुंमसें निकल कर स्वर्गवासी हूए हैं, इस वास्ते तूं धर्ममें दृढ रहियो. तद् पीछें श्रीहेमचंद्रसूरि, राजा कुमारपालकों बाहिर लाये पीछें राजाने पूछी कि महाराज! यह क्या तमासा आश्चर्यकारी है तब श्री हेमचंद्रसूरि कहते नये कि हे राजा! ये इंद्रजालकी विद्या जिसकों आती होवे, वो कर सक्ता है, क्योंकि इंद्रजाल विद्याके सत्ताईस पीठ, है, जिनमेंसें सत्तरे पीठ संसारमें प्रचलित हैं, परंतु सत्ताईस पीठ में जानता हूं, और कोइ नी जारत वर्षमें नहीं जानता है, अरु जिन गुरुवोने हमकों ये विद्यादीनी थी, उनोने ऐसी आज्ञानी करी है, कि आगेकों तुमनें किसीकों ये विद्या न देनी, क्यों कि इस विद्यासें बमे अनर्थ उत्पन्न हो जायगे, क्योंकि इसका समें जीव तुछबुद्धिवाले हैं, इस लिये उनकों ये विद्या जरेगी नहीं, इसी वास्ते हमारे आचार्यानें योनिप्राभृत शास्त्र विछेद कर दीया है, उसी योनिप्राभृतके अनुसार यह इंद्रजाल रचा हूआ है, इस योनिप्राभृतका कथन व्यवहारनाष्यचूर्णीमें लिखा है, कि उस योनिप्राभृतमें तंत्रविद्या है, जिस्सें सर्प, घोडे, हाथी, विगेरे जिंदे जानवर वस्तुवोंके मिलानेंसें वन जाते हैं, तथा सुवर्ण, मणि, रत्नप्रमुख बन जाते हैं, उन मसालोंमें ऐसी मिलन शक्ति है, कि चाहे सो बना लो, इस वास्ते कोइ आज नवी वस्तु देख कर जैनधर्मसें चलायमान न होनां चाहियें. तत्वार्थकी महा जाष्यमें सामंतनद्र आचार्यजी लिखते हैं, कि इंद्रजालिया तीर्थंकरकें समान बाह्य सिद्धि सबे बना सक्ता है, इस वास्ते कोइ बातका चमत्कार देखकें जिन वचनोंमें शंका कदापि न करनी.

तथा कितनेक जैनमत वालोंकों यहजी आश्चर्य है, कि जदा आर्यावर्तमें दो प्रहर दिन होता है, तदा अमेरीकामें अर्द्धरात्रि होती है अरु जदा अमेरीकामें दो प्रहर दिन होता है, तदा आर्यावर्त्तमें अर्द्धरात्रि होती है, कितनेक लोकोनें घमीयोंके हिसाबसें तथा तारकी खबरोंसें इस बातका निश्चय अबी तरेसे करा बतलाते है, इस बातका उत्तर में यथार्थ नहीं दे सक्ता हूं, मेरी श्रद्धा ऐसी नहीं है कि पूर्व आचार्योंके अनुसारें विना समाधान कर सकूं क्योंकि मेरी कल्पनासें कुछ जैनमत सत्य नहीं

हो सक्ता है, जैनमत तो अपणे स्वरूपसेंही सत्य बनेगा, जे कर मेरी कल्पनाही सत्यका कारण होवे, तब तो किसी पूर्वाचार्योंकी अपेक्षा न रहेगी, तब तो जिसके मनमें जो अर्थ अछा लगे, सो अर्थ कर लेवेगा. जैसें वर्त्तमानमें किसी पाखंमी मस्करीने ऋग्वेदादि वेदों उपर स्वकपोल कल्पित अर्थ बनाये हैं, सो हमने वांचजी लीये हैं, उनोनें वेद मंत्रादिकोंके उपर जो जाष्य बनाया है, उसमें मंत्रोंके अर्थोंमें असा लिखा है कि "अग्निवोट" अर्थात् धूये की कलसें चलनेवाले जहाज तथा रेलगाडीके चलनेकी विधि, तथा पृथ्वी गोल है, अरु सूर्यके चारों ओर घुमती है, अरु सूर्य स्थिर है, इत्यादि जो अंग्रेजोने अपनी बुद्धिके बलसें विद्या उत्पन्न करी है, इन सर्व विद्यायोंका वेदोंमेंजी कथन है, अपने शिष्योंकों वेदका महत्त्व जनानेके वास्ते स्वकपोलकल्पित अर्थ बना लीये हैं, अरु पूर्व जो महीधरादि पंडितोने वेदोंके उपर दीपिका तथा जाष्य रचे है, उनकी निंदा अर्थात् मूर्खता प्रगट करी है, वे मूर्ख थे उनकों वेदका अर्थ नहीं आता था.

प्रश्नः–पिछले अर्थ छोड कर जो नवीन अर्थ बनाये गये, इनका क्या कारण है?

उत्तरः–प्रथम तो वेदोंके प्राचीन जाष्य और दीपिका माननेसें वेदोंकी सत्यता, अरु इश्वरोक्तता, तथा प्राचीनता सिद्ध नहीं होती. इसी वास्ते ईशावास्य उपनिषद वर्जके सर्व उपनिषदों, और सर्व ब्राह्मण जाग, तथा सर्व स्मृति, पुराणादि शास्त्र, जाष्य, दीपिकादि, मानने छोड दीये, उनोने यह विचार कीया है कि इन सर्व पुर्वोक्त ग्रंथोंके माननेसें हमारा मत दूसरे मतवाले खंमित कर देवेंगे, क्योंकि ये पूर्वोक्त सर्व ग्रंथ युक्ति प्रमाणसें बीकल हैं, अरु प्राचीनोनें जो अर्थ करे हैं, उनमें बहुत अर्थ असें हैं, कि जिनोंके सुननेसें श्रोता जनोंकोंजी लज्जा उत्पन्न होती हैं, क्योंकि महीधरकृत दीपिका जो वेदकी टीका है उसमें मंत्रादिकोंके जो अर्थ लिखे हैं, उनमें लिखा हैं कि यज्ञपत्नी घोडेका लिंग पकमके अपनी योनिमें प्रक्षेप करे इत्यादि अर्थ है, सो मैं आगें लिखुंगा इत्यादि अर्थोंके छोडने वास्ते अरु वेदोंके खंडन न होने वास्ते स्वकपोलकल्पित जाष्य बना कर मानुं अंग्रेजोके चाल चलन और रुजिलके मनानुसार अर्थ बना

चे गये हैं, परंतु उसकों बुद्धिमान तो कोइभी मानता नहीं है, अरु जो मानते हैं, वो कुछ जानते नहीं है, क्योंकि जब पूर्वले ऋषि, मुनि, पंडित फूठे हैं, अरु उनके बनाये हूये अर्थ असत्य हैं, तो अबके बनाये हूये कदापि सत्य नहीं हो सकेंगे? जो जडमेंही फूठ है, वे नवीन रचनासें कदापि सत्य न होवेंगे, इस वास्ते अपनी बुद्धिका विचार सत्य माननां, अरु प्राचीन उन वेदोंके मानने वालोंका संप्रदाय अर्थकों फूठा माननां इस्सें अधिक निर्विवेकी और अन्यायशिरोमणि कौंन हैं? क्योंकि जब प्राचीनोंके बनाये अर्थ फूठे ठहरेंगे, तब तिनके बनाये जये वेदभी फूठेही ठहरेंगे, इस वास्ते जो मतधारी हैं, यातो उनको अपणे प्राचीनोंके कथन करे हूये अर्थ माननें चाहियें, नहीं तो उस मतको अरु उस मतके शास्त्रोंकों छोड देनां चाहियें. इसी वास्ते मेरी ऐसी श्रद्धा है, कि जो जैन मतमें प्रामाणिक अरु पंचांगीकारक आचार्य लिख गये हैं, उनके अनुसारही हमकों कथन करनां चाहियें, परंतु स्वकपोलकल्पित नहीं. जे कर कोइ स्वकपोलकल्पित मानेगा. वो जैनमती कदापि नहीं बन सकेगा, अरु उसकी कल्पनाभी सर्वथा सत्य नहीं होवेगी? क्योंकि जब सर्व मतों के पूर्वाचार्य फूठे ठहरेंगे, तब नवी कल्पना करने वाले क्यों कर सचे बन वेठेंगे? इस वास्ते पूर्वोक्त प्रश्नका उत्तर पंचांगीके प्रमाणसें नहीं दे सक्ता हूं, क्यों कि १ शास्त्र बहुत विछेद हो गये हैं, तथा २ आर्यरक्षित सूरि के समयमें चारों अनुयोग तोडके पृथक्त्वानुयोग रचा गया है. तथा ३ स्कंदिल आचार्यके समयमें बारह वर्ष काल पडा था, उसमें शास्त्र कंठ से लुप्त गये थे, फेर सर्व साधुओंका दक्षिण मथुरामें समाज करके जिस जिस आचार्य. साधुके जिस जिस शास्त्रका जो जो स्थल, कंठ रह गया, सो सो स्थल एकत्र करके लिखा गया, ४ पीछे देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण प्रमुख आचार्योंनें पत्रोंके उपरि एक कोड ग्रंथ लिखा, शेष छोड दीये, ५ प्रभावक चरित्रमें लिखा है, कि सर्व शास्त्रोंकी टीका लिखी थी, वो सर्व विछेद हो गइ, तथा पीछेमें ब्राह्मणोंने तथा बौद्धोंने ग्रंथोंका नाश किया, ७ तथा मुसलमानोंने तो सर्वमतोंके शास्त्र मट्टीमें मिलाय दिये. तिनमेंसें जो रह गये, वे भंडारोंमें गुप्त रहनेसें गल गये, तथा जो अब भंडारोंमें हैं, सर्व हमने वांचे नहीं हैं, तो फेर इतने उपद्रव जैन शा

श्रोंमें हीननेंसें हम क्यों कर सर्व शंकायोंका समाधान कर सके? इस वास्ते जिनमतमें शंका न करनी चाहियें. हमनें सर्वमतोंके शास्त्र देखे हें, परंतु जैनमत समान अति उत्तम मत कोइ नहीं देखा हे, इस वास्ते इस मतमें दृढ रहनां चाहियें. १ शंकां अतिचार उसकों कहते हें, कि जो जिनवचनोंमें शंका करे, जैसेंकि ए वार्त्ता जिनेश्वर देवकी कही सत्य हे, वा नहीं? यह प्रथम अतिचार हे.

२ दूसरा आकंक्षा अतिचार, सो अन्यमत वालोंका अज्ञान कष्ट देख कर तथा किसी पाखंमीके पास किसी विद्यामंत्रका चमत्कार देख कर तथा पूर्व जन्मके अज्ञान कष्टके फल करकें अन्यमत वालोंकों सुखी अरु धनवान् देख कर मनमें विचारें जो अन्यमत वालोंका धर्म अरु ज्ञान अछा हे, जिसके प्रन्नावसें वे धनी, अरु पुत्र आदि परिवार वाले होते हें, इस वास्ते मेंन्नी इनहीका धर्म करुं, कि जिस कर कें मेंन्नी धनी, अरु पुत्रादि परिवार वाला हो जाउंगा, यह आकांक्षा अतिचार, उन जीवों को होता हे, कि जिनको जिनधर्मका अछी तरेसें बोध नहीं हे, क्योंकि जैनधर्मवालेन्नी सर्व दरिद्री अरु पुत्रादि परिवारसें रहित नहीं हें, तैसें ही अन्यमत वालेन्नी सर्व धनी अरु परिवारवाले नहीं हें. इस वास्ते सर्व अपने अपने पूर्व जन्म जन्मांतरके करे हूए पुण्य पापके फल हें, क्योंकि जे जीव, मनुष्य जन्ममें सात कुव्यसनी हें, अरु कसाइ, वागुरी (वुचरु) प्रमुख कितनेक धनी (धनवाले) अरु पुत्रादि परिवारवाले हें, अरु कितनेक इस अवस्यासें विपरीत हें, इस वास्ते यही सत्य हे कि पूर्व जन्म में करे हूए सुकृत डुःकृतका फल हे, प्रायः इस जन्मके कृत्योंका फल नहीं हे, सर्व मतोंवाले राजा हो चुके हें. अरु रंकन्नी वहुत हें, इस वास्ते अन्यमतकी आकांक्षा न करे जे कर करे, तो डुसरा अतिचार.

३ तीसरा वितिगिछा नामक अतिचार हे, सो कोइ जीव अपणे पूर्व जन्मके करे हूये पापोंके उदयसें डुःख पाता हे, तव औसा विचार करे, जो में धर्म करता हूं, तिसका फल मुजे कव मिलेगा? अर्थात् मिलेगा कि नहीं? अरु जो धर्म नहीं करते हें, वो सुखी हें, अरु हम तो धर्म करते हें, तोन्नी डुःखी हें, इस वास्ते कौन जाने धर्मका फल होवेगा कि नहीं होवेगा? तथा साधुके मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखते देख कर मनमें

जुगुप्सा करे, कि यह साधु अछे नहीं है, जो मलिन वस्त्र तथा मलिन शरीर रखते हैं, इस वास्ते यह संसारसें क्यों कर तरेंगे ? जे कर उष्ण जलसें स्नान कर लेवे, तो कौनसा महाव्रत भंग हो जाता है ?

उत्तरः—जे कर धर्मका फल न होवे, तो संसारकी विचित्रता कदापि न होवे, इस वास्ते धर्मका फल अवश्यमेव है, तथा जो साधु मलिन वस्त्र रखते हैं, उनका तो यह कारण है कि सुंदर वस्त्र रखनेसें मन शृंगाररसकूं चाहाता है, अरु स्त्रीयोंभी सुंदर वस्त्र वालोंकों देख कर उनसें भोग करनेकी इछा करती हैं, इस वास्ते शील पालनें वाले साधुओंकों शृंगार करनां अछा नहीं, अरु स्नान जो है, सो कामका प्रथमांग है, इस वास्ते साधुओंकों उचित नहीं, अरु कोइ कारण पडवेसें साधु हाथ पगादिकोंकूं धोय लेवे, तो कुछ दूषण नहीं. अरु साधुओंकों आपणा शरीर उपर ममत्वभी नहीं है, अरु शुचिमात्र स्नान तो साधु करते हैं, परंतु शरीरके सुख वास्ते तथा शरीरके चमकाने (दमकानेके) वास्ते नहीं करते हैं, क्योंकि जैनीयोंकी ये श्रद्धा नहीं है, जो जलमें स्नान करनेसें पाप दूर हो जाते हैं, परंतु जलस्नानसें शरीरकी मेल दूर हो जाती है, शरीरकी तप्त मिट जाती है, आलस्य दूर हो जाता है, परंतु पाप दूर नहीं होते हैं, जे कर जलस्नानसें पाप मिट जावें, तो अनायास करके सर्वकी मोक्ष हो जावेगी ? ऐसा कौन है, जो जलसें स्नान नहीं करता है ? अरु जो साधुकों मेला समझनां, यही बमी मूर्खता है, क्योंकि शरीरके मेले होनेसें आत्मा मेला नहीं होता है, मेला तो पाप करनेसें होता है, अरु जगत् व्यवहारमें स्त्रीसें संजोग करनेसें ओर किसी मलिन वस्तुका स्पर्श करनेसें, मेलापनां मानते हैं, अरु साधु तो इन सर्व वस्तुओंका त्यागी है, इस वास्ते मेला नहीं, बलके साधुओंकों धन्यवाद देनां चाहियें. जो तप्त पडती है, सो चलती है, पसीना वहता है, तोभी साधु नंगे पांव, अरु नंगा शिर करके चलते हैं, ओ रातकों छत्ते हूये मकानमें सोते हैं, पंखा करते नहीं तथा कोमल शय्या (पल्यंकादि) पर सोते नहीं ओ रात्रिको जल पीते नहीं, दिनमेंभी उष्ण जल पीते हैं, यह तो बमा भारी तप है. परंतु जो कोइ साधु तो वन रहे हैं, अरु जब गरमी लगती है, तब महिषकी तरे जलमें जा पमते हैं, ऐसे सुखशीलिये तो तर

जायंगे कि जिनोके किसी वातका नियम नहीं, हाथी, घोडे, रेल प्रमुख की असवारी करनी, तथा जो फल हैं, सो सर्व ग्रहण करने, धन रखणां, मकान बांधणे, खेती करणी, गौ, भैंस, हाथी, घोडे, रथ, शस्त्र रखने, छल बलसें लोकों पासों धन ले लेनां, स्त्रीयोंसें विषय सेवन करनां, अछा खानां, मांसभक्षण करनां, मदिरा पीनां, भांगके रगडे, चरसकी चिलमें उडानां, पगोंकों तथा शरीरकों वेश्याकी तरें मांजनां, चित्तमे वडा अभिमान रखनां, डंड पेले, गस्त करने जानां, इत्यादि अनेक साधुओंके अनुचित काम करनें, फेर श्रीश्री स्वामीजी महाराज वन वैठनां, हम महंत हैं, हम गद्दीधर हैं, हम भट्टारक हैं, हम श्रीपूज्य हैं, हम जगत्का उद्धार करते हैं, हम वडे अद्वैत ब्रह्मके वेत्ता हैं, हम शुद्ध ईश्वरकी उपासना वताते हैं, मूर्तिपूजन पाखंडका नाश करते हैं.

अव भव्य जीवोंकों विचार करनां चहियें कि यह पूर्वोक्त कुगुरु क्या जलके स्नान करनेसें संसारसमुद्रसें तर जायंगे? अरु जो जीवहिंसा, झूठ, चोरी, स्त्री, अरु परीग्रह, इन पांचोंके त्यागी, शरीरमें ममत्व रहित, प्रतिबंध रहित, काम क्रोधके त्यागी, महातपस्वी, मधुकर वृत्तिसें भिक्षा लेने वाले इत्यादि अनेक गुण सुशोभित हैं, वे क्या जलमें स्नान न करनेसें पातकी हो जावेंगे.? कदापि न होवेंगे इस वास्ते साधुकों देखकें जुगुप्सा न करनी, जे कर करे तो तीसरा अतिचार लागे॥

चौथा मिथ्यादृष्टिकी प्रशंसारूप अतिचार है. मिथ्यादृष्टि उसकों कहते हैं. जो जिनप्रणीत आज्ञासें वाहिर है, क्यों कि सर्वज्ञके कहे हूए वचनकों तो वो मानता नहीं, अरु असर्वज्ञोंके कहे हूए शास्त्रोंकों सच्चा मानता है, उन शास्त्रोंमें जो अयोग्य वातें कही हैं, उनके छिपाने वास्ते स्वकपोलकल्पित भाष्य, टीका, अर्थ, वना करकें मूर्खलोकोंकों वहकाते गल्ल वजाते फिरते हैं, औ जिनके नियमधर्म कोइ नहीं, कृपण पशुयोंकों मार जानते हैं, धूर्त्तपणेंते सच्चा वन कर मूर्खोंकों मिथ्यात्व जालमें फसाते हैं, ऐसे मिथ्यादृष्टि होते हैं. उनकी प्रशंसा करनी, तथा जो अज्ञानी जिनाज्ञासें वाहिर हैं, उनकों कहनां कि ये वडे तपस्वी हैं? महापुरुष हैं? वडे पंडित हैं? इनके वरावर कौन हैं? इनोंनें धर्मकी वृद्धि वास्ते अवतार लीया है? तथा मिथ्यादृष्टि कोइ व्रत यज्ञादि करे, तव ति

सकी प्रशंसा करे कि तुम बमा अच्छा काम करते हो, तुमारा जन्म सफल है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चोथा अतिचार है.

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मिथ्यादृष्टिके साथ बहुत (मिलाप) रख्क, एक जगें जोजन संवास करे, इत्यादि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसें मिथ्यादृष्टिकी वासना लग जानेंसें धर्मसें भ्रष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्यादृष्टिका बहुत परिचय करनां ठीक नहीं. यह पांचमा अतिचार है.

अब जब गृहस्थकों सम्यक्त्व देते हैं, तब उसकों गुरु ठे आगार बतलाते हैं. जे कर ये ठे कारणोसें तुमकों कोइ अनुचित कामभी करणां पडे, तो तुमकों ये ठे आगार रखाये जाते हैं, जिनसें तुमारा सम्यक्त्व कलंकित न होवेगा, सो ठे आगार कहते हैं.

१ प्रथम "रायाभिओगेणं" सो राजा उस नगरका स्वामी जे कर वो राजा कोइ अनुचित काम जोरावरीसें करावे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

२ दूसरा "गणाभिओगेणं" गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, वे कहे, जो यह काम तुम जरूर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमकों बमा दंड देवेंगी, उस वखत जे कर वो काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचार नहीं.

३ तीसरा "बलाभिओगेणं" सो बलवंत चोर म्लेच्छादि तिनोंके वश पमनेंसें वो कोइ अपनी जोरावरीसें अनुचित काम करवावें, तोभी दूषण नहीं

४ चवथा "देवाभिओगेणं" सो कोइ दुष्ट देवता क्षेत्रपालादि व्यंतर शरीरमें आवेश करके अनुचित काम करावे, तो भंग नहीं. तथा कोइ देवता मरणांत दुःख देवे, तब मनमें धैर्य न रहे, तब मरणांत कष्ट जानके कोइ विरुद्ध काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचारभंग नहीं.

५ पांचमा "गुरुनिग्गहेणं" गुरु सो माता, पितादि उनके आग्रहसें कुठ अनुचित करणां पडे, तथा गुरु कहियें, धर्माचार्यादि, तथा जिनमंदिर, सो कोइ अनार्य गुरुकों संकट देता होवे, तथा जिनमंदिरकों तोमता होवे, जिनप्रतिमाकों खंडन करता होवे, सो गुरु निग्रह है. तिनोंकी रक्षा वास्ते कोइ अनुचित काम करणां पडे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

६ ठठा "वित्तिकंतारेणं" वृत्ति जे दुष्कालादि आपदा आ पडे, तब आजीविकाके वास्ते किसी मिथ्यादृष्टिके अनुसार चलनां पमे, तथा आ

सकी प्रशंसा करे कि तुम बमा अछा काम करते हो, तुमारा जन्म सफल है, इत्यादि प्रशंसा करे, सो चोथा अतिचार है.

५ पांचमा मिथ्यादृष्टिकी परिचयकरनी सो अतिचार है, सो मिथ्यादृष्टिके साथ बहुत (मिलाप) रक्खे, एक जगें जोजन संवास करे, इत्यादि है, क्योंकि बहुत मिथ्यादृष्टिके साथ मेल रखनेसें मिथ्यादृष्टिकी वासना लग जानेंसें धर्मसें भ्रष्ट हो जाता है, इस वास्ते मिथ्यादृष्टिका बहुत परिचय करनां ठीक नहीं. यह पांचमा अतिचार है.

अब जब गृहस्थकों सम्यक्त्व देते हैं, तब उसकों गुरु छे आगार बतलाते हैं. जे कर ये छे कारणोसें तुमकों कोइ अनुचित कामजी करणां पडे, तो तुमकों ये छे आगार रखाये जाते हैं, जिनसें तुमारा सम्यक्त्व कलंकित न होवेगा, सो छे आगार कहते हैं.

१ प्रथम "रायाभिओगेणं" सो राजा उस नगरका स्वामी जे कर वो राजा कोइ अनुचित काम जोरावरीसें करावे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

२ दूसरा "गणाभिओगेणं" गणनाम ज्ञाति तथा पंचायत, वे कहे, जो यह काम तुम जरूर करो, नहीं तो ज्ञाति, तथा पंचायत तुमकों बमा दंड देवेंगी, उस वखत जे कर वो काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचार नहीं.

३ तीसरा "बलाभिओगेणं" सो बलवंत चोर म्लेछादि तिनोंके वश पमनेंसें वो कोइ अपनी जोरावरीसें अनुचित काम करवावें, तोभी दूषण नहीं.

४ चवथा "देवाभिओगेणं" सो कोइ दुष्ट देवता क्षेत्रपालादि व्यंतर शरीरमें आवेश करकें अनुचित काम करावे, तो भंग नहीं. तथा कोइ देवता मरणांत दुःख देवे, तब मनमें धैर्य न रहे, तब मरणांत कष्ट जानके कोइ विरुद्ध काम करनां पडे, तो सम्यक्त्वमें अतिचारभंग नहीं.

५ पांचमा "गुरुनिग्गहेणं" गुरु सो माता, पितादि उनके आग्रहसें कुछ अनुचित करणां पडे, तथा गुरु कहियें, धर्माचार्यादि, तथा जिनमंदिर, सो कोइ अनार्य गुरुकों संकट देता होवे, तथा जिनमंदिरकों तोमता होवे, जिनप्रतिमाकों खंडन करता होवे, सो गुरु निग्रह है. तिनोंकी रक्षा वास्ते कोइ अनुचित काम करणां पडे, तो सम्यक्त्वमें दूषण नहीं.

६ छठा "वित्तिकंतारेणं" वृत्ति जे दुष्कालादि आपदा आ पडे, तब आजीविकाके वास्ते किसी मिथ्यादृष्टिके अनुसार चलनां पडे, तथा आ

जीविकाके वास्ते कोइ विरुद्ध आचरण करनां पडे, तो दूषण नहीं. एक तो यह छे वस्तुके आगारोंकों छे छंडी कहते हैं. तथा चार आगार और जी हैं. सो कहते हैं.

१ "अन्नथ्थणाभोगेणं" अस्यार्थः कोइ कार्य अजाण पणे उपयोग दीयां विना औरका और हो जावे, अरु जब याद आ जावे, तब वो कार्य फेर न करे, यह प्रथम आगार.

२ "सहस्सागारेणं" सो अकस्मात् कोइ काम करे, अपणे मनमें जानता है, यह काम मैंनें नहीं करणां, परंतु योगोंकी चपलतासें तथा नित्य बहुत अभ्याससेंती जानता हूआजी विरुद्ध कार्य हो जावे, तो सम्यक्त्व में जंग नहीं यह दूसरा आगार.

३ "महत्तरागारेणं" सो कोइ मोटा लाभ होता है, परंतु सम्यक्त्वमें दूषण लगता है, तथा कोइ मोटा ज्ञानीकी आज्ञासें कमवेशी करनां पडे, तो यहजी आगार है यह तीसरा आगार.

४ चौथा "सव्वसमाहिवत्तिआगारेणं" सो सर्व समाधिव्यत्ययसें कोइ वडा सन्निपातादि रोगोंके विकृयसेंती बावरा हो जावे, तथा अतिवृद्ध हो जानेंसें स्मृतिजंग हो जावे, तथा रोगादिक आये मनमें आर्त्तध्यान होजानेंसें, तथा सर्पादिके डंक मारणेसें, इत्यादि असमाधिमें यह आगार है. इस्सें सम्यक्त्व तथा व्रत जंग नहीं होता है, परंतु किसी मूर्खके कहे सुनेंसें आर्त्तध्यानमें प्राण त्यागने योग्य नहीं, कितनेक जिनमतके अनजिज्ञोंका यह जी कहनां है, कि चाहो कुछ हो जावे, तोजी जो नियम लीया है, उसकों कजी तोडनां न चाहियें, परंतु यह कहनां सर्वथा ठीक नहीं. क्यों कि जब पहिलांहि आगार रक्के गये, तो फेर व्रतजंग क्यों कर हूआ? अरु जो आर्त्तध्यानमें मरजाते हैं, अरु आगार नहीं रखते हैं, वे जिनमार्गकी शैलीके अजान हैं, इस वास्ते छे छंडी, अरु चार आगार, सर्व बारोंही व्रतोंमें जाननें, अरु साधुके सर्वप्रत्याख्यानोंमें अनशन पर्यंत यही चार आगार जानने ॥ इतिश्री तपगछिये गणिश्रीमणिविजय तच्छिष्य मुनिश्री बुद्धिविजय तच्छिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे सम्यग्दर्शननिर्णयनामा सप्तमपरिछेदः संपूर्णः ॥ ७ ॥

॥ अथ अष्टम परिछेद प्रारंनः ॥

इस परिछेदमें चारित्रका स्वरूप लिखते हैं. चारित्र धर्मके दो नेद हैं. एक सर्वचारित्र, एक देशचारित्र, उसमें सर्वचारित्र धर्म तो साधुमें होता है, तिसका स्वरूप गुरुतत्त्व परिछेदमें लीख आये हैं. तहांसें जान लेनां अरु देश चारित्रके बारह नेद हैं, सो गृहस्थका धर्म है, सो बारह व्रतोंका किंचित् स्वरूप लिखते हैं. तिनमें प्रथम स्थूलप्राणातिपात व्रतका स्वरूप लिखते है.

१ प्रथम प्राणातिपातविरमणव्रतके दो नेद हैं. एक ड्व्यप्राणातिपात दूसरा नावप्राणातिपात व्रत, तिनमें ड्व्य प्राणातिपात व्रत ऐसें है, कि पर जीवोंकों अपणी आत्मा समान जान करकें तिनके दश ड्व्यप्राणोंकी रक्षा करे, सो ड्व्यप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें. ये व्यवहार दयारूप है, तथा दूसरा नावप्राणातिपात, सो अपणा जीव कर्मके वश पडा हूआ दुःख पाता है, अपणे जे नाव, प्राण, ज्ञान, दर्शन, चारित्रादिक, तिन का मिथ्यात्व कषायादिक अशुद्ध प्रवर्त्तनसें प्रतिक्षण घात हो रही है, सो अपणे जीवकों कर्मशत्रुसें छुडाने वास्ते उपाय करणां, सो उपाय यह है, कि आत्मरमणता करे, परनाव रमणता त्यागे, शुद्धोपयोगमें प्रवर्त्ते, कर्मके उदयमें अव्यापक रहे, एक स्वनावमग्नता, यही समस्त कर्मशत्रुके उछेद करनेंकों अमोघ शस्त्र हैं. एतावता सकल परनाव इष्टता दूर करी, स्वरूप सन्मुख उपयोग रक्के, तिसका नाम नावप्राणातिपात विरमणव्रत कहियें, इसीका नाम नाव दया हैं. इहां स्थूल नाम मोटा दृष्टिगोचर हाले, चाले, ऐसा जो त्रस जीव तिसकों संकल्प करकें न हणुंगा.

इहां हिंसा चार प्रकारकी है. एक आकुट्टी, सो निषेध वस्तुकों उत्साहसें करे, जैसें संपूर्ण फलका नक्या करनां, श्रावककों निषेध है, अरु जिसने जितने फल खानेमें रक्खे हैं, उन फलोंमेंसूंजी किसी फलका नड या नहीं करनां, अरु जो मनमें उत्साह धरके नक्या करे, तो आकुट्टी हिंसा होवे. दूसरी दर्प्पहिंसा, सो चित्तके उछरंगसें (उन्मत्तपणेसें)मनमें गर्व धरकें दौड करे, जैसें गाडी घोमा प्रमुख दोमता हैं, यह आकुट्टी द

र्पहिंसा है. तीसरी प्रमादहिंसा, सो आकुट्टी अर्थात् जानके काम जोग में तीव्र अभिलाषासें कामका जोस चढाने वास्ते त्रस जीवकी हिंसा करे, किसी जीवकों मारके गोली माजुम प्रमुख बना करकें खावे, सो आकुट्टी प्रमादहिंसा है. चौथी कल्पहिंसा, सो अपणा घरका काम काज, रंधण, पीसणादि करते त्रस जीवकी हिंसा हो जावे, सो प्रमादहिंसा है. इन चारो हिंसायोमें प्रथम हिंसा तो बिलकुल नहीं करणी, तिस वास्ते यहां संकल्प करकें आकुट्टी, तथा दर्प्प करकें त्रस जीव हणनेका त्याग करे, जैसें यह कीनी जाती है, इसकों में मारुं! ऐसे संकल्प करकें हणे, हणावे, तिसकों आकुट्टीसंकल्प कहते हैं. ऐसें संकल्प करकें निपराधी जीवोंकों विना कारणके न हणुं न हणाउं, अरु सांसारिक आरंभ रंधनादि करते, तथा पुत्रादिकके शरीरमें कीडे आदिक जीव उत्पन्न होवे, तदा औषधादि करते यत्नसें करे. तथा घोडा, बलद, प्रमुखकों चाबकादि मारणां पडे उसका आगार रक्खे, तथा पेटमें कृमी, गंडोला, तथा पगमें नहरवा, अर्थात् वाला, तथा हरस, चम, जू, प्रमुख अपणे शरीरमें उपजे, तथा मित्रादिक स्वजनादिकके शरीरमें उपजे, तिसके उपचार करणेकी जयणा रक्खे, क्योंकि साधुकों तो त्रस, अरु स्थावर, सूक्ष्म, अरु बादर, सर्व जीवोंकी हिंसा नवकोटी विशुद्ध प्रमादके योगोंसें सर्व हिंसाका त्याग है; इस वास्ते साधुकों तो वीस वीश्वा दया है, अरु गृहस्थसें तो सवा विश्वा दया पल सकी है, तिसका स्वरूप लिखते हैं.

॥ गाथा छंद ॥ जीवा सुहुमा थूला, संकप्पा आरंभा भवे दुविहा ॥ सवराह निरवराहा, साविक्खा चेव निरविक्खा ॥ १ ॥ अर्थः—जगतमें जीव दो प्रकारके हैं. एक थावर, दूसरा त्रस, तिनमें थावरोंके दो भेद हैं. एक सूक्ष्म, दूसरा बादर, तिनोमें सूक्ष्मजीवोंकी तो हिंसा होतीही नहीं है, क्योंकी अति सूक्ष्म जीवोंके शरीरकों बाह्य शस्त्रका घाव नहीं लगता है, परंतु इहां तो सूक्ष्म शब्द, थावर जीव, पृथ्वी, पाणी, अग्नि, पवन, वनस्पतिरूप जो बादर पांच थावर हैं. तिनका वाचक है, अरु स्थूलजीव सो द्वींद्रिय त्रींद्रिय, चतुरिंद्रिय, पंचेंद्रिय जानना, इन दोनो भेदोंमें सर्व जीव आ गये, तिन सर्वकी त्रिकरणशुद्धसें साधु रक्षा करता है. तिस वास्ते साधुके वीस विश्वा दया है, अरु श्रावकसें तो पांच थावरकी दया पलती

नहीं है, सचित्त आहारादि करणसें अवश्य हिंसा होती है. इस वास्ते दश विश्वा दया दूर हो गई, शेष दश विश्वा रह गइ, एतावता एक त्रस जीवकी दया रहे, उस त्रस जीवकेजी दो नेद हैं, एक संकल्पसें हननां, दूसरा आरंजसें हननां, तिनमें आरंज हिंसाका श्रावककों त्याग नहीं है, किंतु संकल्प हिंसाका त्याग है, अरु आरंज हिंसामें तो यत्न है, परंतु त्याग नहीं है, क्योंकी आरंज हिंसा तो श्रावकसें होती है, इस वास्ते दश विश्वामेंमूं पांच विश्वा फेर जाता रहा, एतावता संकल्प करकें त्रस जीवकी हिंसाका त्याग है, फेर इसकेजी दो नेद हैं, एक सापराधी है, दूसरा निरपराधी है, तिनमें जो निरपराधी जीव हैं, उसकों नहीं हननां, अरु सापराधी जीवकूं हननेकी जयणा है, जिस वास्ते सापराधी जीवकी दया सदा सर्वथा श्रावकसें नहीं पलती है, क्योंकि घरमेंसें चोर चोरी करकें वस्तु लीये जाता है, सो विना मारे कूटे छोमता नहीं, तथा श्रावक की स्त्रीसें कोइ अन्य पुरुष अनाचार सेवता देखनेमें आवे, तिसकों मारणां पडे, तथा कोइ श्रावक राजा है, तथा राजाका आदेशसेंती युद्ध करनेकों जावे, तब प्रथम तो श्रावक शस्त्र चलावे नहीं, परंतु जब शत्रु शस्त्र चलावे मारणेकों आवे, तब तिसकों मारणां पडे, तथा सिंहादि जनावर खानेकों आवे, तब उसकों मारणां पडे, तब संकल्पसेंजी हिंसाका त्याग नहीं. इस वास्ते पांच विश्वामेंसूंजी अर्द्ध जाते रहे, पीछे अढाइ विश्वा दया रह गइ, मात्र निरपराधी त्रस जीव दृष्टिगोचर आवे, तिसकों न मारुं? यह नियम रहा, इसकेजी दो नेद हैं. एक सापेक्ष, दूसरा निरपेक्ष, इनमें जी सापेक्ष निरपराधी जीवकी श्रावकसें दया नहीं पलती है, क्योंकि श्रावक जब आप घोडा, घोडी, बैल, रथ, गाडी प्रमुखकी असवारी करकें घोडादिक ...ो हांकता है, तब घोडे आदिककों चाबकादि मारता है, यहां घोडे तथा बैलादिकोंने कुछ इसका अपराध नहीं करा है, उसकी पीठ ऊपर तो चढ रहा है, अरु यह जानता नहीं कि इस बिचारे जीवकी चलनेकी शक्ति है कि नहीं है? जबवे ... चलते हैं, तथा नहीं चलते हैं, तब अज्ञान ... ने इनकों मा... ...ि है, यह निरपराधीकोंजी दुःख ... पुत्र, पुत्री, स्वामी, गोमीद ... मुखके दांतमें कीमा पडे, नि

नोंके दूर करणे वास्ते कीमायोंकी जगामें औषधि लगानी पडती है, अरु इन जीवोने श्रावकका कुछ अपराधभी नहीं करा है, क्योंकि वो विचारे अपने कर्मोंके वशसें ऐसी योनिमें उत्पन्न हूये हैं, कुछ श्रावकका बूरा करनेकी भावनासें उत्पन्न नहीं हूवे हैं, तो उनकी हिंसाभी श्रावकसें त्यागी नहीं जाती है, इस वास्ते फेर अर्द्ध जाता रहा. शेष सवा विश्वाकी दया रह गइ, यह सवा विश्वा दयाभी शुद्ध श्रावक होवे, सो पाल सक्ता है, एतावता संकल्पसें निरपराध त्रस जीवोंकों कारण विना हणुं नहीं, यह प्रतिज्ञा जहां लगि अपणी शक्ति रहे, तहां लगि पाले, निर्ध्वंसपणा न करे, सदा मनमें यह भावना रक्खे, कि मतमेरेसें कोई जीव मर जाय?

तथा घरमें आरंभ करतेभी यत्न करे, तथा लकमी जलाने वास्ते लेवे तव सनी हूई न लेवे, परंतु आगेंकों जिसमें जीव न पमे, ऐसी पक्की, सूकी लकमी लेवे, और रसोईकी वखत लकडीकों झटका कर जीव रहित करकें जलावे, तथा घी, तेल, मीठा प्रमुख रस भरी वस्तुके वासणका मुख वांध कर यत्नसें राखे, उघामा न रक्खे, तथा चूलेके उपर अरु पाणीके स्थान उपर चंद्रवा अर्थात् छत उपर कपमा ताणे, तथा खानेकों जो अन्न ल्यावे, सो भींजा हूआ न ल्यावे, शुद्ध नवा अन्न खानेकों ल्यावे, कदापि एक वर्षके उपरांतका अन्न ल्यावे, तो जिसमें जीव न पमे होवे, सो ल्यावे, तथा पाणीके छानने वास्ते वहुत गाढा दृढवस्त्र रक्खे, एक प्रहर पीछें पाणीकों फेर छान लेवे, जो जीव निकले, सो जीव जिस कूवेका पाणी होवे, उसीमें डाल देवे, तथा वर्षा ऋतुमें वहुत जीवोंकी उत्पत्ति हो जाती है, तिस वास्ते गाडी रथकी अस्वारी न करे, क्योंकि जहां चक्र फिरता है, तहां असंख्य जीवोंका विध्वंस होता है, हरिकाय, वहुवीजां फल, त्रस संयुक्त फल न खावे, तथा खाटमें माकड प्रमुख जीव पम जाते हैं, इस वास्ते धूपमें न रक्खे, दूसरी खाट वदल लेवे, तथा सड्या हूवां अन्न धूपमें न रक्खे, जूठा पाणी, अन्नके संसर्गवाला मोरीमें न गेरे, क्योंकि मोरीमें वहुव जीव उत्पन्न हो जाते हैं, अरु मोरीके सम जानेसें घरमें विमारी हो जाती है, तथा चैत्रवदि एकमसें ले कर पत्तोंवाला शाक, आठ मास तक न खावे, क्योंकि पत्रशाकमें वहूत त्रस जीव उत्पन्न हो जाते हैं, एक तो त्रस जीवोंकी हिंसा होती है; अरु दूसरा उन त्रस जी

बोंके खानेसें अनेक रोग (बिमारीयां) उत्पन्न हो जातीयां हें, अरु शीत कालमें एक मास तथा उष्णकालमें बीस दिन, तथा वर्षा ऋतुमें पंदरह दिनके उपरांतकी बनी हुइ मिठाई (पक्वान्न) न खावे, क्योंकि उसमें त्रस स्थावर जीव उत्पन्न होते हें, अरु खानेवालेकों रोगोत्पत्तिजी हो जाती हे, तथा वासी अन्न, रोटी प्रमुख न खावे, क्योंकि इनमें जीवोत्पत्ति होती हे. अरु रोगजी हो जाता हे, बुद्धि मंद हो जाती हे, तथा घरमें सावरणी अर्थात् बुहारी, कोमल शण प्रमुखकी रक्खे, जिस्सें जीव न मरे, तथा स्नान, बहुत जलसें न करे, अरु रेतली नूमिकामें स्नान करे, तथा मोटी परातमें बेठकें स्नान करे, अरु स्नानका पाणी मैदानमें थोमा थोमा करकें गेर देवे, मोरी उपर बेठके स्नान न करे, तथा जहां पर्यंत थोडे पापवाला व्यापार मिले, तहां लग महापापकारी व्यापार नोकरी आदि क न करे, तथा किसीका हक्क तोडे नहीं, घरमें जूठे अन्नका पाणी दो घडी उपरांत न रक्खे, क्योंकि उसमें जीव उत्पन्न हो जाता हें, तथा जो वस्तु उठावे, तथा रक्खे, तब पहिलां उस जगाकों नेत्रोंसें देख लेवे, पूंज लेवे, पीछेसें वस्तु रक्खे, मोटी मोरीमें जल गेरे नहीं, तथा दीवा वत्ती जलावे, तो फानसादि यत्नसें जीवरक्षा करे, तथा जिस पात्रसें पाणी पीवे, वो पात्र, फेर जलमें जूठा न रूबोवे, क्योंकि मुखकी लालां लगनेंसें जीव उत्पन्न होते हें, अरु बहुतोंकी जूठ खाने पीनेसें बुद्धि संक्रमण हो जाती हे, अरु केइक रोग असें हें कि जिस रोगीका जूठा खावे, पीवे, उस रोगीका रोग, खाने पीनेवालेकों लग जाता हे, सो रोग यह हे कि कुष्ट, क्षय, रेजस, शीतला वगेरे. इस वास्ते वस्तु जूठी न करनी, अरु बहुतोंके साथ एकठा खावे नहीं, अरु मटकेसें पाणी काढने वास्ते दंडीदार काठका चट्टु रक्खे. इत्यादि शुद्ध व्यवहारमें प्रवर्त्ते, तो श्रावकके दया, सवा विश्व होवे, इसी रीतीसें प्रथम व्रत श्रावकके शुद्ध हें, इस व्रतके पांच अतिचार हें, अर्थात् पांच कलंक हें, तिनकों वर्जे, सो लिखते हें.

१ प्रथम वध अतिचार. सो क्रोधके उदयसें अरु बलके अभिमानसें निर्दय हो कर गाय, घोमा, प्रमुखकों कूटे, मारके चलावे, सो प्रथम अतिचार

२ दूसरा बंधअतिचार. सो गाय, बलद, बछडा प्रमुख जीवोंकों कठिन जबरा बंधनसें बांधे, वो जीव कठिन बंधनसें अति दुःख पाते हें,

अरु कदापि अग्निका भय हूआ तो जलदि छूट नहीं सकते हैं, तब मर भी जाते हैं. इस वास्ते कठिन बंधनभी अतिचार है, इस हेतुसें जनावर कों ढीले बंधनसें बांधनां चाहियें. अरु कोइ गुनेगार मनुष्य होवे, उस कोंभी निर्दय हो कर गाढा बंध न बांधनां चाहियें, यह दूसरा अतिचारहै.

३ तीसरा छविछेद अतिचार है. सो बैल प्रमुखका कान, नाक, छिदा वे, नथ गेरे, खस्सी करे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चउथा अतिभारारोपण अतिचार है, सो बैल प्रमुखके उपर जित ना भार लादनेकी रीती है, तिस्सें अधिक भार लादे, तब अतिभारारो पण अतिचार होता है, श्रावककों तो सदा जिस बैल, रासभ, गाडी प्र मुखमें भार लादते होवे, उस्सेंभी पांच सेर, दश सेर, भार कम लादनां चाहियें, तो व्रत शुद्ध रहे, तिसमेंभी जे कर कोइ जानवरकी चलनेकी शक्ति कम होवे, तब विवेकी होवे, सो तिस भारकोंभी थोडा कर देवे, अरु जानवर दुर्बल होवे, तो तिसकी घास दाणेकी खबर लेवे, परंतु मनमें ऐसा विचार न करे कि सर्व लोक जितना भार लादते हैं, तिन के बराबर मेंभी लादता हुं, यह तो व्यवहार शुद्ध है. ऐसा न विचारे अधिक बोझ होवे, तो और भाडा कर लेवे श्रावकोंका यह व्यवहार है.

५ पांचमा अतिचार भात पाणीका व्यवछेद करनां, सो जो बलद घोडेके खाने योग्य होवे, सो बंद कर देवे, अथवा उसमेंसुं कछुक काढ लेवे, अरु खानेका समय लंघा कर पीछें खानेकों देवे, तो अतिचार लगे, तथा किसीकी आजीविका नौकरी बंद करे, वोभी इसी अतिचारमें है. श्रावक तो दासी, दास, कुटुंब चौपाये, बैलादि, इन सर्वके खाने पीनेकी खबर ले कें पीछे आप भोजन करे, अरु उपलक्षणसें हिंसाकारी मंत्र, तंत्रादि किसीकों करे, वेभी अतिचार जानने. यह पांच अतिचार श्रावक जान तो लेवे, परंतु करे नहीं. यहां बारह व्रतोंकें सर्व अतिचार भंग होनेके संभवासंभवकी विशेष चर्चा देखनी होवे, तब धर्मरत्न प्रकरणकी टीका श्रीदेवेंद्रसूरिकृत हैं, सो देख लेनी, इहां तो निःकेवल अतिचारही में लि खूंगा ॥ इति श्रावक प्रथम व्रतं संपूर्णं ॥

अथ दूसरा स्थूलमृषावाद विरमणव्रतक स्वरूप लिखते हैं. स्थूल नाम है मोटेका, उस मोटे झूठका विरमण (त्याग) करनां, क्योंकि झूठ

वोलनेसें जगत्में उसकी अप्रतीति हो जाती हैं, अपयश होता है, ध र्मकी निंदा होती है, तथा अपणे मतलव वास्ते जो कम वेश करनां इ सका जो त्याग, सो मृषावादविरमणव्रत कहते हैं. तिस मृषावादके दो जेद हैं, एक द्रव्यमृषावाद, दूसरा जावमृषावाद, तिनमें जो जान कर तथा अजान पणेसें झूठ वोले, सो द्रव्यमृषावाद है, तथा सर्व परजाव व स्तुकों अर्थात् पुद्गलादि जम वस्तुकों आत्मत्व बुद्धि करकें अपणा कहे, तथा राग, द्वेष, कृष्णादि लेश्यासें आगमविरुद्ध वोले, शास्त्रका सच्चा अर्थ कुयुक्तिसें नष्ट करे, उत्सूत्र वोले, उसकों जावमृषावाद कहते हैं.

यह व्रत सर्वव्रतोमें मोटा है, इसके पालनेमें वहुत शुद्ध उपयोग अरु हुस्यारी चाहियें, क्यों कि प्रथमव्रतमें तो जीव मात्रके जाननेसें दया पल सक्ती है. अरु दूसरोंकी वस्तुकों विना दीये न लेनेसें अदत्तविरमणतीस रा व्रत पल जाता है, तथा स्त्री मात्रका संग त्यागनेसें चौथा व्रत पलता है, तथा नवविध परिग्रहके त्यागनेसें परिग्रहव्रतजी पल जाता है, इसी तरें एकेक द्रव्यके जाननेसें यह चारो व्रत पाले जाते हैं, अरु मृषावाद विरमणव्रत तो जहां लगि षट्द्रव्यकी गुणपर्यायसें तथा द्रव्य, क्षेत्र, काल, जावकी अछी तरेंसें पिठाण न होवे, सम्मति प्रमुख द्रव्यानु योगके शास्त्र न पढे, वहुत निपुन ज्ञानवान् न होवे, तहां तलक पालनां कठिन है, क्योंकि एक पर्यायमात्रजी विरुद्ध जापण करनेसें यह व्रत जंग हो जाता है, इसी वास्तेही साधुओंकों वहुत वोलणां शास्त्रमें निषेध करा है, अरु जे पूर्वोक्त चारों महाव्रतोमेंसूं एक महाव्रत जेकर जंग हो जावे, तव तो चारित्र जंग होवे, अरु नहींजी जंग होवे, क्यों कि जे कर एकही कुशील सेवे, तो सर्वथा चारित्र जंग होवे, शेष व्रतो संकुलसें देशजंग होवे परंतु सर्वथा जंग नहीं होवे, यह व्यवहार जाप्यमें कहा है. परंतु उस का ज्ञान, दर्शन, जंग नहीं होवे, अरु जव मृषावादविरमणव्रत जंग होवे, तव तो ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह तीनोंही जमामूलसें जाते रहते हैं. अरु मर करकें डुर्गतिमें जाता है, अनंत संसारी डुर्लज वोधी हो जाता है, इस वास्ते जे कर यह व्रत पालनां होवे, तो षट्द्रव्य के गुण पर्याव जाननेमें अति उद्यम करे, जे कर बुद्धिकी मंदता होवे, तव गीतार्थके कहने प्रमाण श्रद्धा प्ररूपणा करे, क्योंकि द्रव्यमृषावाद

के त्यागी जीव तो षट् दर्शनमेंभी हो सक्ते है, परंतु भावमृषावादका त्यागी तो एक श्रीजिनेंद्रदेवके मतमेंही मिलेगा, जो जीव श्रद्धारुचि शुद्ध धारेगा, सोइ होवेगा. अब इस मृषावादके पांच मोटे भेद हैं, सो श्रावककों अवश्य वर्जने चाहियें, सो कहते हैं.

१ प्रथम कन्यालीकझुठ, सो अपणे मिलापीकी कन्या है, उसकी सगाइ होने लगी होवे, तब कन्याके लेने वाले पूछे कि यह कन्या कैसी है? तब वो मिलापीकी प्रीतिसें उस कन्यामें जो दूषण होवे सो छिपावे, गुण न होवे तोभी अधिक गुणवाली कह देवे, कि यह कन्या निर्दोष है, औसी कुलवान्, लक्षणवान्, साक्षात् देवांगना समान तुमकों मिलनी मुशकिल है, औसा कह देवें, अरु जे कर मिलापीके साथ द्वेष होवे, तदा वो कन्या जो निर्दोष लक्षणवंती होवे, तोभी कहे कि इस कन्यामें अछे लक्षण नहीं है, विडालनेत्री है, इसके साथ जो संबंध करेगा, वो पश्चात्ताप करेगा, औसे अणहोये दूषण बोल देवे, यह कन्यालीक झूठ है. प्रथम तो व्रतधारी श्रावक किसीकी सगाइ झगडेमें पडे नहीं, अरु जे कर आपणा संबंधी मित्रादिक होवे वो पूछे, तब यथार्थ कहे, कि भाइ! तुम अपणा निश्चय कर लो, क्योंकि जन्मपर्यंतका संबंध है, औसे कहे, परंतु झूठ न बोले. यह कन्यालीकमें उपलक्षणसेंती सर्व दो पगवालेका झूठ न बोले.

२ दूसरा गवालीक झूठ. सो सर्व चौपद जो हाथी, घोडा, बलद, गाय, भैंस, प्रमुख संबंधी झूठ न बोले.

३ तीसरा भूम्यालीक झूठ. सो दूसरेकी धरतीको अपनी कहे, तथा औरकी भूमिकों औरकी कहे, तथा घर, हवेली, वाडी, बाग, (बगीचा) वृक्षादिक, संबंधी तथा सर्व परीग्रह संबंधीभी झूठ न बोले.

४ चौथा थापणमोसाका झूठ है. कोइ पुरुष श्रावककों प्रतीत वाला जान कर, उसके पास विना साक्षी तथा लिखत करे विना कोइ वस्तु रख गया है, फिर वो मांगनें आवे, तब नामुकर जावे, कहे कि में तुमकों जानताही नहीं, तुम कौन हो? औसा झूठ बोलके उसकी वस्तु रख लेवे, यहभी श्रावकनें नहीं करनां.

५ पांचमा झूठी साक्षी भरनी. सो दो जणे आपसमें झगडते हूं, तिसमें झूठे पासों धन ले कर अथवा उसके मुंहलाद भैंसें झूठी गवाही देनी,

दे देवे, जे कर उस वस्तुके स्वामीकों न जाने, अरु अपणा मन दृढ रहे, तो लेवे नहीं, अरु कदाचित् बहुमोली वस्तु होवे, अरु मनदृढ न रहे, तो उस वस्तुकों ले कर अपने पास कितनेक दिन रखे, जे कर उसका मालक कोइ जान पडे, तो उसकों दे देवे, जे कर उसका स्वामी कोइ मालम न पडे, तो धर्मखातेमें उस धनकों लगा देवे, जेकर लोज अधिक होवे, तो अर्द्ध धर्ममें लगा देवे. तथा अपणी जमीनकूं खोदतां तिसमेंसूं धन निकल आवे, तो रखनेका आगार है, परंतु इसमेंजी अर्द्ध जाग अथवा चौथा हिस्सा धर्ममें लगावे, तथा दूसरेकी जगा मोलसें लीनी होवे, उसमेंसूं खोदतां जे कर धन निकल आवे, जे कर मनमें संतोष होवे, तब तो उस मकान वालेकों वो धन दे देवे, जे कर लोज होवे, तब आधा धर्ममें लगावे, अरु आधा अपने पास रखे, तथा कोइ पुरुष अपने पास धन रख कर, पीछेसें मर गया होवे, अरु उसका कोइ वारस न होवे, तब श्रावक उस धनकों जले पंचके आगें जाहर करे, जो कुछ पंच कहे, सो करे, कदापि देश कालकी विषमतासें उस धनकों जाहेर करते कोइ राजसंबंधी क्लेष उठता मालुम पडे, कोइ दुष्ट राजा लोजके वशसें कहे कि तेरे घरमें औरजी अैसा धन है. इत्यादि होवे, तब तो मौन करकें उस धनकों धर्मस्थानमें लगा देवे.

तथा घरकी चोंरी सो यह है किः—घरकी सर्व वस्तुओंका मालक माता पिता है, तिनके पूछे विना धन वस्त्रादि लेनेकी जयणा रखे, अथवा जिस के साथ प्रेम होवे, तथा जो संबंधी होवे, जिसके घरमें जाने आनेका अरुखाने पीनेका व्यवहार होवे, उसके विना पूछे कोइ फलादि वस्तु खानेमें आवे, उसका आगार रखे, परंतु जे कर उस वस्तुके खानेसें मालककोंका मन दुःखे, तो न लेवे. इसी रीतीसें तीसरा अदत्तव्रत पाले. यह व्यवहार शुद्ध अदत्तादान विरमणव्रत है.

अरु निश्चयसेंतो तो जितना अबंधपरिणाम हुआ है, गुणस्थानकी वृद्धि होनेसें बंध व्यवछेद हुआ, सो निश्चय अदत्तविरमणव्रत कहियें है. इस व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्जे सो कहते हैं.

१ प्रथम तेनाहृत अतिचार है, सो चोरकी चोराइ वस्तु तिसकों तेनाहृत कहते हे. सो वस्तु न लेवे, एतावता चोरीकी वस्तु जाण कर कें न लेवे,

क्यों कि जो चोरीकी वस्तु जानके लेता है, वो लेने वालाभी चोर है, जे कर जैनमतके शास्त्रोमें सात प्रकारके चोर लिखे हैं ॥ यदाह ॥ चौर श्चौरापको मंत्री, भेदज्ञः काणकक्रयी ॥ अन्नदः स्थानदश्चैव, चौरः सप्त विधः स्मृतः ॥ १ ॥ यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा प्रयोगअतिचार. सो चोरी करने वालोंकों प्रेरणा करणी कि:– अरे ! तुम चुप चाप निर्व्यापार आज कल क्यों बेठ रहे हो ? जे कर तुमारे पास खरची नहीं होवे, तो में देता हूं, अरु तुमारी ल्याइ हुइ वस्तु में वेच देऊंगा. तुम चोरी करणे वास्ते जाओ. इत्यादि वचनों कर के चोरोंकों प्रेरणा करणी. यह दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा तत्प्रतिरूपकव्यवहार अतिचार. सो सरस वस्तुमें नीरस वस्तु मिला करकें वेचे. जैसें केशरमें कशुंभादि मिला करकें वेचे, घीमें ठा ठादि, हिंगमें गुंदादि, खोटी कस्तूरी खरी करकें वेचे, अफयूनमें खोट मि लाने, पुराणा वस्त्र रंगा कर नवेके भाव वेचे, रूइको पाणीसें जिंजो कर वेचे, दूधमें पाणी मिलायकें वेचे, इत्यादि करे, तो तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा राजविरुद्धगमन अतिचार है. सो अपणे गामके वा देशके राजाने आज्ञा दीनी है, जो फलाणे गाममें जाणां नहीं. इत्यादि जो रा जाकी आज्ञा है, उसका उल्लंघन करनां, वैरी राजाके देशमें अपने रा जाके हुकुम विना जानां, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा खोटा तोला, मापा, करणेका अतिचार है. सो कूट तोलां, मापा, करणा, कमती तोलसें तो देणां, अरु अधिक तोलसें ले लेणां, यह पांचमा अतिचार है. यह पांचो अतिचारकों वर्जे ॥ इति तृतीयव्रतं संपूर्ण ॥

४ चौथा मैथुनसेवनेका त्याग करनां, तिसका नाम मैथुनत्याग व्रत कहते हैं. तिस मैथुनके दो भेद हैं, एक द्रव्यमैथुनत्याग, दूसरा भाव मैथु नत्याग, उसमें द्रव्यमैथुन तो परस्त्री तथा परपुरुषके साथ संगम करनां, सो पुरुष स्त्रीका त्याग करे, अरु स्त्री पुरुषका त्याग करे, रतिक्रीडा काम से वनका त्याग करे तिसकों द्रव्यब्रह्मचारी तथा व्यवहारब्रह्मचारी कहियें.

दूसरा भाव मैथुन है. सो एक चेतन पुरुषके विषयविलास परपरिण तिरूप, तथा तृष्णा ममता रूप, इत्यादि कुवासना, सो निश्चय परस्त्रीकों मिलनां तिसके साथ लाल पाल कामविलास करनां, सो भावमैथुन जान

नां. तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हित शिक्षासें ज्ञान हूआ तब जातिहीन जान करकें अनागत कालमें महा दुःखदायी जान कर पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनंत जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम भक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक है. अरु विभाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविभूति हर लीनी है, तो अब सद्गुरुकी सहायसेंती ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हूई थी, तिसका थोडा थोडा निग्रह करुं, त्यागनेका भाव आदरुं, जिस्सें शुद्ध भाव घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, ऐसी समझ पा करकें परपरिणतिमें ममता त्यागे, औ कर्मके उदयमें व्यापक न होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो भाव मैथुनका त्यागी कहीयें. इहां द्रव्यमैथुनके त्यागी तो षट् दर्शनमें मिल सक्ते हैं, परंतु भावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसें भेदज्ञान जब घटमें प्रगट होता है, तब भवपरिणतिसें सहज उदासीन रूप भाव मैथुनका त्यागी जैनमतमेंही होता है. इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत. सो परस्त्रीका त्याग करनां, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रक्खी हूइ स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, ऐसा जो प्रत्याख्यान करनां सो परदारगमन विरमणव्रत है. अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें संतोष करुं, ऐसा जो व्रत धारण करे, तिसको स्वदारसंतोष व्रत कहियें.

देवांगना तथा तिर्यंचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्त्तमान स्त्री वर्जके और स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीसेंभी संजोग न करे, क्योंकि दिनसंजोगसें जो संतान उत्पन्न होता है, सो निर्बल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीभी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीभी परपुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें चौथा व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्जे, सो लिखते है.

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार. सो विना वियाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनकों अपरिगृहीता कहते है, क्योंकि इनका कोइ भर्त्तार नहीं है, जे कर कोइ अल्पमति विषयाभिलाषी मनमें विचारे, कि मैंने तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीभी स्त्रीयां नहीं है, इनसें

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा ? ऐसा विचार करकें कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ भोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे. तथा स्त्रीभी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंडे पुरुषसें व्यभिचार सेवे, तब तिस स्त्रीकोंभी अतिचार लगे.

२ दूसरा इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार है. तिसका स्वरूप कहते हैं. इत्वर नाम थोडे कालका है, सो थोडेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच कें वेश्यादिकोंको अपनी करकें रक्खी है; इहां कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिकक्रों तो मैने अपणी स्त्री बना करकें थोडेसे काल वास्ते रक्खी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा ? ऐसे अज्ञानके विचारसें उसके साथ संगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे. अरु स्त्रीकोंभी जब अपणी सौकणकी वारीके दिनमें अपने भर्त्तारसें विषय सेवे, वो अपणे मनमें ऐसा विचार करे, कि अपणे पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा, क्यों कि मैनें तो परपुरुषका त्याग करा है? यह दूसरा अतिचार. इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावकक्रों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतभंग होवे, परंतु अतिचार नहीं.

३ तीसरा अनंगक्रीडा अतिचार है. सो अनंग नाम कामका है, तिस काम कंदर्प्पको जाग्रत करनां, आलिंगन, चुंबन प्रमुख करनां, नेत्रोंका हाव, भाव, कटाक्ष, हास्य, ठठ्ठा, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंनें तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनंगक्रीडा तो नहीं त्यागी है; परंतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने महापाप उपार्जन कर लीया, निश्चय नयके मतसें उसका व्रतभंगभी हो गया, तथा अपणी स्त्रीसें चौरासी आसनोसें भोग करे, तथा पंदरा तिथिके हिसाबसें स्त्रीके अंगमर्द्दनादि करकें काम जगावे, तथा परम कामाभिलाषी होनेसें जब अपनी स्त्रीका भोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीभी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु संचार करकें हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंभी अतिचार है; तिस वास्ते श्रावकक्रों जे

नां. तिसकों जिनवाणीके उपदेशसें, तथा गुरुकी हित शिक्षासें ज्ञान हूआ तब जातिहीन जान करकें अनागत कालमें महा दुःखदायी जान कर पूर्वकालमें इसकी संगतसें अनंत जन्म मरणका दुःख पाया, इस वास्ते इस विजातीय स्त्रीकों तजनां ठीक है, अरु मेरी जो स्वजाति स्त्री परम भक्त, उत्तम, सुकुलिनी, समतारूप सुंदरी, तिसका संग करनां ठीक है. अरु विभाव परिणतिरूप परस्त्रीनें मेरी सर्वविभूति हर लीनी है, तो अब सद्गुरुकी सहायसेंती ए दुष्ट परिणामरूप जो स्त्री, संग लगी हूई थी, तिसका थोडा थोडा निग्रह करुं, त्यागनेका भाव आदरुं, जिस्सें शुद्ध भाव घटरूप घरमें आ जावे, तथा स्वरूप तेजकी वृद्धि होवे, ऐसी समझ पा करकें परपरिणतिमें मग्नता त्यागे, औ कर्मके उदयमें व्यापक न होवे, शुद्ध चेतनाका संगी होवे, सो भाव मैथुनका त्यागी कहीयें. इहां द्रव्यमैथुनके त्यागी तो षट् दर्शनमें मिल सक्ते हैं, परंतु भावमैथुनका त्यागी तो श्रीजिनवाणी सुननेसें भेदज्ञान जब घटमें प्रगट होता है, तब भवपरिणतिसें सहज उदासीन रूप भाव मैथुनका त्यागी जैनमतमेंही होता है. इहां स्थूल परस्त्रीगमन व्रत. सो परस्त्रीका त्याग करनां, परपुरुषकी विवाहिता स्त्री, तथा परकी रक्खी हूइ स्त्री, तिसके साथ अनाचार न सेवनां, ऐसा जो प्रत्याख्यान करनां सो परदारगमन विरमणव्रत हैं. अरु जो अपणी स्त्री है, तिसमें संतोष करुं, ऐसा जो व्रत धारण करे, तिसको स्वदारसंतोष व्रत कहियें.

देवांगना तथा तिर्यंचणी इनके साथ तो कायासें मैथुन सेवनका निषेध है, तथा वर्त्तमान स्त्री वर्जकें और स्त्रीसें विवाह न करे, तथा दिनमें अपणी स्त्रीसेंभी संभोग न करे, क्योंकि दिनसंभोगसें जो संतान उत्पन्न होता हैं, सो निर्बल होता है, जे कर कामाधिक होवे, तो दिनकीभी मर्यादा कर लेवे, इसी तरें स्त्रीभी परपुरुषका त्याग करे, इसी रीतिसें चौथा व्रत पाले, इस व्रतके पांच अतिचार है, उसकों वर्जे, सो लिखते हैं.

१ प्रथम अपरिगृहीतागमन अतिचार. सो विना विवाही स्त्री (कुमारी) तथा विधवा इनकों अपरिगृहीता कहते हैं, क्योंकि इनका कोइ भर्तार नहीं है, जे कर कोइ अल्पमति विषयाभिलाषी मनमें विचारे, कि मैंनें तो परस्त्रीका त्याग करा है, अरु एतो किसीकीभी स्त्रीयां नहीं है, इनके

साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा? ऐसा विचार करकें कुमारी तथा विधवा स्त्रीके साथ भोग विलास करे, तो प्रथम अतिचार लग जावे. तथा स्त्रीभी व्रत धारक हो कर कुमारे पुरुषसें तथा रंडे पुरुषसें व्यभिचार सेवे, तव तिस स्त्रीकोंभी अतिचार लगे.

२ दूसरा इत्वरपरिगृहीतागमन अतिचार है. तिसका स्वरूप कहते हैं. इत्वर नाम थोडे कालका है, सो थोडेसे काल वास्ते किसी पुरुषने धन खरच कें वेश्यादिकोंको अपनी करकें रखी है, इहां कोइ अज्ञानके उदयसें मनमें ऐसा विचार करे कि मेरे तो परस्त्रीका त्याग है, अरु इस वेश्यादिककों तो मैंने अपणी स्त्री बना करकें थोडेसे काल वास्ते रखी है, तो इसके साथ विषय सेवनेसें मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा? ऐसे अज्ञानके विचारसें उसके साथ संगम (विषय सेवन) करे, तो दूसरा अतिचार लगे. अरु स्त्रीकोंभी जब अपणी सोकणकी वारीके दिनमें अपने भर्त्तारसें विषय सेवे, वो अपणे मनमें ऐसा विचार करे, कि अपणे पतिके साथ विषय सेवनेसें, मेरा व्रतभंग नहीं होवेगा, क्यों कि मैंनें तो परपुरुषका त्याग करा है? यह दूसरा अतिचार. इन पूर्वोक्त दोनों अतिचारोंको जो श्रावक जानता है, कि ये श्रावककों करने योग्य नहीं अरु फेर जे कर करे, तो व्रतभंग होवे, परंतु अतिचार नहीं.

३ तीसरा अनंगक्रीडा अतिचार है. सो अनंग नाम कामका है, तिस काम कंदर्प्पको जाग्रत करनां, आलिंगन, चुंबन प्रमुख करनां, नेत्रोंका हाव, भाव, कटाक्ष, हास्य, ठठा, मस्करी प्रमुख परस्त्रीसें करे, सो दिलमें शोचता है कि मैंनें तो परस्पर एक शय्या उपरि विषय सेवनेका त्याग करा है, परंतु पूर्वोक्त अनंगक्रीडा तो नहीं त्यागी है, परंतु वो मूढमति यह नहीं जानता है, कि ऐसा काम करने वालेका व्रत कदापि न रहेगा, अरु मनसें उस जीवने महापाप उपार्जन कर लीया. निश्चय नयके मतसें उसका व्रतभंगभी हो गया, तथा अपणी स्त्रीसें चौरासी आसनोसें भोग करे, तथा पंदरा तिथिके हिसाबसें स्त्रीके अंगमर्दनादि करकें काम जगावे, तथा परम कामाभिलाषी होनेसें जब अपनी स्त्रीका भोग न मिले, तब हस्तकर्म करे, स्त्रीभी काम व्याप्त हो कर गुह्यस्थानमें कोइ वस्तु संचार करकें हस्तकर्म करे, तब स्त्रीकोंभी अतिचार है, तिस वास्ते श्रावककों जे

सें तेसें करकें कामेछा घटानी चाहियें. क्यों कि विषयके घटानेसें अरु वीर्यके रखनेसें बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है, अरु अधिक काम सेवनेसें मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्ष्मा, (क्षय) भ्रम, मूर्छा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय मग्न होनां न चाहियें. केवल जिस्सें वेदविकार शांत हो जावे, तितनांही मैथुन करनां चाहियें. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री संबंधि काम सेवनकी जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसें जरी हुई विचारे, मलीन वस्तु है, मुखमें दुर्गंध जरी है, नाकमें सिंघाणकी दुर्गंध है, कानोंमें मैल है, पेटमें विष्टा, मूत्र, जरा है, नसायोंमें खाये पीयेका रस, रुधिर, हाम, चाम, चर्वी, वाय, पित्त, कफ, जरा है, महा अशुचिका पूतला है, जिस अंगमें वास लेवेगा, उहां महा दुर्गंध उछलती है, अनित्य अशाश्वत है, सम्न, पतन, विध्वंसन हो जानां, यह इसका स्वनाव है, तो फेर हे मूढ जीव! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है! ऐसें विचारसें कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है.

४ चोथा परविवाह करण अतिचार है. सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यश के वास्ते, पुण्यके वास्ते, औंर लोकोंके विवाह करावे, सो चोथा अतिचार.

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है. सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अभिलाष धरे, पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके देखे विना क्षणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, जांग, हरताल, पारा प्रमुख खावे, तीव्रकाममें प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे, अथवा स्त्रीनी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव जाव विषय लालसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासें जाननां ॥ इति चतुर्थव्रत समाप्तं ॥

५ अथ पांचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते हैं. परिग्रहके दो नेद हैं. एक तो बाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो द्रव्यपरिग्रह नव प्रकारका है. दूसरा जाव परिग्रह, सो चौदह अभ्यंतर ग्रंथिरूप जो परजावका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सकषाई पणे बंध, सो जावपरिग्रह है, अरु

सें तैसें करकें कामेछा घटानी चाहियें. क्यों कि विषयके घटा... वीर्यके रखनेसें बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि होती है अरु अधिक काम सेवनेसें मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्ष्मा, (क्षय) भ्रम, मूर्छा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों अत्यंत विषय मग्न होनां न चाहियें. केवल जिस्सें वेदविकार शांत हो जावे तितनांही मैथुन करनां चाहियें. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब स्त्री संबंधि काम सेवनकी जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसें जरी हुई विचारे मलीन वस्तु है, मुखमें दुर्गंध जरी है, नाकमें सिंवाणकी दुर्गंध है कानोंमें मेल है, पेटमें विष्टा, मूत्र, जरा है, नसायोंमें खाये पीयेका रस रुधिर, हाम, चाम, चर्वी, वाय, पित्त, कफ, जरा है, महा अशुचिका पुतला है, जिस अंगमें वास लेवेगा, उहां महा दुर्गंध उछलती है, अनित्य अशाश्वत है, सम्न, पतन, विध्वंसन हो जानां, यह इसका स्वभाव है, तो फेर हे मूढ जीव! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है। ऐसें विचारसें कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार है.

४ चोथा परविवाह करण अतिचार है. सो अपणी पुत्र पुत्री विना, यश के वास्ते, पुण्यके वास्ते, ओर लोकोंके विवाह करावे, सो चोथा अतिचार.

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार है. सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अभिलाष धरे, पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीके देखे विना क्षणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, जांग, हरताल, पारा प्रमुख खावे, तीव्रकाममें प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे, अथवा स्त्रीजी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव जाव विषय लालसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासें जाननां ॥ इति चतुर्थव्रत समाप्तं ॥

५ अथ पांचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते हैं. परिग्रहके दो जेद हैं, एक तो बाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो द्रव्यपरिग्रह नव प्रकारका है. दूसरा जाव परिग्रह, सा चोदह अभ्यंतर ग्रंथिरूप जो परजावका ग्रहण समस्त प्रदेश सहित सकपाइ पणे बंध, सो जावपरिग्रह है, अरु

सें तैसें करकें कामेछा घटानी चाहियें. क्यों कि विषयके वीर्यके रखनेसें बुद्धि, आरोग्य, दीर्घायु, बल प्रमुखकी वृद्धि अरु अधिक काम सेवनेसें मन मलिन, पापवृद्धि, राजयक्ष्मा, (क्षय) मूर्छा, क्लम, स्वेदादि रोग उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते श्रावककों विषय मग्न होनां न चाहियें. केवल जिस्सें वेदविकार शांत हो जावे तितनांही मैथुन करनां चाहियें. अरु जब काम उत्पन्न होवे, तब संबंधि काम सेवनकी जगाकों जाजरू समान मलमूत्रसें जरी हुई मलीन वस्तु हे, मुखमें दुर्गंध जरी हे, नाकमें सिंघाणकी दुर्गंध कानोंमें मेल हे, पेटमें विष्टा, मूत्र, जरा हे, नसायोंमें खाये पीयेका रस रुधिर, हाम, चाम, चर्वी, वाय, पित्त, कफ, जरा हे, महा अशुचिका तला हे, जिस अंगमें वास लेवेगा, उहां महा दुर्गंध उछलती हे, अरु अशाश्वत हे, सडन, पतन, विध्वंसन हो जानां, यह इसका स्वभाव हे, तो फेर हे मूढ जीव! स्त्रीकों देखकर क्यों कामाकुल होता है! ऐसें विचारसें कामकों शांत करे, ए तीसरा अतिचार हे.

४ चोथा परविवाह करण अतिचार हे. सो अपणी पुत्र पुत्री विना, कन्या के वास्ते, पुण्यके वास्ते, औंर लोकोंके विवाह करावे, सो चोथा अतिचार

५ पांचमा तीव्रानुराग अतिचार हे. सो जे पुरुष स्त्री ऊपर तीव्र अभिलाष धरे, पराइ स्त्रीकों देख कर मनमें बहुत चाहना धरे, उस स्त्रीकों देखे विना क्षणमात्र रहि न सके, चलतां, फिरतां, उस स्त्रीहीमें चित्त रहे, अथवा देहमें कामकी वृद्धि वास्ते अफयून, माजूम, जांग, हरताल पारा प्रमुख खावे, तीव्रकाममें प्रीति करे, तब पांचमा अतिचार लगे अथवा स्त्रीनी कामकी वृद्धि करने वास्ते अनेक उपाय करे, बहुत हाव जाव विषय लालसा करे, तब पांचमा अतिचार लगे, यह पांच अतिचार श्रावक जाने, परंतु आदरे नहीं, इन पांचो अतिचारोंका विशेष स्वरूप धर्मरत्न प्रकरणकी टीकासें जाननां ॥ इति चतुर्थव्रत समाप्तं ॥

५ अथ पांचमा स्थूलपरिग्रहपरिमाण व्रत लिखते हें. परिग्रहके दो नेद हें, एक तो बाह्यपरिग्रह अधिकरण रूप, सो द्रव्यपरिग्रह नव प्रकारका हे. दूसरा जाव परिग्रह, सो चौदह अन्यंतर ग्रंथिरूप जो परनाम मिथ्यात्व सहित प्रदेश सहित सकपाइ पणे बंध, सो जावपरिग्रह हे, इन

शास्त्रमें मूर्छाकों मुख्य वृत्ति करकें नावपरिग्रह कहा है, तिनमेंसूं चौदह प्रकारका जो अभ्यंतर परिग्रह है, सो लिखते हैं. १ हास्य, २ रति, ३ अरति, ४ नय, ५ शोक, ६ जुगुप्सा, ७ क्रोध, ८ मान, ९ माया, १० लोन, ११ स्त्रीवेद, १२ पुरुषवेद, १३ नपुंसकवेद, १४ मिथ्यात्व. यह चौदह प्रकारकी अभ्यंतर ग्रंथि है, इहां संसारमें इस जीवकों केवल अविरतिके वलसें इछा, आकाश समान अनंती है. कदापि नरणेमें आती नहीं, अविरतिके उदयसें इछा अरु इछासेंती कर्मबंधनमें पमा हूआ चार गतिमें न्रमण करता है. सो कोई पुण्यके उदयसें मनुष्य नवादि सकल सामग्रीका योग पा कर, सद्गुरुकी संगतिसें श्रीजिनवाणी सुणी, तब चेतना जागृत नई, तब विचार करा कि अहो में समस्त परनावसें अन्य हूं! अबंधि, अछेद्य, अनेद्य, अदह्यधर्मी हूं! परंतु इछाके वश हो कर समस्त छेदन, नेदन परिभ्रमणादि दुःखोंकों नोगने वाला परधर्मी वन रह्या हूं! ईस वास्ते समस्त परनावका मूल जो इछा है, तिसको दूर करे. तब समस्त परनाव त्यागरूप चारित्र आदरे, साधुवृत्ति अंगीकार करे. अरु जिस जीवके इछा प्रवल होनेसें एक साथ सर्व परिग्रह त्यागनेका सामर्थ्य न होवे, अरु दोषसें डरे, तव गृहस्थ धर्म इछा परिमाण रूप व्रत आदरे, सो इछा परिमाणव्रत नव प्रकारका है, सो कहते हैंः—

१ प्रथम धन इछा परिमाण व्रत है. सो धन चार प्रकारका है. प्रथम गणिम धन, सो नालिकेर प्रमुख, जो गिणतीसें वेचनेमें आवे. दूसरा धरिम धन, सो गुम प्रमुख जो तोलके वेचनेमें आवे. तीसरा परिछेद्य धन, सो सोना, रूपा, जवाहिर प्रमुख जो परिक्षासें वेचनेमें आवे, चोथा मेयधन, सो दूधादि वस्तु जो मापके वेचनेमें आवे. यह चार प्रकारका धन है. इसका जो परिमाण करे, सो धन परिमाण व्रत है.

२ दूसरा धान्य परिमाण व्रत. सो धान्य चौवीस प्रकारका है. १ शालि, २ गेहूं, ३ जुवार, ४ वाजरी, ५ जव, ६ मूंग, ७ मुठ, ८ उमद, ९ चूंट, १० चोडा, ११ मटर, १२ तूअर, १३ किसारी, १४ कोडवा, १५ कंगणी, १६ चणा, १७ वाल, १८ मेथी, १९ कुलथ, २० मसूर, २१ तिल, २२ मंगवा, २३ कूरी, २४ वरटी. यह खाने वास्ते तथा व्यवहार वास्ते उपयोगी है. तथा १ धनीया, २ जीर्की, ३ सोवा, ४ अजवयन, ५ जीरा. यहनी

धान्यकी जातिमें है, परंतु ये औषध्यादिकमेंकाम आते हैं. तथा १ सामक, २ मणकी, ३ ज़ुरट, ४ चेकरीया, ये मारवाम देशमें प्रसिद्ध हैं. औरजो अरूक धान्य, विना बोयां ऊगता है, जिसकों लोक काल डुकाल में खाते हैं, यह सर्व जातिका अन्न, तिसका परिमाण करे.

३ तीसरा क्षेत्रपरिग्रह व्रत है. सो बोनेका खेत, तथा बाग (बगीचादिक) जाननां, इस क्षेत्रके तीन भेद हैं, उसमें एक क्षेत्र तो असा है, किजो वर्षाके पाणीसें होता है, दूसरा कूपादिकके जल सींचनेसें होता है, तीसरा तो यह पूर्वोक्त दोनो प्रकारसें होता है, इनका परिमाण करे.

४ चौथा वास्तुक परिमाण व्रत है. सो घर, हाट, हवेली प्रमुख तिनकेभी तीन भेद हैं. एक तो भूंहरा प्रमुख, दूसरा उछ्रित सो ऊंची हवेली, एक मजली, दो मजली, तीन मजली, यावत् सातभूमि तक, तीसरी हेठ भूंहरा प्रमुख, उपर एक दो आदि मजल, तिसका परिमाण करे.

५ पांचमा रूप्यपरिग्रहपरिणाम व्रत है, सो सिके विनाका काचा रूपा तिसका तोलका परिमाण करे.

६ छठा सुवर्णपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो विना सिकेका सोना, तिसके तोलका परिमाण करे.

७ सातमा कूपद परिग्रह परिमाण व्रत है. सो त्रांबा, पीतल, रांग, कांसुं, सीसा, जरत, लोहाप्रमुख सर्व धातुके वर्त्तनोंके तोलका परिमाण करे.

८ आठमा डुपद परिग्रहपरिमाण व्रत है. सो दासी, दास, अथवा पगारदार गुमास्ता प्रमुख रखणां, तिनकी गणतीका परिमाण करे.

९ नवमा चौपदपरिग्रह परिमाण व्रत है. सो गाय, महीपी, घोमा, बलद, बकरी, भेम प्रमुख, तिनकी गिणतीका परिमाण करे.

अथ अपनी इछा परिमाणमें परिग्रह किस तरें रक्खे ? सो कहते हैं. ध. धना द्रव्य अरु अनघडा तथा नगद रूपक इतना रक्खुं, तथा सोनाभी ध.रू. अनघडा असर्फी तथा जवाहीर इतना रक्खुं, इस रीतिसें परिमाण करे, उपरांत पुण्योदयसें धन वधे, तो धर्मस्थानमें लगावे, तथा वर्ष दिनमें इतने इस जातके वस्त्र पहिरूं, तथा एक वर्षमें इतना अन्न में घरखरच वास्ते रक्खुं, अरु इतना वणिज वास्ते रक्खुं, तिसका स्वरूप सातमे व्रतमें लिखेंगे. तथा क्षेत्रपरिमाणमें क्षेत्र, वाडी, बगीचा प्रमुख सर्व मिलक

र इतने विघे धरती रखुंगा, तथा घर, खिडकी वंध, अरु खुल्ली डुकान, तवेला, वखारी, तथा परदेश संवंधी डुकानकी जयणा, तथा इतना जाडे देणे वास्ते घरकी रखनेकी जयणा, तथा जाडे लीये हूये घरकों समराव णेकी जयणा, तथा कुटुंव संवंधि घर वनानेमें उपदेशकी जयणा, तथा अपणा संवंधि अरु गुमास्ता परदेश गया होवे, पीछेसें तिसके घर प्रमुख समरावणेकी जयणा, तथा आजीविकाके वास्ते किसीकी चाकरी करनी प डे, तव उसके घर प्रमुखके समरावणेकी जयणा, तथा कुपदपरिमाणमें तांवा, पीतल, रांग, लोहखंरू, कांसी, जरत, सर्व मिलीके धातुके वर्त्तन, तथा और घाट, तथा वूटा, इतने मण रखणेकी जयणा, तथा डुपद परिमा णमें श्रावकने दासी, दासकों मोल दे कर नहीं लेनां, परंतु पगारवाले (नोकर) गिणतीमें इतने रखने चाहियें, तथा गुमास्ता रखनेकी जयणा, तथा चौपद परिमाणमें गाय, भेंस, वकरी प्रमुख रखनेका परिमाण करे. अव यह इछा परिमाण व्रतके पांच अतिचार हे, सो लिखते हैं.

१ प्रथम तो धनपरिमाण अतिक्रम अतिचार. इस रीतिसें होता है. सो जव इछा परिमाणसें धन अधिक हो जावे, तव लोजसंज्ञासें दिलमें ऐसा मनसुवा करे कि जो मेरा पुत्र वडा हो गया है, तिसकोंजी धन चाहियें हे, अरु मेंनेजी पुत्रकों धन देनाही है ? ऐसा कुविकल्प करकें पुत्र के नामके पांच हजारादि रूपक जूदे रखे, तथा अन्न प्रमुख अपणे नियम परिमाण घरमें पडा हे, तव अधिक रखनेंकी इछासें दूसरायोंके घरमें रख छोडे, जव चाहियें तव ले आवे, अरु अज्ञानसें ऐसा विचारे कि मेंने तो इछा परिमाणसें अधिक अपणे घरमें रखनेका नियम करा हे, अरु यह तो दूसरोंके घरमें रक्खा है, इस वास्ते मेरे नियममें दूषण नहीं, तथा व्रत लेनेके वखतमें कच्चे मणके हिसावसें अन्न रक्खा है, अरु जव परदे शांतरमें गया, तव पक्के मणका उहां तोल जान कर अन्नजी पक्के मणके हिसावसें रक्खे, ऐसे विचार वालेकों प्रथम अतिचार लगता है.

२ दूसरा क्षेत्रपरिमाण अतिक्रम अतिचार हे. सो जव इछा परिमाणसें ती अधिक घर हाटादिक हो जावे, तव विचली जित तोडके दो तिनादि घरा दिकोंका एक घरादि वनावे, तथा दो तीनादि खेंतोकी विचली नौली तोडके एक वना लेवे, अरु मनमें यह विचारे कि मेंने तो गिणती रक्खी हे, सो तो

मेरा नियम अखंमित है, नडा कर लेनेमें क्या दूषण है ? ऐसें करे, तो दूसरा अतिचार लगे.

३ तीसरा रूप्यसुवर्णप्रमाण अतिक्रम अतिचार है. सो जब इन्हा परिमाणसेंती अधिक होवे, तब अपणी स्त्रीके घेणे चारी तोलके बनवावे, तथा अपणे आजरण तोलमें चारी बनवावे, यह तीसरा अतिचार है.

४ चौथा कुपदपरिमाण अतिक्रम अतिचार है. सो त्रांबा, पीतल, कांसी प्रमुखके वर्त्तन राठ वगेरें जो गिणतीमें रक्खे हैं, सो जब घरमें संपदा होवे, तब गिणतीमें तो उतनेही रक्खे, परंतु तोलमें वजनदार दूगणे तिगुणे बनवावे, अरु मनमे ऐसा विचारे जो मेरा व्रत तो अखंमित है? क्योंकि वर्त्तनोकी गिणती तो मेरे तितनीही है ? तथा कच्चे तोल परिमाणें रक्खे ते, फेर पक्के तोल परिमाण रक्ख लेवे, सो चौथा अतिचार है.

५ पांचमा द्विपदचतुष्पद प्रमाणातिक्रम अतिचार है. सो दास, दासी, घोमा, गाय, बलद प्रमुख अपणे परिमाणसें जब अधिक हो जावे, तब वेच गेरे, अथवा गर्ज ग्रहण अवेरी करावे, जितने गिणतीमें हैं, उनमेंसें प्रथम वेचके फेर गर्ज ग्रहण करावे, अथवा जाइ पुत्रके नामके कर रक्खे, तो पांचमा अतिचार लगता है. इति पंचमव्रतं संपूर्ण ॥

६-७-८ अथ उठा सातमा, अरु आठमा, इन तीनो व्रतोंको गुणव्रत कहते हैं. तिनमें उठे व्रतमें दिशाका विचार है, इस वास्ते इसका नाम दिक्परिमाण व्रत कहते है. तिसका स्वरूप लिखते हैं.

पूर्वे जो पांच अणुव्रत कहे हैं. तिनकों इन तीनो व्रतों करकें गुण वृद्धि होती है, इस वास्ते इनका नाम गुणव्रत है, क्योंकि जब दिशिपरिमाणव्रत कीया, तब तिस क्षेत्रसें बाहिरले सर्व जीवोंको अजयदान दीया, यह पहिले प्राणातिपात व्रतको गुण पुष्टि जइ, तथा बाहिरले जीवोंके साथ फूठ बोलनां मिट गया, यह मृषावाद व्रतकों पुष्टि जइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी वस्तुकी चोरीका त्याग हूआ, यह तीसरे व्रतकों पुष्टि जइ, तथा बाहिरले क्षेत्रकी स्त्रीयोंके साथ मैथुन सेवनेका त्याग हुआ यह चौथे व्रतकी पुष्टि जइ, तथा नियम बाहिरके क्षेत्रमें क्रय विक्रयका निषेध जया, यह पांचमे व्रतकी पुष्टि जइ, इस वास्ते पांचो अणुव्रतोंकों यह तीन व्रत गुणकारी है.

तहां दिशिप्रमाण व्रत. सो चारों दिशि, तथा चारों विदिशि, तथा ऊर्ध्व, अरु अधो, इन दश दिशिका परिमाण करे, तिसके दो भेद हैं. एक व्यवहारसें, सो अपणी कायासें दशों दिशिमें जानेका, तथा मनुष्य भेजनेका, तथा व्यापार करनेका परिमाण करे, उसको व्यवहार दिशि परिमाण व्रत कहियें.

दूसरा निश्चयसें. सो जो कुछ नरकादि गतिमें गमन है, सो सर्व कर्मका धर्म है. जिसके वश पडकें यह जीव चारों गतिमें भटकता है, परानुयायी चेतना हो रही है, इसी वास्ते जीव परभावानुसारी गतिभ्रमण करता है. परंतु जीव तो शुद्ध चैतन्य, अगतिस्वभाव, तथा निश्चल स्वभाव है, ऐसा श्री जिनवाणीके उपदेशसें समझकें चेतना शुद्धस्वरूपानुयायी होवे, तब अपणा अगति स्वभाव जानिके सर्व क्षेत्रसें उदास रहे, समस्त क्षेत्रसें अप्रतिबंधक भावसें वर्त्ते, सो निश्चयसें दिक्परिमाण व्रत कहियें. यह दशों दिशिका परिमाण करे, तिसके दो भेद हैं.

प्रथम जलमार्ग. सो जहाज नावों करकें इतने योजन अमुक दिशिमें अमुक बंदर, तथा अमुक द्वीप तक जाऊं, जे कर पवन, तथा वर्षातके वशसें और दूर किसी बंदरमें ले जावे तो आगार, अर्थात् व्रतभंग न होवे, अथवा अजाण पणे कर कें भूल चूकसें किसी बंदरमें चला जाऊं, उसकाभी आगार है.

दूसरा स्थलका मार्ग. सो जिस जिस दिशिमें जितने जितने योजन तक जानेका परिमाण करा है, तहां तक जाणेकी जयणा, जे कर चोर, म्लेछ, पकडके नियम क्षेत्रसें बाहिर ले जावे, तिसका आगार है, तथा उर्ध्व दिशिमें बारा कोश तक जाणेकी रखे, तथा अधोदिशिमें आठ कोश तक जाणेकी जयणा, परंतु जो उंचा चढके फेर नीचा उतरे, वो अधोदिशिमें नहीं, तथा जितने क्षेत्रका परिमाण करा है, तिस्से बाहिरका कोइ पिछाण वाले पुरुषका पत्र आवे, सो बांच कर उसका उत्तर लिखनां पडे, तिसका आगार है, परंतु मैं अपणी तरफसें विना कारण पत्र प्रमुख नहीं लिखुंगा. तथा परदेशकी विकथा सुननेका आगार, इस व्रतके पांच अतिचार हैं सो कहते हैं.

१ प्रथम ऊर्ध्वदिशापरिमाणातिक्रम अतिचार है. सो अनाजोगसें अथवा वे सुरतिसें अधिक चला जावे, तो प्रथम अतिचार.

२ दूसरा अधोदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार पूर्ववत्.

३ तीसरा तिर्छीदिशिपरिमाणातिक्रम अतिचार. उपर वत्. जे कर नियम नंगके नयसें गुमास्ता नेजे, तोनी अतिचार लगे.

४ चौथा एक दिशिमें सो योजन रक्खे हैं, अरु एक दिशिमें पचास योजन रक्खे हैं, पीछे जब एकही दिशिमें डोढसौ योजन जानां पडे, तब दूसरी तरफके पचास योजननी उसी तरफ जोम लेवे, अरु अज्ञानसें ऐसा विचारे कि मेरे नियमकेही पचास योजन हैं, इस वास्ते मेरे व्रतका नंग नहीं.

५ पांचमा स्मृतिअंतर्धान अतिचार. सो अपणे नियमके योजनकों नूल जावे, क्या जाने पूर्वदिशिके सौ योजन रक्खे हैं? कि पचास योजन रक्खे हैं? इत्यादि ऐसा संशयके हूए फेर पचास योजनसें अधिक जावे, तो पांचमा अतिचार लग जावे,यह पांच अतिचार वर्जे॥ इति षष्ठ व्रतं संपूर्ण.

७ अथ सातमा नोगोपनोग व्रतका स्वरूप लिखते हैं. यह दूसरा गुण व्रत है. इस व्रतके अंगीकार करणेसें सचित्त वस्तु खानेका त्याग करे, अथवा परिमाण करे, तथा जिसमें बहुत हिंसा होवे, ऐसा व्यापार न करे, तथा जिस काममें अवश्य हिंसा बहुत करनी पडे, तिसका त्याग करे, अनक्ष्य त्यागे, अरु चौदह नियमनी इस व्रतमें गिणे जाते हैं, इस वास्ते यह व्रत पूर्वोक्त पांचही अणुव्रतोंकों गुणकारी है, इस व्रतके दो नेद हैं, सो कहते हैं.

१ प्रथम व्यवहार. सो नक्ष्यानक्ष्यका ज्ञान करी त्यागे, दूसरा आश्रव संवरका ज्ञान कर के खान पानादिक जो इंद्रिय सुखका कारण है, उसमें अपणी नक्ति प्रमाण बहुत आरंन छोडके अल्पारंनी होनां, सो व्यवहार नोगोपनोगविरमण व्रत है.

२ दूसरा निश्चयसें, तो श्रीजिनवाणी सुण कर वस्तु तत्त्वस्वरूप जान कर विचारे कि जो जगतमें परवस्तु है, सो सर्व हेय है, इस वास्ते तत्त्वेत्ता पुरुष परवस्तुकों न त्यावे, न अपणे पास रक्खे, तब शुद्ध चैतन्य गार धार के परम शांतिरूप हो कर जो वस्तु सडे, पडे, गिरे, जाती रहे,

तब परवस्तु जान कर असा विचार करे कि यह पुजलकी पर्याय है, सर्व जगत्की जूंठ है, असी वस्तुका जोगोपजोग करणां, सो तत्ववेत्ताकों उचित नहीं, असे ज्ञानसें परजावकों त्यागे. स्वगुणकी वृद्धि करे, असा ज्ञान पा कर आत्माकों स्वस्वरूपानंदी करे, चिद्विलासका अनुजवी होवे, सो निश्चय जोगोपजोगविरमण व्रत कहियें.

अथ जोगोपजोग शब्दका अर्थ कहते हैं. जो आहार, पुष्प विलेप नादि, एक वार जोगनेमें आवे, सो जोग कहियें. अरु जो जुवन, वस्त्र, स्त्रीयादि वार वार जोगनेमें आवे, सो उपजोग कहियें. अरु कर्माश्रयी इस व्रतके अनेक जेद हैं, सो आगें लिखुंगा.

तथा श्रावककों उत्सर्ग मार्गसें तो निरवद्य आहार लेनां लिखा है, जे कर शक्ति न होवे, तब सचित्तका त्यागी होवे, जेकर यहजी न कर सके, तो बाईस अजक्ष्य अरु बत्तीस अनंतकाय इनका तो जरूर त्याग करे, तिनमें प्रथम बाईस अजक्ष्य वस्तुका नाम लिखते हैं.

१ वमके फल, २ पीपलके फल, ३ पिलखणके फल, ४ कठंबरके फल, ५ गूलरके फल, यह पांचतो फल अजक्ष्य हैं, क्योंकि इन पांचों फलोंसें बहुत सूक्ष्म कीडे त्रस जीव जरे हूये होते हैं, जिनोंकी गिणती नहीं हो सक्ती है, इस वास्ते धर्मात्मा जीव, इन पांचों फलोंको न खावे, जे कर दो जिदमें अन्न न मिले, तोजी विवेकी पूर्वोक्त पांच फल जक्षण न करे.

६ मदिरा, ७ मांस, ८ मधु, ९ माखण, इन चारोंमें तद्वर्ण असंख्य जीव उत्पन्न होते हैं, अरु यह चारों विगय, महाविगय हैं. सो महाविकारकी करनेवाली है, तिनमें प्रथम मदिरा त्यागने योग्य है, क्योंकि मदिराके पीनेमें जो दूषण है, सो हेमचंद्रसूरिकृत योगशास्त्रके दश श्लोकोंके अर्थसें लिखते हैं.

१ मदिरा पीनेसें चतुर पुरुषकी बुद्धि नष्ट हो जाती है, जैसें दुर्जागी पुरुषकों सुंदर स्त्री छोड जाती है, तैसें इस पुरुषकों बुद्धी छोड जाती है, २ मदिरापानी पुरुष, अपणी माता, बहिन, बेटीकों अपणी जार्याकी तरें समझ के जोरा जोरीसें विषयजी सेवन कर लेता है. अरु अपणी जार्याकों अपणी माता समझता है, मदिरा पीनेवाला ऐसा निर्लज्ज और महापापके करने वाला होता है, ३ मदिरापानी, अपनेकों अरु परकोजी नहीं

जानता, ४ मदिरापानी, अपणे स्वामीकों अपणा किंकर जानता है, अरु अपणेकों स्वामी जानता है, एसी निर्लज्ज बुद्धिवाला होता है, ५ मदिरा पीने वाले पुरुषकों चौंकमें लेटा हूआ देख कर मुदरि जान कर, कुत्ते उसके मुहमें मूत जाते हैं, ६ मदिराके रसमें मग्न पुरुष चौंकमें नंगा मादर जात, निर्लज्ज हो कर, सो जाता है. ७ मदिरा पीने वालेने जो अगम्य गम्य, चोरी, यारी, खून प्रमुख कुकर्म करे हैं. वो सर्व लोकोंके आगें प्रकाश देता है. ८ मदिरा पीनेसें शरीरका तेज, कीर्त्ति, यश, तात्कालिकी बुद्धि, यह सब नष्ट हो जाते हैं. ९ मदिरापानी भूत लगेकी तरें नाचता है, १० मदिरा पीने वाला कीचम ओर गंदकीमें लोटता है, ११ मदिरा पीनेसें अंग शिथिल हो जाते हैं, १२ मदिरा पीनेसें इंद्रियोंकी तेजी घट जाती है, १३ मदिरा पीनेसें वडी मूर्छा आजाती है, १४ मदिरा पीनेवालेका विवेक नष्ट हो जाता है, १५ संयम नष्ट हो जाता है, १६ ज्ञान नष्ट हो जाता है, १७ सत्य नष्ट हो जाता है, १८ शौच नष्ट हो जाता है, १९ दया नष्ट हो जाती है, २० क्षमा नष्ट हो जाती है, जैसें अग्निसें तृण भस्म हो जाते हैं, तैसें पूर्वोक्त गुणभी उसका नष्ट हो जाते हैं, २१ मदिरा है, सो चोरी, अरु परस्त्रीगमनादिकोंका कारण है, क्योंकि मदिरा पीनेवाला कौनसा कुकर्म नहीं कर सक्ता है? २२ मदिरा, आपदा तथा वध, बंधनादिकोंका कारण है, २३ मदिरेके रसमें वहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते दया धर्मिकों मदिरा न पीनी चाहियें. २४ मद्य पीने वाला दीयेकों अणदीया कहता है, २५ लीयेकों नहीं लीया कहता है, २६ करेकों न करा कहता है, २७ मद्यपी, घरमें तथा वाहिर, पराये धनकों निर्भय हो कर लूंट लेता है, २८ मदिरेके उन्मादसें वालिका, यौवनवती, वृद्धा, ब्राह्मणी, चांमालिनी प्रमुख स्त्रीयोसें भोग कर लेता है, २९ मद्यप अरराट शब्द करता है, ३० गीत गाता है, ३१ लोटता है, ३२ दौमता है, ३३ क्रोध करता है, ३४ रोता है, ३५ हस्ता है, ३६ स्तंभवत् हो जाता है, ३७ नमस्कार करता है, ३८ भ्रमता है, ३९ खडा रहता है, ४० नटकी तरें अनेक नाटक करता है, ४१ ऐसी वो कौनसी दुर्दशा है. जो मदिरा पीने वालेकों नहीं होती है? शास्त्रोंमें सुणते हैं कि सांव कुमारने मदिरा पी कर द्वैपायन ऋषिकों संताया, तब द्वैपायननें द्वारकांकों दग्ध कीया, ४२ मदिरा पीनां, वा

सर्व पापोंका मूल है, ४३ मदिरा पीने वाला निश्चय नरक गतिमें जावेगा, ४४ मदिरा सर्व आपदाका स्थान है. ४५ मदिरा अकीर्त्तिका कारण है,४५ मदिरा नीच म्लेछ लोक पीते हैं, ४७ गुणीजन लोक जो हैं, सो मदिरा पीनेवालेकी निंदा करते हैं. ४८ मदिरा पेटमें लग जानेसें तत्काल मरजाता है,४ए मदिरा पीने वालेके मुखसें महादुर्गंध आती है, ५० मदिरा सर्व शास्त्रोंमें निंदित है, ५१ मदिरा पीनेवाला ईश्वरका नक्त नहीं. इत्यादि मदिरा पीनेमें अनेक दोष हैं, इस वास्ते श्रावक मदिरा न पीवे. यह ठठा अनदय.

सातमा अनदय मांस है. यह मांस नदाण करनेमें जो दूषण है, सो लिखते हैं. जो पुरुष मांस खानेकी इछा करता है, वो पुरुष, दयाधर्मरूपी वृक्षकी जम काटता है. क्योंकि जीवके मारे विना मांस कदापि नहीं हो सक्ता है; जे कर कोइ कहेगा कि हम मांसनी खा लेवेगा, अरु प्राणीयोंकि दयानी करेंगा, ऐसे कहने वालेकों हम उत्तर देते हैं, कि सदा सर्वदा जो मांसके खानेवाले हैं, अरु वो अपने मनसें दयाधर्मी वना चाहता हैं, वो पुरुष अग्निमें कमल लगानां चाहता है, क्योंकि जव उसने मांस खाया, तव प्राणीयोंकी दया उसके मनसें कदापि नहीं हो सकी है, जैसें अंवका खानेवाला आम्रफल देखता है, तव उसकी मनसा आंव खानेही दोमती है, तैसें मांसाहारी किसी गो, नेंसी, वकरी, प्रमुखकों देखता है, तव उन जीवोंका मांस खानेकी तर्फ उसकी सुरती दौमती है. ऐसे पुरुषकों दयाधर्म, क्यों कर संनवे ? जे कर कोइ कहेगा कि जीवके मारने वाला सौकरिक अर्थात् कसाइ है, तिस पासों वना वनाया मांस ल्या कर खावे, तो क्या दोष है ? ऐसे मूढमतिकों उत्तर देते हैं, कि जो मांस खानेवाला है, वोनी जीवका हिंसक है, क्यों कि नगवंतने शास्त्रोंमें सात जनोंकों घातक (हिंसक) अर्थात् कसाइही कहा है, उसका नाम कहते हैं. एक जीवके मारने वाला, दूसरा मांस वेचने वाला, तीसरा मांस रंधने वाला, चौथा मांस नदाण करने वाला, पांचमा मांस खरीदने वाला, ठठा मांसकी अनुमोदना करने वाला, सातमा पितरोंके, देवताओंकों, अतिथिकों, मांस देने वाला, यह सात साक्षात् परंपरा करके घातक अर्थात् जीववधके करने वाले हैं, मनुजीनी मनुस्मृतिमें कहते हैं।श्लोक॥ अनुमंता विशसिता,निहंता क्रयविक्रयी॥ संस्कर्ता चोपहर्त्ता च, खादकश्चेति

प्रश्नः—मांसाहारी आपने आपकों अधर्मी क्यों बनाता है ?

उत्तरः— मांसके स्वादमें लुब्ध हूआ वो धर्म, दया, कुछ नहीं जानता है, जे कर कदाचित् जानभी जाता है, तोभी आप मांसलुब्ध है, इस्सें मांसकों त्याग करनेकूं समर्थ नहीं, इस वास्ते वो मनमें विचार करता है, कि मेरे समानही सर्व हो जावे, ऐसा जान कर औरोंकोंभी मांसभक्षण न करनेका उपदेश नहीं करता है.

अब मांस भक्षण करने वाले महामूढ हैं, यह बात कहते हैं. कितने क मूढमति आप तो मांस नहीं खाते हैं, परंतु देवता, पितर, अतिथि, इनकों मांस चढा देते हैं, क्यों कि उनके शास्त्रकारक कहते हैं ॥ श्लोक॥ क्रीत्वा स्वयं वाप्युत्पाद्य, परोपहृतमेव वा॥ देवान् पितृन् समभ्यर्च्य, खादन् मांसं न दुष्यति ॥ १ ॥ यह श्लोक मृगपक्षीयोंके विषयमें है, इसका अर्थ कहते है. कसाईकी दुकान बिना व्याध, शकुनिकादिकोंसें अर्थात् शिकारी और जानवरोंके मारने वालोंसें मांस मोलसें ले कर देवता, अतिथि, पितरोंकों देनां चाहियें. क्यों कि वे लिखते हैं कि कसाईकी दुकानके मांससें देवता पितरोंकी पूजा नहीं होती है, तातें आप मांस उत्पन्न करकें पितृ आदिकोंकूं देवे तो पितृआदि प्रसन्न होते हैं, सो इस प्रकारसूं मांस उत्पन्न करे, कि ब्राह्मण तो मांग कर मांस ल्यावे, औ क्षत्रिय शिकार मार कें मांस ल्यावे, अथवा किसीने मांस भेट करा होवे, उस मांससें देवता पितरोंकी पूजा करकें फेर मांस खावे तो दूषण नहीं, यह सर्व महामूढ और मिथ्यादृष्टियोंका कहनां है, क्योंकि दयाधर्मी आस्तिकमत वालोंकों तो मांस दृष्टिसेंभी देखनां योग्य नहीं, तो फेर देवता पितरोंकी पूजा मांससें करनी, यह तो धर्मीकों स्वप्नेमेंभी न होवेगी, इस वास्ते देवताओं कों मांस चढानां यह बुद्धिमानोका काम नहीं, कारण के देवता तो बडे पुण्यवान् है, कवल आहार करते नहीं है, तो फेर जुगुप्सनीय मांस क्यों कर खावे ? जो कहते हैं कि देवता मांस खाते हैं, वे महा अज्ञानी हैं, अरु पितर जो हैं, वेतो अपणे अपणे पुण्य पापके प्रभावसें अछी बूरी गतिकों प्राप्त हो गये हैं, अपणे करे हूये कर्मोका फल भोगते हैं. पुत्र के करे हुए कर्मका उनकों कुछभी फल नहीं लगता है, तब मांस देने रूप पापका तो क्या कहना है ? पुत्रादिकोंका सुकृत कराभी तिनकों नही

मिलता है, क्योंकि आंबके सींचनेसें केलेमें फल नहीं फलता है, अरु अतिथिकी भक्ति वास्ते जो मांस देनां है, सो तो नरकपातका हेतु अरु महा अधर्मका कारण है, यहां कोई ऐसें कहे कि जो बात श्रुति स्मृति में है, वो माननी चाहियें.

उत्तरः—यह कहनां ठीक नहीं है, जो बात श्रुतिमें अप्रामाणिक है, वो बुद्धिमान् कदापि नहीं मानेंगे, क्योंकि श्रुतिमें हम ऐसे सुनते हैं, "वचांसि भूयांसि यथा पापघ्नो गोस्पर्शः द्रुमाणां च पूजागादीनांच पूजा गादीनां च वधः स्वर्ग्यः ब्राह्मणभोजनं पितृप्रीणनं मायावीन्यधिदेवता नि वन्हो हुतं देवप्रीतिप्रदं" ऐसा कथन जो श्रुतियोंमें है तिसको युक्ति कुशल पुरुष कदापि नहीं मानेंगे, तिस वास्ते यही महा अज्ञान है, कि जो मांस करकें देवताओंकी पूजा करणी. कितनेक कहते हैं कि जैसें मंत्रों करकें संस्कृत अग्नि दाह नहीं करती है, तैसेंही मंत्रों करकें मां सभी संस्कार करा हूआ दोषके वास्ते नहीं होता है, यह कथन मनुजी का है ॥ श्लोक ॥ असंस्कृतान् पशून्मंत्रै, र्नाद्याद्विप्र कथंचन ॥ मंत्रैश्चसं स्कृतानद्या, ठाश्वतं विधिना स्थितः ॥ १ ॥ अर्थः—मंत्रों करकें असंस्कृत पशुओंका मांसको ब्राह्मण न खावे, अरु जो मंत्रों करकें संस्कृत पशु हैं, तिनका मांस खावे, तो शाश्वतोनित्यो वैदिक जाननां.

उत्तरः— मंत्र करकें जो मांस पवित्र कीया है, वो मांसको धर्मी पुरुष कदापि भक्षण न करे, क्योंकि मंत्र जैसें अग्निका दाह शक्तिको रोकता है, तैसें नरकादि प्रापण शक्ति जो मांसकी है, उसको नहीं दूर कर सके. जे कर दूर कर देवें तब तो सर्व पाप करकें पीछें पापका हनने वाला मं त्रके स्मरणमात्रसेंही सर्व पाप दूर हो जाने चाहियें, तब तो जो वेदोंमें पाप का निषेध करा है, सो सर्व निरर्थक हूआ, क्यों कि सर्व पापोंका मंत्रके स्मरणसें नाश होय गया, इस वास्ते यहभी अज्ञोंहीका कहनां है,

तथा कोइ कहते है कि जैसें थोडासा मद्य पीनेसें नशा नहीं चढता है; तैसें थोमासा मांस खानेमेंभी पाप नहीं लगता है.

उत्तरः— बुद्धिमान् यवनमात्रभी मांस न खावे, क्यों कि थोमाभी विष दुःखदायी होता है, तैसें थोमाभी मांस खाना सोभी दोषके तांइ है.

अथ मांस खानेमें अनुत्तर दूषण कहते हैं, तत्काल इस मांससें संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं, अरु अनंत निगोद रूप जीव तिनका संतान वारं वार होनां तिस करके दूषित हैं, यदाहु–आमासु अपक्कासु, अविपच्चमाणासु मंसपेसीसु ॥ सयय चिय उववाउ, जणिउं निगोय जीवाणं ॥१॥ अर्थः–कच्ची तथा अपक्क असी जो मांसकी पेसी बोटी रंधती है, तिसमें निरंतर निगोदके जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते मांसका खानां जो है, सो नरकमें जाने वालोंकों पूरी खरची है, इस कारण के लीये बुद्धिमान् पुरुष जो है सो मांस कदापि न खावे.

अथ यह मांस खाना किन्होने कथन करा है, तिनोका नाम लिखते हैं. १ मांस खानेके लोभीयोने, २ मर्यादा रहितोने, ३ नास्तिकोने, ४ थोडी बुद्धि वालोंने, ५ खोटे शास्त्रोंके बनाने वालोंने, ६ वैरीयोंने, मांस खाना कहा है. तथा मांसाहारीसें अधिक कोइ निर्दयी नहीं. तथा मांसाहारीमें अधिक कोइ नरककी अग्निका इंधन नहीं, गंदगी खा कर जो सूअर अपणे शरीरकों पुष्ट करता है, सो अच्छा है, परंतु जीवकों मारके जो निर्दयी हो कर मांस खाता है, सो अच्छा नहीं है.

प्रश्नः– सर्व जीवोंका मांस खानां तो सर्व कुशास्त्रोंमें लिख दीया है, परंतु मनुष्यका मांस खानां तो कहीं किसी शास्त्रमें नहीं लिखा है, इसका क्या हेतु होगा ?

उत्तरः–अपने मांसकी रक्षा वास्ते मनुष्यका मांस खानां नहीं लिखा, क्यों कि वे कुशास्त्रोंके बनाने वाले जानते थे कि जो मनुष्यका मांस खाना लिखेंगें, तो मनुष्य कबी हमकोंही न खा लेवे? इस शंकासें नहीं लिखा जो पुरुषमांसमें अरु पशुमांसमें विशेष नहीं मानता हैं, तिस समान कोमी नहीं, अरु तिसमें जो निन्न मानके मांस खाते हैं इस समान कोइ पजी नहीं, तथा मांस जो है, तिसकी रुधिरसेंती उत्पत्ति होती है, अर ष्टेके रससें वृद्धि होती है, तथा लहू जिसमें जरा रहता है, अरु कृमि ि में उत्पन्न होते हैं, असे मांसकों कौन बुद्धिमान् खाता है ? आश्चर्य तो है कि ब्राह्मण लोक शुचिमूल तो धर्म कहते हैं, अरु सत धातुमें जो मांस द बनते हैं. तिस मांस हाडकों मुखमें दांतोमें चबाते हैं, अब उनको कु के समान समजीयें कि शुचिधर्मवाले मानीये ? यह आश्चर्य हैं, कि

दुष्टोंकी ऐसी समझ है, कि अन्न और मांस यह दोनो एक सरीखे हैं, तिनकी बुद्धिमें जीवित अरु मृत्युके देनेवाले अमृत और विषभी तुल्यही हैं,

अरु जो जड़बुद्धि ऐसा अनुमान करते हैं, कि मांस खाने योग्य है, इति प्राणीका अंग होनेसें यह हेतु ओदनादिवत् यह दृष्टांतसें यह मांसभी प्राणीका अंग है, इस वास्ते मांसभी खाने योग्य है, तब तो गौका मूत तथा माता, पिता, भार्या, वेटी, इनका मूत पुरिषभी क्यों नहीं पीते खाते है? क्योंकि यहभी प्राणीका अंग है, तथा अपनी भार्याकी तरें अपनी माता, बहिन, वेटीकों क्यों नहीं गमन करते हैं? स्त्रीत्व अरु प्राणी अंगत्व सर्व जगे बराबर है, तथा जेसें गौका दूध पीते हैं, तैसें गौका रुधिर तथा माता पितादिकोंका रुधिरभी क्यों नहीं पीते हैं? क्योंकि प्राणी अंग हेतु तो सर्व जग्गे तुल्य हैं, इस वास्ते जो अन्न और मांस इन दोनोकों तुल्य जानते हैं, वेभी महा पापीयोंके सिरदार हैं.

तथा शंखकों शुचि मानते हैं, परंतु पशुके हाडकों कोइ शुचि नहीं मानता, इस वास्ते अन्न और मांस यद्यपि प्राणी अंग है, तोभी अन्न भक्ष्य है, अरु मांस अभक्ष्य है, एक पंचेंद्रिय जीवका वध करके जो मांस खाता है, जेसी तिसकों नरकगति होती है, तैसी खोटी गति, अन्न खानेवालेकों नहीं होती है, क्योंकि अन्न मांस नहीं हो सक्ता है, मांसकी तासीरोंसें अन्नकी तासीरें और तरेंकी हैं, मांस महाविकारका करने वाला है, तैसा अन्न नहीं. इत्यादि विलक्षण स्वभाव है, इस वास्ते मांस खाने वालोकी नरकगति जान कर संत पुरुष अन्नके भोजनसें तृप्ति मानते हैं, अरु सरस पदकों प्राप्त होते हैं, यह तो मांसके दूषण श्रीहेमचंद्र सूरिकृत योगशास्त्रके अनुसार लिखे हैं. अरु इस कालमेंभी युरूपियन लोक जो बुद्धिमान् हैं, उनोनेभी मांस खानेमें चौवीस दूषण प्रगट करे हैं, अरु मदिरा पीनेसें जो खरावीयां होती हैं. तिनकी तो गिणतीभी नहीं है. इस वास्ते मदिरा अरु मांस यह दोनों अभक्ष्यकों श्रावक त्यागे यह सातवा अभक्ष्य कहा.

८ आठमा अभक्ष्य माखण है. क्योंकि जैन मतके शास्त्रानुसारे छाछमें बाहिर काढे माखणकों जब अंतर मुहूर्त्त अर्थात् दो घडीके लगभग काल व्यतीत हो जाता है. तब उस माखणमें सूक्ष्म जीव तद्वर्णके उत्पन्न हो जाते हैं, इस वास्ते माखण खानां वर्जित है. जैन लोकोंकों छाछमें बाहिर

माखण निकालकें तत्काल अग्निके संयोगसें घी बनाके छानके देखके घी छेसें खाना चाहियें, क्यो कि एकतो इस रीतिसें शास्त्रोक्त जीव उत्पन्न नहीं होते हैं, तिनकी हिंसाजी नहीं होती हे, अरु मकमी, कंसारी, मछरादि, जानवरोंके अवयव टांग प्रमुखजी घी छाणणेसें निकल जाते हैं, अरु माखण काम कीजी वृद्धि करता है, तब मनमें खोटे विकल्प उत्पन्न होते हैं इस वास्तेजी श्रावककों माखण न खानां चाहियें, तथा एक जीवके वध करनेसेंजी जब पाप होता है, तब तो पूर्वोक्त रीतीसें माखन तो जीवोंकाही पिंड हो जाता है, तब माखनके खानेमें पापकी क्या गिनती हे ?

प्रश्नः–माखनमें तो दो घमी पीछें कोई जी जीव उत्पन्न हूआ हम नहीं देखते हैं, तो फेर माखनमें दो घमी पीछें हम क्यों कर जीव मान लेवें ?

उत्तरः–जो जैनमतके शास्त्रोंकों सत्य मानेगा वो तो शास्त्रकारका कहना सत्यही मानेगा, अरु जो जैनके शास्त्रोंको सत्य नहीं मानता, वो चाहे सत्य माने, चाहो न माने परंतु हम आगम प्रमाणके बिना इस बातमें और प्रमाण नहीं दे सकते हैं, क्योंकि वस्तु दो तरेंकी होती है, एक हेतुगम्य दूसरी आगमगम्य, तो माखन द्विदलादिमे जो जीव उत्पन्न होते हैं, वे हेतुगम्य नहीं किंतु आगम गम्य हैं, इस वास्ते जो आगम सर्वज्ञ जिन अर्हंत वीतरागका कहा हूआ है, उसीका कहा माननां चाहियें, जे कर कोई पुरुष किसीजी शास्त्रकों न मानेगा, आंखोसें देखी वस्तुही मानेगा तब तो नरक स्वर्गादि जो अदृष्ट हैं, उनकोंजी न माननां चाहियें, तथा परमेश्वर चौदवे तथा सातवे असमान उपरि रहता हे, तथा स्वर्ग अरु नरकमें पुण्य पाप करनेसें जीव जाता है, यहजी न माननां पडेगा, इस वास्ते आगम प्रमाणजी मानना चाहियें. क्योंकि सर्ववस्तु हमारी दृष्टिमें नहीं आती है.

९ नवमा अजक्ष्य मधु, अर्थात् सहत है, उसका स्वरूप लिखते हैं. यह सहत जो है, सो अनेक जीवोंकी घात होनेसें उत्पन्न होता है, यह तो परलोक विरोध दोष हे, अरु मधु (सहत) जुगुप्सनीय (निंदने योग्य) हे, मुखकी लालवत् यह इहलोक विरुद्ध दोष हे, इस वास्ते श्रावकधर्मीकों मधु न खानां चाहियें.

अथ मधु अर्थात् सहत खानेवालेकों पापी पणा दिखाते हैं, ॥ श्लोक ॥ जद्दयन्माक्षिकं क्षुद्रं, जंतुलक्षक्षयोद्भवं॥स्तोकजंतुनिहंतृभ्यः, सौनिकेभ्यो

तिरिच्यते ॥ १ ॥ अर्थः– क्षुद्रजंतु जो छोटे जीव अथवा हाड रहित जीव, तिनोंके लाखोंका नाश उपलक्षणसें बहुत जीवोंका जब विनाश होता है, तब मधु उत्पन्न होता है, जब मधु जक्षण करता है, तब थोडे पशु मारने वाले कसाइसेंजी उसकों अधिक पाप लगता है, क्यों कि जो जक्षक है, सोजी घातक है, यह बात उपर लिख आये हैं. तथा लोकमें यह व्यवहार है, जो जूठा जोजन नहीं खानां, अरु यह जो मधु है, सो तो महा जूठ है, क्योंकि एकेक फूलसें रस (मकरंद) पी करकें मक्षीयों जो वमन करतीयों हैं. सो सहत हैं. मधु है इस वास्ते धर्मी पुरुषकों जूठ न खानी चाहियें. यह लौकिक व्यवहारमें प्रसिद्ध है.

कोइ कहेगा कि मधु तो त्रिदोषका दूर करने वाला है, इस लिये रोग दूर करने वास्ते औषधिमें जक्षण करे तो क्या दोष? इत्याह.

उत्तरः– अप्योषधकृतेजग्धं, मधुश्वभ्रनिबंधनं ॥ जक्षितप्राणनाशाय, कालकूटकणोऽपि हि ॥ १ ॥ अर्थः– जो कोइ रसकी लंपटतासें मधु खावे, उसकी बात तो दूर रही, परंतु जो औषधिके वास्तेजी मधु खावे, सो यद्यपि रोगादि अपहारक है, तोजी नरकका कारण है, हि यस्मात् प्रमादके उदयसें जीवनेका अर्थी हो कर कें जो कोइ कालकूट विषका एक कणजी खायगा, सो जरूर प्राण नाशके तांइ होवेगा.

प्रश्नः– मधु तो खजूर द्राक्षादि रसकी तरे मीठा है, सर्व इंद्रियोंकों सुखकारी है, तो फेर इसकों त्यागने योग्य क्यों कहते हो?

उत्तरः– सत्य है. जो मधु मीठा है, यह व्यवहारसें हैं, परंतु परमार्थसें तो नरककी वेदनाका हेतु होनेंसें अत्यंत कडूआ है.

अब जो मधुकों पवित्र मान कर मंदबुधि जीवों मधुकों देवस्नानमें उपयोगी समझते हैं, तिनका उपहास्य शास्त्रकार करते हैं ॥ श्लोक ॥ मक्षिकामुखनिष्ठ्युतं, जंतुघातोद्भवं मधु ॥ अहो पवित्रं मन्वाना, देवस्नाने प्रयुंजते ॥ १ ॥ अर्थः—माखीयोंके मुखकी जूठ, अरु जीवघातमें अर्थात् हजारों बच्चे अरु अंडोंके मारनेसें, उत्पन्न होता है वो बच्चे, अंडे जब मरते हैं, तब तिनके शरीरका लहु पाणीजी मधु (सहत) के बिच मिल जाते हैं, तब तो मधु महा अशुचिरूप है, अहो यह शब्द उपहास्यार्थमें हैं, क्यों कि जैसे वे देवता है, तैसी तिनकों पवित्र वस्तुजी चढाइ जाती है. यह उपहास्य है,

अहो शब्द उपहासे ॥ यथा॥ करन्नाणां विवाहे तु, रासनास्तत्रगायनाः॥ परस्परं प्रशंसंति, अहो रूपमहोध्वनिः ॥ १ ॥ यह नवमा अनक्ष्य कहा. १० दशमा पाणीकी बनी हुइ बरफ अनक्ष्य है, क्योंकि यह असंख्य अप् काय जीवोंका पिंड है इसके खानेसें चेतना मंद होती है अरु तत्काल श रदी करती है कुछ बल वृद्धिनी नहीं करती है अरु वीतराग अर्हंत सर्व ज्ञ परमेश्वरने, निषेध करा है इस वास्ते यह अनक्ष्य है.

११ अफीम प्रमुख विषवस्तुके खानेसें पेटमें कृमि गंमोलादिक जो जी व होते हैं सो मरजाते हैं विष खानेसें चेतना मुरफा जाती है, अरु जे कर खानेका ढबपड जाता है, तो फेर बूटना मुस्किल होता है, वखतपर अमल न मिले तो क्रोध उत्पन्न होता है, शरीर शिथिल हो जाता है, अरु जो अ मली हो जाता है, उसकों व्रत नियम अंगीकार करना डुःकर है, अमली का स्वजाव बदल जाता है, जब अमल खाता है, तब एक रंग होता है अरु जब अमल उतर जाता है तब दूसरा रंग होजाता है, तथा स्वतंत्रता बोड कर पराधीन होना पडता है, इसके खानेमे स्वादनी बुरा,है, तथा विष खा नेवाला जहां लघुनीत वमीनीत करता है तिस क्षेत्रमें त्रस थावर जीवों की हिंसा होती है सोमल, वछनाग, मीठ, तेलीया, संखीया, हरताल, प्रमुख ये सर्व विषहीमें जानने इसके खानेका त्याग करना.

१२ करकओले (घडे) जे आकाशसें गिरते हैं यहनी अनक्ष्य है.

१३ सर्वजातकी कच्चिमट्टि अनक्ष्य हैं कच्चि सचित्तमट्टि नाना प्रकार की असंख्य जीवात्मक जाननी, मट्टी खानेसें पेटमें बहुतजीव उत्पन्न हो जाते हैं, तथा पांडु रोग आम वात पित्त पथरी प्रमुख बहुत रोग उत्पन्न हो जाते हैं, बहुत मट्टी खाने वालेका पीला रंग होजाता है, तथा कितनीक जातकी मट्टीमें मेंमक प्रमुख जीवोंकी योनी है इस वास्ते अनक्ष्य है.

१४ रात्रीनोजन अनक्ष्य है. रात्रिनोजन में तो प्रत्यक्षसें दूषण इस लोकमें है, अरु परलोकमें डुःखका हेतु है, रात्रिमें चारों आहार अनक्ष्य है, रात्रिमें जो जैसे रंगका आहार होता है तिसमें तैसे रंगके जीव जि नका नाम तमस्काय जीव हैं वो उत्पन्न होते हैं, तथा आश्रित जीवनी बहुत होते हैं. तथा रात्रिमे उचित्त अनुचित्त वस्तुका नेख संनेल हो जाता है. तथा रात्रिनोजन करनेसें प्रसंग दोष बहुत लगते हैं. सो किसतरेंकि जब

रात्रिकों खावेगा तब नित्य रात्रकों भोजन करने वास्ते रसोइभी करनी पडे गी. तिसमें जीवोंका संहार होवेगा. श्रावकके कुलका आचार भ्रष्ट होजाता हे. सूक्ष्म त्रस जीव नजरमें नहीं आते हें. कदापि दीखभी जायें तोभी यत्न नहीं होता हे. जब अग्नि बलती हे तब पासकी भीतमें रात्रिकों जो जीव आश्रित हे वो तससें आकुल व्याकुल होकर अग्निमें गिर पडते हें. सर्प्पादिकोंके मुखसें जेकर भोजनमें लाल गिरे तब कुटुंबका तथा अपणी आत्माका विनाश होवे तथा पतंगीये प्रमुखपडे तथा छत्तमें अरु छपरमें रात्रिकों सर्प्प गिरली, छपकली, मकडी मछरादि बहुत जीव बसते हें. जेकर ये जीव भोजनमें खायें जायें तो भारी रोगोत्पन्न होजाते हें. यदुक्तं योगशास्त्रे ॥ मेधां पिपलिका हंति, यूका कुर्याज्जलोदरं ॥ कुरुते मक्षिका वांतिं, कुष्ट रोगं च कोलिका ॥ १ ॥ कंटको दारुखंडं च, वितनोतिगलव्यथां ॥ व्यंजनां तर्निपतित, स्तालुविध्यति वृश्चिकः ॥ २ ॥ विलग्नश्च गलेवालः, स्वरभंगाय जायते ॥ इत्यादयोदृष्टदोषाः, सर्वेषां निशिभोजने ॥३॥ अर्थः— कीडी अन्नादिमें खाइ जावे तो बुद्धिकों मंद करती हे तथा यूंका (जूके) खानेसें जलोदर करती हे, मक्षी वमन करती हे, मकडी कुष्ट रोग करती है, अरु वेरी प्रमुखका कांटा तथा काष्टका टुकडा गलेमें पीडा करता है. तथा बटेरे आदिके व्यंजनमें जेकर विछु आया जावेतो तालयोंकों वींधता हे इत्यादि रात्रिभोजन करनेमें दृष्ट दोष सर्वलोकोंके देखनेमें आते हें तथा रात्रिभोजन करता हूआं अवश्य पाकः अर्थात् रसोइ करनी पडेगी तिनमें अवश्य षट्कायके जीवोंका वध होवेगा. भाजन धोनेंसें जलगत जीवोंका विनाश होता हे. जलगेरनेसें भूमीमें कुंथु कीडा प्रमुख जीवोंकी घात होती हे इसवास्ते जिसके जीव रक्षणेका आकांक्षा होवे वो रात्रि भोजन न करे.

प्रश्नः— जहां अन्नभी रांधना न पडे भाजनभी धोनें न पडे ऐसे जो बने बनाये लड्डु खजुर द्राक्षादि भक्ष हे तिनके खानेमें क्या दोष हे?

उत्तरः— श्लोक ॥ नाप्रेक्ष्यसूक्ष्मजंतूनि, निश्याद्यात्प्राशुकान्यपि ॥ अप्युत्केवलज्ञानै, र्नादृतं यन्निशाशनं ॥ १ ॥ अर्थः— मोदकादि फलादि यद्यपि प्राशुक अर्थात् अचेतनभी हे तोभी रातकों न खानां चाहियें किस वास्ते कि सूक्ष्मजीव कुंथ्वादि देखे नहीं जाते हे, क्योंकि केवलीभी जिनकों सदा सर्वकुछ दीखता है सोभी रात्रिमें भोजन नहीं करते हें केवली

सूक्ष्म जीवोंकी रक्षा वास्ते अरु अशुद्ध व्यवहार दूर करने वास्ते रात्रि नहीं खाते हैं यद्यपि दीवेके चादणेसें कीमी प्रमुख दीख जाती है तो मूलगुणकी विराधना टालने वास्ते रात्रि नोजन अनाचीर्ण है.

अब लौकीक मतवालोंकि सम्मति देकर रात्रिनोजनका निषेध कर हे ॥ श्लोक ॥ धर्मविन्नैवभुंजीत्त, कदाचनदिनात्यये ॥ बाह्याअपि नि नोज्यं, यदनोज्यंप्रचक्ष्यते ॥ १ ॥ अर्थः– श्रुतधर्मका जानने वाला क चित् रात्रिनोजन न करे क्योंकि जो जिनशासनसें बाहिरले मतवाले वेनी रात्रिनोजनको अनक्ष्य कहते हैं तिनका शास्त्रही लिखते ॥ श्लोक ॥ त्रयीतेजोमयोनानु, रितिवेदविदोविदुः ॥ तत्करैः पूतमखि शुनंकर्मसमाचरेत् ॥ १ ॥ अर्थः– ऋग यजुः साम लक्षण तीनो वेद ति का जो तेज है सो सूर्य है आदित्यः त्रयीतनुः ऐसा सूर्यका नाम है ऐस वेदोंके जानने वाले जानते हैं. तिस सूर्यकी किरणाकरके पिः– पूतं (विन्न) संपूर्ण शुनकर्म अंगीकार करे जब सूर्योदय न होवे तब शुनक न करे तिन शुनकर्मोका नाम लिखते हैं ॥ श्लोक ॥ नैवाहुतिर्नचस्नानं नश्राद्धंदेवतार्चनं ॥ दानंवाविहितंरात्रौ, नोजनंच विशेषतः॥ २ ॥ अर्थः– आहुति सो अग्निमें घृतादि प्रक्षेप करना, स्नानसो अंग प्रत्यंग प्रक्षाल क रना, श्राद्ध पितृकर्म, देवपूजा, दानदेना, नोजन तो विशेष करकेही न करना, इतना काम रात्रिमें न करने.

तथा परमतके यहनी दो श्लोक हैं ॥ देवैस्तुभुक्तंपूर्वान्हे, मध्यान्हे पित्नीस्तथा॥ अपरान्हेतुपितृनिः, सायान्हेदैत्यदानवैः ॥ १ ॥ संध्यायां य रक्षोनिः, सदाभुंककुलोद्भहः ॥ सर्ववेलां व्यतिक्रम्य, रात्रौभुक्तमनोजनं ॥ २ ॥ अर्थः– सवेरेतो देवता नोजन करते हे, मध्यान्ह अर्थात् दो पहर दिन चढें ऋषि नोजन करते हैं, अपरान्ह अर्थात् दिनके पीछले नागमें पितर नोजन करते हे, अरु सायान्हे विकाल वेलामें दैत्य दानव नोजन करते हैं, संध्यामें रातदिनकी संधिमें यक्ष गुह्यक राक्षस खाते हैं ॥ कुल द्भहे तियुधिष्ठरस्यामंत्रणं ॥ सर्वदेवताओंका वखत उलंघके रात्रिको जो खाना है सो अनक्ष है, यह पुराणोंके श्लोकों करके रात्रि नोजनके निषेधका संवाद कह्या.

अब वैद्यक शास्त्रकानी रात्रिनोजनके निषेधका संवाद कहते हैं. श्लो

क ॥ आयुर्वेदेषु ॥ हृन्नाभि पद्मसंकोच, श्चंमरो चिरपायतः ॥ अतोनक्तंनजो क्तव्यं, सूक्ष्मजीवादनादपि ॥ १ ॥ अर्थः– इस शरीरमें दो पद्म अर्थात् कमल हें एकतो हृदय पद्म सो अधोमुख है दूसरा नाभिपद्म सो ऊर्ध्वमु ख है, यह दोनो कमल सो सूर्यके अस्त होनेसें रात्रिमें संकोच हो जाते हें. किस कारणसें संकोच होजाते हे? सूर्यके अस्त होजानेसें संकोच हो जाते हे; इस वास्ते रात्रिको न खाना चाहिये तथा रात्रिको सूक्ष्म जीव खाये जाते हें इस्सें अनेक रोगोत्पन्न होते हें यह पर पक्षका संवाद कहा.

अव फेर स्वमतसें रात्रिभोजनका निषेध कहते हे ॥ श्लोक ॥ संसक्त जीवसंघातं, भुंजाना निशिभोजनं ॥ राक्षसेभ्योविशिष्यंते, मूढात्मानः कथं नुते ॥ १ ॥ अर्थः–जव रात्रिमें खाता हे तव जीवोंका समूह भोजनमें पक जाता हे ऐसे अंधरूप रात्रिके भोजनके खानेवालोंको राक्षसोसेंभी क्यों कर विशेष नही कहना? जव पुरुष जिनधर्मसें रहित होकर विरति नहीं करता हे तव शृंग पुछसें रहित पशु रूपही हे. यदुक्तं ॥ वासरे च रजन्यां च, यः खादन्नेवतिष्टति ॥ शृंगपुछपरिभ्रष्टः, स स्पष्टं पशुरेवहि ॥ १ ॥

अव रात्रिभोजन निवृत्तिके वास्ते पुण्यवंतोंको अभ्यास विशेष दिखा ते हे ॥ श्लोक ॥ अन्हीमुखेवसानेच, यो द्वे द्वे घटिके त्यजेत् ॥ निशाभोजन दोषज्ञो, ऽश्नात्यसौपुण्यभाजनं ॥ १ ॥ अर्थः–दिन उदयमें अरु अस्त समयमें दो दो घमी वर्जनी चाहियें क्योंकि रात्रि निकट होनेसें वर्जनी चाहिये. इसीवास्ते आगममें सर्व जघन्य प्रत्याख्यान मुहूर्त्त प्रमाण नमस्कार सहित कहते हें. रात्रिभोजनके दूषणोंका जानकार श्रावक दो घटी जव शेष दिन रहे तव भोजन करे, जेकर दो घडीसें थोमा दिन रहे भोजन करे तो रात्रि भोजनके प्रत्याख्यानका उसको फल नहीं होता है, जेकर कोइ रात्रिको नभी खावे परंतु जो उसने रात्रिभोजनका प्रत्याख्यान न करा है तो उ सकोंभी कुछ फल नहीं मिलता है, क्योंकि उसने प्रतिज्ञा नहीं करी है जैसें रूपइये जमा करावे अरु व्याजका करार न करे उसको व्याज नहीं मिलता है इस वास्ते नियम जरूर करना चाहिये.

अव रात्रिभोजन खानेका फल परलोकमें कहते हें ॥ श्लोक ॥ उलूक काकमार्जार, गृध्रशंवरशूकराः ॥ अहिवृश्चिकगोधाश्च, जायंते रात्रिभोज नात् ॥ १ ॥ अर्थः– उल्लु, काग, बिल्ली, गृध्रचील, वारांसिंगा, सूअर, सर्प,

विछु, गादृ, इत्यादि तिर्यंच योनीमें रात्रिजोजन खानेवाले मरके जाते हैं अरु जो रात्रिजोजन न करे उनकों एक वर्षमें छे महीनेका तपका फल होता है ॥ इतिरात्रिजोजन अजक्ष्य संपूर्ण ॥ १४ ॥

१५ बहुबीजा फलजी अजक्ष्य हे. जिसमें गिर थोका अरु बीज बहु होवे सो वंगण, पटोल, खसखस, पंपोटा प्रमुख फल, जिसमें जितने बीज हैं उसमें उतने पर्याप्त जीव हैं जेकर खानेमें तो थोडा आता है अरु जीवघात बहुत होती हे तथा बहुवीजा फल खानेसें पित प्रमुख रोगोंका हेतु होता है अरु जिनाज्ञा विरुद्ध हे. इति बहु बीजा अजक्ष्य ॥ १५ ॥

१६ संधान अथाणा(आचार)तीन दिनसें उपरांतका अजक्ष्य हे. सो अथाणा (आचार) अंबका, निंबुका, पत्रका, कर्मदाका, आदेका, जिमींकंदका गिरमिरका इत्यादिक अनेक वस्तुका अथाणा (आचार) बनता है. चाहो मीका होवे वा तेलका होवे वा पाणीका होवे सर्व तीन दिन उपरांत अजक्ष्य है, परंतु इतना विशेष हे कि:—जो फल आप खट्टे हैं अथवा इस री वस्तुमें खट्टा अंबादिकजो मेल देवे वेतो तीनदिन उपरांत अजक्ष्य है. अरु जिस वस्तुमें खट्टाई नहीं हे उसका अथाणा (आचार) एक रात्रिसें उपरांत अजक्ष्य है. क्यों कि:—इस आचार (अथाणामें) त्रस जीव उत्पन्न होते हैं, अरु विल्व प्रमुखतो प्रथमही अजक्ष्य हैं. तो फेर उनके अथाणे (आचारका) तो क्याही कहना है? आचारमें चौथे दिन निश्चय त्रस इंद्रियजीव उत्पन्न होते हैं. तथा जूगा हाथ लग जावेतो पंचेंद्री जीव उत्पन्न हो जाते हैं. दूसरे मतवालोंके शास्त्रोंमेंजी अथाणा (आचार) नरकका हेतु लिखा है. इति अथाणा अजक्ष्य समाप्तः ॥ १६ ॥

१७ द्विदल जिसकी दो दाल होजावें अरु घाणीमें पीले जिसमेंसु तेल न निकले ऐसें सर्व अन्नको द्विदल कहते हैं. तिस द्विदलके साथ जो गोरस अग्नि उपर नहीं चढा है ऐसा कच्चा दही कच्चा दूध गात इनके साथ नहीं जीमणा. अरु जेकर दही दूध गात गरम करी होवे फेर पीछे चाहो ठंडा हो जावे उसमें जो द्विदल मिलाकर खावे तो दोष नहीं है.

१८ सर्व जातके वेंगण एकतो बहु बीजे हैं इस वास्ते अजक्ष्य हैं. जिस के बीटमें सूक्ष्म त्रस जीव रहते हैं, तथा वेंगण कामकी वृद्धि करते हैं, नींद अधिक करते हैं, कुतर्क बुद्धिकोंजी वृद्धि करते हैं, इनका नामजी बुरा है. अन

का आकारभी अछा नहीं है, तथा कफ रोगके करता हैं; इनके अधिक खानेसें चोथ इयातप खइ रोगादि हो जाते हैं, और सब जातका फलतो सूकेभी खानेमें आता है, परंतु यहतो सूकेभी खाने योग्य नहीं हैं, क्योंकि सूके पीछे असे हो जाते हे कि मानों चुहांकी खलडी हे. ताते यह द्रव्य अशुद्ध है, इस वास्ते अभक्ष्य हे. इति वेंगण अभक्ष्य ॥ १८ ॥

१९ तुछ फल जो टींडु पीलुं पेंचु तथा अत्यंत कोमल फल सोभी अभक्ष्य हे क्योंकि असी वस्तु बहुतभी खावे तोभी तृप्ति नहीं होती है अरु खानेमें थोडा आता हे और गेरना बहुत पडता हे, तथा फल खायां पीछें तिनकी गुठली जो मुखमें चबोलके गेरते हें उसमें असंख्य पंचेंद्री य संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं. तथा जो पुरुष बहुत तुछफल खाता है तिसकों तत्काल रोग होजाता हे. इति तुछफल अभक्ष्य ॥ १९ ॥

२० अजाणा फल सो जिसका नाम कोइ न जानता होवे तथा न कि सीने खाया होवे सो फलभी अभक्ष्य हैं. क्योंकि क्या जाने कभी जहर फल खाया जावे तो मरण हो जावे तथा बावला होजावे ॥ २० ॥

२१ चलित रस सो जिस वस्तुका काल पूरा होगया होवे अरु स्वाद बलद गया होवे सो जब स्वाद बदल जाता है तब तिसका कालभी पूरा होजाता है. जिसमेंसें डुर्गंध आनें लगे, तार पड जावें, सो चलितरस व स्तु है यहभी अभक्ष्य है. रोटी, तरकारी, खीचडी, वडा, नरमपूरी, सीरा, हलवा इत्यादि रसोइकी अनेक वस्तु जिनमें पाणीकी सरसाइ है असी वस्तु एक रात उपरांत अभक्ष्य है. तथा द्विदल (दाल,) वडे, गुलगुले, भुजीये जिनमें पाणीकी सरसाइ है, वे चार पहर उपरांत अभक्ष्य है. जूग लीकी राब (घेंस) जो विना विदलके और छेदन छाछमें रांधा है सो आठ पहर उपरांत अभक्ष्य है तथा वर्षाकालमें अछीरीतीसें जो मिठाइ बनी होवे तो पंदर दिन उपरांत अभक्ष्य है. जेकर पंदर दिनसें पहिले विगड जावे तो पहिलाही अभक्ष्य है. असी तरें सर्वत्र जान लेना. तथा उष्णकालमें मिठाइकी स्थिति वीस दिनकी है. अरु शीतकालमें मिठाइ की स्थिति एक मासकी है, उपरांत अभक्ष्य है तथा दही शोलां पहर उपरांत अभक्ष्य है. छाछभी दहीवत् जानलेनी. इस चलित रसमें बें इंद्रि य जीव उत्पन्न होतें हैं इस वास्ते यह अभक्ष्य है.॥ २१ ॥

२२ वत्तीस अनंत काय सर्व अजक्ष्य हे. क्योंकि सूईकेअग्रजाग जैसा जितना टुकडा अनंतकायका आता हे. उस टुकडेमेंजी अनंत जीव है वास्ते अजक्ष्य हे. तिसका नाम लिखते हैं. १ जूमिके अंदर जितना कंद उत्पन्न होता हे, सो सर्व अनंतकाय हे, २ सूरणकंद, ३ वज्रकंद, ४ हरि हलदी, ५ अद्रक, ६ हरिया कचुर, ७ सौंफकी जडा, तिसका नाम बिरा ली कंद हे, ८ सतावरवेल ओषधि, ९ कुंआर, १० थोहरकंद, ११ गलो, १२ लसण, १३ वांसका करेला, १४ गाजर, १५ लाणा, जिसकी सज्जी ब नती हे, १६ लोढी पद्मनी सो लोढाकंद, १७ गिरमिर, (गिरिकरनी) फक्त देशमें प्रसिद्ध हे १८ किसलयपत्र (कोमल पत्र) जो नवा अंकूर उगता हे. सर्व वनस्पतिका उगती वखतके अंकूर, सो सर्व प्रथम अनंत काय होते हैं, पीछे जब बढते हे, तब प्रत्येकजी हो जाते हैं, अरु अनं तकायजी रहते हैं, १९ खरसूयाकंद. (कसेरु) अनंतकाय, २० थेग कंद विशेष हे तथा थेग नामक जाजी, २१ हरे मोथ, २२ लवण वृक्षकी छाल, २३ खिलोडी, २४ अमृतवेल, २५ मूली, २६ जूमिरुहा सो जूमिफोडा छ आकार, जिनकों बालक पदबहेडे कहते हैं, तथा खुंबां कहते हैं, २७ वथुवेकी प्रथम उगतेकी जाजी, २८ करुहार, २९ सूयरवल्ली जो जंगलमें वर्षा वेलजी हो जाती हे, ३० पलककी जाजी, ३१ कोमल आंबली, जहां तक उसमें बीज नहीं पडा हे, तहांतक अनंतकाय हे, ३२ आलुक, रतालु पिंडालु, यह वत्तीस अनंत कायका नाम सामान्य प्रकारसें कहा हे, अरु विशेष नाम तो अनेक हैं, क्यों कि कोईक वनस्पति तो पंचांग अनंतकाय हे, कोईका मूल अनंतकाय हे, कोईका पत्र, कोईका फूल, कोईकी छाल कोईका काष्ट, अर्थात् कोईके एक अंग, कोईके दो अंग, कोईके तीन अंग कोईके चार अंग, कोईके पांच अंग, अनंत काय हैं. यह वत्तीश अनंत काय अजक्ष्य हे ॥ २ ॥

अब यह अनंतकायके जानने वास्ते लक्षण लिखते हैं. जिसके पत्ते फूल, फल प्रमुखकी नसां गूढ होवें, दीखे नहीं, तथा जिसकी संधि गुप्त होवे. जो तोमनेंसें बराबर टूटे, अरु जो जडसें काटा हुआ फेर हरि हो जावे, जिसके पत्ते मोटे दलदार चीकणे होवें, जिसके पत्ते अरु फल फूल कोमल होवें, ये सर्व अनंतकाय जाननी.

इन अजक्षोंमें अफीम नांग प्रमुखका जिसकों पहिला अमल लगा होवे, तब तिसके रखनेकी जयणा करे, तथा रात्रिभोजनमें चउविहार, तिविहार, डुविहार एक मासमें इतने करुं ऐसा नियम करे, तथा रोगादिकके कारण किसी औषधिसें कोइ अजक्ष खाना पडे, तिसकी जयणा रक्खे, तथा बत्तीस अनंतकाय तो सर्वथा निषेध हें, तोजी रोगादि कारणसें औषधिमें खानी पके, तिसकी जयणा रक्खे, तथा अजाण पणे किसी वस्तुमें मिली हुइ खानेमें आ जावे, तो तिसकी जयणा इति बावीश अजक्ष्य स्वरूपं.

अथ चौदह नियमका विवरण लिखते हें. गाथा ॥ सच्चित्तदव्वविगइ, वाणेह तंबोल वच्छ कुसुमेसु ॥ वाहण सयण विलेवण, बंजदिसि न्हाणजत्तेसु ॥ १ ॥ अस्यार्थः—श्रावकके जावजीव पांच अणुव्रतमें इछा परिमाण सो कोइ आगेंकी अनेक तरेंकी कर्म परिणतिका संजव करके अपणे निर्वाह साम र्थ्यका उदय अतिडुस्तर विचारके इछा परिमाणसें बहुत वस्तुखुल्ली रक्खी हे, तिनमेंसें फेर नित्यका आश्रव निवारनेके वास्ते संक्षेप करणार्थे चौदह नियमका धारण दिन प्रत्यें रखनां चाहियें, तिसका स्वरूप कहते हे.

प्रथम सचित्त परिमाण. सो मुख्यवृत्ती करके तो श्रावककों सचित्त कों त्याग करणां चाहियें, क्योंकि अचित्त वस्तुके खानेमें चार गुण हें, प्रथम तो अप्राशुक जलादिकका पीना वर्ज्जनेंसें, सर्व सचित्त वस्तुका त्याग हो जाता है, जहां तक अचित्त वस्तु न होवे, तहां तक मुखमें प्रक्षेप न करे, डूसरा जीव्हा इंद्रिय जींती जाती हे, क्योंकि कितनीक वस्तु विना रांधे स्वादवाली होती हैं, तिनका त्याग हूआ. तीसरा अचित्त जलादि पीनेसें काम चेष्टा मंद हो जाती हे, अरु चित्तमें ऐसा खटका हरहमेश रहता है, कि मेरेकूं मतकजी सचित्त वस्तु खानेमें आ जावे? चौथा जलादिक ड्रव्य अचेतन करनेमें जीवहिंसा हूइ है, सोतो कर्मबंधनका कारण बन चूकी, परंतु जो क्षण क्षणमें असंख्य (अनंत) जीवोंकी उत्पत्ति होती थी, सो मिट गइ तिनकी हिंसा न होवेगी, अरु जो कोइ मूढ मति अपनी मनःकल्पनासें ऐसा विचार करे कि अचित्त करनेमें षट् कायके जीवोंकी हिंसा होती है, अरु सचित्त जलादिक पीनेंमें तो एक जलादिककी हिंसा हैं, इस वास्ते सचित्तका त्याग न करनां चाहियें. ऐसा विचारके सचित्त त्यागे नहीं, सो मूर्ख जिनमतके रहस्यकों नहीं

जानता, क्योंकि संचित्तके त्यागनेसें आत्मदमनता, औत्सुक्य निवारण तो, विषय कषायकी मंदता होती है, अरु जिसमें स्वदयागुण बहुत है, सोजी वो नहीं जानते इस वास्ते सचित्त त्यागनेमें बहुत लाज है.

२ दूसरा द्रव्य नियम. सो धातुका वा शिला, काष्ठ, मट्टीका पात्र प्रमुख तथा अपणी अंगुली प्रमुख विना जो मुखमें खावे सो द्रव्य कहते हैं, "परिणामांतरापन्नं द्रव्यमुच्यते" तिनमें खीचमी तो मोदक, पापम, वमा प्रमुख बहुत द्रव्यसें बनते हैं, तोजी परिणामांतरसें एकही द्रव्य है तथा एकही गेहूंकी बनी, रोटी, पोली, घूंगरी, बाटी प्रमुख है, तोजी यह सर्व जिन्न द्रव्य हैं, क्योंकि नामांतर स्वादांतर रूपांतर परिणामांतरसें द्रव्यांतर हो जाते हैं, तथा कोइक आचार्य और तरेंजी द्रव्यका स्वरूप कहते हैं, परंतु जो उपर लिखा है, सो बहुत वृद्ध आचार्योंको यही सम्मत है. इस वास्ते द्रव्योंका परिमाण करे कि आजमें इतने द्रव्य खाऊंगा!

३ तीसरा विगय नियम. सो विगय दश प्रकारका है, तिनमें १ मधु,२ मांस, ३ माखन, ४ मदिरा, यह चार तो महाविगय हैं, इन चारोंका त्याग तो बावीश अजक्षमें लिख आये है, शेष छे विगय रही, तिसका नाम कहते हैं. १ दूध, २ दही, ३ घृत, ४ तैल, ५ गुल, ६ सर्वजातका पकान्न, इस छे विगयमेंसें नित्य एक, दो, तीनादि विगयका त्याग करे, अरु एकेक विगयके पांच पांच निवीताजी विगयके साथ त्यागनां चाहियें, जे कर निवीता त्यागनेकी मनमें न होवे, तब प्रत्याख्यान करनेके अवसरमें मनमें धारे कि मेरे विगयका त्याग है, परंतु निवीताका त्याग नहीं.

४ चौथा उपानह. सो जूता पहिरनेका नियम करे, पगरखी, खडावां, मोजा, बूट, प्रमुख सर्वका नियम करे, क्योकि यह सर्व जीवहिंसाके अधिकरण हैं, तिनमें श्रावकने जिनपूजादि कारण विना खडावां तो कदापि नही पहरनी, क्योंकि इनके हेठ जो जीव आ जाता है, वो जीता नहीं रहता है, अरु गृहस्थ लोकोंकों जूते विना सरता नहीं इस वास्ते मर्यादा कर लेवे, फेर दूसरेके जूतेमें पग न देवे जूल चूक हो जावे तो आगार.

५ पांचमा तंबोल. सो चौथा स्वादिम नामा आहार है, उसका नियम करे, उसमें पान, सोपारी, लवंग, एलायची, तज. दारचीनी, जातिफल, जावंत्री, पीपलामूल, पीपर, प्रमुख करियाणेकी चीज, जिस्सें मुख शुद्ध हो

जावे, परंतु उदर नरण न होवे, तिसकों तंबोल कहते हैं. तिसका परिमाण करे

६ छठा वस्त्र नियम है. सो पुरुषके पांचो अंगोके वस्त्रोंका वेष पहरनेका तिसकी संख्या करे. कि आजके दिनमें मेरेकों इतने वेष रखने हैं, तथा इतने खुल्ले वस्त्र उढने है, तथा रात्रिकों पहेरनेका वस्त्र तथा स्नान समय पहरनेका वस्त्रकी वेषमे गिणती नहीं तथा समुच्चय वस्त्रकी संख्या रख लेवे, अजाण पणे नेल संनेल हो जावे तो आगार.

७ सातमां फूलोंके नोगका नियम करे, सो मस्तकमें रखनेवाले, अरु गले में पहरने वाले, तथा फूलोंकी शय्या, फुलोंका तकीया, फुलोंका पंखा, फुलोंका चंद्रवा, जाली प्रमुख जो जो वस्तु नोगमें आवे, फुलकी छडी सेहरा, कलंगी, अरु फूल जो सूंघनेमें आवे, तिनका तोल परिमाण रखनां.

८ आठमा वाहन नियम करे, सो रथ, गाडी, घोडा, पालखी, उंट, बलद, नाव, प्रमुख जिसके उपर बैठके जहां जाना होवे, तहां जावे, सो वाहन सर्व तीन तरेंका है, १ तरता, २ फिरता, ३ उडता, तिनकी संख्याका नियम करे कि इसतरेंकी अस्वारीमें आज चढनां.

९ नवमां शयन शय्याका नियम करे. सो खाट, चौंकी, पाट, तखत, खुरसी, पालकी, सुखासन प्रमुख जितनें रखने होवे सो मनमें धार लेवे.

१० दशमां विलेपनका नियम करे, सो नोगके अर्थे केसर, चंदन, चोवा अतर, फूलेल, गुलाबादिक जो वस्तु अंगके लगानी होवे, तिसका नाम मनमें धार लेवे, तथा अंगलूहणाजी इसीमें रख लेनां इसमें इतना विशेष है कि देवपूजा, देवदर्शन, इत्यादि धर्म करणी करतां हाथमे धूप, अगर वत्ती लेनी पडे, तथा अपणें मस्तकमें तिलक करनां पडे, तथा नगवानकी प्रतिमाकों तिलक करनां पडे, तिसका श्रावककों नियम नहीं है.

११ इग्यारवां ब्रह्मचर्यका नियम करे, सो दिनमे अरु रात्रिमें इतनी वार स्त्रीसें मैथुन सेवनां, उपरांत स्त्रीसेंनी नहीं सेवनां, अरु हास्य विनोद आलिंगन चुंबनादिक करनेका नांगा राखे.

१२ बारहवां दिशिका नियम करे, सो अमुक दिशिमें आज मेंने इतने कोस उपरांत नहीं जानां, इसमें आदेश, उपदेश, माणस नेजना, चिठी लिखनी, ये सर्व नियम आ गये, जैसें पाल सके, तैसे नियम करे.

१३ तेरहवां स्नानका नियम करे, सो आजके दिनमें तेलमर्दन पूर्वक तथा

विनमर्दनपूर्वक कितनी वखत स्नान करनां, सो धार लेवे, इसमें रेक जाके वास्ते नियमसें अधिक स्नान करनां पडे, तो अतजंग नहीं.

१४ चौदहवां जात पाणीका नियम सो चार आहारमेंसुं खादिम तो तंबोलके नियममें परिमाण रक्खा है, शेष तीन आहार हैं, तिनमें प्रथम अशन, सो जात, रोटी, कचौरी, सीरा प्रमुख, तिसका परिमाण करे, कि आजके दिनमें इतना सेर मेरेको खाना है उपरांत त्याग है. जब घरमें बहुत परिवार होवे तिसके वास्ते बहुत अशनादि कराने पडे, तिनकी जयणा रक्खे, तथा औरोंके घरमें पंचायत जीमें तहां जाना पडे, जहां बहुत आदमीऊंकी रसोई बना रक्खी है, उसका दूषण नियम धारीको नहीं, क्योंकि नियम धारीने तो अपणेही खानेकी मर्यादा करी है, परंतु न्यातिके खानेकी मर्यादा नहीं करी है, इस वास्ते अपणे खानेका परिमाण करे कि इतने सेर उपरांत में आज नहीं खाऊंगा, तथा दूसरा पाणी तिसके पीनेका परिमाण करे, कि इतने कलसो उपरांत पाणी मैंने आज नहीं पीनां, तथा तीसरा खादिम, सो मिठाई अथवा मिष्टान्न मोदकादिक तिनका परिमाण करे, यह चौदह नियम हैं, इहां अधिक जाव वाला श्रावक होवे, सो सचित्तादि परिमाणमें द्रव्यका परिमाण जूदा जूदा नाम लेकर रक्खे, तो बहुत निर्जरा होवे ॥ इति चौदह नियमका स्वरूप संपूर्ण ॥

अथ पंदरा कर्मादानका स्वरूप लिखते हैं. यह पंदरह व्यापार श्रावकों निषेध हैं, सो कारणां नहीं, क्यों कि इनके करणेसें बहुत पाप लगता है, जे कर श्रावककी आजीविका न चलती होवे तो परिमाण कर लेवे सो पंदराकर्मादानका नाम कहते हैं.

१ प्रथम इंगालकर्म, सो कोयले बना कर वेचने. इंट बनाकर वेचने, जाडे खिलोने बनापका करकें वेचे, लोहारका कर्म, सोनारका कर्म, बंगडीकार, मीलकार, कलाल, जडीयारा, जडभूंजा, हलवाइ, धातुगालक, इत्यादि जो व्यापार अग्निकरकें होवे, सो सर्व इंगालकर्म हैं. इसमें पाप बहुत लगता है, अरु लाज थोडा होता है, इस वास्ते यहकर्म श्रावक न करे.

२ दूसरा वनकर्म, सो छेद्या अनछेद्या वन वेचे, बगीचेके फल फूल वेचे. फल, फूल, कंदमूल, तृण, काष्ठ, लकडी, वंशादिक वेचे. तथा जो हरि वनस्पति वेचे, यह सर्व वनकर्म है.

३ तीसरा साकीकर्म सो गाडी, बहिल तथा असवारीका रथ, नावां, जहाज, तथा हल, दंताल, चरखा, घाणीका अंग, तथा धूंसरा, चक्की, उखली, मूशल, प्रमुख बना करके वेचे, यह सर्व शकटकर्म हे.

४ चौथा भाडीकर्म, सो गाडा, बलद, ऊंट, भेंस, गधा, खच्चर, घोडा नाव, रथ प्रमुखसें दूसरोंका बोझ वहे भाडे करी आजीविका करे.

५ पांचमा फोडीकर्म, सो आजीविका वास्ते कूप, बावडी, तलाव, खोदावे, हल चलावे, पत्थर फोडावे, खान खोदावे, इत्यादिक स्फोटिक कर्म हे. इन पांचों कर्मोंमें बहुत जीवोंकी हिंसा होती हे. इस वास्ते इन पांचोंको कुकर्म कहते हे. अब पांच कुवाणिज्य लिखते हे.

१ प्रथम दंतकुवाणिज्य, सो हाथीका दांत, उल्लूके नख, जीभ, कलेजा, पक्षीयोंका रोम तथा गायका चमर, हरणके सींग, बारासिंगेके सींग, कृम जिस्सें रेशम रंगते हे, इत्यादिक जो त्रस जीवका अंगोपांग वेचना हे. सो सर्व दंतकुवाणिज्य हे. जब इन वस्तुओंके लेने वास्ते आगरमें जावे, तब भिल्लादिक लोक तत्काल हाथी, गेंडा, प्रमुख जीवोंकी हिंसामें प्रवर्त्त होते हें, महा पाप अनर्थ करे, तहां जानेसें अपणा परिणामभी मलिन हो जाते हें, कदाचित् लोभपीडित हो कर भिल्ल व्याधोंको कहना पडेकि, हमको मोटा भारी दांत चाहीता हे, तब वो लोक तत्काल हाथीको मारके वैसा दांत ल्यावेंगे, इस वास्ते जे कर वस्तु लेनी पडे, तब व्यापारीके पाससें लेवे, परंतु आगरमें जाकर न लेवे, क्योंकि आगरमें जा कर एक चमर लेवे, तो एक गाय मरे इस वास्ते विचार करके वाणिज्य करे. यह प्रथम दंत कुवाणिज्य हे.

२ दूसरा लाखकुवाणिज्य, सो लोहा, धावडी, नील, सज्जीखार, साबन, मनशिल, सोहागा, इत्यादि, तथा लाख, ये सर्व लाख कुवाणिज्य हे. प्रथम तो त्रस जीवोंका समूहहीसें लाख बनती हे. अरु पीछे जब रंग काढते हें, तब तिसको अनसें सनाते हें. तब त्रस जीवकी उत्पत्ति होती हे, अरु महा दुर्गंध रुधिर सरीखा वर्ण दीखता हे, तथा धावडीमें त्रस जीव उपजते हें, कुंथुयेभी बहुत होते हें. अरु यह मदिरेके अंग हे, तथा नीलको जब प्रथम सडाते हें. तब त्रस जीव उत्पन्न होते हें; पीछेभी नीलके कुंडमें त्रसजीव बहुत उत्पन्न होते हे, अरु नीला वस्त्र पहि

रनेसें उसमें जू लीखादि त्रसजीव उत्पन्न होते हैं, तथा हरताल मनसिल पीसती वखत जो यत्न न करे, तो मक्खी प्रमुख अनेक जीव मर जाते हैं.

३ तीसरा रस कुवाणिज्य. सो मदिरा, मांस, इत्यादि वस्तुका व्यापार महा पापरूप है, तथा दूध, दहीं, घृत, तेल, गुरु, खांड प्रमुख जो ढीली वस्तु है, इसका जो व्यापार करनां सो रसकुवाणिज्य है. इसमें अनेक जीवोंकी घात होती है. वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

४ चौथा केशकुवाणिज्य है. सो द्विपद जो मनुष्य, दास, दासी प्रमुख, खरीद कर वेचनें, तथा चौपद जो गाय, घोडा, भैंस प्रमुख खरीदके वेचनें तथा पंखीयोंमें तीत्तर, मोर, तोता, मैनां, वटेरा प्रमुख वेचे, इस वाणिज्यमें पाप वहुत है. इस वास्ते यह व्यापार श्रावक न करे.

५ पांचमा विष कुवाणिज्य. सो शंखीया (सोमल) वछनाग, अफीम, मनसिल, हरताल, चरस, गांजा प्रमुख तथा शस्त्र जो धनुष, तलवार, कटारी, छुरी, वरछी, फरसी, कुहाडी, कुशी, कुद्दाल, पेसकवज, बंदूक, ढाल, गोली, दारु, वक्तर, पाखर, जिलम, तोप प्रमुख जिन करकें संग्राम करते हैं, तथा हल, मूशल, उखल, दंताली, कर्वत, दात्री, गोला, हवाइ, पटाका, कुहक शतघ्नी प्रमुख सर्व हिंसाईका अधिकरण है. इनका जो व्यापार करनां, सो सव विषवाणिज्य है, इसमें वहुत हिंसा होती है, ये पांच कुवाणिज्य हैं. अव पांच सामान्य कर्म कहते हैं.

१ प्रथम यंत्रपीलन कर्म. सो तिल सरसों, इक्षुआदि पीलाय करकें वेचना, यह सर्व जीवहिंसाके निमित्तरूप यंत्रपीलन कर्म है.

२ दूसरा निर्लांछन कर्म. सो वैल घोडाकों खस्सी करणां, घोडे, वलद, ऊंट प्रमुखकों दाग देनां, कोतवालकी नौकरी, जेलखानेका दरोगा ठेकालेनां, मसूल इजारे लेनां, चोरोंके गाममें वास करनां, इत्यादि जो निर्दयपणेका काम है, सो सर्व निर्लांछन कर्म है.

३ तीसरा दावाग्निदान कर्म. सो कितनेक मिथ्यादृष्टि अज्ञानी जीव धर्म मानके वनमें आग लगा देते हैं, वो अपने मनमें जानते हैं कि नवा घास उत्पन्न होवेगा तव गौ चरेंगी, जिह्वादिक लोक सुखसें रहेंगें, अन्न उपजेगा, इत्यादि कार्य अज्ञानपणेसें धर्म जाणके करे, आग लगानेसें लाखो जीव मरजाते हैं, इस वास्ते आग न लगानी चाहियें.

४ चौथा शोषणकर्म. सो बावडी, तलाव, सरोवर, इनका जल अपणे खेतमें देवे, जब पाणीकों बहार काडे, तब लाखों जीव जल रहित तरफरके मर जाते हैं, इस वास्ते सर्व पाणी शोषण न करनां.

५ पांचमा असतीपोषण कर्म. सो कुतूहलके वास्ते कुत्ते, बिल्ले, हिंसक जीवोंकों पोषे, तथा दुष्ट भार्या, अरु दुराचारी पुत्रकों मोहसें पोषण करे, साचा झूठा जाणे नहीं, जो मनमें आवे सो करे, तिनकों राजी रखे, तथा बेचणे वास्ते दुराचारी दास दासीकों पोषे, सो असती कर्म कहियें. तथा माठी, कसाई, वागुरी, चमार प्रमुख बहु आरंभी जीवोंके साथ व्यापार करे, तिनकों द्रव्य तथा खरची प्रमुख देवे, यहभी दुष्ट जीवोंका पोषण है. जे कर अनुकंपा करकें श्वान (कुत्ते) प्रमुख कीसी जीवकों पुण्य जान कर देवे, तो उसका निषेध नहीं, तथा अपणे महेलमें जो जीव होय तिनकी खबर लेनी पडे, तथा अपणे कुटुंबका पोषण करना पडे, इसमें पूर्वोक्त दोष नहीं. क्योंकी यह लोकनीति राजनीतिका रस्ता है, सो पांच सामान्य कर्म कहा. इति पंदरा कर्मादान संपूर्ण.

अब यह सातमें भोगोपभोग व्रतका पांच अतिचार लिखते हैं.

१ प्रथम सचित्त आहार अतिचार, सो मूलभांगेमें तो श्रावक सर्व सचित्तका त्याग करे, जेकर नही करे, तो परिमाण कर लेवे, तहां सर्व सचित्तके त्यागी तथा सचित्तके परिमाणवाले जो अनाभोगादिकसें सचित्त आहार करे, तथा जल, तीन उकाली आजानेसें शुद्ध प्रासुक होता है, तिनमें एक उकाला, दो उकालाका पाणी तो मिश्र उदक कहा जाता है, तिस पाणीकों अचित्त जाणके पीवे तथा सचित्त वस्तु अचित्त होनेमें देर है, उस वस्तुकों अचित्त जानकर खावे, तो प्रथम अतिचार लागे.

२ दूसरा सचित्त प्रतिबद्धाहार अतिचार. सो जिसके सचित्त वस्तुका नियम है, सो तत्काल वृक्षकी गांठसें गूंद उखेडके खावे, गूंद तो अचित्त है, परंतु सचित्तके साथ मिला हुआ था सो दूषण लगता है. तथा पका हुआ आंब खिरनी बेर प्रमुखकों मुखमें खावे. अरु मनमें जानता है कि मैं तो अचित्त खाता हूं, सचित्त गुठलीकों तो गेर देऊंगा, इसमें क्या दोष है? ऐसा विचार करके खावे. तब दूसरा अतिचार लागे.

तीसरा अपक्वौषधि भक्षण अतिचार. सो बिना तपाया आटा, अ

ग्निका संस्कार जिसकों करा नहीं, ऐसा कच्चा आटा खावे, क्योंकि श्री सिद्धांतमें आटा पीस्यां पीछे विना छाएयां कीतनेही दिन मिश्र रहता है, सो कहते हैं. श्रावण,जाद्रव मासमें अनछान्या आटा पीस्या पीछें पांचदिन मिश्र रहता है, आश्विन और कार्तिक मासमें चारदिन मिश्र रहता है, मगसिर और पोष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, माघ अरु फागुण मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, चैत्र अरु वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है, ज्येष्ठ अरु आषाढ मासमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, पीछें अचित्त हो जाता है, सो मिश्र खावे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा दुष्पक्वौषधि जक्षण अतिचार. सो कतुक कच्चा, कतुक पक्का जैसें सर्व जातके पोंक अर्थात् सिट्टे जो मक्की, जवार, वाजरे, गेहूं प्रमुखके बीजोंसें जरे हुए होते है, इनकों अग्निका संस्कार कर्यां, कतुक कच्चे पके हो जावे तिनकों अचित्त जान कर खावे, तो चौथा अतिचार लागे.

पांचमा तुच्छौषधि जक्षण अतिचार. सो तुच्छ नाम इहां असारका है, जिसके खानेसें तृप्ति न होवे, तिसके खानेमें पाप बहुत है, जैसें चणाका फल खावे, तथा वेरकी गुठलीमेंसें गिर निकालके खावे, तथा वाल, समा, मूंग, चवलाकी फली खावे, इसके खानेसें प्रसंग दूषणजी लग जाते हैं, क्योंकि कोइ वनस्पति अतिकोमल अवस्थामें अनंतकायजी होती है, तिसके खानेसें अनंतकायका व्रत जंग हो जाता है,यह पांचमा अतिचार कहा ॥ इति सप्तम जोगोपजोग व्रतं संपूर्णं ॥ ७ ॥

३ अथ आठमा अनर्थदंड विरमणव्रतका स्वरूप लिखते हैं. प्रथम अर्थदंड उसकों कहते हैं, कि जो अपणे प्रयोजनके वास्ते करे, सो धन, धान्य, क्षेत्रादि नवविध परिग्रहमें हानी वृद्धि होवे, तब करे क्योंकि धनवृद्धिके निमित्त संसारी जीवकों बहुत पापके कारन सेवने पमते हैं, तब सत्य झूठ बोले विना रहा नहीं जाता है, पापके उपकरणजी मेलने पडते हैं, अरु कोई मनसूबा करना पमता है, तब अनेक विकल्प रूप आर्त्तध्यान करना पमता है, क्योंकि धनादिक परिग्रह आजीविकाके अर्थ हैं, तिस वास्ते धनकी वृद्धि वास्ते जो जो पाप करना है,सो सो सर्व अर्थ दंड है. दूसरा जब धनकी हानि होती है, तब धनहानि दूर करणे वास्ते अनेक विकल्प रूप पाप करता है, सोजी अर्थ दंड है, क्योंकि संसारके सुखका कारन

रूप धन व्यवहार है, तिस व्यवहारके वास्ते जो पाप करनां पडे, सो अर्थदंड है. तीसरा अपणा स्वजन कुटुंब परिवारदिकके वास्ते अवश्य जो जो पाप सेवनां पडे, सो सो सब अर्थदंड है. चौथा पांच प्रकारकी इंद्रियोंके भोग वास्ते जो पाप करे, सोभी अर्थ दंड है; इन पूर्वोक्त चारों प्रयोजनो विना जो पाप करे, सो अनर्थदंड, जाननां. तिसके चार भेद हैं, सो कहते हैं. प्रथम अपध्यान अनर्थदंड, दूसरा पापोपदेश अनर्थदंड, तीसरा हिंसप्रदान अनर्थदंड, चौथा प्रमादाचरित अनर्थदंड है. इनमेंसूं प्रथम जो अपध्यान अनर्थदंड है, उसके फेर दो भेद है, एक आर्त्तध्यान दूसरा रौद्रध्यान, तिनमें फेर आर्त्तध्यानके चार भेद हैं, सो पृथक् पृथक् कहते हैं.

१प्रथम अनिष्टार्थ संयोगार्त्तध्यान. सोइंद्रिय सुखका विघ्नकारी ऐसे अनिष्ट शब्दादिकके संयोग होनेकी चिंता करे कि मत मेरेकों अनिष्ट शब्द मिले.

२ दूसरा इष्टवियोगार्त्तध्यान. सो हमकों नवविध परिग्रह अरु परिवार जो मिला है, इसका वियोग मत होवे, ऐसी चिंता करे, अथवा इष्ट जो माता, पिता, स्त्री, पुत्र मित्र प्रमुख हैं, इनके विदेश गमनसें तथा मरण होनेसें वहुत चिंता करे, खाए पीए नहीं, वियोगके दुःखसें आत्मघात करनेका विचार करे, अथवा सर्वदिन क्रोधहीमें रहे, तथा घरमें यह कुपूत है, यह भाई वेदिल है, मेरे पिताका मेरे उपर मोह नहीं है, यह स्त्री मुझकों वहुत खराव मिली है, सो मेरे उपर दिल नहीं देती है, इसका कोई उपाय होवे तो अछा है, अरु स्त्री मनमें विचारे कि मुझे शोकन खराव करती है, मेरे पतिकों भूलाती है, क्या जाने किसी दिन पतिसें मुझे दूर करेगी? इस वास्ते इस रांमका कुछ उपाय करनां चाहियें, तथा सेवक ऐसा विचार करे किः—मेरे स्वामीके आगें फलाना मेरा दुश्मन गया है, सो जरूर मेरी खोटी कहेगा, मेरी रीत भांतकों अदल वदल कर देवेगा, मेरे स्वामीकों झूठ साच कह कर मेरी नोकरी छुमा देवेगा, तव में क्या करूंगा? इसका कुछ उपाय करनां चाहियें, तिसके निग्रह वास्ते यंत्र, मंत्र, कामन, मोहन, वशीकरण करे, तिसकों झूठाकलंक देवे, वलिदान देने वास्ते त्रस जीवकों मारे, यह सब अपने शत्रुके निग्रह वास्ते करे. तथा मूठ चलाके मारा चाहे, परंतु वो मूर्ख यह नहीं विचारता किः—जे कर तूं अपणे दिलसें सच्चा है, तो तुझे क्या फिकर है? अरु जहां तक अगलेका पु

एयोदय है, तहां तक तूं यंत्र, मंत्रसें उसका कुछ बुरा नहीं कर सकता है, ये सर्व संसारी जीवकी मूर्खता है, यह सर्व अनर्थदंड हैं. तथा प्रथम ब पणी आतुरतासें ति मनमें कुविकल्प करे, कि मेरे वैरीके कुलमें अमुक ज रदस्त उत्पन्न हूआ है, सो मेरेकों दुःख देवेगा, इसकी राजदरबारमें आव जावे, अरु दंड होवे, तो ठीक है, तथा इसका कोई छिद्र मिले तो सरका रमें कह कर इसकों गामसें निकलवाय देउं तो ठीक हैं, ऐसा विचार मू ढ अज्ञानी करता है. तथा यहां चोर बहुत पडते हैं, सो पकडे जाय फांसी दीये जाय, तो बडा अछा काम होवे, तथा अमुक पुरुष, मेरे ज र हो कर चलता है, इस हरामजादेका कुछ बंदोबस्त करनां चाहियें, जु फेर कदापि शिर न उठावे, इत्यादि खोटे विकल्प करकें अनर्थदंड करे, क्योंकि किसिकी चिंतवणासें दूसरोंका बिगाम नहीं होता है, जे कुछ हो ना है, सो तो सब पुण्य पापके अधीन है, तो फेर तूं काहेकों विह्वलता मनोरथ करता है ? क्यों किः—यह विना प्रयोजनके पाप लगता है, सो अनर्थदंड है, ये दूसरा आर्त्तध्यानका भेद कहा.

३ तीसरा रोगनिदानार्त्त ध्यान. सो मेरे शरीरमें किसी वखत रोग होता है, वो न होवे तो अछा है, लोकोंकों पूछे कि अमुक रोग क्यों कर न हो वे ? तब कोइ कहे कि अमुक अमुक अभक्ष वस्तु खानेसें नहीं होता है, तब अभक्षभी खा लेवे, तथा जब शरीरमें रोग होवे, तब बहुत हाय हाय श ब्द करे, बहुत आरंभ करे, घडी घडीमें ज्योतिषीकों पूछे, कि मेरा रोग क ब जायगा ? तथा वैद्यकों बार बार पूछे, तथा मेरे उपर किसीने जादु करा है ? ऐसी शंका करे, अरु रोग दूर करने वास्ते कुल विरुद्ध, धर्मविरुद्ध करे, तथा अभक्ष खानेमें तत्पर होवे, रोग दूर करनेके वास्ते औषधि, ज मी बुटी, मंत्र, यंत्र, तंत्र, सीखे तथा सीखे हूए किसी वखत मेरेकाम आ वेगा, यह रोगनिदानार्त्तनामाआर्त्तध्यानका तीसरा भेद है.

४ चौथा अग्रशोचनामा आर्त्तध्यान. सो अनागत कालकी चिंता करे, कि आवता वर्षमें यह विवाह करुंगा, तथा ऐसी हाट, हवेली बनाउंगा, कि जिसकों देख कर सर्व लोक आश्चर्य करे, तथा अमुक क्षेत्रमें बगीचा लगाना हैं, जिसके आगें सर्व बाग निकम्मे होजावें, सर्व दुश्मनकी छाती जले, तब अमुक वस्तुका मैंनें सौदा करा है, सो वस्तु आगेकों महंगी हो

जावे तो ठीक है, मुझे बहूत नफा मिल जावे. इत्यादि अनागत कालकी अपेक्षा अनेक कुविकल्प शेखशील्लीकी तरें चिंते, इसका नाम अग्रशोच नामा आर्त्तध्यान है. इति आर्त्तध्यानका संक्षेप स्वरूप लिखा ॥

अथ रौद्रध्यानका स्वरूप कहते हैं? प्रथम हिंसानंद रौद्र. सो त्रस स्थावर जीवोंकी हिंसा करकें मनमें आनंद माने, तथा बहूत पाप करकें सुंदर हाट, हवेली, बाग प्रमुख बनावे, उसकों देखकें जब लोक प्रशंसा करे, तब मनमें सुख माने कि मैंनें कैसी हिकमतसें बनाया है, मैरे समान अकल किसीमेंभी नहीं है, तथा रसोइ प्रमुख खानेकी वस्तु बनावे, तब बहुत मसाले डाले, भक्ष्य वस्तुकों अभक्ष्य सदृश बनाके खावे, तथा मानके उदयसें अैसी जमणवार (ज्योंनार) करे, कि जिसकों सर्व लोक सराहें, तथा राजाओंकी लडाइ सुन कर खुसी माने. एक राजाका पक्षी बन कर महिमा करे, दूसरेकी निंदा करे, तथा अमुक योद्धेनें एक तरवारसें सिंहादिक मारा है, वाह रे सुभट! अैसी प्रशंसा करे, तथा अपणे दुश्मनकों मरा सुन कर राजी होवे, मुख मरोडे, मूंछ उपर हाथ फेरे, हाथ घसे, अरु मुखसें कहे कि ये हरामखोर मेरे पुण्यसें मर गया अैसी अैसी खोटी चिंतवणा करकें कर्म बांधे, परंतु अैसा न विचारेकिः—दूसरा कोइ किसीका मारणे वाला नहीं है, उसकी आयु पूरी हो गइ इस वास्ते मर गया, एक दिन इसीतरें तूंभी मर जायगा. झूठा अभिमान करनां ठीक नहीं, अैसा विचार न करे, सो हिंसानंद रौद्रध्यान कहियें.

२ दूसरा मृषानंद रौद्रध्यान. सो झूठ बोलके खुशी होवे अरु मनमें अैसा चिंते कि मैंने कैसीक बात बनाके करी किसीकोंभी खबर न पडी, मैं बडा अकलवंत हूं? मेरे समान कौन है? मैरे सन्मुख कौन जबाब करनेकूं समर्थ है? बोलना है, सो करामाती है, बोलना किसीकों आता है, इस अवसरमें जेकर मैं ना होता तो देखते क्या होता? अैसा मनमें फूले और अपने दुश्मनकों संकटमें गेरकें मनमें आनंद माने अरु कहे कि देखा मैंनें कैसी हिकमत करी? राज दरबारमें लोकोंकी चुगली करकें स्थानभ्रष्ट करे, मनमें खुसी माने. इत्यादि मृषानंद रौद्र है.

३ तीसरा चौर्यानंद रौद्र. सो भद्रक जीवोंसें कूड कपटकी बातां बना करकें बहु मूली वस्तु थोडे दाममें ले लेवे, तथा पराया धन, लेखेसें अधि

क लेवे, तथा चोरी करकें किसीकी वहीमें अधिका उंठा लिख देवे, आप पैसा खाय जावे, अनेक कपटकी कलासें शेठकों राजी कर देवे, पीछें विचारे कि में कैसा चतुर हूं, कि पैसाजी खाया, अरु सेठके आगें सच्चाजी बन गया? तथा व्यापार करे, तब खोटी जूठी सोगंद खावे, मीठा बोल कर दूसरोंकों विश्वास उपजा कर न्युन अधिक देवे, लेवे, अरु मनमें राजी होके कहे कि मेरे समान कमाउ कौन है? तथा चोरी करकें मनमें आनंद मानें कि मैंने कैसी चोरी करी, कि जिसकी किसकों खबरजी नहीं पडी? तथा जूठे खत पत्र बनाकर सरकारसें फत्ते पावे, तब मनमें वडा आनंदित होवे, जो में वडा चलाक हूं मैंनें हाकमकोंजी धोखा दीया, इत्यादि चौर्यानंद सो रौद्र ध्यानका तीसरा जेद है.

चौथा संरक्षणानंद रौद्र. सो परिग्रह, धन, धान्य, वहूत वढावे, पीछे औरजी इछा करे, पाप कुटुंवके पोषणे वास्ते परिग्रहकी वृद्धि करे, वहुत कुवुद्धि करे, जैसे तेसे कामकों अंगीकार करे, लोक विरुद्ध, राजविरुद्ध, कुलविरुद्ध, धर्मविरुद्धादिक कामकी उपेक्षा न करे, ऐसे करतां पूर्व पुण्योदयसें पाप परिग्रह पावे, धन वहुत हो जावे, तब मनमें वहुत खुशी माने कि इतना धन मैने एकिलाने पैदा कीया है, ऐसा और कौन हुस्यार है, जो पैदा कर सके? ऐसा अहंकार करे, अहंकारमें मग्न रहे, रातदिन मनमें चिंता रहे, कि मत कजी मेरा धन नष्ट हो जावे. रातकों पूरा सो वेजी नहीं, हाट हवेलीके ताले टटोलता रहे, सगे पुत्रकाजी विश्वास न करे, लोकोंकों कुवुद्धि सिखावे, इत्यादि संरक्षणानुवंधी रौद्रध्यान है, ये आर्त अरू रौद्र मिलकर प्रथम अपध्यानार्थदंडके जेद हैं, सो न करनां चाहियें

२ अब दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड कहते हैं. सो हरेक अवसरमें घर संवंधि तथा दाक्षिण्यता वर्जीके पापोपदेश करे, जैसें तुमारे घरमें वछडे वडे हो गये हैं, इनकों वधीया करकें समारो, नाकमें नथ गेरो, घोडेकों चावक असारकों देवो, वो इसकों फेरकें सिखावे, तथा तुमारे क्षेत्रमें सूड वहुत हो रहा है, उसको काटना तथा जलाना चाहियें, इत्यादि जो पापकारी काम है, तिसका विना प्रयोजन अज्ञानपणेसें उपदेश करे, यह दूसरा पापकर्मोपदेश अनर्थदंड है.

३ तीसरा हिंस्रप्रदान अनर्थदंड, सो हिंसाकारी वस्तु गाडी, हल, शस्त्र,

तलवारादि, अग्नि. मूशल. उखल. धनुष. तरकस. चक्कु. छुरी. दात्र प्रमुख दूसरोंको दाक्षिणता विना, मागे विना. देवे सो हिंसप्रदान.

४ चौथा प्रमादाचरण अनर्थदंड. सो कुतूहलसें गीत, नाटक, तमाशा. मेला प्रमुख सुनने देखने जानां. इंद्रियोंकी विषय पोषणी. इहां कुतूहल कहनेसें जिनयात्रा. संघ. अष्टाह्नमहोत्सव. रथयात्रा. तीर्थयात्रा. इनके देखने वास्ते जावे. तो प्रमादाचरण नही. किंतु यह तो सम्यक्त्व पुष्टिके कारण है. तथा कामशास्त्र वात्सायनादिकोंके कर्म तिनमें अत्यंत रुचि वार वार उसका अभ्यास करनां. तथा जूआ खेलना. मद्य पीनां. शिकार मारने जानां. तथा जलक्रीडा (तलाव प्रमुखमें कूदनां) जल उछालनां. तथा वृक्षशाखाके साथ रस्सा बांधकर झूलना (हिंचनां) हिंडोले (झुलानां) हिंचना. तथा लाल, तीत्तर, वटेरे. कूकडे. मिंढे, भेंसें, हाथी, बुलबुल, इनकों आपसमें लडानां तथा अपणे शत्रुके वेटे पोतेसें वेर रखनां, वेर लेनां, तथा भक्तकथा सो "मांस, कुलमाष, मोदक, ओदनादि बहुतअछा भोजन है, जो, खाते हैं, उनको वडा स्वाद आता है. अरु हमभी यह खायंगे" इत्यादि कहनां, तथा स्त्रीकथा, सो स्त्रीयोंके पहननेकी तथा अंगप्रत्यंग हावभावादि कथन रूप, तथा "कर्णाटी सुरतोपचारकुशला, लाटी विदग्धा प्रिये" इत्यादि. तथा स्त्रीके रूपोत्पादन, कुच कठन करणां, योनिसंकोच, इत्यादिस्त्री कथा करणी, तथा देशकथा सो जैसें दक्षिण देशमें अन्न, पाणी, अरु स्त्रीयोंसें संभोग करनां बहुत अछा है इत्यादि. तथा पूर्वदेशमें विचित्र वस्तु गुड, खंड, शालि, मद्यादि प्रधान चीजें होती हैं, तथा उत्तरदेशके लोक सूरमे हैं, घोडे वडे शीघ्र चलने वाले अरु दृढ होते हैं, तथा गेहूं प्रमुख धान्य बहुत होता है. तथा केशर, मीठी द्राक्ष, दाडिम, कोठादि जहां सुलभ हैं. इत्यादि तथा पश्चिम देशमें इंद्रियकों सुखकारी सुख स्पर्शवाले वस्त्र हैं, इत्यादि. तथा राजकथा सो जैसें हमारा राज वडा सूरमा है. वडा धनवान् है, अश्वपति तुरक इत्यादि है. यह जैसें चार अनुकूल कथा कही, ऐसें ही चारो प्रतिकूल कथाभी जान लेनी, तथा ज्वरादिरोग अरु मार्गका थकेवा, यह दोनों वर्जके संपूर्ण रात्रिकों सो रहनां (निद्रा लेनी) यह सर्व पूर्वोक्त प्रमादाचरणको श्रावक वर्जे, तथा देशविशेषमेंभी प्रमाद न करनां, तथा जिनमंदिरमें कामचेष्टा, हांसी, लडाइ, हसना, थूकनां, निंद

लेनां, चोर परदारिकादिकी खोटी कथा करनी, चार प्रकारका आहार खानां, यह चौथा अनर्थदंड है. इस व्रतके पांच अतिचार कहते हैं

प्रथम कंदर्पचेष्टा. सो मुखविकार भ्रुविकार, नेत्रविकार, हाथकी संज्ञा बतावे, पगकों विकारकी चेष्टा करके औरोकों हसावे, किसीकों क्रोध उत्पन्न हो जावे. कुलका कुठ हो जावे,अपणी लघुता होवे, धर्मकी निंदा होवे, ऐसी कुचेष्टा करे. सो प्रथम कंदर्पचेष्टा अतिचार है.

२ दूसरा मुखसंती मुखरता करे, असंबंध वचन बोले, जिस्सें दूसरों का मर्म प्रगट होवे, कष्टमें गेरे, अपणी लघुता करे, वैर बधे, ढीठ,लबाक. लुगल चोर इत्यादि नाम धरावे,लोकोमें लज्जानीय होवे, इसी तरें बहुत बाचालपणा करणां, सो दूसरा मुखारिवचन अतिचार.

३ तीसरा जोगोपजोगातिरिक्त अतिचार है, सो यहां स्नान, पान, जोजन, चंदन, कुंकुम, कस्तूरी, वस्त्र, आजरणादिक अपणे शरीरके जोगसें अधिक करणे, सो अनर्थदंड है. इहां वृद्ध आचार्योंकी यह संप्रदाय है, कि:– तेल, आमले, दही प्रमुख. जे कर स्नानके वास्ते अधिक ले जावे, तो तद्लोल्पना करके स्नान वास्ते बहुत लोक तलाव आदिकमें जायगे, तहां पाणीके पूरे. तथा अप्कायके जीवोंकी बहुत विराधना होवेगी. इस वास्ते श्रावककों ऐसे स्नान न करनां चाहियें. क्योंकि श्रावकके स्नानका यह विधि है कि:–श्रावकने प्रथम तो घरमेंही स्नान करनां चाहियें. तिसके अजावमें तेल. आमले, आकदिमें घरमेंही शिर घस करके मेल गेर करके तलावके कांठे उपरि बेठके अंजलिमें पाणी शिरमें डाल करके स्नान करनां तथा जिस फूलादिकमें जीवोंकी संसक्ति जाने, तिनको परिहरे. ऐसे सर्व जगे जान लेनां. यह तीसरा जोगाधिक आरंज अतिचार है.

४ चौथा कौकुच्य अतिचार. सो जिसके बोलने करनेमें अपणी तथा औरोंकी चेतना कामक्रोधरूप हो जावे, तथा विरहकी बात संयुक्त कथा दोहा. साखी. बैंत. कुलना. कवित, छंद, परजराग, श्लोक. शृंगाररसकी नरी हुइ कथा कहनी, यह चौथा काममर्म कथन अतिचार है.

५ पांचमा संयुक्ताधिकरण अतिचार. सो उखलके साथ मूसल, हलके साथ फाला. गाडीसें युग, धनुषसें तीर, इत्यादि. इहां श्रावकने संयुक्त अधिकरण नहीं रखनां, क्योंकि संयुक्त रखनेंसें कोइ ले लेवे, तो देरना

नहीं करी जाती है, अरु जब अलग अलग होवे, तब उसकों सुखसें उत्तर दे सकेगा, ये पांचमा अतिचार कहा ॥ इति अष्टमव्रत संपूर्ण ॥

अथ नवमा सामायिकव्रतका स्वरूप लिखते हैं, इन पूर्वोक्त आठां व्रतोंकों तथा आत्मगुणोंकों पुष्टिकारक अविरति कषायमें तादात्म्यजावसें मिली अनादि अशुद्धता रूप विजाव परिणति, तिसके अज्यासकों मिटाने वास्ते अरु आत्मअनुजव करने वास्ते तथा सहजानंद स्वरूपरस प्रगट करने वास्ते यह नवमा शिक्षाव्रत है, अर्थात् शुद्ध अज्यासरूप नवमा सामायिक व्रत लिखते हैं. दो घमी काल प्रमाण समतामें रहना, राग द्वेषरूप हेतुओंमें मध्यस्थ रहणां, तिसकों पंमित सामायिक व्रत कहते हैं, (सम) नाम हें राग द्वेषरहित परिणाम होनेसें, जो ज्ञान दर्शन चारित्ररूप मोक्ष मार्ग, तिसका "आय" नाम लाज होवे प्रशमसुख रूप इनका जो इक केतां जाव सो सामायिक है, मन, वचन, कायकी खोटी चेष्टा एतावता आर्त्तध्यान तथा रौद्रध्यान त्यागकें अरु सावद्य मन, वचन, काया, पाप चिंतन, पापोपदेश, पापकरणरूप वर्जके श्रावक सामायिक करे. इहां आवश्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जब श्रावक सामायिक करता है, तब साधुकी तरें हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें देवस्नात्र, पूजादिक, न करे, क्यों कि जावस्तवके वास्ते द्रव्यस्तव करनां है, सो जावस्तव सामायिकमें प्राप्त हो जाता है, इस वास्ते श्रावक सामायिकमें द्रव्यस्तव रूप जिनपूजा न करे, सामायिक करने वाला मनुष्य बत्तीस दूषण वर्जके सामायिक करे, सो बत्तीस दूषणमें प्रथम कायाके बार दूषण कहते हैं.

१ सामायिकमें पग उपर पग चढा करकें उंचा आसन (पालठी) लगाकर बैठे, सो प्रथम दूषण है, कारण कि गुरुविनयकी हानि कारक होनेसें यह अजिमानक आसन है, इस वास्ते जिस बैठनेसें विनयगुण रहे, औद्धता मालुम न होवे, तथा अजयणा न होवे, ऐसे आसन उपर बैठे.

२ दूसरा चलासन दोष. सो आसन स्थिर न रक्खे, वारं वार आगें पीछें हलावे, चपलाइ करे. मुख्य मार्ग तो यह है, कि श्रावक एक जगे एकही आसन उपर सामायिक पूरा करे, अडिग पणेसें रहे, कदापि रोग निर्बलतादि कारण करकें एक आसन उपर टिका न जाय, फिरनां पडे, तो उ

पयोग संयुक्त जयणा पूर्वक चरवलासें जहां तहां पुंजना प्रमार्जना करके आसन फिरावे, यह पूर्वोक्त विधि न करे, तो दूसरा दूषण लगे.

३ तीसरा चलदृष्टि दोष है. सो सामायिक करे, पीछें नासिका ऊपरदृष्टि राखे, अरु मनमें शुद्ध उपयोग राखे, मौन पणेसें ध्यान करे, अरु सामायिकमें शास्त्राभ्यास करनां होवे, तो यत्नपूर्वक मुख आगें मुखवस्त्रिका दे कर, दृष्टि पुस्तक ऊपर रख कें पढे, अरु सुणे, तथा जब कायोत्सर्ग करे, तब चार अंगुल पीछें पग चौडा राखे, ऐसी योग मुद्रासें खडा हो कर दोनो बाहु प्रलंबित करे, दृष्टि नासिका ऊपर रक्खे, अथवा सज्जे (दहिने) पगके अंगूठे ऊपर रक्खे, यह शुद्ध सामायिक करनेकी विधि है, इस विधिकों छोडकें चपल पणेसें चकितमृगकी तरें चारोंदिशि आंखें फिरावे, सो तीसरा दोष है.

४ चौथा सावद्यक्रियादोष. सो क्रिया तो करे, परंतु तिसमें कतुक सावद्य क्रिया करे, अथवा सावद्य क्रियाकी संज्ञा करे, सो चौथा दोष.

५ पांचमा आलंबन दोष. सो सामायिकमें भींतादिकका आलंबन, अर्थात् पीठ लगा कर बैठे, यह विना पुंजी भींतमें अनेक जीव बैठे हुए होते हैं, सो मर जाते हैं, तथा आलंबनसें नींदभी आ जाती है.

६ छठा आकुंचन प्रसारण दोष. सो सामायिक करकें विना प्रयोजन हाथ, पग, संकोचे, लांबा करे, सामायिकमें तो महोटे कारण विना हलनां नहीं, जरूरी काममें चरवलासें पुंजन प्रमार्जन करकें हलावें.

७ सातमा आलस दोष. सो सामायिकमें अंगमें आलस मोडे, अंगुली योंके कडाके काढे, कमर वांकी करे, ऐसी प्रमादकी बाहुल्यतासें व्रतमें अनादर होता है, कायामें अरति उत्पन्न हो जाती है, जब उठे, तब आलस मोड कर अतिअशोभनिक उठे. यह सातमा आलस दोष.

८ आठमा मोडन दोष. सो सामायिकमें अंगुली प्रमुख टेढी करी कडाका काढे. ए पण प्रमादकी प्रबलतासें होता है.

९ नवमा मल दोष. सो सामायिक में करकें खाज करे, मुख्यवृत्ति सो सामायिकमें खाज नहीं करणी, परंतु जब लाचार होवे, तब चरवला प्रमुखसें पुंजन प्रमार्जन करकें हलवे हलवे खाज करे यह ऐसी है.

१० दशमा विमासण दोष. सो सामायिकमें गलेमें हाथ दे कर बैठे.

११ इग्यारवा निद्रा दोष. सो सामायिकमें नींद लेवे.

१२ बारमा शीत प्रमुखकी प्रबलतासें अपणे समस्त अंगोपांग वस्त्र करकें ढांके, यह बारां दोष कायासें उत्पन्न होते हैं. इनकों सामायिकमें वर्जे. अब वचनके दश दोष है सो लिखते हैं.

१ प्रथम कुबोल दोष. सो सामायिकमें कुवचन बोले.

२ दूसरा सहसात्कार दोष. सो सामायिक ले करकें विना विचारे बोले.

३ तीसरा असदारोपण दोष. सो सामायिकमें दूसरांकों खोटी मति देवे.

४ चौथा निरपेक्ष वाक्य दोष. सो सामायिकमें शास्त्रकी अपेक्षाविना बोले.

५ पांचमा संक्षेप दोष. सो सामायिकमें सूत्र, पाठ, संक्षेप करे. अक्षर पाठ हीना कहे. यथार्थ कहे नहीं, सो पांचमा दोष है.

६ छठा कलह दोष. सो सामायिकमें साधर्मीयोंसें क्लेश करे, सामायिकमें तो कोइ मिथ्यात्वी गालीयां देवे, उपसर्ग करे, कुवचन बोले, तोभी तिसके साथ लडाइ नहीं करनी चाहियें, तो फेर अपने साधर्मीके साथ तो विशेष करकें लडाइ करणीहीं नहीं. जेकर करे, तो छठा दोष लगे.

७ सातमा विकथा दोष. सो सामायिकमें बैठके देशकथादि चार विकथा करे. सामायिकमें तो स्वाध्याय अरु ध्यानही करनां चाहियें.

८ आठमा हास्य दोष. सो सामायिकमें दूसरोंकी हांसी करे, मस्करी करे.

९ नवमा अशुद्ध पाठ दोष. सो सामायिकमें सामायिकका सूत्रपाठ शुद्ध न उच्चारे, हीनाधिक उच्चारे, यद्वा तद्वा सूत्र पढे.

१० दशमा मुणमुण दोष. सो सामायिकमें प्रगट स्पष्ट अक्षर न उच्चारे. दूसरोंकों तो जैसा मछर गणगणाट करता होवे, ऐसा पाठ मालुम पडे, पद अरु गाथाका कुछ ठिकाना मालम न पडे, गडबड करकें उतावलसें पाठ पूरा करे. यह दश दोष वचनके हैं. अब मनके दश दोष लिखते हैं.

१ प्रथम अविवेक दोष. सो सामायिक करके सर्व क्रिया करे, परंतु मनमें विवेक नहीं निर्विवेकतासें करे. मनमें ऐसा विचारे कि सामायिक करनेसें कौन तरा है ? इसमें क्या फल है ? इत्यादि विकल्प करे.

२ दूसरा यशोवांछा दोष. सो सामायिक करकें यशःकीर्त्तिकी इछा करे.

३ तीसरा धनवांछा दोष. सो सामायिक करनेसें मुजे धन मिलेगा.

४ चौथा गर्वदोष. सो सामायिक करकें मनमें गर्व करे किमुजे

लोक धर्मी कहेंगे, मैं कैसें सामायिक करतां हूं, मूर्ख लोक क्या समजे ?

५ पांचमा जय दोष. सो लोकोंकी निंदासें करता हूआ सामायिक करे, क्योंकि लोक कहेंगे कि देखो श्रावकके कुलमें उत्पन्न हूआ हें, वमा पुरुष कहनेमें आता है, परंतु धर्म कर्मका नामजी नहीं जानता, धर्म तो दूर रहा, परंतु हररोज सामायिकजी नहीं करता, ऐसी निंदासें करता हूआ करे.

६ छठा निदान दोष. सो सामायिक करकें निदान करे कि इस सामायिकके फलसें मुझे धन, स्त्री, पुत्र, राज्य, जोग, इंद्र, चक्रवर्त्तिका पद मिले.

७ सातमा संशय दोष. सो क्या जाने सामायिकका फल होवेगा कि नहीं होवेगा ? जिसको तत्त्वकी प्रतीत न होवे, सो यह विकल्प करे.

८ आठमा कषाय दोष. सो सामायिकमें कषाय करे, अथवा क्रोध करकें तुरत सामायिक करकें बैठ जाय. सामायिकमें तो कषाय त्यागनां चाहियें.

९ नवमा अविनय दोष. सो विनय हीन सामायिक करे.

१० दशमा अवहुमान दोष. सो सामायिक वहुमान जक्तिजाव उत्साह पूर्वक न करे. यह दश मनके दोष कहे. अरु पूर्वोक्त बारह कायाके तथा दश वचनके मिल कर बत्तीस दूषण रहित सामायिक करे, इस सामायिक व्रतके पांच अतिचार टाले, सो पांच अतिचार कहते हैं.

१ प्रथम कायदुःप्रणिधान अतिचार. सो शरीरके अवयव हाथ, पग प्रमुख, विना पूंजे प्रमार्जे हलावे, जींतके पीठ लगा कर बैठे.

२ दूसरा मनोदुःप्रणिधान अतिचार. सो मनमें कुव्यापार चिंतन क्रोध, लोज, डोह, अजिमान, ईर्ष्या, व्यासंग, संभ्रमचित्त सहित सामायिक करे.

३ तीसरा वचन दुःप्रणिधान अतिचार. सो सामायिकमें सावद्य वचन बोले, सूत्राक्षर हीन पढे, सूत्रका स्पष्ट उच्चार न करे.

४ चौथा अनवस्था दोषरूप अतिचार. सो सामायिक वखत सिर न करे, जेकर करेजी तोजी वे मर्यादासें आदर विना उतावलसें करे.

५ पांचमा स्मृतिविहीन अतिचार. सो सामायिक करी कि नहीं ? सामायिक पारीकि नहीं ? ऐसी जूल करे. इति नवम सामायिक व्रत संपूर्ण ॥

अथ दशमा दिशावकाशिक व्रत लिखते है. छठे व्रतमें जो दिशांका परिमाण करा है, सो जावज्जीवे तहां तक है, उसमें तो क्षेत्र बहुत छुट रक्खा है, तिसका तो रोज काम पडता नहिं, इस वास्ते इस दिन दिन प्रत्यें संक्षेप

करे, जैसें आजके दिन दश कोश वा पंदरां कोश वा पांच कोश, अथवा नगरके दरवाजे तक, वा कोश, अर्द्धकोश, बाग बगीचे तक, घरका हद तक जानां आनां है, उपरांत नियम करनां, सो दिशावकाशिकव्रत है. ए छठे व्रत का संक्षेपरूप है, उपलक्षणसें पांच अणुव्रतादिकका संक्षेप थोडे कालका सोभी इसी व्रतमें जान लेनां, यह व्रत चार मास, एक मास, वीश दिन, पांच दिन, अहोरात्रि, अथवा एक दिन, एक रात्रि, तथा एक मुहूर्त्तमात्रभी हो सक्ता है, इसका नियम ऐसें करे कि में अमुक ग्रामादिकमें काया करकें जाउंगा, उपरांत जानेका निषेध है, इस व्रत वाले प्राणीके देश परदेशका जिनके व्यापार होवे, सो ऐसें कहे कि मुझकों काय करकें इतने क्षेत्र उपरांत जानां नहीं, परंतु दूर देशका कागज प्रमुख लिखा हूआ आवे, सो वांचु अथवा कोइ मनुष्य भेजनां पडे, उसका आगार है. परदेशकी बात सुननेका आगार है, अरु जिसका दूरका व्यापार नहिं होवे, सो चीठी खत, पत्रभी न वांचे, अरु आदमीभी न भेजे, तथा चित्तकी वृत्तिसें जे कर संकल्प विकल्प न होवे, तो परदेशकी बातभी न सुने. जे कर नहिं रहा जावे, तो आगार रक्खे, परंतु जान करकें दोष न लगावे. यह देशावकाशिक व्रत सदा सवेरके वखत चौदह नियमकी यादगिरीमें उपयोगसें रक्खे, अरु रात्रिकों जूदा रक्खे, यह व्रत जैसें गुरुमुखसें धारे, तैसें करे (पाले) अरु इस व्रतके पांच अतिचार टाले, सो कहते हैं.

१ प्रथम आणवण प्रयोग अतिचार. सो नियमकी भूमिकासें बाहिर की कोइ वस्तु होवे, तिसकी गरज पडे, तब विचारे की मेरे तो नियमकी भूमिकासें बाहिर जानेका नियम है, तब कोइ जाता होवे, तदा तिसकों कह करकें वो वस्तु मंगवा लेवे, अरु मनमें यह विचारेकी मेरा व्रतभी भंग नहिं हूआ, अरु वस्तुभी आ गइ, यह प्रथम अतिचार है.

२ दूसरा पेसवण प्रयोग अतिचार. सो दूसरे आदमीके हाथ नियम सें बाहिरली भूमिकामें कोइ वस्तु भेजे, सो दूसरा अतिचार है.

३ तीसरा सद्दाणुवाय अतिचार. सो नियमकी भूमिकासें बाहिर, कोइ आदमी जाता है, तिस्सें कोइ काम है, तब तिसकों खुंखारादि शब्द करकें बोलावे, फेर कहे कि अमुक वस्तु ले आनां, तब तीसरा अतिचार लगे.

४ चौथा रूपानुपाती अतिचार. सो कोइक पुरुष उसके नियमकी भूमि

कासें बाहिर जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब हाट हवेली उपर चढके उसको अपणा रूप दिखावे, तब वो आदमी उसके पास आवे, पीछें आपणे मतलबकी उस्सें बातां करे, तब चोथा अतिचार लगे.

५ पांचमा पुद्गलाक्षेप अतिचार. सो नियमकी भूमिकासें बाहिर कोइ पुरुष जाता है, तिसके साथ कोइ काम है, तब तिसकों कंकरा मारे, जब वो देखे, तब तिसके पास आवे, तब उसके साथ बात चीत करे, यह पांचमा अतिचार ॥ इति दशम देशावकाशिकं व्रतं संपूर्णं ॥

अथ इग्यारहवा पौषधोपवास नामा व्रत लिखते हैं. यह पोषध व्रतके चार भेद हैं, उसमें प्रथम आहार पोषध है, तिसकेभी दो भेद हैं. एक देशतः दूसरा सर्वतः तहां देशसें तो त्रिविहार उपवास करकें पोषध करे, अथवा आचाम्ल करकें पोषध करे, अथवा त्रिविहार एकाशनां करकें पोषध करे, यह तीन प्रकारसें देश पोषध होता है, तिसकी विधि लिखते हैं.

पोषध करनेसें पहिले अपने घरमें कह रक्खे कि मैं आज पोषध करुंगा, इस वास्ते आचाम्ल अथवा एकाशना करा है, भोजनके अवसरमें आहार करनेकों आउंगा, अथवा तुमने पोषधशालामें ले आनां पीछेसें पोषध करनेको जावे, तहां पोषध करकें देववंदन करकें, पीछे चरवला, मुखवस्त्रिका, पूंछणा, ये तीन उपकरण साथ ले करकें चादर ओढ करकें साधुकी तरें उपयोग संयुक्त मार्गमें यत्नसें चल कर भोजनके स्थानकमें जा करकें, इरियावहिया पडिक्कमे, गमनागमनकी आलोचना करे, पीछे पूंछणा उपर बैठके आहार करनेका भाजन प्रतिलेखकें पीछें अपने लेने योग्य आहार लेवे, साधुकी तरें रसगृद्धिसें रहित आहार करे, मुखसें आहारकों अच्छा बूरा न कहे, आहारका जूठ गेरे नहीं, आहार करे पीछे उष्ण जलसें आहारका बरतन धो कर पी जावे, बरतन शुद्ध करके सूका करकें उपयोग संयुक्त पोषधशाला में आवे, पूर्वस्थानमें जा कर बैठे, परंतु मार्गमें जाते आते किसीके साथ बात न करे, इस रीतसें स्वस्थानकमें आवे. इरियावही पडिक्कमकें चैत्य वंदन करकें धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते, तथा आहार अपना कोइ संबंधी अथवा सेवक ले आवे, तोभी पूर्वोक्त रीतिसें आहार करकें बरतन पीछें दे देवे, पीछें धर्मक्रियामें प्रवर्त्ते, तिसकों देशसें पोषध कहते हैं. तथा जो चउविहार करकें पोषध करे, सो सर्वसें पोषध कहियें, यह प्रथम भेद.

२ दूसरा शरीरसत्कार पोषध. सो सर्वथा शरीरका सत्कार, स्नान, धोवन, धावन, तैलमर्दन, वस्त्राभरणादि शृंगार प्रमुख कोइभी शुश्रुषा न करे, साधुकी तरें अपरिकर्मित शरीर रहे, तिसकों सर्वथा शरीर सत्कार पोषध कहते हैं. तथा पोषधमें हाथ, पग प्रमुखकी शुश्रूषा करनी, तिसका आगार रक्खे, उसकों देशसत्कार पोषध कहते हैं.

तीसरा अब्रह्मपोषध. सो त्रिकरण शुद्ध ब्रह्मचर्यव्रत पाले, वो सर्वथा ब्रह्मचर्य पोषध है. अरु मन, वचन, दृष्टि प्रमुखका आगार रक्खे, अथवा परिमाण रक्खे, सो देशसें ब्रह्मचर्य पोषध है.

४ चौथा सर्वथा सावद्य व्यापारका त्याग. सो सर्वसें अव्यापार पोषध है. अरु जे एकादि व्यापारका आगार रक्खे, सो देशसें अव्यापार पोषध जाननां.

एवं चार प्रकारकें पोषधके दो दो भेद हैं, सो प्रथम जब आगम व्यवहारी गुरु होते थे, अरु श्रावकभी शुद्ध उपयोग वाले होते थे, तब जो जो प्रतिज्ञा लेते थे, सो सो प्रतिज्ञा अखंडित तैसीही पालते थे, परंतु भूलते नहीं थे, अरु न्यूनाधिकभी नहीं करते थे, और गुरुभी अतिशय ज्ञानके प्रभाव सें योग्यता जान कर देश, सर्व, पोषधका आदेश देते थे, तथा श्रावक कदाचित् भूलभी जाते थे, तो भी तत्काल प्रायश्चित्त ले लेते थे, अरु इस कालमें तो ऐसे उपयोगी जीव हैं नहीं, दुखमकालके प्रभावसें जडबुद्धि जीव बहुत हैं, इस वास्ते पूर्वाचार्योंने उपकारके अर्थे आहार पोषध तो दोनो करने, अरु शेष तीन पोषध जीतव्यवहारके अनुसारें निषेध कर दीये हैं. यही प्रवृत्ति वर्त्तमान संघमें प्रचलित है, पोषध तो श्रावककों जरूर करनां चाहियें, कारण कि कर्मरूप भावरोगकी यह औषधि है, तातें जब पर्वदिन आवे, तब जरूर पोषध करे. इसका पांच अतिचार टाले, सो कहते है.

१ प्रथम अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय सिद्यासंथारक अतिचार. सो जिस स्थानमें पोषध संस्थारक करा है, तिस भूमिकी तथा संथाराकी पडिलेहणा न करे, एतावता संथारेकी जगा अछी तरें निगाह करिकें नेत्रोंसें देखे नहीं अरु कदापि देखे. तोभी प्रमादके उदयसें कुछ देखी कुछ न देखी ऐसें करे.

२ दूसरा अप्पमज्जिय दुप्पमज्जिय सिद्यासंथारक अतिचार. सो संथाराकों रजोहरणादिक करकें पूंजे नहीं, कदापि पूंजे, तोभी यथार्थ न पूंजे, गडबड कर देवे, जीवरक्षा न करे, तो दूसरा अतिचार लागे.

३ तीसरा अप्पडिलेहिय दुप्पडिलेहिय उच्चारपासवण भूमि अतिचार. सो लघुशंका, वडीशंका, परिठवणेकी भूमिका, नेत्रोंसें अवलोकन न करे, अरु अवलोकन करे, तोनी अलसु पलसु करकें काम चलावे. जीवयत्न विना करे परिठवे, तो तीसरा अतिचार लागे.

४ चौथा अप्पमज्जियदुप्पमज्जिय उच्चारपासवणभूमि अतिचार. सो जहां मूत्र, विष्ठा करे, उस भूमिकाकों उच्चार प्रस्रवण करनेसें पहिलां पूंजे नहीं, जे कर पूंजे, तोनी यद्वा तद्वा पूंजे, परंतु यत्नसें न पूंजे.

५ पांचमा पोसहविहिविवरीए अतिचार. सो पोषधमें क्षुधा लगे, तब पारणेकी चिंता करे, जैसेंकि प्रनातमें अमुक रसोइ अथवा अमुक वस्तु का आहार करुंगा, तथा अमुक कार्य करणा है, तहां जानां पडेगा, अमुक उपर तगादा करुंगा, तथा प्रनातमें पोषध पारकें अच्छी तरें तेलमर्दन कराऊंगा, अच्छे गरम पानीसें स्नान करुंगा, तथा अमुक पोसाक करुंगा, स्त्रीके साथ नोग करुंगा, इत्यादि सावद्य चिंतवण करे, तथा संध्या समयें पोषधके मंडल शोधन न करे, सर्व रात्रि सूता रहे, विकथा करे, पोषधके अठारह दूषण हैं, सो वर्जे नहीं, सो अठारह दूषण लिखते हैं.

१ विना पोषेवालेका ल्याया हूआ जल पीवे, २ पोषध वास्ते सरस आहार करे, ३ पोषधके अगले दिन विविध प्रकारका संयोग मिलायकें आहार करे, ४ पोषध निमित्त अथवा पोषधके अगले दिनमें विजूषा करे, ५ पोषध वास्ते वस्त्र धोवावे, ६ पोषध वास्ते आनरण घडाकें पहिरे, स्त्रीनी नथ, कंकणादि सोहागके चिन्ह वर्जकें दूसरा नवा गहेनां घडाकें पहिरे, ७ पोषध वास्ते वस्त्र रंगा कर पहिरे, ८ पोषधमें शरीर की मैल उतारे, ९ पोषधमें विना काल निद्रा करे, १० पोषधमें स्त्रीकथा करे, स्त्रीकों नली बूरी कहे, ११ पोषधमें आहार कथा करे, नोजनकों अच्छा बूरा कहे, १२ पोषधमें राजकथा करे, युद्धकी वात सुने, कहे, १३ पोषधमें देश कथा करे, अच्छा बूरा देश कहे, १४ पोषधमें लघुशंका अरु वडीशंका सो भूमिका पूंज्या विना करे, १५ पोषधमें दूसरोंकी निंदा करे, १६ पोषधमें स्त्री, पिता, माता, पुत्र, नाइ प्रमुखसें वार्त्तालाप करे, १७ पोषधमें चोरकी कथा करे, १८ पोषधमें स्त्रीके अं

गोपांग, स्तन, जघनादि देखे, यह अठारह दूषण पोषधमें वर्जे, तो शुद्ध पोषध जाननां. अन्यथा पांचमा अतिचार लागे. इति एकादश व्रतं ॥

अथ बारहवा अतिथिसंविभागव्रत लिखते हैं. अतिथि उसकों कहते हैं कि जिसने लौकिक पर्वोत्सवादि तिथियोंको त्याग दीया है, सो अतिथि है, जैसें प्राहुणा विना तिथि आता है, एतावता तिथि देखकें नहीं आता है, ऐसेंही जो साधु अण चिंत्याही आ जावे है, सो अतिथि जाननां. ऐसे मधुकर वृत्तिवालेसें जो विभाग करे, एतावता शुद्ध व्यवहार न्यायोपार्जित धन करकें अपणा उदर पूरणे योग्य जो रसोइ करी है, उत्तम कुल आचार पूर्वक पूर्वकर्म पश्चात्कर्मादि दोष रहित ऐसा शुद्ध निर्दोष आहार भक्तिपूर्वक जो देवे, सो अतिथिसंविभाग व्रत है. तहां प्रथम दान देनेवालेमें पांच गुण होवे, तो वो दातार शुद्ध होता है, सो पांच गुण लिखते हैं.

१ प्रथम जैनमार्गी दातारकूं शुद्ध पात्रकी प्राप्ति पा करकें अपणे घरमें मुनिका दर्शन मात्र होनेसें अंतरंगमें बहुत दिनकी चाहनाके उल्लाससें आनंदके आंसु आवे, जैसें अपणा प्यारा अति हितकारी वल्लभ विछडके परदेशमें गया है, उसकों मनसें कभी विसरता नहीं, मिलाही चाहता है, उस मित्रके अकस्मात् मिलनेसें आनंद आंसु आवे, तैसें मुनिकों घरमें आया देखकें आनंद आंसु लावे, अरु मनमें विचारे कि मेरा बडा भाग्य है, जो ऐसा मुनि मेरे घरमें आया है ? अरु मैं कैसा हुं ? अनादिका भूल्या, द्रव्य संबल रहित, दरिद्रपीडित, ज्ञान लोचन रहित, अंधभाव करि पीडित, अपार संसारचक्रमें भटकता हूआ, बहुत अकथनीय दुःख संयुक्त देख कर मेरे पर परमदया दृष्टि करकें प्रथम मेरे कों ज्ञानांजन शलाकासें ज्ञानरूप देखने वाला नेत्र खोल दीना, अरु तीन तत्त्व सेवा रूप व्यापार सिखलाया, तथा मुझकों रत्नत्रयीरूप पुंजी (रास) दे कर मेरा अनादि दरिद्र दूर करा, मुझे भले आदमीयोंकी गिणतीमें करा, ऐसे गुरु मुनिराज विना गरजके परोपकारी मेरे घरांगणमें आया, ऐसी पुष्ट भावना प्रशस्त राग भावकें उल्लाससें आनंदके आंसु आवे, यह दातारका प्रथम गुण है.

२ दूसरा जैसें संसारमें जीवकों अत्यंत इष्ट वस्तुके संयोगसें रोमावली

खमी होती है, तैसें वडी नक्तिके प्रनावसें मुनिकों देखकें रोमावली वि कस्वर होवे, हृदयमें हर्ष समावे नहीं, यह दूसरा गुण है.

३ तीसरा मुनिकों देखकें वहुमान करे, जैसें किसी गरीवके घरमें राजा आप चल कर आवे, तव वो गरीव गृहस्थ जैसा राजेका आदर करे, अरु मनमें विचारे कि महाराजा मेरे घरमें आया है, तो मैं अछी वस्तु इनकों नेट करुं तो ठीक है, क्योंकि राजाका आवनां वारंवार मेरे घरमें कहां है? ऐसा विचारकें जैसें वस्तु नेट करे, तैसें श्रावकजी साधुकों घरमें आया देखकें वहुत मान करे, अरु मनमें ऐसा विचारेकि यह ऐसा निःस्पृहीयोमें शिरोमणि, जगद्वंधु, जगत् हितकारी, जग हूत्सल, निष्कामी, आत्मानंदी, करुणासागर, संसारजलधि उद्धरण, परोपकार करणीमें चतुर, क्रोधादि कषाय निवारक, आप तरे परतारक, ऐसा मुनिराज,मेरे घरमें चल कर आया,इस्सें मेरा अहो नाग्य है? ऐसा जानकर संभ्रम संयुक्त सन्मुख जावे, त्रिकरण शुद्ध परिणामसें कहेकि हे स्वामी! दीन दयाल! पधारो, मेरे गृह अंगण पवित्र करो, ऐसा वहुमान दे कर घरमें पधरावे, मनमें विचारे कि मेरे वमा पुण्योदय है,जो साधु आहार पाणीका अनुग्रह करते हें, क्योंकी साधुके आहार लेनेमें वमी विधि है, साधु शुद्ध नात पाणी जाणे, तो लेवे, इस वास्ते मत मेरेसें कोइ दोष उपजे? ऐसा विचार कें त्रिकरण शुद्ध वहुमान पूर्वक उपयोग संयुक्त विधिपूर्वक आहार ल्यावे, अरु मधुरस्वरसें विनति करे, कि हे स्वामी! यह शुद्ध आहार है, इस वास्ते सेवक उपर परम कृपा नजर करकें पात्र पसारकें मेरा निस्तार करो. ऐसे वचन वोलता हूआ आहार देवे, मुनिजी उस आहारकों योग्य जाण कर ले लेवे, अरुश्रावकजी जितनी दान देने योग्य वस्तु है, उसके सर्वकी निमंत्रणा करे, इस विधिसें दान दे कर हाथ जोमकें पृथिवी उपर मस्तक लगा कर नमस्कार करे, पीछें मीठे वचनोंसें विनति करे, की हे कृपानिधान! सेवक उपर वडी कृपा करी, आज मेरा घर पवित्र हूआ, क्योंकि पुण्योदयविना मुनिका योग कहां होता है? फेरजी हे स्वामी! कृपा करकें अशन, पान, खादिम, औषध, वस्त्र, पात्र, शय्या, संस्तारकादिसें प्रयोजन होवे, तव अवश्य सेवक उपर अनुग्रह करकें पधारनां, तुम तो मुनिराज गुणवान् वे परवाह हो, तुमकों किसी वात

की कमी नहिं; किसीके साथ प्रतिबंध नाहिं, पवनकी तरें अप्रतिबंध हो, तोजी मेरे उपर जरूर कृपा करणी, अैसे मुखसें कहता हूआ अपणे घरकी सीमा तक पहुंचावे, यह तीसरा गुण है.

४ चौथा तहांसें वंदना करकें पीछें आ कर जोजन करे, परंतु मनमें आनंद समावे नहीं, विचारे कि मेरा बडा जाग्योदय हूआ, आज कोइ जली वात होवेगी. क्योंकि आज मुनि, निःस्पृही, सहज उदासी, खसुख विलासीकों मैं विनति करी आहार दीया, अरु आहार देतां विचमें कोइ विघ्न न हूआ, इस वास्ते मेरा बडा जाग्य है, फेरजी कदे अैसे मुनिका योग मिलेगा? अैसी अनुमोदना वारंवार करे, यह चौथा गुण है.

५ पांचमा जैसें कोइ मंदजाग्यवान् व्यापार करतां थोडा थोमा कमाता है, तिसकों किसी दिन कोइ सौदेमें लाख रूपैयेकी प्राप्ति होवे, तव वो कैसा आनंदित होवे है, अरु फेर उस व्यापारकी कितनी चाहना रखता है; तिस्सेंजी अधिक साधुकों दान देनेकी चाहना श्रावक रक्खे; यह पांचमा गुण है. यह पांच गुणयुक्त शुद्ध दान देवे, तो अतिथी संविजाग व्रत होवे. इस व्रतके पांच अतिचार वर्जे, सो लिखते हैं.

१ प्रथम सचित्तनिक्षेप अतिचार. सो सचित्त सजीव पृथ्वी, जल, कुंज, चुह्ला, इंधनादिकोंके उपर न देनेकी बुद्धिसें आहारकों रख छोडे. अरु मनमें अैसा विचारेकि ए आहार साधु तो नहीं लेवेगा, परंतु निमंत्रणा करनेसें मेरा अतिथि संविजागव्रत फल जावेगा, यह प्रथम अतिचार.

२ दूसरा सचित्त पीहण अतिचार. सो सचित्त करकें ढक छोडे, सूरण, कंद, पत्र, पुष्प, फलादि करकें न देनेकी बुद्धिसें ढक छोडे.

३ तीसरा कालातिक्रम अतिचार. सो साधुओंके जिक्षाका काल लंघ करकें अथवा जिक्षाके कालसें पहिलां अथवा साधु आहार कर चूके तव आहारकी निमंत्रणा करे, सो तीसरा अतिचार है.

४ चौथा परव्यपदेश मत्सर अतिचार. सो जव साधु मागे तव क्रोध करे. तथा वस्तु पासमें है, तोजी मांग्या न देवे, अथवा इस कंगालने अैसा दान दीया, तो मैं क्या इस्सें हीन हूं, जो न देऊं? इस जावनासें देवे.

५ पांचमा गुड, खंड प्रमुख अपणी वस्तु है, सो न देनेकी बुद्धिसें औरोंकी कहे; यह पांचमा अतिचार॥ इति श्रीअतिथिसंविजागव्रतं संपूर्ण ॥

जैसें मेष संक्रांतिके दिन सूर्यस्वर चले, अरु वृषसंक्रांति दिन चंद्र नाडी चले, तो शुभ जाननी इत्यादि. तथा किसीके मतमें चंद्रमा राशि पलटे तिस क्रम करकें अढाइ घमी तक एक नामी वहती है इत्यादि. परंतु जे नाचार्य श्री हेमचंद्रादिकोंका तो प्रथम लिखा है, सो मत है. छत्तीस गुरु अक्षरोंके उच्चारणेमें जितना काल लगता है. तितना काल वायु नामीकों दूसरी नामीमें संचार करते लगतां है.

अब पांच तत्त्वोंकी पहिचान इसी तरें है. सो कहते हैं, नासिकाकी पवन जेकर ऊंची जावे, तब तो अग्नि तत्त्व है, जेकर नीची जावे तो जल तत्त्व है, तिर्छी जावे, तो वायुतत्त्व, जेकर नासिकासें निकलके सूधी तिर्छी जावे, तो पृथ्वीतत्त्व, जेकर नासिकाके दोनो पुटोंके अंदर वहे, बाहिर नहीं निकले. तो आकाश तत्त्व जाननां.

पहिलां पवन तत्त्व वहता है. पीछें अग्नि तत्त्व वहता है, पीछें जल तत्त्व वहता है, पीछें पृथ्वीतत्त्व वहता है, पीछें आकाश तत्त्व वहता है. क्रम इनका सदा यही है. दोनोही नामीयोंमें पांचो तत्त्व वहते हैं, उसमें पृथ्वी तत्त्व पंचाश पल प्रमाण वहता है, जल तत्त्व चालीश पल प्रमाण वहता है, अग्नितत्त्व तीस पल प्रमाण वहता है, वायुतत्त्व वीस पल प्रमाण वहता है, आकाश तत्त्व दश पल प्रमाण वहता है.

पृथ्वी अरु जल तत्त्वमें शांतिकार्य करणां, अरु अग्नि, वायु, तथा आकाश इन तीन तत्त्वमें दीप्तिमान् अरु स्थिरकार्य करणां, तो फलोन्नति शुभ होवे है, तथा जीवणेका प्रश्न पूछनां, जयप्रश्न, लाभप्रश्न, धन उत्पन्न करणेका प्रश्न, मेघ वर्षनेका प्रश्न, पुत्र होनेका प्रश्न, युद्धका प्रश्न, जाने आनेका प्रश्न, इतने प्रश्न जेकर पृथ्वी अरु जलतत्त्वमें करे, तो शुभ होवे. जेकर अग्नि तत्त्व अरु वायु तत्त्वके वहता ये प्रश्न करे, तो शुभ नहीं, पृथ्वी तत्त्वमें प्रश्न करे तो कार्यकी सिद्धिस्थिरपणे होवे अरु जल तत्त्वमें शीघ्रकार्य होवे.

जब पहल पहिलां जिनपूजा करे, तथा धन कमावनेंके वास्ते जावे. पाणिग्रहणकी(विवाहकी) वेलां, गढ लेनेकी वेलां, नदी उतरनेकी वेलां, गया है सो आवेगा कि नहीं? असे प्रश्न करते वेलां, जीवनेके प्रश्नमें तथा घर क्षेत्रादि लेंती वेला, क्रियाणां लेतां, वेचतां, वर्षके प्रश्नमें, नोकरी करणेकी वेलां

खेती करनेके वखत, शत्रुके जीतनेमें, विद्यारंजमें. राज्याजिषेकमें, इत्यादि शुजकार्यमें चंद्रनाडी वहे, तो कल्याणकारी है.

प्रश्नके समय कार्यके आरंजमें पूर्ण वामी नाडी प्रवेश करती होवे, तदा निश्चय कार्यकी सिद्धि जाननी, इसमें संदेह नहीं. तथा केदसें कद छूटेगा? रोगी कब अछा होवेगा? अरु जो अपने स्थानसें ज्रष्ट हूआ है, तिसका प्रश्नमें तथा युद्ध करनेके प्रश्नमें, वैरीकों मिलती वखत, अकस्मात् जय हूआं, स्नान करण लगें, जोजन, पाणी पीने लगें, सोने लगें, गइ वस्तुके खोज करनेमें, मैथुन करने लगें, विवाद करणमें, कष्टमें, इतने कार्यमें सूर्य नाडी शुज है. कोइक आचार्य ऐसेंजी कहते हैं, कि विद्यारंजमें, दीक्षामें, शास्त्राज्यासमें, विवादमें, राजाके देखनेमें, मंत्र यंत्रके साधनेमें, सूर्य नाडी शुज है. अथवा जो चंद्रादि स्वर चलता होवे, निरंतर तिस पासेंका पग उठाके प्रथम चले तो कार्य सिद्धि होवे.

पापी जीवोंके शत्रुओंके चार प्रमुख जे क्लेशके करने वाले हैं, तिनके सन्मुख जो नासिका बंध होवे, सो पासा, इनके सामने करे, जो सुख लाज जयार्थी है, उसमें प्रवेश करता हूआ पूरा स्वर, वामा पग शुक्ल पक्षमें, अरु जीमणा पग कृष्ण पक्षमें, शय्यासें उठतां हूयां धरती ऊपर रखता. इस विधिसें श्रावक निंद त्यागे.

अरु श्रावक अत्यंत बहुमान पूर्वक मंगलके वास्ते पंचपरमेष्टि नमस्कार स्मरण करे, शय्यामें बैठा हूआ मनमें पंचपरमेष्टि नमस्कार मंत्र स्मरण करे, परंतु वचनसें उच्चारण न करे, जेकर मुखसें उचार करे, तो शय्या छोड कर धरती उपर बैठ कर नमस्कार मंत्र पढे ऐसे नमस्कार मंत्र हृदयमें स्मरण करता हूआ शय्यासें उठे, पवित्र जूमिका उपर बैठे, तथा पूर्व अथवा उत्तरदिशि सन्मुख मुख करकें खमा रह कर चित्तकी एकाग्रताके वास्ते कमलबंध कर जपादि करकें नमस्कार मंत्र पढे, तहां आठ पांखमीका कमल चिंते, उसकी कर्णिकामें अरिहंत पदका स्थापन करे, पूर्व पांखडीमें सिद्ध, दक्षिण पांखमीमें आचार्य, पश्चिम पांखमीमें उपाध्याय, उत्तर पांखडीमें साधु स्थापन करे, अरु बाकी चूलिकाके चार पद जो हैं, सो अनुक्रमें अग्न्यादि चारों कूणोंमें स्थापन करे. उक्तं चाष्टमप्रकाशे योगशास्त्रे ॥ श्रीहेमचंद्रसूरिजिः ॥ अष्टपत्रे सितांजोजे,

कर्णिकायां करस्थितिः ॥ आद्यं सप्ताक्षरं मंत्रं, पवित्रं चिंतयेत्ततः ॥ १ ॥ सिद्धादिकचतुष्कं च, दिक्पत्रेषु यथाक्रमं ॥ चुलापादचतुष्कं च विदिक्प त्रेषु चिंतयेत् ॥२॥ त्रिशुद्ध्याचिंतयन्नस्य, शतमष्टोत्तरं मुनिः ॥ भुंजानोपि ल भत्येव, चतुर्थतपसः फलम् ॥ ३ ॥

हाथके आवर्त्त करकें जो पंच मंगल मंत्र स्मरण नित्य करे उसकों पिशाचादिक नहीं छलते हैं, बंधनादि कष्टमें विपरीत शंखावर्त्तकादिक अक्षरों करकें अथवा विपरीत पदों करकें पंचमंगल मंत्र लक्षादि जाप करे, तो शीघ्र क्लेशादिकोंका नाश होवे, जे कर हाथ उपर जाप न कर सके तो सूतकी, रत्नकी, रुद्राक्षादिककी, माला उपर जाप करे, माला वाला हाथ, हृदयके सामने रक्खे, शरीरसें तथा शरीरके वस्त्रोंसें तथा भूमिकासें माला न लगने देनी, अंगूठेके उपर माला रख करकें तर्जनी अंगुलीसें नख, विना लगाया मणका फेरे, मेरु उल्लंघन न करे, शास्त्रकार लिखते हैं कि जो अंगुलीके अग्रसें जाप करे, अरु जो मेरु उल्लंघके जाप करे, तथा जो विखरे हूए चित्तसें जाप करे, यह तीनो जाप थोडा फल देते है, जाप करने वाला वहुतोसें एकला अच्छा शब्द करकें जाप करनेसें मौन करकें करे सो अच्छा है, जेकर जप करतां थक जावे, तो ध्यान करे, ध्यान करनेसें थक जावे, तो जप करे, दोनोसें थक जावे, तो स्तोत्र पढे.

श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठाकल्प पद्धतिमें लिखा है, कि जाप तीन तरेंका है, एक मानस, दूसरा उपांशु, तीसरा भाष्य, इन तीनमें मानस उसकों कहते हैं कि जो मनकी विचारणासें होवे, स्वसंवेद्य होवे, अरु उपांशु उसकों कहते हैं कि जो दूसरा तो न सुणे, परंतु अंतर्जल्प रूप होवे, तथा जो दूसरोंकों सुनाइ देवे, सो भाष्य यह तीनों क्रम करकें उत्तम, मध्यम, अरु अधम जान लेने. उसमें मानससें शांति होती है, एतावता शांतिके वास्ते मानस जाप करणां, अरु पुष्टिके वास्ते उपांशु जाप करणां. तथा आकर्षणादिकमें भाष्य जाप करणां.

नमस्कार मंत्रके पांच पद, नवपद, अथवा अनानुपूर्वी, चित्तकी एकाग्रताके वास्ते गुणे, तथा जो नवकार मंत्रका एक अक्षर एक पदभी जपे, तोभी जाप हो सक्ता है ॥ यदुक्तं योगशास्त्रे अष्टमप्रकाशे ॥ पंचपरमेष्ठि

मंत्रके "अरिहंत सिद्ध आयरिय उवद्याय साहू" इन सोलां अक्षरका जाप करे, तथा "अरिहंतसिद्ध" इन षट् वर्ण (छे अक्षर) का जाप करे, तथा "अरिहंत" इन चार अक्षरका जप करे, तथा आकार जो वर्ण है, सोजी मंत्र है इनके जापसें स्वर्ग मोक्षका फल होता है, अरु व्यवहार फल ऐसा जाननां, कि:– षड्वर्णका जाप तीन सौ वार करे, तथा चार वर्णका जाप चार सौ वार करे, अरु सोलां अक्षरका जाप दो सौ वार करे, तो एक उपवासका फल होता है, तथा नाभिकमलमें स्थित तो अकार ध्यावे, अरु सि वर्ण, मस्तक कमलमें स्थित ध्यावे, तथा आकार मुख कमलमें स्थित ध्यावे, उकार हृदय कमलमें स्थित ध्यावे, तथा साकार कंठ पिंजरमें स्थित ध्यावे, सर्व कल्याणकारी यह जाप है, असिआउसा यह पांच बीज हैं, इन पांचों बीजोंका ॐकार बनता है.

तथा और बीज मंत्रोंकाभी जाप करे, जैसें "नमः सिद्धेभ्यः" ऐसा मंत्र तो जे कर इस लोकके फलकी इछा होवे, तब तो ॐकार पूर्वक पढनां चाहियें, अरु मोक्ष वास्ते जपे, तो ॐकार रहित पढनां चाहियें, यह जपादि करनेसें बहुत फल होता है ॥ यतः ॥ पूजाकोटिसमं स्तोत्रं,स्तोत्रकोटिसमो जपः ॥ जपकोटिसमं ध्यानं, ध्यानकोटिसमो लयः ॥ १ ॥ ध्यानकी सिद्धि वास्ते श्रीजिनजन्मदीक्षादि कल्याणक भूमिरूप तीर्थमें जावे, अथवा और कोइ विविक्त स्थान होवे, तहां ध्यान करे. ध्यानका स्वरूप देखनां होवे, तब आवश्यक सूत्रांतर्गत ध्यानशतक देख लेनां. नमस्कार मंत्रका जो जाप है, सो इस लोक परलोकमें बहुत गुणकारी है, ॥ उक्तं हि महानिशीथे ॥ नासेइ चोर सावय, विसहर जल जलण बंधण भयाइं ॥ चिंतिज्जंतो रक्कस, रण राय भयाइं भावेण ॥ १ ॥ अर्थः–चोर, सिंह, सर्प्प, पाणी, अग्नि, बंधन, संग्राम, राजभय, इतने भय पंचपरमेष्टि मंत्रके स्मरणसें नष्ट हो जाते हैं. एकाग्रता भावसें जपे, तो यह फल होता है. पंच परमेष्टि मंत्र सर्व जगे पढनां चाहियें, नमस्कार मंत्रका एक अक्षर जपे, तो सात सागरोपमका करा हूआ पाप नष्ट होता है, जे कर संपूर्ण पंच परमेष्टिमंत्र जपे, तो पांच सौ सागरका करा हूआ पाप नष्ट हो जाता है; तथा जो पुरुष एक लक्ष वार पंच परमेष्टि मंत्रका जाप करे, अरु यह नमस्कार नामक मंत्र जो है, तिसकी विधिसें पूजा

करे, तो तीर्थंकर नाम कर्मगोत्रका बंध करे, इस वातमें संदेह नहीं, तथा आठ कोमी, आठ लाख, आठ हजार, आठ सो, आठ वार, जो पंच परमेष्टिमंत्रका जाप करे, वो जीव, तीसरे जवमें सिद्ध हो जाता है, इस वास्ते सूते, उठते, प्रथम नमस्कार स्मरण करणां, तिसके पीछें धर्म जागरणा करणी. सो इसी तरेंकिः–

यथा में कौन हुं? क्या मेरी जाति है? क्या मेरा कुल है? कौन मेरा इष्ट देव है? कौन मेरा गुरु है? क्या मेरा धर्म है? क्या मेरे अभिग्रह है? क्या मेरी अवस्था है? क्या मेने सुकृतादि करा है? क्या मेने दुःकृतादि नहीं करा है? क्या में करने समर्थ हुं? क्या में नहीं कर सक्ता हुं? मुफकों कोइ देखता है कि नहीं? अपनी जूलकों आत्मा जानता है, फेर क्यों नहीं ठोमता? तथा आज कौनसी तिथि है? क्या अर्हंतका कल्याणिक दिन है? आज मेरा क्या कृत्य है? में किस देशमें तथा किस कालमे हुं? सवेरें उठके ऐसे स्मरण करणेसें जीव सावधान हो जाता है, जो विरुद्ध कृत्य है, उसका परिहार करता है अपणे नियमका निर्वाह अरु नवीन गुणकी प्राप्ति होती है, येही धर्म जागरणा, आणंद कामदेवादि श्रावकोंने करके प्रतिमादि विशेष धर्मकरणी करी है.

तस पीछें जो श्रावक प्रतिक्रमण करनेवाला होवे, सो प्रतिक्रमण करे, अरु जो प्रतिक्रमण न करे, सोजी रागादिमय कुस्वप्न प्रद्वेषादिमय अनिष्ट फलका सूचक तिसके दूर करणे वास्ते तथा स्वप्नमें स्त्रीसें प्रसंगादि करनेका खोटा स्वप्न उपजन हूआ होवे, तब एक सो आठ उश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, अन्यथा सौ उश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, चार लोगस्सका काउस्सग्ग करे. यह कथन व्यवहार जाष्यमें है, तथा विवेक विलासादि ग्रंथोंमें ऐसा लिखा है, कि स्वप्न देख्यां पीछें फेर नहीं सोवणां, अरु स्वप्न, दिनमें सद्गुरुके आगें कहनां, जे कर खोटा स्वप्न आवे तो फेर सोवनां ठीक है, किसीके आगें कहनां न चाहियें, तथा समधातुवाला, प्रशांतचित्तवाला, धर्मी और नीरोगी, जितेंद्रिय, इनकों जो शुजाशुज स्वप्न आवे, सो सत्यही होता है, स्वप्न जो आता है, सो नव कारणोंसें आता है, सो नव कारण कहते हैं.

एक तो अनुजव करी हुइ वस्तुका स्वप्न आता है, दूसरा सुणी हुइ बातका, तीसरा देखा हुआ, चौथा प्रकृति वात, पित्त, अरु कफके विकारसें, पांचमा चिंतित वस्तुका, छठा सहज स्वजावसें, सातवा देवताके उपदेशसें, आठमा पुण्यके प्रजावसें, नवमा पापके प्रजावसें, इसमें आदिके छ कारणोसें, जो स्वप्न आवे, सो निरर्थक है, अरु अगले तीन कारणोंसें जो स्वप्न आवे तो सत्य होवे.

रात्रिके पहिले प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक वर्षमें फल देवे, अरु दूसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो छ महीनेमें फल देवे, तीसरे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो तीसरे महीनेमें फल देवे, चौथे प्रहरमें स्वप्न आवे, तो एक मासमें फल देवे, सवेरे दो घमी रात्रिमें स्वप्न आवे, तो दश दिनमें फल देवे, सूर्योदयमें स्वप्न आवे, सो तत्काल फल देवे.

एक जो स्वप्नमें बहुत आल जंजाल देखे, तथा दूसरा जो रोगोदयसें स्वप्न आवे, तथा तीसरा जो मलमूत्रकी बाधासें स्वप्न आवे, यह तीनों स्वप्न निरर्थक हैं. जे कर पहिला अशुज स्वप्न आवे, अरु पीछेसें शुज स्वप्न आवे, तो शुज फल देवे, तथा पहिला शुज स्वप्न आवे, पीछें अशुज आवे, तो अशुज फल देवे, जेकर खोटा स्वप्न आवे, तो शांति अर्थात् देवपूजा दानादिक करणां, तथा स्वप्न चिंतामणि नामक ग्रंथमेंजी लिखा है, कि अनिष्ट स्वप्न देख कर सो जावे, अरु किसीकों कहे नहीं, तो फेर स्पप्न फल नहीं देता है, सूता उठके जिनेश्वरदेवकी प्रतिमाकों नमस्कार करकें जिनेश्वरका ध्यान करे, स्तुति करे, स्मरण करे, पंच परमेष्टिमंत्र पढे, तो खोटा स्वप्न वितथ हो जाता है अरु जो पुरुष देव गुरुकी पूजा करते हैं, तथा निजशक्त्यनुसार तप करते हैं, निरंतर धर्मके रागी हैं, तिनोंकों खोटा स्वप्नजी अच्छा फल देता है. तथा जो पुरुष, देवगुरुका स्मरण करकें अरु शत्रुंजय समेतशिखर प्रमुख शुज तीर्थोंका नाम, तथा गौतमस्वामी, सुधर्मस्वामी प्रमुख आचार्योंकों नाम स्मरण करकें सोवे, उसकों कदापि खोटा स्वप्न नहीं होता है.

थूकनां होवे, तो राखमें थूकनां चाहियें, शरीरकों दृढ करने वास्ते हाथों करकें वज्रीकरण करे, अग्नितत्त्व, अरु पवनतत्त्व, जब वहता होवे, तब धाप करकें आकंठ तांइ दूध पीवे, केइ आचार्य कहते हैं कि

आठ पसली पाणीकी पीवे, इसका नाम वज्रीकरण कहते हैं. तथा सवेरे उठके माता, पिता, पितामह, वमा जाइ प्रमुखकों नमस्कार करे, तो तीर्थयात्रा समान फल है. इस वास्ते दिन दिन प्रत्यें करणी चाहियें. तथा जिसने वृद्धोंकी सेवा नहीं करी है, उसकों धर्मकी प्राप्ति नहीं होती है, वृद्ध उसकों कहते हैं कि जो शीलमें, संतोषमें तथा ज्ञान, ध्यानादिकमें वडे होवे, तिनकी सेवा अवश्य करनी चाहियें. तथा जिसने राजाकी सेवा नहीं करी है, अरु जिसने उत्पन्न होते हुए अपने शत्रुकों वंद नहीं करा, तिस पुरुषसें धर्म, अर्थ, अरु सुख दूर हैं.

श्रावककों सवेरे उठ करकें चौदह नियम धारण करणे चाहियें, तिनका स्वरूप उपर लिख आये हैं. तथा विवेकी पुरुष प्रथम सम्यक्त्व पूर्वक द्वादश व्रत, विधि पूर्वक गुरुके मुखसें धारण करे, अरु विरति जो पलती है, सो अभ्याससें पलती है, इस वास्ते धर्मका अभ्यास करनां चाहियें. विना अभ्यासके कोइ क्रियाजी अछी तरे नहीं करी जाती है, ध्यान मौनादि सर्व अभ्यास करनेसें दुःसाध्य नहीं. जो जीव, इस जन्ममें अछा वा बूरा जैसा अभ्यास करता है, सोइ प्रायः अगले जन्ममें पाता है, तथा पंचमी, अष्टमी, चतुर्दश्यादिकीके दिनमें तपादि नियम जो जो धर्मी पुरुषने अंगीकार किया है, उसमें जो तिथ्यंतरकी भ्रांत्यादि करकें सचित्त जलादि पान, तंबोल जक्षण, कितनाक जोजनजी कर लीया है, पीछेसें ज्ञान हूआ कि आज तो तपका दिन था? तव जो कुछ मुखमें होवे, उनकों राखादिकमें गेर देवे, प्रासुक पाणीसें मुखशुद्धि कर तप करेकी तरें रहे, तो नियम जंग नहीं होता है, अरु जे कर संपूर्ण जोजन करा पीछें जान पडे कि आज तपका दिन है, तव अगले दिन दंडके निमित्त सो तप करे. समाप्ति हूआं उसके उपर पोरिसी एकाशनादि तप अधिक करे, अरु जे कर तपका दिन जान कर एक दाणाजी खावे, तो व्रतजंग हो जाता है, अरु जो व्रतका जंग जान करकें करनां है, सो नरकादिकका हेतु है, तथा जे कर तप करे पीछें गाढा मांदां हो जावे, अथवा जूतादि दोषसें परवश हो जावे, अथवा सर्पादिक काटे, ऐसी असमाधिमें तप करने समर्थ न होवे, तोजी चार आगार उच्चारण करनेसें व्रतजंग नहीं होता है, ऐसें सर्व नियमोंमें जान लेनां ॥ उक्तं च ॥ वयजंगे गुरुदो

सो, थोवस्सवि पालणा गुणकारि ॥ गुरु लाघवं च नेयं, धम्ममिश्र उ आगारा ॥ १ ॥ अस्यार्थः– व्रतभंग करनेसें महा दूषण होता है, अरु जो पालन करे, तो थोडा व्रतभी गुणकारी है, इस वास्ते गुरु लघु जान के धर्ममें आगार भगवान्नें कहे हैं.

तथा नियम ऐसें ग्रहण करणां, सो कहते हैं. प्रथम तो मिथ्यात्व त्यागणे योग्य हैं, तिस पीछें नित्य यथाशक्ति एक, दो, तीन वार जिन पूजा, जिनदर्शन, संपूर्ण देववंदन, चैत्यवंदन करे, ऐसेंही गुरुका योग मिले दीर्घ, लघु वंदन करे, जेकर गुरु हाजर न होवे, तब धर्माचार्यका नाम लेकें वंदना करे, तथा नित्य वर्षा ऋतुमें (चौमासेमें) पांच पर्वके दिन अष्ट प्रकारी पूजा करे, जहां लग जीवे, तहां लग नवा अन्न, नवा फल, पक्वान्नादिक देवकों चढाये विना खावे नहीं, नित्य नैवेद्य, सोपारी, बदामादि देवके आगें चढावे, तथा तीन चौमासे संवत्सरी दीवाली प्रमु खमें चावलोंके अष्ट मंगल भरकें ढोवे. नित्य अथवा पर्वके दिन तथा व र्षमें खादिम, स्वादिम, सर्व वस्तु देव गुरुकों दे कर भोजन करे, प्रतिमा स, प्रतिवर्ष, महाध्वजादि उत्सव आडंबर करकें चढावे, स्नात्र महोत्सव, अष्टोत्तरी पूजा, रात्रिजागरण करे. नित्य चौमासे आदिकमें कितनीक वार जिनमंदिर, धर्मशाला, प्रमार्जन करे, देहरा समरावे, पोषधशाला लींपे, प्रतिवर्ष प्रतिमास जिनमंदिरमें अंगलूहनां तथा दीपकके वास्ते पूणी देवे, दीवे वास्ते तेल देवे. चंदन खंडादि मंदिरमें देवे. पोषधशालामें मु खवस्त्रिका, जपमाला, पूंजणा, चरवला, कितनेक वस्त्र, सूत, कंबली, ऊना दि देवे, वर्षमें श्रावकोंके बैठने वास्ते कितनेक पाट, चौकी प्रमुख देवे, जेकर निर्धन होवे, तो भी वर्ष दिन पीछें सूत कोरा अट्टी प्रमुख दे कर संघ पूजा करे. कितनेक साधर्मीयोंको शक्ति अनुसार भोजन देवें, साध र्मीवात्सल्यादि करे, हररोज कितनेक कायोत्सर्ग करे. स्वाध्याय करे. नित्य जघन्य नमस्कार सहित प्रत्याख्यान करे. रात्रिमें दिवस चरम प्रत्याख्या न करे. दोनों वखत प्रतिक्रमण करे. यह करणी प्रथम कर लेवे, तो पी छेसें पांच व्रत स्वीकार करे. तिन व्रतोंमें सातमे व्रतमें सचित्त, अचित्त, यह मिश्र वस्तुका स्वरूप अच्छी तरें जानना चाहिये.

जैसें प्रायः सर्व धान्य, धाणा, लूण, धनीया, जीरा, अजवायन, सौंफ,

सोया, राइ, खसखस प्रमुख सर्व कण, सर्व पत्र, सर्व हरे फल, तथ लूण, खारी, खारक, अर्थात् छुहारे, रक्त (लाल) रंगका सिंधालूण, खाण का सोंचल लूण, खारा, मट्टी, खरी, हिरमची, हरे दांतण, इत्यादि. ये सर्व व्यवहारसें सचित्त सजीव हैं. तथा पाणीमें भिंजोये चणे, गेहूं, आदि अन्न, तथा चणे, मूंग, उडद. तूअर प्रमुखकी दाल, जिसमें नकू रहा गया होवे, ये सर्व मिश्र है, तथा पहिलां लूण लगा करकें अग्निकी बाष्पादि दीया विना तप्त वालु (रेतके) विना गेरें चणे, गेहूं, जूवारादि भूंजे, तथा खारादि दीयां विन मसले हूये तिल, होलां, ऊंबियां, सिट्टे, पहूंक. ईषत् सेकी फली. मिरच, राइ, हिंग प्रमुख करकें चिर्भटादि फल, वघारे, तथा जिसके अंदर बीज सचित्त है, ऐसे पक्के हूये सर्व फल, यह सब मिश्र है. तथा तिलवट, तिलकूट, जिस दिन करे उस दिन मिश्र है, अरु जेकर तिलोंमें अन्न रोटी प्रमुख गेरकें कूटे, तो एक मुहूर्त्त पीछें अचित्त होवे, तथा दक्षिण मालवादि देशोंमें बहुत गुड प्रक्षेप करनेसें उसी दिन अचित्त हो जाते है, तथा वृक्षसें तत्कालका उखड्या गूंद, लाख, छिल्लक, तत्कालका फोड्या नालियर, तथा निंबु, दाडिम, अनार, आंब, नींब, इन इनका तत्कालका काढ्या रस, तथा तत्कालका काढ्या तिलादिका तेल, तत्कालका भांग्या हूया बीज, तथा काटे हूये नलेर, सिंघाडे, सोपारी, आदि तथा बीज रहित कीया पक्क फल खरबुजादि, गाढा मर्दन करकें कण काढ्या जीरादि, ये सर्व अंतर्मुहूर्त्त लग मिश्र हैं, पीछे प्राशुकका व्यवहार है, तथा औग्नी प्रबल अग्निके योगविना प्राशुक करे हूते अंतर्मुहूर्त्त तांइ मिश्र है, पीछें प्राशुकका व्यवहार है, तथा अप्राशुक पाणी, कच्चा फल, कच्चा अन्नकों जेकर बहुत मर्दनभी करे है, तोभी लवण अग्न्यादिक प्रबल शस्त्र विना प्राशुक नही होते हैं. क्योंकि श्रीपंचमांग भगवतीसूत्रके उन्नीसमे शतकके तीसरे उद्देशेमें लिखा है, कि:—वज्रमयी शिला, वज्रमयी लोटा आमले प्रमाण पृथ्वीकाय लेकें एकवीस वार पीसे, तब कितनेक पृथ्वीके जीवोंकों लोटेका स्पर्शभी नही हूया है, ऐसी उनजीवोंकी सूक्ष्म काया है, तथा सौ योजनसें उपरांत आये हूये हरडां, खारक, किसमिस, लाल द्राक्षा, मेवा, खजूर, काली मिरची, पीपर, जायफल, बदाम, अखोट, नेवजा, जरदाला, पिस्तां, सीतल, चीनी, स्फटिक समान उज्ज्वल सिंधा

लूण. सज्जी जट्ठीमें पकाया लूण, वनाखटका खार, कुंनारकी कमाड हूइ मट्टी, एलायची, लवंग, जावंत्री, सूकी मोथ, कोकणदेश प्रमुखके केले, कदलीफल, उबाले हूये संगाडे, सोपारी, इन सर्वका प्राशूक व्यवहार है, साधुजी कारण पडे ले लेवे. यह वात कल्पजाष्यमेंजी लिखी है. "जोयण सयं तु गंतु, अणाहारे जंग संकंति " इत्यादि. इनमेंसूं हरम, पीपल प्रमुख तो आचीर्ण है, इस वास्ते लेते हैं, अरु खजूर, डाक्षा प्रमुख अनाचीर्ण है, तथा उत्पलकमल, पद्म कमल, धूपमें रक्खे, एक प्रहरके अभ्यंतरही अचित्त हो जाते हैं. तथा मोगरेके फूल, जुहिके फूल, यह धूपमें वहुत चिरजी पडे रहे, तोजी अचित्त नहीं होते हैं. तथा मगदंतिना अर्थात् मोगरेके फूल पाणीमें गेरे रहें तो एक प्रहरके अंदरही अचित्त होजाते हैं, तथा उत्पल, नीलकमल अरु पद्मकमल, ये दोनो पाणीमें गेर रखनेसें वहुत कालमेंजी अचित्त नहीं होते हैं, "शीतयोनिकत्वात्" तथा पत्रोंका फूलोंका जिनफलोमें अजीतक गुठली वंध नहीं हुइ, तिनका तथा वथुआ प्रमुख हरित वनस्पतिका, इन सवनका वृंत, (डंमी) कुमलाय जावे, तव जीव रहित हूये जानने. यह कथन श्रीकल्पजाष्य वृत्तिमें लिखा है.

तथा श्रीपंचमांगके छठे शतकके पांचमे उद्देशेमें सचित्ताचित्त वस्तुका स्वरूप ऐसा लिखा है, शालि, व्रिहि, गेहूं, जव, जवजव, ये पांच धान्यकी जाति कठोरमें तथा ठेके पालेमें तथा मंचा, माला, कोठारविशेषोमें मुख ढांकके रक्खे, लीप्या होवे, तथा चारो तर्फसें लीप्या होवे, उपर कोइ ओर ढकणा दीया होवे, मुद्रित लांछित करके रक्खे, तो कितने काल तांइ जीवयोनि रहे? ऐसा प्रश्न पूछनेसें जगवान् कहते हैं कि हे गौतम! जघन्य तो अंतर्मुहूर्त्त रहे, अरु उत्कृष्ट तो तीन वर्ष रहे, फेर अचित्त हो जावे. तथा मटर, मसूर, तिल, मूंग, उडद, वाल, कुलथी, चवला, तूयर, गोल चणे, इत्यादि धान्य सर्व उपर वत् जाननां. नवरं, उत्कृष्टसें पांच वर्ष उपरांत अचित्त होते हैं. तथा अलसी, कुसुंजेकी करम, कोडुं, कंगुनी, वरटी, राल, कोडुसक, सण, सरसों, मूलीके वीज, इत्यादि धान्यजी उपरवत्, नवरं, उत्कृष्टसें सात वर्ष उपरांत अचित्त हो जाते हैं. तथा कर्पासके विनोले, उत्कृष्ट तीन वर्षसें उपरांत अचित्त जीव रहित हो जाते हैं. यहजी कल्प[illegible] आटा (चून) श्रावण, जाड

वाके महिनेमें पांच दिन तक मिश्र रहता है, पीछें अचित्त होता है, असोज, कार्त्तिक मासमें चार दिन तक मिश्र रहता है, पीछें अचित्त हो जाता है. तथा मगसिर, पोष मासमें तीन दिन मिश्र रहता है, पीछें अचित्त होता है, तथा माघ, फागून मासमें पांच प्रहर मिश्र रहता है, तथा चैत्र, वैशाख मासमें चार प्रहर मिश्र रहता है. तथा ज्येष्ट आषाढमें तीन प्रहर मिश्र रहता है, उपरांत अचित्त हो जावे, जे कर तत्काल छान लेवे, तब अंतमुहूर्त्त लग मिश्र रहे, पीछें अचित्त होवे.

शिष्य प्रश्न करता है, कि पीस्या हूआ आटा कितने दिनका अचित्त जोगीकों तथा श्रावककों खानां चाहियें ?

उत्तरः—सिद्धांतमें हमने आटेकी मर्यादाका नियम नहीं देखा है. परंतु बुद्धिमान् नवा, जीर्ण अन्न, तथा सरस नीरस क्षेत्र, तथा वर्षा, शीत, उष्णादि ऋतु, तिनमें तिस आटेका पंदरा दिन मासादि कालमें वर्ण, गंध, रस स्पर्शादि विगडा देखे, तथा सुरसली प्रमुख जीव पडा देखे, तब न खावे, जे कर खावे, तो जीवहिंसा अरु रोगोत्पत्तिका कारण है.

तथा मिठाइकी मर्यादा, अरु विदलका निषेध, उपर सातमे व्रतमें लिख आये हैं, तहांसें जान लेनां. तथा दहीमें सोलां प्रहर उपरांत जीव उत्पन्न होते हैं, तथा विवेकी जीवकों वेंगन, टींबरु, जामन, बिल्व, पीलूं, पक्क कर्मदा, पक्का गूंदा, लसूडा पेंचु, मधुक, (महुवा) मोर, वालोल, वडे बोर, झाडीके बोर, कच्चा कोठफल, खसखस, तिल, इत्यादि न खाने चाहियें, इनमें त्रस जीव होते हैं. तथा जो फल रक्त (लालरंग) देखनेमें बूरा लगे, पक्क, गोल, कंकोडा, फणस, कटेल प्रमुखभी बुरी भावनाके हेतु होनेसें, न खाने चाहियें. तथा जो फल जिस देशमें खानां विरुद्ध होवे, जैसें करुवा तुंबा, कूष्मांड अर्थात् कोहला हलुवा (कद्दु) सोभी न खानां चाहियें, अरु अभक्ष्य, अनंतकाय, कंदमूल, परघरके अचित्त करे, रांधे हूयेभी न खाने चाहियें. क्योंकि एक तो निःशूकता अरु दूसरी रस लंपटता तथा वृद्ध्यादि दोषका प्रसंग होता है. इसी वास्ते न खानां. तथा उकाला हूआ सेलरा, रांध्या हूआ आर्द्रादि कंद, सूरण, वेंगनादि, यद्यपि अचित्त हैं, तोभी श्रावक, प्रसंग दूषण त्यागने वास्ते न खावे, तथा मूली तो पंचांगही खाने योग्य नहीं. निषिद्धत्वात्, तथा शुंठ,

हलद, नाम अरु स्वाद भेद होनेसें अभक्ष्य नहीं है. तथा उष्ण जल, तीन उबाले आ जावें, तब अचित्त होता है, यह कथन पिंडनिर्युक्तिमें है. चावलोंके धोवणका पाणी जब नितरके निर्मल हो जावे, तब अचित्त होता है, तथा उष्णजलकी मर्यादा प्रवचनसारोद्धारादि ग्रंथोंमें ऐसी लिखी है, सो कहते हैं. त्रिदंडोत्कृत उष्ण जल, उष्णकालके चारों मास में पांच प्रहर अचित्त रहता है, यह चुल्हेसें उतारे पीछेंकी मर्यादा है. तथा वर्षाके चारों मासमें तीन प्रहर अचित्त अरु शीत कालके चारों मासमें चार प्रहर अचित्त रहता है, पीछें सचित्त होता है, जे कर ग्लान, बाल, वृद्धादि साधुके वास्ते मर्यादा उपरांत रखनां होवे, तब क्षारादि वस्तुका प्रक्षेप करके रखनां, फेर सचित्त नहीं होता है. प्रवचनसारोद्धारके (१३६)में द्वारमें यह कथन है तथा कोकडु मोठ, मूंग अरु हरडादिककी मींजी (गिटक) यह यद्यपि अचेतन हैं, तोभी योनि रखने वास्ते तथा निःशुकतादिके परिहार वास्ते दांतांसें तोडनां (भांगनां) न चाहियें. इत्यादि सचित्त वस्तुका स्वरूप जानके सातमा व्रत अंगीकार करनां चाहियें.

श्रावककों प्रथम तो निरवद्य (दूषण रहित) आहार खानां चाहियें. ऐसें न कर सके तो सर्व सचित्त खानेका त्याग करे, ऐसेंभी न कर सके तब बावीश अभक्ष्य अरु बत्तीस अनंतकाय तो अवश्यमेव त्यागने चाहियें, तथा चौदह नियम धारने चाहियें. ऐसें सूता उठके यथाशक्ति नियम ग्रहण करे, पीछें यथाशक्ति प्रत्याख्यान करे, नमस्कार सहित पौरुष्यादि काल प्रत्याख्यान जो है, सो जेकर सूर्य उगनेंसें पहिलां उच्चारण करियें, तो शुद्ध है, अन्यथा शुद्ध नहीं. अरु शेष प्रत्याख्यान सूर्योदयसें पीछेंभी हो सके हैं. यह तथा नमस्कार सहित जेकर सूर्योदयसें पहिलां उच्चार करा हूआ होवे, तब तिसके पूर्व हूआं तिसके बीचही पौरुषी साढ पौरुषादि काल प्रत्याख्यान हो सक्ता है. जे कर नमस्कार सहित सूर्योदयसें पहिलां उच्चारन न करियें, तब तो कोइभी काल प्रत्याख्यान करनां शुद्ध नहीं, अरु जे कर प्रथम नमस्कारादि प्रत्याख्यान मुष्टि सहतादि करे, तब सर्वकाल प्रत्याख्यान करे, तो शुद्ध है.

तथा रात्रिमें चौविहार करे अरु दिनमें एकासना करे, पीछें ग्रंथि सहित प्रत्याख्यान करें, तब तिसको प्रतिमास एगुन तीस उपवासका फल

होता है, दो वार जोजन उक्त रीतिसें करे, तो अठावीस उपवासका फल होता है, क्योंकि दो घडीका काल जोजन करतां लगता है, शेष काल तपमें व्यतीत हूआ, यह कथन पद्मचरित्रमें है, प्रत्याख्यान उपयोग पूर्वक पूरा हो जावे, तो पारे.

१ अरु चार प्रकारके आकारका विजाग असें है, एक तो अन्न, पकान्न, मंरुक, सत्तुआदि जो क्षुधा दूर करनेकूं समर्थ होवे. सो प्रथम अशन नामक आहार है, दूसरा ठाठका पाणी, तथा उष्ण जलादि, यह सर्व पानक नामक आहार है. तीसरा फल, फूल, इक्षुरस, पढुंक, सूखडी, आदिक यह सर्व खादिम नामक आहार है. चौथा सूंठ,हरडे, पिप्पली, काली मिरच, जीरा, अजमक, जायफल, जावंत्री, असेलक, कथा, खयरवडी, ज्येष्ठीमधु, तज, तमालपत्र, एलायची, कोठ, विडंग, विडलवण, अजमोद, कुलिंजण, पिप्पलीमूल, चीणकवाव, कचूर, मुस्ता, कंटासेलिउं, कर्पूर, सौंचल, हरड, वहेडां, कुंठजउं, बंबूल, धव, खदिर, खेजकी ठाल, पान, सोपारी, हिंगुलाष्टक, हिंगु, त्रेवीसउं, पंचकूल, पुष्करमूल, जवासामूल, वावची, तुलसी, कपूरिकंदादिक, जीरा. यह सर्व जाष्य अरु प्रवचनसारोद्धारादिक ग्रंथोंके लेखसें स्वादिम नामक आहार है, अरु कल्पवृत्तिमें उनकूं खादिम लिखा है. कोइक अजवयनकोंजी खादिम कहते हें. यह मतांतर है, यह सर्व स्वादिम नामक आहार है, तथा एलायची कर्पूरादि वासित जल द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें पीनां कल्पता है, तथा वेशण, सौंफ, सोय, कोठवडी, आमलागांठ, आंवकी गुटली, निंबूके पत्र प्रमुख खादिम होनेसें द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते हें. अरु त्रिविध आहार प्रत्याख्यानमें तो जलही पीनां कल्पता है, तिसमेंजी फुंकारा हूआ पाणी, साकर, कर्पूर, एलायची,कथा, खदिर, चुर्णक, सेलक, पाडलादि वासित जल, जे कर नितार अरु ठान के लेवे तो कल्पे, अन्यथा नहीं.

तथा शास्त्रोंमें मधु, गुड, साकर, खंडादिजी स्वादिम कहे हें. अरु द्राक्षा, शर्करादि, जल, तक्र, ठाठादिकां पानक कहे हें. तोजी द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें नहीं कल्पते हें॥ उक्तं च नागपुरीय गछकी करी हूइ प्रत्याख्यानजाष्यमें ॥ दक्खा पाणाईयं, पाणं तह साइमं गुडाईयं ॥ पढियं

सुयंमि तहवि हु, तित्तीजणगंति नायरिअं ॥ १ ॥ स्त्रीके साथ नोग करनेंसें चोविहार नंग नहीं होता है, परंतु बालकके तथा स्त्रीके होठ मुखमें ले कर चर्वण करे. तो नंग होवे, अरु द्विविध आहार प्रत्याख्यानमें यहनी करे तो नंग नहीं होता, प्रत्याख्यान जो है सो कवल आहारका है, परंतु रोम आहारका नहीं है. इस वास्ते लेपादि करनेंसें नंग नहीं.

तथा उतनी वस्तु किसी आहारमेंनी नहीं हे उसका नाम लिखते हैं. पंचांग नींब, गोमूत्र, गलोय, कटु, चिराइता, अतिविष, कुडेकी बाल, चीरू, चंदन, राख, हरिद्रा, रोहणी, उपलोट, वज, त्रिफला, वांबूलकी बिल्लक, धमासा, नाहि, आसंध, रींगणी, एलुवा, गुगल, हरमां, दाल, कर्पासकी जड, जारू, वेही, कंथेरी, करीर, इनकी जरू, पुंआड, बोहरोरी, आछि मंजीठ, बोल, बीउकाष्ठ, कुंआर, चित्रक, कुंदरु प्रमुख जो वस्तु खानेमें अनिष्ट लगे, वो सर्व अनाहार है, यह अनाहार वस्तु रोगादिकष्टमें चोविहार प्रत्याख्यानमेंनी खा लेवे, तो नंग नहीं. इस तरें आहारके नेद जानके प्रत्याख्यान करे.

पीछें मलोत्सर्ग, दंतधावन, जिव्हालेखन, कुरला करनां, यह सर्व देशस्नान करकें पवित्र होवे, यह कहनां अनुवाद रूप है. क्योंकि यह पूर्वोक्त कर्म सवेरे उठके प्रायः सर्व गृहस्थ करते हैं, इसमें शास्त्रोपदेशकी अपेक्षा नहीं. स्वतःही सिद्ध हैं. परंतु इनकी विधि शास्त्र कहता है, उसमें प्रथम मलोत्सर्ग विधि यह है, कि मलोत्सर्ग मौनसें करनां चाहियें. सो निर्दूषण योग्य स्थानमें करे ॥ यत उक्तं विवेकविलासग्रंथे ॥ मूत्रोत्सर्गं मलोत्सर्गं, मैथुनं स्नानजोजने ॥ संध्यादि कर्म पूजा च, कुर्याज्जापं च मौनवान् ॥ १ ॥ अर्थः– मूतना, दिसा फिरनां, मैथुन करनां, स्नान, नोजन, संध्यादि कर्म, पूजा, जाप, यह सर्व मौनपणे करने तथा दोनो संध्या वस्त्र पहिरके करे, तथा दिनमें उत्तरके सन्मुख मुख करकें, अरु रात्रिकों दक्षिणदिशि सन्मुख मुख करकें लघु शंका उच्चार करे. तथा सर्व नक्षत्रोंका तेज सूर्य करकें जब भ्रष्ट हो जावे, जहां तक सूर्यका आधा मांमला उगे, तहां तक सवेरेकी संध्या करणी, तथा सूर्य आधा अस्त होवे, तद पीछें दो तीन नक्षत्र जहां तक नजर न पडे, तहां तक सायंकाल कहते हैं, तथा राखका ढेर, गोबरका ढेर, गौके बैठनेंके स्थानमें, सर्पकी बंबी ऊपर तथा

जहां बहुत लोग पुरीषोत्सर्ग करते होवें, तथा उत्तम वृक्षके हेठ, रस्तेके वृक्ष हेठ, तथा रस्तेमें, तथा सूर्यके सन्मुख, तथा पाणीकी जगामें, तथा मसाणोंमें, तथा नदीके कांठे ऊपर, तथा जिस जगोकों स्त्री पूजती होवे, इत्यादि स्थानोमें मलोत्सर्ग न करे. परंतु जहां बेठनेंसें कोइ मार पीट न करे, पकमके न ले जावे, धर्मकी निंदा न होवे, तथा जहां बेठनेंसें गिरे, फिसले नहीं, पोली नूमि न होवे, मासादि न होवे, त्रस जीव बीज न होवे, इत्यादि उचितस्थानमें मलोत्सर्ग करे, गामके तथा किसीके घरके समीप मलोत्सर्ग न करे, तथा जिस तर्फसें पवन आती होवे, तथा गामकी सूर्यकी पूर्वदिशिके तरफ पीठ करकें मलोत्सर्ग न करे. दिसा अरु मूत्रका वेग रोकनां नहीं, क्योंकि मूत्रका वेग रोकनेंसें नेत्रोंमें हानी होती है, तथा दिसाका वेग रोकनेंसें काल हो जाता है. तथा व मन रोकनेंसें कुष्ट रोग हो जाता है, जेकर ये तीनो बात न होवेगी तो रोग तो जरूर हो जावेगा, श्लेष्मादि करकें ऊपर धूलि गेर देवें, क्योंकि श्रीप्रज्ञापनोपांगके प्रथम पदमें लिखा है, कि चौदह जगें संमूर्छिम जीव उत्पन्न होते हैं, सो चौदह स्थानक कहते हैं, १ पुरीषमें, २ मूत्रमें, ३ मुखके थूकमें, ४ नाकके मैलमें, ५ वमनमें, ६ पित्तोंमें, ७ वीर्यमें, ८ वीर्य रुधिर दोनोंमें, ए राधमें १० वीर्यका पुजल अलग निकल पडे उसमें, ११ जीव रहित कलेवरमें, १२ स्त्री पुरुषके संयोगमें, १३ नगरीकी मोरीमें, १४ सर्व अशुचि स्थानमें, कानकी मेल, आंखकी गीमरमें, काखकी मेल प्रमुखमें, यह सर्व चौदह बोल मनुष्यके संसर्गवाले ग्रहण करणे, अरु जब शरीरसें अलग होवे, तब जीव उत्पन्न होते हैं.

तथा दातनजी निरवद्य स्थानमें करे, दातण अचित्त जाने हूए वृक्षकी कोमल करे, तथा दांतोंके दृढ करने वास्ते तर्जनी अंगुली करकें दांतोंकी बीड घसे, जो दांतोंकी मैल पडे, उसके ऊपर धूलि गेर देवे, तथा दातणजी कैसी करे जो दातण सूधी होवे, बीचमें गांठ न होवे, कूर्च अच्छा होवे, आगेसें पतली होवे, चेंटी अंगुली समान मोटी होवे सुजूमिकी उत्पन्न होइ होवे, असी दातण कनिष्ठा अनामिकाके बीच ले कर करे, पहिलां दाहिनी दाढा घसे, फेर बामी घसे, उपयोगवंत स्वस्थ, दांत अरु पीढके मांसकों पीमा न देवें, उत्तर तथा पूर्व सन्मुख करकें निश्चलासन,

मौन युक्त दातण करे, दुर्गंध, पोली, सूकी, खट्टी, खारी, वस्तु दांतकों न घसे, तथा, व्यतीपात, रविवार, संक्रांति दिनें ग्रहण लगेमें, नवमी, अष्टमी, पडवा, चौदश, पूर्णमासी, अमावस, इन दिनोंमें दातण न करे, जे कर दातण न मिले, तब मुखशुद्धिके वास्ते बारां कुरले करे, अरु जिव्हा उल्लेखन तो सदा करे, दातणकी फांकसें जिव्हाका मैल हलवे हलवे सर्व उतारके शुचिस्थानमें दातण धो करकें आपणे मुखके सामने गेरे, तथा खांसी, श्वास, तप, अजीर्ण, शोक, तृषावाला मुख, पक्केवाला, मस्तक, नेत्र, हृदय, कान, इतने रोग वाला, दातण न करे.

मस्तकके केशोंकों सदा समारे, जिस्में जूआं न पडे, जे कर तिलक करकें आरीसा देखे, उसमें मुख नहीं दीखे, सिर नहि दीखे,तो पांच दिनके अंदर उसका मरना जाननां. अरु जिसने उपवास पोरुष्यादिक प्रत्याख्यान करा होवे, वो दांत धोया विनाभी शुद्ध है, क्योंकि तपका बमा फल है, लौकिक शास्त्रोंमेंभी उपवासादि करे, तो दातण विनाही देवपूजा करते हैं, इस वास्ते लौकिक शास्त्रोंमेंभी उपवासादिमें दातण करनेका निषेध है॥ यदुक्तं विष्णुभक्तिचंद्रोदयग्रंथे ॥ प्रतिपदार्शषष्ठीषु, मध्यांते नवमीतिथौ ॥ संक्रांति दिवसे प्राप्ते, न कुर्याद्दंतधावनं ॥१॥ उपवासे तथा श्राद्धे, न कुर्यात् दंतधावनं ॥ दंतानां काष्टसंयोगो, हंति सप्त कुलानि वै ॥ २ ॥ इत्यादि.

तथा जब स्नान करे. तब उत्तिंग पनक कुंथुआदि जीवोंसें रहित भूमिमें करे, सो भूमि ऊंची. नीची. पोली. न होवे, प्रथम तो उष्ण प्रासुक जलसें स्नान करे. जेकर उष्ण जल न मिले. तब वस्त्रसें छान करके प्रमाण संयुक्त शीतल जलसें स्नान करे. तथा व्यवहार शास्त्रमें ऐसा लिखा है, कि:—नग्न हो कर तथा रोगी तथा परदेशसें आया हुआ भोजन करे पीछे आभूषण पहेरके किसीकों विदा करके पीछे आ करके मंगल कार्य करके स्नान न करे. तथा अनजाने पानीमें. दुष्प्रवेश जलमें मैले जलमें. वृक्षों करके आच्छादित जलमें, सेवाल करके आच्छादित जलमें स्नान न करे, तथा शीतल जलसें स्नान करके उष्ण भोजन न खानां चाहिये. अरु उष्ण जलसें स्नान करके शीतल भोजन न खानां चाहिये. तैलमर्दन सदाही करनां चाहिये. तथा स्नान कर्यां पीछे जिसकी कांति फीकी होवे तथा जिसके दांत परस्पर घसे. अरु शरीरमें मृतक जैसी

गंध आवे, तिसका मरण तीन दिनके अंदर होगा, तथा स्नान कस्यां पीछे जिसके हृदयमें, तथा दोनो पगांमें तत्काल पाणी शोप जावे, तब छे दिनोके बीच उसका मरन जाननां. मैथुन सेवकें तथा वमन करकें इन दोनोमें कबुक देर पीछे स्नान करे, तथा मृतककी चिताके धूम लगनेसें मस्तक मुं डवा करकें, छाने हूये शुद्ध जलसें स्नान करे, तथा तेलमर्दन करी स्नान कस्यां पीछें उज्ज्वल वस्त्र आजरण पहिरनां. पिछें प्रयाण करनेके दिनमें संग्राममें जातां हूआ, विद्यामंत्र साधतां, रातकों, सांझकों, पर्वदिनमें नवमे दिनमें स्नान न करे, मस्तक मुंरुनजी न करावे, तथा पक्षमें एक वार दाढी मस्तकके केश तथा नख दूर करावे, परंतु अपणे दांतों करी तथा अपणे हाथ करकें नख न कतरे, स्नान करनेसें शरीर पवित्र चैतन्यसुख कर जाव शुद्धिका हेतु हो जाता है ॥ उक्तं च द्वितीये अष्टकप्रकरणे ॥ श्लोक ॥ जलेन देहदेशस्य, क्षणं यच्छुद्धिकारणं प्रायोऽन्यानुपरोधेन, द्र व्यस्नानं तदुच्यते ॥ १ ॥ अस्यार्थः— देहदेश त्वचामात्रहीकी क्षणमात्र शुद्धि है, परंतु प्रभूत काल नहीं शुद्धि जो है, सोजी प्रायें है, कुछ एकांत नहीं है, क्योंकि अतिसारादि रोग वालेंकों क्षण मात्रजी शुद्धि नहीं हो सक्ती है, धोने योग्य मैलसें अन्य दूसरा मैल नासिकादि अंत र्गत जो है, सोजी स्नानसें दूर नहीं होता है, अथवा पाणी विना और जीवोंकी हिंसा न करनेसें जो स्नान है, सो बाह्य स्नान है, जो पुरुष स्नान करकें जगवानकी तथा साधुकी पूजा करे, तिसका स्नानजी अछा है, क्योंकि जावशुद्धिका निमित्त है, स्नान करनेमें अप्कायके जीवोंकी विराधनाजी है, तोजी सम्यग्दर्शनकी शुद्धि रूप गुण है ॥ यडुक्तं ॥ पूआए कायवहो, पडिकुठो सोउ किंतु जिणपूआ ॥ सम्मत्त सुद्धिहेउ त्तिजावणीयाउ निरवज्जा ॥ १ ॥ अर्थः— कोइ कहते हैं कि पूजा करनेसें जीववध होता है, अरु जीववध तो शास्त्रमें निषेध करा है. इस वास्ते पूजा न करणी चाहियें. इसका उत्तर कहते है, कि पूजा जो जिनराज की है, सो सम्यक्त्व निर्मल करने वाली है, इस वास्ते जिनपूजा निरव द्य है. ऐसें देवपूजाके वास्ते गृहस्थकों स्नान करनां कहा है, तथा शरी रके चैतन्य सुखके वास्तेजी स्नान है. परंतु जो स्नान करनेमें पुण्य मान ते हैं. सो वात मिथ्या है. क्योंकि जो कोइ तीर्थमेंजी जान कर स्नान

करता है, तिसकोंजी शरीर शुद्धिके शिवाय और कुछ फल नहीं होता है यह बात अन्यदर्शनके शास्त्रोंमेंजी कही है ॥ उक्तं च ॥ स्कंदपुराणे काशी खंडे षष्ठाध्याये ॥ श्लोक ॥ मृदोजारसहस्रेण, जलकुंजशतेन च ॥ न शुध्यंते डुराचाराः, स्नानतीर्थशतैरपि ॥ १ ॥ जायंते च म्रियंते च, जले ष्वेव जलौकसः ॥ न च गछंति ते स्वर्गं, मविशुद्धमनोमला ॥ २ ॥ चित्तं समाधिनिः शुद्धं, वदनं सत्यजाषणैः ॥ ब्रह्मचर्यादिनिः कायः, शुद्धोगंगाविनाप्यसौ ॥ ३ ॥ चित्तं रागादिनिः क्लिष्ट, मलीकवचनैर्मुखं ॥ जीवहिंसादिनिः कायो, गंगा तस्य पराङ्मुखी ॥ ४ ॥ परदारापरद्रव्य परद्रोहपराङ्मुखः ॥ गंगाप्याह कदागत्य मामयं पावयिष्यति ॥ ५ ॥ जलसें स्नान करनेसें असंख्य जीवोंकी विराधना होती है, इस वास्ते पुण्य नहीं है, जलमें जीवोंका होनां मीमांसा शास्त्रसेंजी सिद्ध होता है. यडुक्तं उत्तरमीमांसायां ॥ श्लोक ॥ लूतास्यतंतुगलिते, ये बिन्डाः संति जंतवः ॥ सूक्ष्मा भ्रमराणास्ते, नैव यांति त्रिविष्टपं ॥ १ ॥ इत्यादि.

किसीके स्नान करेजी जे कर गुमडादिमेंसें राधादि श्रवे, तदा तिसनें अंगपूजा फूलादिकसें आप नहीं करनी, दूसरोंसें करावे. अरु अग्रपूजा तथा जावपूजा आपजी करे, तो कुछ दोष नहीं, थोमासाजी अपवित्र होवे, तब देवका स्पर्श न करे, तथा स्नान करया पवित्र मृडु, गंध, काषायिकादि वस्त्र, अंगलूहणां, पोतीयां दोम करकें पवित्र वस्त्रांतर पहिरनेकी युक्तिसें पाणीके जींजे पगोसें धरतीकों अस्पर्शता हूआ पवित्र स्थानमें आ करकें उत्तर सन्मुख मुख करकें अछी तरें मनोहर नवा वस्त्र जो फाटा हूआ तथा सिवाया हूआ न होवे, अरु वर्णमें धवला होवे, ऐसा वस्त्र पहिरे, तथा जिस वस्त्रकों कटिमें पहिरा होवे, तथा जिस वस्त्रसें दिसा गया होवे, तथा जिस वस्त्रसें मैथुन सेव्या होवे, तिस वस्त्रकों पहिरकें पूजादि न करे, तथा एक वस्त्र पहिरके जोजन तथा देवपूजादि न करे, तथा स्त्री, कंचुकी विना पहने देवपूजा न करे, इस रीतिसें पुरुषकों दो वस्त्र तथा स्त्रीकों तीन वस्त्र विना पूजा करनी नहीं कल्पे है, देवपूजामें धोती अतिविशिष्ट धवली करनी चाहियें, निशीथचूर्णी तथा श्राद्धदिनकृत्यादि शास्त्रोंमें ऐसाही लिखा है, तथा पूजा षोमशसें ऐसाजी लिखा है, कि रेशमी आदिक जो सुंदर वस्त्र लाल पीला होवे,

सोजी पूजामें पहिरे तो ठीक है, तथा "एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, इत्यादि आगमके प्रमाणसें उत्तरासंग अखंड वस्त्रका करे, दो टुकडे सीआ वस्त्र न कल्पे, तथा रेशमी कपडेसें जोजनादि करे, अरु मनमें समझे कि यह तो सदा पवित्र है, तोजी तिस्सें पूजा न करे. तथा जिस वस्त्रकों पहिरकें पूजा करे, उसकोंजी वारंवार पहिननेंके अनुसार धोवावे, धूप देकर पवित्र करे. धोती थोमाही काल तक पहननी चाहियें, उस धोतीसें पसीना श्लेष्मादि न दूर करनां चाहियें. क्योंकि उस्सें अपवित्रता हो जाती है, तथा पहिने हूए वस्त्रोंके साथ पूजाके वस्त्र बुहाने (अडाने) नहीं चाहियें, दूसरायोंकी पहनी हुइ धोती पहननी न चाहियें, तथा बाल, वृद्ध, स्त्रीके पहननेंमें आइ होवे, तो विशेष करकें न पहननी चाहियें, तथा जले स्थानसें ज्ञातगुण, सुमनुष्य पासों पवित्र जाजन आगार नरांयुक्त रस्तेमें लानेकी विधिसंयुक्त पाणी अरु फूल, पूजा वास्ते मंगावने चाहियें. अरु फूलादि लाने वालेकों अछी तरें मोल दे कर प्रसन्न करनां चाहियें, ऐसें मुखकोश बांध के पवित्रस्थानादि युक्तिसें जिसमें कोइ जीव पडा न होवे, ऐसा शोध्या हुवा केशर कर्पूरादिकसें मिश्र, चंदन घसें, शोध्या हूआ सुंदर धूप, प्रदीप, अखंड चावलादि तूत रहित प्रशंसा करनें योग्य ऐसा नैवेद्य फलादि सामग्री मेलकें इस रीतें द्रव्यसें शुचि करकें अरु जावसें शुचि तो राग, द्वेष, कषाय ईर्ष्या रहित तथा इस लोक परलोकके सुखोंकी इछा रहित हो कर अरु कुतूहल चपलादि त्याग करकें एकाग्र चित्ततारूप जावशुद्धि करे ॥ उक्तं च ॥ श्लोक ॥ मनोवाक्कायवस्त्रोर्वी, पूजोपकरणस्थितेः ॥ शुद्धिः सप्तविधा कार्या, श्रीअर्हत्पूजनक्षणे ॥ १ ॥

ऐसें द्रव्य जाव करकें शुद्ध हो कर जिनघर (देहरेमें) दक्षिणदिशें पुरुष, अरु वामा दिशें स्त्री, यत्न पूर्वक प्रवेश करे, प्रवेशके अवसरमें दक्षिण पग पहिलां धरे, पीछे सुगंध वाले मीठे सरस द्रव्यां करकें पराङ्मुख गमानार चपले मौनसें देवपूजा करे. इत्यादि तीन नैषेधिकी करण, तीन प्रदक्षिणा, इत्यादि विधिसें शुचि पाट उपर पद्मासनादि सुखासन पर बैठकें, चंदनका जाजनमें चंदन ले कर दूसरी कटोरीमें तथा हथेलीमें ले कर मस्तकमें तिलक करकें हस्तकंकण, श्रीचंदनचर्चित भूषित, हाथों करी जिन अर्हं नको पूजके आगें लिखते हैं जो १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ जाव

था. तिनोंमें पूर्वके प्रत्याख्यान जो पूर्वे करा था. सो यथाशक्ति देवकी साक्षिसें उच्चारण करे, तद पीछे विधिसें बडे पंचायती मंदिरमें जा कर पूजा करे. सो इस विधिसें करे.

यदि राजादि महर्द्धिक होवे, सो तो सर्व ऋद्धि, सर्वदीप्ति, सर्वयुक्ति, सर्वसैन्या. सब उद्यमसें जिनमतकी प्रभावना वास्ते महा आडंबर पूर्वक जिनमंदिरमें पूजा करनेकों जावे, जैसें दशार्णभद्र राजा श्रीमहावीर भगवंतकों वंदना करने गया था तैसें जावे.

अरु जो सामान्य ऋद्धिवाला होवे. सो अभिमान रहित लोकोपहास्य त्यागकें यथायोग्य आडंबर करके. मित्र. पुत्रादिकोंसें परिवृत हो कर जावे. ऐसें जिनमंदिरमें जा कर १ पुष्प, तंबोल. सरस, दुर्वादि त्यागे, तथा २ छुरी, पावडी. मुकुट, हाथी प्रमुख सचित्ताचित्त वस्तु शरीरके भोगकी त्यागे, तथा ३ मुकुट वर्जके शेष आभरणादि अचित्त वस्तु न त्यागे, अरु एक पटे वस्त्रका उत्तरासंग करे. ४ जिनेश्वरकी मूर्त्ती दीखे अंजलि बांधकें मस्तक उपर चढाकें 'नमो जिणाणं' ऐसा कहे. ५ मन एकाग्र करे, इस रीतिसें पांच अभिगम संभालकें (साचवके) नैषेधिकी पूर्वक प्रवेश करे.

जे कर राजा जिनमंदिरमें प्रवेश करे. तब तत्काल राजचिन्ह दूर करे, १ तलवार, २ छत्र, ३ असवारी. ४ मुकुट, ५ चामर. ये पांचो चिन्ह राजाके त्यागे, अग्र द्वारमें प्रवेश करतां घर व्यापारका निषेध करने वास्ते नैषेधिकी तीन करे, परंतु तीनो निस्सहीकी एक नैषेधिकी गणतीमें करणी, क्योंकि एकही घर व्यापार एककाही निषेध कीया है. तद पीछे मूल बिंबको नमस्कार करके सर्व कृत्य, कल्याणवांछक पुरुषनें दक्षिणके पासें करणां, इस वास्ते मूलबिंबको दक्षिणके पासें करता हूआ ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, इन तीनोके आराधनार्थ प्रदक्षिणा तीन देवे, प्रदक्षिणा देता हूआ समवसरणस्थ चाररूप संयुक्त जिनेश्वरजीकों ध्यावे, गंभारेमें पूठें वामा दक्षिण दिशिमें जो बिंब होवे, तिनकों वंदे, इसी वास्ते सर्व मंदिरमें चारों तर्फ समवसरणके आकारें तीन तर्फ तीन बिंब स्थापे जाते हैं, ऐसें करनेसें जो अरिहंतकी पीठें वसणेमें दोष था, सो दूर हो गया, पीठ किसी पासेंभी न रही, तिस पीठें चैत्यप्रमार्जनादि जो आगें लिखेंगे सो करे. पीठें सर्व प्रकारकी पूजासामग्री प्रत्यें तथा देहराके समारनेके कामके

निषेध करने वास्ते दूसरी मुखमंडपादिकमें नैषेधिकी करे, पीछें मूलबिंब कों तीन प्रणाम करकें पूजा करे, भाष्यकारनेंभी असा कहा है, कि निस्सही तीन करकें प्रवेश करी मंडपमें जिनेश्वरके आगें धरती उपर स्थापन करकें, हाथ जोडे करे, विधिसें तीन वार प्रणाम करे, तिस पीछें हर्षसें उल्लास हो करकें मुखकोश बांध करकें जिन प्रतिमाका निर्माल्य, फूल प्रमुख मोर पीछी करकें दूर करे, जिनमंदिरका प्रमार्जन आप करे, अथवा औरोंसें करावे, पीछें जिनबिंबकी पूजा विधिसें करे, मुखकोश आठ पुडका करे, जिससें नासिका अरु मुखका निःश्वास निरोध होवे, वर्षातमें निर्माल्यमें कुंथुआदि जीवभी होते हैं इस वास्ते निर्माल्य अरु स्नात्र जल न्यारा न्यारा पवित्र स्थानमें गेरे, गिरावे, असें आशातनाभी नहीं होती है. पूजा कलश जलसें करता हूआ असी भावना ध्यावे, सो लिखते हैं.

हे स्वामिन्! बालपणेमें मेरु शिखर पर सुवर्णकलशें करी इंद्र देवताने स्नान कराया था, सो धन्य थे, जिनोनें तुमारा दर्शन करा था, इत्यादि चिंतवणा करके पीछें सुयत्नसें वालाकूंचीसें जिनबिंबके अंग उपरसें चंदनादि उतारे, पीछें जलसें प्रक्षालन करकें दो अंगलूहणेसें जिनप्रतिमाकों निर्जल करे, पग, जानु, कर, मस्तकें पूजा यथाक्रमसें नव अंगमें श्रीचंदनादि करकें चर्चे, (पूजे) कोइ आचार्य कहते है, कि पहिला मस्तकमें तिलक करकें पीछें नवांग पूजा करणी, श्रीजिनप्रभसूरिकृत पूजाविधि ग्रंथमें असा लिखा है, कि:—सरस सुरभि चंदन करी देवके, दाहिण जानु, दाहिण स्कंध, निलाड, वामा स्कंध, वामा जानु, इस क्रमसें पूजा करे, हृदय प्रमुखमें पूजा करे, तब नव अंगकी पूजा होती है, अंगोंमें पूजा करकें पीछें सरस पांच वर्णके प्रत्यग्र फूलों करकें चंदन सुगंध वास करी पूजे, जे कर पहिलां किसीने बडे मंडाणसें पूजा करी होवे, अरु अपणे पास वेसी सामग्री पूजा की न होवे, तब पहिली पूजा उतारे नहीं, क्योंकि विशिष्ट पूजा देखनेसें भव्योंकों जो पुण्यानुबंधी पुण्य होता था, तिसकी अंतराय हो जाति है किंतु तिस वास्ते तिसी पूजाकों शोभनिक करे, यह कथन बृहद्भाष्यमें है.

तथा जो पूजा उपर पूजा करणी, सो निर्माल्यके लक्षण न होनेसें निर्माल्य नहीं, जो भोगविनष्ट द्रव्य है, सोइ निर्माल्य गीतार्थोनें कहा है, आभूषण वारं वार पहराये जाते हैं, परंतु निर्माल्य नहीं होते हैं, नहीं तो गंध,

कषाय वस्त्र, करकें एक सौ आठ जिनप्रतिमाके अंग क्यों कर लूहे? इस वास्ते जिनबिंबारोपित जो वस्तु, शोभा रहित सुगंध रहित दीख पडे, अरु नव्य जीवोंकों प्रमोदका हेतु न होवे, तिसहीकों बहुश्रुत निर्माल्य कहते हैं. यह कथन संघाचारवृत्तिमें लिखा है, चढे हूये चावलादि निर्माल्य नहीं, कोइ आचार्य निर्माल्यनी कहते हैं, तत्व केवली जाणे क्यों कर हैं?

चंदण फूलादि पूजा तैसे करणी, जैसे नगवानके नेत्र मुखादि ढके न जावे, अरु बहुत शोजनिक दीखे जिस्से देखने वालोंकों प्रमोद पुण्यादिकी वृद्धि होवे.

तथा १ अंगपूजा, २ अग्रपूजा, ३ नावपूजा, यह तीन प्रकारकी पूजा है, तिनमें जो निर्माल्य दूर करनां, प्रमार्जना करनां, अंग प्रक्षालन करनां, वालकूंचीका व्यापारण, पूजना, कुसुमांजलिमोचन, पंचामृतस्नात्र, शुद्धोदकधारा देनी, धूपित स्वछ मृडुगंध कषायकादि वस्त्रसें अंगलूहण करनां कर्पूर कुंकुमादि मिश्र गोशीर्ष चंदन विलेपन अंगी रचनी, तथा गोरोचन कस्तूरीसें तिलक करणां, पत्र, वेल, फूल प्रमुखकी रचना करनी, बहु मोल रत्न सुवर्ण मोती रूपें पुष्पादिकें आनरण (अलंकार) पहिरावे, जैसें श्री वस्तुपालने अपने कराये हूये सवालक्ष बिंबोंके तथा श्रीशत्रुंजयजीमें सर्व बिंबोंके रत्न सुवर्णके आनरण कराये थे, तथा दमयंतीने पिछले नवमें अष्टापद पर्वतपर चौवीस अर्हतोंके तिलक कराये होते, क्योंकि प्रतिमाजी की जितनी उत्कृष्ट सामग्री होवे, उतनेही अधिक नव्य जीवोंके शुन नावोंकी वृद्धि होती है. तथा पहरावणी, चंद्रवादि विचित्र दुकूलादि वस्त्र पहिरावें, तथा १ ग्रंथिम, २ वेष्टिम, ३ पूरिम, ४ संघातिम रूप, चतुर्विध प्रधान अम्लान विधिसें ल्याया हूआ शतपत्र, सहस्त्रपत्र, जाइ, केतकी, चंपकादि विशेष फूलों करी माला, मुकुट, सेहरा, फूलघरादिककी रचना करे. तथा जिनजीके हाथमें बिजोरा, नालियर, सोपारी, नागवल्ली, मोहोर, रूपइया, लड्डु प्रमुख रखनां. अरु धूपक्षेप, सुगंध, वासप्रक्षेपादि, यह सर्व अंगपूजाकी गिणतीमें है. महानाष्यसेंनी कहा है ॥ गाथा ॥ न्हवण विलेव आहरण, वछ फल गंध धूप पुप्फेहिं ॥ कीरइ जिणंगपूया, तछ विही एस नायव्वो ॥ १ ॥ वछेण बंधिऊणना, सं अहवा जहा समाहीए ॥ व

कहते हे, ४ फूलकी वृष्टि करतां जो मालाधर देवता हे, तिसका रूप पंचतीर्थिके ऊपर बनाते हें, जिनप्रतिमाकों न्हवण करतां पहिलां मालाधरकों पाणी स्पर्शके पीछें जिनबिंब उपर पमता हे, सो दोष नहीं हे, यह वृद्धोंकी आचरणा हे, इसी तरें चोवीसी गट्टे आदिकमेंजी जान लेनां. ग्रंथोंमेंजी ऐसी रीति देखनेमें आती हे ॥ बृहद्भाष्येप्युक्तं ॥ जाष्यकार का कहनां यहां लिखते हे? जिनराजकी शृद्धि देखने वास्ते कोइ जक्त जन एक प्रतिमा बनवाता हे, प्रगटपणे अष्ट प्रातिहार्य देवागमसुशोभित. २ दर्शन, ज्ञान, चारित्रकी आराधना वास्ते कोइ तीन तीर्थी प्रतिमा बनवाता हे. ३ काइ जक्त पंचपरमेष्टिके आराधनार्थ उद्यापनमें पंचतीर्थी प्रतिमा जराता हे. ४ चोवीस तीर्थंकरोंके कल्याणक तप उजमने वास्ते जरत क्षेत्रमें जो ऋषजादि चोवीस तीर्थंकर हूए हें, तिनके बहुमान वास्ते कोइ चोवीसी बनवाता हे, कोइ जक्ति करके मनुष्य लोकमें उत्कृष्टे एक कालमें एक सो सित्तेर तीर्थंकर विहरमानकी एक सो सित्तेर प्रतिमा बनवाता हे, तिस वास्ते तीन तीर्थी, पांचतीर्थी, चोवीसी आदिकका बनानां युक्ति युक्त हे, यह पूर्वोक्त सर्व अंगपूजा हें.

अथाग्रपूजा लिख्यते ॥ रूपेके, सुवर्णके, चावल धवला सरसव प्रमुख अहनों करके अष्टमंगल आलेखन करे, जेसें सेनिकराजा रोजकी रोज एक सो आठ सोनेके यवां करी त्रिकाल जगवान्की प्रतिमा आगें साथीया करता था, अथवा ज्ञान, दर्शन, चारित्रकी आराधनाके वास्ते करनेसें पट्टादिकमें चावलोंके तीन पूंज करणे, तथा एक जातप्रमुख अशन, दूसरा सकर गुमादि पान, तीसरा पक्वान्न फलादि खादिम, चौथा तंबोलादि स्वादिम, इनका चढानां, तथा गोशीर्ष चंदनके रस करी पंचांगुली तलेसें मंडीव आलेखनादि पुष्पप्रकर आरती प्रमुख करणी, यह सर्व अग्रपूजामें गिणनीमें हे ॥ यन्नाष्यं ॥ गाथा ॥ गंधव नट वाइय, लवण जलारत्तियाइ दीवाइ ॥ जं किंचं तंसव्वंपि, ओअरइ अग्ग पूयाए॥१॥ नैवेद्यपूजा तो दिन दिन प्रत्ये करणी सुखाली हे, अरु इसमें फलजी मोटा हे, कोरा अन्न सार्धान तथा रांधा हूआ चढावे. लौकिक शास्त्रोंमेंजी लिखा हे ॥ श्लोक ॥ धूपो दहति पापानि, दीपो मृत्युर्विनाशकः ॥ नैवेद्यं विपुलं राज्यं, सिद्धिदात्री प्रदक्षिणा ॥ २ ॥ नैवेद्यका चढानां, आरति करणी प्रमुख आगममेंजी लिखा

है. "कीरइ बलि" ऐसा पाठ आवश्यक निर्युक्तिमें हैं, तथा निशीथचूर्णी मेंभी बलि चढानी लिखी है, तथा कल्पभाष्यमेंभी लिखा है, कि जो जिन प्रतिमाके आगें चढाने वास्ते नैवेद्य करा है, सो साधुकों न कल्पे, तथा प्रतिष्ठाप्राभृतसें रची श्रीपादलिप्त आचार्यकृत प्रतिष्ठापद्धतिमेंभी लिखा है, कि आरति उतारणी, मंगलदीवा करकें पीछें चार स्त्री मिल कर नैवेद्य, गीतगान, विधिसें करे॥ तथा च महानिशीथे तृतीये अध्ययने ॥ अरिहंताणं भगवंताणं गंध मल्ल पइव समज्जणोवलेवण विचित्त बलि वत्थ धूवाईएहिं पूआ सक्कारेहिं पइदिणमच्चणंपि कुव्वाणा तित्थुपणं करेमोत्ति ॥ इति अग्रपूजा ॥

भावपूजा जो है, सो द्रव्यपूजाका जो व्यापार है, तिसके निषेधने वास्ते तीसरी निस्सही तीन वार करे, श्रीजिनेश्वरजीके दक्षिणके पासे पुरुष अरु वामी दिशा स्त्री रह कर आशातना टालने वास्ते जघन्य मंदिरमें भूमिके संभव हूए नव हाथ प्रमाण अरु घर देहरेमें जघन्य एक हाथ प्रमाण अरु उत्कृष्टमें तो साठ हाथ प्रमाण अवग्रह है, तिस्सें बाहिर बैठकें चैत्यवंदना, विशिष्ट काव्यों करकें करे, श्रीनिशीथमें तथा वसुदेवहिंडमें तथा अन्यशास्त्रोंमें श्रावकोंनेंभी कायोत्सर्ग थुइ आदि करी चैत्यवंदना करी है, सो चैत्यवंदनाभी तीन तरेंकी भाष्यमें कही है. सो कहते हैं. एक तो जघन्य चैत्यवंदना, सो अंजलि बांध कर शिर नमा कर प्रणाम करणां, यथा 'नमो अरिहंताणं' इति अथवा एक श्लोकादि पदकें नमस्कार करणी, अथवा एक शक्रस्तव पढे, तो जघन्य चैत्यवंदना होवे. दूसरी मध्यम चैत्यवंदना, सो चैत्यस्तवदंडक युगल 'अरिहंत चेइयाणं' इत्यादि कायोत्सर्गके पीछें एक स्तुति कहनी, यह मध्यम चैत्यवंदन है, अरु तीसरा उत्कृष्ट चैत्यवंदन सो पंचदंम, जो १ शक्रस्तव, २ चैत्यस्तव, ३ नामस्तव, ४ श्रुतस्तव, ५ सिद्धस्तव, प्रणिधान, जयवीयराय, इत्यादि यह सर्व उत्कृष्ट चैत्यवंदना है. तथा कोइ आचार्यका ऐसा मत है कि:— एक शक्रस्तव करी जघन्य चैत्यवंदना होती है, दो तीन शक्रस्तव करी मध्यम चैत्यवंदना होती है, तथा चार अथवा पांच शक्रस्तव करी उत्कृष्ट चैत्यवंदना होती है, इसकी विधि चैत्यवंदनभाष्यसें जान लेनी, यह तीन प्रकारकी चैत्यवंदना कही.

अब यह चैत्यवंदना नित्यप्रत्यें सात वार करणी, महानिशीथमें साधुकों

कही है, तथा श्रावककोंजी उत्कृष्ट सात वार करणी कही है ॥ यन्नाष्यं ॥ एक प्रतिक्रमणेमें, दूसरी मंदिरमें, तीसरी आहार करणसें पहिलां करणी, चौथी दिवसचरिमं करतां, पांचमी देवसी पमिक्कमणेमें, छठी सोती वखत, सातमी सूता उठे उस वखत. यह सात वार चैत्यवंदन साधुकों करणी कही है, तथा जो श्रावक आठों प्रहरसें प्रतिक्रमण करता होवे, वोतो निश्चयें सात वार चैत्यवंदन करे, दो प्रतिक्रमणेमें दो चैत्यवंदन करे, तीसरी सोतां वखत, चौथी उठतां वखत, तथा तीन काल पूजा करयां पीछें, तीन वार, एवं सात वार श्रावक चैत्यवंदन करे, तथा जो श्रावक एकही वार पडिक्कमणां करे, सो छे वार चैत्यवंदन करे, तथा जो पमिक्कमणां न करे. सो पांच वार चैत्यवंदन करे, तथा जो सूतां उठतां जी चैत्यवंदन न करे, सो तीन वार करे, जे कर नगरमें बहुत जिनमंदिर होवे, तदा सातसें अधिकजी करे, तथा जे कर त्रिकाल पूजा न कर सके, तो त्रिकाल देववंदना करे, क्योकि महानिशीथमें लिखा है, किः- जिसको गुरु प्रथम जैनमतकी श्रद्धा करावे, उसकों प्रथम असा नियम देवे किः– सवेरेकी वखत जिन प्रतिमाका दर्शन करे विना पाणीजी नही पीनां, तथा मध्यान्ह कालमें जहां तक देव, (जिनप्रतिमा) अरु साधुयों कों वंदना न करे, तहां तक जोजन क्रिया न करे, तथा संध्याके समय चैत्यवंदन करे विना शय्या उपर पग न देवे, असा नियम करावे.

तथा गीत, नृत्य, जो अग्रपूजामें कहे हें, सो जावपूजामेंजी बन सके हें. सो गीत, नृत्य, मुख्यवृत्ति करिकें तो श्रावक आप करे, जेसें निशीथचूर्णिमें उदायनराजाकी राणी प्रजावतीका कथन है. तथा पूजा करणेके अवसरमें श्रीअर्हंतकी तीन अवस्थाकी कल्पना करे, उसमें स्नान करती वखत छद्मस्थ अवस्थाकी कल्पना करे, तथा आठ प्रातिहार्यकी शोजा करतां केवली अवस्थाकी कल्पना करे, तथा पर्यंकासन कायोत्सर्गासन देखके सिद्धावस्थाकी कल्पना करे, इसमें छद्मस्थ अवस्था तीन तरेकी कल्पे एक जन्मावस्था, दूसरी राज्यावस्था, तीसरी साधुपणेकी अवस्था. तहां स्नानकी वखत जन्म अवस्था कल्पे, तथा माला, फूल, आजरण, पहिरनेकी वखत, राज्यावस्था कल्पे, तथा दाढी, मूंछ, शिरके वालोंके न होनेसें साधु अवस्था विचारे, इनमें साधु, केवली मोक्ष अवस्थाकों वंदना करे.

तहां पूजा पंचोपचार सहित, अष्टोपचार सहित, अरु धनवान् होवे, तदा सर्वोपचारसें पूजा करे, तहां फूल, अक्षत, गंध, धूप अरु दीपसें पूजा करे, सो पंचोपचार पूजा जाननी. तथा फूल, अक्षत, गंध, दीप, धूप, नैवेद्य, फल अरु जल, यह अष्टोपचार पूजा है, सो अष्टविध कर्मकी मथने वाली है, तथा स्नात्र, विलेपन, वस्त्र, आभूषणादिक, फल, दीप, गीत, नाटक आरति आदिक करे, सो सर्वोपचार पूजा है. इति बृहद्भाष्ये ॥

तथा पूजाके तीन भेद हैं. एक आपही कायासें पूजाकी सामग्री ल्यावे, दूसरी वचनो करकें दूसरोंसें मंगवावे, तीसरी मन करकें भला फूल फल प्रमुख करी पूजा करे, ऐसें काया, वचन अरु मन, यह तीनो योगों करकें करे, करावे अरु अनुमोदे, यह तीन तरेंसें पूजा है.

तथा एक फल, दूसरा नैवेद्य, तीसरी थुइ, अरु चौथी प्रतिपत्ति, सो वीतरागकी आज्ञापालन रूप, यह चार प्रकारें पूजा, यथा शक्तिसें करे. ललितविस्तरादिक ग्रंथोमें " पुपामिषस्तोत्र प्रतिपत्ति " अर्थात् फूल, नैवेद्य, स्तोत्र, अरु आज्ञा आराधनीय, ये उत्तरोत्तर प्रधान हैं ॥ इत्यागमोक्तं पूजाभेदचतुष्टयं ॥

तथा पूजा दो प्रकारकी है, एक द्रव्यपूजा, दूसरी भावपूजा, जो फूलादिकसें जिनराजकी पूजा करणी, सो द्रव्यपूजा है, दूसरी श्रीजिनेश्वरकी आज्ञा पालनी, सो भावपूजा है. तथा पुष्पारोहणं गंधारोहणं इत्यादि सत्तरह भेदसें तथा स्नात्रविलेपनादि एकवीश भेदें पूजा है, परंतु अंगपूजा, अग्रपूजा अरु भावपूजा, यह तीनों पूजा, सर्व पूजायोंके अंतर्भाव हैं, तिनमें सत्तरह भेद, पूजाके लिखते हैं.

एक १ स्नात्र करनां,जिनप्रतिमाकों विलेपन करनां, २ चक्षुजोड़ प सुगंध, ३ फूल चढाने, ४ फूलकी माला चढानी, ५ पंच रंगें फूल ने, ६ वरास भीमसेनी प्रमुखका चूर्ण चढानां, ७ आभरण चढाने, ८ फूलों का घर करनां, ९ फूलपगर सो फूलोंका ढेर करनां, १० आरति, मंगल दीवा, ११ दीपकपूजा, १२ धूपोपक्षेप, १३ नैवेद्य, १४ शुभफल ढाकन, १५ गीतपूजा, १६ नाटक करणां, १७ वाजंत्र. यह सत्तरह भेदों करि पूजा है. अथ पूजाके एकवीश भेद लिखते हैं.

तहां प्रथम तो पूजा करणेकी विधि लिखते हैं, पूजा करने वाला पू

वैदिशकी तर्फ मुख करकें स्नान करे, २ पश्चिम दिशाकों मुख करकें दातण करे, ३ उत्तरदिशाके सन्मुख श्वेत वस्त्र पहिरे,४ पूर्वोत्तर मुख करकें पूजा करे, ५ घरमें प्रवेश करतां वामे पासें शल्य रहित भूमिमें देहरासर करावे, ६ डेढ हाथ भूमिकासें ऊंचा देहरासर करावे, जेकर देहरासर नीची भूमिकामें करावे, तब तिसका संतान दिन दिन नीचा होता जावेगा, ७ दक्षिणदिशि तथा विदिशिके सन्मुख मुख न करे, ८ घर देहरेमें पश्चिम सन्मुख मुख करकें पूजा करे, तो चौथी पेढीमें संतानोछेद होवे, ९ दक्षिण दिशिकी तर्फ मुख करी करे, तो संतान हीन होवे, १० अग्निकूणे करे, तो धन हानी होवे, ११ वायुकूणे करे, तो संतान न होवे. १२ नैरुत्यकूणे कुलक्षय होवे. १३ ईशाकूणे करे, तो एक जगे रहणां न होवे, १४ दोनो पग, दोनो जानु, दोनो हाथ, दोनो स्कंध, मस्तक, ये नव अंगमें क्रमसें पूजा करे, १५ चंदन विना पूजा नहीं होती है, १६ मस्तकमें, कंठमें, हृदयमें, पेटमें, तिलक करे. १७ नव अंगमें नव तिलक करकें निरंतर पूजा करे, १८ सवेरे पहिलां वास पूजा करे, १९ मध्याह्नमें फूलोंसें पूजे, २० संध्याकों धूप, दीप, करकें पूजा करे, २१ जो फूल, हाथसें धरतीमें गिर पडे, तथा पगोंकों लग जावे, तथा जो मस्तकसें ऊंचा चला जावे, तथा जो मैले वस्त्रसें रक्खा होवे, तथा जो नाभीसें नीचें रक्खा होवे, तथा जो दुष्ट जनोनें स्पर्शा होवे, जो बहुत ठेकाणोंमें हत होवे, जो जीवोने खाया होवे, ऐसा फूल, फल, भक्त जनोनें जिनपूजामें नही रखनां २२ एक फूलके दो टुकडे न करे, २३ कलीको छेदे नहीं, चंपक, उत्पल फूलके भांगनेसें बहुत दोष है, २४ गंध, धूप, अक्षत, फूलमाला, दीपक, नैवेद्य, पाणी, प्रधानफल, इनों करकें जिनराजकी पूजा करे, २५ शांतिककार्यमें श्वेत वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २६ ऽव्यलाभके वास्ते पीत वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २७ शत्रु जीतने वास्ते काले वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २८ मांगलिककार्य वास्ते लाल वस्त्र पहिरकें पूजा करे, २९ मुक्तिके वास्ते पांच वर्णके वस्त्र पहिरकें पूजा करे, ३० शांति कार्यके वास्ते पंचामृतका होम, दीवा, घी,गुड, लवणका अग्निमें प्रक्षेप, शांति पुष्टिके वास्ते जाननां. ३१ फाटा हूआ, जोडा हूआ,छिद्र वाला,काटा हूआ,जिसका रक्तवर्ण भयानक, ऐसें वस्त्र पहिरकें दान, पूजा, तप, होम अरु सामायिक प्रमुख करे, तो

निष्फल होवे. ३२ पद्मासन बैठकें, नासाग्र लोचन स्थापन करकें मोन धारी वस्त्रसें मुखकोश करकें जिनराजकी पूजा करे.

अथ इक्कीस प्रकारकी पूजाका नाम लिखते हैं १ स्नात्रपूजा, २ विलेपन पूजा, ३ आजरण पूजा, ४ फूल, ५ वासपूजा, ६ धूप, ७ प्रदीप, ८ फल, ९ अक्षत, १० नागरवेलके पान, ११ सोपारी, १२ नैवेद्य, १३ जलपूजा, १४ वस्त्रपूजा, १५ चामर, १६ छत्र, १७ वाजिंत्र, १८ गीत, १९ नाटिक, २० स्तुति, २१ जंडारवृद्धि यह एकवीश प्रकारकी पूजा है, जो वस्तु बहुत अछी होवे, सो जिनराजकी पूजामें चढानी चाहियें ॥ इति ॥ यह पूजा प्रकार, श्री उमास्वातिवाचककृत पूजाप्रकरणमें प्रसिद्ध है.

तथा ईशानकूणमें देवघर बनानां, यह बात विवेकविलासमें है, तथा विषमासन बैठकें, पग उपर पग धरकें, उकडुआसन बैठकें, वामा पग उंचा करकें तथा वामे हाथसें. इतने करिकें पूजा न करे, सूके हूए फूलोंसें पूजा न करे, तथा जो फूल धरतीमें गिरा होवे, तथा जिसकी पांखडी सड गइ होवे, नीच लोकोंका जिसकों स्पर्श हूआ होंवे, जो शुन न होवे, जो विकसे हूए न होवे, जो कीडेने खाये हूए, सडे हूए, रातकों वासी रहे, मकडीके जाले वाले, जो देखनेमें अछे न लागे, डुर्गंध वाले, सुगंधरहित, खट्टी गंधवाले, मलमूत्रकी जगामें उत्पन्न हूये होवे अपवित्र करे हूए, असें फूलोंसें जिनेश्वर देवकी पूजा न करणी. तथा विस्तार सहित पूजाके अवसरमें, तथा नित्य, अरु विशेष करकें पर्वदिनमें, सात तथा पांच कुसुमांजलि चढावे, पीछें जगवान्‌की पूजा करे, तहां यह विधि करे, सो कहते है.

प्रजात समय पहिलां निर्माल्य उतारे, पीछें प्रक्षाल करे, संक्षेपसें पूजा करे, आरति मंगल दीवा करे, पीछें स्नात्रादि विस्तार सहित दूसरी वार पूजाका प्रारंज करे, तब देवके आगें केसर जल संयुक्त कलश स्थापन करे, पीछें "मुक्तालंकार विकार सार सौम्यत्वकांतिकमनीयं ॥ सहजनिज रूपनिर्जित. जगत्त्रयं पातु जिनबिंबं ॥ १ ॥ " यह आर्या कह कर अलंकार उतारे, पीछें "अवणयि कुसुमाहरणं, पयइ पइछिय मनोहर छायं ॥ जिणरूवं मज्जणपीठं. संठियं वो सिवं दिसउ ॥२॥ यह कह कर निर्माल्य उतारे, पीछें प्रागुक्त कलश ढालन पूजा करे, कलश धो कर, धूप दे कर,

चरणोंके आगें रक्ख देनां, आरति धूंजा देनेमें दोष नहीं. आरति अरु मंगल दीवा मुख्यवृत्तिसें घृत, गुड, कर्पूरादिकसें करे, विशेष फल होनेसें. यहां मुक्तालंकार इत्यादि जो गाथा है, सो श्रीहरिज्रद्रसूरिजीकी करी हूइ मालुम होती है, क्योंकि श्रीहरिज्रद्रसूरिकृत समरादित्यचरित्र नामक ग्रंथकी आदिमें " जवणेज मंगलेवो ॥ इति नमस्कारस्य दर्शनात् " अरु यह गाथा तपगछमें प्रसिद्ध है. इस वास्ते सर्व गाथा इहां नही लिखी.

स्नात्रादिकमें समाचारि विशेषसें विविध प्रकारकी विधि देखनेसें व्यामोह न करणां, क्योंकि सर्व आचार्योंको अर्हद्भक्तिरूप फलकी सिद्धि वास्तेही प्रवृत्त होनेसें गणधरादि समाचारीयोमेंज्ञी बहुत ज्ञेद होता है, तिस वास्ते जो जो धर्मसें विरुद्ध न होवे, अरु अर्हंत ज्ञक्तिका पोषक होवे, वो कार्य किसीकोंज्ञी असम्मत नहीं, ऐसेंही सर्वधर्म कार्यमें जाण लेनां. यहां लवण, आरति प्रमुखका उतारणां, संप्रदायसें सर्व गछोंमें अरु परदर्शनोंमेंज्ञी करते हुवे दीखते हैं, तथा श्रीजिनप्रज्ञसूरिकृत पूजाविधिशास्त्रमें तो ऐसें लिखा है ॥गाथा॥ लवणाई उत्तारण, पालित्तय सूरिमाइ पुव्वपुरिसेहिं ॥ संहारेण अणुन्नयंपि, संपयं सिठी एकारिज्जाइ ॥ १ ॥ अस्यार्थः- लवणादि उतारणां श्रीपादलिप्तसूरि प्रमुख पूर्व पुरुषोनें एक वार करनेकी आज्ञा दीनी है, हम इसकालमें उनके अनुसारे कराते है. स्नात्रके करणेमें सर्व प्रकार विस्तार सहित पूजा प्रज्ञावनादिकके करणेसें परलोकमें उत्कृष्ट मोक्ष प्राप्तिरूप फल होता है. जैसें चौसठ इंद्रोने जिनजन्म स्नात्र करा है, तिसहीके अनुसारें मनुष्य करते हैं, इस वास्ते इस लोकमें पुण्य निर्जरा अरु परलोकमें मोक्ष फल होता है, यह कथन राजप्रश्नीय उपांगमें लिखा है ॥ इति स्नात्रविधिः समासः ॥

अब प्रतिमाज्ञी अनेक प्रकारकी है, तिनकी पूजाकी विधि सम्यक्त्व प्रकरणमें ऐसें कही है ॥गाथा॥ गुरु कारिआइ केइ, अन्नेसय कारिआइं तं विंति ॥ विहिकारिआइ अन्ने, पडिमाए पूअणविहाणं ॥१॥ व्याख्याः- गुरु कहियें माता, पिता, दादा, पडदादा प्रमुख तिनकी कराइ हूइ प्रतिमा पूजनी चाहियें. कोइ ऐसें कहते हैं, तथा कोइ कहते हैं कि अपणी कराइ प्रतिष्ठी हूइ पूजनी चाहियें, कोइ कहते हैंकि विधिसें कराइ प्रतिष्ठी प्रतिमा पूजनी चाहियें, इनमें यथार्थ पक्ष तो यह है, किः—ममत्व रहि

त सर्वप्रतिमाकों विशेष रहित पूजना चाहियें. क्योंकि सर्व जगे तीर्थकरका आकार देखनेंसें तीर्थकर बुद्धि उत्पन्न होती है, जे कर ऐसें न मानीयें, तब जिनबिंबकी अवज्ञासें दुरंत संसारमें भ्रमण रूप उसकों निश्चयही दंड होवेगा.

तथा ऐसाभी कुविकल्प न करणा किः—जो अविधिसें जिनमंदिर जिनप्रतिमा बनी है, उसके पूजनेसें अविधि मार्गकी अनुमोदनासें भगवंतकी आज्ञाभंग रूप दूषण लगता है, तथाही श्रीकल्पभाष्ये ॥गाथा॥ निस्सकड मनिस्सकडे, चेइए सव्वहिं थुइतिन्नि ॥ वेलं च चेईआणिय, नाउं इक्किकिया वावि ॥ १ ॥ व्याख्याः—एक निश्राकृत उसकों कहते हैं, किः—जो गछके प्रतिबंधसें बनी है, जैसाकि यह हमारे गछका मंदिर है, दूसरा अनिश्राकृत, सो जिस उपर किसी गछका प्रतिबंध नहीं है, इन सर्व जिनमंदिरोंमें तीन थुइ पढनी, जे कर सर्वमंदिरोंमें तीन तीन थुइ देता बहुत काल लगता जाणे, तथा जिनमंदिर बहुत होवें, तदा एक एक जिनमंदिरोंसें एक एक थुइ पढे,इस वास्ते सर्व जैनमंदिरोंमें विशेष रहित भक्ति करे.

तथा जिनमंदिरमें मकडीका जाला लग जावे, तिसके उतारनेकी विधि, जिनके सपूर्द जिनमंदिर होवे, तिनकों साधु निर्भ्रंठना करे, किः—जिनमंदिरकी नोकरी खाते हो, तो सार संभाल क्यों नही करते हो? मकडीका जालाभी तुम नहीं उतारते हो? तथा जिनकी कोइ सार संभाल न करे, तिनकों असंविग्न देवकुलिका कहते है, तिन मंदिरोंमें जो मकडीका जाला होवे, तिसके दूर करणे वास्ते सेवकोंकों प्रेरणा करे, कि तुम जिनमंदिरकों मंखफलककी तरें चमक दमक वाला रखो, जेकर वे सेवक लोक न माने, तब निर्भ्रंठना करे,पीछें साधु जयणासें आप दूर करे, क्योंकि जिनमंदिर ज्ञानभंडारादिककी सर्वथा साधुभी उपेक्षा न करे, यह पूर्वोक्त चैत्यगमन पूजा स्नात्रादि विधि जो कही है, सो सब धनवान् श्रावककी अपेक्षा कही है, अरु जो श्रावक धनवान् न होवे, वो अपणे घरमें सामायिक करकें किसीके साथ लेणे देणेका झगडा न होवे, तदूउपयोग संयुक्त साधुकी तरें ईर्या शोधता हूआ नैषेधिकी तीन करी भाव पूजानुयायि विधिसें जावे, पूजादि सामग्रीके अभावसें द्रव्यपूजा करणे असमर्थ है, इस वास्ते सामायिक पारकें कायासें जो कुछ फूलगुंथनादिक कृत होवे सो करे.

प्रश्नः–सामायिक त्यागकें द्रव्यपूजा करणी उचित नहीं ?

उत्तरः–सामायिक तो तिसके स्वाधीन है, चाहे जिस वखत करलेवे; परंतु पूजाका योग उसकों मिलना दुर्लज है, क्योंकि पूजाका मंडाण तो संघ समुदायके आधीन है, कदेइ होता है, इस वास्ते पूजामें विशेष पुण्य है ॥ यदागमः ॥ "जीवाण बोहि लाजो, सम्मदिट्ठीण होइ पियकरणं ॥ आणाजिणिंदजत्ति, तिठस्स पजावणा चेव ॥ १ ॥ इस वास्ते अनेक गुण हैं, तातें चैत्यकार्य करे, यह कथन दिनकृत्य सूत्रमें है, दश त्रिक, पांच अजिगम, इत्यादिविधि प्रधानही सर्वदेवपूजा वंदनकादि धर्मानुष्ठानका महा फल होता है, अन्यथा अल्प फल है, तथा अविधिसें करतां उपद्रवची हो जाता है ॥ उक्तं च ॥ धर्मानुष्ठानवैतथ्या, त्प्रत्यवायो महान् जवेत् ॥ रौद्र दुःखौघजननो, दुष्प्रयुक्तादिवौपधात् ॥ १ ॥ चैत्यवंदनादि अविधिसें करतां आगममें प्रायश्चित्त कह्या है, महानिशीथके सातमे अध्ययनमें अविधिसें चैत्यवंदना करे, तो प्रायश्चित्त कह्या है, देवता, विद्या मंत्रजी विधिसेंही सिद्ध होते हैं,

जो कोइ कहे कि विधि न होवे, तब न करणां श्रेष्ठ है ? यह कहनां अयुक्त है ॥ यदुक्तं ॥ अविहिकया वरमकयं, असूआ वयणं जणंति समयन्नू ॥ पायच्छित्तं अकए, गुरुअं वितहं कए लहुयं ॥ १ ॥ अस्यार्थः–अविधि करणेसें न करणां अच्छा है, ऐसें जो कहते है, सो असूया वचन है, यह कहने वाला जैन सिद्धांतकों जानता नहीं, क्योंकि जैनशास्त्रके ज्ञाता तो ऐसें कहते हैं, कि:–जो न करे उसको गुरु प्रायश्चित आता है, अरु जो अविधिसें करे, उसकों लघु प्रायश्चित्त आता है, इस वास्ते धर्म जरूर करनां चाहियें. अरु विधिमार्गकी अन्वेषणा करणी, यही तत्त्व है, यही श्रद्धावंतका लक्षण है, सर्व कृत्य करके अविधि आशातना निमित्त मिथ्यादुष्कृतं दातव्यं ॥

अंग अग्रादि तीनो पूजाके फल, शास्त्रमें ऐसें लिखे हैं, कि:–विघ्न उपशांत करणेवाली अंग पूजा है, तथा मोटा अन्युदय पुण्यकी साधनेवाली अग्रपूजा है, तथा मोक्षकी दाता जावपूजा है, पूजा करने वाला संसार प्रधान जोग जोगके पीछे सिद्धपद पाता है, क्योंकि पूजा करणेसें

मन शांत होता है, अरु मन शांतसें उत्तम शुभ ध्यान होता है, अरु शुभध्यानसें मोक्ष होता है, मोक्ष हूए अबाध सुख है.

तथा श्रीजिनराजकी भक्ति पांच प्रकारें है ॥श्लोक॥ पुष्पाद्यर्चा तदाज्ञा च, तद्द्रव्यपरिरक्षणं ॥ उत्सवात्तीर्थयात्रा च, भक्तिः पंचविधा जिने ॥ १ ॥ द्रव्यपूजा आभोग अरु अनाभोगसें दो प्रकारें है, तिसमें श्रीवीतराग देवके गुण जानकें वीतरागकी भावना करकें आदर संयुक्त जिनप्रतिमाकी जो पूजा, सो प्रथम आभोगद्रव्यपूजा है, इस्सें चारित्रका लाभ होता है, कर्मका नाश होता है, इस वास्ते बुद्धिमान् ऐसी पूजा अवश्य करे. तथा जो पूजाकी विधि जानता नही तथा श्रीजिनराजके गुणभी नही जानता सो दूसरी अनाभोग पूजा है. यह शुभपरिणाम पुण्यका कारण है, अरु बोधिलाभका हेतु है. पापक्षय करणेका कारण है, उस पुरुषका जन्म धन्य है, आगमे कालमें उसका कल्याण है, क्योंकि यद्यपि वो वीतरागके गुण नहींभी जानता, तोभी भक्ति प्रीतिका उल्लास उसके अंदर उठता है, अरु जिस पुरुषको अरिहंतबिंबमें द्वेष है, वो पुरुष भारीकर्मी तथा भवाभिनंदी है, जैसें रोगीको अपथ्यमें रुचि अरु पथ्यसें द्वेष होवे, तदा मरणका समय होता है, ऐसेंही जिनबिंबमें जिसको द्वेष है, तिसकाभी दीर्घ संसार जाननां.

इहां सर्व जो भावपूजा है, सो श्रीजिनाज्ञाका पालनां है, सो जिनाज्ञा दो प्रकारकी है, एक अंगीकार कारणां, एक त्यागनां, तहां सुकृतका अंगीकार करणां, अरु निषेधका त्याग करनां, परंतु स्वीकार पक्षसें परिहार पक्ष बहुत श्रेष्ठ है, क्योंकि जो निषिद्ध आचरण करता है, उसका सुकृतभी बहुत गुणदायक नहीं होता है, जेकर दोनो बातां होवे, तदा पूर्ण फल है, द्रव्यपूजाका फल अच्युत देवलोक है, अरु भाव पूजाका फल अंतर्मुहूर्त्तमें मोक्ष है.

द्रव्यपूजामें यद्यपि षट्कायकी किंचित् विराधना होती है, तोभी कूवेके दृष्टांत करकें गृहस्थको करणे योग्य है, क्योंकि करनेवाले अरु देखनेवालोंको गिणती रहित पुण्यबंधनेका कारण होनेसें करने योग्य है, जैसें नवे गाममें स्नान पानादिके वास्ते लोक कूवा खोदते है. तिनको प्यास, श्रम, अरु कीचनसें मलिनादि होते है, परंतु कूवेके जल निकलनेसें तिनकी तथा

ओरोंकी तृषादि, पुराणा मेल, सर्व अगला पिछला दूर हो जाता है, अरु सर्वांगीण सुख हो जाता है, ऐसेंही द्रव्य पूजामें जान लेनां, यह कथन आवश्यक निर्युक्तिमें है, तथा और जगेभी लिखा है ॥गाथा॥ आरंभ पसत्ताणं, गिहीणछ जीव वह अविरयाणं ॥ जवअमवि निवडियाणं, दव्वछ्उं चेव आलंबो ॥ १ ॥ श्लोक ॥ वृत्तं शार्दूलविक्रीडितं ॥ स्थेयो वायुबलेन निर्वृतिकरं निर्वाणनिर्घातिना, स्वायत्तं बहुनायकेन सुबहुस्वल्पेन सारं परं ॥ निःसारेण धनेन पुण्यममलं कृत्वा जिनाभ्यर्चनं,यो गृह्णाति वणिक् स एव निपुणो वाणिज्यकर्मण्यलम् ॥ १ ॥ यास्याम्यायतनं जिनस्य लभते, ध्यायंश्चतुर्थं फलं, षष्ठं चोत्थितउद्यतोऽष्टममथो गंतुं प्रवृत्तोऽध्वनि ॥ श्रद्धालुर्दशमं बहिर्जिनगृहात्प्राप्तस्ततो द्वादशं, मध्ये पाक्षिकमीक्षिते जिनपतौ मासोपवासफलम् ॥२॥ पद्मचरित्रमें तो ऐसें लिखा है, कि १ जब जिनमंदिरमें जानेका मन करे, तब एक उपवासका फल होता है, २ यदि उठे तो बेलाका फल होता है, ३ चल पडेनेका उद्यमीकों तेलेका फल होता है, ४ चल पडे, इनकूं चोलेका फल, ५ किंचित् गयेकूं पंचोलेका फल, ६ अर्द्ध मार्गमें गये एक पक्षके उपवासका फल होता है, ७ जिनराजके देखेसें एक मासके तपका फल होता है, ८ जिनभुवनमें संप्राप्त हूए छमासी तपका फल होता है, ९ जिनमंदिरके दरवाजे पर स्थित हूयां एक वर्षके तपका फल होता है, १० जिनराजकों प्रदक्षिणा दीयां सो वर्षके तपका फल होता है, ११ पूजा करे हजार वर्षके तपका फल होता है, १२ स्तुति करे, अनंतगुणा फल होता है, १३ जिनमंदिर पुंजे, सो गुणा पुण्य होता है, १४ लींपे तो हजार गुणा पुण्य होता है, १५ फूलमाला चढावे, लाख गुणा पुण्य होता है, १६ गीत वाजित्र पूजा करे, अनंतगुणा पुण्य होता है.

पूजा दिनप्रत्यें तीन संध्यामें करणी चाहियें ॥ यतः ॥ जिनस्य पूजनं हंति, प्रातः पापं निशाभवं ॥ आजन्मविहितं मध्ये, सप्तजन्मकृतं निशि॥१॥ जलाहारौषधस्वाप, विद्योत्सर्गकृषिक्रियाः ॥ सत्फलाः स्वस्वकालेस्यु, रेवं पूजा जिनेश्वरे ॥ २ ॥ गाथा ॥ जिण पूयाण तिसंजं, कुणमाणो सोहएय सम्मत्तं ॥ तिथ्यरनाम गोत्तं,पावइ सेणीअ नरिंदुव्व ॥१॥ जो पूएइ तिसंजं, जिणंदरायं सया विगयदोसं ॥ सो तइय भवे सिज्झइ, अहवा सत्तठमे ज

म्मे ॥ २ ॥ सवायरेण नयवं, पूईज्जंतोवि देवनाहेहिं ॥ नो होइ पूइउं खलु, जह्माणं त गुणो नयवं ॥ ३ ॥ यह गाथा सुगम हैं.

तथा देव पूजादिकमें हृदयमें बहुमान अछी विधिसें नक्ति करे, तथा जिनमतमें चार प्रकारका अनुष्ठान कहा है, एक प्रीतिसहित, दूसरा नक्ति सहित, तीसरा वचन प्रधान, अरु चौथा असंग अनुष्ठान, तिनमें जिसके प्रीतिका रस वढे, अरु रुजु नद्रक स्वनाव वाला होवे, जैसें वालकोंकों रतनमें देखकें प्रीति होती है, ऐसी जिसकों प्रीति होवे, सो प्रीति अनुष्ठान है, तथा वहुमान संयुक्त शुद्ध विवेकवाला होवे, अरु वाकी शेष पहिले अनुष्ठानकी तरे करें, सो नक्ति अनुष्ठान है, यद्यपि स्त्रीका अरु माताका पालणां, पोषणां, सरीखा है, तोनी स्त्री उपर प्रीति राग हैं, अरु माता उपर नक्तिराग है, यह प्रीति अरु नक्तिका स्वरूप कह्या, तथा जो जिनगुणका जानकार, सूत्रोक्तविधि करकें जिनप्रतिमाकों वंदना करे, सो वचनानुष्ठान है; यह अनुष्ठान चारित्रवंतकों निश्चय करकें होता है, तथा जो अन्यासके रससें सूत्रालोचना विनाही फलमें निस्पृह हो कर करे, सो असंगानुष्ठान है. जैसें कुंनार चक्रकों पहिलां तो दंमसें फिराता ह, पीछेसें दंम दूर करे, तोनी चाक फिरता है, यह दृष्टांत वचनानुष्ठान अरु असंगानुष्ठानमें है.

इन चारोंमें प्रथम तो नावनाके लेशसें प्रायः वालक प्रमुखोंकों होता है; आगें अधिक अधिक जान लेनां. यह चारों प्रकारका अनुष्ठान वहुमान विधिसंयुक्त करे, तो रूपइयानी खरा अरु खरे सन समान, प्रथम नेद है. दूसरा जो पुरुष, नक्तिराग वहुमान संयुक्त होवे, अरु विधि जानता न होवे, तिसका कृत्य एकांत दुष्ट नहीं, अशठ पुरुषका अनुष्ठान अतिचार सहितनी शुद्धिका कारण है; क्योंकि जो रतन अंदरसें निर्मल है. उसका वाह्यमल सुखें दूर हो सकता है, यह रूपइया खरा अरु सिक्का खोटा समान, दूसरा नेद है, तथा जो पुरुष, कपट जूठादि दोष संयुक्त है, अरु अपणी महिमा पूजाके वास्ते तथा लोकोंके ठगने वास्ते विधिपूर्वक सर्वानुष्ठान करता है, उसकों वमा अनर्थ फल होता है; यह रुपइया खोटा, अरु सन खरा समान, तीसरा नेद जाननां. तथा अज्ञानी मिथ्यादृष्टि जीवका जो कृत्य है, सो तो रुपइयानी खोटा, अरु सननी खोटा समान, चौ

याजेद हे. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु विधिपूर्व करे, उसकों संपूर्ण फल होता हे.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गि कर बिगम गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारक निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोजा करणां, तथ आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि ि ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, ऐसे रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यक उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अछी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यक लाज अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवद्र देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नोकरक जेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तेसें करे, उघराणी वास्त नौकर रक्खे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी हे, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथ स्वजनके बलसें, चिंता सुकर हे. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसें साध्य हे, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष ते सा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सहीसें पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. ऐसेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादि ककीजी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिकक सार संजाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रा वककों देवादि जक्ति सार संजालमें शिथिल न होनां चाहियें, देव गुरु प्रमुखकी जक्ति, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी स म्यक्त्व कलंकित हो जाती हे. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त हे, उ स्सें कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहिं, इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये कुंटुबे च,सर्व संसारिणां रतिः॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाजिलाषिणां॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो हे, सो जघन्यादि जेद करकें तीन प्रकारें हे, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते हे. पुस्तक, पट्टी, टीप णी, जपमालादिककों मुखकों थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान विना सूत्र पढनां. भ्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणके उपर बेठनादि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र भाषणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, वरास, केसर प्रमुखके डब्बेकों वजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूंकका लगानां, प्रतिमाकों भंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे. २ पाणी पीवे, ३ भोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें भोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते हैं. १ मूतना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ थूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ झगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विभूषा करे, २० शिर पर छत्र लगानां, २१ खड्ग रक्खे, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने. २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

याभेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों वर्द्धमान अरु विधिपूर्व करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गिर कर विगम गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारकों निर्मल करणां, विशिष्ट पुजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोभा करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि चिंता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, ऐसी रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकी उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अछी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यकी खाते अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवद्रव्य देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नोकरको भेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तैसें करे, उघराणी वाले नोकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संभाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा स्वजनके बलसें, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसें साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष ऐसा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सहीसें पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. ऐसेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादिककीभी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संभाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रावककों देवादि भक्ति सार संभालमें शिथिल न होनां चाहियें. देव गुरु प्रमुखकी भक्ति, सेवा, सार संभाल, जेकर श्रावक न करे, तो उनकी सम्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका भक्त है, इसीसें कदाचित् कोइ आशातनाभी हो जावे, तो भी अत्यंत दुःखदायी नहीं, इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये कुटुंबे च,सर्व संसारिणां रतिः॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाभिलाषिणां॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि भेद करके तीन प्रकारे है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, टीपी, जपमालादिककों मुखकों थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान विना सूत्र पढनां. भ्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बेठनादि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र भाषणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, बरास, केसर प्रमुखके डब्बेकों बजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूंकका लगानां, प्रतिमाकों भंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चोरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ भोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें भोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते हैं. १ मूतना. २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ थूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बेठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ झगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ ऊंचे आसने बेठे. १९ केश शरीरकी विभूषा करे, २० शिर पर छत्र लगानां, २१ खड्ग रक्खे, २२ मुकुट धरनां. २३ चामर कराने. २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

याजेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु विधिपूर्व करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गिर कर विगरू गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारकों निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोजा करणां, तथा आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि चिंता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, ऐसी रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकी उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अछी जगे स्थापन करे, देवद्र... लाज अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवद्रव्य देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नौ... जेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तैसें करे, उघराणी वास्ते नौकर रक्खे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा स्वजनके बलसें, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसें साध्य है, जिसका जहां जेसा बल होवे, वो विशेष तैसा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सही... पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. ऐसेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादिककीजी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संजाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रावककों देवादि जक्ति सार संजालमें शिथिल न होनां चाहियें, देव गुरु प्रमुखकी जक्ति, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी सम्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका भक्त है, ... स्सें कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहि इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये कुंटुबे च, सर्व संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाजिलाषिणां ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करकें तीन प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, टीपणी, जपमालादिककों मुखकों थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान विना सूत्र पढनां. भ्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बेठनादि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र भाषणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, बरास, केसर प्रमुखके डब्बेकों बजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूंकका लगानां, प्रतिमाकों भंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ भोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें भोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते हैं. १ मूतना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ थूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ झगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ ऊंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विभूषा करे, २० शिर पर छत्र लगानां, २१ खड्ग रक्खे, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने. २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

थाजेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु ...
करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गि
कर बिगड गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके ...
निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोजा करणां,
आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि
ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, अ
रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्यकी
उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अच्छी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यकी
लाज अरु खरचका नाम प्रगट पत्रे लिखे, आप तथा औरोंसें देवद्रव्य
देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नोकरों
जेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तैसें करे, उघराणी वास्ते
नौकर रक्खे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा
स्वजनके बलसें, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा
स्वजनके बलसें साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष
सा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सही
पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. ऐसेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादि
ककीजी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदि
सार संजाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते
चककों देवादि जक्ति सार संजालमें शिथिल न होनां चाहियें, दे
प्रमुखकी जक्ति, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी स
म्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त है, ...
रसें कदाचित् कोइ आशातनानी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहीं,
इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये
कुटुंबे च,सर्व संसारिणां रतिः॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाभिलाषिणां॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करके ती
प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते हैं. पुस्तक, पट्टी, टी
पी, जपमालादिककों मुखकों थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

च्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान विना सूत्र पढनां. भ्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर वैठनादि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र नापणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, वरास, केसर प्रमुखके डब्बेकों बजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूंकका लगानां, प्रतिमाकों भंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे. २ पाणी पीवे, ३ भोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें भोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते हैं. १ मूतना. २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ थूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ झगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विभूषा करे, २० शिर पर छत्र धरानां, २१ खड्ग रक्खे, २२ मुकुट धरनां. २३ चामर कराने. २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

थाभेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु ...
करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गि
कर विगड गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके प...
निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोजा करणां,
आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि
ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे,
रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने ...
उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अछी जगे स्थापन करे, देवद्र...
लाज अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें ...
देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नौकरसें
नेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तैसें करे, उघराणी वाले
नौकर रक्खे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा
स्वजनके बलसें, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा
स्वजनके बलसें साध्य है, जिसका जहां जैसा बल होवे, वो विशेष तै
सा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सही
पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. ऐसेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादि
ककीजी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिकी
सार संजाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रा
वककों देवादि नक्ति सार संजालमें शिथिल न होनां चाहियें, देव गु
प्रमुखकी नक्ति, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी स
म्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका भक्त है, त
स्सें कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहीं
इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये
कुटुंबे च, सर्व संसारिणां रतिः ॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाभिलाषिणां ॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि नेद करके तीन
प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, टीप
णी, जपमालादिककों मुखकों थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान विना सूत्र पडनां. भ्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणके उपर बैठनादि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र नाषणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, वरास, केसर प्रमुखके डब्बेकों बजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूंकका लगानां, प्रतिमाकों नंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है. अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ नोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें नोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते हैं. १ मूतना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ थूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ खे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ झगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ उंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विनूषा करे, २० शिर पर छत्र लगानां, २१ खड्ग रक्खे, २२ मुकुट धरनां. २३ चामर कराने. २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

नेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु ... करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदिर गि कर विगरू गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके परिवारकों निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोजा करणां, आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवेद्यादि ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे, रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने दे उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अच्छी जगे स्थापन करे, देवद्र लाज अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नोकरज नेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तैसें करे, उघराणी नौकर रक्खे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, तथा स्वजनके बलसें, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर तथा स्वजनके बलसें साध्य है, जिसका जहां जेसा बल होवे, वो विशेष तै सा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निस्सही पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. ऐसेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादि ककीजी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिककी सार संजाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रा वककों देवादि जक्ति सार संजालमें शिथिल न होनां चाहियें, देव गु प्रमुखकी जक्ति, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी स म्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त है, उ स्सें कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहिं इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अवोचाम च ॥ देहे द्रव्ये कुंडुवे च,सर्व संसारिणां रतिः॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाजिलाषिणां॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि नेद करकें तीन प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, टीप्पी, जपमालादिककों मुखकों थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्षर

उच्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो वात निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि, उपधान विना सूत्र पढनां. भ्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पुस्तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकरणके पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बेठनादि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र भाषणादि करे, सो उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, वरास, केसर प्रमुखके डब्बेकों बजावे, श्वास तथा वस्त्रके ठेहडे करकें देवका स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूंकका लगानां, प्रतिमाकों भंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें १ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ भोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५ स्त्रीसें भोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले. जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते हैं. १ मूतना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां, ७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ थूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ देखे, १२ विकथा करे, १३ पालठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे, १५ झगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ ऊंचे आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विभूषा करे, २० शिर पर छत्र लगानां, २१ खड्ग रखे, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने, २४ स्त्रीसें कामविलास सहित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

जेद है. इस वास्ते जो देवपूजादिक करणकों बहुमान अरु वि..
करे, उसकों संपूर्ण फल होता है.

तथा उचित चिंता सो मंदिरप्रमार्जन करनां जिस जगेंसें मंदि..
कर बिगड़ गया होवे, उसका समरानां, प्रतिमा प्रतिमाके ..
निर्मल करणां, विशिष्ट पूजा दीपोत्सव फूल प्रमुखकी शोजा करणां,..
आगें लिखेंगे जो आशातना सो सर्व वर्जनां, तथा अक्षत नैवे..
ता, चंदन, केशर, धूप, दीप, तेलका संग्रह करे, विनाश न होवे,
रीतिसें चैत्यद्रव्यकी रक्षा करे, तीन चारादि श्रावकके सामने देवद्रव्य
उघराणी करे, देवद्रव्यकों बहुत यत्नसें अच्छी जगे स्थापन करे, देवद्रव्यं
लाज अरु खरचका नाम प्रगट पणे लिखे, आप तथा औरोंसें देवद्रव्य
देवे, देवावे, देव द्रव्य किसी पासों लेहणां होवे, तहां देवके नोकर
नेज कर जिसी रीतिसें देवद्रव्य जाय नहीं. तेसें करे, उघराणी वाले
नोकर रखे, इसी तरें द्रव्यकी चिंता सार संजाल करे.

देहरा प्रमुखकी चिंता अनेक तरेंकी है, तिनमें धनाढ्यकों धनसें, ..
स्वजनके यत्नसें, चिंता सुकर है. अरु धन रहितकों अपणे शरीर ..
स्वजनके यत्नसें साध्य है, जिसका जहां जेसा बल होवे, वो विशेष
सा यत्न करे, जो चिंता थोडे कालमें हो सके तिसकों दूसरी निसहि
पहिलां करे, शेषकों यथायोग्य पीछें करे. असेंही धर्मशाला, गुरुज्ञानादि
कवीनी यथोचित सर्व शक्तिसें चिंता करे, क्योंकि देव गुरु आदिका
सार संजाल श्रावक विना और कोइ करनें वाला नहीं, इस वास्ते श्रा
वककों देवादि नक्ति सार संजालमें शिथिल न होनां चाहियें, देव गुरु
प्रमुखकी नक्ति, सेवा, सार संजाल, जेकर श्रावक न करे, तो उसकी स
म्यक्त्व कलंकित हो जाती है. अरु जो श्रावक देव गुरुका जक्त है, ..
रसें कदाचित् कोइ आशातनाजी हो जावे, तो जी अत्यंत दुःखदायी नहीं
इस वास्ते चैत्यादि कृत्यमें नित्य प्रवृत्त होवे ॥ अयोचाम च ॥ देहे द्रव्ये
कुटुंबे च,सर्व संसारिणां रतिः॥ जिने जिनमते संघे, पुनर्मोक्षाभिलाषिणां॥

देव गुरु प्रमुखकी आशातना जो है, सो जघन्यादि जेद करके तीन
प्रकारें है, तहां प्रथम ज्ञानकी आशातना कहते है. पुस्तक, पट्टी, ..
ली, जपमालादिककों मुखकों थूंक लेशमात्र लग जावे, हीनाधिक अक्ष

च्चारे, ज्ञानोपकरण पाटी, पोथी, नवकरवाली प्रमुख पास हूए, अधो
त निःसर्गादि होवे, सो जघन्याशातना है. तथा अकालमें पठनादि,
पधान विना सूत्र पठनां. भ्रांति करकें अर्थ अन्यथा कल्पना करणां, पु
तकादिककों प्रमादसें पगादिकका स्पर्श करणां, भूमिमें गेरनां, ज्ञानोपकर
के पास हूए आहार मूत्रादि करनां, सो मध्यम आशातना है. तथा
थूंक करकें अक्षर मांजे, पाटी, पोथी प्रमुख ज्ञानोपकरणकें उपर बैठना
दि करे, ज्ञानोपकरण पासें हूए उच्चारादिक करे, तथा ज्ञानकी ज्ञानीकी
निंदा प्रत्यनीकपणा उपघात करे, उत्सूत्र भाषणादि करे, सो
उत्कृष्ट आशातना है.

अब देवकी आशातना कहते हैं. तहां जघन्य देवाशातना सो वास, व
रास, केसर प्रमुखके डब्बेको बजावे, श्वास तथा वस्त्रके छेहडे करकें देवका
स्पर्श करणां, सो जघन्य आशातना है, तथा पवित्र वस्त्र, धोती प्रमुख
करे विना पूजा करे, पूजाके वस्त्र भूमिमें गेरे, इत्यादि मध्यम आशातना
है, तथा प्रतिमाकों पगसें संघट्टना, श्लेष्म अरु थूंकका लगानां, प्रतिमा
कों भंग करणां. जिनेश्वर देवकी हेलनादि करणां, सो उत्कृष्ट आशातना
है, अब देवकी जघन्य दश आशातना, अरु मध्यम चालीश आशातना
तथा उत्कृष्टी चौरासी आशातना है, सो क्रम करकें कहते हैं.

प्रथम जघन्य दश आशातना न करणी, सो लिखते हैं. जिनमंदिरमें
१ पान सोपारी खावे, २ पाणी पीवे, ३ भोजन करे, ४ पगरखा पहिरे, ५
स्त्रीसें भोग करे, ६ सोवे, ७ थूंके, ८ मूत्रे, ९ उच्चार करे, १० जूआ खेले.
जघन्यसें यह दश जिनमंदिरमें वर्जे, तो आशातना न होवे.

दूसरी मध्यम चालीश आशातना वर्जे, तिसका नाम कहते हैं. १ मूत
ना, २ दिशा जानां, ३ जूता पहरनां, ४ पानी पीनां, ५ खानां, ६ सोनां,
७ मैथुन सेवनां, ८ तंबोल खानां, ९ थूंकनां, १० जूआखेलनां, ११ जूआ
देखे, १२ विकथा करे, १३ पाखठी करी बैठे, १४ पग जूजूआ पसारे,
१५ झगडा करे, १६ हांसी करे, १७ किसी उपर ईर्ष्या करे, १८ ऊंचे
आसने बैठे. १९ केश शरीरकी विभूषा करे, २० शिर पर छत्र लगानां, २१
खड्ग रखे, २२ मुकुट धरनां, २३ चामर कराने. २४ स्त्रीसें कामविलास स
हित हांसी करणी, २५ धरणां लगानां, २६ क्रीडा (खेल) करणां, २७

मुखकोश विना पूजा करणी, २८ मैले शरीरसें मैले वस्त्रोंसें पूजा करे, २९ पूजा करतां मन चपल करणां, ३० शरीरके जोगके सचित्त ... विना उतारे मंदिरमें जानां, ३१ अचित्तद्रव्य आभूषणादि उतारके ... ३२ एकसाडीका उत्तरासंग न करे, ३३ जगवान्कों देखके हाथ न जोडे, ३४ शक्तिके हूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६ ... प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नहीं, ३८ मंदिरके द्रव्यकी सार संजाल न करे, ३९ शक्तिके हूयेजी असवारी उपर ... के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमें वमासें पहिलां चैत्यवंदन करे, जिनेंद्रजवनमें तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें आशातना टाले.

अथ उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते है. १ जिनमंदिरमें खेल खंखार गेरे, २ जूए आदिककी क्रीडा करे, ३ कलह करे, ४ धनुष्यादि कला शिखे, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे, ७ तंबोलका उगाल गेरे, ८ गाली देवे, ९ दिसा मात्रा करे, १० हस्तादि अंग धोवे, ११ केश समारे, १२ नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५ फोडे आदिककी त्वचा गेरे, १६ औषधि खाके पित्त गेरे, १७ वमन करे, १८ दांत गेरे, १९ हाथ पग मसलावे, २० घोडादि बांधे, २१ दांतका मैल गेरे, २२ आंखका मैल गेरे, २३ नखका मैल गेरे, २४ गालका मैल गेरे, २५ नाकका मैल गेरे, २६ माथाका मैल गेरे, २७ शरीरका मैल गेरे, २८ कानका मैल गेरे, २९ जूतादिके खीलने वास्ते मंत्र सावे, अथवा राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाहादिकी पंचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम बांटे देवे, अथवा जाइ प्रमुखकों धनका हिस्सा बांटके देवे, ३३ घरका भंडार मंदिरमें रक्खे, ३४ पगोपरि पग रखके कुछासन करके बैठे, ३५ मंदिरकी जीतसें छाणा लगावे, गोबरका ढेर लगावे, ३६ वस्त्र सुकावे, ३७ दाले, ३८ पापडवेली सुकावे, ३९ वडां बनावे, उपलक्षणसें कयर, चीभडे शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, जाइ, लहणे वालेके जयसें नाठके भूमिगंजारेमें लुक जावे, ४१ पुत्रकलत्रादिके मरणेसें मंदिरमें रोवे, ४२ स्त्रीकथा, जक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४३ बाण इक्षुका गन्ना घडे, तथा धनुष्यादि शस्त्र घडे, ४४ गाय बैलादि मंदिर

रक्खे, ४५ शीत दूर करणेकों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये परखे, ४८ विधिसें नैपेधिकी न करे, ४९ छत्र, ५० पगरखी, ५१ शस्त्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके वाहिर न छोडे, ५३ मन एकाग्र न करे, ५४ तैलादिकका मर्द्दन करे, ५५ शरीरके जोगके सचित्त फूलादिकका त्याग न करे, ५६ हार, मुद्रा, कुंमलादि, तिनकों वाहिर छोड आवे, तो आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें ऐसा कहनां हो जावे, कि अर्हतके नक्त सर्व कंगाल निक्षाचर हैं, ऐसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ नग वान्‌कों देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासंग न करे, ५९ मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मौलि शिरका लपेटनां रक्खे, ६१ फूलका सेहरा रक्खे, ६२ नालियर आदिकका छोत गेरे, ६३ गेंदसें खेले, ६४ पिता प्रमुखको जुहार करे, ६५ नांम चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेकारा तुंकारा देवे, ६७ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६८ संग्राम करे, ६९ मस्तकके केश सुकावे, ७० पालठी मारी वैठे, ७१ काष्ठ पाडुकादि पगमें रक्खे, ७२ पग पसारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुमी देवावे, ७४ देहरेमें शरीरका अवयव धोकें कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लगी हूइ धूल जाडे, ७६ मैथुन, (कामक्रीमा) करे, ७७ जूंआं गेरे, ७८ नोजन जीमे, ७९ गुह्य चिन्ह ढकके न वैठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय रूप वाणिज्य करे, ८२ शय्या वनाकें सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जलका मटका रक्खे, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी लेवे, ८४ स्नान करनेकी जगा वनावे, यह उत्कृष्ट चौरासी आशातना जिनमंदिरमें वर्जे.

अव गुरुकी तेत्तीस आशातना वर्जे, सो लिखते हैं. १ गुरुके आगें चले, तो आशातना है. जेकर रस्ता वतावनेके वास्ते चले, तो आशातना नहीं होती है, २ गुरुके वरावर चले, ३ गुरुके पीछें अमके चले, यह जैसें चलनेकी तीन आशातना कही हैं, ऐसेंही वैठनेकीनी तीन आशातना जान लेनी, तथा खडा होनेकीनी तीन आशातना जान लेनी, यह सर्व नव आशातना हूइ. १० नोजन करतां गुरुसें पहिलां शिष्य चलु करे, ११ गमनागमन गुरुसें पहिलां आलोचे, १२ रात्रमें कौन जागता है, ऐसें गुरुके कहेकों सुन कर जागता हूआनी शिष्य उत्तर न देवे, तो आशातना लगे, १३ जव किसीकों कुछ कहनां होवे, सो गुरुसें

मुखकोश विना पूजा करणी; २८ मैले शरीरसें मैले वस्त्रोंसें, २९ पूजा करतां मन चपल करणां, ३० शरीरके जोगके सचित्त विना उतारे मंदिरमें जानां, ३१ अचित्तद्रव्य आभूषणादि उतारके ३२ एकसाडीका उत्तरासंग न करे, ३३ भगवान्कों देखके हाथ न ३४ शक्तिके हूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६ प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नहीं, मंदिरके द्रव्यकी सार संभाल न करे, ३९ शक्तिके हूयेभी असवारी के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमें वमासें पहिलां चैत्यवंदन करे, जिन- तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें ...तना...

अब उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते है. १ जिनमं... खेल खंखार गेरे, २ जूए आदिककी क्रीडा करे, ३ कलह करे, ४ ... कला शिखे, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे, ७ तंबोलका उगाल ८ गाली देवे, ९ दिसा मात्रा करे, १० हस्तादि अंग धोवे, ११ केश १२ नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५ डे आदिककी त्वचा गेरे, १६ औषधि खाके पित्त गेरे, १७ वमन करे, दांत गेरे, १९ हाथ पग मसलावे, २० घोडादि बांधे, २१ दांतका गेरे, २२ आंखका मैल गेरे, २३ नखका मैल गेरे, २४ गालका मैल २५ नाकका मैल गेरे, २६ माथाका मैल गेरे, २७ शरीरका मैल २८ कानका मैल गेरे, २९ भूतादिके खीलने वास्ते मंत्र साधे, राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाहा की पंचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम देवे, अथवा भाइ प्रमुखकों धनका हिस्सा बांटके देवे, ३३ घरका मंदिरमें रक्खे, ३४ पगोपरि पग रखकें दुष्टासन करकें बैठे, ३५ मंदिर भीतसें गाणा लगावे, गोबरका ढेर लगावे, ३६ वस्त्र सुकावे, ३७ दले, ३८ पापडवेली सुकावे, ३९ वडां बनावे, उपलक्षणसें कयर, चीभड शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, भाइ, लहणे वालेके भयसें मंदिरके मूलगंभारेमें लुक जावे, ४१ पुत्रकलत्रादिके मरणेसें मंदिरमें रोवे, ४२ स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४३ ... इक्षुका गन्ना घडे, तथा धनुष्यादि शस्त्र घडे, ४४ गाय बैलादि मंदिर

रखे, ४५ शीत दूर करणेकों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये रखे, ४८ विधिसें नैषेधिकी न करे, ४९ छत्र, ५० पगरखी, ५१ शस्त्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके बाहिर न छोडे, ५३ मन एकाग्र न करे, ५४ तैलादिकका मर्दन करे, ५५ शरीरके भोगके सचित्त फूलादिकका त्याग न करे, ५६ हार, मुद्रा, कुंमलादि, तिनकों बाहिर छोड आवे, तो आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें ऐसा कहनां हो जावे, कि अर्हंतके भक्त सर्वे कंगाल भिक्षाचर हैं, ऐसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ भगवानकों देखके हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासंग न करे, ५९ मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मौलि शिरका लपेटनां रखे, ६१ फूलका सेहरा रखे, ६२ नालियर आदिकका होत गेरे, ६३ गेंदसें खेले, ६४ पिता प्रमुखको जुहार करे, ६५ भांड चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेकारा तुंकारा देवे, ६७ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६८ संग्राम करे, ६९ मस्तकके केश सुकावे, ७० पालठी मारी बैठे, ७१ काष्ट पाडुकादि पगमें रखे, ७२ पग पसारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुडी देवावे, ७४ देहरेमें शरीरका अवयव धोके कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लगी हूइ धूल झाडे, ७६ मैथुन, (कामक्रीडा) करे, ७७ जूंआं गेरे, ७८ भोजन जीमे, ७९ गुह्य चिन्ह ढकके न बैठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय रूप वाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाके सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जलका मटका रखे, तथा मंदिरके परनालेका पाणी लेवे, ८४ स्नान करनेकी जगा बनावे, यह उत्कृष्ट चौरासी आशातना जिनमंदिरमें वर्जे.

अथ गुरुकी तेत्तीस आशातना वर्जे, सो लिखते हैं. १ गुरुके आगें चले, तो आशातना है. जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशातना नहीं होती है. २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीछे अकडके चले, यह जैसें चलनेकी तीन आशातना कही हैं, ऐसेंही बैठनेकीभी तीन आशातना जान लेनी, तथा खडा होनेकीभी तीन आशातना जान लेनी, यह सर्व नव आशातना हूइ. १० भोजन करतां गुरुसें पहिलां शिष्य चलु करे, ११ गमनागमन गुरुसें पहिलां आलोवे, १२ रात्रमें कौन जागता है, ऐसें गुरुके कहेकों सुन कर जागता हूआभी शिष्य उत्तर न देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीकों कुछ कहनां होवे, सो गुरुसें

मुखकोश विना पूजा करणी, २८ मैले शरीरसें मैले वस्त्रोंसें पूजा
२९ पूजा करतां मन चपल करणां, ३० शरीरके भोगके सचित्त
विना उतारे मंदिरमें जानां, ३१ अचित्तद्रव्य आभूषणादि उतारके
३२ एकसाडीका उत्तरासंग न करे, ३३ भगवान्कों देखके हाथ न
३४ शक्तिके हूये पूजा न करे, ३५ अनिष्ट फूलोंसें पूजा करे, ३६
प्रमुख आदर रहित करे, ३७ जिनप्रतिमाके निंदककों हटावे नहीं,
मंदिरके द्रव्यकी सार संभाल न करे, ३९ शक्तिके हूयेभी असवारी ऊपर
के मंदिरमें जावे, ४० देहरेमें क्रमसें पहिलां चैत्यवंदन करे,
तथा जहां प्रतिमा होवे, तिहां यह चालीश मध्यमसें ...

अब उत्कृष्ट चौरासी आशातनाका नाम कहते हैं. १ जिनमं...
खेल खंखार गेरे, २ जूए आदिककी क्रीडा करे, ३ कलह करे, ४ ...
कला शिखे, ५ कुरला करे, ६ तंबोल खावे, ७ तंबोलका उगाल
८ गाली देवे, ९ दिसा मात्रा करे, १० हस्तादि अंग धोवे, ११ केश
१२ नख समारे, १३ रुधिर गेरे, १४ सुखडी प्रमुख देहरेमें खावे, १५
डे आदिककी त्वचा गेरे, १६ औषधि खाके पित्त गेरे, १७ वमन करे,
दांत गेरे, १९ हाथ पग मसलावे, २० घोडादि बांधे, २१ दांतका
गेरे, २२ आंखका मैल गेरे, २३ नखका मैल गेरे, २४ गालका मैल
२५ नाकका मैल गेरे, २६ माथाका मैल गेरे, २७ शरीरका मैल
२८ कानका मैल गेरे, २९ भूतादिके खीलने वास्ते मंत्र साधे,
राजा प्रमुखका काम होवे, तिसका विचार करे, ३० मंदिरमें विवाहादि
की पंचायत करे, ३१ व्यापारका लेखा करे, ३२ राजका काम
देवे, अथवा भाइ प्रमुखकों धनका हिस्सा बांटके देवे, ३३ घरका
मंदिरमें रक्खे, ३४ पगोपरि पग रक्खेकें डुष्टासन करकें बैठे, ३५ मं...
भीतसें थापा लगावे, गोवरका ढेर लगावे, ३६ वस्त्र सुकावे, ३७ दा...
दले, ३८ पापडवेली सुकावे, ३९ वडां बनावे, उपलक्षणसें कयर, चीभड
शाक प्रमुख सुकाने वास्ते गेरे, ४० राजा, भाइ, लहणे वालेके भयसें नासे
मूलगंभारेमें लुक जावे, ४१ पुत्रकलत्रादिके मरणेंसें मंदिरमें रोवे, ४
स्त्रीकथा, भक्तकथा, राजकथा, देशकथा, यह चार विकथा करे, ४३ दा
इक्षुका गन्ना घरे, तथा धनुष्यादि शस्त्र घरे, ४४ गाय बैलादि मंदिर

रक्खे, ४५ शीत दूर करणेकों अग्नि तापे, ४६ धान्यादि रांधे, ४७ रूपइये परखे, ४८ विधिसें नैषेधिकी न करे, ४९ छत्र, ५० पगरखी, ५१ शस्त्र, ५२ चामर, यह चार, मंदिरके बाहिर न छोडे, ५३ मन एकाग्र न करे, ५४ तेलादिकका मर्द्दन करे, ५५ शरीरके जोगके सचित्त फूलादिकका त्याग न करे, ५६ हार, मुद्रा, कुंमलादि, तिनकों बाहिर छोड आवे, तो आशातना लगे, क्योंकि लोकोंमें अैसा कहनां हो जावे, कि अर्हतके जक्त सर्व कंगाल भिक्षाचर हें, अैसी तरें जिनमतकी लघुता होती है, ५७ जग वानकों देखकें हाथ न जोडे, ५८ एक साडीका उत्तरासंग न करे, ५९ मुकुट मस्तकमें राखे, ६० मौलि शिरका लपेटनां रक्खे, ६१ फूलका सेहरा रक्खे, ६२ नालियर आदिकका छोत गेरे, ६३ गेंदसें खेले, ६४ पिता प्रमुखको जुहार करे, ६५ जांम चेष्टा करे, ६६ तिरस्कारके वास्ते रेकारा तुंकारा देवे, ६७ लेहणे वास्ते धरणां देवे, ६८ संग्राम करे, ६९ मस्तकके केश सुकावे, ७० पालठी मारी बेठे, ७१ काष्ट पाडुकादि पगमें रक्खे, ७२ पग पसारे, ७३ सुखके वास्ते पुड पुनी देवावे, ७४ देहरेमें शरीरका अवयव धोकें कीचड कूडा करे, ७५ पगादिकके लगी हूइ धूल जाडे, ७६ मैथुन, (कामक्रीमा) करे, ७७ जूंआं गेरे, ७८ जोजन जीमे, ७९ गुह्य चिन्ह ढककें न बेठे, ८० वैदकका काम करे, ८१ क्रय विक्रय रूप वाणिज्य करे, ८२ शय्या बनाकें सोवे, ८३ पानी पीनेके वास्ते जलका मटका रक्खे, तथा मंदिरके पतनालेका पाणी लेवे, ८४ स्नान करनेकी जगा बनावे, यह उत्कृष्ट चौरासी आशातना जिनमंदिरमें वर्जे.

अब गुरुकी तेत्तीस आशातना वर्जे, सो लिखते हें. १ गुरुके आगें चले, तो आशातना हे. जेकर रस्ता बतावनेके वास्ते चले, तो आशातना नहीं होती हे, २ गुरुके बराबर चले, ३ गुरुके पीछें अमके चले, यह जेसें चलनेकी तीन आशातना कही हें, अैसेंही बेठनेकीजी तीन आशातना जान लेनी, तथा खडा होनेकीजी तीन आशातना जान लेनी, यह सर्व नव आशातना हूइ. १० जोजन करतां गुरुसें पहिलां शिष्य चलु करे, ११ गमनागमन गुरुसें पहिलां आलोचे, १२ रात्रमें कोन जागता हे, अैसें गुरुके कहेकों सुंन कर जागता हूआजी शिष्य उत्तर न देवे, तो आशातना लगे, १३ जब किसीकों कुछ कहनां होवे, सो गुरुसें

पहिलांही शिष्य कह देवे, १४ दूसरे साधुवोंके आगे पहिलां अशना
आलोवे पीछें गुरु आगें आलोवे, १५ ऐसेही अशनादिक पहिलां दूस
साधुवोंको दिखाके पीछें गुरुकों दिखावे, १६ अन्नादिककी पहिलां औ
कों निमंत्रणा करके पीछें गुरुकों निमंत्रणा करे, १७ गुरुके विना पू
स्वेच्छासें औरांकों स्निग्ध मधुरादि आहार दे देवे, १८ गुरुकों यत्किंचि
अन्नादि दे कर पीछें यथेच्छासें स्निग्धादि आहार आप खावे, १९ गु
बोलावें, तब बोले नहीं, २० गुरुकों बहुत कर्कश (कठोर) वचन बोले
२१ जब गुरु बोलावे, तब आसन उपर बैठाही उत्तर देवे, २२ गुरु बे
लावे तब कहे, क्या कहते हो? २३ गुरुको तूंकारा देवे, २४ गुरुने प्रेरणा
करी तब गुरुकी प्रेरणाकों उत्तर करके हणे, जैसें गुरु कहे किः–हे शि
ष्य! तुमने ग्लानकी वैयावृत्य क्यों नहीं करी? तब शिष्य कहे कि तुम
क्यों नही करते? २५ गुरुकथा कहते हूए मनमें प्रसन्न न होवे, किंतु
विमन होवे, २६ सूत्रादि कहते गुरुकों कहे तुमकों अर्थ याद नहीं है?
यह अर्थ ऐसें नहीं होवे है? २७ गुरु कथा कहता है, तिस कथाकों
बीचमें छेद करे, आप कहे, में कथा करुंगा? ऐसें कहे, २८ पर्षदाकों भांगे
जैसें कहेकी अब तो भिक्षाका अवसर है, इत्यादि कहे, २९ पर्षदाके
विना उठ्यां गुरुकी कही कथाकों अपणी चतुराइ दिखलाने वास्ते विशे
ष करके कहे, ३० गुरुकी शय्या संथारकादिकों पगोंसें संघट्टा करे, ३१
गुरुकी शय्यादि उपर बैठनादि करे, ३२ गुरुसें उंचे आसन उपरि बैठे,
३३ गुरुके बराबर आसन करे, यह तेत्तीस गुरुकी आशातना है.

ये गुरुकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है, एक पगादिसें संघट्टा करे, सो जघन्य आशातना, दूसरी श्लेष्मका छिंटे गुरुके लवमात्र लगावे, सो मध्यम आशातना है, तीसरी गुरुका [illegible] रुके छूवे, जेकर करे, तोभी उलटा करे कठोर वचन बोले, गुरुका कह्या न [illegible] इत्यादि उत्कृष्ट आशातना है.

स्थापनाचार्यकी आशातनाभी तीन प्रकारकी है, एक तो इधर उधर हाथ लगावे पगोंका स्पर्श करे, तो जघन्य आशात[illegible] भूमिमें गेरे, अथवा आघे धरे, सो मध्यम आशातना, तीसरी स्था[illegible] . तथा तोडे तो उत्कृष्ट आशातना है. ऐसेंही ज्ञानोपकरण, [illegible] ४, तथा पाटियांकरव, रजोहरणादि, मुखवस्त्रिका, दंडक, दंडिका प्रमुखकीभी आशातना टाले.

श्रावककों सर्वधर्मोपकरण चरवला मुखवस्त्रिकादि विधि पूर्वक स्वस्थानमें स्थापना प्रमुख करणी चाहीयें, अन्यथा धर्मकी अवज्ञादि प्रमुख दूषणोंकी आपत्ति होवे, शास्त्रमें लिखा हैकि जो उत्सूत्र नांखे, तथा अर्हंतकी अरु गुरुकी अवज्ञादि महा आशातना करे, तो सावद्याचार्य,मरीचि, जमाली, कुलवालिकादिककी तरें अनंत जन्म मरणकी वृद्धि होवे॥ यतः ॥ उस्सुत्त नासगाणं,वोहीनासो अणंतसंसारो ॥ पाणच्चएवि धीरा, उस्सुत्तं ता न नासंति ॥ १ ॥ तिछयर पवयण सुयं, आयरियं गणहरं महिड्डियं॥ आसायंतो वहुसो, अणंत संसारिउं होइ॥२॥ अस्यार्थः सुगमः॥

ऐसेंही देव, ज्ञान, साधारण द्रव्यका तथा गुरुका द्रव्य, वस्त्र, पात्रादिकका विनाश तिनकी उपेक्षादिक जो करनी है सोनी महा आशातना है, यदूचे ॥ गाथा ॥ चेइअ दव्व विणासे, इसिधाए पवयणस्स उड्डाहे॥ संजई चउत्थनंगे, मूलग्गी वोहिलानस्स॥ १ ॥ तथा श्रावकदिनकृत्य दर्शनशुद्धि आदि शास्त्रोंमेंनी लिखा हैं ॥ गाथा ॥ चेइअ दवं साहा, रणं च जो डुहइ मोहिअमईउ ॥ धम्मं च सो न याणाइ, अहवा वद्धाउ उ नरए ॥१॥ अर्थः—चैत्यद्रव्य तथा साधारण द्रव्य जो नाश करे,मोहितमति जातो वो धर्म नहीं जानता है, अथवा उसने नरकका आयु वांधा है, उसिके वास्तेही ऐसा अयोग्य काम करता है, तथा चैत्यद्रव्यका नाश, नक्षण, उपेक्षण कोइ करे, तिसकों जेकर साधु न हटावे, तो वो साधुनी अनंत संसारी हो जावे.

प्रश्नः—मन, वचन अरु काया करकें जिसने सावद्य त्यागा है, ऐसे यतिकों चैत्यद्रव्यकी रक्षामें क्या अधिकार है?

उत्तरः—जे कर राजा तथा वजीरकों याचना करकें तिनोके पाससें घर, हाट, गामादि लेकर विधिसें नवा पेदास उत्पन्न करे, तव तेरा विवक्षित दूषण होवेगा,परंतु यथा नद्रकादि करकें जो किसीने पहिलां दीया होवे, उसका नाश देखकें रक्षा करे, तव कोइ दूषण नहीं होता हैं, वलिके जिनाज्ञाकी आराधना होनेसें धर्मकी पुष्टि होती है.

नवे जिनमंदिरकें वनानेसें जो पूर्वे वना हूआ है उसके प्रतिपंथि अर्थात् शत्रुकों जो साधु हटावे, तो वो साधुकों न प्रायश्चित्त है, तथा नवो सांधुकी प्रतिज्ञा नंग होती है, आगमनी ऐसाही कहता है. इस वास्ते

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है.

॥तथा॥ आयणं जो भंजइ, पडिवन्नं धणं न देइ देवस्स ॥ नस्सं तं समुविक्खइ, सोविहु परिभमइ संसारे ॥ १ ॥ अस्यार्थः–जो पुरुष मंदिरकी आमदनी भांगे. अरु जो मुखसें कह कर जिनद्रव्य न देवे, सोभी संसारमें भ्रमण करे ॥ तथा ॥ जिणवयण वुड्ढिकरं,पभावगं नाणदंसण गुणाणं ॥ भक्खं तोजिणदव्वं,अणंत संसारीउ होइ ॥२॥ अर्थः जो जिनमतकी वृद्धिकरे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणा, महापूजा सत्कारादि करके ज्ञान दर्शनकी प्रभावना करे, परंतु जिनद्रव्यका नाश करे,तो अनंत संसारी होवे, अरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, देवद्रव्यकी वृद्धिकरे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे,परंतु पंदरा कर्मादान, गोटा वणिज्य वर्जके सद् व्यवहार करके जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यतः ॥ जिणवर आणा रहियं, वद्धारंतावि केवि जिणदव्वं ॥ बुडंति भवसमुद्दे, मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है.

कोइ कहते हैं कि श्रावक विना औरोंको अधिक गहनां रखके कालांतरमें व्याजकी वृद्धि करे,सो उचित है, ऐसा कहनाभी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पचीसी आदिक ग्रंथोंमें संकाशकी कथामें तैसेंही लिखा है. परद्रव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते हैं, सागर श्रेष्ठीवत. यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथमें जान लेनी. ज्ञान द्रव्यभी देव द्रव्यकी तरें अकल्पनीय है, अर्थात् नाश करनां, भक्षण करनां, विगडतेकी सार संभाल न करणी. ऐसेंहि साधारण द्रव्यभी संघका दीया हूआही कल्पना है, विना दीया काममें लानां न कल्पे, संघकोंभी सात क्षेत्रमेंही साधारण द्रव्य लगानां चाहिये मंगने वालोंको उसमेंसें देनां न चाहियें, ऐसीही ज्ञान संबंधी कागज प्रादि साधुको दीया हूआ श्रावकनें अपणे कार्यमें नहीं लगानां,अपनी पोथीमेंभी न रखना, स्थापनाचार्य अरु जपमालादि से लेनेका व्यवहार भी दीखता है, तथागुरुकी आज्ञा विना साधु साधविकों लिखारी पासें लिखानां अरु वस्त्र सूत्रादिकका लेनांभी नहीं कल्पता. इत्यादि विचार लेनां,लिखवाले योंभासारभी ज्ञान अरु साधारण द्रव्यका भोग न करनां चाहिये.

जो देवके नामका बोले, सो द्रव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवद्रव्य जितना शीघ्र देवे, उतना अछा है, कदापि विलंब करे, तो पीछें क्या जाने धनहानि मरणादि होवे? तदा देवद्रव्यका ऋण रहजाये, और संसारीका देनांभी श्रावककों शीघ्र दे देनां चाहियें, तो फेर देवद्रव्यका क्या करनां है? जिस वखत माला पहराइ तथा और कुछ द्रव्य देवके भंडारेमें देनां करा, उसी वखतसें वो देव द्रव्य हो चूका, उस द्रव्यसें जो लाभ होवे, सोभी देवद्रव्य है उस द्रव्यकों श्रावकनें भोगना नहीं, इस वास्ते शीघ्र दे देनां चाहियें, जे कर मासादिक पीछें देनेका कौल करे, तदा करार उपर विना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघकें देवे, तो देवद्रव्य खायेका दूषण है. देवद्रव्यकी उगराहीभी श्रावक अपणी उगराहीकी तरें यत्नसें करे, जेकर देवद्रव्य लेनेमें ढील करे, अरु कदाचित् दुर्भिक्ष दरिद्रादि अवस्था आ जावे, तो फेर मिलनां दुष्कर हो जावे, तथा देनेवालाभी उत्साह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे, नहीं तो देव द्रव्य भक्षणका दोष है.

तथा देव ज्ञान साधारण संबंधी हाट, खेत, वाडी, पाषाण, ईंट, काष्ठ, वांस, मिट्टी, खडीया, चंदन, केसर, बरास, फूल, फूलचंगेरी, धूपपात्र, कलश, वासकूंपी, छत्रसहित सिंहासन, चमर, चंद्रोदय, झालर, भेरी, चानणी, तंबू, कनात, पडदे, कंबल, चौंकी, तखत, पाटा, पाटी, घडा, वडा उरसा, कज्जल, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाला, प्रनालादिकका पाणी, ये सर्व पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममें न वर्त्तनी चाहियें, टूट फूट मलीनादि हो जावे, तो महापाप होवे, देव आगें दीवा बालकें उस दीवेके चानणेमें कोइ सांसारिक काम करे, तो मरकें तिर्यंच होवे. उस वास्ते देवके दीवेसें खतपत्र भी न वांचनां चाहियें, रूपकभी न परखणा, घरका कामभी देवके दीवेसें न करणां, तथा देवके चंदन, केसरसें तिलक न करे, देवके जलसें हाथ न धोवे, स्नात्रजलभी थोडासा लेनां चाहियें, तथा देवसंबंधी झल्लरी, मृदंग, भेरी प्रमुख गुरुके तथा संघके न वजावे, जे कर कोइ देवके उपकरण झल्लरी आदिकसें कोइ कार्य करनां होवे तो बहुत निकराणां देव आगें रखकें लेवे, कदाचित् कोइ उपकरण टूट जावे, तब अपणां धन खरचकें नवा बनवावे, देवका दीवा लालटेन (फानूप) प्रमुखमें जूदाही राखे,

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है.

॥तथा ॥ आयणं जो भंजइ, पडिवन्नं धणं न देइ देवस्स ॥ नस्संतं समुविक्खइ, सोविहु परिजमइ संसारे ॥ १ ॥ अस्यार्थः–जो पुरुष मंदिरकी आमदनी जांगे. अरु जो मुखसें कह कर जिनद्रव्य न देवे, सोजी संसारमें भ्रमण करे ॥ तथा ॥ जिणवयण वुड्ढिकरं,पजावगं नाणदंसण गुणाणं ॥ जरकं तोजिणदव्वं,अणंत संसारीउ होइ ॥२॥ अर्थः जो जिनमतकी वृद्धिकरे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणा, महापूजा सत्कारादि करकें ज्ञान दर्शनकी प्रजावना करे, परंतु जिनद्रव्यका नाश करे,तो अनंत संसारी होवे, अरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, देव द्रव्यकी वृद्धिकरे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे,परंतु पंदरा कर्मादान, खोटा वणिज्य वर्जकें सद् व्यवहार करकें जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यतः ॥ जिणवर आणा रहियं, वद्धारंताविं केवि जिणदव्वं ॥ बुडंति जवसमुद्दे, मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है.

कोइ कहते हैं कि श्रावक विना ओरोंकों अधिक गहनां रखकें कालांतरमें व्याजकी वृद्धि करे,सो उचित है, ऐसा कहनाजी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पच्चीसी आदिक ग्रंथोंमें संकाशकी कथामें तैसेंही लिखा है. चैत्यद्रव्यके खानेसें वहुत कष्ट होते है, सागर श्रेष्ठीवत्. यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी. ज्ञान द्रव्यजी देव द्रव्यकी तरें अकल्पनीय है, अर्थात् नाश करनां, जक्षण करनां, विगमतेकी सार संजाल न करणी. ऐसेहि साधारण द्रव्यजी संघका दीया हूआही कल्पता है, विना दीया काममें लानां न कल्पे, संघकोंजी सात क्षेत्रमेंही साधारण द्रव्य लगानां चाहिये मंगने वालोंकों उसमेंसे देनां न चाहियें, ऐसीही ज्ञान संबंधी कागज प्रादि साधुका दीया हूआ श्रावकनें अपणे कार्यमें नहीं लगानां,अपणी पोथीमेंजी न रखना, स्थापनाचार्य अरु जपमालादि ले लेनेका व्यवहार तो दीखता है, तथागुरुकी आज्ञा विना साधु साधविकों लिखारी पासें लिखानां अरु वस्त्र सूत्रादिकका लेनांजी नहीं कल्पता. इत्यादि विचार लेनां, तिसवास्ते थोमासाजी ज्ञान अरु साधारण द्रव्यका जोग न करनां चाहियें.

जो देवके नामका बोले, सो द्रव्य तत्काल देवे, क्योंकि देवद्रव्य जितना शीघ्र देवे, उतना अच्छा है; कदापि विलंब करे, तो पीछे क्या जाने धनहानि मरणादि होवे? तदा देवद्रव्यका ऋण रहजाये, और संसारीका देनांभी श्रावककों शीघ्र दे देनां चाहियें, तो फेर देवद्रव्यका क्या करनां है? जिस वखत माला पहराइ तथा और कुछ द्रव्य देवके भंडारेमें देनां करा, उसी वखतसें वो देव द्रव्य हो चूका, उस द्रव्यसें जो लाभ होवे, सोभी देवद्रव्य है उस द्रव्यकों श्रावकनें भोगना नहीं, इस वास्ते शीघ्र दे देनां चाहियें, जे कर मालादिक पीछे देनेका कौल करे, तदा करार उपर विना माग्या जरूर दे देवे, जे कर करार उल्लंघके देवे, तो देवद्रव्य खायेका दूषण है. देवद्रव्यकी उगराहीभी श्रावक अपणी उगराहीकी तरें यत्नसें करे. जेकर देवद्रव्य लेनेमें ढील करे, अरु कदाचित् दुर्भिक्ष दरिद्रादि अवस्था आ जावे, तो फेर मिलनां दुष्कर हो जावे, तथा देनेवालाभी उत्साह पूर्वक कपट रहित हो कर शीघ्र दे देवे. नहीं तो देव द्रव्य भक्षणका दोष है.

तथा देव ज्ञान साधारण संबंधी हाट, खेत, वाडी, पाषाण, ईंट, काष्ठ, वांस, मिट्टी, खडीया, चंदन, केसर, बरास, फूल, फूलचंगेरी, धूपपात्र, कलश, वालकूंपी, छत्रसहित सिंहासन, चमर, चंद्रोदय, झालर, भेरी, चानणी, तंबू, कनात, पडदे, कंबल, चौंकी, तखत, पाटा, पाटी, घडा, चटा उरसा, कज्जल, जल, दीवा प्रमुख चैत्यशाला, प्रनालादिकका पाणी, ये सर्व पूर्वोक्त वस्तु देवकी अपने काममें न वर्त्तनी चाहियें, टूट फूट मलीनादि हो जावे, तो महापाप होवे. देव आगें दीवा बालके उस दीवेके चानणेमें कोइ सांसारिक काम करे, तो मरके तिर्यंच होवे. इस वास्ते देवके दीवेसें खतपत्र भी न बांचनां चाहियें. रूपकभी न परखणा, घरका कामभी देवके दीवेसें न करणां. तथा देवके चंदन, केसरसें तिलक न करे, देवके जलसें हाथ न धोवे. स्नात्रजलभी थोडासा लेनां चाहियें. तथा देवसंबंधी झल्लरी, मृदंग, भेरी प्रमुख गुरुके तथा संघके न बजावे. जे कर कोइ देवके उपकरण झल्लरी आदिकसें कोइ कार्य करनां होवे तो बहुत निकराया देव आगें रखके लेवे. कदाचित् कोइ उपकरण टूट जावे, तब अपणा धन खरचके नवा बनवावे. देवका दीवा लालटेन (फानूस) प्रमुखमें जुदा ही राखे,

जिनद्रव्य जो खावे, उपेक्षा करे, वो श्रावक, आगले जन्ममें बुद्धिहीन होवे, अरु पापकर्मसें लेपायमान होता है.

॥तथा॥ आयणं जो भंजइ, पडिवन्नं धणं न देइ देवस्स ॥ नस्संतं समुविक्खइ, सोविहु परिभमइ संसारे ॥ १ ॥ अस्यार्थः–जो पुरुष मंदिरकी आमदनी भांगे. अरु जो मुखसें कह कर जिनद्रव्य न देवे, सोभी संसारमें भ्रमण करे ॥ तथा ॥ जिणवयण वुड्ढिकरं, पभावगं नाणदंसण गुणाणं ॥ भरकं तोजिणदव्वं, अणंत संसारीउं होइ ॥२॥ अर्थः जो जिनमतकी वृद्धिकरे, चैत्यपूजा, चैत्यसमारणा, महापूजा सत्कारादि करकें ज्ञान दर्शनकी प्रभावना करे, परंतु जिनद्रव्यका नाश करे, तो अनंत संसारी होवे, अरु जे कर जिनद्रव्यकी रक्षा करे, तो अल्प संसार हो जावे, देवद्रव्यकी वृद्धिकरे, तो तीर्थंकर नामकर्म बांधे, परंतु पंदरा कर्मादान, खोटा वणिज्य वर्जकें सद्‌ व्यवहार करकें जिनद्रव्यकी वृद्धि करे ॥ यतः ॥ जिणवर आणा रहियं, वड्ढारंताविं केवि जिणदव्वं ॥ बुडंति भवसमुद्दे, मूढा मोहेण अन्नाणी ॥ १ ॥ इसका अर्थ सुगम है.

कोइ कहते हैं कि श्रावक बिना औरोंकों अधिक गहनां रखकें कार्यांतरमें व्याजकी वृद्धि करे, सो उचित है, ऐसा कहनाभी ठीक है, क्योंकि सम्यक्त्व पच्चीसी आदिक ग्रंथोंमें संकाशकी कथामें तैसेंही लिखा है. चैत्यद्रव्यके खानेसें बहुत कष्ट होते हैं, सागर श्रेष्ठीवत्. यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जान लेनी. ज्ञान द्रव्यभी देव द्रव्यकी तरें अकल्पनीय है, अर्थात् नाश करनां, भक्षण करनां, विगडतेकी सार संभाल न करणी. ऐसेंहि साधारण द्रव्यभी संघका दीया हूयाही कल्पता है, बिना दीया काममें लानां न कल्पे, संघकोंभी सात क्षेत्रमेंही साधारण द्रव्य लगानां चाहियें मंगने वालोंकों उसमेंसें देनां न चाहियें, ऐसीही ज्ञान संबंधी कागज पत्रादि साधुका दीया हूया श्रावकनें अपणे कार्यमें नहीं लगानां, अपणी पोथीमेंभी न रखना, स्थापनाचार्य अरु जपमालादि ले लेनेका व्यवहार तो दीखता है, तथागुरुकी आज्ञा बिना साधु साध्विकों लिखारी पासें लिखानां अरु वस्त्र सूत्रादिकका लेनांभी नहीं कल्पता. इत्यादि विचार लेनां, तिसवास्ते चोमासाभी ज्ञान अरु साधारण द्रव्यका भोग न करनां चाहियें.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रजावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तब चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसें लेवे, फेर खरचनेके अवसर में जी गुरु संघादिकके आगें प्रगट कह देवे, कि यह धन मैंने अमुक का दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है.

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमें दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर किसीने धर्म खरचमें धन दीया होवे, तब तिसका प्रकट नाम ले कर सर्व समक्ष न्याराही खरच करनां चाहियें, यदा बहुतें मिल कर यात्रा साधर्मि वात्सल्य संघपूजादि करे, तब जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे.

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करनां कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करनां माने, सो बहुत श्रावकादिकोंके आगें कहनां चाहियें, जैसें मैं तुमारे नामसें इतने दिनोके वीचमें इतना धन खरचुंगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीछें सो धन सर्व समक्ष अपणे नामसें नहीं, किंतु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देनां चाहियें, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करकें तो साधारण द्रव्यहीका करनां चाहियें, क्योंकि जहां जहां काम पडे, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचकें तिसकों उपष्टंज देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोजी उसकों उसी धनसें उपष्टंज देवे, लोकेप्युक्तं॥श्लोक॥ दरिद्रं जर राजेंद्र, मा समृद्धं कदाचन॥ व्याधितस्यौपधं पथ्यं, नीरोगस्य किमौपधं॥१॥ इसी वास्ते प्रजावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लड्डुलंजनादिकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनकों विशेष वस्तु देनी चाहियें, अन्यथा धर्मावज्ञादि दोप होवे. यह वात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनकों अधिक वस्तु देनी चाहियें, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोकों वरावर देवे.

अपणा खरच धर्मद्रव्यसें न करणां, यात्रादिकके निमित्त जो धन काढे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो द्रव्य अपणे जोजनमें अथवा गाडी आदिकके जाडेमें लगावेगा, तब जरूर उसकों देवद्रव्य खा

तथा साधारण द्रव्यसें जो कह्लरी प्रमुख वनावे, तव तो सर्वधर्म कार्यमें वर्त्ते, तो दोष नहीं जैसें जावोंसें करे सोइ प्रमाण हे.

देवका तथा ज्ञानका घरादिकजी श्रावककों निःशूकतादि दोष होनेंसें जाडे लेनां न चाहियें.साधारण संबंधि घरादिक संघकी अनुमतिसें लोक व्यवहारका जाडा दे कर वरते तो दोष नहीं,परंतु जाडा करारके दिनमें स्वयमेव दे देवे,उस मकानके समरानेमें जो धन लगे, तिसकों जाडेमें गिन लेवे, तो दोष नहीं. अरु जो साधर्मी संकट (निर्धनपणेसें डुःखी) होवे, वो संघकी आज्ञासें विना जाडे दीयांजी रहे, तो दोष नहीं तथा तीर्थादिकमें अरु देहरेमें जो बहुत काल रहनां पडे, उहां सोवे, तो तहांजी लेखे अनुसार अधिक जाडा दे देवे, थोडा देवे तो दोष हे. जाडा विना दीयां देव, ज्ञान, साधारण संबंधी वस्त्र नालियर सोने रूपेकी पाटी, कलश, फूल, पकान्न, सुखडी प्रमुख उजमणेमें, पुस्तक पूजामें, नंदी मांडनेमें, न मेलनी चाहियें, क्योंकि उजमणादि तो उसमें अपणे नामका करा हे फेर देव, ज्ञान, अरु साधारण संबंधी पूर्वोक्त वस्तु जाडे विना वर्त्ते, तो स्पष्ट दोष हे.

तथा घर देहरेमें अक्षत, सोपारी, फल, नैवेद्यादिकके वेचनेसें जो धन होवे, तिसके लीये फूलादिककों घर देहरेमें न चढावे, तथा पंचायती बडे मंदिरमेंजी आप न चढावे,पूजारी आगें सर्व स्वरूप कहे कि यह मंदिरहीका द्रव्य हे,परंतु मेरा नहीं, पूजारी न होवे,तो संघ समक्ष कह देवे,असें न कहे तो दूषण हे. घर देहरेका नेवेद्यादि मालीको देवे, परंतु वो मालीकी नोकरीमें न गिन लेवे, जे कर पहिलांही सामग्री नोकरीमें देणी करी हो तो दोष नहीं. मुख्यवृत्तिमें तो नोकरी चढावेसें अलग देनी चाहियें.

घर देहरेके चढे हूए चावलादि बडे मंदिरमें जेज देवे; अन्यथा घर देहरेके द्रव्यसें घर देहरेकी पूजा होवेगी, नतु स्वद्रव्य करकें होवेगी, तव अनादर अवज्ञादि दोष हे, असा करणां युक्त नहीं, क्योंकि स्वद्रव्यसेंही पूजा करणी उचित हे, तथा देहरेका नेवेद्य अक्षतादि अपणे धनकी तरें रखने चाहियें,पूरे मूलसें वेचकें देव द्रव्यकों वधारनां चाहियें,परंतु जैसें तैसें मोलसें न जाने देवे,नहीं तो देवद्रव्यके नाश करेका दूषण लग जावेगा.

तथा सर्व तरें रक्षा करतांजी चोर, अग्नि, आदिकके उपद्रवसें देव द्रव्य नष्ट हो जावे, तो चिंता कारककों दोष नहीं.

तथा देव, गुरु, यात्रा, तीर्थ अरु संघकी पूजा, साधर्मिवात्सल्य, स्नात्र, प्रभावना, ज्ञान लिखानां इत्यादिक कारणो वास्ते दूसरोंके पाससें जब धन लेवे, तव चार पांच पुरुषोंकी साक्षीसें लेवे, फेर खरचनेके अवसर में भी गुरु संघादिकके आगें प्रगट कह देवे, कि यह धन मैने अमुक का दीया खरचा है, परंतु मेरा नहीं है.

तथा तीर्थादिमें अरु पूजा स्नात्र ध्वजा चढाने आदि आवश्यक कर्त्तव्यमें दूसरोंका सीर न करे, किंतु स्वयमेवही यथाशक्ति करे, जेकर किसीने धर्म खरचमें धन दीया होवे, तव तिसका प्रकट नाम ले कर सर्व समक्ष न्याराही खरच करनां चाहियें, यदा वहुतें मिल कर यात्रा साधर्मि वात्सल्य संघपूजादि करे, तव जितना जितना जिसका हिस्सा होवे, उतना उतना प्रगट कह देवे, नहीं तो पुण्यफलकी चोरी लगे.

तथा मरणांत समयमें माता, पितादिक जो धर्मका खरच करनां कहे, तथा पुत्रादि जो खरच करनां माने, सो वहुत श्रावकादिकोंके आगें कहनां चाहियें, जैसें में तुमारे नामसें इतने दिनोके वीचमें इतना धन खरचुंगा, तुम उसकी अनुमोदना करो, पीछें सो धन सर्व समक्ष अपणे नामसें नहीं, किंतु माता पितादिके नामसें तत्काल खरच कर देनां चाहियें, धर्मका खरच मुख्यवृत्ति करकें तो साधारण द्रव्यहीका करनां चाहियें, क्योंकि जहां जहां काम पडे, तहां तहां खरचमें लावे, सात क्षेत्रोंमें जौनसा क्षेत्र सीदाता देखे, तिसमें धन खरचकें तिसकों उपष्टंभ देवे, कोइ श्रावक निर्धन हो जावे, तोभी उसकों उसी धनसें उपष्टंभ देवे, लोकेप्युक्तं॥श्लोक॥ दरिद्रं भर राजेंद्र, मा समृद्धं कदाचन॥ व्याधितस्यौषधं पथ्यं, नीरोगस्य किमौषधं॥१॥ इसी वास्ते प्रभावना संघ पहिरावणी, सम्यक्त्वका लड्डुलंभनादिकमें जो निर्धन साधर्मी हूवे, तिनकों विशेष वस्तु देनी चाहियें, अन्यथा धर्मावज्ञादि दोष होवे. यह वात युक्त है, जो धनवानसें निर्धनकों अधिक वस्तु देनी चाहियें, यदा शक्ति न होवे, तदा दोनोकों वरावर देवे.

अपणा खरच धर्मद्रव्यसें न करणां, यात्रादिकके निमित्त जो धन काढे, सो सर्व देवादि निमित्त हो गया, जे कर वो द्रव्य अपणे भोजनमें अथवा गाडी आदिकके भाडेमें लगावेगा, तव जरूर उसकों देवद्रव्य खा

नेका पाप लगेगा, कदाचित् अज्ञान करकें चूकिकें वे समजीसें इत्यादि कारणोसें कोइ श्रावकादि देवादि द्रव्यका उपजोग कर लेवे, तो तिसकें प्रायश्चित्तमें जितना द्रव्य खाया होवे, उतना द्रव्य देव साधारण संबंधि करे, मरण अवस्थामें शक्तिके अजावसें धर्मस्थानमें थोडाही खरचे, परंतु देणा किसीका न रक्खे, देवादि द्रव्य तो विशेष करकें न रक्खे, इसी रीतिसें श्रीजिनराजजीकी पूजा दृढजावोसें करनी चाहियें ॥ इति संक्षेपतो जिनेश्वर परमेश्वर पूजनविधिः संपूर्णः ॥

अथ गुरु वंदनाकी विधि लिखते हें, जो ज्ञानादि पांच आचार करकें संयुक्त होवे, और शुद्ध प्ररूपक होवे, सो गुरु हे, पांच आचारका स्वरूप देखनां होवे, तदा श्री रत्नशेखरसूरिकृत आचारप्रदीप ग्रंथ देख लेनां.

यह पूर्वोक्त गुरु आचार्यादिकके पास जो प्रत्याख्यान पूर्वे अपणे आप करा था, सो विशेष करकें विधि पूर्वक गुरु मुखसें उचरावे, क्योंकि प्रत्याख्यान तीन तरेंसें करा जाता हे, एक आत्मसाक्षिक, दूसरा देव साक्षिक, तीसरा गुरुसाक्षिक, तिसकी विधि यह हे, कि:—

मंदिरमें देववंदनार्थं, स्नात्रादि देखनेके अर्थं, धर्मोपदेश देनेके अर्थं, गुरु जिनमंदिरमें आया होवे, तथा वस्तिमें होवे, तहां मंदिरकी तरें तीन निस्सही पंचाभिगमनादि यथायोग्य विधिसें जा करकें गुरुके धर्मोपदेश पहिलां तथा पीछें, यथाविधिसें पंचवीश आवश्यक शुद्ध द्वादशावर्त्त वंदना देवे, वंदनाका बडा फल कहा हे, कृष्णवासुदेववत्. तथा जाष्यमें वंदना तीन तरेंकी कही हें, एक तो मस्तक नमावणादि सो फेटा वंदना, दूसरी संपूर्ण दो खमासमण पढनेसें स्तोभवंदना होती हे, तिसरी द्वादशावर्त्त करनेसें द्वादशावर्त्त वंदना होती हे, तिसमें प्रथम वंदना तो सर्व संघकों करणी, दूसरी वंदना सर्व स्वदर्शनी साधुओंकों करणी, अरु तीसरी वंदना जो हे, सो पदवीधर आचार्यादिककों करनी.

जिसने सवेरेका पडिक्कमणां न करा होवे, तिसने विधि पूर्वक वंदना करणी, क्योंकि जाष्यमें ऐसेंही लिखा हे. १ जाष्योक्तविधि ईर्यापथप्रतिक्रमे २ पीछें कुस्वप्नका कायोत्सर्ग करे, सौ उश्वास प्रमाण करे, जेकर स्वप्नमें स्त्रीसें संगम करा होवे, तदा अशुचिकी सर्व जगा धोकें पीछें एक सौ आठ श्वासोश्वास प्रमाण कायोत्सर्ग करे, ३ पीछें चैत्यवंदन करे, ४ पीछें द-

माश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखे. ५ पीछें दो वंदना देवे. ६ पीछें देवसिआदिक आलोवे. ७ फेर वंदना दो देवे, ८ पीछे अप्पुठिओमि कहे, ९ पीछें दो वंदना करे, १० पीछें प्रत्याख्यान करे, ११ पीछें नगवन् अहं इत्यादि चार क्षमाश्रमण देवे, १२ पीछें स्वाध्याय संदिसावउं कहे, फेर क्षमाश्रमण पूर्वक सद्याय करूं, ऐसें कहे, पीछें स्वाध्याय करे. यह सवेरकी वंदनाविधि है.

तथा प्रथम १ ईर्यापथ पडिक्कमे, २ पीछें चैत्यवंदना करे, ३ पीछें क्षमाश्रमण पूर्वक मुखवस्त्रिका प्रतिलेखन करे, ४ पीछे दो वंदना करे, ५ पीछें दिवसचरिमका प्रत्याख्यान करे, ६ पीछें दो वंदना करे, ७ पीछें देवसि आलोउं कहे, ८ पीछें दो वंदना करे, ९ पीछें अप्पुठिउं कहे, १० पीछें नगवन् इत्यादि चार स्तोनवंदना करे, ११ पीछें दैवसिक प्रायश्चित्त का कायोत्सर्ग करे, १२ पीछें पूर्ववत् दो क्षमाश्रमण देकर स्वाध्याय करे, यह संध्याकी वंदन विधि है.

जे कर किसी कार्य करणादिसें गुरुका चित्त और तर्फ होवे, तदा संक्षेप मात्र वंदना करें. ऐसें वंदना पूर्वक गुरु पासों प्रत्याख्यान करावे, क्योंकि श्रावकप्रज्ञप्तिसूत्रमें लिखा है, कि प्रत्याख्यान करणेंके परिणाम दृढनी होवे, तोनी गुरुके पासों करावे. गुरु पासों प्रत्याख्यान करानेमें यह गुण है, सो लिखते हैं. १ दृढता होती है, २ आज्ञाका करणां होता है, ३ कर्मका क्षय होता है, ४ उपशमकी वृद्धि होती है.

ऐसेंही दैवसिक चातुर्मासिक नियमादिनी गुरुका संनव होवें, गुरु साक्षिकही करनां चाहियें. योगशास्त्रमें गुरुकी नक्ति ऐसें लिखी है॥श्लोक॥ अन्युत्थानं तदालोके, ऽनियानं च तदागमे ॥ शिरस्यंजलिसंश्लेषः, स्वयमासनढोकनं ॥ १ ॥ आसनानिग्रहो नक्त्या, वंदना पर्युपासनं ॥ तद्यानेऽनुगमश्चेति, प्रतिपत्तिरियं गुरौ ॥ २ ॥ अस्यार्थः—१ गुरुकों आता देखकें खडा हो जानां, २ सन्मुख लेने जानां, ३ मस्तक उपर अंजलि बांध कर प्रणाम करणां, ४ गुरुकों आसन देनां, ५ जब गुरु आसन उपर बैठ जावेगा, तद मैं आसन उपर बैठुंगा, ऐसा अनिग्रह लेवे, ६ नक्तिसें वंदना पर्युपासना करे, जब गुरु जावे, तब पौहुंचाने जावे, ८ यह गुरुकी नक्ति है. तथा १ अडके गुरुके बराबर न बैठे, २ आगें न बैठे, ३ गुरुकी

तर्फ पीठ दे कर न बेठे, ४ पग उपर पग चढा करकें गुरुके पास न बेठे, ५ पालठी मारकें न बेठे, ६ हाथोंसें जंघाकों लपेटके न बेठे, ७ पग पसार कें न बेठे, ८ विकथा न करे, ९ बहुत हसे नहीं,१० नींद न लेवे, ११ मन, वचन,काया गोप करकें हाथ जोमीजक्ति बहुमान पूर्वक उपयोग सहित सुणे क्योंकि गुरु पासों धर्म सुननेंसें इस लोक परलोकमें बहुत गुण होता है.

तथा गुरुको पूछे, किसी साधुकों रोगादि होवे,तदा वैद्यकों बोलाउं?ओष धिका योग मिलावुं?इत्यादि गुरु गछकी सर्व तरेंसें खबर सार लेवे,जोजनके अ वसरमें उपाश्रयमें जा करकें साधुओंकों निमंत्रणा करे,तथा ओपधि पथ्यादि जो जिसकों योग्य होवे, सो देवे, जब साधु, श्रावकके घरमें आवे, तब जो जो वस्तु साधुके योग्य होवे, सो सो सर्व वस्तुकों देने वास्ते निमंत्रणा करे, सर्व वस्तुओंका नाम लेवे,जेकर साधु नहींजी लेवे,तोजी दाताकों जीर्णशेठ वत् पुण्य फल है.रोगी साधुकी प्रतिचर्या करणेंसें जीवानंद वैद्यवत् महापुण्य फल होता है. साधुओंके रहेनेकों स्थान देवे, तथा जिनशासनके प्रत्यनी ककों सर्वशक्तिसें निवारण करे, तथा साधवीयोंकों डुष्ट, नास्तिक,डुःशील जनोंसें रक्षा करे, अपने घरके पास बंदोवस्त वाला गुप्त उपाश्रय रहनेकों देवे, उनोंकी अपणी स्त्री, बहू, बहिन, बेटी प्रमुखसें सेवा जक्ति करावे, अपणी बेटीयोंकों साधवीयोंसें विद्या शिखलावे, जेकर किसी बेटीकों वैरा ग्य चढे, तब साधवीयोंकों दे देवे, जे कर कोइ साधवी धर्मकृत्य जूल जावे, तदा स्मरण करा देवे, जेकर कोइ साधवी अन्यायमें प्रवृत्त होवे, तो निवार ण करे, तथा आप रोज गुरुपासों नवीन नवीन शास्त्र पढे, जेकर बुद्धि थो मी होवे, तदा ऐसा विचारे कि सुरमेंदानीमेंसें थोडा थोडा अंजन नि कलनेसें अंजन क्षय हो जाता हैं,तथा वर्मीका बंधणा,ऐसें परिश्रम अन्या स करणेसें निःफल दिन न जाने देवे, थोमी बुद्धिजी होवे तोजी पढने का अन्यास न ठोडे, इत्यादि धर्मकृत्य करकें पीछें जेकर राजा श्रावक होवे, तदा राजसजामें जावे, प्रधान होवे, तो न्याय सजामें जावे,वणिया होवे, तदा हट्टीबजारमें जावे, इत्यादि उचित स्थानमें जा करकें धर्मसें विरुद्ध न होवे, उसी रीतिसें धन उपार्जनेकी चिंता करे.

प्रथम राजा किस रीतिसें प्रवर्त्ते, सो लिखते हैं. १ जो राजा होवे, सो दरिडी. मान्य,अमान्य, उत्तम,अधमादि सर्वलोकोका पक्षपात रहित मध्य

स्थ हो कर न्याय करे, २ राजाके कारजारी (मंत्री) आदिक तिनका धर्माविरोध यह है, कि राजाका अरु प्रजाका नुकशान न होवे, तैसें प्रवर्त्ते, क्योंकि जो मंत्री राजाका हित वांछता है, उस उपर प्रजा द्वेष करती है. अरु जो प्रजाका हितकारी है उसकों राजा छोड देता है, इसी वास्ते राजमंत्री आदिकोंकों दोनोका हितकारी होनां चाहियें.

वणिक् व्यापारी लोकोंका धर्माविरोध यह है. जो व्यापारकी शुद्धि करे ॥ तथैव चाह ॥ विवहारसुद्धि देसा,इ विरुद्ध चाय उचिय चरणेहिं ॥ तो कुणइ अत्थचिंतं, निवाहितो नियं धम्मं ॥ १ ॥ अस्यार्थः— व्यापारकी शुद्धि, देशादि विरुद्धका त्याग, उचित आचरण, इन तीनो प्रकारें करकें धन उपार्जनेकी चिंता करे, अरु अपणे धर्मकार्य्य निर्वाह करे. क्योंकि ऐसा कोइ कार्य नहीं है, कि:— जो धनसें सिद्ध न होवे ? तिस वास्ते बुद्धिमान् धन उपार्जनेमें यत्न करे ॥ यदाह ॥ नहि तद्विद्यते किंचि. यदर्थेन न सिद्ध्यति ॥ यत्नेन मतिमांस्तस्मा, दर्थमेकं प्रसाधयेत् ॥ १ ॥ इहां जो अर्थ चिंता है, सो अनुवादरूप है, क्योंकि धन उपार्जनेकी चिंता लोकमें स्वतःही सिद्ध है. कुछ शास्त्रकारके उपदेशसें नहीं. अरु 'धर्म निर्वाहयन्' यह जो कहनां है, सो विधेय करने योग्य है, क्योंकि इसकी आनें प्राप्ति नहीं है, शास्त्रका जो उपदेश है, सो अप्राप्त अर्थकी प्राप्ति वास्ते है, शेष सर्व अनुवादादि रूप है. अथ आजीविका चलानेके प्रकार कहते है.

आजीविका जो है, सो सात प्रकारसें है. १ व्यापार करनेसें, २ विद्यासें, ३ खेती करनेसें, ४ पशुओंके पालनेसें. ५ कारीगरी करनेसें, ६ नोकरी करनेसें, ७ भीख मांगनेसें. तिनमें वणिज्य करनेसें वणिक लोकोंकी आजीविका है. २ विद्यासें वैद्यादिकोंकी आजीविका है. ३ खेती करनेसें करसाणादिकोंकी है. ४ पशुपालनेसें गोपाल अजापालादिकोंकी है. ५ शिल्प करकें चितारादिकोंकी है. ६ नोकरी करनेसें सिपाही लोकोंकी है. ७ भिक्षा करकें मांग खानेवालोंकी आजीविका है. तिनमें १ वाणिज्य सो धान्य. घृत. तैल. कापास. सूत्र. वस्त्र. धातु. मणि. मोती. रूपइया. सोनइया प्रमुख जितनी जातका किरियाणा है, सो सर्व व्यापार है. अरु जो व्याज देनां है. सोभी व्यापार है.

२ विद्यासें औषधि, रस. रसायन, चूर्ण. अंजनादि. वास्तुक शास्त्र. शकुन

का शकुन, भूत भविष्यतादि निमित्त, सामुद्रिक, चूडामणि, जवाहिर परख नेका शास्त्र, धर्म, अर्थ, काम, ज्योतिष तर्कादि भेदसें अनेक प्रकारकी है. इस वैद्यविद्यामें अतारपणां, पंसारीपणां करनां ठीक नहीं, क्योंकि इसमें प्रायः दुर्ध्यान होनेसें बहुत गुण नहिं दिखता है, क्योंकि जिसकों जिस्से लाभ होता है, वो उसी बातकों चाहता है ॥ तदुक्तं ॥ आर्या ॥ विग्रहमि छंति भटा, वैद्याश्च व्याधिपीडितं लोकं। मृतकं बहुलं विप्राः, क्षेमसुभिक्षं च निर्ग्रंथाः ॥ १ ॥ अर्थः– सुभट संग्राम चाहते है, वैद्य रोगपीडित लोकों कों चाहते हें, अरु ब्राह्मण बहुत लोकोंकों मरणां चाहते हें, तथा निरुप द्रव सुकालकों साधु निर्ग्रंथ चाहते हें, परंतु जो वैद्य अत्यंत लोभी होवे, धन लेने वास्ते उलटा औषधि जानके देवे, जिसके मनमें दया न होवे, जो त्यागी साधुओंकी औषधि न करे, जो दरिद्री अनाथादि लोकोंकों म रते जानकेभी धन खोस लेवे, मांस मद्यादि अभक्ष्य वस्तुका भक्षण क रनां बतावे, जूठी औषधि बनाके लोकोंकां ठगे, वो वैद्यविद्या नरककी देने वाली है, सो न करनी चाहियें. अरु जो वैद्य सत् प्रकृति वाला होवे, लोभी न होवे, पूर्वोक्त दूषण रहित होवे, परोपकारी होवे, ऐसेकी वैद्य विद्या श्रीऋषभदेवजीके जीव जीवानंद वैद्यकी तरें दोनों भवोमें गुण देने वाली है, ऐसी वैद्यविद्यासें आजीविका करे, तो अछी है.

३–४ तीसरी खेती, चौथा पशुपालक, उसमें खेतीभी तीन तरेंसें होती है, एक मेघसें, दूसरी कूप नहरादिसें, तीसरी दोनोंसें. चौथा पशु पालक पणां, सो गौ, महिष, बकरी, ऊंट, बैल, घोडा, हाथी, इनकों बेच बेचके आ जीविका करणी, ये खेती अरु पशुपाल्य, यह दोनों काम विवेकीकों क रने उचित नहीं. जे कर इनके करे विना निर्वाह न होवे, तदा बीज बो नेका काल जाणे, भूमि सरस नीरस जाणे, अरु जो खेत पहिलां वाया विना बोया न जावे, दूसरा रस्तेका क्षेत्र, यह दोनो, दूरसें वर्जे, तो धन की वृद्धि होवे, अरु जो पशुपाल्य पणां करे, तो पशुओं ऊपर निर्दय न होवे, पशुका कोइ अवयव न छेदे. इसी तरें पशुपालपणा करे.

५ पांचमी शिल्प आजीविका है, सो शिल्प सौ तरेंका है, मूल शिल्प तो पांच हैं, १ कुंभार २ लोहार, ३ चितारा, ४ वणकर, अर्थात् गुननेवा ला, ५ नाइ, इन पांचोंके वीश वीश भेद है, यद्यपि इस [illegible] न्यूनाधि

कनी होवेंगें, परंतु श्रीऋषजदेवजीने प्रथम सौ तरेंहीका शिल्प पर्याकों शिखलाया था, इस वास्ते सोही लिखाहै. जो सांसारिक विद्या है, सो सवेंकोइ शिल्पमें है, कोइ कर्ममें है, शिल्प गुरु उपदेशसें आताहै, सोही है. अरु कर्म स्वयमेवही आ जात्ता है, यह कर्मनी सामान्यसें चार प्रकारें है, १ उत्तम बुद्धिसें धन कमाता है, २ मध्यम हाथोंसें कमावे. ३ अधम पगोंसें कमावे, ४ अधमाधम मस्तकसें बोजा ढो कर कमावे.

६ सेवा करकें आजीविका करे, सो सेवा राजाकी, मंत्रीकि, शेठकी, सामान्य लोकोंकी, नोकरी यह चार प्रकारें है. प्रथम तो नौकरी किसी कीनी न करनी चाहियें, क्योंकि नोकर परवश हो जाता है, जे कर निर्वाह न होवे, तदा नौकरीनी करे, परंतु जिसकी नौकरी करे, उसमें यह कहे हूए गुण होवे, तो उसके उहां नोकर रहे, जो १ कानोंका डुर्वल न होवे, २ सूरमा होवे, ३ कृतज्ञ होवे, ४ सात्विक, गंनीर, धीर, उदार, शीलवान्, गुणोंका रागी होवे, उसकी नौकरी करे, अरु जो क्रूर प्रकृति वाला होवे, कुव्यसनी होवे, लोनी होवे, चतुर न होवे, सदा रोगी रहे, मूर्ख होवे, अन्यायी होवे, असोंकी नौकरी न करे, क्योंकि कामंदकीय नामक नीति शास्त्रमें लिखा है, कि जिस राजाकी वृद्ध पुरुषोंनें सेवा करी होवे, सो राजा अछा है, स्वामीकोनी चाहियें कि जैसा सेवक होवे, तैसा उसका सन्मान करे, सेवकनी थके हूए, नूखे हूये, क्रोधमें हूये, व्याकुल होये. तृषावंत होये, शयन करने लगे, डूसरेके अर्ज करते हूये, इन अवस्थायोंमें स्वामीकों विनति न करे, तथा राजाकी माता, राजाकी राणी, राजकुमार, मुख्यमंत्री, अदालती, राजेका दरवाजेवान, इनके साथ राजाकी तरें वर्त्तना चाहियें. इस रीतीसें प्रवर्त्ते, तो धनकी प्राप्ति डुर्लन नहीं ॥ यडूचे ॥ श्लोक ॥ इक्षुक्षेत्रं समुद्रश्च, यौनिपोषणमेव च ॥ प्रसादो नूनुजां चैव, सद्यो घ्नंति दरिद्रतां ॥१॥ निंदंतु मानिनां सेवा, राजादीनां सुखैषिणः ॥ स्वजनाः स्वजनोद्धार, संहारो न विना तया ॥ २ ॥ मंत्री, श्रेष्ठी, सेनानी इत्यादि व्यापारनी सर्व नृपसेवाके अंतर्नावही हैं, परंतु जेहलखाने का दरोगादि, नगरका कोटवालपणां, सीमापाल, इत्यादि नौकरी न करणी चाहियें, क्योंकि यह नौकरीयों निर्दयी लोकोंके करनेकी हैं, तिस वास्ते श्रावककों नहीं करनी. जे कर कोइ श्रावक राजाधिकारी हो जावे,

तव वस्तु पालादिक मंत्रीयोंकी तरें महाधर्म कीर्त्तिका करनेवाला होवे, श्रावक मुख्यवृत्ति करकें तो सम्यग्दृष्टिकीही नौकरी करे.

७ सातमी भीख मांगनेसें आजीविका है, सो भीख मांगनेकेभी अनेक भेद हैं. तिनमें धर्मोपष्टंभ मात्र आहार, वस्त्र, पात्रादिककी भिक्षा लेवे, सो भी जिस साधुने सर्वसंसार और परिग्रहका संग त्यागा है, तिसकों मांगनी उचित है, क्योंकि उसकी भीख मांगनेंसें और गति नहीं है, श्रीहरिभद्रसूरिजीने पांचमे अष्टकमें भिक्षा तीन प्रकारकी लिखी है, प्रथम भिक्षा सर्व संपत्करी, दूसरी पौरुषघ्नी, तीसरी वृत्तिभिक्षा है, जो साधु परिग्रहका त्यागी, धर्मध्यान संयुक्त, जिनाज्ञासहित होनेसें षट्कायके आरंभसें रहित, तिसकी भिक्षा सर्व संपत्करी है, तथा जो साधु तो बन गया है, परंतु साधुके गुण उसमें नहि हैं, तथा जो गृहस्थावासमें लष्ट पुष्ट षट्कायका आरंभी पडिमावहे विनाका श्रावक, तथा और गृहस्थ जों मांगकें खावे, तिसकी पौरुषघ्नी भिक्षा है, वो पुरुष धर्मकी लाघवताका करने वाला है, पूर्वजन्ममें जिनाज्ञा खंडने वाला है, आगें अनंत जन्म लग दुःखी रहेगा, तथा जो निर्धन, अंधा, पांगला, असमर्थ, और कोइ काम करने समर्थ नहीं, वो भीख मांगकें खावे, तो तीसरी वृत्तिभिक्षा है, यह भिक्षा दुष्ट नहीं. इस भीखके मांगनेंसें लघुतादि धर्मके दूषण नहीं होते हैं, क्योंकी जो इनकों देता है, वो अनुकंपा (दया) करकें देता है, देनेवाला पुण्य उपार्जन करता है, इस वास्ते गृहस्थकों भीख न मांगनी चाहियें. धर्मी श्रावककों तो विशेष करकें भीख न मांगनी चाहियें, भिक्षा मांगनेंसें धर्मकी निंदा, अरु धर्मकी निंदासें दुर्लभबोधी होता है, भीख मांगनेंसें उदर पूर्ण तो हो जाता है, परंतु लक्ष्मी नहीं होती है ॥ यतः॥ लक्ष्मीर्वसत्ति वाणिज्ये, किंचिदस्ति च कर्षणी ॥ अस्ति नास्ति च सेवायां, भिक्षायां न कदाचन ॥१॥

मनुस्मृतिके चौथे अध्यायमेंभी लिखा है, कि जव वाणिज्य करे तव कष्टमें सहायक, पूंजीका वल, स्वभाग्योदय, देश काल, देखकें करे, वाणिज्य करणे लगे, तव पहिला थोडा करे, पीछें लाभ जाणे, तो यथायोग्य करे, कदाचित् निर्वाहके न हूये खरकर्मभी करे, तोभी अपणे आपकों निंदता हूआ करे, विना देखा विना परीक्षाके सौदा न लेवे, जो सौदा संदेह वाला

होवे, वो बहुतोंके साथ मिल कर लेवे, जहां स्वचक्र परचक्रादिका उपद्रव न होवे, अरु धर्म सामग्री होवे, तिस क्षेत्रमें व्यापार करे.

कालसें अट्ठाही तीन, पर्वतिथिके दिन व्यापार न करे, जो वस्तु वर्षा कालके साथ विरोधि होवे, सो त्यागे, भावसेंती जो क्षत्रिय जातिका व्यापारी राजा प्रमुख होवे, तिसके साथ व्यापार न करे, अपणे विरोधीकों उधारा न देवे, तथा नट विट वेश्या, जुआरी प्रमुखकों तो विशेष करकें उधारा नहींही देवे, हथीयारबंधके साथ तथा व्यापारी ब्राह्मणके साथ लेन देन न करे, मुख्य तो अधिक मोलका गहनां रखकें व्याज देवे, क्योंकि उस्सें मांगनेका क्लेश, विरोध, धर्महानी, धरणादिक कष्ट नहीं होते हें, जे कर अैसें निर्वाह न होवे, तदा सत्यवादीकों व्याज उधार देवे, व्याज भी एक, दो, तीन, चार, पांच प्रमुख सैंकडे पीछें महीनेमें भले लोक जिसको निंदे नहीं, अैसा लेवे.

जेकर देनां होवे, तदा करार उपर विन मांग्याही देनां चाहियें, कदाचित् निर्धनपणेसें एकवारमें दे न सके, तो किशत प्रमाणें जरुर दे देवे, क्योंकि देनां किसीका न रखनां चाहियें ॥ यदुक्तं ॥ धर्मारंभे ऋणछेदे, कन्यादाने धनागमे ॥ शत्रुघातेऽग्निरोगे च, कालक्षेपं न कारयेत् ॥१॥ जे कर देनां न उतरे, तव उसका नोकर रहकर भी देनां उतार देवे, नहींतो भवांतरोंमें उसका कर्मकर (चाकर) महिष, बैल, उंट, खर, खच्चर, घोडा प्रमुख बन कर देनां पडेगा, लेने वालाभी जव जान लेवे, कि यह देने समर्थ नहिं तव बिलकुल मांगनां छोड देवे, अैसें कहे कि जब तूं देने समर्थ होवेगा, तब दे देनां, नहीं तो यह धन में अपणें धर्ममें लगाया, वहीमें लिख देता हूं, तेरेसें में कुछ नहीं लेवुंगा ?

श्रावककों मुख्यवृत्ति तो धर्मीजनोंसेंही व्यवहार करनां चाहियें, क्योंकि दोनों पासें धन रहेगा तो धर्ममें लगेगा, अरु किसी म्लेछ पास धन रहि जावे, तदा व्युत्सर्जन कर देवे, व्युत्सर्जन करां पीछें जेकर वो म्लेछ फेर धन दे देवे, तदा वो धन धर्ममें खरचणे वास्ते संघकों सोंप देवे, अरु व्युत्सर्जन करा है, अैसाभी कह देवे, अैसेही जो कोइ वस्तु खोइ जावे, अरु ढुंढनेसें न मिले, तो तिस वस्तुकाभी व्युत्सर्जन कर देवें, पीछें कदाचित् अपने पास

धनहानी हो जावे, धनकी अप्राप्ति हो जावे, तोजी खेद न करे, क्योंकि खेदका न करणां, यही लक्ष्मीका मूल कारण हे,
बहुत धन जाता रहे, तोजी धर्म करणेमें आलस न करे, क्योंकि संपदा अरु आपत् बडे आदमीकोंही होती हे, सदा एक सरिखे दिन किसीके नहीं जाते हें, पूर्व जन्म जन्मांतरके पुण्यपापोदयसें संपदा, विपदा होती हे, इस वास्ते धैर्यका अवलंबनां श्रेष्ठ हे, यदा अनेक उपाय करनेसेंजी दरिद्र दूर न होवे, तदा किसी जाग्यवान्का आधार लेवे, अर्थात् सांजी धनके व्यवहार करे, क्योंकि काष्ठके संग लोहाजी तर जाता हे.

जे कर बहुता धन हो जावे, तदा अजिमान न करे, क्योंकि लक्ष्मीके साथ पांच वस्तु होती हें, १ निर्दयत्व, २ अहंकार, तृष्णा, ४ कठिन वचन बोलनां, ५ वेश्या, नट, विट, नीच पात्र, वल्लज होते हे, इस वास्ते बहुत धन हो जावे तो इन पांचोंकों, अवकाश न देवे, किसीके साथ लडाइ न करे, जबदस्तके साथ तो विशेष करकें लडाइ नहिं करे, तथा १ धनवंत, २ राजा, पक्षवाला, ४ बलवान्, ५ दीर्घरोषी, ६ गुरु, ७ नीच, ८ तपस्वी, इन आठोंके साथ वाद न करे, जहां तक नरमाइसें काम बने, तहां तक कठिनाइ न करे, लेने देनेमें ज्रांति जूलादिकसें अन्यथा हो जावे, तो विवाद न करे, किंतु न्यायसें जगडा मिटावे, न्याय करनेवालेकोंजी निर्लोजी पक्षपात रहित होनां चाहियें, तथा जिस वस्तुके महंगे होनेमें पर्यायकों पीडा होवे, असी वस्तुके महिंगे होनेकी चिंता न करे, परंतु कर्मयोगसें डुर्निक्षादिक हो जावे. तबजी सौदेमें डुणे तिणे लाज हो जावे, तदा अन्नमें अधिक न लेवे, तथा एक, दो, तीन, चार, पांच रुपइये सेंकडेमें अधिक व्याज न लेवे, किसीका गिर पडा धन न लेवे, तथा कालांतरमें क्रयविक्रयादिमें देशकालादि अपेक्षा उचित शिष्टजन अनिंदित लाज होवे, सो लेवे. यह कथन प्रथम पंचाशकसूत्रमें लिखा हे, तथा खोटा तोल, खोटा मापो, न्यूनाधिक वाणिज्य रसमें जेल संजेल न करे, वस्तुका अनुचित मोल, अनुचित व्याज, लंचा अर्थात् घुस, कोटवटी न लेवे, घसा हूआ तथा खोटा रुपकादि किसीकों खरेमें न देवे, दूसरोंके व्यापारमें जंग न करे, ग्राहक न बकावे, बानकी और न दिखावे, अंधेरा करके वस्तु न बेचे, जाली खत पत्रादि न बनावे, इत्यादि परवंचन प

णाकों वर्जे, सर्वथा प्रकारें व्यवहार शुद्धि करे, क्योंकि व्यवहार शुद्धिही गृहस्थ धर्मका मूल है.

तथा स्वामिद्रोह, मित्रद्रोह, विश्वासघात, बालद्रोह, वृद्धद्रोह, देवगुरुद्रोह न करे, थापणमोसा न करे, ये सर्व महापापके काम वर्जे, तथा कूडी साक्षी, रोष, विश्वासघात, कृतघ्नपणा, ये चारों कर्मचंडालपणां है, तिसको वर्जे, झूठ जो है, सो सर्व पापोंसें वडा पाप है, इस वास्ते झुठ सर्वथा न बोले, न्यायसें धन उपार्जन करे, अरु जो अन्यायी लोक सुखी दिखते हैं, वो अन्यायसें सुखी नहीं है, किंतु उनके पूर्व जन्मके पुण्यके फलसें सुखी हैं, क्योंकि कर्मफल चार तरेंका है ॥ यदाहुर्धर्मघोषसूरिपादाः ॥ एक पुण्यानुबंधी पुण्य है, दूसरा पापानुबंधी पुण्य है, तीसरा पुण्यानुबंधी पाप है, चोथा पापानुबंधी पाप है, यह चार प्रकार जो हैं, तिनकूं किंचित् विस्तार पूर्वक कहते हैं.

१ जिसने जिनधर्म नहीं विराध्या है, किंतु संपूर्ण आराधकें जो संसारमें भवांतरमें महा सुखी धनाढ्य उत्पन्न होवे, भरत बाहुबलकी तरें, सो पुण्यानुबंधी पुण्य है.

२ जो पुरुष नीरोगादि गुणयुक्त होवे, अरु धनाढ्यभी होवे, परंतु कोणिकराजाकी तरें पाप करणेमें तत्पर होवे, यह पुण्य पूर्व भवमें अज्ञान कष्ट करणेसें होता है, सो पापानुबंधी पुण्य है.

३ जो पुरुष पापके उदयसें दरिद्री अरु दुःखी होवे, परंतु श्रीजिनधर्ममें वडा अनुरक्त होवे, धर्म करणेमें तत्पर होवे, सो पुण्यानुबंधी पाप है, यह द्रुमकमहर्षिवत्. पूर्व भवमें लेश मात्र दयादि सुकृत करणेसें होता है.

४ पापी चंड कर्मका करनेवाला निर्धर्मी, निर्दय, पाप करकें पश्चात्ताप रहित यह पुरुष दुःखीया है. तोभी पाप करणेमें तत्पर है, सो पापानुबंधी पाप हैं, काल सौकरिकादिवत्.

बाह्य जो नव प्रकारका परिग्रह रूप ऋद्धि है, अरु अंतरंग जो आत्माकी अनंत गुण रूप ऋद्धि है, सो पुण्यानुबंधी पुण्यसें होती है, औसें जे कर कोइ जीव पापानुबंधी पुण्यके प्रभावसें इस लोकमें सुखी दीखता है, तोभी आगले भवमें महा आपदा पावेगा, अरु जो महसूलकी चोरी है, सो स्वामिद्रोहमें है, यह चोरी इस लोक अरु परलोकमें अनर्थकी दाता

है. जिसमें दूसरोंकों पीमा होवे, ऐसे व्यवहार न करे॥ यतः॥ इंद्रवज्र वृत्तं। शाठ्येन मित्रं कपटेन धर्मं, परोपतापेन समृद्धिजावं॥ सुखेन विद्यां परुषेण नारी, वांछंति ये व्यक्तमपंडितास्ते॥ १ ॥ तथा जिसतरें लोकोंको राग जाव होवे तेसें यत्न करे॥ यतः ॥ वंशस्थ वृत्तं ॥ जितेंद्रियत्वं विनयस्य कारणं, गुणप्रकर्षो विनयादवाप्यते ॥ गुणप्रकर्षेण जनोनुरंज्यते, जनानुरागप्रजवाहि संपदः ॥ १ ॥ तथा धनहानि, वृद्धि, संग्रहादि, गुह्य, दूसरोंके आगें प्रकाश न करे ॥ यतः ॥ अनुष्टुप्वृत्तं ॥ स्वकीयं दारमाहारंसुकृतं द्रविणं गुणं ॥ दुष्कर्म मर्म मंत्रं च, परेषां न प्रकाशयेत् ॥ १ ॥ तथा कुवनी न बोले, जेकर राजा गुरु आदिक पूछे, तो सत्य कह देवे सत्य बोलनां सोही पुरुषकी परमदशा है.

तथा यथार्थ कहनेसें मित्रका मन हरे, तथा बांधव जनोंकों सन्मानसें वश करे, तथा स्त्रीकों प्रेमसें वश करे, तथा चाकरोंकों दान देनेसें वश करे. तथा दाक्षिण्यता करके इतर लोकोंका मन हरे, तथा किसी जगे अपणे कार्यकी सिद्धि करने वास्ते पुष्ट जनोंकोजी अगुवे, (आगडी) करे, तथा जिस जगे प्रीति होवे, तहां लेने देनेका व्यापार न करे, यह कथन सोमनीतिमेंजी है.

तथा साक्षी विना मित्रके घरमेंजी धनादिक रखनां न चाहियें, क्योंकि लोज बमा दुर्दांत है, तथा जो धन रखनेवाला मर जावे तो वो धन उसके पुत्रादिककों दे देनां चाहियें, जे कर धन रखने वालेका कोइजी संबंधी न होवे, तब वो धन सर्वलोकोंके समक्ष धर्मस्थानमें लगा देवे, तथा श्रावक, देवगुरु, चैत्य, जिनमंदिरकी चाहे सच्ची, चाहे कुजीजी शपथ अर्थात् [illegible] न खावे, तथा दूसरोंका साक्षीजी न बने, यत कर्पासि [illegible] [illegible] विक्रयादेस दशकोसादूर [illegible] जायं, पथि हास्यं द्विधा कुविः [illegible]

होवे, सो लेवे. यह कथन प्रथम पंचाशकमूः॥

तोल, खोटा मापो, न्यूनाधिक [illegible] [illegible] [illegible] करे, क्यों [illegible] सर्व

मोल, अनुचित व्याज,

[illegible] यानीअपरक्रादि [illegible]

[illegible] च, पंचानर्थाः मयं कृताः [illegible]

[illegible]

शमें जावे, उक्तमपि ॥ जीवंतोपि मृताः पंच, श्रुयंते किल जारते॥दरिद्री व्याधितो मूर्खः, प्रवासी नित्यसेवकः ॥ जे कर निर्वाह न होवे, तदा आप तथा पुत्रादिककोंको परदेशमें न भेजे; किंतु सुपरीक्षित गुमास्तेकों भेजे, जेकर स्वयमेव देशांतरमें जावे, तदा भला मुहूर्त्त शकुन निमित्त देखकें अरु देव गुरुकों वंदना करकें मंगलपूर्वक भाग्यवान् साथकें वीचमें निद्रादि प्रमाद वर्जकें कितनेक अपने ज्ञातियोंकों साथ ले कर जावे, क्योंकि भाग्यवान्के साथ जातां विघ्न टल जाता है. तथा लेनां, देनां, गभा हूवा धन, सर्व, पिता, भाई, पुत्रादिकोंकों कह जावे, अपणे संबंधीयोंकों भली शिक्षा दे जावे, वहुमान पूर्वक सर्वेकों वोलाकें जावे, परंतु जो जीवनेकी इछा होवे, तो देव गुरुका अपमान करकें, किसीकों निर्भर्त्सकें, स्त्रीयादिककों ताडना कूटना करकें, वालककों रुदन करवा करकें न जावे. कदापि कोइ पर्व महोत्सवादिकका दिन निकट होवे, तदा उत्सव करकें जावे ॥यतः॥ उत्सवमशनं सर्वं, प्रगुणं चोपेक्ष्य मंगलमशेषं ॥ असमापिते च सूतक, युगेंऽगनर्त्तौ च नो यायात्॥ १॥ तथा दूध पीकें, मैथुन करकें, स्नान करकें, अपणी स्त्रीकों हणकें, वमन करकें, थूंककें, रुदन करकें, कठिन शब्द सुणकें, गालीयां सुणकें, प्रदेशकों न जावे, तथा शिर मुंमन करवाकें, आंसु गिराकें, खोटे शुकनके हूयें ग्रामांतर न जावे.

तथा कार्यके वास्ते जब चले, तब जौनसा स्वर वहता होवे, उस पासेका पग पहिला उठाकें धरे, जिस्से कार्यसिद्धि होवे, तथा रोगी, वूढा, ब्राह्मण, अंधा, गौ, पूजनिक, राजा, गर्भवती स्त्री, भार उठानेवाला, इनकों कुछ दे कर ग्रामांतरमें जावे. तथा धान्य पका वा कच्चा पूजा योग्य मंत्र में मल, इनकों त्यागे नहीं, तथा स्नानका जल, रुधिर, मुरदा, थूंक, श्लेष्म, विष्टा, मूत्र, वलती अग्नि, साप, मनुष्य, शस्त्र, इनकां उल्लंघे नहीं, तथा नदीके कांठे, गौओंके गोकुलमें, वम वृक्षके हेठ, जलाश्रयमें, अरु कूपकांठे, इतने जगो पर विष्टा न करे, तथा रात्रिकों वृक्ष हेठ न रहे, उत्सव, सूतक, पूरा हूये परदेशकों जावे, विना साथके न जावे, दासकेसाथ न जावे, मध्यान्हमें तथा अर्द्धरात्रिमें मार्गमें न चले, तथा क्रुर प्रकृतिवाला मनुष्य, कोटवाल, चुगल, दरजी, धोवी प्रमुख अरु कुमित्र, इतनोंके साथ गोष्टि न करे, इनोके साथ अकालमें चले नहीं, तथा महिष, गर्दभ, अरु

यह कथन हितोपदेशमालामें लिखा है, कि देश, काल, राज, अरु धर्म विरुद्ध जो त्यागे, सो पुरुष सम्यग्धर्मको प्राप्त होता है.

तिनमें देशविरुद्ध तो जैसें किः—सौवीरदेशमें खेती करणी, लाटदेशमें मदिरा बनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरभी जो जिस देशमें शिष्टजनोंके अनाचीर्ण है, सो तिस देशमें विरुद्ध जाननां. जाति कुलादि अपेक्षा जो अनुचित होवे, सो देशविरुद्ध है, जैसें ब्राह्मण जातिकों सुरापान करनां, तिल लूणादि वेचनां, सो कुलापेक्षा विरुद्ध है, तथा जैसें चोहाणाकों मद्यपान करनां तथा और देशवालोंके आगे और देशवालोंकी निंदा करणी, यहभी देशविरुद्ध है.

तथा कालविरुद्ध, सो जैसें हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी जंगल तथा मरुदेशमें वर्षातमें अत्यंत पिछिल (पंक) संयुक्त दक्षिण समुद्रके पर्यंत नागोमें, तथा अति दुर्भिक्षमें, दो राजाओंका परस्पर विरोध होनेसें, धाम्ने रस्ता रोका होवे, दुरुत्तार महाअटवीमें, सांझकी वेला जयमें, इतने स्थानकोंमें तैसा सामर्थ्य सहायादि दृढ बल विना जावे, तो प्राण धन नाशादि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीछें तिलोंका व्यापार, तिल पीलाने, तिल भक्षण करने, वर्षाऋतु चउमासेमें पत्र शाकका ग्रहण करणां, तथा बहुजीवाकुल भूमिमें हल फेरानां यह महा दोषका कारण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेनां.

तथा राजविरुद्ध यह है, किः—राजाके दोष बोलनां, जिसकों राजा माने तिसकों न माननां, तथा राजाके वैरीयोंसें मेल करनां, राजाके शत्रुके स्थानमें लोभसें जानां, राजाके शत्रुके पासों आयेके साथ व्यापार करनां, राजाके काममें अपणी इच्छासें विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है, किः—नगरनिवासियोंके साथ प्रतिकूलपणा करणां, तथा स्वामिद्रोह करणां, लोकोंकी निंदा करणी, गुणवान् अरु धनवानकी निंदा करणी, अपणी वडाइ करणी, सरलकी हांसी करणी, गुणवानूमें मत्सर रखनां, कृतघ्नत्व करणां, बहुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी संगति करणी, लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, भले आचार वालेकों कष्ट पडे तब राजी होनां, अपनी शक्तिके हुये साधर्मीके कष्टकों दूर न करनां, देशादि उचिताचार लंघन करनां, थोडे धनके हूए उं

कोंका वेष रखनां, मैले वस्त्र पहिरने, इत्यादि लोक विरुद्ध है. यह सर्व इस लोकमें अपयशकां कारण है ॥ यदुवाच वाचकमुख्यः ॥ लोकः खल्वाधारः, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ॥ तस्माल्लोकविरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यं॥१॥ अर्थः—उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हैं, कि—सर्वधर्म करने वालोंके लोकजन समुदाय आधार है, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों त्यागने योग्य हैं, क्योंकि ऐसें करनेंसें धर्मका सुखें निर्वाह होता है, लोक विरुद्धकें त्यागनेसें सर्व लोकोंकों वल्लभ होता है, अरु जो लोकोंकों वल्लभ होनां है, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज है.

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हैं. मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गौ आदिककों निर्दय होकें ताडनां, बांधनां, जूं, मांकडादिकों निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कंघीसें लीख फोडनी, उष्ण कालमें तथा शेष कालमें चौडा, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी छानके पीछे जीवोंकों युक्तिसें पाणीमें न गेरनां, तथा अन्न, इंधन, शाक, दाल, तांबूल, अरु फलादिकोंकों विना शोधें खानां, तथा अक्षत, सोपारी, खारीक, वाल्ह, उलि, फली प्रमुख संपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिककों धारा बांधकर पीवे, तथा चलतेमें, बैठनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेतां रांधतां, धान छडतां, पीसतां, औषधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजल, तंबोलका उगाल गेरतां उपयोगसें न करे, तथा धर्ममें अनादर करें, देव, गुरु, अरु साधर्मीसें द्वेष धरे, जिनमंदिरका धन खावे, अधर्मीकी संगति करे, धर्मीयोंका उपाहास करे, कषाय बहुलता होवे, तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकर्म करनां, पापकी नौकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध है, यह पांच प्रकारका विरुद्ध श्रावककों त्यागनां चाहियें.

अथ उचित आचरण कहते हैं. उचित आचरण सो, पितादि नव प्रकारकी है. स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रंथसें लिखते हैं. एक पिताके साथ उचित, दूसरा माताके साथ उचित, तीसरा भाइयोंके साथ. चौथा स्त्रीके साथ, पांचमा पुत्रके साथ, छठा स्वजनके साथ, सातमा गुरुके साथ, आठमा नगरवालोंके साथ, नवमा परतीर्थी अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करणां.

यह कथन हितोपदेशमालामें लिखा है, कि देश, काल, राज, विरुद्ध जो त्यागे, सो पुरुष सम्यग्धर्मको प्राप्त होता है.

तिनमें देशविरुद्ध तो जैसें कि:—सौवीरदेशमें खेती करणी, लाटदेशमें मदिरा वनानी, यह देश विरुद्ध है, तथा औरजी जो जिस देशमें शिष्ट जनोंके अनाचीर्ण है, सो तिस देशमें विरुद्ध जाननां. जाति कुलादि अपेक्षा जो अनुचित होवे, सो देशविरुद्ध है, जैसें ब्राह्मण जातिकों सुरापान करनां, तिल लूणादि वेचनां, सो कुलापेक्षा विरुद्ध है, तथा जैसें चोहाणाकों मद्यपान करनां तथा और देशवालोंके आगें और देशवालों की निंदा करणी, यहजी देशविरुद्ध है.

तथा कालविरुद्ध, सो जैसें हिमालयके पास अत्यंत शीतगर्मी अंमध तथा मरुदेशमें वर्षातमें अत्यंत पिच्छिल (पंक) संयुक्त दक्षिण समुद्रके पर्यंत जागोमें, तथा अति दुर्जिक्षमें, दो राजाओंका परस्पर विरोध होनेसें, धाकने रस्ता रोका होवे, दुरुत्तार महाअटवीमें, सांककी वेला भयमें, इतने स्थानकोंमें तैसा सामर्थ्य सहायादि दृढ वल विना जावे, तो प्राण धन नाशादि अनर्थकारि है, तथा फागुण मास पीछें तिलोंका व्यापार, तिल पीलाने, तिल जक्षण करने, वर्षाकृतु चउमासेमें पत्र शाकका ग्रहण करणां, तथा वहुजीवाकुल जूमिमें हल फेरानां यह महा दोषका कारण है, यह सर्व कालविरुद्ध जान लेनां.

तथा राजविरुद्ध यह है, कि:—राजाके दोष वोलनां, जिसकों राजा माने तिसकों न माननां, तथा राजाके वैरीयोंसें मेल करनां, राजाके शत्रुके स्थानमें लोजसें जानां, राजाके शत्रुके पासों आयेके साथ व्यापार करनां, राजाके काममें अपणी इछासें विधि निषेध करणां,

तथा लोकविरुद्ध यह है, कि:—नगरनिवासियोके साथ प्रतिकूल पणा करणां, तथा स्वामिडोह करणां, लोकोंकी निंदा करणी, गुणवान् अरु धनवान्की निंदा करणी, अपणी वमाइ करणी, सरलकी हांसी करणी, गुणवान्में मत्सर रखनां, कृतघ्नत्व करणां, वहुत लोकोंके जो विरोधी होवे, उसकी संगति करणी, लोकमान्यकी अवज्ञा करणी, जले आचार वालेकों कष्ट पमे तव राजी होनां, अपनी शक्तिके हुये साधर्मीके कष्टकों दूर न करनां, देशादि उचिताचार लंघन करनां, थोमे धनके हूए गुं

कोंका वेष रखनां, मेले वस्त्र पहिरने. इत्यादि लोक विरुद्ध हे. यह सर्व इस लोकमें अपयशकां कारण हे ॥ यदुवाच वाचकमुख्यः ॥ लोकः खल्वाधारः, सर्वेषां धर्मचारिणां यस्मात् ॥ तस्माल्लोकविरुद्धं, धर्मविरुद्धं च संत्याज्यं॥१॥ अर्थः—उमास्वाति पूर्वधारी आचार्य कहते हें, कि—सर्वधर्म करने वालोंके लोकजन समुदाय आधार हे, तिस वास्ते लोकविरुद्ध अरु धर्म विरुद्ध यह दोनों त्यागने योग्य हें, क्योंकि असें करनेंसें धर्मका सुखें निर्वाह होता हे. लोक विरुद्धके त्यागनेसें सर्व लोकोंको वल्लभ होता हे, अरु जो लोकोंको वल्लभ होनां हे, सोइ सम्यक्त्व तरुका बीज हे.

अथ धर्म विरुद्ध लिखते हें. मिथ्यात्वकी करणी, सर्व गो आदिककों निर्दय होकें ताडनां, बांधनां, जूं, मांकनादिकों निराधार गेरणे, धूपमें गेरणे, शिरमें कंघीसें लीख फोडनी, उष्ण कालमें तथा शेष कालमें चौ ना, लंबा, गाढा गलनां पाणी गलनेके वास्ते न रखनां, पाणी छानके पीछें जीवोंकों युक्तिसें पाणीमें न गेरनां, तथा अन्न, इंधन, शाक, दाल, तांबूल, अरु फलादिकोंकों विना शोधें खानां, तथा अक्षत, सोपारी, खारीक, वाल्ह, उलि, फली प्रमुख संपूर्ण मुखमें गेरे, टूटीके रस्ते, तथा पाणी आदिककों धारा बांधकर पीवे, तथा चलतेमें, बेठनेमें, स्नान करतां, हरेक वस्तु रखतां, लेतां रांधतां, धान छडतां, पीसतां, औषधि घसतां, तथा मूत्र, श्लेष्म, कुरलादि, काजल, तंबोलका उगाल गेरतां उपयोगसें न करे, तथा धर्ममें अनादर करे, देव, गुरु, अरु साधर्मीसें द्वेष धरे. जिनमंदिरका धन खावे, अधर्मीकी संगति करे. धर्मीयोंका उपहास करे. कषाय बहुलता होवे. तथा बहुत पापकारी क्रय विक्रय खरकर्म करनां. पापकी नोकरी करनी, इत्यादि सर्व धर्मविरुद्ध हे. यह पांच प्रकारका विरुद्ध श्रावककों त्यागनां चाहियें.

अथ उचित आचरण कहते हें. उचित आचरण सो. पितादि नव प्रकारकी हे. स्नेहवृद्धि कीर्त्यादि हेतु, सो हितोपदेशमाला ग्रंथमें लिखते हें. एक पिताके साथ उचित. दूसरा माताके साथ उचित. तीसरा भाइयोंके साथ. चौथा स्त्रीके साथ. पांचमा पुत्रके साथ. छठा स्वजनके साथ. सातमा गुरुके साथ. आठमा नगरवालोंके साथ. नवमा परतीर्थी अर्थात् दूसरे मतवालोंके साथ, यह नवके साथ उचित आचरण करनां.

१ तिनमें प्रथम पिताके साथ उचित आचरणः सो मन, वचन, अरु काया करकें तीन प्रकारें है, तिसमें काया करकें तो पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, किंकर दासकी तरें विनय करे, विना मुखसें निकलाही पिताका वचन प्रमाण करे, पिताके शरीरकी शुश्रूषा करे, पिताके चरण धोवे, मुठि चांपी करे, उठावे, बैठावे, देश काल उचित जोजन शय्या, वस्त्र, शरीर विलेपनादिका योग मिलावे, विनयसें करे, परंतु आग्रहसें न करे, आप करे, परंतु नौकरोंसें न करावे, पिताके वचन प्रमाण करणे वास्ते श्रीरामचंद्रजी राज्याभिषेक छोडकें वनवासमें गये, तथा पिताका वचन सुणया अणसुण्या न करे, मस्तक धुननां, कालक्षेप करे नहीं पिताके मनके अनुसारें प्रवर्त्ते, तथा सर्व कृत्योंमें यत्नपूर्वक जो अपने मनमें कार्य करणां उत्पन्न हुआ है, सो पिता आगें कह देवे, पिताके मनकों जो कार्य गमे, सो करे, क्योंकि माता, पिता, गुरु, बहुश्रुत, ये आराधे हूये सर्व कार्यका रहस्य प्रकाश देते हैं, माता, पिता, कदाचित् कठिन वचनजी बोलें, तो जी क्रोध न करे, जो जो धर्मका मनोरथ माता पिताके होवे, सो सो पूरे करे, इत्यादि माता पिताके साथ उचित आचरण करे.

माताके साथ उचित आचरण, सोजी पितावत् करे, परंतु माताके मनोरथ पितासेंजी अधिक पूरे, देवपूजा, गुरुसेवा, धर्म सुननां, देशविरति अंगीकार करणी, आवश्यक करणां, सात क्षेत्रोंमें धन लगानां, तीर्थयात्रा, अनाथ दीनका उद्धार करणां, इत्यादि माताके मनोरथ विशेष करकें पूर्ण करे, क्योंकि यह करणे योग्यही है, ये पूर्वोक्त कृत्य जैसे सपूत पुत्रों कों इस लोकमें गुरु, माता, पिता है, सो माता पिताकों जो पुत्र श्रीअर्हतके धर्ममें जोडे, तो ऐसा और कोइ उपकार जगत्‌में नहीं है, उस पुत्रने माता पिताका सर्व ऋण दे दीया, और किसी प्रकारसेंजी माता पिताका देणां पुत्र नहि दे सक्ता है, यह कथन श्रीस्थानांग सूत्रमें है.

अब यह मातपिताके उचिताचरणमें जो विशेष है, सो लिखते हैं. माताके चित्तके अनुसार प्रवर्त्ते, क्योंकि स्त्रीका स्वजावही ऐसा होता है, कि जलदी पीडाकों प्राप्त हो जाती, इस वास्ते जिस काममें माताकों पीडा होवे, सो काम न करे, क्योंकि पितासेंजी माता विशिष्ट है ॥ यदुक्तं ॥ श्लोक ॥ उपाध्यायाद्दशाचार्यः, आचार्याणां श

पिता ॥ सहस्रं तु पितुर्माता, गौरवेणातिरिच्यते ॥१॥ तथा औरोंनेंभी कहा है कि जहां तक दूध पीवे, तहां तक अपनी माता ऐसें पशु जानते हैं, तथा आहार न खावे तहां तक अधम पुरुष, माता जानते हैं, तथा जहां तक घरका काम करे, तहां तक मध्यम पुरुष, माता जानता है, अरु जहां तक जीवे, तहां तक तीर्थकी तरें माताकों उत्तम पुरुष मानते हैं. पशुओंकी माता पुत्रसें सुख मानती है, धन उपार्जे तो मध्यम पुरुषकी माता सुख मानती है, तथा पुत्र वीर होवे, संपूर्ण धर्माचरण करकें संयुक्त होवे, निर्मलचरितवाला होवे, तब उत्तम पुरुषकी माता संतोष पावे है.

२ अथ सहोदरके साथ उचित आचारण लिखते हैं. बडे भाइकों तो पिता समान जाने, अरु छोटे भाइकों सर्वकार्योंमें माने, तथा जे कर दूसरी माताका बेटा होवे, तो जैसें श्रीरामचंद्र और लक्ष्मणकी परस्पर प्रीति थी, तैसी प्रीति करणी चाहियें, ऐसेंही बडे भाइ अरु छोटे भाइकी स्त्रीयोंके साथ तथा पुत्र पुत्रीयोंके साथभी उचिताचरण यथायोग्य करे, परंतु पृथग्भाव न करे, भाइकों व्यापारमें पूछे, छानी बात न रक्खे, तथा धनभी भाइसें गुप्त (छानां) न रक्खे, अपणे भाइकों ऐसी शिक्षा देवे, जिस्सें उसकों कोइ धूर्त न ठग सके, जे कर भाइकों खोटी संगति लग जावे, तथा अविनीत होवे, तदा क्या करे? सो कहते हैं. जेकर अविनीत होवे, तदा आप शिक्षा देवे, तथा भाइके मित्र पासों उलांभा देवावे, तथा सगा संबंधियोंसें शिक्षा देवावे, काकासें, मामासें, सुसरासें, इनके पुत्रोंसें अविनीत भाइकों शिक्षा देवावे, अन्योक्ति करकें शिक्षा देवावे परंतु आप तर्जना न करे, अरु जे कर आप तर्जना करे, तब क्या जाने निर्लज्ज होकर निर्मर्याद हो जावे? सन्मुख बोल उठे? तिस वास्ते हृदयमें स्नेह सहित उपरसें जब भाइकों देखे, तब ऐसें जान पडे जो भाइ मेरे उपर बहुत वे राजी है, जब भाइ विनयमार्गमें आ जावे, तदा निःकपट मीठे वचन बोलकें प्रेम धरे. कदाचित् भाइ अविनीतपणा न छोडे, तब चित्तमें ऐसा विचारे कीः—इसकी प्रकृतिही ऐसी है, तब उदासीनपणेसें प्रवर्त्ते, तथा भाइकी स्त्री अरु पुत्रोंके साथ दान सन्मान देनेमें सम दृष्टि होवे, तथा दो मातके पुत्रकें साथ विशेष करकें दान सन्मान प्रेमादि करे, क्योंकि उसके साथ थोडाभी अंतर करे, तो उसकों वे प्रतीति

हो जावे, अरु लोकोंमें निंदा होवे, ऐसेंही माता, पिता अरु नाइके मान जो और जन हैं, तिनोंके साथभी यथोचित उचिताचरण विन लेनां ॥ यतः ॥ जनकश्चोपकर्त्ता च, यस्तु विद्यां प्रयच्छति ॥ अन्नदः प्रा दश्चैव, पंचैते पितरः स्मृताः ॥ १ ॥ राजपत्नी गुरोः पत्नी, पत्नीमाता तथै च ॥ स्वमाता चोपमाता च, पंचैता मातरः स्मृताः ॥ २ ॥ सहोदरः सह ध्यायी, मित्रं वा रोगपालकः ॥ मार्गे वाक्यसखा यश्च, पंचैते भ्रातरः स्मृ ताः ॥ ३ ॥ अस्यार्थः सुगमः ॥ तथा अपणे भाइकों धर्मकार्यमें अवश्य प्रेरणा करे, भाइकी तरें मित्रके साथभी उचिताचरण करे.

४ अथ स्त्रीके साथ उचित कहते हैं. स्त्री विवाहिताके साथ स्नेह संयुक्त वचन बोलकें स्त्रीकों अभिमुख करे, वल्लभ, और स्नेह संयुक्त वचन, निश्चय प्रेमका जीवन है, तथा स्त्री पासों स्नान करावे, अपणा स्नान पगचंपी प्रमुखमें स्त्री प्रत्यें प्रवर्त्तावे, जब स्त्री विश्वास पा करकें सच्चा स्नेह धरेगी तब कदापि बुरा आचारण न करेगी, तथा देश काल कुटुंब धनादि उचित वस्त्राभरण देवे, क्योंकि अलंकार संयुक्त स्त्री लक्ष्मीकी वृद्धि करती है, तथा स्त्रीकों रात्रिमें कहीं जाने न देवे, तथा कुशील पुरुषकी अरु पाखंडी भगत योगी योगीकोंकी संगति न करणे देवे, स्त्रीकों घरके काममें जोड देवे, तथा राजमार्गमें वेश्याके पाडेमें न जाने देवे, धर्मकृत्य पडिक्कमणा सामायिकादिक जे कर करणे वास्ते धर्मशाला उपाश्रयमें जावे, तदा माता बहिनादि सुशील धर्मिणी स्त्रीयोंकी टोलीमें जावे, आवे. घरका काम, दान देनां, सगे संबंधीका सन्मान करणां रसोइका कारण करणां यह सब करे, तथा प्रभात समयें शय्या उठावे, घर प्रमार्जन करे, दूधके बर्त्तन धोवे, चौकादि चुल्लेकी क्रिया करे, तथा जांगे धोने, अन्न पीसणां, गौ, भैंस दोहनी, दहिं विलोनां, रसोइ करणी, खाने वालोंकों पुरोसनां, जूठे बर्त्तन शुचि करने, सासु, भरतार, नणंद, देवर, इतनोंका विनय करनां, इत्यादि पूर्वोक्त कामोंमें स्त्रीकों जोडे, अर्थात् काम करणेमें तत्पर करे, जे कर स्त्रीकों पूर्वोक्त कामोंमें न जोडे, तब स्त्री, चपलतासें विकारकों प्राप्त हो जाती है, काममें लगे रहनेंसें स्त्रीकी रक्षा, गोपना होती है, तथा भरतार स्त्रीके सन्मुख देखे, बोलावे, गुणकीर्त्तन करे, धन, वस्त्र, आभूषण देवे, जिस तरें स्त्री कहे, उस तरें करे, स्त्रीकों दूर न छोडे, तब

वो स्त्रीका जरतार उपर अत्यंत प्रेम हो जाता है, तथा स्त्रीकों न देख नेसें, अतिदेखनेसें, देख कर न बुलानेसें, अपमान देनेसें, अहंकार कर नेसें, इन पूर्वोक्त वातोंसें प्रेम टुट जाता है.

तथा जरतार वहुत परदेशमें रहे, तव स्त्री कदाचित् अनुचित काम कर लेवे, इस वास्ते वहुत काल परदेशमेंजी न रहनां चाहियें. तथा स्त्री का अपमान न करे, स्त्री जूल जावे, तो शिक्षा देवे, रूस जावे, तो म ना लेवे, तथा धनकी हानी वृद्धि, घरका गुह्य, स्त्रीके आगें प्रगट न करे, तथा क्रोधमें आ करकें दूसरी स्त्री न विवाहे, क्योंकि दो स्त्री करनी महा दुःखोंका कारण है. कदाचित् संतानादिकके वास्ते दो स्त्रीजी कर लेवे, तदा दोनों उपर समजावसें प्रवर्त्ते, तथा स्त्री किसी काममें जूल जावे, तदा असी शिक्षा देवे, कि जे कर फेर वो स्त्री, उस कामकों न करे, त था रूसी स्त्रीकों जे कर नहिं मनावे, तो सोमजट्ट जार्या अंवावत् कूवेमें गिर पडे, इत्यादि अनर्थ करे. इस वास्ते स्त्रीसें सर्वकाम, स्नेहकारी वच नोंसें करावे, नतु कठिनतासें.

जेकर निर्गुण स्त्री मिले, तव विशेष करकें नरमाइसें प्रवर्त्ते, परंतु स्त्रीकों घरमें प्रधान न करे, जिस घरमें पुरुषकी तरें स्त्री सामर्थ्य प्रधान पणा करे, वो घर नष्ट हो जाते हैं, यह कहनां, वाहुल्यतासें है, क्योंकि को इक स्त्री तो असी बुद्धिमान् होती है, किः—जेकर उसकों पूछके कार्य करे, तो वहुत गुणके तांइ होता है, जैसें तेजपालकी जार्या, अनुपदे वीकों तेजपाल अरु वस्तुपाल पूछके काम करते थे, तथा स्त्री जव धर्म कार्योंमें तप करे, चारित्र लेवे, उद्यापन करे, दान देवे, देवपूजा, तीर्थया त्रादि करे, तथा यह वातोंकों करनेका मनमें उत्साह धरे, तव धन देवे सुशील सहायक दे कें उसका मनोरथ पूर्ण करे, परंतु अंतराय न करे, क्योंकि स्त्री जो धर्मकृत्य करेगी उसमेंसें पतिकोंजी पुण्य होगा, क्योंकि पति उस कृत्य करणेमें वहुत राजी रहे है ॥ इति ॥ ५ ॥

५ अथ पुत्रके साथ उचिताचरण लिखते हैं. पिता अपने पुत्रकों वाल अवस्थामें वहुत मनोज्ञ पुष्टाहारसें पोषे, स्वेछा नाना प्रकारकी क्रीडा क रावे, क्योंकि मनोज्ञ पुष्ट आहार देनेसें वालककों बुद्धि, वल, अरु कां तिकी वृद्धि होती है, स्वेछा क्रीडा करानेसें शरीर पुष्ट होता है, अरु अं

गोपांग संकुचित नहीं होते हैं ॥ पठंति ॥ श्लोक ॥ लालयेत् पंच वर्षाणि, दश वर्षाणि ताडयेत् ॥ प्राप्ते षोडशमे वर्षे, पुत्रो मित्रवदाचरेत् ॥१॥ तथा गुरु, देव, धर्म अरु सुखी स्वजन, इनकी संगति करावे, जली जाति कुलआचार, शीलवान् ऐसा पुरुषके साथ मित्राचार करावे, क्योंकि गुरु आदिकका परिचय होनेसें बाल्यावस्थामें जली वासनावाला हो जाता है वल्कलचीरीवत्. जाति, कुल, आचारशील संयुक्तकी मित्रतासें, देवयोगसें कदापि अनर्थजी आ पडे, तोजी जले मित्रकी सहायसें कष्ट दूर हो जाता है, जैसें अजयकुमारके साथ मित्रता करनेसें आर्डकुमारकों जली वासना हो गइ.तथा जब अढार वर्षका पुत्र हो जावे, तब उसका विवाह करे, क्योंकि बाल्यावस्थामें वीर्यदय हो जानेसें बुद्धि, पराक्रम अरु आयु अधिक नहीं होता है, सर्व जैनमतके शास्त्रोंमें ऐसेंही लिखा है, कि जब पुत्रकों जोगसमर्थ जाने, तब पुत्रका विवाह करे, तथा जिस कन्यासें विवाह करावे, उस कन्याका कुल, जन्म, रूप, सरिखा होवे, तब विवाह करावें,तथा पुत्रके उपर घरका जार सर्व गेरे, घरका स्वामी बना देवे. तथा जिस कन्यामें सरिखे गुण न होवे, उसके साथ विवाह करानां महा विडंबना है, विवाहजेद आगें लिखेंगे, जब पुत्रके उपर घरका जार हो वेगा, तब चिंताक्रांत होनेसें कोइजी स्वछंद उन्मादादि न करेगा, क्योंकि वो जान जावेगा कि, धन बडे क्लेशोंसें प्राप्त होता है, इस वास्ते अनुचित व्यय न करनां चाहियें, ऐसा वो आपसें जान जावेगा,परंतु पुत्रकी परीक्षा करकें पीछें उसके घरका जार डाल देवे, जैसें प्रसेनजित राजानें श्रेणिकपुत्रकों दीया,तथा पुत्रकी तरें पुत्रीके साथ अरु जत्रीजादिकके साथजी यथायोग्य उचित जान लेनां, ऐसेंही बेटेकी बहूके साथजी धनश्रेष्ठीकी तरें उचिताचरण करे, तथा प्रत्यक्ष पणे पुत्रकी प्रशंसा न करे, तथा जब कष्ट पके, तब दुःख सुखकी बात कहे, तथा आय व्ययका स्वरूप कहे, तथा पुत्रकों राजसजा देखावे, क्योंकि क्या जाने विना विचार्यां कोइ कष्ट आ पके, तब क्या करे? तथा कोइ दुष्टजन उपद्रव कर देवे, तब राजसजा विना छूटकारा नहीं होता है ॥ श्लोक ॥ तत्पठंति ॥ आर्या ॥ गंतव्यं राजकुले, दृष्टव्याराजपूजितालोकाः ॥ यद्यपि न जवंत्यर्था, स्तथाप्यनर्था विलीयंते ॥१॥ तथा पुत्रकों परदेशका आचार, व्यवहारादिकसें जानकार

करे, क्योंकि प्रयोजनके वशसें कदा काल देशांतरमेंभी जानां पमे, तो कोइ कष्ट न होवे, तथा दो मातके पुत्रके साथ विशेष उचित करे.

६ अब सगोंके साथ उचित करणां लिखते हैं, पिता, माता, स्त्रीके पक्षके जो लोक हैं, तिनकों स्वजन कहते हें, यह स्वजनोंका कोइ घरके वडे काममें तथा सदा काल सन्मान करे, तथा आपभी स्वजनोंके काममें अग्रेश्वरी बने, जो स्वजन धनहीन होवे, रोगातुर होवे, तिसका उद्धार करे, क्योंकि स्वजनका जो उद्धार करणां हे, सो तत्त्वसें अपणाही उद्धार करणां हे. तथा स्वजनके परोक्ष उनकी निंदा न करे, तथा स्वजनके वैरीयोंसें मित्राचारी न करे, स्वजनादिकसें प्रीति करणी होवे, तदा शुष्क कलह, हास्यादि, वचनकी लमाइ न करे, स्वजन घरमें न होवे,तो उसके घरमें एकिला न जावे, देव, गुरु, धर्म अरु धनके कार्यमें स्वजनोंके साथ सामिल रहे, जिस स्त्रीका पति परदेशमें गयां होवे, ऐसे स्वजनके घरमें एकिला न जावे, तथा स्वजनोंके साथ लेने देनेका व्यापार न करे ॥ तथाह ॥ यदीच्छेद्विपुलां प्रीतिं, त्रीणि तत्र न कारयेत् ॥ वाग्वादमर्थसंबंधं, परोक्षे दारदर्शनम् ॥ १ ॥ तथा इस लोकके कार्यमें स्वजनोंके साथ एक चित्त रहे, अरु जिनमंदिरादि कार्यमें तो विशेष करकें स्वजनसेंही मिलकें करे, क्योंकि ऐसे कार्य जे कर बहुतोंसें मिलकें करे, तोही शोभा है. इत्यादि स्वजनोचित जाननां.

७ अब गुरुउचित कहते हैं. धर्माचार्यके साथ उचित भक्ति आंतरंगकी बहुमान, वचन, कायाका आवश्यक प्रमुख कृत्य करणां, गुरु पासों शुद्ध श्रद्धा करकें धर्मोपदेश श्रवण करणां, गुरुकी आज्ञा माने मनसेंभी गुरुका अपमान न करे, गुरुके अवर्णवाद किसीकों बोलने न देवे, गुरुकी प्रशंसा सदा प्रगट करे, गुरुके प्रत्यक्ष वा परोक्ष स्तुति करे, गुरु स्तुति जो है, सो अगणित पुण्यबंधनेका कारण है, गुरुके छिद्र कदापि न देखे, गुरुसें मित्रकी तरें अनुवर्त्तन करे, गुरुके प्रत्यनीक निंदककों सर्व शक्तिसें निवारण करे, कदाचित् गुरु, प्रमादके वशसें कहीं चूक जावे, तब एकांत हितशिक्षा देवे, अरु कहे कि हे भगवन्! तुम सरीखोकों यह काम करणां उचित नाहिं, गुरुका विनय करे, गुरुके सन्मुख जावे, गुरु निकट आवे, तो आसन छोडकें खमा हो जावे, गुरुकों आसन देवे, गुरुकी पग

चंपी करे, गुरुकों शुद्ध, निर्दोष, वस्त्र, पात्राहारादि देवे, यह द्रव्योपचार करे, अरु जावोपचार सो गुरुका परदेशमें सदा स्मरण करे, इत्यादि.

८ अथ नगर निवासी जनोंका उचित कहते हैं. जिस नगरमें रहे, उस नगरके निवासी जनोके साथ उचित इसी प्रकारसें करनां किः–अपणे स रीखी जीन व्यापारीयोंकी वृत्ति होवे, उनके साथ जो एकचित्तसें सुख दुःख, व्यसन, कष्ट, राजउपद्रवादिमें बराबर रहे, उनकें उत्साहमें उत्साहवान् होवे, राजदरबारमें किसीकी चुगली न करे, तथा नगरनिवासीयोंसें फटे नहीं, सर्वसें मिल कर राजका हुकुम करे, क्योंकि जब निर्मल पुरुष बहुते एकठे होकें कार्य करे, तब तृणरज्जुवत् बलवान् हो जाते हैं, जब विवाद हो जावे, तब निःपक्ष होकें कार्य करे, किसीसें लंचा ले कें कूडा काम न करे, तथा किसीसें थोमीसी लमाइ हो जावे, तो उसका राजमें पुकार न करे, तथा राजाके कारजारीयोंसें लेने देनेका व्यापार न करे, क्योंकि उनलोकोंको नाणां देनेके अवसरमें क्रोध आ जाता है, तब वो कोइ और अनर्थ कर देते हैं, तथा समानवृत्ति नागरोंकी तरें असमान वृत्ति वाले नगरवासीयोंके साथजी यथायोग्य उचिताचरण करे ॥ ८ ॥

९ अथ परतीर्थी परमत वालोके साथ उचिताचरण लिखते हैं. जो परमतवाला जिक्षाके वास्ते उसके घरमें आवे, वो सर्वका उचित करे, तथा राजाका माननीयका विशेष उचित करे, उचित कृत्य सो यथायोग्य दान देनां चाहे, जे कर उन साधुओंकी मनमें जक्ति नहींजी होवे, तोजी घरमें मांगने आयेकों देनां चाहियें, क्योंकिः–दान देनां यह गृहस्थका धर्महीहै, तथा महंत कोइ घरमें आ जावे, तो आसन, दान, सन्मुख जानां, उठके खडा होनां प्रमुख करे, तथा परमतवाला किसी कष्टमें पमा होवे, तबा उसका उद्धार करे, दुःखी जीवोंकी दया करे, पुरुषापेक्षा मधुर आलापादि करे, तथा अन्यमतवालेकों कामका पूछनादि करे, जेसें कि आपका आनां किस प्रयोजनके वास्ते हूआ है? पीछें जो कार्य वो कहे, सो कार्य जे कर उचित होवे, तो पुरा कर देवे, तथा दुःखी, अनाथ, अंधा, बधीर, रोगी प्रमुख दीन लोकोंकी दीनताकों यथाशक्तिसें प्रतिकार करे, जो श्रावकादि पूर्वोक्त लौकिक उचिताचरणमें कुशल नहीं होवे, तो वो जिनमतमेंजी क्यों

कर कुशल होवेंगे ? तिस वास्ते अवश्य धर्मार्थीयोने उचिताचरणमें निपुण होनां चाहियें ॥ इति नवविध उचिताचरणं समाप्तं ॥

अब अवसरमें उचित बोलनां, यही बमा गुणकारी है, तथा औरजी जो कुशोजाकारी होवे, सो त्यागे ॥ उक्तं च विवेकविलासादौ ॥ जंजाइ, छींक, ऊकार, तथा हसनां, यह सब मुख ढांकके करे, तथा सनाके बीच नाकमें अंगुली नालके मैल न काढे, हाथ मोमे नहीं, पर्यस्तिका न करे, पग न पसारे, निद्रा विकथा न करे, सनामें कोइ बुरी चेष्टा न करे, जो कुलीन पुरुष है, सो अवसरमें हसे, तो होठ फरकने मात्र हसे, परंतु मुख फाडके न हसे, अपणा अंग वजावे नहिं, तृण तोडे नहिं, व्यर्थ नूमिमें लिखे नहिं, नखों करकें दांत घसे नहिं, दांतों करी नख न तोडे, अजिमान न करे, जाट चारणकी करी हुइ प्रशंसा सुनके गर्व न करे, अपणे गुणोंका निश्चय करे, बातकों समझके बोले, नीच जन जो अपनेकों हीन वचन कहे, तो उसकों बदलेकां हीन वचन न बोले, जिस वस्तुका निश्चय न होवे, सो बात प्रगट न कहे, जो कोइ पुरुष कार्य करे, अरु उस कार्य करणेमें वो समर्थ न होवे, तिसकों पहिलां वर्ज देवे, कहे कि यह काम तुम न करो, तथा कीसीका बूरा न बोले, जेकर वैरीका बूरा बोले, तो उसका अटकाव नहिं, परंतु सोजी अन्योक्ति करकें बोले, तथा माता, पिता, रोगी, आचार्य, पराहुणा, अज्यागत, जाइ, तपस्वी, वृद्ध, बाल, स्त्री, वैद्य, पुत्र, गोत्री, पामर, बहिन, बहिनोइ, मित्र, इन सबके साथ वचनकी लडाइ न करे, सदा सूर्यकों न देखे, तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणकों न देखे, ऊंडे (गहिरे) कूवेकों झुककें न देखे, संध्या समय आकाश न देखे, तथा मैथुन करतेकों, शिकार मारतेकों, नंगी स्त्रीकों, यौवनवंती स्त्रीकों, पशुक्रीडाकों, कन्याकी योनिकों, इतनेकों देखे नहीं, तथा तेलमें, जलमें, शस्त्रमें, मूतमें, रुधिरमें, इतनी वस्तुओंमें अपणा मुख न देखे, क्योंकि इस कामसें आयु टूट जाती है, तथा अंगीकार करेकों त्यागे नहिं, नष्ट हो गइ वस्तुका शोक न करे, किसीका निद्राछेद न करे, बहुतोंसें वैर न करे, जो बहुतोंकों सन्मत होवे, सो बोले, जिस काममें रस न होवे, सो न करे, कदापि करनां पमे, तोजी बहुतोंसें मिलकें करे, तथा धर्म, पुण्य, दया, दानादि शुज काममें बुद्धिमान् मुख्य होवे, अग्रेसरी

वने, तथा किसीके बूरे करनेमें जलदी अग्रेश्वरी न वने, तथा सुपात्र सा धुमें कदापि मत्सर ईर्ष्या न करे, तथा अपणे जातिवालेके कष्टकी उ पेक्षा न करे, पंच एकठे मिल कर आदरसें उनकी कष्ट दूर करे, तथा माननीयका मानभ्रंश न करे, तथा दरिद्रपीडित, मित्र, साधर्मिक, ज्या तिमें बुद्धिवाला होवे, तथा गुणों करकें वडा होवे, वहिन संतान रहित होवे, इन सर्वकी पालना करे,अपने कुलमें जो काम करने योग्य न होवे, सो न करे, इत्यादि. तथा नीतिशास्त्रोक्त तथा और शास्त्रोंमें जो उचिता चरण होवे, सोकरे, अरु अनुचित होवे, सो वर्जे, मध्यान्हसें पूर्वोक्त विधि सें विशेप करकें प्रधान शाल्योदनादि निष्पन्न निःशेप रसवती होवे, दूसरी वार जिनपूजा, जो मध्यान्हकी पूजा, अरु भोजन, इन दोनोका कालनियम नहीं, क्योंकि जब भूख लगे, सोइ भोजनकाल हे, इस वास्ते मध्यान्हसें पहिलांभी प्रत्याख्यान पारकें देव पूजापूर्वक भोजन करे, तो दोप नहीं, वैदकग्रंथोंमेंभी लिखा है, कि:—एक प्रहरमें दो वार भोजन न करे,तथा दो प्रहर उल्लंघे नहीं, क्योंकि एक प्रहरमें दो वार खानेसें रसोत्पत्ति हो ती है, अरु जेकर दो प्रहर पीछे न खावे, तो बलक्षय होता है.

अव सुपात्रदानादिककी युक्ति लिखते हैं. सो ऐसें है कि:—भोजन वेलामें भक्ति सहित साधुओंकों निमंत्रणा करकें, साधुके साथ घरमें आवे, अथवा साधु स्वयमेव आता होवे तव सन्मुख जाकें आदर करे, विनयसहित संविज्ञ भावित अभावित क्षेत्र देखे,तथा सुभिक्ष दुर्भिक्षा दिक काल देखे, तथा सुलभ दुर्लभादि देने योग्य वस्तु देखे, तथा आ चार्य, उपाध्याय, गीतार्थ, तपस्वी, वाल, वृद्ध, ग्लान, सह असहादि अपे क्षा करकें महत्व, स्पर्द्धा, मत्सर, स्नेह,लज्जा, भय, दाक्षिण्य, परानुयायि पणा, प्रत्युपकार, इच्छा, माया, विलंव, अनादर, बूरा वोलनां, पश्चात्तापादि. ये सर्व दानके दूपण वर्जकें आत्माकों संसारसें तारनेके वास्ते ऐसी बु द्धिसें वेंतालीश दूपण रहित जो कुछ घरमें अन्न, पकान्न, पाणी, वस्त्रादि होवे, तिसकी अनुक्रमसें सर्व निमंत्रणा करे, अपणे हाथमें पात्र लेके पास रही भार्यादिकसें दान दिलावे, पीछे वंदना करकें अपने घरके दर वाजे तक साथ जावे, फेर पीछा आवे, जे कर साधु न होवे, तदा विना वादलों मेघकी तरें साधुका आनां देखे, जे साधु आ जावे, तो मेरा जन्म स

फल हो जावे. इस वास्ते दिशावलोकन करे. जो भोजन साधुकों न दी या होवे. सो भोजन श्रावक न खावे. तथा जो श्रावक लष्ट पुष्ट साधु कों विना कारण अशुद्ध आहार देवे. तो लेने देने वाले दोनोंकों रोगी के दृष्टांत करिकें हितकारी नहिं है. तथा जिस साधुका निर्वाह न होवे. दुर्भिक्ष होवे. साधु रोगी होवे. तथा और कोइ कारण होवे. तो उस सा धुकों अशुद्ध अप्रासुक आहार देवे. तो लेने देने वाले दोनोंकों हितका री होवे. तथा रस्तेके थकेकों. रोगीकों. शास्त्र पढने वालेकों. लोच करे कों. पारणेके दिनकों. दान देवे. तो बहुत फल होता है. इस सुपात्र दानका नाम अतिथिसंविभाग कहते हैं ॥ यदागमः ॥ अतिहि संविभा गो नाम नायगयाणं ॥ इत्यादि पाठका अर्थ कहते हैं. अतिथि संविभाग उ सकों कहते है. कि जो न्यायसें आया कल्पनीय अन्न. पाणी प्रमुख. देश. काल. श्रद्धा सत्कार क्रमयुक्त उत्कृष्ट भक्तिसें आत्माकों अनुग्रह बुद्धिसें. संयत साधुकों दान देवे. सुपात्र दानसें देवता संबंधी तथा औदारिकादि संबंधी अद्भुत भोग इष्ट सर्व सुखसमृद्धि राज्य प्रमुख मनगमतासंयोगादि प्राप्ति. और निर्विलंब. निर्विघ्न. मोक्षफलप्राप्ति है. क्योंकि अभयदान. अरु सुपात्र दान. तो मोक्ष देते है. और अनुकंपादान. उचितदान. अरु कीर्ति दान. यह तीनो सांसारिक सुखभोगोंके देने वाले हैं.

पात्रभी तीन तरेंका कहा है. एक उत्तम पात्र साधु है. दूसरा मध्य मपात्र श्रावक है. तीसरा अविरतिसम्यग्दृष्टि. सो जघन्यपात्र है. तथा अनादर. कालविलंब. विमुख. खोटा वचन बोलना. अरु दान देके पश्चा त्ताप करणां. ये पांच सतुदानके कलंक है. तथा आनंदके आंशु आवे. रो मांच होवे. बहुमान देवे. मीठा बोले. दान दीये पीछे अनुमोदना करे. यह पांच सुपात्र दानके भूषण है. सुपात्रदानका परिग्रह परिमाण करने का फल. रत्नसार कुमारकी तरें होता है. यह कथा श्राद्धविधि ग्रंथसें जा न लेनी. इस वास्ते ऐसे साधु आदि संयोगके मिलेसें सुपात्रदान. दिन प्रतिदिन विवेकवान् अवश्य करे.

तथा यथाशक्ति भोजनावसरमें आये साधर्मीयोंकों अपने साथ भोजन करावे. क्योंकि वोभी पात्र है. तथा अंधे आदि मांगनेवालोंकोंभी यथा योग्य देवे. परंतु किसी मांगनेवालेकों निराश न जाने देवे. धर्मकी निंदा

न करावे, कठिन हृदयवाला न होवे, जोजनके अवसरमें दयावंतकों क पाट लगाने न चाहियें, उसमेंजी धनवान् तो विशेष करकें कपाट लगा वेही नहिं ॥ आगमेऽप्युक्तं ॥ नेव दारं पिहावेइ,जुंजमाणो सुसावउ॥अ णुकंपा जिणंदेहिं, सङ्घाणं न निवारिया ॥ १ ॥ दिठूण पाणिनिवहं, जीमे जव सायरंमि डुरकत्तं॥अविसेस अणुकंपं, डुहावि सामङउ कुणई॥२॥अ स्यार्थः—जोजन करतां हूआ दरवाजा जडे नहिं, क्योंकि अनुकंपादानश्रा वककों जिनेश्वर जगवान्ने मने नहीं करा है, जीवोंका समूहकों जयान क संसारमें डुःखर्पीमित देखकें विशेषरहित ड्रव्य अरु जाव दोनों तरेंसें अनुकंपा करे, उसमें ड्रव्यसें तो यथायोग्य अन्नादि देवे, अरु जावसें उ नकों सन्मार्गमें प्रवर्त्तावे, श्रीपंचमांगादिकमें जहां श्रावकोंका वर्णन करा है, तहां ऐसा पाठ है, "अवगुंिअ डुवारा" इस विशेषण करकें जिक्षुका दिकोंके प्रवेश वास्ते सदा किंवाड उघाडे रखे, दीनोद्धार तो संवत्सरी दान देनेंसें तीर्थंकरोनेजी करा है, कदापि काल डुकाल पड जावे, तबतो श्रावक जो होवे, सो विशेष करकें दीनोद्धार दान दिसें करे, क्योंकि आगेंजी विक्रमादित्यके संवत् १३१५में जद्रेसर गामके वसनें वाला श्रीमाल जाति शाह जगडु श्रावकने (११२) एक सौ बारह दानशाला करकें दान दीया है, तथा विक्रमादित्यके संवत् १४२९ में सोंनी सिंहा श्रावकने २४००० मण अन्न, दीन जीवोंकों डुकालमें दीया है, तथा निर्दूपण आहार देवे, तो सुपात्र दान शुरू है.

तथा माता, पिता, जाइ,वहिन, पुत्र, वहू, सेवक, ग्लान, अरु पांचे हूये गौ प्रमुख इन सर्वकी चिंता करकें अर्थात् इन सर्वकों जोजन करा पीठें पंच परमेष्टि स्मरण करकें, प्रत्याख्यान पारकें, सर्व नियम स्मरण क रकें, साम्यतासें जोजन करे. साम्यता ऐसें जाननी कि जो अन्न पाणी आपसमें विरुद्ध न होवे, तथा उलटा न परिणमे, आपणे स्वजावके मा फक होवे, तिसकों साम्य कहते हैं, जो पुरुष संपूर्ण जन्म तक साम्य तासें जोजन करे, वो कदी विपनी खावे, तोजी अमृत हो जावे, अरु अ साम्यतासें अमृत खायाजी विप हो जाता है, परंतु इतना विशेष है, किः—साम्यतासेंजी पथ्यही खानां चाहियें, नतु अपथ्यं. तथा खानेका अत्यंत रुद्धि न होनां चाहियें,कंठ नाकिसें जव हेठ उतर जाता है, तब

सर्व भोजन बराबर हो जाता है, इस वास्ते एक क्षणमात्रका स्वादके वास्ते अति लोल्यता न करनी चाहियें. तथा अभक्ष्य अनंतकाय, बहु सावद्य वस्तु. अर्थात् बहुत पापवाली वस्तु न खावे, तथा जो थोडा खाता है. सो बहुत बलादिवान् होता है. तथा जो बहुत खाता है, सो अल्प खानेके फलवाला होता है, तथा अधिक खानेसें अजीर्ण वमन विरेचनादि मरणांत कष्टभी हो जाता है ॥ श्लोक ॥ हितमितविपक्कभोजी, वामशयी नित्यचंक्रमणशीलः ॥ उज्झितमूत्रपुरीषः, स्त्रीषु जितात्मा जयति रोगान् ॥ १ ॥ अर्थः—जो भूख लगे तो हितकारी ऐसा अन्न थोडा जीमे, वाबा पासा हेठ करकें सोवे. नित्य चलनेका स्वभावशील होवे, जब बाधा होवे. तबही दिसामात्रा करे, स्त्रीसें भोग न करे, वो पुरुष रोगोंकों जीत लेता है.

अथ भोजनविधि, व्यवहार शास्त्रादिकोंके अनुसार लिखते हैं. अतिप्रभातमें. अतिसंध्यामें, तथा रात्रिमें भोजन न करनां चाहियें, तथा सडा, वास्या, अन्न न खावें. चलता हूआ न खावे. तथा जीमणा (दाहिण) पग ऊपर हाथ रखकें न खावे,हाथ ऊपर रखकें न खावे,खुल्ले आकाशमें न खावे, धूपमें बैठकें न खावे, अंधारेमें वृक्षके तलें न खावे, तर्जनी अंगुली ऊंची करकें कदापि न खावे, मुख, हाथ, पग, अरु वस्त्र, विना धोया न खावे,नंगा हो कर. मैले वस्त्रोंसें, दाहिणे हाथसें, थालकों विना पकडे, न खावे,धोती आदिक एक वस्त्र पहिरकें न खावे, भींजे वस्त्र पहिरकें न खावे,भींजे वस्त्रसें मस्तक लपेटकें न खावे, यदा अपवित्र होवे, तदा न खावे, अति गृद्ध रस लंपट हो कर न खावे, तथा जूते सहित, व्यग्रचित्त, निःकेवल भूमि ऊपर बैठकें अरु मंजे ऊपर बैठकें न खावे, विदिशिकी तर्फ तथा दक्षिणकी तर्फ मुख करकें न खावे, पतले आसनपें बैठकें भोजन न करे, तथा आसन ऊपर पग रखकें भोजन न करे, चंडालके देखते न खावे, जो धर्मसें पतित होवे, उसके देखते न खावे, तथा फूटे पात्रमें अरु मलीन पात्रमें न खावे, जो शाकादिक वस्तु विष्टासें उत्पन्न होवे, सो न खावे, बाल हत्यादि जिसने करी होवे इनने तथा रजस्वला स्त्रीने जो वस्तु स्पर्शी होवे, तथा जो वस्तुकों गाय, श्वान, पंखीने सूंघी होवे, तथा जो वस्तु अज्ञाती होवे, तथा जो वस्तु फेरके उष्ण करी होवे, सो न खावे, तथा

वचवचाट शब्द करकें न खावे, तथा मुख फाटे तो बुरा लगे ऐसें मुख करकें न खावे, तथा जोजनके अवसरमें दूसरोंकों बुलाकें प्रीति उपजावे, अपणे देवगुरुका नामस्मरण करकें समासन उपर बैठकें, जो अन्न अपनी माता, बहिन, ताइ, (पितासें बडे जाइकी औरत) जाणजी, स्त्रीप्रमुखनें रांध्या होवे, सो पवित्र पणे जोजन परोंसा हूआ उसकों, मौन करकें दाहिना स्वर चलते खावे, जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सूंघकें खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे,मुखकें स्वाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावें, तो रस हृएया जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति लवण खावे, तो नेत्र विगरू जाते हैं, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहित हो जाती है, तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कौमा द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जात है, तथा कषायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं.

जो पुरुष शाक न खावे. अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष, रोगोकों जींत लेता है, जोजन करती वखत पहिलां मीठा अरु स्निग्ध जोजन करे, वीचमें तीक्ष्ण जोजन करे, पीछें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुस्निग्धमधुरैः पूर्वं, मश्नीयादन्वितं रसैः ॥ द्रव्याम्ललवणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः॥

तथा जो पहिलां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कडुआ रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवंत अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीकों जोजनसें पहिलां पीवे, तो मंदाग्निका जनक है, तथा जोजनके विचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा जोजनके अंतमें पीवे,तो विष समान है, जोजनके अनंतर सर्वरससें लिप्त हूये हाथसें एक चलु रोज पीवे, पशुकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीछें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसें पाणी न पीवे, पाणी थोडा पीणां पथ्य है, पाणीसें जींजे हये हाथोंकों गला, तथा कपोल, हाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पुंजे,गोडे (जानु) का स्पर्श करे, तथा अंगमर्दन,दिसा जानां, जार उठानां, बेठनां

स्नान करनां, ये सर्व भोजन कीया पीछें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमान् पुरुष भोजन करकें बैठ जावे, तो पेट बमा हो जाता है, तथा उपरिकों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल वधे, वामे पासें सोवे, तो आयु वधे, भोजन करकें दौडे, तो मरण होवे, भोजन कीयां पीछें वामे पासें दो घडी तांइ सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नहीं तो सौ पग (सौ कदम) चले, (फिरे) अन्यत्रभी कहा है कि देवकों,साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोंकों, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जे कर शक्ति होवें, तो विवेकवान् पुरुष भोजन न करे. ऐसेंही "अजीर्ण प्रभवारोगा" इस वास्ते अजीर्णमेंभी भोजन न करे.

ज्वरकी आदिमें लंघन करनां श्रेष्ट है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोधज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर तथा नेत्ररोगके हूये लंघन करे.

तथा देव गुरुके वंदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते वखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करतां बमा पुण्य कार्य प्रारंभ करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, भोजन न करनां चाहियें. तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें बहुत गुणकारी है, तथा भोजन करा पीछें नमस्कार स्मरण करकें उठे, चैत्यवंदना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे, तथा भोजनके पीछें गंठिसहित दिवसचरिमं प्रत्याख्यान विधिसें करे, पीछें गीतार्थ साधु गीतार्थ श्रावक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपें स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंकों पढावे, स्वाध्याय करे, पीछें संध्यामें जिनपूजा करे, पीछें पमिक्कमणां करे, पीछें स्वाध्याय करे, पीछें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचंपी करे, पीछें घर जा कर सकल परिवारकों जोमकें धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमार्गे तो श्रावककों एक वारही भोजन करनां चाहियें ॥ यदभाणि ॥ उस्सग्गेणं तु सड्ढोय, सच्चित्ताहारं वज्जाउं ॥ इक्कासणग भोइअ, बंभयारि तहेव य ॥ १॥ जेकर एक भुक्त न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा भाग अर्थात् चार घमी दिन जब रहे, तब भोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घडी दिन रहनेसें पहिलांही भोजन कर लेवे, पीछें यथाशक्ति चार आहार, तीन

बचबचाट शब्द करकें न खावे, तथा मुख फाडे तो बुरा लगे ऐसें मुख करकें न खावे, तथा भोजनके अवसरमें दूसरोंकों बुलाकें प्रीति उपजावे, अपणे देवगुरुका नामस्मरण करकें समासन उपर बैठकें, जो अन्न अपनी माता, बहिन, ताइ, (पितासें बडे भाइकी औरत) भाणजी, स्त्रीप्रमुखनें रांध्या होवे, सो पवित्र पणे भोजन परोंसा हूआ उसकों, मौन करकें दाहिना स्वर चलते खावे, जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सूंघके खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखके स्वाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावें, तो रस हरणया जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति लवण खावे, तो नेत्र विगड जाते हैं, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहित हो जाती है, तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कोमल द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जात है, तथा कषायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं.

जो पुरुष शाक न खावे. अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष, रोगों कों जींत लेता है, भोजन करती वखत पहिलां मीठा अरु स्निग्ध भोजन करे, बीचमें तीक्ष्ण भोजन करे, पीछें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुस्निग्धमधुरैः पूर्वं, मश्नीयादन्वितं रसैः ॥ द्रव्याम्ललवणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः॥

तथा जो पहिलां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कडुआ रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवंत अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीकों भोजनसें पहिलां पीवे, तो मंदाग्निका जनक है, तथा भोजनके विचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा भोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान है, भोजनके अनंतर सर्वरससें लिप्त हूये हाथसें एक चुलु रोज पीवे, पशुकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीछें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसें पाणी न पीवे, पाणी थोडा पीणां पथ्य है, पाणीसें भींजे हये हाथोंकों गला, तथा कपोल, हाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पूंजे, गोडे (जानु) का स्पर्श करे, तथा अंगमर्दन, दिसा जानां, भार उठानां, बैठनां

स्नान करनां, ये सर्व भोजन कीया पीछें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमान् पुरुष भोजन करकें बैठ जावे, तो पेट वडा हो जाता है, तथा उपरिकों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो बल वधे, वामे पासें सोवे, तो आयु वधे, भोजन करकें दौडे, तो मरण होवे, भोजन कीयां पीछें वामे पासें दो घडी तांइ सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नहीं तो सौ पग (सौ भिंग) चले, (फिरे) अन्यत्रभी कहा है कि देवकों, साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोंकों, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जे कर शक्ति होवें, तो विवेकवान् पुरुष भोजन न करे. ऐसेंही "अजीर्ण प्रभवारोगा" इस वास्ते अजीर्णमेंभी भोजन न करे.

ज्वरकी आदिमें लंघन करनां श्रेष्ट है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोधज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर तथा नेत्ररोगके हूये लंघन करे.

तथा देव गुरुके वंदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते वखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करतां वडा पुण्य कार्य प्रारंभ करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, भोजन न करनां चाहियें. तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें बहुत गुणकारी है, तथा भोजन करा पीछें नमस्कार स्मरण करकें उठे, चैत्यवंदना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे. तथा भोजनके पीछें गंठिसहित दिवसचरिमं प्रत्याख्यान विधिसें करे. पीछें गीतार्थ साधु गीतार्थ श्रावक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपें स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंको पढावे, स्वाध्याय करे. पीछें संध्यामें जिनपूजा करे. पीछें पडिक्कमणां करे, पीछें स्वाध्याय करे. पीछें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचंपी करे. पीछें घर जा कर सकल परिवारकों जोककें धर्मका स्वरूप कथन करे. उत्सर्गमार्गे तो श्रावककों एक वारही भोजन करनां चाहियें ॥ यदुक्तम् ॥ उस्सग्गेणं तु सहोय, सच्चित्ताहारं वज्जउ ॥ इक्कासणग भोइय, बंभयारि तहेव य ॥ १ ॥ जेकर एक भुक्त न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा भाग अर्थात् चार घडी दिन जब रहे, तब भोजन कर लेवे. (जीम लेवे) दो घडी दिन रहनेसें पहिलांही भोजन कर लेवे. पीछें यथाशक्ति चार आहार, तीन

चबचबाट शब्द करकें न खावे, तथा मुख फाटे तो बुरा लगे ऐसें मुख करकें न खावे, तथा भोजनके अवसरमें दूसरोंकों बुलाकें प्रीति उपजावे, अपणे देवगुरुका नामस्मरण करकें समासन उपर बैठकें, जो अन्न अपनी माता, बहिन, भाइ, (पितासें बडे भाइकी औरत) भाणजी, स्त्री प्रमुखनें रांध्या होवे, सो पवित्र पणे भोजन परोसा हूआ उसकों, मौन करकें दाहिना स्वर चलते खावे, जो जो वस्तु खावे, सो नासिकासें सुंघके खावे, इसमें दृष्टिदोष नष्ट हो जाता है, तथा अति खारा, अति खट्टा, अति उष्ण, अति शीतल, अति शाक, अति मीठा, ये सर्व न खावे, मुखकें स्वाद मात्र खावे, क्योंकि अति उष्ण खावें, तो रस हएया जाता है, अति खट्टा खावे, तो इंद्रियोंकी शक्ति कम हो जाती है, अति लवण खावे, तो नेत्र विगम जाते हैं, अति स्निग्ध खावे, तो नासिका विषय रहित हो जाती है, तथा तीक्ष्णद्रव्य अरु कौमा द्रव्य खावे, तो कफ दूर हो जात है, तथा कषायेला अरु मीठा खावे, तो पित्त नष्ट हो जाता है, स्निग्ध घृतादिक खानेसें वायु दूर हो जाता है, बाकी शेष रोग जो हैं, सो न खानेसें दूर हो जाते हैं.

जो पुरुष शाक न खावे. अरु घृतसें रोटी खावे, तथा जो दूधसें चावल खावे, तथा बहुत पाणी न पीवे, अजीर्ण होवे, तदा खावे नहिं, सो पुरुष, रोगोंकों जीत लेता है, भोजन करती वखत पहिलां मीठा अरु स्निग्ध भोजन करे, बीचमें तीक्ष्ण भोजन करे, पीछें कौडी वस्तु खावे ॥ उक्तं च ॥ सुस्निग्धमधुरैः पूर्वं, मश्नीयादन्वितं रसैः ॥ द्रव्याम्ललवणैर्मध्ये, पर्यंते कटुतिक्तकैः॥

तथा जो पहिलां द्रव अर्थात् नरम वस्तु खावे, मध्यमें कडुआ रस खावे, अंतमें फेर नरम रस खावे, सो बलवंत अरु नीरोगी रहे, तथा पाणीकों भोजनसें पहिलां पीवे, तो मंदाग्निका जनक है, तथा भोजनके बिचमें पीवे, तो रसायन समान गुणकारी है, तथा भोजनके अंतमें पीवे, तो विष समान है, भोजनके अनंतर सर्वरससें लिप्त हूये हाथसें एक चलु रोज पीवे, पशुकी तरे पाणी न पीवे, पीया पीछें जो पाणी रहे सो गेर देवे, अंजलिसें पाणी न पीवे, पाणी थोडा पीणां पथ्य है, पाणीसें भींजे हये हाथोंकों गला, तथा कपोल, हाथ, नेत्र, इतने स्थानोंमें न लगावे, न पूंजे, गोडे (जानु) का स्पर्श करे, तथा अंगमर्दन, दिसा जानां, भार उठानां, बैठनां

स्नान करनां, ये सर्व भोजन कीया पीछें न करे, तथा कितनेक काल तांइ बुद्धिमान् पुरुष भोजन करकें वैठ जावे, तो पेट वडा हो जाता है, तथा उपरिकों मुख करकें चित्त हो कर सोवे, तो वल वधे, वामे पासें सोवे, तो आयु वधे, भोजन करकें दौडे, तो मरण होवे, भोजन कीयां पीछें वामे पासें दो घडी तांइ सोवे, परंतु निद्रा न लेवे, अथवा सोवे नहीं तो सौ पग (सौ भिंग) चले, (फिरे) अन्यत्रभी कहा है कि देवकों,साधुकों, नगरका स्वामी राजाकों तथा स्वजनोंकों, जब कष्ट होवे, तब तथा चंद्र सूर्यके ग्रहणमें जे कर शक्ति होवें, तो विवेकवान् पुरुष भोजन न करे. ऐसेंही "अजीर्ण प्रभवारोगा" इस वास्ते अजीर्णमेंभी भोजन न करे.

ज्वरकी आदिमें लंघन करनां श्रेष्ट है, परंतु वायुज्वर, श्रमज्वर, क्रोध ज्वर, शोकज्वर, कामज्वर, घावकीज्वर, इतने ज्वरकों वर्जकें शेष ज्वर तथा नेत्ररोगके हूये लंघन करे.

तथा देव गुरुके वंदनादिके अयोगसें, तथा तीर्थ अरु गुरुकों नमस्कार करण जाते वखत, तथा विशेष धर्मांगीकार करतां वडा पुण्य कार्य प्रारंभ करतां, अरु अष्टमी, चतुर्दशी आदि विशेष पर्वके दिन, भोजन न करनां चाहियें. तपका जो करणां है, सो इस लोक अरु परलोकमें वहुत गुणकारी है, तथा भोजन करा पीछें नमस्कार स्मरण करकें उठे, चैत्यवंदना करकें देव गुरुकों यथायोग्य वंदना करे, तथा भोजनके पीछें गंठिसहित दिवसचरिमं प्रत्याख्यान विधिसें करे, पीछें गीतार्थ साधु गीतार्थ श्रावक, तथा सिद्धपुत्रादिकोंके समीपें स्वाध्याय (पठन पाठन) यथायोग्य करे, योगशास्त्रमें लिखा है, कि जो गुरुमुखसें पढा होवे, सो औरोंकों पढावे, स्वाध्याय करे, पीछें संध्यामें जिनपूजा करे, पीछें पडिक्कमणां करे, पीछें स्वाध्याय करे, पीछें वैयावृत्य अर्थात् मुनिकी पगचंपी करे, पीछें घर जा कर सकल परिवारकों जोडकें धर्मका स्वरूप कथन करे, उत्सर्गमार्गे तो श्रावककों एक वारही भोजन करनां चाहियें ॥ यदभाणि ॥ उस्सग्गेणं तु सढोय, सचित्ताहारं वज्जउ ॥ इक्कासणग भोइअ, वंभयारि तहेव य ॥ १ ॥ जेकर एक भुक्त न करने सामर्थ्य होवे, तदा दिनका अष्टमा भाग अर्थात् चार घडी दिन जव रहे, तव भोजन कर लेवे, (जीम लेवे) दो घडी दिन रहनेसें पहिलांही भोजन कर लेवे, पीछें यथाशक्ति चार आहार, तीन

आहार, दो आहारका त्यागरूप दिवसचरिम सूर्य उगते तांइ करे,सो मुख्य वृत्तिसें तो दिन होतेही करनां चाहियें, परंतु अपवादमें रातकोंजी करे. इतिश्री तपगछीय गणिश्री मणिविजय तछिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय त शिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे श्राद्धविधि सूत्रानुसारेण श्रावक दिनकृत्यप्रकाशक नामा नवम परिछेदः संपूर्णः ॥ ९

॥ अथ दशम परिछेद प्रारंजः ॥

इस परिछेदमें श्रावकोंका एक रात्रिकृत्य, दूसरा पर्वकृत्य, तीसरा चौमासिककृत्य, चौथा संवत्सरीकृत्य, अरु पांचमा जन्मकृत्य,यह पांच कृत्य अनुक्रमसें लिखेंगे. तिसमें प्रथम रात्रिकृत्य लिखते हैं.

साधुके पास तथा पोषधशालादिमें यत्नपूर्वक प्रमार्जना पूर्वक सामायिक करकें प्रतिक्रमण करे, पीछें साधुओंकी पगचंपी करे, यद्यपि साधुने श्रावकके पासों उत्सर्गमार्गमें विश्रामणादि नहीं करावणी, तोजी श्रावक विश्रामणा करणेके जाव करे, तो महाफल है, पीछें श्राद्धदिनकृत्य श्रावकविधि, उपदेशमाला अरु कर्मग्रंथादि शास्त्रोंकी स्वाध्याय करे, पीछें सामायिक पारके घरमें जावे.

पीछें सम्यक्त्वमूल बारह व्रतमें, सर्वशक्तिसें यत्न करणादिरूप तथा सर्वथा अर्हत् चैत्य,अरु साधर्मिक वर्जित वासस्थानमें अनिवासरूप तथा पूजा प्रत्याख्यानादि अजिग्रहरूप, यथाशक्ति सप्त क्षेत्रमें धन खरचनरूप ऐसा यथायोग्य सकल परिवारकों धर्मोपदेश कथन करे, जेकर श्रावक अपणे परिवारकों धर्म न कहे, तब उन परिवारकों धर्मकी प्राप्ति न होवेगी, तो इस लोक परलोकमें जो वे पापकर्म करेंगे, सो सर्व उस श्रावककों लगेंगे, क्योंकि लोकमें यह व्यवहार है, कि:—जो चोरकों खाने पीनेकों देवे, सोजी चोर गिना जाता है. ऐसें धर्ममेंजी जान लेनां, इस वास्ते श्रावकने द्रव्य तथा जावसें अपने कुटुंबकों शिक्षा देनी चाहियें, उसमें द्रव्यसें तो पुत्र, कलत्र, बेटी प्रमुखकों यथायोग्य वस्त्रादि देवे, अरु जावसें तिनकों धर्मका उपदेश करे, तथा दुःखीये सुखीयेकी चिंता करे॥ अन्यत्राप्युक्तं॥ राज्ञि राष्ट्रकृतं पापं, राज्ञः पापं पुरोहिते ॥ जर्त्तरि स्त्रीकृतं पापं, शिष्यपापं गुरावपि ॥ १ ॥ धर्म देशना दीये पीछें, रात्रिका प्रथम प्रहर बीत्या पीछें शरीरकों हितकारी श

य्यामें विधिसें निद्रा अल्पमात्र करे, गृहस्थ बाहुल्यता करकें मैथुनसें व र्जित होवे, जे कर गृहस्थ जावजीव तक ब्रह्मव्रत पालने समर्थ न होवे, तदा पर्व तिथिके दिन तो अवश्य ब्रह्मचर्यव्रत पालनां चाहियें.

नींद लेनेकी विधि नीतिशास्त्रके अनुसारें यह हैः-जिस मांचेमें जीव पडे होवे, जो खाट गेटी होवे, नागी हुइ होवे, मैली होवे, दूसरे पाये संयुक्त होवे, तथा अग्निके बले काष्टकी खाट होवे, सो त्यागे, खाटमें तथा आसनमें चार जातकी लकमी लगे, तब तांइ तो शुभ है, परंतु पांचादि काष्ठ लगे, तो अशुभ है. तथा पूजनिक वस्तुके उपर न सोवे, तथा पाणीसें पग नींजे न सोवे, तथा उत्तर दिशि अरु पश्चिमदिशि तर्फ शिर करकें न सोवे, वांसकी तरें न सोवे, पगोंके ठिकाणी न सोवे, हाथीके दांतकी तरें न सोवे, देवताके मंदिरके मूलगंजारेमें, सर्पकी वंबी उपर, वृक्षके हेठ, तथा श्मशानमें सोवे नहीं, किसीके साथ लमाइ हुइ होवे, तदा मिटाकें सोवे, सोने वखत पाणी पास रखे तथा दरवाजा जमकें,इष्टदेवकों नमस्कार करकें वमी शय्यामें अछी तरें उढनेके वस्त्र समारकें, सर्वाहार त्यागकें, वामापासा नीचें करकें सोवे.

दिनकों सोवे नहीं, परंतु क्रोध, शोक, अरु मद्यके मिटाने वास्ते तथा स्त्रीकर्म, अरु नारके थकेवेकें मिटाने वास्ते तथा रस्तेके खेदके मिटाने वास्ते तथा अतिसार, श्वास, हिजकी प्रमुख रोग दूर करने वास्ते सोवे, तथा जो बाल होवे, वृद्ध होवे, बलक्षीण होवे, सो सोवे, तथा तृषा, शूल, गरु, गूमरुकी वेदन करकें विव्हल होवे, सो सोवे, तथा जिसकों अजीर्ण हुवा होवे, वाय हुवा होवे, जिसकों खुसकी हुइ होवे, तथा जिसकों रात्रिमें निद्रा थोडी आती होवे, वो दिनमेंनी सो जावे. तथा ज्येष्ठ अरु आषाढ महीनेमें दिनमेंनी सोनां अछा है, और महीनोमें सोवे, तो कफ अरु पित्त करता है, तथा बहूत नींद लेनी बहुत काल लग सूता रहनां अछा नहीं. तथा रातकों सोवे तदा दिशावकाशिक व्रत उच्चारकें सोवे, तथा चार सरणां लेवे, सर्व जीवराशिसें खामणां करे, अढारह पाप स्थानक व्युत्सर्जन करे, दुष्कृतकी निंदा करे,सुकृतानुमोदन करे, तथा ॥ जइ मे हुज्ज पमाउं, इमस्स देहस्स इमाइ रयणीये ॥ आहारसुवहि देहं, सवं तिविहेण वोसरियं ॥ १ ॥ नमस्कार पूर्वक इस गा

थाकों तीन वार पढे. साकार अनसन करे, पंच नमस्कार स्मरण सोनेके अवसरमें पढे, स्त्रीसें दूर अलग शय्यामें सोवे, जेकर निकट सोवे, तब एक तो विकार अधिक जागता है, तथा दूसरा जिस वासना युक्त पुरुष सोवे, सो जितना चिर जागे नहीं, उतना चिर उंही वासना उस पुरुषकों रहती है, इस वास्ते स्त्रीसें अलग दूसरी शय्यामें सोवे, तथा पागल (दीवाना) हो जावे, तथा मरणावसरमें गफलत हो जावे, तोजी तिसके जो सचित्त अवस्थामें वासनाथी,उंही वासना है, ऐसें जाननां॥ इत्यासोपदेशः ॥ इस वास्ते सर्वथा उपशांतमोह हो करकें, धर्म वैराग्यादि जावना करकें वासित हो करकें निद्रा करे, तो खोटा स्वप्न न होवे, जिस रीतिसें अच्छा धर्ममय स्वप्न देखे, इसी रीतिसें सोवे, जे कर कदाचित् उसका आयु समाप्तिजी हो जावे, तोजी वो अच्छी गतिमें जावे.

तथा सूतां पीछें रात्रिमें जब जाग जावे, तदा अनादि कालका अन्यास रससें कदाचित् काम पीडा करे, तब स्त्रीके शरीरका अशुचिपणा विचारे, अरु श्रीजंबूस्वामी तथा थूलिनद्रादि महा ऋपियोका तथा सुदर्शनादि महा श्रावकोंकी दुष्कृत शील पालनेमें दृढता विचारे, तथा कपायादि दोपके जीतनेका उपाय जो जवस्थिति अत्यंत दुःखदाता है, धर्म मनोरथ इनकी चिंतवणा करे, तिनमें स्त्रीके शरीरकों अपवित्रता, जुगुप्सनीयादि सर्व विचारे, जैसें श्रीहेमचंद्रसूरिजीनें योगशास्त्रमें लिखा है. तथा पूज्यश्री मुनिसुंदर सूरीजीनें अध्यात्मकल्पद्रुममें लिखा है, तैसें विचारे, सो लेशमात्र इहां लिखते हैं.

चाम, हाम, मज्जा, आंदरा, चरबी, नसा, रुधिर, मांस, विष्ठा, मूत्र, खेल, खंकारादि अशुचि पुजलका, पिंम स्त्रीका शरीर है, इस पिंममें तुं क्या रमणिक वस्तु देखता है ? जो विष्ठेकों दूरसें देख कर लोक थूथूकार करते हैं, वेही मूढ लोक विष्टे अरु मूत्रसें पूर्ण, ऐसें स्त्रीके शरीरकी अजिलाषा करते हैं ? विष्ठेकी कोथली बहुत छिद्रोंवाली जिसके छिद्रद्वारा कृमीजाल निकलते हैं, अरु कृमीजालसें जरी है, ऐसी स्त्री है, तथा चपलता, माया, कूट, ठगी, इनों करकें संस्कारी हुइ है, तातें जो पुरुप मोहसें इसका संग करे, जोगविलास करे, तिसकों नरकके तांइ है, ऐसी स्त्री विष्ठेकी कोथली जिसकें इग्यारों द्वारोंसें अशुचि जरती है,जिस द्वारकों सूंघो,

उसीमें महा सडे हूये कुत्तेके कलेवर समान दुर्गंध आती है, तो फेर का मीजन क्यों कर उन स्त्रीके शरीरमें रागांध होते हैं.? इत्यादि स्त्रीके शरीरकी अशुचि विचारे, वो पुरुषकों धन्य है, वो पुरुष जंबुकुमार. जिसने नवपरिणीत आठ पद्मिनी स्त्री, अरु निनानवे क्रोम सौनइये छिनकमें त्याग दीया, तिसका माहात्म्य विचारे, तथा श्रीयूलिजद्र अरु सुदर्शन शेठके शीलका माहात्म्य विचारे.

कषाय जींतनेका उपाय इस तरें करेः—क्रोधकों क्षमा करकें जींते, मानकों नरमाइसें जींते, मायाकों सरलताइसें जींते, लोजकों संतोषसें जींते. रागकों वैराग्यसें जींते. द्वेषकों मित्रतासें जींते. मोहकों विवेकसें जींते, कामकों स्त्रीके शरीरकी अशुचि जावनासें जींते, मत्सरकों परकी संपदा देखकें पीना न करनेसें जींते, विषयकों संयमसें जींते, अशुज मन, वचन. अरु काया इन तीनोंकों तीन गुप्तिसें जींते, आलसकों उद्यमसें जींते, अविरतिपणाकों विरतिपणासें जींते, इस प्रकार करकें यह सब सुखसें जींते जाते हैं. आगेंजी बहुत महात्माउने इनकों इसी तरे जींता हैं.

जवस्थिति महादुःखरूप है, क्योंकि चारां गतिमें जीव नाना प्रकारके दुःख पा रहे हैं. तिनमें नरकगतिमें तो सातों नरकोंमें क्षेत्रवेदना है, तथा पांच नरकोंमें परस्पर शस्त्रों करकें उदीरी वेदना है, तथा तीन नरकमें परमाधर्मिक देवताकृत वेदना है. आंख मींचके उघाके, इतना कालजी नरकवासी जीवोंकों सुख नहीं है. निःकेवल दुःखही पूर्व जन्मका करा हूआ पापोंसें उदय हूआ है. रात. अरु दिन, एक सरीखे दुःखमें जाते हैं. जितना नरकगतिमें जीव दुःखकों पावे है. उस्सें अनंतगुणा दुःख निगोदमें जीव पावे है. तथा तिर्यन्चगतिमें अंकुश. पराणा. लाठी. सोटा, शृंगमोटन, गलमोचन. तोडन. छेदन. जेदन दहन, अंकन, परवशादि, अनेक दुःख पावे है. तथा मनुष्य गतिमें गर्ज. जन्म. जरा, मरण. नानाप्रकारकी पीडा. रोग. व्याधि. दरिद्रता. माता. पिता. स्त्री. पुत्रका मरणादि अनेक दुःख पावता है. तथा देवगतिमें चवनका दुःख. दासपणेका दुःख. पराजव. ईर्ष्यादि अनेक दुःख है. इत्यादि जवस्थिति विचारे.

तथा धर्मसनोरथ जावना. जो श्रावकके घरमें जो ज्ञान. दर्शन. व्रत सहित में दासजी हो जाउं. तोजी अच्छा है. परंतु मिथ्यादृष्टिमें चक्रवर्त्ती राजाजी

न होउं? तथा कब में संविज्ञ सो संवेगी वैराग्यवंत गीतार्थ गुरुके चरणोंमें स्व जनादि संग रहित प्रव्रज्या ग्रहण करुंगा? तथा कब में तिर्यंचके पिशाच के नयसें निःप्रकंप हो कर श्मशानादिमें विधिपूर्वक कायोत्सर्ग करुंगा! तथा कब में तपसें कृश शरीर हो कें उत्तम पुरुषोंके मार्गमें चलुंगा? इत्यादिक भावनासें कामके कटककों जीते॥ इति श्राद्धविधि ग्रंथानुसार रात्रिकृत्यं॥

अथ श्रावकका पर्वकृत्य लिखते हैं. पर्व जो अष्टमी, चतुर्दशी आदिक दिवस, तिसमें धर्मकी पुष्टि करे तिसका नाम पोषध है, सो पोषधक जे व्रतवाले श्रावककों पर्वके दिनमें अवश्य करनां चाहियें, जे कर पर्वके दि न शरीरमे शाता न होवे तदा पोषध न कर सके, तो दो वार प्रतिक्रमणां करे, तथा बहुत वार सामायिक अरु दिशावकाशिक व्रत अंगीकार करे, तथा पर्वदिनोंमें ब्रह्मचर्य पाले, आरंभ वर्जे, विशेष तप करे, चैत्यपरिवाडी करे, सर्वसाधुउंकों नमस्कार करे, तथा सुपात्रदान, देवपूजा अरु गुरुभ क्ति, यह सर्व, और दिनोंसें विशेष करे, धर्मकरणी तो सर्वदिनोमें करणी अच्छी है, जे कर सदा न करी जावे, तो पर्वके दिन तो अवश्यमेव कर णी चाहियें, सो पर्व ये हैं, अष्टमी, चतुर्दशी, पूर्णमासी, अमावास्या. यह एक मासमें छे पर्व, अरु पक्षमें तीन पर्व, तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एका दशी, चतुर्दशी, यह पांच तिथि, तीर्थंकरोंनें कही है. उसमें दूजके दिन दो प्रकारका धर्म आराधना करनां. पंचमीके दिन ज्ञानकों आराधनां, अष्ट मीकों अष्टकर्मका नाश करणां, एकादशीमें इग्यारह अंगकों आराधनां, चतुर्दशीकों चौदह पूर्वकों आराधनां, यह पांच तथा पूर्वोक्त अमावास्या अरु पूर्णमासी एवं षट् पर्व हुये. अरु वर्षमें छे अठाइ पर्व है, चौमासी पर्वा दि पर्वोमें जेकर सर्वथा आरंभ न त्याग सके, तो स्वल्प स्वल्पतर आरं भ करे, तथा पर्वके दिन सर्व सचित्ताहार वर्जे, श्रावककों तो नित्यही स चित्ताहार वर्जनां चाहियें, जेकर शक्ति न होवे, तदा पर्वके दिन तो अव श्य वर्जे, तथा असें पर्वके दिनोंमें स्नान, शिर दिखाने, गूंथन करानां, व स्त्र धोनां, वस्त्र रंगनां, गाडा हलादि चलानां, धान्यका मूढक बंधनां, को ल्हू, अरहट चलानां, दलनां, छडनां, पीषणां, पत्र, पुष्प, फल तोडनां. सचित्त खडी हरमजीका मर्दन करनां, धान्य काटनां, लींपनां, माटी खा दनी तथा घर बनानां, इत्यादि आरंभ सर्व यथाशक्तिसें त्यागनां चाहियें.

तथा सर्व सचित्ताहार न त्याग सके, तो नाम लेकें कितनीक वस्तु खानेकी छूट रक्के, उपरांत त्याग देवे. तथा छेहों अठाइयोंमें जिनवर पूजा करनां, तप करनां, ब्रह्मचर्य पालनां, छेहों अठाइयोमें चैत्र तथा आसोजकी यह जो दो अठाइ हे, सो शाश्वती हे, इन दोनोमें वैमानिक देवताभी नंदीश्वरादिमें यात्रोत्सव करते हें, तथा तीन चौमासेकी तीन अठाइ अरु चौथी पर्यूषणकी तथा दो चैत्र अरु आसोजकी, यह सब मिल कर छे अठाइ हें.

तथा तिथि जो प्रजातसमय प्रत्याख्यानकी वेलामें होवे, सो जैनमतमें माननी प्रमाण हे, सूर्योदय अनुसारें लोकमेंजी दिनका व्यवहार होनेसें माननी प्रमाण हे, तथा च निशीथजाष्ये ॥ चउमासी अ वरीसे, पक्खिय पंचठमीसु नायबा ॥ ताउ तिहिउ जासिं, उदेइ सूरो न अन्नाउ ॥ १ ॥ पूआ पच्चक्खाणं, पमिक्कमणं तहय नियम गहणं च॥जीए उदेइ सूरो, तीए तिहिए उ कायवं ॥ २ ॥ उदयम्मि जा तिहि सा, पमाणमिअरी कीरमाणीए ॥ आणाजंगणवत्था, मिछत्त विराहणं पावे ॥ ३ ॥ अस्यार्थः—चौमासी, संवत्सरी, पक्षी, पंचमी, अष्टमी, ये तिथियां सूर्योदयमें होवे, तब प्रमाण हे, नान्यथा. पूजा, पमिक्कमणा, प्रत्याख्यान, तैसेंही नियम ग्रहण करनां सो जिस तिथिमें सूर्योदय होवे, तिसमें करनां चाहियें, जो तिथि सूर्योदयमें होवे, सो प्रमाण हे, तथा उदय तिथि विना जो कोइ और तिथि करे, माने, सो आज्ञाका विराधक, अनवस्था कारक, मिथ्या दृष्टि हे. पाराशरस्मृत्यादिमेंजी लिखा हे ॥ श्लोक ॥ आदित्योदयवेलायां, या स्तोकापि तिथिर्जवेत् ॥ सा संपूर्णेति मंतव्या, प्रजुता नोदयं विना॥ १ ॥ उमास्वातिवाचकप्रघोपश्चैवं श्रूयते ॥ क्षये पूर्वा तिथिः कार्या, वृद्धौ कार्या तथोत्तरा ॥ श्रीवीरज्ञाननिर्वाणं, कार्यं लोकानुगैरिह ॥ २ ॥

तथा श्रीअर्हतोंके जन्मादि पंचकल्याणकके दिनजी पर्व हें, जब दो, तीन, कल्याणक होवे, तब तो विशेष करकें पर्व माननां चाहियें, शास्त्रोंमें सुनते हें, कि श्रीकृष्ण वासदेव सर्व पर्व आराधनेमें अपणेकों असमर्थ जान कर श्रीनेमिनाथ अरिहंतकों पूछता हूआ कि, उत्कृष्ट पर्व कौनसा हे? तब जगवान् कहते जये कि हे कृष्ण वासुदेव! मगसिर शुक्क एकादशी, यह पर्व सर्वोत्तम हे, क्योंकि इस दिन श्रीजिनेंद्रोंके पांच कल्याणिक जयें हें, सर्व क्षेत्रोंके डेढ सौ कल्याणिक हूये हें, तब श्रीकृष्ण वासुदेवने

मौन पोषधोपवास करके तिस दिनकों माना, तबसेंही "यथा राजा तथा प्रजा." यह रीतिसें सब लोक एकादशी मानने लगे, सो आज तांइ प्रसिद्ध है,

तथा दूज, पंचमी, अष्टमी, एकादशी, चतुर्दशी, इन तिथियोंमें प्रायः जीवोंका परजवायु बंधता है, इस वास्ते इन तिथियोंमें विशेष धर्मकरणी करे, तथा पर्वके महिमाके प्रजावसें अधर्मी निर्दयादिजि धर्मी अरु दयावान् हो जाता है, कृपणजी धन खरच देते हैं, कुशीलजी सुशील हो जाते हैं, वो जयवंत रहो, कि जिसने संवत्सरी, चातुर्मासी आदि अठे पर्व कथन करे हैं, क्योंकि जो अनार्योंके चलाये पर्व हैं, तिनमें आग जलानां, जीव मारने, रोनां, पीटनां, धूल उमानी, वृक्षोंके पत्रादि तोमने, इत्यादि नाना प्रकारके पाप होते हैं, अरु जो पर्व, परमेश्वर अरिहंतने कहे हैं, उनमें तो निःकेवल धर्मकृत्यही करनां कहा है, इस वास्ते पर्वदिनमें पोषधादि करे, पौषधके जेद, अरु विधि, यह सब श्राद्धविध्यादि शास्त्रोंसें जान लेनां ॥ इति

अथ चौमासिककृत्य विधि लिखते हैं, चौमासेमें विशेष करकें नियम व्रत परिग्रह परिमाण करनां चाहियें, वर्षा (चौमासेमें) बहुत जीव उत्पन्न होते हैं, इस वास्ते विशेष नियमादि करनां चाहियें, वर्षादमें गाना चलानां, तथा हल फेरनां न करे, तथा राजादन, अर्थात् खिरनी आंबादिमें कीडे पम जाते हैं, सो न खाने चाहियें, देशोंका विशेष अपनी बुद्धिसें समझ लेनां, तथा नियमजी दो तरेंके है, एक सुनिर्वाह, दूसरा दुर्निर्वाह, तिनमें धनवंतोंकों व्यापार, अरु अविरतियोंकों सचित्तका त्याग, रसका त्याग, तथा शाकका त्याग करना, अरु सामायिकादि ये अंगीकार करनां यह दुर्निर्वाह है. अरु पूजा, दान, महोत्सवादि सुनिर्वाह है, अरु निर्धनोंकों इस्सें विपरीत जान लेनां, तथा चित्त एकाग्र करनां. यह तो सर्वहीको डुष्कर है, इनमें डुर्निर्वाह नियम न हो सके तो सुनिर्वाह नियम अंगीकार करे, तथा चौमासेमें ग्रामांतर न जावे, जे कर निर्वाह न होवे तो जिस गाममें अवश्य जानां है, तिसकों वर्जके और जगें न जावे सर्व सचित्तका त्याग करे, निर्वाह न होवे, तो परिमाण करे, तथा दो, तीन वार जिनराजकी अष्टप्रकारी पूजा करे, संपूर्ण देववंदन सर्व जिनमंदिरोंमें जिनबिंबोंकी पूजा वंदना करनी, स्नात्रपूजा महामहोत्सव, प्रजावनादि करे, गुरुकों बृहत्वंदना तथा और साधुओंकों प्रत्येक वंदनाकरे, ब

तुर्विंशतिस्तवका कायोत्सर्ग करे, अपूर्वज्ञान पढे, गुरुकी वैय्यावृत्य करे, ब्र ह्मचर्य पाले, अचित्त पाणी पीवे, सचित्तका त्याग करे, वासी, विदल, रोटी, पूरी, पापड, वडी, सूका साग, पत्ररूप हरिया साग, खारक, खजूर, द्राक्ष, खांड, शुंठ्यादि यह सर्व, नीली फूलण, कुंथुआदि लट कीडे पडनेसें खाने योग्य नहिं रहते है, इस वास्ते इनका त्याग करे, कदाचित् औषधादि विशेष कार्यमें लेनी पडे, तो सम्यग्रीतिसें शोधकें लेवे, तथा खाट, ला न, शिरगुंदानां, दातण, पगरखा, इनका त्याग करे, तथा नूषण, वस्त्र रं गनेका निषेध करे, तथा घर, हाट, भींत, स्तंभ, खाट, पाट, पट्टक, प ट्टिका, छींका, अरु घृत तैलादिकका वासण, इंधन धान्यादि सर्व वस्तुमें नीली फूली हो जाती है, तो इसकी रक्षा वास्ते पहिलांही चूना आदि खार लगा देवे, मैल दूर करे, धूपमें न गेरे, शीतल स्थानमें रख देवे, तथा दिनमें दो तीन वार जल छाणे, लेह, गुड, छाछ प्रमुखके वासणका मुख यत्नसें ढककें रक्खे, तथा उसामणका अरु स्नानका पाणी, जहां जीव न होवे, तहां पृथक् पृथक् नूमिमें थोडा थोमा गेरे, तथा चूला अरु दी पक प्रमुख उघाडा न छोडे, तथा खंडनां, पीसनां, रांधनां, वस्त्र ना जन धोने, इत्यादि कामो देख कें यत्नसें करे, तथा जिनमंदिर अरु धर्म शा लाकों समराकें रक्खे, तथा यथाशक्ति उपधान तप प्रतिमा मासादि वहे, तथा कषाय अरु इंद्रियकों जीते, तथा योगशुद्धि तप, वीशस्थानक तप, अमृत अष्टमी तप, एकादशांग तप, चौदह पूर्वतप, नमस्कार तप, चोवीश तीर्थंकरके कल्याणिक तप, अक्षयनिधि तप, दमयंती तप, नद्रमहानद्रादि तप, संसारतारण अट्ठाइ तप, पक्षमासादि विशेष तप करे, तथा रात्रिकों चतुर्विध आहार, त्रिविध आहार त्याग करे, पर्वदिनमें विकृति त्यागे, प र्व दिनमें पौषधोपवासादि करे, तथा निरंतर पारणेमें अतिथिसंविनाग करे, चातुर्मासिक अनिग्रह पूर्वाचार्योंनें इस तरेसें लिखा है. ज्ञानाचारमें, दर्शनाचारमें, चारित्राचारमें, तपआचारमें, तथा वीर्याचारमें इत्यादि अनेक प्रकारका अनिग्रह करे, सो इस रीतिसें हैः—ज्ञानाचारमें शक्ति अनुसारें सूत्र पढे, सुने, चिंते, तथा शुक्ल पंचमीकों ज्ञानकी पूजा करे, तथा दर्शनाचारमें काजा काढे, अर्थात् समार्जना करे, देहरेमें लीपे, गुंहली करे. मांडली करे, चैत्यजिनप्रतिमाकी पूजा करे, देववंदना करे, जिनबिंबोंकों निर्मल करे,

तथा चारित्रमें जूयांकी यत्ना करे, वनस्पतिमें कीडे पडे खार न देवे, इं धनमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमे जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीकों कलंक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी अरु गुरुकी सोगंद न खावे, किसकी चुगली न करे, किसीके अवर्णवाद न बोले, माता पितासें छाना काम न करे, निधान तथा पडा हूआ धन देखके जेसें शरीर ओर धर्म न विगडे, तेसें करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पाले, रात्रिकों स्वदारासें संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इच्छा परिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करे, तथा स्नानका, उवटनेका, विलेपनका, आजरणका, फूलका, तंबोलका, बरासका, अगरका, केशरका, कस्तूरिका, इतनी जोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीठ, लाख, कुसुंजा, नील, इनसें रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नील मणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंबीर, जंबरूद, जंबू, राजदन, नारंगी, शंतरा, बीजोरा, काकडी, अखोड, बदाम, कोठफल, टींबरू, बिल्ल, खजूर, डाक्ष, दाडिम, उत्तिजका फल, नालिअर, अंबली, बोर, बील्लूक फल, चीनफा, चीनफी, कयर, कर्मदा, जोरड, निंबू, आंबली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया हूआ नाना प्रकारके फूल, पत्र, सचित्त, बहुबीजा, अनंतकाय, इतनी वस्तु वर्जे, तथा विगय अरु विगयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणेका, हल बाहनेका, स्नानकी वस्तुका परिमाण करे, तथा खंडनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण करे, कूडी साख न देवे, तथा पाणीमें कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण करे, व्यापारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ संताप करनां, स्त्रीकों देखनां त्यागे, तथा अनर्थदंड त्यागे, सामायिक, पौषध करे, अतिथिसंविभाग करे, इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे, तथा जिनमंदिरकों देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संनाल करे, पर्वमें तप करे, उजमणा करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका छनां देवे, तथा ओषधी देवे, साधर्मीवत्सल यथाशक्तिसें करे, गुरुकी विनय करे, मास मासमें सामायिक करे, वर्षमें पोषध करे ॥ इत्यादि ॥ इति श्राद्धआविका चातुर्मासिक नियमस्वरूप कथनं समाप्तं ॥

अथ श्रावकको वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी लिखते हैं.

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वद्रव्यकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसें साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कंबल, पुंछणा, सूत, अन्न, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंड, दंडिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुकों देवे, औरज्ञी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोजी देवे, ऐसेंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंकों देवे, ऐसेंही श्रावक, श्राविकारूप संघकी ज्ञक्ति यथाशक्तिसें पहरावणादि करकें सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोंकोंज्ञी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट. तिसमें सर्वदर्शन सर्व संघकों करे, सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहां अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे. तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्यें देवे, इस रीतिसें संघपूजा करे, तो निर्धनकोंज्ञी महा फल है ॥ यतः ॥ संपत्तौ नियमाशक्तौ,सहनं यौवने व्रतं॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्पं,महालाज्ञाय जायते॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल करे, सो सर्व साधर्मीयोंकी अथवा कितनेककोंकी यथाशक्ति यथायोग्य ज्ञक्ति करे, तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें तथा और किसी कार्यमें पहिलें तो साधर्मियोंकों निमंत्रणा करकें विशिष्ट ज्ञोजन, तांबूल, वस्त्राज्ञरणादि देवे, तथा किसी साधर्मीकों कोइ कष्ट पके, तब अपणा धन खरचकें उसका कष्ट दूर करे, जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसें सहाय करे, परदेशसें देशमें पहुंचावे, तथा धर्मसें सीदताकों जैसें बने तैसें स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मीयोंकों विद्या पढावे, पूछना, परिवर्त्तना,अनुप्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पोषध शालादि करावे, तथा श्राविकाके साथज्ञी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकाज्ञी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वाली होती हैं. तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमें अनुरक्त होवे, वो सर्वको साधर्मिकपणे मानना चाहियें, तिसकाज्ञी माताकी तरें बहिनकी तरें बेटीकी तरें हितकरनां चाहियें; बहुत करकें राजाका तो अतिथि संविज्ञाग व्रत साधर्मीवा

तथा चारित्रमें जूयांकी यत्न करे, वनस्पतिमें कीडे पके खार न देवे, इं नमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमे जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीकों क लंक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी अरु गुरुकी सोगंद न खावे, किसकी चुगली न करे, किसीके अवर्णवाद न बोले, माता पितासें छाना काम न करे, निधान तथा पमा हूआ धन दे खकें जेसें शरीर और धर्म न विगमे, तेसें करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पाले, रात्रि कों स्वदारासें संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका अ परिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करे, तथा स्नानका, उवटनेका, वि लेपनका, आजरणका, फूलका, तंबोलका, बरासका, अगरका, केशरका, कस्तूरिका, इतनी जोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीठ, लाख, कुसुंजा, नील, इनसें रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नील मणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंवीर, जंवरूक, जंबू, राजदन, नारंगी, शंतरा, बीजोरा, काकडी, अखोड, बदाम, कोठ फल, टींवरू, बिल, खजूर, डाख, दाडिम, उत्तिजका फल, नालिअर, थं वली, बोर, बीलूक फल, चीजमा, चीजमी, कयर, कर्मदा, जोरड, निंबू, आंवली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया हूआ नाना प्रकारके फूल, प त्र, सचित्त, बहुबीजा, अनंतकाय, इतनी वस्तु वर्जे, तथा विगय अरु वि गयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणेका, हल वाहनेका, स्नानकी वस्तुका परिमाण करे, तथा खंमनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण करे, फूठी साख न देवे, तथा पाणीमें कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण करे, व्यापारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ संजा पण करनां, स्त्रीकों देखनां त्यागे, तथा अनर्थदंम त्यागे, सामायिक, पोषध करे, अतिथिसंविजाग करे, इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे, तथा जिनमंदिरकों देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संजाल करे, पर्वमें तप करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पाणीका ठ रणां देवे, तथा औषधी देवे, साधर्मीवत्सल यथाशक्तिसें करे, गुरुकी वि नय करे, मास मासमें सामायिक करे, वर्षमें पोषध करे ॥ इत्यादि ॥ इति श्राद्धश्राविका चातुर्मासिक नियमस्वरूप कथनं समाप्तं ॥

अथ श्रावककों वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी लिखते हैं.

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वद्रव्यकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसें साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कंबल, पूंठणां, सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंम, दंमिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुकों देवे, औरनी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोन्नी देवे, ऐसेंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंकों देवे, ऐसेंही श्रावक, श्राविकारूप संघकी नक्ति यथाशक्तिसें पहरावणादि करकें सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोंकोंनी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट. तिसमें सर्वदर्शन सर्व संघकों करे, सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहां अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्यें देवे, इस रीतिसें संघपूजा करे, तो निर्धनकोंनी महा फल है ॥ यतः ॥ संपत्तौ नियमाशक्तौ,सहनं यौवने व्रतं ॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्पं,महालाभाय जायते ॥१ ॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल करे, सो सर्व साधर्मीयोंकी अथवा कितनेककोंकी यथाशक्ति यथायोग्य नक्ति करे, तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें तथा और किसी कार्यमें पहिलें तो साधर्मियोंकों निमंत्रणा करकें विशिष्ट नोजन, तांबूल, वस्त्रानरणादि देवे, तथा किसी साधर्मीकों कोइ कष्ट पमे, तब अपणा धन खरचकें उसका कष्ट दूर करे, जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसें सहाय करे, परदेशसें देशमें पहुंचावे, तथा धर्मसें सीदताकों जैसें बने तैसें स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मीयोंकों विद्या पढावे, पूछना, परिवर्त्तना, अनुप्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पोषधशालादि करावे, तथा श्राविकाके साथनी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकानी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वाली होती हैं. तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमें अनुरक्त होवे, वो सर्वकों साधर्मिकपणे मानना चाहियें, तिसकानी माताकी तरें वहिनकी तरें बेटीकी तरें हितकरनां चाहियें. बहुत करकें राजाका तो अतिथि संविनाग व्रत साधर्मीवा

तथा चारित्रमें जूयांकी यत्ना करे, वनस्पतिमें कीडे पडे खार न देवे, इं धनमें, जलमें, अग्निमें, धान्यमे जीव होवे, तिनकी रक्षा करे, किसीको क लंक न देवे, कठिन वचन न बोले, रूखा वचन न बोले, तथा देवकी अरु गुरुकी सोगंद न खावे, किसकी चुगली न करे, किसीके अवर्णवा न बोले, माता पितासें छाना काम न करे, निधान तथा पडा हूआ धन दे खके जैसें शरीर और धर्म न बिगडे, तैसें करे, दिनमें ब्रह्मचर्य पाले, रात्रि कों स्वदारासें संतोष करे, तथा धनधान्यादि नव प्रकारके परिग्रहका इ परिमाण व्रत करे, दिशावकाशिक व्रत करे, तथा स्नानका, उवटनेका, वि लेपनका, आभरणका, फूलका, तंबोलका, बरासका, अगरका, केशरका, कस्तूरिका, इतनी भोगनेकी वस्तुओंका परिमाण करे. तथा मंजीठ, लाख, कुसुंबा, नील, इनसें रंगे वस्त्रोंका परिमाण करे, तथा रत्न, वज्र, नील मणि, सुवर्ण, रूपा, मोती प्रमुखका परिमाण करे, तथा जंबीर, जंबरूल, जंबू, राजदन, नारंगी, शंतरा, बीजोरा, काकडी, अखोड, बदाम, कोठ फल, टींबरु, बिल, खजूर, द्राक्ष, दाडिम, उत्तिजका फल, नालियर, कं यली, बोर, बीलुक फल, चीनभा, चीनभी, कयर, करमंदा, जोरड, निंबु, आंबली अथाणा (आचार) तथा अंकूरिया हूआ नाना प्रकारके फूल, प त्र, सचित, बहुबीजा, अनंतकाय, इतनी वस्तु वर्जे, तथा विगय अरु वि गयगतका परिमाण करे, तथा वस्त्र धोनेका, लीपणेका, हल बाहनेका, स्नानकी वस्तुका परिमाण करे, तथा खंडनां, पीसनां, इत्यादिकका परिमाण करे, कूडी साख न देवे, तथा पाणीमें कूदनां अरु अन्न रांधनेका परिमाण करे, व्यापारका परिमाण करे, चोरीका त्याग करे, तथा स्त्रीके साथ संला पन करनां, स्त्रीकों देखनां त्यागे, तथा अनर्थदंड त्यागे, सामायिक, पोसह करे, अतिथिसंविभाग करे, इन सर्व वस्तुओंका प्रतिदिन परिमाण करे, तथा जिनमंदिरकों देखे, तथा जिन मंदिरकी वस्तुकी सार संभाल करे, पर्वमें तप करे, उजमणे करे, धर्मके वास्ते मुखवस्त्रिका अरु पानीका छ लनां देवे, तथा औषधी देवे, साधर्मीवत्सल यथाशक्तिसें करे, गुरुकी वि नय करे, मास मासमें सामायिक करे, वर्षमें पोषध करे ॥ इत्यादि ॥ इति श्राद्धाचिका चातुर्मासिक नियमस्वरूप कथनं समाप्तं ॥

अथ श्रावककों वर्षकृत्य द्वादश द्वारों करी लिखते हैं.

१ प्रथम संघपूजा करे, सो स्वद्रव्यकुलादि अनुसारें बहुत आदर मानसें साधु साध्वी योग्य निर्दोष वस्त्र, कंबल, पूंछणां, सूत, ऊन, पाणीका पात्र, तुंबकादि, दंरु, दंमिका, सूइ, कागद, दवात, लेखिनी, पुस्तकादिक, श्रीगुरुकों देवे, औरज्ञी जो संयमका उपकारी उपकरण होवे, सोज्ञी देवे, ऐसेंही प्रातिहारक, पीठ, फलक, पट्टिकादि सर्व साधुओंकों देवे, ऐसेंही श्रावक, श्रावकारूप संघकी ज्ञक्ति यथाशक्तिसें पहरावणादि करकें सत्कार करे, देवगुरुके गुण गाने वाले गंधर्वादिक याचकोंकोंज्ञी यथोचित दान देवे, संघकी पूजा तीन प्रकारकी है, एक जघन्य, दूसरी मध्यम, तीसरी उत्कृष्ट. तिसमें सर्वदर्शन सर्व संघकों करे, सो उत्कृष्टी पूजा, तथा सूत मात्रादि देवे, तो जघन्य पूजा, तथा शेष सर्व मध्यम पूजा है, तहां अधिक खरच करनेकी शक्ति न होवे, तो गुरुकों सूत, मुखवस्त्रिका देवे, तथा एक दो तीन श्रावक श्राविकाकों सोपारी प्रमुख वर्ष वर्ष प्रत्यें देवे, इस रीतिसें संघपूजा करे, तो निर्धनकोंज्ञी महा फल है ॥ यतः ॥ संपत्तो नियमाशक्तौ,सहनं यौवने व्रतं॥ दारिद्र्ये दानमप्यल्पं,महालाज्ञाय जायते ॥१॥

२ दूसरी साधर्मिक वात्सल करे, सो सर्व साधर्मीयोंकी अथवा कितनेककोंकी यथाशक्ति यथायोग्य ज्ञक्ति करे, तथा पुत्रके जन्मोत्सवमें, विवाहमें तथा और किसी कार्यमें पहिलें तो साधर्मियोंकों निमंत्रणा करकें विशिष्ट ज्ञोजन, तांबूल, वस्त्राज्ञरणादि देवे, तथा किसी साधर्मीकों कोइ कष्ट पके, तब अपणा धन खरचकें उसका कष्ट दूर करे, जे कर कोइ साधर्मी निर्धन होवे, तो धनसें सहाय करे, परदेशसें देशमें पहुंचावे, तथा धर्मसें सीदताकों जैसें बने तैसें स्थिर करे, जे कर कोइ साधर्मी प्रमादी होवे, तो तिसकों प्रेरणादि करे, साधर्मीयोंकों विद्या पढावे, पूछना, परिवर्त्तना,अनुप्रेक्षा, धर्मकथामें यथायोग्य जोडे, तथा धर्मकरणे वास्ते साधारण पोषधशालादि करावे, तथा श्राविकाके साथज्ञी श्रावकोंवत् वात्सल्य करे, क्योंकि श्राविकाज्ञी ज्ञान, दर्शन, चारित्र, शील संतोष वाली होती हैं. तथा सधवा विधवा जो जिनशासनमें अनुरक्त होवे, वो सर्वकों साधर्मिकपणे माननां चाहियें, तिसकाज्ञी माताकी तरें वहिनकी तरें वेटीकी तरें हितकरनां चाहियें, वहुत करकें राजाका तो अतिथि संविज्ञाग व्रत साधर्मीवा

त्सल करनेसेंही हो सक्ता है, क्योंकि मुनिकों तो राजपिंड लेनांही तिस वास्ते श्रीजरतचक्री, तथा दंडवीर्य राजादिकोंनें असेंही करा है. तथा श्रीसंजवनाथ अर्हतके जीवनें तीसरे जवमें धातकीखंड ऐरावत्रमें क्षेमापुरी नगरीमें विमलवाहनराजाने महा दुर्जिक्षमें सकल साधर्मिकादिकोंकों जोजनादिक देनेसें तीर्थंकरनामकर्म उपार्जन करा है, तथा देवगिरि मांकव गढमें शाह जगत्सिंहने तथा थिरापद्र नगरमें श्रीमाल आजूने तीन सौ साठ साधर्मियोंकों धन देकें अपणे तुल्य करा, तथा शाह सारंगादि अनेक पुरुषोने वडा वडा साधर्मियात्सल्य करा है ॥ इति ॥ २॥

३ तीसरी यात्राविधि कहते हें, वर्ष वर्षमें जघन्यसें एक यात्रा तो अवश्य करनी चाहियें, यात्राजी तीन तरेंकी है, एक अठाइयात्रा, दूसरी रथयात्रा, तीसरी तीर्थयात्रा, तिसमें अठाइमें विस्तार सहित सर्व चैत्यपरिवाडी करे, इसका नाम चैत्ययात्राजी कहते हें, तथा रथयात्रा श्रीहेमचंद्रसूरिकृत परिशिष्ट पर्वमें जेसी सांप्रतिराजाने करी है, तेसें करे, तथा महापद्मचक्रवर्त्तीने जेसें माताके मनोरथ पूरणे वास्ते करी है, तेसें करे, तथा जेसी कुमारपाल राजाने रथयात्रा करी तेसें करे ॥ इति ॥ ३॥

तीसरी तीर्थयात्राका स्वरूप लिखते हें, तहां श्रीशत्रुंजय रेवतादि तीर्थ तथा तीर्थंकरोंके जन्म, दीक्षा, ज्ञान, निर्वाण, अरु विहारजूमि, यह सर्व प्रजूत जव्यजीवोंकों शुजजावका संपादक है, इस वास्ते संसारसें तारणेका कारण होनेसें इसकों तीर्थ कहनां चाहियें. तिन तीर्थोमें जानेसें सम्यक्त्व निर्मल होता है, अब जिनशासनकी उन्नति करनेके वास्ते जिस विधिसें यात्रा करे, सो विधि यह है, कि:—चलनेके स्थानसें ले कर यात्रा करे, तहां तक एक वार जोजन करे, दूसरा सचित्त परिहार, तीसरा जूमिशयन, चौथा ब्रह्मचारी, पांचमा सर्व सामग्रीके हूयेजी पगें चलनां, छठा सम्यक्त्वधारी पणां. तथा यात्रा वास्ते राजासें आज्ञा लेवे, विशिष्ट मंदिरोकों साथ जावे, विनय वहुमान सहित स्वजन ओर साधर्मियोंकों बुलावे, तथा गुरुकों साथ ले जाने वास्ते निमंत्रणा करे, अमारी ढंढेरा फिरावे, मंदिरमें महापूजा महोत्सव करावे, खरची रहितोंकों खरची देवे, वाहन विनाकों वाहन देवे, निराधारोंकों यथायोग्य आधार देवे, सार्थवाहकी तरें दोंडी फिराकें लोकोंकों उत्साहवंत करे, तथा आमंबर सहित वडा चरु, घडा,

थाल, डेरा, तंबू, कमाहिया साथ लेवे, चलतां कूपादिककों सज करे, तथा गाम, सेजवाला रथ, पर्यंक, पालखी, ऊंट, घोमा प्रमुख साथ लेवे, तथा श्रीसंघकी रक्षावास्ते वडे योद्धोंकों नौकर रक्खे, योद्धांकों कवच अंगकादि उपस्कर देवे, तथा गीत, नाटक वाजित्रादि सामग्री मेलवे, तथा अछे मुहूर्त्तमें, शुज शकुनमें प्रस्थान (चलनां) करे; जोजनादिसें श्रीसंघका सत्कार करकें संघपतिका तिलक देवे, आगें पीछें रखवाला रक्खे, संघके चलने उतरणेका संकेत करे, तथा संघवालोंकी गामी आदिक टूट जावे, तो समरा देवे, अपणी शक्तिअनुसार सर्वसंघकों सहाय देवे, तथा गाम नगरमें जहां जिनमंदिर आवे, तहां महाध्वज देवे, चैत्यपरिवामी आदि वडा महोत्सव करे, जीर्णचैत्यका उद्धार करे, तथा जव तीर्थोंकों देखे, तव सुवर्ण, रत्न, मोती आदिकसें वर्द्धापना करे, लापसी, लड्डु प्रमुखका लाहणा करे, तथा साधर्मिवात्सल्य, यथोचित दान देवे, वडे उत्सवसें जव तीर्थकों प्राप्त होवे, तव प्रथम हर्षपूजा धन चढावे, तथा अष्टोपचारविधि, स्नात्रमालोद्घट्टन, घीकी धारा देवे, पहरावणी मोचन करे, तथा नवांगजिनपूजन, फूलघर कदलीघरादि महापूजा करे, डुकूलादिमय महाध्वज देवे, मांगनेवालोंकों नांहीं न करे, तथा रात्रिजागरण नाना प्रकारके गीतनृत्यादि उत्सवकरे तथा तीर्थोंपवास छठ प्रमुख तप कोडि लाख अक्षतादि विविध प्रकारका उजमणां ढोवे, तथा नाना प्रकारकी वस्तु फल एक सौ आठ, चौवीश, व्याती, बावन, बहत्तरादि ढोवे, सर्व जक्ष्य जोजनके थाल ढोवे, डुकूलादि मय चंडुवा पहरावणी करे, तथा अंगलूहणां, दीपक, तेल, धोती, चंदन, केसर, कस्तूरी, चंगेरी (छावमी) कलश, धूपधाणां, आरति, आजरण, प्रदीप, चामर, जंगार, स्थाल, कचोलक, घंटा, जालरी, पमहादि विविध प्रकारके वाजिंत्र देवे, देहरी करावे, कारीगरोंकों सत्कार देवे, तीर्थके विगडे कामकों समरावे, सार संजाल करे, तीर्थके रक्षोंकों बहु सन्मान देवे, जैनके मंगतोंकों, दीनोंकों, उचित दान देवे, तथा साधर्मिवात्सल्य गुरुजक्ति करे, इस रीतिसें यात्रा करकें तैसेंही पीछा फिरे, वर्षादि तक तीर्थ व्रत करे ॥ इति यात्राविधिः ॥ इति यात्रात्रयस्वरूपं समाप्तम् ॥ ३ ॥

॥ अथ स्नात्रविधिर्लिख्यते ॥ मंदिरमें स्नात्र महोत्सवजी घृतका मेरु

करे, अष्ट मांगलिक नैवेद्यादि ढोवे, बहुत बहुत जातिवंत चंदन, केसर, पुष्प, अंबरादि ल्यावे, सकल श्रावकसमुदाय मेले, गीत नृत्यादि आडंबर रचावे, डुकूलादि महाध्वज देवे, प्रौढाडंबरसें प्रभावनादि, निरंतर तथा पर्वदिनमें करे, जेकर निरंतर अथवा पर्वदिनमेंभी न कर सके, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे. स्नात्र महोत्सवमें स्वधनकुलप्रतिष्ठादि अनुसारें सर्वशक्तिसें करे, जिनमतका महा उद्योत करे ॥ इति स्नात्रविधिः॥४॥

तथा देवद्रव्यकी वृद्धि वास्ते प्रतिवर्ष मालोद्घट्टन करे, इंद्रमाला तथा और मालाभी यथाशक्ति करे, असेंही पहरावणी, नवीन धोती, विचित्र प्रकारका चंडुआ, अंगलूहणां, दीपक, तेल, जातिवंत केसर, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुख चैत्योपयोगी वस्तु प्रतिवर्ष यथाशक्तिसें देवे ॥५॥

तथा सुंदर अंगी, पत्रभंगी, सर्वांगाभरण, पुष्पगृह, कदलीगृह, पूतली, पाणीके यंत्रादिककी रचना करे, तथा नाना गीत नृत्यादि उत्सवसें महा पूजा रात्रि जागरण करे ॥ ६ ॥ ७ ॥

तथा श्रुतज्ञानकी पुस्तकादिककी पूजा कर्पूरादिसें सदा सुकर है, अरु प्रशस्त वस्त्रादिकसें विशेषपूजा तो प्रतिमास शुक्लपंचमीके दिन श्रावकको करनी योग्य है, जे कर शक्ति न होवे, तोभी वर्षमें एक वार तो अवश्य करे, इसका विस्तार, जन्मकृत्यमें ज्ञानभक्तिद्वारमें लिखेंगे ॥ ८ ॥

तथा पंचपरमेष्टि नमस्कार, आवश्यकसूत्र, उपदेशमाला, उत्तराध्ययनादि ज्ञान दर्शनका तप, इत्यादिमें जघन्य एक वार उद्यापन करे, जिससें लक्ष्मी सफल होवे, जब जप तपका उद्यापन करे, तब चैत्य उपर कलशारोपण करे, फल चढावे, अक्षत पात्रके मस्तक उपर अक्षत देवे, जैसें भोजन उपर तांबूल देते हैं, तैसी तरें यहभी जान लेनां. यह उपधान, उद्यापनविधि, शास्त्रांतरसें जान लेनी ॥ इति उद्यापनविधिः ॥ ए ॥

तथा तीर्थकी प्रभावना वास्ते वाजे गाजे प्रौढाडंबरसें गुरुका प्रवेश करावे, यह व्यवहारभाष्यमें कहा है, क्योंकि इस्सें जिनमतकी प्रभावना होती है, तथा यथाशक्ति श्रीसंघका बहुमान करणां, तिलक करणां, चंदन, बरास, कस्तूरी प्रमुखसें विलेपन करे, तथा सुगंधि फूल, भक्तिसें नालियरादि विविध तांबूलप्रदानरूप भक्ति करे, क्योंकि शासनकी उन्नति करनेसें तीर्थंकर गोत्र उपार्जन करता है, यह कथन ज्ञातासूत्रमें है ॥ १० ॥

तथा गुरुके योग मिले हूए जघन्यसें जी एक वर्षमें एक वार आलोचना लेवे. अपणे करे हूए सर्व पापकों गुरुके आगें कह देवे, पीछें गुरु जो प्रायश्चित्त देवे, सो लेवे, फेर उस पापकों न करे, तिसका नाम आलोचना लेनी है, ऐसी श्राद्धजितकल्पादिमें विधि लिखी है. पक्ष पीछें, चारमास पीछें, एक वर्ष पीछें, उत्कृष्ट वारा वर्ष पीछें, निश्चेंही आलोचना करे. अपणा शल्य काढनेंकों क्षेत्रसें सात सौ योजन, अरु कालसें वारा वर्षतक गीतार्थ गुरुका अन्वेषण करे, तथा जिस गुरुके आगें आलोचना करे, सो गुरु कैसा होवे? सो लिखते हैं. गीतार्थ होवे, मन, वचन, काया स्थिर होवे, चारित्रवंत होवे, आलोचना ग्रहणमें कुशल होवे, प्रायश्चित्तका जाणकार होवे. विषाद रहित होवे, ऐसा गुरु होवे, सो आलोचना प्रायश्चित्त देनें योग्य होता है.

तिनमें गीतार्थ उसकों कहते हैं, कि जो १ निशीथादि छेद शास्त्रोंका मूलपाठ, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णी, इनका जानकार होवे, तथा ज्ञानादि पंचाचार युक्त होवे, तथा २ आधारवंत आलोचितपापका धारणे वाला होवे, ३ आगमादि पांच व्यवहारका जानने वाला होवे, तिसमेंभी इस कालमें तो जितव्यवहार मुख्य है, तिसका जानने वाला होवे, ४ प्रायश्चित्त आलोचककी लज्जा दूर करानेवाला होवे, ५ अलोचककी शुद्धि करने वाला होवे, ६ आलोचकके पापकर्म, औरके आगें न कहे, ७ जैसें वो आलोचक निर्वाह कर सके, तैसें प्रायश्चित्त देवे, ८ जो प्रायश्चित्त न करे, तिसकों इस लोक अरु परलोकका भय दिखावे, यह आठ गुण युक्त गुरु होता है.

साधुने तथा श्रावकने १ प्रथम तो अपणे गछमें गछके आचार्य आगें, २ तदयोगे (तदभावे) उपाध्यायके पास, ३ तदभावे प्रवर्त्तकके पास, ४ तदभावे स्थविरके पास, ५ तदभावे गणावछेदकके पास, स्वगछमें इन पांचोंके अभावसें संभोगी एकसमाचारी वाले गछांतरमें पूर्वोक्त आचार्यादि पांचोंके पास क्रमसें आलोचे, तिनकेभी अभावसें असंभोगी संवेगी गछमें पूर्वोक्त क्रमसें आलोचे, तिनकेभी अभाव हुआ गीतार्थ पार्श्वस्थके पास आलोचे. तिसके अभावसें गीतार्थ सारूपीके पास आलोचे, तिसकें अभावें पश्चात्कृतके पास आलोचे, सारूपी उसकों कहते हैं, कि

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंडित, अवद्धकच्छ, रजोहरण रहित, ब्रह्मचारी, स्त्रीरहित भिक्षावृत्ति होवे, अरु जो सिद्धपुत्र होता है, सो शिखा सहित, अर्थात् चोटी सहित, स्त्री सहित होता है, तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चारित्र छोडकें गृहस्थके वेषवाला होता है, आलोचनाके अवसरमें पार्श्वस्थादिककोंभी गुरुकी तरें वंदना करे, क्योंकि विनयमूल धर्म है, इस वास्ते वंदना करे, जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपणे आपको गुणहीन जान कर वंदना न करावे तब तिसकों आसन उपर बैठा कर प्रणाम मात्र करकें आलोचना लेवे, तथा पश्चात्कृतकों इत्वर सामायिक आरोपण लिंग दे कर पीछेसें उसके पास यथाविधिसें आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अभावें जहां राजगृहादि गुणशील चैत्यादिकमें जहां श्री अर्हंत गणधरादिकोंने बहुत वार प्रायश्चित्त लोकोंकों दीया है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है, वास्ते तिस देवताकों अष्टमादि तपसें आराधकें तिसके आगें आलोचे, कदाचित् वो देवता चव गया होवे, अरु उसकी जगे और उत्पन्न हूआ होवे, तदा वो देवता महाविदेहके अर्हंतकों पूछके प्रायश्चित्त देवे, तिसके अभावें अर्हंत प्रतिमाके आगें आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे, तिसके अभावें पूर्वोत्तर मुख करकें अर्हंतसिद्धोंके समक्ष आलोवे, परंतु शल्य न रक्खे, आलोचना करनेवाला पुरुष, मायारहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे, जो कोइ किसी कारणसें आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है.

आलोचना करनेवाला दश दोष वर्जके आलोचना करे, सो दश दोषका नाम लिखते हैं. १ गुरुकों वैयावृत्तादिकसें खुशी करकें पीछें आलोवे, जिस्सें वो गुरु थोडा प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोडा दंड देता है, असें अनुमान करकें आलोवे, ३ जे दूसरोंने देखा होवे, सो आलोवे, परंतु जो अपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसकों न आलोवे, ४ बादर दोषकों आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषकों न आलोवे ५ सूक्ष्म दोष आलोवे, परंतु बादर दोष न आलोवे, ६ अव्यक्त स्वरसें आलोवे, ७ जेसें गुरु समझे नहीं, असें रोला करकें आलोवे, ८ आलोचा हूया बहुतोंकों सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पास आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपणे अपराधकों आलोवे, यह दश दोष हैं.

आलोचना करनेसें जो गुण होता है, सो कहते हैं. जैसें बोझा उठाने वाला भारके दूर हूए हलका होता है, तैसा पापसें वो हलका हो जाता है, तथा पापरूप शल्य दूर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है, आत्मपरके दोषोंसें निवृत्ति तिसकों देखकें औरभी आलोचना करेगें, सरलता होती है, शुद्ध हो जाता है, वो दुष्कर कामके करने वाला है; क्योंकि दोषकों सेवनां तो दुष्कर नहीं है, किंतु आलोचना प्रकाश करनां यह दुष्कर है, तथा श्री तीर्थंकरकी आज्ञाका आराधक होता है, निःशल्य होता है, आलोचनावालेकों ये गुण होते हैं. यह आलोचना विधि श्राद्धजितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसारे लीखा है, आलोचना करनेसें बाल, स्त्री, यति हत्यादि पाप तथा देवादिद्रव्यभक्षण पाप, तथा राजपत्नी गमनादि महापापभी सम्यक्रीतिसें आलोवे, गुरुदत्त प्रायश्चित्त करे, तो दूर हो जाते है, नहीं तो दृढपरिहारि प्रमुख उसी भवमें मोक्ष कैसें जाते? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना लेवे ॥ इति श्राद्धविध्यनुसारे वर्षकृत्यं संपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अठारह द्वारों करकें लिखते हैं. १ तिसमें प्रथम उचित द्वार है, सो पहिलां तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां रहनेसें धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहां श्रावकको वास करनां चाहियें. क्योंकि और जगे वसनेसें दोनों भव बिगड जाते हैं, भीलपल्लीमें, चोरोंके गाममें, पर्वतके किनारे, हिंसक लोकोमें, दुष्ट लोकोंमें धर्मीलोकोंके निंदकोंमें, इत्यादि स्थानमें वास न करे, परंतु जहां जिनचैत्य होवे, जहां मुनि आते होवें, जहां श्रावक वसते होवें, जहां बुद्धिमान् लोक स्वभावसेंही शीलवान् होवें, जहां प्रजा धर्मशील होवें, बहुत जल, इंधन, होवे, तहां वास करे. जैसा अजमेरके पास हर्षपुर नगर था, असें नगरमें रहनेसें धनवंत, गुणवंत अरु धर्मवंतकी संगतिसें विनय, विचार, आचार, उदारता, गंभीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती है, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते बुरे गामोंमें चाहो धन प्राप्ति होवे, तोभी वास न करे ॥ उक्तं च ॥ यदि वांछसि मूर्खत्वं, ग्रामे वस दिनत्रयं ॥ अपूर्वस्यागमो नास्ति, पूर्वाधीतं च नश्यति ॥ १ ॥

उचितस्थानभी स्वचक्र, परचक्र परस्पर विरोध, दुर्भिक्ष, मारी, (हैजा)

जो शुक्लवस्त्रधारी होवे, शिरमुंडित, अवकच्छ, रजोहरण रहित, ब्रह्मचारी, स्त्रीरहित भिक्षावृत्ति होवे, अरु जो सिद्धपुत्र होता है, सो शिखा सहित, अर्थात् चोटी सहित, स्त्री सहित होता है, तथा जो पश्चात्कृत होता है, सो चारित्र छोडके गृहस्थके वेषवाला होता है, आलोचनाके अवसरमें पार्श्वस्थादिककोभी गुरुकी तरें वंदना करे, क्योंकि विनयमूल धर्म है, इस वास्ते वंदना करे, जे कर वो पार्श्वस्थादिक अपणे आपकों गुणहीन जान कर वंदना न करावे तब तिसकों आसन ऊपर बैठा कर प्रणाम मात्र करकें आलोचना लेवे, तथा पश्चात्कृतकों इत्वर सामायिक आरोपण लिंग दे कर पीछेसें उसके पास यथाविधिसें आलोचना लेवे, तथा पार्श्वस्थादिकके अभावें जहां राजगृहादि गुणशील चैत्यादिकमें जहां श्री अर्हंत गणधरादिकोंने बहुत वार प्रायश्चित्त लोकोंकों दीया है, सो तहां रहनेवाले देवतानें देखा है, वास्ते तिस देवताकों अष्टमादि तपसें आराधकें तिसके आगें आलोचे, कदाचित् वो देवता चव गया होवे, अरु उसकी जगे औार उत्पन्न हूआ होवे, तदा वो देवता महाविदेहके अर्हंतकों पूछके प्रायश्चित्त देवे, तिसके अभावें अर्हंत प्रतिमाके आगें आलोचे, आप प्रायश्चित्त लेवे, तिसके अभावें पूर्वोत्तर मुख करकें अर्हंतसिद्धोंके समक्ष आलोवे, परंतु शल्य न रक्खे, आलोचना करनेवाला पुरुष, मायारहित बालककी तरें सरल हो कर आलोवे, जो कोइ किसी कारणसें आलोचना न करे, वो आराधक नहीं है.

आलोचना करनेवाला दश दोष वर्जके आलोचना करे, सो दश दोषका नाम लिखते हैं. १ गुरुकों वैयावृत्तादिकसें खुशी करकें पीछें आलोवे, जिस्सें वो गुरु थोडा प्रायश्चित्त देवे, २ यह गुरु थोडा दंड देता है, ऐसें अनुमान करकें आलोवे, ३ जे दूसरोंने देखा होवे, सो आलोवे, परंतु जो अपणा कीया अपराध दूसरा कोइने न देखा होवे, उसकों न आलोवे, ४ बादर दोषकों आलोवे, परंतु सूक्ष्म दोषकों न आलोवे ५ सूक्ष्म दोष आलोवे, परंतु बादर दोष न आलोवे, ६ अव्यक्त स्वरसें आलोवे, ७ जैसें गुरु समझे नहीं, ऐसें रोला करकें आलोवे, ८ आलोचा हूआ बहुतोंकों सुणावे, ९ अव्यक्त अगीतार्थके पास आलोवे, १० अपराध जो गुरुने कहा होवे, तिसही अपणे अपराधकों आलोवे, यह दश दोष हैं.

आलोचना करनेसें जो गुण होता है, सो कहते हैं. जैसें बोझा उठाने वाला जारके दूर हूए हलका होता है, तैसा पापसें वो हलका हो जाता है, तथा पापरूप शल्य दूर हो जाता है, प्रमोद उत्पन्न होता है, आत्मपरके दोषोंसें निवृत्ति तिसकों देखकें औरजी आलोचना करेगें, सरलता होती है, शुद्ध हो जाता है, वो डुष्कर कामके करने वाला है, क्योंकि दोषकों सेवनां तो डुष्कर नहीं है, किंतु आलोचना प्रकाश करनां यह डुष्कर है. तथा श्री तीर्थंकरकी आज्ञाका आराधक होता है, निःशल्य होता है, आलोचनावालेकों ये गुण होते है. यह आलोचना विधि श्राद्धजितकल्पसूत्रवृत्तिके अनुसारें लीखा है, आलोचना करनेसें बाल, स्त्री, यति हत्यादि पाप तथा देवादिद्रव्यजक्षण पाप, तथा राजपत्नी गमनादि महापापजी सम्यक्रीतिसें आलोवे, गुरुदत्त प्रायश्चित्त करे, तो दूर हो जाते है, नहीं तो दृढपरिहारि प्रमुख उसी जवमें मोक्ष कैसें जाते? इसी वास्ते वर्ष वर्ष प्रति चौमासे चौमासे आलोचना लेवे ॥ इति श्राद्धविध्यनुसारे वर्षकृत्यं संपूर्णम् ॥

अथ जन्मकृत्य, अठारह द्वारों करकें लिखते हैं. १ तिसमें प्रथम उचित द्वार है, सो पहिलां तो उचित योग्य वसनेका स्थान करे, जहां रहनेसें धर्म, अर्थ अरु काम, तीनोंकी सिद्धि होवे, तहां श्रावकको वास करनां चाहियें. क्योंकि और जगे वसनेसें दोनों जव बिगड जाते हैं, जीलपल्लीमें, चोरोंके गाममें, पर्वतके किनारे, हिंसक लोकोमें, डुष्ट लोकोंमें धर्मीलोकोंके निंदकोंमें, इत्यादि स्थानमें वास न करे, परंतु जहां जिन चैत्य होवे, जहां मुनि आते होवें, जहां श्रावक वसते होवें, जहां बुद्धिमान् लोक स्वजावसेंही शीलवान् होवें, जहां प्रजा धर्मशील होवें, वहुत जल, इंधन, होवे, तहां वास करे. जैसा अजमेरके पास हर्षपुर नगर था, ऐसें नगरमें रहनेसें धनवंत, गुणवंत अरु धर्मवंतकी संगतिसें विनय, विचार, आचार, उदारता, गंजीरता, धैर्य, प्रतिष्ठा आदि गुणकी प्राप्ति होती है, धर्मकृत्यमें कुशलता प्रगट होती है, इस वास्ते बुरे गामोंमें चाहो धन प्राप्ति होवे, तोजी वास न करे ॥ उक्तं च ॥ यदि वांछसि मूर्खत्वं, ग्रामे वस दिनत्रयं ॥ अपूर्वस्यागमो नास्ति, पूर्वाधीतं च नश्यति ॥ १ ॥

उचितस्थानजी स्वचक्र, परचक्र परस्पर विरोध, डुर्जिक्ष, मारी, (हैजा)

प्रजाविरोध, अन्नादि वस्तुक्षय, इत्यादि कारण हो जावे, तो तत्काल ठोरु जानां चाहियें, नहीं तो त्रिवर्गकी हानी हो जावेगी, जेसें आगें तुरकोंके जयसें लोक दिल्लिकों ठोरुकें गुजरातादि देशोमें जानेसें सुखी ओर धनी हूए हें, तथा क्षितिप्रतिष्ठित, चनकपुर, रूषजपुर, प्रमुखके उ जडनेकी व्यवस्था जान लेनी,सो इस रीतिसें हे कि:– क्षितिप्रतिष्ठित उ जरुके चनकपुर वसा, अरु चनकपुर उजरुके रूषजपुर वसा, अरु रूष पुर उजरुके राजगृह वसा, तथा राजगृह उजरुके चंपा वसी, अरु चं उजरुके पारुलीपुत्र अर्थात् पटना वसा. असें श्रावकजी पूर्वोक्त हा जाने तो नगरकों ठोरुकें ओर जगें जा कर वसे.

तथा रहनेका घरजी अछे पमोसीयोंके पास करे, परंतु वेश्या, ि यंच, जिक्षाचर, श्रमण, बौऊ, तापसादि ब्राह्मण, मशाण, कोटवाल, माठी जूआरी, चोर, नट, नचानेवाला, जाट, कुकर्मी, इत्यादिकोंके पडोसमें घ हांट न लेवे, न वसे, जे कर देहरेके पास रहे, तो हानी होवे, तथ चौकमें, धूर्तकें अरु प्रधानके पास रहे, तो धन अरु पुत्र दोनोंका क्ष होवे. तथा मूर्ख, अधर्मी, पाखंमी, पतित, चोर, रोगी, क्रोधी, चंमाल मदोन्मत्त, गुरुतल्पग, वेरी, स्वामीवंचन, लोजी, तथा रूषि, स्त्री, अरु बा लहत्या करनेवाला, इतने लोक जे कर अपणां जला चाहे, तोजी इनकें पडोसमें न रहे, क्योंकि इनकी संगतिसें गुणहानी प्रमुख अनेक उपद्रव होते हें, इस वास्ते इनके पमोसमें न रहे.

तथा जला स्थान वो होता हे, की जहां हड्डीका शल्य न होवे, राख न होवे, जहां माज उगती होवे, जला वर्ण, गंधवाली मिट्टी होवे, मीठा जल होवे, खोदतां धन निकले, वो जगा शुज हे, तथा जो जूमि, शीत कालमें उष्ण स्पर्शवाली होवे, अरु उष्ण कालमें शीतस्पर्शवाली होवे, वो जगा वहुत शुज हे. एक हाथमात्र जूमि पहिलां खोदकें फेर तिस मट्टी करकें पीछें वो खाम जरे, जे कर मट्टी अधिक रहे, तो श्रेष्टजूमि जाननी, अरु जो मट्टी वरावर रहे, तो समानजूमि जाननी, अरु मट्टी ऊंठी हो जावे तो नेष्टजूमि जाननी, तथा सौ पग चाले इतने कालमें जिस जूमि कामें पाणी न शूके, सो उत्तम जूमि जाननी, अरु जे कर सौ पग चाले, इ तने कालमें एक अंगुली जर पाणी शोप होवे, तो मध्यम जूमि जाननी,

अरु एक अंगुलीकेभी उपरांत पाणी सूके, तो अधमभूमि जाननी, तथा पक्षांतरमें जिस भूमिके खातमें फूल गेरे, वो फूल जे कर सूके नहीं, तो उत्तम भूमि जाननी, अर्द्ध सूके, तो मध्यमभूमि जाननी, अरु सर्व सूक जावे, तो अधम भूमि जाननी, तथा जिस भूमिमें व्रीहि बोइ हुई तीन दिन पीछें उगे तो उत्तम, पांच दिन पीछें उगे तो मध्यम, अरु सातदिन पीछें उगे तो हीन भूमि जाननी.

सर्पकी बंबी उपर घर बनावे, तो रोग होवे, पोली भूमि उपर घर बनावे, तो निर्धन होवे, शल्ययुक्त भूमि उपर घर बनावे, तो मरण पावे, मनुष्यका हाड अरु केशका शल्य होवे, तो मनुष्योंकी हानी करे. खरका शल्य होवे, तो राजा प्रमुखका भय होवे, श्वानका हाड होवे, तो बालक मरण पावे, बालकका हाड होवे, तो गृहस्वामी परदेशमें उठ जावे, गौका शल्य होवे, तो गौरूप धनकी हानी होवे, मनुष्यके केश तथा कपाल अरु भस्म होवे, तो मरण देवे.

तथा प्रथमप्रहर अरु पश्चिम प्रहर वर्जके शेष प्रहरमें वृक्षकी अरु ध्वजाकी छाया घर ऊपर पडे, तो दुःखदायी है, अर्हतके मंदिरके पीछें न बसे. ब्रह्मा और कृष्णके पास न रहे, चंडिका और सूर्यके सन्मुख रहे नहीं, महादेवके तो किसी पासेंभी न रहे, कृष्णके वामें पासें अरु ब्रह्माके दाहिणे पासें न रहे. निर्माल्य (स्नानका पाणी) ध्वजकी छाया, विलेपन वर्जे. जिनमंदिरके शिखरकी छाया अरु अर्हतकी दृष्टि होवे, तहां न बसे. तथा नगर अथवा गामके ईशान कोणमें घर न बनावे. बनावे, तो ऊंच जातिवालेकों दुःखदायी है.

घर बनावे तो पूरा मोल देवे. पमोसीकों दुःख न देवे. घर लेनी वखत किसीकों दुःख न देवे. औरोंकी ईंट, काष्ट, पाषाण प्रमुख वस्तु निर्दोष, दृढ, बलवान्, अरु जो नवीन होवे, सो योग्य मोल दे कर लेवे. तो विरूप होती होवे. तिसका योग्य मोल दे कर लेवे. परंतु आप ईंट पचावा न लगावे. तथा जिनशालादिककी ईंटादि न ग्रहण करे. क्योंकि शास्त्रमेंभी कहा है. जो देहरा, कूवा, बावमी, मसाण, मठ, अरु राजाके मंदिर, इनके पाषाण, ईंट, काष्टकों सर्सों मात्रभी वर्जे, क्योंकि इनका

पाषाणके, स्तंभ, पीढ, पट्टा, द्वार, शाखा, ये सर्व गृहस्थके घरमें विरोध कारी हैं, अरु धर्मके स्थानमें सुखदायी हैं.

तथा पाषाणमय घरमें काष्टके स्तंभ, अरु काष्टमय घरमें पाषाणके स्तंभ, मंदिरमें तथा घरमें वनानां वर्जे, तथा हलका काष्ट, कोल्हुका काष्ट, गाडेका काष्ट, अरहटका काष्ट, चरखेका काष्ट, कांटेवाले वृक्षका काष्ट, पंच उंबरका काष्ट, थोहरका काष्ट, ये काष्ट घरमें न लगावे, तथा बीजोरा, केला, दाडिम, बेरी, जंबीरी, हलद, आंवलीकी कर अरु धतूरा, इतनेका काष्ट वर्जे, तथा इन वृक्षोंकी जरु पमोससें घरमें प्रवेश करे, अथवा इनकी छाया घरमें पडे तो कुलका नाश करे, तथा पूर्वदिशिकी तरफ घर उंचा होवे, तो धनका नाश करे, तथा दक्षिणदिशें उंचा होवे, तो धनकी वृद्धि करे, पश्चिमदिशें उंचा होवे, तों धनादिकी वृद्धि करे, उत्तर दिशिमें होवे, तो उजड जावे, तथा जो गोल घर होवे, बहुत कूणे वाला होवे, अथवा एक कूणा दो कूणा तीन कूणा होवे. अरु दक्षिण वामी तरफ लंबा होवे, ऐसे घरमें न वसे. तथा जिस घरके कवाड स्वयमेव उघडे अरु भिडे वो घर सुखकारी नहीं.

तथा घरके द्वार आगें कलशादि चित्राम होवे, तो शुभ है, तथा रंगनी, नाटारंभ, भारत रामायणका युद्ध, राजाओंका युद्ध, ऋषियोंका चरित्र, देवचरित्र, ये चित्राम करानां, घरमें शुभ नहीं, तथा फलवृक्ष, फूली वेल, सरस्वती, नवनिधान, यक्षस्तंभ, लक्ष्मीदेवी, कलश, वर्द्धमान, चौदह स्वप्नावलि, ये चित्राम करानां शुभ है.

तथा खजूर, दाडिम, केलां कोहला, बीजोरां, ये जिसघरमें उगे, उस घरका नाश करते हैं, वटवृक्ष उगे तो लक्ष्मीका नाश करे, कांटावाला वृक्ष उगे, तो शत्रुका भय करे, वरु फल वाला वृक्ष उगे, तो संतानका नाश करे, इन वृक्षका काष्टभी वर्जे, तथा कोइ शास्त्र ऐसा कहता है किः– घरके पूर्व वरुवृक्ष होवे, तो अछा है, दक्षिणपासें उदंबरवृक्ष शुभ है, पश्चिमभागें पीपल, उत्तरपासें प्लीक्षण वृक्ष अछा है.

तथा घरमें पूर्वदिशिमें लक्ष्मीका घर करे, अग्निकोणमें रसोइ करे, दक्षिणदिशिमें शयनकी जगा करे, नैऋतकोणमें शस्त्रशाला करे, पश्चिम दिशें भोजनक्रिया करे, वायुकोणमें अन्न संग्रह करे, उत्तर पासें जल र

खनेका स्थान करे, ईशानकोणमें देवगृह करे, तथा दक्षिणपासें अग्नि, पाणी, गाय, वायु, दीवेकी भूमि बनावे, तथा वामे पासें भोजन, धान्य, द्रव्य, वाहन, देवताकी भूमि करे, यह पूर्वादि दिशा सो घरके दरवाजेकी अपेक्षासें जाननी. छींकवत्. नतु सूर्यापेक्षा.

तथा घर बनानेवाले सूत्रधार मजूर प्रमुखकों बोले प्रमाणसें कछुक अधिक मजूरी देवे, इसमें शोभा है. गृहस्थकों चाहियें वैसा घर बनावे. परंतु व्यर्थ बमा घर न बनावे, क्योंकि उसमें व्यर्थ धन खरचनां है, घरका द्वार, मर्यादासें योग्य जाणकें रखे. क्योंकि बहुत दरवाजे बनानेसें दुष्ट जनोंके आने जानेसें स्त्री अरु धनका नाश हो जाता है, तथा दरवाजेका किंवाड दृढ बनावे, सांकल अर्गलादिसें सुरक्षित करे, किंवाडभी सुखें खुल जावे, ऐसे बनावे, भींतमें भोगल रखनेसें पंचेंद्रिय जीवकी विराधना होती है, किंवाड भेडे, तब यत्नसें भेडे. ऐसे प्रणाला खालादिकाभी यथाशक्तिसें उद्यम करे, इसी तरें देश, काल, स्वविभव उचित स्वजाति उचित घर बनाकें विधि सहित स्नात्रपूजा, साधर्मिकवात्सल्य, संघपूजा करकें भले मुहूर्त्तमें भले शकुनमें प्रवेश करे, तो बहुत सुखदायी होवे, त्रिवर्गकी सिद्धिका हेतु होवे ॥ इति प्रथम उचित द्वार ॥ १ ॥

२ दूसरा विद्या द्वार कहते हैं. विद्या सो लिखित, पठित, वाणिज्यादि कलाका ग्रहण करे, अर्थात् अध्ययन करे, क्योंकि जो विद्या नहीं शीखता है, सो मूर्ख रहता है, पग पगमें पराभव पाता है, अरु विद्यावान् परदेशमेंभी माननीय होता है, इस वास्ते सर्व प्रकारकी कला शीखनी चाहियें. क्या जाने क्षेत्र कालके विशेषसें किस कलासें आजीविका करणी पडे? जिसने सर्वकला शीखी होवे, उसनेभी पूर्वोक्त सात प्रकारकी आजीविकामेंसें जिस करकें सुखें निर्वाह होवे, सो आजीविका करणी. जे कर सर्वकला शीखने समर्थ न होवे, तब जिस कलासें अपनां सुखें निर्वाह होवे, अरु परलोकमें अछी गति होवे, सो कला, शीखे, पुरुषकों दो वातें अवश्य शीखनी चाहियें, उसमें एक तो जिस्सें सुखें निर्वाह होवे सो, अरु दूसरी जिस्सें मरकें अछी गतिमें जावे, यह दो वातें अवश्य शीखनी. २

३ तीसरा विवाहद्वार. सो विवाहभी त्रिवर्गशुद्धिका हेतु होनेसें उचित ही करणा चाहियें, विवाह अन्यगोत्रवालेसें करना चाहियें तथा समान

कुल, सदाचारादि, शील, रूप, वय, विद्या, धन, वेष, जाषा प्रतिष्ठादि करकें जो आप समान होवे, तिसके साथ विवाह करे, अन्यथा अवहेलना, कुटुंब कलहादि अनेक कलंक उत्पन्न होते हें, श्रीमतीवत् सामुद्रिक शास्त्रोक्त शरीरके लक्षण अरु जन्मपत्रिका देखकें वर कन्याकी परीक्षा करकें विवाह करे, तदुक्तं ॥ श्लोक ॥ इंद्रवज्रावृत्तं ॥ कुलं च शीलं च सनाथता च, विद्या च वित्तं च वपुर्वयश्च ॥ वरे गुणाः सप्त विलोकनीया, स्ततः परं जाग्यवशा हि कन्या ॥ १ ॥ तथा जो मूर्ख होवे, निर्धन होवे, दूर होवे, सूरमा होवे, मोक्षाजिलाषी वैरागवंत होवे, वयमें कन्यासें त्रिगुणा अधिक होवे, इनकों कन्या न देनी, तथा अतिधनवान्, अतिशीतल, अतिक्रोधी, विकलांग, अरु रोगी, इनकोंजी कन्या न देनी, तथा जो कुल जातिसें हीन होवे, माता पिता रहित होवे, स्त्री पुत्रसहित जिसकें होवे, इनकोंजी कन्या न देनी, तथा जिसका बहुतोंसें वैर होवे, जो नित्य कमाकें खावे, अरु जो आलसी होवे, इनकोंजी कन्या न देनी, तथा गोत्रीयकों, जूआरीकों, कुव्यसनीकों, विदेशीकों, इनकोंजी कन्या न देनी, जो स्त्री, कपट रहित जर्त्तारके साथ वर्त्ते, देवरके साथजी कपट रहित वर्त्ते, सासुकी जक्ता होवे, स्वजनकी वत्सल होवे, जाइयोंमें स्नेहवाली होवे, कमलकी तरें विकसित वदन वाली होवे, सो कुलवहू सुलक्षणी है.

अग्नि देवताकी साखसें पाणीग्रहण करनां, तिसका नाम विवाह कहते हें, सो विवाह लोकमें आठ प्रकारका है, एक अलंकार करकें कन्या देवे, तिसका नाम ब्राह्मविवाह है, दूसरा कन्याके पिताकों धन देकें जो कन्या विवाहे, तिसका नाम प्राजापत्य विवाह है, इन दोनो विवाहकी विधि आचारदिनकर शास्त्रसें जान लेनी, तीसरा वछडे सहित गोदान पूर्वक आर्षविवाह, चौथा जो यज्ञके वास्ते दीक्षा लेवे, उसकों जो कन्या देवे, सोइ दक्षिणा है, सो देवविवाह है, ये दोनो विवाह, लौकिकवेद सम्मत है, परंतु जैनवेदमें सम्मत नहीं हें. क्योंकि इन दोनो विवाहोंके मंत्र, जैनवेदमें नहीं हें, अरु ये दोनो विवाह जैनमतवालोंके मतमें करने योग्य नहीं है, इन पूर्वोक्त चारों विवाहोंको लोक नीतिमें धर्मविवाह कहते हें, पांचमा मातापिताकी आज्ञा विना परस्पर स्त्री पुरुषके रागसें जो विवाह होवे, तिसकों गांधर्व विवाह कहते हें, छठा किसी कामकी प्रतिज्ञा कराके कन्या

देवे. सो आसुरविवाह है, सातमा जो जोरावरीसें कन्याकों ग्रहण करे, सो राक्षस विवाह है. आठमा सूती, मदोन्मत्त, बावरी, प्रमादवंत, कन्याकों ग्रहण करे, सो पिशाच विवाह है, इन चारोंकों अधर्म विवाह कहते हैं. जे कर वधूवरकी परस्पर रुचि होवे तदा अधर्मविवाहकोंभी धर्मविवाह जाननें. अछी स्त्रीका लाभ होनां, यह विवाहका फल है, अरु स्त्री मिलनेका फल यह है किः—अछा पुत्र उत्पन्न होवे, चित्तकी वृत्ति अनुपहत रहे, शुद्धाचार, देवगुरु, अतिथि, बंधवादिका सत्कार होवे.

तथा विवाहमें जो धन खरचे, सों अपणे कुल वैभवकी अपेक्षा लोकमें जैसें अछा लगे, तितना खरच करे, परंतु अधिक अधिक खरचनेकी चाल न वढावे, क्योंकि अधिक अधिक खरच तो धर्मपुण्यकी जगेंही करनां ठीक है, विवाहादिके अनुसारें स्नात्रमहोत्सव, बडी पूजा, आदर सहित करे, रत्नवती ढोकन अरु चतुर्विधसंघका सत्कारादि करे, क्योंकि विवाहादि जो हैं, सो सब संसारके कारण हैं, इसमेंसें जितना धर्ममें लग जावे, सो सफल है ॥ इति तृतीयद्वार ॥ ३ ॥

४ अथ चौथा मित्र द्वार कहते हैं. मित्र बनावे उसकों गुमास्ता रक्खे, उसकों जो सहायक होवे, उत्तमप्रकृतिवाला, साधर्मी, धैर्यवंत, गंभीर, चतुर, बुद्धिमान्, प्रतीतकारी, सत्यवादी, इत्यादि शुभगुण युक्त होवे, उसकों मित्र बनावे॥

५ पांचमा द्वार भगवान्का मंदिर बनावे. सो बडा ऊंचा, तोरण शिखर मंडपादि मंडित, भरतचक्रवर्त्यादिवत् बनावे. सुवर्ण, मणि, रत्नमय तथा विशिष्टपाषाणमय, अथवा विशिष्ट काष्ट इंटमय मंदिर बनावे. जेकर शक्ति न होवे, तो तृणकी कुटीभी न्यायार्जित धनसें बना कर उसमें मट्टीकी प्रतिमा बना करके पूजे. न्यायोपार्जित धनसेंही जिनमंदिर बनानां चाहियें. जिसने जिनभवन नहीं कराया, जिनप्रतिमा नहीं बनवाइ, जिनप्रतिमाकी पूजा नहीं करी, अरु साधुपणा नहीं लीया, उस पुरुषने अपणा जन्म हार दीया है. जो पुरुष शक्तिके अभावसें एक फूलसेंभी पूजा करे, तोभी वो परमपुण्य उपार्जन करता है, तो फेर जिसने दृढ, निबिड, सुंदर शिलासें श्रीजिनभवन मानरहित हो करकें बनवाया है, तिसके पुण्यका क्या कहनां है ? उसका तो जन्मही सफल है.

जिनमंदिर बनानेकी जो विधि है, सो लिखते हैंः—भूमि अरु काष्ठादि

शुद्ध होवे, मजूरोंसें ठग न करे, सूत्रधारकारीगरोंकों सन्मान देवे, तथ पूर्वे जो घर वनानेकी विधि कही, वो सर्व इहां विशेष करकें जाननी. काष्टादि जो ल्यावे,सोजी देवाधिष्टातावनादिसें सूका ल्यावे,परंतु अविधिसें न ल्यावे, तथा आप इंट पकावे तो अछा नहीं, नोकेरोंकों काम करने वालोंकों ठहरावसेंजी कबुक महीना अधिक देवे, क्योंकि वे लोक तुष्टमान होकें अछा पक्का काम करे, अरु मंदिरादि करानेमें शुज परिणामके वास्ते गुरु संघ समक्ष ऐसें कहे, कि जो इहां अविधिसें पारका धन मेरे पास आया होवे, तिसका पुण्य तिसकों होवे, इसी तरें जिनमंदिर वनावे, परंतु जूमि खोदनी, पूरणी, पाषाणदलसें कपाट लाने, शिला फोमनी, चिनने प्रमुखमें महा आरंज होता है, इस वास्ते जिनमंदिर न वनानी चाहियें ? ऐसी आशंका न करनी, क्योंकि यत्नसें करकें प्रवृत्त होनेसें निर्दोष है, अरु नाना प्रतिमास्थापन, पूजन, संघसमागम, धर्मदेशना करणी, दर्शनव्रतादिककी प्रतिपत्ति, शासनप्रजावना, अनुमोदनादि, अनंत पुण्यका हेतु होनेसें तथा शुजोदयका हेतु होनेसें कूपके दृष्टांतसें महालाजका कारण है.

अरु जीर्णोद्धारमें ऐसी रीति है. यतः ॥ नवीनजिनगेहस्य, विधाने यत्फलं जवेत् ॥ तस्मादष्टगुणं पुण्यं, जीर्णोद्धारेण जायते ॥ १ ॥ जीर्णे समुद्धृते याव, त्तावत्पुण्यं न नूतने ॥ उपमर्दोमहांस्तत्र, स्वचैत्यख्यातिधीरपि ॥ २ ॥ तथा ॥ राय अमच्च सेठी, कोडंवीएवि देसेणं काउं ॥ जिपुवायणे, जिणकप्पीवावि कारवई ॥ १ ॥ अर्थः–राजा, मंत्री, श्रेष्ठी, कौटंबीकोंकों उपदेश दे कर जीर्ण जिनमंदिरका उद्धार जिनकल्पी साधुजी करावे, जो जिनजवनका उद्धार करे, तिसनें जयंकर संसारसें अपणी आत्माका उद्धार करा है, ऐसा जान लेनां. जीर्णचैत्योद्धारकरणपूर्वकही नवीन चैत्य करानां योग्य है, इसी वास्ते संप्रति राजाने नवासी हजार जीर्णोद्धार कराये हैं, अरु नवीन जिनमंदिर तो उत्तीश हजारही वनवाये हैं, ऐसेही कुमारपाल राजा तथा वस्तुपालादिकोंनेजी नवीन जिनमंदिरों वनानेसें जीर्णोद्धार वहुत कराये हैं.

तथा जब चैत्य वन जावे, तब शीघ्रही प्रतिमा विराजमान करनी चाहियें ॥ यदाह श्रीहरिजद्रसूरिः ॥ जिनजवने जिनविंबं, कारयितव्यं द्रुतं तु बुद्धिमता ॥ साधिष्ठानं ह्येवं, तद्भवनं वृद्धिमद्भवति ॥ १॥ देहरेमें कुंडी,

कलश, उरसा, प्रदीप, भंडार, वाग, वाडी, गाम, नगर प्रमुख राजा देवे, जैसें सिद्धराजराजाने, श्रीरैवताचल उपर श्रीनेमिनाथके चैत्य वास्ते बारा गाम दीये थे, तथा जैसें कुमारपालराजानें वीतभय पाटनके खुदानेसें ताम्रपत्रमें श्रीउदयन राजाके दीये गाम निकले, सो कबूल करके दीये, तैसें देवे, श्रीजिनमंदिरके बनानेका फल यह है किः—जो यथाशक्तिसें अपणे धनके अनुसार श्रीजिनवरका भवन करावे, सो देवता जिसकी स्तुति करे,बहुत काल लग आनंद रूप, ऐसा देवविमानादिक परम सुख पावे ॥५॥

६ अथ षष्ट प्रतिमाद्वार- सो श्रीअर्हतका बिंब, मणि, सुवर्ण, धातु, चंदनादि काष्ट अरु पाषाण, माटी प्रमुखका पांच सो धनुष प्रमाण यावत् अंगुष्ट प्रमाण यथाशक्तिसें बनावे, श्रीजिनप्रतिमा बनानेवालेकों फल होता है, सो कहते हैं ॥ श्लोक ॥ वसंततिलकावृत्तं ॥ सन्मृत्तिकामलशिलातलरूप्यदंतरौप्य, सौवर्णरत्नमणिचंदनचारुबिंबम् ॥ कुर्वंति जैनमिह ये स्वधनानुरूपं, ते प्राप्नुवंति नृसुरेषु महासुखानि ॥ १ ॥ आर्या ॥ दारिद्दं दोहग्गं, कुजाइ कुसरीर कुगइ कुमईउ ॥ अवमाण रोग सोगा, न हुंति जिणबिंब कारीणं ॥ २ ॥ अर्थः—जो जिनबिंबका करानेवाला है, सो दारिद्र, दौर्भाग्य, कुजाति, विरूप शरीर, नरक तिर्यंचकी गति, बूरी बुद्धि, परवशपणां, रोगी, अरु शोकी पणांको न पावे.

तथा प्रतिमाभी वास्तु शास्त्रमें कही विधिपूर्वक बनावे,सुलक्षणा संतति की वृद्धि करनेवाली बनावे, तथा जो प्रतिमा अन्यायोपार्जित द्रव्यसें बने,दोरंगादि रंगवाले पाषाणकी बने, जिसका अंग हीनाधिक होवे, सो प्रतिमा स्वपरकी उन्नतिकी नाश करने वाली है, तथा जिस प्रतिमाका मुख, नाक, नेत्र, नाभि, कटि, इतने अंग, भंग होवे, तो वो प्रतिमाकों मूल नायक न करनां चाहियें, अरु आभरण सहित, वस्त्रसहित, परिकर सहित, लंछन सहित पूजे, तथा जिस प्रतिमाको सौ वर्षसें अधिक वर्ष हो गया होवे, अरु आगे जो प्राभाविक पुरुषकी प्रतिष्टी हुइ होवे, वो प्रतिमा जे कर खंडित होवे, तोभी पूजने योग्य है, तथा बिंबके परिवारमें पाषाणवर्णसें, लेकर दूसरा रंग होवे, तो वो बिंब, सुखकारी नहीं, जो बिंब, सम अंगुल प्रमाण होवे, सो शुभ नहीं, तथा एक अंगुलसें ले कर इग्यारह अंगुल प्रमाण बिंब घरमें पूजनां चाहियें, इसूसें उपरांत प्रमा

णवाला बिंब होवे, तो प्रासादमें पूजना चाहियें. यह कथन तथा निरयावलिसूत्रमें कहा है, कि लेपकी, पाषाणकी, काष्टकी, दांतकी, लोहकी प्रतिमा, परिवार अरु प्रमाण रहित होवे, तो घरमें न पूजे, घरप्रतिमाके आगें नैवेद्यका विस्तार न करे, तीन कालमें निश्चयें अभिषेक करे, पूजा, जावसें करे, प्रतिमा मुख्यवृत्तिसें परिकर सहित तिलक सहित आजरण सहित करावे, उसमें मूल नायक तो विशेष करकें शोजनीक बनाना चाहियें. क्योंकि जिनप्रतिमाकी अधिक शोजा देखनेसें परिणाम अधिक उल्लासमान होनेसें अधिक निर्जरा होती है, जिनमंदिर अरु जिन प्रतिमा बनानेवालेकों अतुल्य पुण्य फल होता है, जहां तक वो मंदिर अरु प्रतिमा रहेंगे, तहां तक पुण्य फल होवे, जैसें अष्टापद उपर जरत राजाका कराया चैत्य तथा रेवतगिरि उपर ब्रह्मेंद्रका कराया कांचन बलानकादि चैत्यप्रतिमा, अरु जरतचक्रीकी अंगूठीमें माणककी प्रतिमा, तथा कुल्पाक तीर्थमें माणिक्यस्वामीकी प्रतिमा कहलाती है, तथा श्री स्तंजनक पार्श्वनाथकी प्रतिमा आज लग पूजते हैं, इसी वास्ते इस चौवीसीमें पहिलां जरतचक्रीनें श्रीशत्रुंजय तीर्थमें रत्नमय चौमुख चौरासी मंरूप संयुक्त श्रीकृषजदेवका मंदिर बनवाया, पांच कोडी मुनियोंसें पुंमरीक गणधर मोक्ष पाये, ज्ञाननिर्वाणके ठिकाणेजी बनवाये, असेंही बाहुबली, मरुदेवी शृंगमें तथा रेवतगिरि,अर्बुदगिरि,वैजारगिरि अरु समेतशिखरमेंजी जिनमंदिर बनवाये, प्रतिमाजी सुवर्णादिककी बनवाइ, तथा जरतराजाकी आठमी पीढीमें (पुस्तमें) दंरुवीर्य राजानें तथा दूसरा सगरचक्रवर्त्यादिकोंनें तिनका उद्धार कराया, तथा हरिषेण नामक दशमे चक्रीनें श्रीजिनमंदिरमंरुित पृथ्वी करी, तथा संप्रतिराजाने सवा लाख जिनमंदिर तथा सवा क्रोरु जिनप्रतिमा बनवाइ, तथा आमराजा श्रावकने गोपालगिरि अर्थात् गवालियरकें राजाने श्रीमहावीर अर्हंतका मंदिर एक सो एक हाथ ऊंचा बनवाया, तिसमें साढे तीन क्रोड सोना मोहोर खरचकें सात हाथ प्रमाण ऊंची श्रीमहावीर अर्हंतकी प्रतिमा विराजमान करी, तहां मूलमंरुपमें सवा लाख सोनइया लगाया, अरु प्रेक्षामंडपमें एकवीश लाख सोनइया खरच कस्या, तथा कुमारपाल राजानें चौदह सो चौंतालीस (१४४४) नवीन जिनमंदिर कराये, अरु सोलां सो मंदिर, जीर्णोद्धार क

राये, ठानवे क्रोड रूपइये खरचके त्रिभुवनविहार नामा जिनमंदिर बनवाया, उसमें एक सौ पंचवीश अंगुल प्रमाण अरिष्टरत्नमयी प्रतिमा बहत्तर देहरी संयुक्त अरु चौवीस प्रतिमा रत्नकी, चौवीस सोनेकी, चौवीस रूपेकी स्थापन करी, अरु चौदह जार प्रमाण एकेक चौवीसी बनवाई, तथा मंत्री वस्तुपालने तेरां सौ तेरां नवीन जिनमंदिर बनवाये, औ बाइसौ जीर्णोद्धार कराये, सवा लाख प्रतिमा, अरु सवा लाख रत्नसुवर्णं जडे ऐसे आजूपण, प्रतिमाजीके बनवाये. तथा साह पेथमने चौरासी जिनमंदिर बनवाये, मांधाता अरु ऊँकार नगरमें तथा देवगिरिमें क्रोडों रूपक खरचके वीरमदे राजाके राज्यमें चौरासी जिनमंदिर बनवाये, तीन लाख रूपइया दानमें दीना, तथा तिसही पेथमशाहनें श्रीशत्रुंजय तीर्थमें श्रीऋषभदेवजीके मंदिरकों सुवर्णपत्रसें मढाके मेरुके शृंगवत् कर दीया था, ये सर्व पूर्वोक्त मंदिर, राजा अजयपालनें अरु मुसलमानोंनें गारत कर दीये, शेष जो बचे बचाये रहे हैं, वे आजजी आबु तारंगादि पर्वतों उपर विद्यमान हैं.

७ सातमा प्रतिमाकी प्रतिष्ठाका द्वार. सो प्रतिमाकी प्रतिष्टा शीघ्र करनी चाहियें, षोमशकग्रंथमें लिखा है, कि मंदिर त्यार हूआं पीछें दश दिनके अन्यंतरही प्रतिष्ठा करानी चाहियें, यह प्रतिष्ठाकी विधि प्रतिष्टा कल्प प्रमुख ग्रंथोंसें जान लेनी ॥ इति सप्तमद्वार ॥ ७ ॥

८ आठमा दीक्षा द्वार. सो बडे महोत्सवसें पुत्र, पुत्री, जाइ, जत्रीजा, स्वजन, मित्र, परिजन प्रमुखकों दीक्षा दिलावे, उपस्थापना करावे, तथा और दीक्षा लेनेवालोंका महोत्सव करे, ये महापुण्यका कारण है, जिसके कुलमें चारित्र धारक पुरुष होवे, सो बडा पुण्यवान् कुल है, लौकिक शास्त्रमेंजी लिखा है कि ॥ श्लोक ॥ तावद्भ्रमंति संसारे, पितरः पिंडकांक्षिणः ॥ यावत्कुले विशुद्धात्मा, यतिःपुत्रो न जायते ॥१॥ इति अष्टमद्वार॥

९ नवमा तत्पदस्थापनाद्वार. सो गणि, वाचनाचार्य, वाचक, आचार्यादि पदप्रतिष्टाकों शासनकी उन्नति वास्ते बडे महोत्सवसें करे, जैसें पहिला गणधरोंकों शक्र (इंद्र) ने करी है, तथा मंत्री वस्तुपालने एकवीश आचार्योंकों पदस्थापना करी ॥ इति नवमद्वार ॥ ९ ॥

१० दशमा पुस्तक लिखावनेका द्वार. सो पुस्तक जो आचारांगादि कल्पसूत्र, अरु जिनचरित्रादिकोकों न्यायार्जित धनसें लिखावे, अछे पत्र(कागज)

ऊपर बहुत शुद्ध सुंदर अक्षरोंसें लिखावे, तथा आप वांचे, संवेगी गीतार्थ पासों वंचावे, तथा प्रौढ प्रारंभादि महोत्सवसें दिनप्रत्यें पुस्तककी पूजा ब हुमान पूर्वक व्याख्यान करावे, तिनके पढने वालोकों वस्त्र अन्नादिसें उ पष्टंभ करे, शास्त्र जो होते, सो दुःखम कालके प्रभावसें बारां वर्षके दु र्भिक्ष कालमें बहुत विछेद गये, अरु जो शेष रहे, सो भगवान् नागार्जुन स्कंदिलाचार्य प्रमुखोनें पुस्तकोंमें लिखे, तबसें लिखे हूए शास्त्रोंका बहु मान करने लगे, तिस वास्ते पुस्तक जरुर लिखाने चाहियें. क्योंकि जो यह विछेद हो जायंगे, तो फेर इस क्षेत्रके अनाथ जीवोंको कौन ज्ञान देवेगा? इस वास्ते पुस्तकोंके ऊपर दुकूलादि वस्त्र बांधकें यत्नसें पूजने रखने चाहियें, शाह पेथरूनें सात क्रोड, अरु मंत्री वस्तुपालनें अठारह क्रोड रूपइये खरचकें तीन ज्ञानके भंडार बनाये, तथा थिरापद्रीय संघ पति आभूने अपणी माताके नामके रूपइये तीन क्रोडसें सर्वागमोंकी प्रति सोनेके अक्षरोंसें लिखवाइ,शेषग्रंथ स्याहीके अक्षरोंसें लिखाये ॥१०॥

११ इग्यारहवा पौषधशाला बनानेका द्वार. सो श्रावक प्रमुखोंके पौषध करने वास्ते साधारण स्थानमें पूर्वोक्त घर बनानेकी विधिके अनुसारें ब नानी चाहियें. वो शाला समयाकें अवसरमें सुसाधुके रहनेकोंभी देवे,ति सका महाफल है, श्रीवस्तुपालने नौ सो चोरासी (९८४) पौषधशाला कराइ, सिद्धराज जयसिंह राजाके प्रधान, सांतूने अपणे रहने वास्ते बहुत सुंदर आवास करार्के श्रीवादिदेवसूरिजीकों दिखलाया, अरु मंत्रीजीने पूछा किः—कैसा आवास है? तब चेले माणिक्यने कहा कि पौषधशाला होवे तो वर्णन करियें, तब मंत्रीने कहा किः—यह पौषधशालाही होवे॥

१२–१३ तथा बारहवा अरु तेरहूवा द्वारमें आजन्म बाल्य अवस्थासें लेक र जावजीव लगें सम्यक्त्वदर्शन यथाशक्तिसें पाले, यह बारहमा द्वार॥१२॥ १३ अरु यथाशक्तिसें व्रतादि पाले, यह तेरहवा द्वार ॥ १३ ॥

१४ चौदहवा दीक्षा ग्रहणका द्वार. सो श्रावक अवसर जानकें दीक्षा ग्रहण करे, तात्पर्य यह है किः—श्रावक जो है, सो निश्चय बाल्यावस्थामें दी क्षा न लेवे, तो अपणे मनमें ठगाया हूआ माने, जैसें जगतमें अति वल्ल भ वस्तुको लोक स्मरण करते हैं, तैसें श्रावकभी नित्य सर्वविरति लेनेकी चिंता करे, जे कर गृहवासभी पाले, तोभी औदासीन्य अलिप्तपणे अपने

को प्राहुणे समान समके,क्योंकि नावश्रावकके लक्षण सत्तरे प्रकारे कहे हैं, तिनका नाम कहते हैं.

१ स्त्रीसें वैराग्य, २ इंद्रियवैराग्य, ३ धनसें वैराग्य, ४ संसारसें वैराग्य. ५ विषयसें वैराग्य, ६ आरंन स्वरूप जाणे, ७ घरकों फुःखरूप जाणे, ८ दर्शनधारी, ९ गमरीप्रवाह ठोडे, १० धर्ममें आगें हो कर प्रवर्त्ते, आगमानुसारें धर्ममें प्रवर्त्ते, ११ दानादिकमें यथाशक्ति प्रवर्त्ते, १२ विधिमार्गमें प्रवर्त्ते, १३ मध्यस्थ रहे, १४ अरक्तद्विष्ट, १५ असंबद्ध, १६ परहित वास्ते अर्थ कामका नोगी न होवे, १७ वेश्याकी तरें घरवास पाले, ए सत्तरे पद संयुक्त नावश्रावक होता है. तिनमें १ प्रथम स्त्री जो है, सो अनर्थका नवन है, चपलचित्तवाली है, नरककी वाट सरीखी है, जानता हूआ कामी, इसके वशवर्त्ती न होवे, २ दूसरी इंद्रियों जो हैं, सो चपल घोडे समान हैं,खोटी गतिकी तरफ नित्य दोडती हैं, उसकों नव्य जीव, संसारका स्वरूप जानकें सत्ज्ञानरूप रज्जु (दोरडी) सें रोके, ३ तीसरा धन जो है, सो सर्व अनर्थका ओ क्लेशका कारण है, इस वास्ते धनमें लुब्ध न होवे,४ चौथा संसारकों फुःखरूप फुःखफल फुःखानुबंधी विरुंबनारूप जानकें प्रीति न करे, ५ पांचमा विषयका क्षणमात्र सुख है, विषय विषफल समान है, ऐसें जानकें कदापि विषयमें गृद्धित्व न करे, ६ ठहा तीव्रारंन सदा वर्जे, जे कर निर्वाह न होवे, तोनी स्वल्पारंन करे, अरु आरंन रहितोंकी स्तुति करे, सर्व जीवों उपर दयावंत होवे, ७ सातवा गृहवासकों फुःख रूप फांसी मानकें गृहवासमें वसे, अरु चारित्रमोहनीय कर्मके जीतनेमें उद्यम करे,८आठमा आस्तिक्य नाव संयुक्त जिन शासनकी प्रनावना गुरुनक्ति करे, ऐसें सम्यग्दर्शन निर्मल धरे,९नवमा जिस तरें बहुत मूर्ख लोक नेम (गमरी) प्रवाहवत् चलते होवे, तैसें न चले, परंतु जो काम करे सो विचारकें करे, १० दशमा श्रीजिनागम विना और कोइ परलोकका यथार्थ मार्ग कहनेवाला शास्त्र नहीं, इस वास्ते जो काम करे, सो जिनागमानुसारे करे, ११ इग्यारहवा आपणी शक्तिके विना गोप्यां चार प्रकारका दानादि धर्म करे, १२ बारहवा हितकारी, अनवद्य धर्मक्रियाकों चिंतामणि रत्नकी तरें फुर्लन जानकें करता हूआ किसी मूर्खके हसनेसें लज्जा न करे, १३ तेरहवा शरीरके रखने वास्ते धन, स्वजन, आहार, घर प्रमुखमें वसे,

जोग रहे, परंतु राग, द्वेष, किसी वस्तुमें न करे, १४ चौदहवा उपशांत वृत्तिसार है, ऐसें विचारसें जो राग द्वेषमें लेपायमान न होवे, खोटा आग्रह न करे, हितका अभिलाषी मध्यस्थ रहे, १५ पंदरहवा सर्ववस्तु कों क्षणभंगुर पणा निरंतर विचारे, धनादिके साथ प्रतिबंध तजे, १६ शोलहवा संसारमें विरक्त मन होवे, क्योंकि भोग भोगनेसें आज तक कोइ तृप्त नहीं हूआ है, परंतु स्त्रीआदिके आग्रहसें जे कर भोगोमें प्र वर्त्ते, तोभी विरक्तमन रहे, १७ सत्तरहवा वेश्याकी तरें अभिलाषा रहित वर्त्ते, ऐसा विचारे की आज काल ये अनित्यसुख मुझकों छोडने पडेंगे, इस वास्ते घरवासमें स्थिर भाव न रक्खे, यह सत्तरे गुण संयुक्त श्रीजि नागममें भाव श्रावक कहा है ॥ इति धर्मरत्नशास्त्रे कथितं ॥

ऐसें शुभभावना वासित प्रागुक्त दिनकृत्यादिमें रक्त "इणमेव निग्गंथ पवयणे अठे परमठे सेसे अणठे" ऐसी सिद्धांतोक्त रीतिसें वर्त्तमान सर्व व्यापारोंमें सर्वप्रयत्नसें वर्त्तता हूआ सर्वत्राऽप्रतिबद्ध चित्त करकें क्रमसें मोह जीतने समर्थ होकें पुत्र, भाइ, भत्रीजादिककों गृहभार सोंपकें अप णी शक्तिकों देखकें अर्हंत चैत्यमें अठाइ महोत्सव करकें संघकी पूजा करकें दीन अनाथोंकों यथाशक्ति दान देकें परिचित जनोंसें खामणां करकें सुदर्शन श्रेष्ठीवत् विधिसें सर्वविरति अंगीकार करे ॥ १४ ॥

१५ पंदरहवा द्वारमें जे कर दीक्षा लेनेकी शक्ति न होवे, तदा आरं भका त्याग करे, जे कर निर्वाह न होवे, तोभी सर्व सचित्ताहारादिक कितनाक आरंभ वर्जे ॥ इति पंचदशं द्वारं ॥ १५ ॥

१६ शोलमे द्वारमें ब्रह्मचर्य, जावज्जीव तक अंगीकार करे, यथा शाह पे थडनें बत्तीस वर्षकी अवस्थामें ब्रह्मचर्य धारण कीया ॥ इति षोडश द्वारं ॥

१७ सत्तरहवे द्वारमें प्रतिमादि तप विशेष करे, आदि शब्दसें संसार तार णादि तप करे, तहां इग्यारह प्रतिमाका स्वरूप इस तरें है, प्रथम राया भिओगेणादि छे आगार रहित, तथा सतशठ बोल श्रद्धादि सहित सम्यक् दर्शन भय लज्जादिसें अतिचार रहित त्रिकाल देवपूजादिमें तत्पर एक मा स तक सम्यक्त्व पाले, यह प्रथम प्रतिमा, दूसरी दो मास तक अखंडित पांच अणुव्रत पाले, सोभी पीछली प्रतिमा सहित वर्त्ते, तीसरी तीन मास तक उभय काल अप्रमत्त पूर्वोक्त दो प्रतिमा सहित सामायिक करे, चौथी

चार मास तक चार पर्वीमें पूर्वली तीन प्रतिमा सहित अखंमित परिपूर्ण पौपध करे, पांचमी पांच मास तक स्नान न करे, रात्रिकों चार आहार व र्जे. दिनमें ब्रह्मचर्य धरे, कछ बांधे नहीं, चार पर्वीमें घरमें तथा चौकमें निःप्रकंप होकें सकलरात्रि कायोत्सर्ग करे, यह सर्व पूर्वली प्रतिमा सहित करे. यह बात आगेंनी सर्व प्रतिमामें जान लेनी. छठी छे मास तक ब्रह्मचारी होवे,सातमी सात मास तक सचित्त आहार वर्जे,आठमी आठ मास तक आप आरंज न करे, नवमी नव मास तक आरंज करावे नहीं,दशमी दश मास तक क्षुरमुंमित रहे अथवा अल्प चोटी राखे, घरमें गडा हूआ धन होवे,जब घरके पूछे तब कहे जानता हूं, औ जो न गमा होवे,तो कहे में नहीं जानता. शेप घरका कृत्य सर्व वर्जे, तिसके निमित्त जो घरमें आहार कस्या होय, तोनी न खावे. इग्यारहवी इग्यारां मास तक घरका संग त्यागे, लोच करे, वा क्षुरमुंडित होवे, रजोहरण पात्रे प्रमुख लेकें मुनिका वेपधारी हो कर स्वकुलमें निक्षा लेवे, मुखसें ऐसा कहे कि "प्रतिमाप्रतिपन्नाय श्रमणोपासकाय निक्षां देहीति वचन कहे," धर्मलान शब्द न कहे, सर्वरीतिसें साधुकी तरें प्रवर्त्ते ॥ इति श्राद्धप्रतिमा सप्तदशद्वारम् ॥ १७ ॥

१८ अठारहवा द्वार, आराधनाका कहते हैं, श्रावक अंतकालमें आराधना जो आगें कहेंगे सो अरु संलेपनादिकों विधिसें करे. श्रावक जब सर्व धर्म कृत्यमें अशक्त हो जावे, तब मरण निकट जानकें ऽव्य अरु नावें दो प्रकारें संलेपना करे. तहां ऽव्यसंलेपना तो अनुक्रमसें आहार त्यागे, अरु नावसंलेपना सो क्रोधादि कपाय त्यागे, मरण निकट इन लक्षणो सें जान लेवें. सो लक्षण कहते हैं. १ बूरे स्वप्न आवे, २ प्रकृति स्वनाव और तरेंका होवे, ३ ऽुर्निमित्त मले, ४ खोटे ग्रह आवे, ५ आत्माका आचरण फिर जावे, अथवा कोइ देवता कह जावे तो मरण निकट जान जावे, जो ऽव्यें नावें संलेपणा न करे, अरु अनशन कर देवे, उसकों प्रायें ऽुर्ध्यान होनेसें कुगति होती है. इस वास्ते संलेपना अवश्य करे, पीछें श्रावकोंके धर्मके उद्यापन करने वास्ते संयम अंगीकार करे, क्योंकि एक दिनकीनी दीक्षा स्वर्गलोककी दाता है. जेसें नलराजाके नाई कुवेरके पुत्र सिंहकेसरी, पांच दिनकी दीक्षासें केवलज्ञान पाके मोक्ष गया, तथा हरिवाहन राजाने नव प्रहरका शेप आयु सुनकें दीक्षा लीनी.

सर्वार्थसिद्ध विमानमें गया, संथारा और दीक्षाके अवसरमें प्रनावना वां यथाशक्ति धन खरचे, जैसें सात क्षेत्रोंमें ते अवसरमें थिरापद्री संघपति आजूने सात क्रोम धन खरच्या तथा जिसकों संयमका योग न होवे, सं संलेपना करकें शत्रुंजयादि तीर्थ सुस्थानमें जा कर निर्दोष स्थंमिलमें विधि सें चार आहार त्यागरूप अनशनकों आणंद कामदेवादि श्रावकोंवत् करे, तिस पीछें सर्वातिचारका परिहार चारशरणादि रूप आराधना करे.

आराधना दश प्रकारसें होती है, सो कहते हैं. १ पहिलां सर्वाति आलोवे, २ व्रत उच्चारण करे, ३ सर्व जीवोंसें क्षमावे, ४ अपणी कों अठारह पापस्थानक करनेसें व्युत्सर्जन करे, ५ चार सरणां लेवे, गमनागमन दुःकृती गर्हणा करे, ७ जो किसीने जिनमंदिरादि सुकृ रा होवे, तिसकी अनुमोदना करे, ८ शुजजावना जावे, ए अनशन अर्थात् चार आहार तीन आहारका त्याग करे, १० पंच नमस्कारका रण करे, ऐसी आराधना करणेसें जे कर तिस जवसें मुक्ति न होवे, तो जी सुदेव अथवा सुमनुष्यके आठ जव करकें तो अवश्यमेव मोक्ष हो जावेगा ॥१८॥ इति अष्टादश द्वारं समाप्तम् ॥

इस गृहस्थके धर्म करनेसें निरंतर गृहस्थ लोक इस लोक, परलोकमें सुखकों प्राप्त होवे हैं, अरु परंपरासें मोक्षकों प्राप्त होते हैं ॥ इति श्री श्राद्धविधि ग्रंथानुसार श्रावकस्य जन्मकृत्यं संपूर्णम् ॥

इति श्री तपगछीयमुनि श्रीमणिविजयगणि तच्छिष्य मुनिश्रीबुद्धिवि तच्छीष्य मुनिश्री मुक्तिविजयगणि तस्य [illegible] विजयविरचिते जैनतत्त्वादर्शे गृहस्थधर्मनिरूपणनामा दशमः परिछेदः॥

॥ इति श्री जैनतत्त्वादर्शे दशम
परिछेदः समाप्तः ॥

ते थे. जुगल जोडेजी गिणतीमें थोडे थे. बाकी (शेष) वनराय, पक्षी, पंचेंद्रिय सर्व जातिके जीव थे, परंतु वो भद्रक थे, क्षुद्रक नहीं थे. शालिप्रमुख सर्व अन्न तथा इक्षु प्रमुख चीजें सब जंगलोंमें स्वयमेवही उत्पन्न हो जाते थे, परंतु वो कुछ मनुष्योंके खानेमें नहीं आते थे, क्योंकि मनुष्य तो निःकेवल फल फूलोंकाही आहार करते थे, वस्त्रकी जगें वृक्षोंके पत्ते वा त्रिल्वक ढंकते थे. इत्यादि प्रथम आरेका स्वरूप, जंबूद्वीपप्रज्ञप्ति प्रमुख शास्त्रोंसें जान लेना ॥ इति प्रथम आराका किंचित्स्वरूप कहा ॥ १ ॥

दूसरा आरा, तीन कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण, तिसमें दो गाऊ (कोश) देहमान, दो पल्योपमायु, एक सौ अठाइ पृष्ट करंडक होते थे, शेष व्यवहार प्रथम आरावत् जानना ॥ इति दूसरा आरक ॥ २ ॥

तीसरा आरा, दो कोडाकोडी सागरोपम प्रमाण, एक गाऊ (कोश) देहमान, एक पल्योपमायु, चौसठ पृष्ट करंडकी पसलीयां, शेष व्यवहार प्रथम आरेवत् जानना. इन सर्व आरोंमें सर्ववस्तु क्रमसें घटती घटती छेहडे अगले आरे तुल्य रह जाती है. परंतु एकवारगी सर्ववस्तु नहीं घटती है

इस तीसरे आरेके छेहडे एक वंशमें सात कुलकर उत्पन्न हूए. कुलकर उसको कहते हैं कि जिनोंने तिस तिस कालके मनुष्योंके वास्ते कुछक मर्यादा बांधी है, इनही सात कुलकरोंको लौकिकमें सत मनु कहते हैं; दूसरे वंशोंके कुलकर गिनीयें, तब श्रीऋषभदेवको वर्जके चौदह कुलकर होता है, अरु ऋषभनाथ पंदरहवा कुलकर होता है.

पूर्वोक्त सात कुलकरोंके नाम लिखते हैं. प्रथम विमलवाहन, दूसरा चक्षुष्मान्, तीसरा यशस्वान्, चौथा अभिचंद्र, पांचमा प्रश्रेणि, छठा मरुदेव, सातमा नाभि, इन सातोंकी भार्याका नाम क्रमसें कहते हैं, १ चंद्रयशा, २ चंद्रकांता, ३ सुरूपा, ४ प्रतिरूपा, ५ चक्षुःकांता, ६ श्रीकांता, ७ मरुदेवी, ये सर्व कुलकर, गंगा अरु सिंधु नदीके मध्यके खंडमें हुये हैं

यह कुलकर होनेका कारण कहते हैं. तीसरे आरेके उतरतां दश जातिके कल्पवृक्ष, कालके दोषसें थोडे हो गये, तब युगलक लोकोंनें अपने अपने वृक्षोंका ममत्व कर लीया. पीछे जब दूसरे युगलोंके रखे हूए वृक्षोंसें फल लेने लगे, तब ममत्व वाले युगल उनसें क्लेश करनें लगे, तब युगलक पुरुषोंको ऐसा विचार आया कि कोइ ऐसा होवे, जो ह

मारे क्लेशका निवेमा करे, तव तिन युगलियोंमेंसें एक युगलकों एक व नके श्वेत हाथीनें देखकर प्रेमसें अपने स्कंध पर चढा लीया जव वो युगल पुरुष एकला हाथी ऊपर चढके फिरने लगा, तव ओर युगलोंने विचार किया कि यह युगल, हमसें वडा है, क्योंकि यह, हाथी ऊपर चढा फिरता है, और हम तो पगोंसें चलते हैं, इस वास्ते इसकों न्यायाधीश वनाउ. अर्थात् जो यह कहे, सो मानो, तव तिनोंनें उसकों न्यायाधीश वनाया. जिस कारनसें हाथीनें युगलकों अपणे उपर चढाया है, सो कारण, और इनोंके पूर्वजवकी कथा आवश्यक सूत्र तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनी.

तव तिस विमलवाहननें सर्व युगलियोंकों कल्पवृक्ष वांटके दे दीये कितनेक युगलीये अपने कल्पवृक्षोंसें संतोष न करके औरोंके कल्पवृक्षोंसें फल लेने लगे, तव उस वृक्षके मालक क्लेश करने लगे. पीछे तिस निःसंतोषी युगलीयेकों पकरूके विमलवाहनके पास लाते हूए,तव विमलवाहननें उनकों कहा कि हा तुमने यह क्या करा? तवसें विमलवाहनने ऐसी दंमनीति प्रवर्त्ताइ, तिस हकार दंडनीतिसें फेर वे ऐसा काम नहीं करते थे. पीछे तिस विमलवाहनका पुत्र चक्षुष्मान् हूआ, अपने वापके पीछे वो राजा अर्थात् कुलकर वना, तिसके वखतमेंजी हाकारही दंड रहा, तिसके यशस्वान् नामा पुत्र हूआ, तिसके अजिचंद्र पुत्र हूआ, इन दोनोंके समयमें थोडे अपराध वालेकों हाकार दंड और वहुत ढीठकों मकार दंड जो यह काम मत करनां, ये दो दंडनीति हूइ, तिसके पुत्र प्रश्रेणि हूआ, प्रश्रेणिके पुत्र मरुदेव हूआ, मरुदेवका पुत्र नाजि हूआ,ये तीनों कुलकरोंके समयमें हाकार, मकार अरु धिक्कार, ये तीन दंडनीति हो गइ, तिसमें थोडे, अपराधीकों हाकार, अरु मध्यम अपराधीकों मकार, तथा उत्कृष्ट अपराधीकों धिक्कार दंम करते हूए, तिस नाजिकुलकरके मरुदेवी नामा जार्या थी, यह नाजिकुलकर वहुलतासें इक्ष्वाकु जूमि अर्थात् विनता नगरीकी जूमिमें निवास करता था, यह जूमि, कस्मीर देशके परे थी, क्योंकि विनता नगरीके चारों दिशामें चार पर्वत थे, तिसमें पूर्वदिशिमें अष्टापद अर्थात् कैलासगिरि थे, दक्षिणदिशिमें महाशैल्य थे, पश्चिमदिशिमें सुर शैल्य, तथा उत्तरदिशिमें उदयाचल पर्वत होते.

तिस नाभिकुलकरकी मरुदेवी नामक भार्याकी कूखमें आषाढवदि चौथकी रात्रिको सर्वार्थसिद्ध देवलोकसें च्यवके ऋषभदेवका जीव, गर्भमें पुत्रपणे उत्पन्न हूआ, मरुदेवीने चौदह स्वप्न देखे, इंद्रमहाराजने स्वप्न फल कहा, चैत्रवदि अष्टमीको ऋषभदेवजीका जन्म हूआ, छप्पन दिग्कुमारी और चौसठ इंद्रने मिलके जन्ममहोत्सव करा, मरुदेवीनें चौदह स्वप्नकी आदिमें वेलका स्वप्न देखा था तथा पुत्रके दोनो साथलोंमें वैल का चिन्ह था, इस वास्ते पुत्रका नाम ऋषभ दीया.

बाल अवस्थामें श्रीऋषभदेवको जब भूख लगती थी, तब अपने हाथका अंगुठा मुखमें लेके चुस लेते थे. उस अंगूठेमें इंद्रनें अमृत संचार कर दीया था, जब ऋषभदेवजी वडे हुए, तब देवता उनको कल्पवृक्षोंके फल ल्या कर देते थे, वे फल खा लेते थे, जब ऋषभदेव कुछ न्यून एकवर्षके हूए, तब इंद्र आया, हाथमें इक्षुदंड ल्याया, क्योंकि रीते हाथसें स्वामीके समीप न जानां चाहियें, इस वास्ते इक्षुदंड ल्याया. उस वखतमें श्रीऋषभ देवजी नाभिकुलकरकी गोदीमें बैठे थे, तब ऋषभदेवकी दृष्टि, इक्षुदंड उपर पमी, तब इंद्रने कहा के, हे भगवन्! इक्षु अकु अर्थात् इक्षु भक्षण करोगे? तब ऋषभदेवजीनें हाथ पसार्या, तब इंद्रने ऋषभदेवजीका इक्ष्वाकुवंश स्थापन करा, तथा श्रीऋषभदेवजीके वंशवालोंनें काशकार पीया, इस वास्ते गोत्रका नाम काश्यप हूआ, श्री ऋषभदेवजीके जिस जिस वयमें जो जो काम उचित था, सो सो शक्र (इंद्र) नें करा, यह अनादिसें जो जो शक्र (इंद्र) होते हैं, तिनका जीत कल्प है, जो प्रथम भगवान्के यथोचित सर्वकाम करने.

इस अवसरमें एक लमकी लमका बहिन और भाइ बालावस्थामें तालवृक्षके हेठ खेलते थे, वहां तालके फल गिरनेसे लमका मर गया. तब लमकीको नाभिकुलकरने यह ऋषभदेवजीकी भार्या होवेगी? ऐसा विचार करके अपने पास रख लीनी, तिसका नाम सुनंदा था. और दूसरी जो ऋषभदेवजीके साथ जन्मी थी. तिसका नाम सुमंगला था, इन दोनोके साथ ऋषभदेव बालावस्थामें खेलते हूए यौवनके प्राप्त हूए, तब इंद्रने विवाहका प्रारंभ करा. आगें युगलके समयमें विवाहविधि नहीं थी, इस वास्ते यह विवाहमें पुरुषके कृत्य तो सर्व इंद्रनें औ

ओर स्त्रीयोंकी तर्फसें सर्वकृत्य इंद्राणीयोनें करे, तहांसें विवाहविधि गतमें प्रचलित हूइ, तब श्रीऋषभदेव दोनों जार्योके साथ सांसारिक पयसुख जोगता, जब ६ लाख पूर्व वर्ष व्यतीत हूए, तब सुमंगला णीके जरत ओर ब्राह्मी यह युगल जन्मे, तथा सुनंदाके बाहुबली ओ सुंदरी यह युगल जन्मे, पीछेसें सुनंदाके तो ओर कोइ पुत्र पुत्री न जन्मे, परंतु सुमंगला देवीके उणपंचास (४९) अर्थात् एक कम पंचा जोडे पुत्रोंहीके जन्मे. यह सब मिल कर सो पुत्र ओर दो पुत्रीयां, ऋषभदेवके अपत्य अर्थात् पुत्र पुत्री हूए हैं.

तिन सो पुत्रके नाम लिखते हैं. १ जरत, २ बाहुबली, ३ श्रीमत्त ४ श्रीपुत्रांगारक, ५ श्रीमल्लिदेव, ६ अंगज्योति, ७ मलयदेव, ८ जार्ग तार्थ, ९ वंगदेव, १० वसुदेव, ११ मगधनाथ, १२ मानवर्त्तिक, १३ मा युक्ति, १४ वेदर्जदेव, १५ वनवासनाथ, १६ महीपक, १७ धर्मराष्ट्र, १८ म यकदेव, १९ आस्मक, २० दंमक, २१ कलिंग, २२ ईपकदेव, २३ पुरुषदेव २४ अकल, २५ जोगदेव, २६ वीर्यजोग, २७ गणनाथ, २८ तीर्णनाथ, २९ अंबुदपति, ३० आयुवीर्य, ३१ नायक, ३२ काक्तिक, ३३ आनर्त्तक, ३४ स रिक, ३५ महपति, ३६ करदेव, ३७ कछनाथ, ३८ सुराष्ट्र, ३९ नर्मद, ४ सारस्वत, ४१ तापसदेव, ४२ कुरु, ४३ जंगल, ४४ पंचाल, ४५ शूरसेन, ४ पुट, ४७ कालंगदेव, ४८ काशीकुमार, ४९ कौशल्य, ५० जद्रकाश, ५ विकाशक, ५२ त्रिगर्त्त, ५३ आवर्प, ५४ सालु, ५५ मत्स्यदेव, ५६ कुलि यक, ५७ मुपकदेव, ५८ बाल्हीक, ५९ कांबोज, ६० मधुनाथ, ६१ सां क, ६२ आत्रेय, ६३ यवन, ६४ आजीर, ६५ वानदेव, ६६ वानस, ६७ केप, ६८ सिंधु, ६९ सौवीर, ७० गंधार, ७१ काष्ठदेव, ७२ तोपक, ७३ शौ रक, ७४ जारद्वाज, ७५ शूरदेव, ७६ प्रस्थान, ७७ कर्णक, ७८ त्रिपुरनाथ, ७९ अवंतिनाथ, ८० चेदिपति, ८१ विष्कंन, ८२ नैषध, ८३ दशार्णनाथ, ८४ कुसुमवर्ण, ८५ जूपालदेव, ८६ पालप्रजु, ८७ कुशल, ८८ पद्म, ८९ म हाशत्रु, ९० विनिद्र, ९१ विकेश, ९२ वैदेह, ९३ कच्छपति, ९४ जद्रदेव, ९५ वज्रदेव, ९६ सांद्रजद्र, ९७ सेतज, ९८ वत्सनाथ, ९९ अंगदेव, १०० नरोत्तम, यह ऋषभ देवके सौ पुत्रोंका नाम जाननां.

इस अवसरमें जीवोंके कषायों प्रबल हो जानेसें पूर्वोक्त हकारादि तीनों

इंडका लोक नय नहीं करने लगे, इस अवसरमें लोकोने सर्वसें अधिक ज्ञानवानादि गुणों करकें संयुक्त श्रीऋषभदेवकों जानकें युगलक लोक, श्रीऋषभदेवकों कहते हूए कि, अबके सब लोक दंडका भय नहीं करते हें? श्रीऋषभदेवजी गर्भमेंनी मति, श्रुत, अरु अवधि, यह तीन ज्ञानों करकें संयुक्त थे, यह श्रीऋषभदेवजीके पूर्वभवोंका वृत्तांत आवश्यक तथा प्रथमानुयोगसें जान लेनां, तब श्रीऋषभदेव वो युगलक पुरुषोंकों कहते भये कि, जो राजा होता हे, सो दंम करता हे, ओर राजा जो होता हे, सो मंत्री कोटवालादि सेना संयुक्त होता हे, अरु कृताभिषेक होता हे, फेर उसकी आज्ञा अनतिक्रमणीय होती हे, ऐसा वचन सुनकर, वे मिथुनक बोले कि ऐसा राजा हमाराभी हो जावे? तब ऋषभदेवजी बोले, जो तुमारी मनसा ऐसी हे, तो नाभिकुलकरसें याचना करो, पीछे तिनोंनें नाभिकुलकरसें विनति करी, तब नाभिकुलकरने कहा, जाओ ऋषभदेवजी तुमारा राजा हूआ, तब वे मिथुनक, ऋषभदेवकों राज्याभिषेक करने वास्ते पद्मिनी सरोवरमें गये, इस अवसरमें इंद्रका आसन कंपमान हूआ, तब अवधिज्ञानसें राज्याभिषेकका अवसर जानकें यहां आकर श्रीऋषभदेवकों राज्याभिषेक करा, मुकुटादि सर्व अलंकार जो कुछ राजाके योग्य थे, सो पहिराये, इस अवसरमें मिथुनक लोक पद्मसरोवरसें नलिनीकमलोंमें पाणी ल्याये, उनोने आ कर जब श्रीऋषभदेवजीकों अलंकृत देखा, तब सबनोंने चरणों उपर जल गेर दीया, तब इंद्रने मनमें चिंता करी कि ये वडे विनीत पुरुष हें, ऐसा जान कर वैश्रमणकों आज्ञा दीनी कि, इन विनीतोंके रहने वास्ते विनीता नामा नगरी वसाओ, तब विनीता नगरी वैश्रमणनें वसाइ, इसका स्वरूप, शत्रुंजयमहात्म्यसें जान लेनां.

अथ संग्रहके वास्ते हाथी, घोडे, गौ प्रमुख श्रीऋषभदेवके राज्यमें वनोंसें पकडे गये, तब श्रीऋषभदेवने चार प्रकारका संग्रह करा १ उग्रा, २ भोगा, ३ राजन्या, ४ क्षत्रिया, उसमें जिनकों कोटवालकी पदवी दीनी, सो दंडके करनेसें उग्रवंश कहलाया, तथा जिनकों श्रीऋषभदेवजीने गुरु अर्थात् उंचे वडे करकें माने, तिनोंका भोगवंश कहलाया, तथा जो श्रीऋषभदेवजीके मित्र थे उनोका राजन्यवंश नाम रक्खा गया, तथा शेष जो रहे, तिनका क्षत्रियवंश हूआ.

अथ आहारकी विधि कहते हैं, जब कल्पवृक्षोंके फलोंका अभाव हूआ, तब पकाहारका खाना किस तरेंसें हूआ? सो लिखते हैं. कालके प्रभावसें कल्पवृक्ष फल देनेंसें रह गये, तब लोक, और वृक्षोंके कंद मूल, पत्र, फूल, फल, खाने लगे, केइक इक्षुका रस पीने लगे, तथा सत्तरे जातका कच्चा अन्न खाने लगे, परंतु कितनेक दिनो पीछें कच्चा अन्न उनकों जीर्ण न होनेसें ऋषभदेवजीने उनकों कहा कि, तुम हाथोंसें मसलकें तूतश दूर करकें खाओ. फेर कितनेक दिनो पीछें वैसेभी पाचन न होने लगा, तो फेर दूसरी तरें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, ऐसें बहुत तरेंसें कच्चा अन्न खानेकी विधि बताइ, तोभी कालदोषसें अन्न पाचन न होने लगा, इस अवसरमें जंगलोंमें वांसादिके घसनेसें अग्नि उत्पन्न हूआ.

प्रश्नः—तुम कहते हो कि ऋषभदेवजीकों जातिस्मरण और अवधि ज्ञान था, तो फेर ऋषभदेवजीने प्रथमसेंही अग्नि बनाना उस अग्निसें अन्न रांधके खानां क्युं न बतलाया?

उत्तरः—हे भव्य! एकांत स्निग्ध कालमें और एकांत रुक्षकालमें अग्नि किसी वस्तुसेंभी उत्पन्न नहीं हो सक्ति, कदाचित् कोइ देवता विदेहक्षेत्रसें अग्निकों लेभी आवे, तोभी यहां तत्काल बूज जाती थी, इस वास्ते अग्निसें पकाकें खानेका उपदेश नहीं दीया, पीछें तिस अग्निकों तृणादि दाह करता देखके अपूर्व रत्न जानकें पकडनें लगे, जब हाथ जले, तब डर खा कर दोडकें श्रीऋषभदेवजीसें सर्व वृत्तांत कहा, तब श्रीऋषभदेवने अग्नि ले आनेकी विधि बताइ, तिस विधिसें अग्नि घरमें ले आये, तब हस्ती उपर बैठे हूये ऋषभदेवने हाथीके शिर उपरही मिट्टिका एक कूंभासा बनाकर उनोंके पास अग्निमें पकाकर उसमें अन्न रांध कर खानां बताया, पीछें जिसके हाथसें वो कुंडा पकडाया वो कुंभार नामसें प्रसिद्ध हूआ, इसी वास्ते कुंभारकों प्रजापति पर्यापति कहते हैं, फेर तो शनैःशनैः सर्वतरेंका आहार पकाकें खानेकी विधि प्रवृत्त हो गइ, सर्वविधि श्रीऋषभदेवजीनेही बताइ हैं.

अथ शिल्पद्वार कहते हैं. श्रीऋषभदेवजीके उपदेशसें पांच मूल शिल्प अर्थात् कारीगर बने, तिसका नाम लिखते हैं. १ कुंभकार, २ लोहकार, ३ चित्रकार, ४ वस्त्र बुनने वाले, ५ नापित अर्थात् नाइ, ये पांच शिल्प

बने. यह एकेक शिल्पके अवांतर भेद वीश वीश हैं, इस वास्ते सर्व मिलकर एक सौ शिल्प उत्पन्न हूए.

अथ कर्मद्वार लिखते हैं. कर्मद्वारमें १ खेती करणी, वाणिज्य करणां, धनका ममत्व करणां, इत्यादि कर्म बताये. प्रथम मट्टीके संचयोंमें भरकें, अहरण, हथोकी प्रमुख बनाये, पीछें उनसें सर्व वस्तु काम लायक बनाइ गइ.

तथा भरतादि पर्यालोकोंकों बहत्तर कला सिखलाइ, तथा स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ. इन सबोंका नाम मात्र ऐसें हैं:– १ लिखनेकी कला, २ पढनेकी कला, ३ गणितकला, ४ गीतकला, ५ नृत्यकला, ६ ताल बजानां, ७ पटह बजानां, ८ मृदंग बजानां, ९ वीणा बजानां, १० वंशपरीक्षा, ११ भेरीपरीक्षा, १२ गजशिक्षा, १३ तुरंगशिक्षा, १४ धातुर्वाद, १५ दृष्टिवाद, १६ मंत्रवाद, १७ वलिपलितविनाश, १८ रत्नपरीक्षा, १९ नारीपरीक्षा, २० नरपरीक्षा, २१ छंदबंधन, २२ तर्कजल्पन, २३ नीतिविचार, २४ तत्वविचार, २५ कविशक्ति, २६ ज्योतिषशास्त्रका ज्ञान, २७ वैद्यक, २८ षड्भाषा, २९ योगाभ्यास, ३० रसायणविधि, ३१ अंजनविधि, ३२ अठारह प्रकारकी लिपि, ३३ स्वप्नलक्षण, ३४ इंद्रजालदर्शन, ३५ खेती करणी, ३६ वाणिज्य करणां, ३७ राजाकी सेवा, ३८ शकुनविचार, ३९ वायुस्तंभन, ४० अग्निस्तंभन, ४१ मेघवृष्टि, ४२ विलेपनविधि, ४३ मर्द्दनविधि, ४४ ऊर्ध्वगमन, ४५ घटबंधन, ४६ घटभ्रमन, ४७, पत्रछेदन, ४८ मर्मभेदन, ४९ फलाकर्षण, ५० जलाकर्षण, ५१ लोकाचार, ५२ लोकरंजन, ५३ अफलवृक्षोंकों सफल करणा, ५४ खड्गबंधन, ५५ छुरी बंधन, ५६ मुद्राविधि, ५७ लोहज्ञान, ५८ दांत समारणे, ५९ काललक्षण, ६० चित्रकरण, ६१ बाहुयुद्ध, ६२ मुष्टियुद्ध, ६३ दंडयुद्ध, ६४ दृष्टियुद्ध, ६५ खड्गयुद्ध, ६६ वाग्युद्ध, ६७ गारुड विद्या, ६८ सर्पदमन, ६९ भूतमर्द्दन, ७० योग सो द्रव्यानुयोग, अक्षरानुयोग, व्याकरण, औषधानुयोग, ७१ वर्षज्ञान, ७२ नाममाला. यह पुरुषोंकों बहत्तर कला सिखलाइ, तिसका नाम कहा.

अब स्त्रीयोंकों चौशठ कला सिखलाइ, तिसका नाम कहते हैं, १ नृत्यकला, २ औचित्यकला, ३ चित्रकला, ४ वादित्र, ५ मंत्र, ६ तंत्र, ७ ज्ञान,

८ विज्ञान, ९ दंम, १० जलस्तंज, ११ गीतगान, १२ तालमान, १३ मेघवृष्टि, १४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७ धर्मविचार, १८ शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति, २२ धर्मनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरजीकरण, २६ लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९ कामक्रिया, ३० अष्टादश लिपि परिछेद, ३१ तत्कालबुद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि, ३३ वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्नजेद, ३५ घटज्रम, ३६ सारपरिश्रम, ३७ अंजनयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाटव, ४१ जोज्यविधि, ४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५ शालिखंमन, ४६ मुखमंडन, ४७ कथाकथन, ४८ कुसुमगुंथन. ४९ वरवेष, ५० सकलजाषाविशेष, ५१ अजिधानपरिज्ञान, ५२ आजरण पहनने, ५३ नृत्योपचार, ५४ गृहाचार, ५५ शाव्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरंधन, ५८ केशबंधन, ५९ वीणादि नाद, ६० वितंडावाद, ६१ अंकविचार, ६२ लोकव्यवहार, ६३ अंत्याक्षरिका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका यह स्त्रीकी चौशठ कला कही.

अबकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायोंका प्रकरजूत है, इस वास्ते सर्व कला इनहीके अंतर्जाव हैं, जेसें प्रथम लिपि कलाके अठारह जेद दक्षिण हायसें ब्राह्मीपुत्रीकों सिखाइ, तिसके नाम कहते हैं १ हंसलिपि, २ जूतलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ राक्षसलिपि, ५ यावनी लिपि, ६ तुरकीलिपि, ७ कीरीलिपि, ८ डावडीलिपि, ९ सेंधवीलिपि, १० मालवीलिपि, ११ नडीलिपि, १२ नागरीलिपि, १३ लाटीलिपि, १४ पारसीलिपि, १५ अनिमित्तीलिपि, १६ चाणक्कीलिपि, १७ मूलदेवी, १८ उड्डीलिपि, यह अठारह प्रकारकी ब्राह्मीलिपि, देशविशेषके जेदसें अनेक तरेकी हो गइ, जेसेंकी १ लाटी, २ चौमी, ३ डाहली, ४ कानमी, ५ गोर्जरी, ६ सोरठी, ७ मरहठी, ८ कोंकणी, ९ खुरासाणी, १० मागधी, ११ सिंहली, १२ हामी, १३, कीरी, १४ हम्मीरी, १५ परतीरी, १६ मसी, १७ मालवी. १८ महायोधी, इत्यादि लिपि सिखाइ, तथा सुंदरी पुत्रिकों वाम हायसें अंकविद्या सिखाइ, जो जगत्में प्रचलित कला है, जिनोसें अनेक कार्य सिद्ध होते हैं, वे सर्व श्रीऋषजदेवने प्रवर्त्ताइ हैं. तिसमें कितनीक कला कइ वार लुप्त हो जाती हैं, फिर सामग्री पा कर प्रगटजी हो जाती हैं, परंतु

नवीन विद्या वा कला कोइजी नहीं उत्पन्न होती है, जो कलाव्यवहार, श्रीरूपजदेवजीनें चलाया है, वो सर्व आवश्यक सुत्रमें देख लेनां.

ब्राह्मी जो जरतके साथ जन्मी थी, तिसका विवाह बाहुबलीके साथ कर दीया, और बाहुबलीके साथ जो सुंदरी पुत्री जन्मी थी तिसका विवाह जरतके साथ कर दीया, तबसें माता पिताकी दीनी कन्याका व्यवहार प्रचलित हूआ.

श्रीरूपजदेवजीने युगल अर्थात् एक उदरके उत्पन्न हूए बहिन जाइका विवाह दूर कीया, श्रीरूपजदेवकों देखके लोकजी इसी तरे विवाह करने लगे, श्रीरूपजदेवने बहुत काल तांइ राज्य करा, प्रजाके वास्ते सबैतरेंके सुख उत्पन्न हूए, इस हेतुसें श्रीरूपजदेवकों जैनीलोक, जगत्का कर्त्ता मानते हैं, दूसरे मतवाले जो ईश्वरकी करी सृष्टि कहते हैं, वे जी ईश्वर, आदीश्वर, जगदीश्वर, योगीश्वर, जगत्का कर्त्ता ब्रह्मा आदि विष्णु आदि योगी आदि जगवान् आदि अर्हंतआदि, तीर्थंकर, प्रथम बुद्ध, सर्वसें बमा, इत्यादि जो नाम, और महिमा गाते हैं, वे सर्व श्रीरूपजदेवजीकेही गुणानुवाद हैं, और कोइ सृष्टिका कर्त्ता नहीं है.

मूर्ख और अज्ञानीयोंनें स्वकपोलकल्पित शास्त्रोंमें ईश्वरविषयमें मनमानी कल्पना कर लीनी है, उस कल्पनाकों बहुत जीव आज तांइ सच्ची मानते चले आये हैं, क्योंकि सर्वमत जैनके विना ब्राह्मणोनेही प्रायः चलाये हैं, इस वास्ते ब्राह्मणोही मतोंके विश्वकर्मा हैं, अरु लौकिक शास्त्रोंमें जो कुछ हैं, सो ब्राह्मणोहीके वास्ते है. ब्राह्मणजी लौकिक शास्त्रोंनें तार दीये, क्योंकि शास्त्र बनाने वालोंके संतानादि, खुब खाते, पीते, और आनंद करते हैं. इन ब्राह्मणोंकी तथा वेदोंकी उत्पत्ति जैसें आवश्यक आदिक शास्त्रोंमें लिखी है, तैसें जव्य जीवोंके जानने वास्ते यहां मेंजी लीखुंगा.

निदान सर्व जगत्का व्यवहार चला कर, जरत पुत्रकों विनीता नगरीका राज्य दीया, अरु बाहुबली पुत्रकों तक्षिलाका राज्य दीया, शेष पुत्रोंकों और और देशोंका राज्य दीया. उनही पुत्रोंके नामसें बहुत देशोंका नामजी तैसाही पम गया, जैसें अंगदेश, वंगदेश, मगधदेश, इत्यादि नाम देशोंकाजी पुत्रोंके नामसें पड गया.

८ विज्ञान, ९ दंभ, १० जलस्तंभ, ११ गीतगान, १२ तालमान,
१४ फलवृष्टि, १५ आरामारोपण, १६ आकार गोपन, १७
शकुनविचार, १९ क्रियाकल्पन, २० संस्कृतजल्पन, २१ प्रसादनीति,
धर्मनीति, २३ वर्णिकावृद्धि, २४ स्वर्णसिद्धि, २५ तैलसुरभीकरण,
लीलासंचरण, २७ गजतुरंगपरीक्षा, २८ स्त्री पुरुषके लक्षण, २९
या, ३० अष्टादश लिपि परिछेद, ३१ तत्कालबुद्धि, ३२ वस्तुशुद्धि,
वैद्यकक्रिया, ३४ सुवर्ण रत्नभेद, ३५ घटभ्रम, ३६ सारपरिश्रम, ३७
नयोग, ३८ चूर्णयोग, ३९ हस्तलाघव, ४० वचनपाटव, ४१
४२ वाणिज्यविधि, ४३ काव्यशक्ति, ४४ व्याकरण, ४५शालिखंडन,
मंडन, ४७ कथाकथन, ४८ कुसुमगुंथन. ४९ वरवेष, ५०
ष, ५१ अभिधानपरिज्ञान, ५२ आभरण पहनने, ५३ नृत्योप
गृहाचार, ५५ शाठ्यकरण, ५६ परनिराकरण, ५७ धान्यरंधन
धन, ५९ वीणादि नाद, ६० वितंडावाद, ६१ अंकविचार
हार, ६३ अंत्याक्षरिका, ६४ प्रश्नप्रहेलिका यह स्त्रीकी

अवकी सर्व सांसारिक कला पूर्वोक्त कलायों
में सर्व कला इनहीके अंतर्गत हैं, जैसें प्र
नेह दक्षिण हाथसें ब्राह्मीपुत्रीकों सिखाइ
सलिपि, २ जूनलिपि, ३ यक्षलिपि, ४ र
नुरकीलिपि, ७ कीरीलिपि, ८ डावडीलि
लिपि, ११ नडीलिपि, १२ नागरीलि
१५ अनिमित्तीलिपि, १६ चाणक्यीलि
ह अठारह प्रकारकी ब्राह्मीलिपि,
गइ, जैनोंकी १ आडी, २ चोंमी,
रकी, ७ मरहठी, ८ कोंकणी,
१२ हाडी, १३, कीरी, १४ हम्मीरी,
१७ महायोधी, इत्यादि लिपि सिखाइ,
अंकविद्या सिखाइ, जो जगतमें प्रचलित
सिद्ध होते हैं, वे सर्व श्रीऋषभदेवने प्र
कइ वार लुप्त हो जाती हैं, फिर सामग्री पाकर प्र

गोंकें ऊपर धर्मचक्रतीर्थ स्थापन कराये, वो धर्मचक्र तीर्थ, विक्रमराजा तक तो रहा, पीछें जब पश्चिमदेशमें, नवे मतमतांतर खडे हूए, तबसें वो तीर्थ नष्ट हो गया.

तद्पीछें श्रीऋषभदेवजी वाल्हीक, जोनक, अंबं, इल्लाक, सुवर्णभूमि, पल्लवकादि देशोमें विचरने लगे. तहां जिनोंनें श्रीऋषभदेवजीका दर्शन करा वो तो सब भद्रक स्वभाव वाले हो गये, अरु शेष जो रहा, वो सब म्लेछ, निर्दयी अनार्य हो गये, अनेक कल्पानाके मत मानने लगे, उनका व्यव हार और तरेंका बन गया.

जब श्रीऋषभदेवकों एक हजार वर्ष व्यतीत हूए तब विहार करकें विनी तानगरीके पुरिमताल नामा बागमें आये, तब बड़ वृक्षके हेठ, फागुन वदि एकादशीके दिन तीन दिनके उपवासी थे, तहां पहिले प्रहरमें केवलज्ञान अर्थात् भूत, भविष्यत् वर्त्तमानमें सर्व पदार्थोंके जानने देखने वाला आत्म स्वरूप रूप केवलज्ञान प्रगट हूआ, तब चौशठ इंद्र आए, देवताओंनें सम वसरण बनाया, तीन गढ चारों दरवाजे इत्यादि समवसरणकी रचना करी, एकैक दिशामें तीन तीन दरवाजे बनाये, मध्यभागमें मणिपीठिका अर्थात् चौंतरा बनाया, तिसके मध्यभागमें अशोकवृक्ष रचा, तिसके हेठ दरवाजों के सन्मुख चारों दिशोंमें चार सिंहासन रचे, तिसमें पूर्वके सिंहासन ऊपर श्रीऋषभदेव अर्हंत बिराजमान हुए, अरु शेष तीनो सिंहासनो ऊपर श्रीऋषभदेव सरीखे तीन बींब स्थापन करे, तब जिस दरवाजेसें कोइ आवे, वो तिस पासेही श्रीऋषभदेवजीकों दीखते थे, इसी वास्ते जगत्में चार मुख वाला श्रीभगवान् ऋषभदेवजी ब्रह्माके नामसें प्रसिद्ध हूआ, ध नंजयकोशमें श्रीऋषभदेवजीका नाम ब्रह्मा लिखा है.

जब श्रीऋषभ देवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हूआ, तब भरत राजा श्रीऋषभदेवजीकों केवली सुन कर सकल परिवार संयुक्त समवसरणमें वं दना करनेंकों अरु उपदेश सुननेकों आया, उहां श्रीऋषभदेवजीका उप देश सुन कर भरत राजाके पांच सौ पुत्र अरु सात सौ पोते तथा ब्राह्मी ऋषभदेवजीकी बेटी औरभी अनेक स्त्रीयोंने दीक्षा लीनी, मरुदेवीजी तो भगवान्के छत्रादि देखकें तथा वानी सुनकें केवली हो कर मोक्ष हो गइ, तथा भरतके बडे पुत्रका नाम ऋषभसेन पुंडरीक था, वो सोरठदेशमें

शत्रुंजय तीर्थ ऊपर देह त्यागकर मोक्ष गया, इस वास्ते शत्रुंजयका नाम पुंडरीकगिरि रक्खा गया.

भरतके पांच सौ पुत्रोंने जो दीक्षा लीनी थी, तिनमें एकका नाम मरीची था. सो मरीचीने जैन दीक्षाका पालनां कठिन जान कर अपनी आजीविकाके चलाने वास्ते नवीन मनःकल्पित उपाय खडा कीया, क्योंकि उसने गृहवास करनेमें तो बडी हीनता जाणी, तब एक कुलिंग बनानां चाहा, सो इसी रीतिसें बनाया कि साधु तो मनदंड, वचनदंड अरु कायदंड, इन तीनों दंडोंसें रहित है, और मैं तो इन तीनों दंडो करके संयुक्त हूं, इस वास्ते मुजकों त्रिदंड रखनां चाहियें. दूसरा साधु तो द्रव्य अरु भाव करके मुंडित है, सो लोच करते हैं, अरु मैं तो द्रव्य मुंडित हूं, इस वास्ते मुजे उस्तरे पाछनेसें मस्तक मुंडानां चाहियें, शिखाभी रखनी चाहियें. तीसरा साधु तो पांच महाव्रत पालते हैं, अरु मेरे तो स्थूल जीवकी हिंसाका त्याग रहो. चौथा साधु तो निःकंचन है, अ परिग्रह रहित है, अरु मुजकों एक पवित्रकादि रखनी चाहियें. पांचमा साधु तो शीलसे सुगंधित है, अरु मैं ऐसा नहीं हूं इस वास्ते मुजे चंदनादि सुगंधी लेनी ठीक है. छठा साधु तो मोह रहित है, अरु मैं तो मोहसंयुक्त हूं, इस वास्ते मुजे मोहआच्छादित छत्री रखनी चाहियें. सातमा साधु जूते रहित है, मुजकों पगोंमें कुछ उपानह (जुती) रखनी चाहियें. आठमा साधु तो निर्मल है, इस वास्ते उनके शुक्लांबर वस्त्र हैं, अरु मैं तो क्रोध, मान, माया अरु लोभ, इन च्यारों कषायों करके मैला हूं, इस वास्ते मुजे कषाय वस्त्र अर्थात् गेरुके रंग (भगवें) वस्त्र रखने चाहियें. नवमा साधु तो सचित्त जलके त्यागी हैं, इस वास्ते मैं प्रमाण सचित्त पानी पीउंगा, स्नानभी करूंगा. इस तरें स्थूलमृषावादादिकसें निवृत्त हुआ, इस [illegible] मरीचीने नवीन [illegible] अपनी आजीविकाके वास्ते [illegible] परिव्राजकका [illegible] हुआ.

[illegible]

धुओंकों दे देता था. एकदा समय मरीची मांदा (रोग ग्रस्त) हूआ, तब विचार किया कि मैं तो असंयती हूं, इस वास्ते साधु मेरी वैयावृत्त नहीं करते हैं, अरु मुझे करानीभी युक्त नहीं है, तो कोइ चेलाभी मुझे वैयावृत्त वास्ते करनां चाहियें, तिस कालमें श्रीऋषभदेवजी निर्वाण हो गये थे, पीछें एक कपिलनामक राजाका पुत्र था, सो मरीचीके पास धर्म सुननेकों आया, तब मरीचीनें उसकों यथार्थ साधुका लिंग आचार कहा, तब कपिलने कहा तो तेरा लिंग विलक्षण क्यों कर है? तब मरीचीने कहा कि मैं साधु पणा पालने समर्थ नहीं हूं, इस वास्ते मैं यह लिंग निर्वाहके वास्ते स्वकपोलकल्पित बनाया है, तब कपिलने कहा कि मुझे श्री ऋषभदेवके साधुओंका धर्म रुचता नहीं है, तुम कहो. तेरे पासभी कुछ धर्म है, या नहीं है? तब मरीचीने जानां, यह भारीकर्मी जीव है; मेराही शिष्य होने योग्य है, इस लोभसें मरीचीने कह दीया कि वहांभी धर्म है, अरु मेरे पासभी कछुक धर्म है, यह सुन कर कपिल मरीचिका शिष्य हो गया, यह कपिल मुनिकी उत्पत्ति है. उस वखत मरीचीके पास तथा कपिलके पास कोइभी पुस्तक नहीं था, निःकेवल जो कुछ आचार मरीचीने कपिलकों बता दीया. सोइ आचार कपिल करता रहा, मरीचीनें उत्सूत्र भाषण करनेसें एक कोटाकोटी सागरोपम लग संसारमें जन्ममरणकी वृद्धि करी, मरीचि तो काल कर गया. अरु पीछेंसें कपिल ग्रंथार्थ ज्ञान शून्य मरीचीकी बताइ हूइ रीति ऊपर चलता रहा, उस कपिलका आसुरीनामा शिष्य हूआ, कपिलने आसुरीकोंभी आचार मात्रही मार्ग बतलाया, कपिलने औरभी बहुत शिष्य बनाये. उनके प्रेममें तत्पर थका मरके ब्रह्मनामक पांचमे देवलोकमें देवता हूआ, तब उत्पत्तिके अनंतर अवधिज्ञानसें देखा, कि मैंनें क्या दानादि अनुष्टान करा है? जिस्सें मैं देवता हूआ हूं. तब अवधिज्ञानसें ग्रंथज्ञानशून्य अपणे आसुरी नामा शिष्यकों देखा, तब विचार करा कि मेरा शिष्य कुछ नहीं जानता? इसकों कुछ तत्त्व उपदेश करूं? ऐसा विचार कर, कपिल देवता आकाशमें पंचवर्णके मंडलमें रहकर तत्त्वज्ञानका उपदेश करता भया कि अव्यक्तसें व्यक्त प्रगट होता है. तिस अवसरमें षष्टितंत्र शास्त्र. आसुरीने बनाया. तिसमें ऐसा कथन करा कि, प्रकृतिसें महान् होता है, अरु महा

नूसें अहंकार होता है, अहंकारसें गण षोमश होता है, तिस शमेंसूं पंचतन्मात्रोंसें पांच नूत इत्यादि स्वरूप पूर्वे यही ग्रंथमें मतविषे लीख आये हें, उहांसें जान लेनां. पीछें इनकी संप्रदायमें नामी ख नामा आचार्य हूआ, तवसें इस मतका नाम सांख्यमत प्रसिद्ध हुआ, वास्तवमें सर्वपारिव्राजक संन्यासीयोंके लिंग आचारादि धर्मका मूल मरीचि हूआ, इन सांख्यमतका तत्त्व अवनी जगवन्नीता तथा नागवतादि ग्रंथोंमें तथा सांख्यमतके शास्त्रोंमें प्रचलित है, एक जैनमतके विनां सर्वमतोंकी जम इस्सें समऊनी चाहियें.

जब श्रीरुषजदेवजीकों केवलज्ञान उत्पन्न हूआ था, उसीदिन जरत राजाकी आयुधशालामें चक्ररत्न उत्पन्न हूआ, तब जरतने जरत क्षेत्रके उहां खंमोंमें राज वनाया, अपनी आज्ञा मनाइ, इसी वास्ते इसका नाम जरत खंम प्रसिद्ध हूआ.

जब जरतने अपने छोटे जाइयोंकों आज्ञा मनाने वास्ते दूत नेजा, तब तिनोंनें विचार करा कि राज्य तो हमकों हमारा पिता दे गया है, तो फेर हम जरतकी आज्ञा क्यों कर माने? चलो पितासें कहें, जे कर अपना पिता श्रीरुषजदेवजी कहेंगे, कि तुम जरतकी आज्ञा मानो, तब तो हम आज्ञा मान लेवेंगे, जे कर हमारा पिता कहेगा लमो, तो हम लमेंगे, ऐसा विचार करकें कैलास पर्वतके ऊपर श्रीरुषजदेवजीके पास गये, तब रुषन देवजीनें उनके मनका अजिप्राय जान कर उनकों उपदेश करा, जो उपदेश करा था, सो श्रीसूत्रकृतांग सूत्रके दूसरे वैतालीय अध्ययनमें लिखा है, तब तो उपदेश सुन कर अठानवे (९८) पुत्रोंनें दीक्षा ले लीनी, सर्व जगह छोम दीये, इस वार्त्तामें जरतकी अपकीर्त्ति हूइ, तब जरत चक्रवर्त्ती पांच सौ गाडे पक्वान्नके ले कर समवसरणमें आया, और कहने लगा कि, मैं अपने जाइयोंकों जोजन कराउंगा, और मेरा अपराध क्षमा कराउंगा, तब श्रीरुषजदेवजीने कहा कि, ऐसा आहार साधुओंकों लेनां योग्य नहीं, तब जरत मनमें वमा उदास हूआ, जरतने कहा अब मैं यह आहार, किसकों देउं? तब शक्र (इंद्रने) कहा कि, जो तेरेसें गुणोमें अधिक होवे, तिनकों यह जोजन देवो, तब जरतने मनमें विचार करा कि मेरेसें गुणाधिक तो श्रावक हें, तब जरतने बहुत गुणवान श्रावकोंकों वो जोजन

जिमाया, और उन श्रावकोंको भरतजीनें कह दीया कि तुम सर्व मिल कर प्रतिदिन अर्थात् रोजकी रोज मेराही भोजन करा करो. खेति वाणि ज्यादि कुछ काम मत करा करो, निःकेवल स्वाध्याय करनेमें तत्पर रहो, भोजन करकें मेरे महिलोंके दरवाजे आगें निकट बैठकें तुमने ऐसे कहना कि "जितो भवान् वर्द्धते भयं तस्मान्माहन माहनेति" तब वे श्रावक ऐसेंही करते हूये, अरु भरत राजा तो भोगविलासोंमें मग्न रहता था, परंतु जब तिनका शब्द सुनता था, तब मनमें विचारता था, कि किसने मुझे जींता है ? तब विचार करा कि क्रोध, मान, माया अरु लोभ, इन चार कषायोंने मुझे जींता है, तिनोंसेंही भयकी वृद्धि होती है, ऐसा विचार करनेसें भरतकों बडा भारी वैराग्य उत्पन्न होता था, इस अवसरमें रसोइ जीमणे वाले श्रावक बहुत हो गये. जब रसोइदार रसोइ करने समर्थ न रहा, तब भरत महाराजकों निवेदन करा कि, मैं नहीं जान सका, जो इनमें श्रावक कौन है, और कौन नहीं है ? तब भरतने कहा तुम पूछकें उनकों भोजन दिया करो, तब रसोइ करनेवाले उनकों पूछने लगे कि, तुम कौन हो? वे कहने लगे, हम श्रावक हैं. फेर तिनोंकों पूछा कि श्रावकोंके कितने व्रत है? तब तिनोनें कहा हमारे पांच अणुव्रत हैं, अरु सात शिक्षा व्रत हैं, इस तरेंसें जब जाना कि यह श्रावक ठीक है, तब उनकों भरत महाराजके पास ल्याये, भरतने उनके शरीरमें काकणी रत्नसें तीन तीन रेखाका चिन्ह कर दीया, अरु छठे महिने अनुयोग परीक्षा करते रहे, वे सर्व श्रावक ब्राह्मणके नामसें प्रसिद्ध हूये, क्योंकि जब भरत महाराजके दरवाजे आगें वे माहन माहन शब्द वार वार उच्चारन करते थे, तब लोक उनकों माहन कहने लग गया, जैनमतके शास्त्रोंमें प्राकृत भाषामें अबभी ब्राह्मणोंकों माहन करकें लिखा है. अरु जो संस्कृती ब्राह्मण शब्द है, वो प्राकृत व्याकरणसें बंभण और माहणके स्वरूपसें सिद्ध होता है, श्रीअनुयोगद्वार सूत्रनें ब्राह्मणोंका नाम "वुड्डसावया" अर्थात् बडे श्रावक ऐसा लिखा है यह सर्व ब्राह्मणोंकी उत्पत्ति है, अरु सो ब्राह्मण अपणे बेटोंकों साधुओंकों देते हूये; जिनोने प्रव्रजा न लीनी वे श्रावक व्रतधारी हूए. यह रीति तो भरतके राज्यमें रही.

पीछें जरतका बेटा आदित्ययश हूआ, अर्थात् सूर्ययश जिसके संतान वाले जरत क्षेत्रमें सूर्यवंशी कहे जाते हें,अरु बाहुबलीका बडा पुत्र चंद्रयश था. तिसके संतानवाले चंद्रवंसी कहे जाते हें. श्री रूषजदेवजीके कुरु नामा पुत्रके संतान सब कुरुवंशी कहे जाते हें. जिनमें कौरव पांमव हूये हें.

जब जरतका बडा बेटा सूर्ययश सिंहासन पर बेठा, तब तिसके पास काकणी रत्न नहीं था, क्योंकि काकणी रत्न, चक्रवर्त्तीके शिवाय और किसी पास नहीं होता हे, इस वास्ते सूर्ययश राजानें ब्राह्मण श्रावकोंके गलेमें सुवर्णमय यज्ञोपवीत करवा दीयें जनेउ इतिजापा तथा जोजन प्रमुख सर्व जरत महाराजकी तरें देता रहा, जब सूर्ययशका बेटा महायश गद्दी पर बेठा, तब तिसने रूपेके यज्ञोपवीत बनवा दीये, आगें तिनोंकी संतानोंनें पंचरंगे रेश्मी पटसूत्र मय यज्ञोपवीत बनाते रहे, आगें सादे सूतके बनाये गये, यह यज्ञोपवीतकी उत्पत्ति हे.

जरतके आठ पाट तक तो ब्राह्मणोंकी नक्ति जरतकी तरें करते रहे पीछें प्रजाजी ब्राह्मणोंकों जोजन कराने लगे, तब सर्व जगे ब्राह्मणपूजनीक समझे गये, आठमा तीर्थंकर श्रीचंद्रप्रज स्वामीके वखत तक सर्व ब्राह्मणव्रतधारी, जैनधर्मी श्रावक रहे, अरु श्रीचंद्रप्रज जगवान्के पीछें कितनाकि काल व्यतीत जये, इस जरत खंममें जैनमत अर्थात् चतुर्विधसंघ और सर्व शास्त्र विछेद हो गये, तब तिन ब्राह्मणाजासोंकों लोक पूछने लगे कि धर्मका स्वरूप हमकों बतलाउ, तब तिनोने जो मनमें माना, और अपणा जिसमें लाज देखा सो धर्म बतलाया, अनेक तरेंके ग्रंथ बनाते रहे.

जब नवमे श्रीसुवीधिनाथ पुष्पदंत अरिहंत हूए, तिनोने जब फेर जैन धर्म प्रगट करा, तब कितनेंक ब्राह्मणाजासोंने न माना, स्वकपोलकल्पित मतहीका कदाग्रह रक्खा, साधुओंके द्वेषी बन गये, चारों वेदोंका नामजी बदल दीया,अरु उन वेदोंमें मतलबजी औरका और लिख दीया.

अब चारों वेदोंकी उत्पत्ति लिखते हें. जब जरतराजाने ब्राह्मणोंकों पूजा, तब दूसरा लोकजी ब्राह्मणोकों बहुत तरेका दान देने लग गये, तब जरत चक्रवर्त्तीने श्रीरूषजदेवजीकी उपदेशानुसार तिन ब्राह्मणोंके स्वाध्याय करने वास्ते श्रीआदीश्वर रूषजदेवजीकी स्तुति और श्रावकके धर्मका स्वरूपगर्जित ऐसे चार आर्यवेद रचे, तिनके यह नाम रक्खे १

संसारदर्शन वेद, २ संस्थापनपरामर्शन वेद, ३ तत्त्वावबोध वेद, ४ विद्या प्रबोध वेद, इन चारोंमें सर्वनय, वस्तुके कथन संयुक्त तिन ब्राह्मणोंकों पढाये, तब वे ब्राह्मण, अरु पूर्वोक्त चार वेद, आठमे तीर्थंकर तक यथार्थ चले आये, परंतु जब आठमे तीर्थंकरका तीर्थ विछेद हूआ, तद्पीछें, तिन ब्राह्मणाभासोनें धनके लोभसें तिन वेदोंमें जीवहिंसा आदिकी प्ररूपणा करकें उलट पुलट कर माले, जैनधर्मका नामभी वेदोमेंसें निकाल दीया, बलकि अन्योक्ति करकें "दैत्यदस्युवेदबाह्य" इत्यादि नामोंसें साधुओंकी निंदा गर्भित १ ऋग्, २ यजु, ३ साम, ४ अथर्व, ये चार नाम कल्पन कर दीये. तिन ब्राह्मणोंमेंसूं जिनोनें तीर्थंकरोंका उपदेश मान्या, उनोनें पूर्ववेदोंके मंत्र न त्यागे, सो आज तक दक्षिण करणाटक देशमें जैन ब्राह्मणोंके कंठ है. ऐसा सुना और देखाभी है, तथा उन प्राचीन वेदोंके कितनेक मंत्र मेरे पासभी हैं. यत उक्तं आगमे ॥ सीरिभरह चक्कवट्टी,आयरिय वेयाणविस्सु उप्पत्ती ॥ माहण पढणछमिणं, कहियं सुहझाण विवहारं ॥ १ ॥ जिणतिछे वुछिन्ने, मिछत्ते माहणेहिं तेठविया ॥ अस्संजयाण पूआ, अप्पाणं काहिया तेहिं ॥ ४ ॥ इत्यादि यहांसें आगें तिनवेदोंकी रचना हिंसा संयुक्त याज्ञवल्क्य, सुलसा, पीपलाद, अरु पर्वत प्रमुखोंने विशेष कर रचना रच दइ, तिसकाभी स्वरूप किंचित् मात्र यहां लिख देते है.

बृहदारण्यक उपनिषद्की भाष्यमें लिखा है, कि जो यज्ञोंका कहनेवाला सो यज्ञवल्क्य तिसका पुत्र याज्ञवल्क्य इस कहनेसेंभी यही प्रतीत होता है, जो यज्ञोंकी रीति प्रायः याज्ञवल्क्यसेंही चली है, तथा ब्राह्मण लोकोंके शास्त्रोंमें लिखा है, कि याज्ञवल्क्यने पूर्वली ब्रह्मविद्या वमके सूर्य पासों नवीन ब्रह्मविद्या सीखके प्रचलित करी, इस्सेंभी यही अनुमान निकलता है, जो याज्ञवल्क्यने प्राचीन वेद छोड दीये, और नवीन बनाये.

तथा श्रीत्रेशठ सलाका पुरुष चरित्र ग्रंथमें आठमे पर्वके दूसरे सर्गमें ऐसा लिखा है, कि काशपुरीमें दो संन्यासिणीया रहती थी. तिसमें एकका नाम सुलसा था, अरु दुसरीका नाम सुभद्रा था, यह दोनोही वेद अरु वेदांगोकी जानकारथी. तिन दोनो बहिनोंने बहु वादीयोंकों वादसें जीता, इस अवसरमें याज्ञवल्क्य परिब्राजक तिनके साथ वाद करनेकों

आया, आपसमें असी प्रतिज्ञा करी कि जो हार जावे, वो लेकी सेवा करे, तब याज्ञवल्क्यने सुलसाकों वादमें जींतके अपनी सेवा करने वाली बनाइ, सुलसाजी रात दिन याज्ञवल्क्यकी सेवा करने लगी. याज्ञवल्क्य अरु सुलसा यह दोनों यौवनवंत (तरुण) थे, इस वास्ते दोनों कामातुर होके भोगविलास करने लग गये, सचतो है कि अग्नि और फूस मिलकें अग्नि क्यों कर प्रज्ज्वलित न होवे? निदान दोनो काम क्रिडामें मग्न होकर काशपुरीके निकट कुटीमें वास करते थे, तब याज्ञवल्क्य सुलसासें पुत्र उत्पन्न हूआ. पीछें लोकोंके उपहासके भयसें उस लडकेकों पीपलके वृक्षके हेठ छोड कर दोनों उठके कहींकों चलें गये, यह वृत्तांत सुभद्रा जो सुलसाकी बहिनथी उसने सुना, तब तिस बालकके पास आइ, जब बालककों देखा, तो पीपलका फल स्वयमेव मुखमें पडेकों चबोल रहा है, तब तिसका नामभी पिप्पलाद रक्खा, और तिसकों अपने स्थानमें ले जाकें यत्नसें पाला, अरु वेदादि शास्त्र पढाये, तब पिप्पलाद बडा बुद्धिमान् हूआ, बहुत वादीयोंका अभिमान दूर करा, पीछें, तिस पिप्पलादके साथ सुलसा और याज्ञवल्क्य यह दोनो वाद करनेकों आए, तिस पिप्पलादनें दोनोकों वादमें जींत लीया, और सुभद्रा मासीके कहनेसें जान गया कि, यह दोनो मेरे माता पिता है. और मुझे जन्मतेकों निर्दय हो कर छोड गये थे, जब बहुत क्रोधमें आया तब याज्ञवल्क्य अरु सुलसाके आगें मातृमेध पितृमेध यज्ञोंकों युक्तिसें सम्यक् रीतिमें स्थापन करकें पितृमेधमें याज्ञवल्क्यकों और मातृमेधमें सुलसाकों मारके होम करा, मीमांसक मतका यह पिप्पलाद मुख्य आचार्य हूआ, इसका वातली नामा शिष्य हूआ, तबसें जीवहिंसा संयुक्त यज्ञ प्रचलित हूए.

याज्ञवल्क्यके वेद बनानेमें कुछभी शंका नहीं, क्योंकि वेदमें लिखा है, 'याज्ञवल्क्येति होवाच' अर्थात् याज्ञवल्क्य असे कहता हूआ, तथा वेदमें जो शाखा है, वे वेदकर्त्ता मुनियोंकेही सबबसें है, इस वास्ते जो आरण्यक शास्त्रमें लिखा है, कि जीवहिंसा संयुक्त जो वेद है, वे सुलसा अरु याज्ञवल्क्यादिकोंने बनाये है, सो सत्य है. क्योंकि कितनीक उपनिषदोंमें पिप्पलादकाभी नाम है, तथा और मुनियोंकाभी कितनेक जगेमें नाम है.

जमदग्नि कश्यप तो वेदोमें खुद नामसें लिखे हैं, तो फेर वेदोंके नवीन होनेमें क्या शंका रहती है ?

तथा लंकाका राजा रावण जब दिग्विजय करनेके वास्ते देशोमें चतुरंग दल ले कर राजायोंकों अपणी आज्ञा मना रहा था, इस अवसरमें नारद मुनि, लाठी, सोटे, और, लात, घुंसयोंका पीटा हूआ पुकार करता हूआ रावणके पास आया, तब रावणने नारदकों पूछा कि तुझकों किसने पीटा है ? तब नारदने कहा कि राजपुर नगरसें मरुत नामा राजा है, सो मिथ्यादृष्टि है, वो ब्राह्मणाभासोंके उपदेशसें यज्ञ करने लगा, होमके वास्ते सौनिकोंकी तरें वे ब्राह्मणाभास अरराट शब्द करते हूए, औसे विचारे पशुओंको यज्ञमें मारते हूए मैंनें देखा, तब मैं आकाशसें उतरकें जहां मरुतराजा ब्राह्मणोंके साथमें बैठा था, तहां आ कर मरुत राजाकों कहा कि यह तुम क्या करने लग रहे हो ? तब मरुतराजाने कहा ब्राह्मणोंके उपदेशसें देवताओंकी तृप्ति वास्ते और स्वर्ग वास्ते यह यज्ञमें पशुओंकी बलिदानसें करता हूं. यह महाधर्म है, तब नारद कहता है, कि मैं वो मरुतराजाकों कहा कि हे राजा जो चारोंवेदोंमें यज्ञ करनां कहा है, वो यज्ञ मैं तुमकुं सुनाता हूं, आत्मा तो यज्ञका यष्टा अर्थात् करनेवाला है, तथा तपरूप अग्नि है, ज्ञानरूप घृत है, कर्मरूपी इंधन है, क्रोध, मान, माया, अरु लोभादि पशु हैं, सत्य बोलनेरूप यूप अर्थात् यज्ञस्तंभ है, तथा सर्व जीवोंकी रक्षा करणी यह दक्षिणा है, तथा ज्ञान, दर्शन, अरु चारित्र, यह रत्नत्रयी रूप त्रिवेदी है. यह यज्ञ वेदका कहा हूआ है. औसा यज्ञ जो योगाभ्यास संयुक्त करे, तो करनेवाला मुक्त रूप हो जाता है, और जो राक्षस तुल्य होकें छागादि मारकें यज्ञ करता है, सो मरकें घोर नरकमें चिरकाल तक महादुःख भोगता है, हे राजा ! तूं उत्तमवंशमें उत्पन्न हूआ है, बुद्धिमान् और धनवान् है, इस वास्ते हे राजन् तूं इस व्याधोचित पापसें निवर्त्तन हो जा, जेकर प्राणीवधसेंही जीवोंकों स्वर्ग मिलता होवे तब तो थोडेही दिनोंमें यह जीवलोक खाली हो जावेगा. यह मेरा वचन सुनकें यज्ञकी अग्निकी तरें प्रचंड हूए होये ब्राह्मण हाथमें लाठी, सोटे, ले कर सर्व मेरेकों पीटने लगे, तब जैसें कोइ पुरुष नदीके पूरसें तरकर दीपमें चला आता है तैसें मैं दौडता हूआ

तेरे पास पहुंचा हूं. हे रावण राजा ! विचारे निरपराधि पशु मारे जाते हैं, तूं तिनकी रक्षा करणेमें तत्पर हो, जैसें में तेरे शरणसें बचा हूं ऐसें तूं पशुओंकोंभी बचा, तब रावण विमानसें उतरके मरुत राजाके पास गया. मरुत राजाने रावणकी बहुत पूजा, भक्ति, आदार, सन्मान करा, तब रावण कोपमें हो कर, मरुत राजाकों ऐसें कहता हूआः–अरे ! तूं नरक का देने वाला यह यज्ञ क्या कर रहा है ? क्योंकि धर्म तो अहिंसारूप सर्वज्ञ तीर्थंकरोने कहा है, सोइ जगत्के हितका करनेवाला है, जब तुमने पशु ओंकों मारके धर्म समझा, तब तुमकों हितकारक क्योंकर होवेगा ? इस वास्ते यह यज्ञ तुमकों दोनो लोकमें अहितकारक है, इसें छोड दो, नहीं तो इस यज्ञका फल तेरेकों इस लोकमें तो में देता हूं, और परलोकमें तुमारा नरकमें वास होवेगा, यह सुन कर मरुत राजाने यज्ञ करनां छोड दीया, क्योंकि रावणकी आज्ञा उस वखत ऐसी भयंकरथी, कि कोइ उसकों उल्लंघन नहीं कर सक्ता था, इस कथानकसें यहभी मालुम हो जाता है, कि जो ब्राह्मण लोक कहते हैं कि आगे राक्षस यज्ञ विध्वंस कर देते थे, सो क्या जाने रावणादि जबरदस्त जैनधर्मी राजाओं पशुवध रूप यज्ञका करणां छुडा देते थे, तबसेंही ब्राह्मणोने पुराणादि शास्त्रोंमें उन जबरदस्त जैनराजाओंकों राक्षसोंके नामसें लिखा हैं ? तथा यहभी सुननेमें आया हैं, कि नारदजीनेंभी मायाके वशसें जैनमत धारके वेदोंकी निंदा करी थी तो क्या जाने ? इस कथानकका यही तात्पर्य लोकोने लिख लीया हो ?

पीछे रावणने नारदकों पूछा कि ऐसा पापकारी पशुवधात्मक यह यज्ञ कहांसें चला है, तब नारदजीनें कहा किः–शुक्तिमती नदीके किनारे उपर एक शुक्तिमती नगरी है सो वीशमें श्रीमुनिसुव्रत स्वामी हरिवंश तीर्थंकरकी औलादमें जब कितनेक राजा व्यतीत होगये, तब अभिचंद्रनामा राजा हूआ, तिस अभिचंद्रराजाका वसुनामा बेटा हूआ, वो वसु महाबुद्धिमान्, सत्यवादी, लोकोंमें प्रसिद्ध हूआ, तिस नगरीमें क्षीरकदंबक उपाध्याय रहता था, तिसके पर्वत नाम पुत्र था, उहां एक तो राजाका बेटा वसु, दूसरा पर्वत और तीसरा में (नारद) हम तीनो क्षीरकदंबक उपाध्यायके पास पढते थे, एकदा समय हमतो तीनो जन पाठ करनेके श्रमसें रात्रिकों सो गये थे और उपाध्याय जागता था, हम उत उपर मूंछ

थे तब दो चारण साधु ज्ञानवान्. आकाशमें परस्पर वार्ता करते चले जाते थे. कि यह क्षीरकदंबक उपाध्यायके तीन छात्रोंमेंसु दो नरकमें जा वेंगे अरु एक स्वर्गमें जायेगा, यह मुनियोंका कहनां सुन करके उपाध्या यजी चिंता करने लगा कि जब मेरे पढाये हूये नरकमें जायगे, तब यह मुझको बहुत दुःख है, परंतु इन तीनोंमेंसूं नरक कौन जायगे? और स्वर्ग कौन जायगा? इस बातके जानने वास्ते तीनोकों एक साथ बुलाया, पीछे वो गुरुने इम तीनोंकों एकेक पीठिका कुक्कड दीया और कह दीयाकि इ नकों ऐसी जगेनें मारो जहां कोइभी न देखता होवे! पीछे वसु अरु प र्वत यह दोनो तो शून्य जगाओंमें जाकर दोनो पीठके बनाये कुक्कडोंकों मार ल्याये और में उस पीठके कुक्कडकों ले कर बहूत दूर नगरसें बाहिर चला गया, जहां कोइभी नहीं था, तहां जा कर खडा हूआ, चारों उंर देखनें लगा और मनमें यह तर्क उत्पन्न हूआ, कि गुरु महाराजने तो यह आज्ञा दीनी है, कि हे वत्स यह कुक्कड तूं तहां मारी, जहां कोइ दे खता न होवे, तो यह कुक्कड देखता है, अरु मेंभी देखता हूं, खेचर देखते है. लोकपाल देखते हैं, ज्ञानी देखते हैं, ऐसा तो जगत्में कोइभी स्थान नहीं जहां कोइभी न देखता होवे, इस वास्ते गुरुके कहनेका यही ता त्पर्य है, कि इस कुक्कुडका वध न करनां क्योंकि गुरुपूज्य तो सदा दया वंत और हिंसासें पराङ्मुख हैं, निःकेवल हमारी परीक्षा लेने वास्ते यह आदेश दीया है, तब मेंनें ऐसा विचार करके विनाही मारे कुक्कडेकों लेके गुरुके पास चला आया, और कुक्कडेके न मारनेका सबब सर्व गुरुकों कह दीया, तब गुरुने मनमें निश्चय कर लीया कि यह नारद ऐसे विवेकवाला है, सो स्वर्ग जायगा. तब गुरुजीने मुझकों छातीसें लगाया, और बहुत सा धुकार कहा, तथा वसु और पर्वतभी मेरेसें पीछे गुरुके पास आये, और गुरुकों कहते हूये कि हम कुक्कडाकों ऐसी जगे मारके आये हैं, कि जहां कोइभी देखता नहीं था. तब गुरुने कहा तुम तो देखते थे, तथा खेचर दे खते थे. तब हे पापिष्ठो! तुमने कुक्कड क्यों मारे? ऐसे कह कर गुरुने शोचा कि पर्वत, और वसुके पढानेकी मेहनत मेंनें व्यर्थही करी, में क्या करुं? पानी, जैसे पात्रमें जाता है, वैसाही बन जाता है. विद्याकाभी यही स्वभाव है. जब प्राणोंसे प्यारा पर्वतपुत्र और पुत्रसें प्यारा वसु

यह दोनो नरकमें जायगे तो मुझे फेर घरमें रह कर क्या करणा ऐसे निर्वेदसें क्षीरकदंबक उपाध्यायने दीक्षा ग्रहण करी, साधु हो तिसके पद ऊपर पर्वत बेठा क्योंकि व्याख्या करणेमें पर्वत बडा विचक्षण था ओर में (नारद) गुरुके प्रसादसें सर्वशास्त्रोंमें पंडित हो कर अपने स्थानमें चला आया, तथा अजिचंद्रराजाने तो संयम लीया, ओर वसु राजा राजसिंहासन ऊपर बेठा, वसुराजा जगत्में सत्यवादी प्रसिद्ध हो गया अर्थात् वसुराजा जूठ नहीं बोलता हे, ऐसा प्रसिद्ध हो गया, वसु राजानेभी अपणी प्रसिद्धिकों कायम रखने वास्ते सत्य बोलनांही अंगी कार कीया, वसुराजाकों एक स्फटिकका सिंहासन गुप्त पणे ऐसा मिला कि:–सूर्यके चांदणेमें जब वसुराजा उसके ऊपर बेठताथा, तब सिंहासन लोकोंकों बिलकुल नहीं दीख पडताथा, इसी तरें वसुराजा आकाशमें अधर बेठा दीख पडताथा,तब लोकोंमें यह प्रसिद्धी होगइ, कि सत्यके प्रभावसें वसुराजाका सिंहासन देवता आकाशमें थांभे रखते हें, तब सब राजा रंकं वसुराजाकी आज्ञा मानने लग गये, क्योंकि चाहो सच्ची हो चाहो जूठी हो तोभी प्रसिद्धि जो हे सो पुरुषके जयकारी होती हे.

तब एकदा प्रस्तावमें (नारद) वो सूक्तिमतीनगरीमें गया, उहां जा कर पर्वतकों देखा तो वो अपणे शिष्योंकों ऋग्वेद पढा रहा है, ओर उसकी व्याख्या करता हे, तब ऋग्वेदमें एक ऐसी श्रुति आई "अजैर्यष्टव्य मिति" तब पर्वतने इस श्रुतिकी ऐसी व्याख्या करी जो अजानाम छागका (बकरीका) हे तिनोंसें यज्ञ करनां तिनकों मारके तिनके मांसका होम करनां, तब मेंने पर्वतकों कहा हे भ्राता ! यह व्याख्या तूं क्या भ्रांतिसें करता हे ? क्योंकि गुरु श्रीक्षीरकदंबकने इस श्रुतिकी ऐसें व्याख्या नहीं करी हे, गुरुजीने तो तीन वर्षका धान्य पुराणें जोंका ऐसा अर्थ यह श्रुतिका करा हे, "न जायंतइत्यजा" जो बोनेसें न उत्पन्न होवे, सो अजा, ऐसा अर्थ श्रीगुरुजीने तुमकों ओर हमकों शिखलाया था वो अर्थ, तुमने किस हेतुसें भूला दीया ? तब पर्वतने कहा कि तुमने जो अर्थ करा हे, यह अर्थ गुरुजीने नहीं कहा था, किंतु जो अर्थ मेने करा हे, यही अर्थ गुरुनें कहा था क्योंकि निघंटमेंभी अजा नाम बकरीका ही लिखा हे, तब मेंने (नारदने) पर्वतकों कहा कि शब्दोंका अर्थ दो तरेंके होते हें, एक

मुख्यार्थ दूसरा गौणार्थ. तो यहां श्रीगुरुनें गौणार्थ करा था. गुरु धर्मोप देष्टाका वचन और यथार्थ श्रुतिका अर्थ, दोनोंकों अन्यथा करके हे मित्र तूं महापाप उपार्जन मत कर, तब फेर पर्वतने कहा कि अजा शब्दका अर्थ श्रीगुरुजीने मेषका करा है. निघंटमेंभी ऐसेही अर्थ है, इनको उल्लं घन करके तूं अधर्म उपार्जन करता है? इस वास्ते वसुराजा आपणा स हाध्यायी है. तिसकों मध्यस्थ करके इस अर्थका निर्णय करो, जो झूठा होवे तिसकी जीव्हाछेद करणी, ऐसी प्रतिज्ञा कही, तब मैंनेभी पर्वतका कहना मान लीया क्योंकि सांचकों क्या आंच है? तब पर्वतकी माताने पर्वतकों छाना कहा कि हे पुत्र! तूं ऐसा झूठा कदाग्रह मत कर. क्योंकि मैंनेभी इस श्रुतिका अर्थ तीन वर्षका धान्यही सुना है, इस वास्ते तूंने जो जीव्हाछेदकी प्रतिज्ञा करी है, सो अछी नहीं करी. क्योंकि जो विना विचारें काम करता है, वो अवश्य आपदामें पडता है. तब पर्वत कहने लगा कि हे माताजी! जो मैं प्रतिज्ञा करी है, वो अबमें किसीतरेंसेंभी दूर नहीं कर सका हूं, तब माता अपने पर्वत पुत्रके दुःखकी पीडी हूइ दुःखिनी हो कर वसुराजाके पास पहुंची क्योंकि पुत्रके जीवतव्य वास्ते कौन ऐसा है, जो उपाय न करे? जब वसुराजाने अपनी गुरुकी पत्नीकों आता देखा तब सिंहासनसें उठके खडा हूआ, और कहने लगाकि मैंनें आज क्षीरकदंबकका दर्शन करा जो माता तुझकों देखा, अब हे माता! कहो (आज्ञा करो) मैं क्या करुं? और क्या देऊं? तब ब्राह्मणी कहणे लगी कि तूं मुझे पुत्रकी भिक्षा दे क्योंकि विना पुत्रके मैंनें हे पुत्र! धन, धान्य क्या करणां है? तब वसुराजा कहने लगा हे माता! मेरेकोंतो प र्वत पूजने और पालने योग्य है, क्योंकि गुरुकी तरें गुरुके पुत्रके सा यभी वर्त्तना चाहियें. यह श्रुतिका वाक्य है, तो फेर आज किसको का लने क्रोधमें आकर पत्र भेजा है, जो मेरे भाइ पर्वतकों मारा चाहता है? इस वास्ते हे माता? तूं मुझे सर्व वृत्तांत कह दे. तब ब्राह्मणीने अ पणे पुत्रका अज व्याख्यान और जिव्हाछेदनेकी प्रतिज्ञा कह सुनाइ, और कहाकि जो तेंने अपने भाइकी रक्षा करनी है, तो अजा शब्दका अर्थ मेष अर्थात् बकरी बकरा करानां क्योंकि महात्मा जन परोपकारके वास्ते अपने प्राणभी दे देते हैं, तो वचनसें परोपकार करनेंमें तो क्या क

हनां है ? तब वसु राजाने कहा कि हे माताजी में मिथ्यावचन व
बोलुं ? क्योंकि सत्यबोलनेवाले पुरुष जेकर अपणे प्राणभी जा
तोभी असत्य नहीं बोलते हैं, तो फेर गुरुका वचन अन्यथा करए
झूठी साक्षी देणी, इसका तो क्याही कहना है ? तब ब्राह्मणी
यांतो गुरुके पुत्रकी जान बचेंगी, यां तेरा सत्यव्रतका आग्रहही
और मैंभी तुझे अपणे प्राणकी हत्या देऊंगी, तब वसुराजाने लाच
कर ब्राह्मणीका वचन माना, पीछें क्षीरकदंबककी भार्या प्रमुदित ह
अपने घरकों गइ, इतनेहीमें में (नारद) और पर्वत दोनो जने वसुरा
सभामें गये, तब तहां बडे बडे विद्वान् एकिठे सभामें मिले, और
करके सिंहासन ऊपर बैठके वसुराजा सभाके विचमें सभापति बन कर
तब पर्वतने और मैंने अपणी अपणी व्याख्याका पक्ष वसुराजाकों सु
और ऐसाभी कहाकि हे राजन् तूं! सत्य कह दे कि गुरुने इन दो अर्थ
कौनसा अर्थ कहा था ? तब वृद्ध ब्राह्मणोनें कहा है राजा तूं सत्य
जो होवे सो कह दे क्योंकि सत्यसेंही मेघ वर्षता है, और सत्यसेंही दे
सिद्ध होते हैं, सत्यके प्रभावसेंही यह लोक खडा है, और तूं पृथ्वीमें
वादी सूर्यकी तरें प्रकाशक है, इस वास्तेही सत्यही कहनां तुमकों उ
है, और हम इस्सें अधिक क्या कहें ? यह वचन सुनकरभी वसुराजाने
पने सत्य बोलनेकी प्रतिज्ञाकों जलांजली दे कर "अजान्मेषान्गुरु
र्व्यदिति" अर्थात् अजाका अर्थ गुरुने मेष (बकरे) कहे थे, ऐसी साक्ष
सुराजाने कही, तब इस असत्यके प्रभावसें व्यंतर देवताने वसुराज
सिंहासनकों तोडके वसुराजाकों पृथ्वीके ऊपर पटकके मारा, तब तो
राजा मरके सातमें नरकमें गया, पीछें वसुराजाके राज सिंहासन ऊपर व
राजाके आठपुत्र १ पृथुवसु, २ चित्रवसु, ३ वासव, ४ शक्र, ५ विभाव
६ विश्वावसू, ७ सूर, ८ महासूर, ये आठो अनुक्रमसें गद्दी ऊपर बैठे
वो आठोंहीकों व्यंतर देवताओंनें मार दीये, तब सुवसु नामा नवमा पुत्र
हांसें भाग कर नागपुरमें चला गया और दसमा बृहध्ध्वज नामा पुत्र भा
कर मथुरामें चला गया, और मथुरामें राज करणे लगा. इस बृहध्ध्वजके
संतानोंमें यदुनामा राजा बहुत प्रसिद्ध हूआ, इस वास्ते हरिवंशका नाम
छूट गया और यदुवंशी प्रसिद्ध हो गये.

यदु राजाके सूर नामक पुत्र हूआ, तिस सूर राजाके दो पुत्र हूवे, एक वडा शौरी और दूसरा छोटा सुवीर हूआ, शौरि राजा पिताके पीछें वना. शौरिने मथुरांका राज्यतो अपने छोटे जाइ सुवीरकों दे दीया, और आप कुशावर्त्त देशमें जा कर अपणे नामका शौरिपुर नगर वसा कें राजधानी वनाइ, शौरिका वेटा अंधकविष्ण, आदि पुत्र हूआ, और अंधकविष्ण के दश वेटे हूयें १ समुद्रविजय, २ अक्षोभ्य, ३ स्तिमित, ४ सागर, ५ हिमवान्, ६ अचल, ७ धरण, ८ पूर्ण, ९ अजिचंद्र, १० वसुदेव, तिनमें समुद्रविजयका वडा वेटा अरिष्टनेमि जो जैनमतका वावीशमा तीर्थंकर हूआ, और वसुदेवके वेटे प्रतापी कृष्णवासुदेव, अरु वलजद्रजी हूये, तथा सुवीरका वेटा जोजवृष्णि और जोजवृष्णिका उग्रसेन और उग्रसेनका कंस वेटा हूआ, और वसुराजाका दूसरा वेटा सुवसु जो जागके नागपुर गया था, तिसका वृहद्रथ नामा पुत्र हूआ तिसने राजगृहमें आ कर राज करा, तिसका वेटा जरासिंधू हूआ, यह मैंनें यहां प्रसंगसें लिख दीया है.

तव उंहांतो नगरके लोक और पंमितोनें पर्वतका वहुत उपहास करा, सवने पर्वतकों कहा कि तूं जूठा है, क्योंकि तेरे साखी वसुकों जूठा जान कर देवताने मार दीया, इस वास्ते तेरेसें अधिक पापी कौन है? ऐसें कहकर लोकोनें मिलकें पर्वतकों नगरसें वाहेर निकाल दीया, तव महाकाल असुर, उस पर्वतका साहायक हूआ.

यहां रावणने नारदकों पूछाकि वो महाकाल असुर कौन था? नारदने कहा यहां चरणा युगल नामा नगर है, तिसमें अयोधन नामा राजा था, तिसकी दिति नामा जार्याथी, तिन दोनोंकी सुलसा नामक वहुत रूपवान् वेटी थी, तिस सुलसांका स्वयंवर उसके पिताने करा उहां और सर्व राजे वुलवाये, तिन सर्व राजाओंमेंसूं सगर राजा अधिक था तिस सगरराजाकी मंदोदरी नामा रणवासकी दरवाजेदार सगरकी आज्ञासें प्रतिदिन अयोधनराजाके आवासमें जाती हूइ, एकदिन दिति घरके वागके कदलीघरमें गइ, और सुलसांके साथ मंदोदरीजी तहां आ गइ, तव मंदोदरी, सुलसा और दिति इन दोनोकी वातां सुननेके वास्ते तहां छिप गइ, तव दिति, सुलसांकों कहने लगी, हे वेटी! मेरे मनमें इस तेरे स्वयंवरमें वडा शल्य है. तिसका उद्धार करनां तेरे अधीन है, इस वास्ते तूं सुनसें मूलसें

श्रीऋषभदेव स्वामीके भरत अरु बाहुबली यह दो पुत्र हूये. फेर तिनके दो पुत्र हूये तिनमें भरतका सूर्ययश और बाहुबलीका चंद्रयश जिनोंसें सूर्यवंश और चंद्रवंश चले हैं. चंद्रवंशमें मेरा भाइ तृणबिंदुनामा हूआ, तथा सूर्यवंशमें तेरा पिता राजा अयोधन हूआ, और अयोधन राजाकी बहिन सत्ययशा नामा तृणबिंदुकी भार्या हूइ, तिसका बेटा मधुपिंगल नामा मेरा भत्रीजा है, तो हे सुंदरी! मैं तेरेकों तिस मधुपिंगलकों दीया चाहती हूं, और तूंतो क्या जाने स्वयंवरमें किसकों देइ जावेंगी? मेरे मनमें यह शल्य है इस वास्ते तूंने स्वयंवरमें सर्व राजाओंकों छोडके मेरे भत्रीजे मधुपिंगलकों वरनां, तब सुलसाने माताका कहनां स्वीकार कर लीया, और मंदोदरीने यह सर्ववृत्तांत सुन कर सगरराजाकों कह दीया, तब सगरराजाने अपने विश्वभूतिनामा पुरोहितकों आदेश दीया, वो विश्वभूति बडा कवि था उसने तत्काल राजाके लक्षणोंकी संहिता बनायी. तिस संहितामें ऐसें लिखा कि सगर तो शुभलक्षण वाला बन जावे और मधुपिंगल लक्षण हीन सिद्ध हो जावे, तिस पुस्तककों संदूकमें बंद करके रख छोडा, जब सब राजा आकर स्वयंवरमें एकठे बैठे, तब सगरकी आज्ञासें विश्वभूतिने वो पुस्तक काढा अरु सगरने कहा कि जो लक्षण हीन होवे, तिसकों यातो मार देनां, अथवा स्वयंवरसें बाहिर निकाल देनां, यह कहनां सर्वोंनें मान लीया, तब तो पुरोहित यथायथा पुस्तक बांचता जाता है, तथा तथा मधुपिंगल अपनेकों अपलक्षण वाला मान कर लज्जावान् होता जाता है, और स्वयंवरसें बाहिर निकल गया, तब सुलसानें सगरकों वर लीया, दूसरे सर्व राजा अपने अपने स्थानोंकों चले गये, अरु मधुपिंगल तो उस अपमानसें बाल तप करके साठ हजार वर्षकी आयुवाला कालनामा असुर परमधार्मिक देव हूआ. तब अवधिज्ञानसें सगरका कपट जो उसने सुलसाके स्वयंवरमें झूठा पुस्तक बनाया था, और अपना जो अपमान हूआ था, सो देखा जाना, तब विचार करा कि सगर राजादिकोंकों मैं मारूं? तब तिनके छिद्र देखने लगा, तब शुक्तिमती नगरीके पासप र्वतकों देखा, तब ब्राह्मणका रूप करके पर्वतकों कहने लगा कि हे पर्वत! मैं तेरे पिताका मित्र हूं, मेरा नाम शांडिल्य है, मैं और तेरा पिता हम दोनो साथ होकर गौतम उपाध्यायके पास पढे थे. मैंने सुना था कि नारदनें और दूसरे लोकोंने तुझे

बहुत दुःखी करा, अब मैं तेरा पक्ष पुरुंगा, और मंत्रों करकें लोकोंकों विमोहित करुंगा, यह कह कर पर्वतके साथ मिलकें लोकोंकों नरकमें डालने वास्ते तिस असुरने बहुत व्यामोह करा, व्याधि नूतादि दोष लोकों कों कर दीये, पीछें उंहां जो लोक पर्वतका वचन मान लेता था, तिसकों अछा कर देता था, शांडिल्यकी आज्ञासें पर्वतनी लोकोंकों अछा करने लगा, उपकार करकें लोकोंकों अपने मतमें मिलाता जाता था, तब तिस असुरने सगर राजाकों तथा तिसकी राणीयोंकों बहुत नारी रोगादिकका उपद्रव करा, तब तो राजानी पर्वतका सेवक बना, अरु पर्वतने शांमिलके साथ मिलकें तिसका रोग शांति करा, तब पर्वतने राजाकों उपदेश करा कि हे राजा! सौत्रामणि नामा यज्ञ करकें, मद्यपान अर्थात् सराब पीनेंमें दोष नहीं, तथा गोसव नामा यज्ञमें अगम्य स्त्री (चांडाली) आदि तथा माता, बहिन, बेटी आदिसें विषय सेवन करनां चाहियें, मातृमेधमें माताका और पितृमेधमें पिताका वध अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिकमें करे, तो दोष नहीं, तथा कछुकी पीठ ऊपर अग्नि स्थापन करकें तर्प्पण करे, कदाचित् कछु न मिले तो शुद्ध ब्राह्मणके मस्तककी टटरी उपर अग्नि स्थापन करकें होम करे, क्योंकि टटरीनी कछुकि तरें होती है. इस बातमें हिंसा नहीं है, क्योंकि वेदोमें लिखा है, श्लोक ॥ सर्वंपुरुषेवेदं, यद्भूतंयच्चविश्यति ॥ इशानोयं मृतत्वस्य, यदन्नेनातिरोहति ॥ १ ॥ इसका नावार्थ यह है, कि जो कुछ है, सो सब ब्रह्मरूपही है, जब एकही ब्रह्म हूआ, तब कौन किसिकों मारता है? इस वास्ते यथारुचिसें यज्ञोमें जीवहिंसा करो, और तिन जीवोंका मांस नक्षण करो, इसमें कुछ दोष नहीं. क्योंकि देवोद्देश करनेंसें मांस पवित्र हो जाता है, इत्यादि उपदेश देकर सगरराजाकों अपने मतमें स्थापन करकें अंतर्वेदी कुरुक्षेत्रादिमें वो पर्वत यज्ञ कराता हूआ तब कालासुरने अवसर पा करकें राजसूयादिक यज्ञनी कराता हूआ, और जो जीव यज्ञमें मारे जाते थे, तिनकों विमानोंमें बैठाके देवमायासें दिखाता हूआ, तब लोकोंकों प्रतीत आ गइ, पीछें वो निःशंक होकर जीवहिंसारूप यज्ञ करने लगे और पर्वतका मत मानने लगे, सगरराजानी यज्ञ करनेंमें बमा तत्पर हूआ, सुलसा और सगर दोनों मरके नरकमें गये, तब महाकालासुरनें सगर राजाकों नरकमें मार पीटादि महादुःख देकें अपणा वैर लीया, इस वास्ते

तिसके चौदह स्वप्न पूर्वक अजितनाथ नामा पुत्र हूआ, और सुमित्रकी राणी यशोमतीकोंजी चौदह स्वप्न देखने पूर्वक सगर नामा पुत्र हूआ. जब दोनों यौवनवंत हूए तब जितशत्रु और सुमित्रतो दीक्षा लेके मोक्ष रूप हो गये. तब श्रीअजितनाथ राजा हूये अरु सगर युवराजा हूये, कितनेक काल राज करकें श्री अजितनाथजीने तो स्वयमेव दीक्षा लेकर तप करा, और केवलज्ञान पा कर दूसरा तीर्थंकर हूआ, पीछें सगर राजा हूआ, सो सगर दूसरा चक्रवर्त्ति हूआ है, यह सगर राजाने जरतकी तरें षट्ट खंडका राज्य करा, यह सगर राजाके जन्हु कुमार प्रमुख शाठ हजार बेटे हूये, तिनोंनें दंड रत्नसें गंगा नदीकों अपने असली प्रवाहसें फेरके और कैलासके गिरदनवाह खाइ खोदके उस खाइमें गंगाकों लाकें गेरा, क्योंकि उनोंनें विचार करा था कि हमारे बडे जरतने जो इस पर्वत ऊपर सुवर्णरत्नमय श्रीऋषन्नादि तीर्थंकरोंका मंदिर बनाया है, तिसकी रक्षा वास्ते इस पर्वतके चारों उर खाइ खोद कर उसमें गंगा फेर देउं, जिससें तीर्थकी विशेष रक्षा हो जावेगी, तिन शाठ हजारकों नाग देवताने मार दीया, क्योंकि खाइ खोदने और जल जरनेसें उनको तकलीफ पहुची थी, तब गंगाके जलनें देशमें बडा उपद्रव करा, तब सगरराजाका पोता जन्हुका बेटा जगीरथने सगरकी आज्ञासें दंड रत्नसें जूमि खोदके गंगाकों समुद्रमें मिलाया, इसी वास्ते गंगाका नाम जान्हवी और जागीरथी कहा जाता है, सगरराजाने श्रीशत्रुंजय तीर्थ ऊपर श्रीजरतके बनाये ऋषजदेवजी मंदिरका उद्धार करा, तथा और जैनतीर्थोंकाजी उद्धार करा, तथा यह समुद्रजी जरतक्षेत्रमें सगरही देवताके सहायसें लाया, लंकाके टापूमें वैताढ्य पर्वतसें सगरकी आज्ञासें घनवाहन पहिला राजा हूआ, और लंकाके टापूका नाम राक्षस द्वीप है, तिसका यह हेतु हैकि, घनवाहन राजाके वंसके राक्षस कहलाये, इसी वंसमें राजा रावण और बिजीषणादि हूये हैं. इत्यादि सगरचक्रवर्त्तिके समयका हाल त्रेसठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां, क्योंकि तिस चरित्रके तेत्तीस हजार काव्य हैं. इस वास्ते में सारा हाल उसका इस ग्रंथमें नहीं लिख सक्ता हूं, परंतु संक्षेप मात्र वृत्तांत लिखुंगा. सगरचक्रवर्त्ति राज्य करकें पीछें श्री अजितनाथजीके पास दीक्षा ले कर, संयम तप करकें केवलज्ञान पा

कर मोक्ष पहूंचे, और अजितनाथ स्वामीजी समेतशिखर पर्वतके ऊपर शरीर छोडके मोक्ष गये. श्रीऋषभदेव स्वामीके निर्वाणसें पंचाश लाख कोडी सागरोपमके व्यतीत हूयां श्रीअजितनाथ तीर्थंकरका निर्वाण हूआ तिनोंके पीछें तीस लाख कोडी सागरोपम व्यतीत हूये, श्रीसंभव नाथजी तीसरे तीर्थंकर हूये, राज्य सर्व सूर्यवंशी, चंद्रवंशी, और कुरुवंशी, आदिक राजाओंके घरानेमें रहा ॥ इति श्रीअजितनाथ और सगरचक्रवर्त्तिका अधिकार संपूर्ण ॥

अब श्रावस्ती नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी जितारिराजा राज्य करता था, तिसकी सेना नामें पटराणी थी, तिनोंका संभव नामा पुत्र तीसरा तीर्थंकर हूआ, यह चोवीसही तीर्थंकरोंका वर्णन प्रथम परिछेदमें यंत्र और वार्त्तामें लिख आये हें. इस वास्ते यहां संक्षेपसें लिखेंगे. और तीर्थंकरोंके आपसमेंजो अंतरकाल हें सोभी यंत्रोंमें देख लेनां.इति तृतीय तीर्थंकरवृत्तांत

इनके पीछें अयोध्यानगरीमें इक्ष्वाकुवंशी संवरराजाकी सिद्धार्था नामक राणी तिनोंका पुत्र अभिनंदन नामक चौथा तीर्थंकर हूआ, पीछें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी मेघराजाकी सुमंगला राणी तिनोंका पुत्र सुमतिनाथ नामक पांचमा तीर्थंकर हूआ, पीछें कौसंबी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी श्रीधरराजाकी सुसीमा राणी तिनोंका पुत्र पद्मप्रभ नामक छठा तीर्थंकर हूआ, पीछें वाणारसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंसी प्रतिष्ठराजाकी पृथ्वी नामा राणी तिनोंका पुत्र श्रीसुपार्श्वनाथ नामा सातमा तीर्थंकर हूआ, पीछे चंद्रपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी महासेन राजाकी लक्ष्मणा नामें राणी तिनोंका पुत्र श्री चंद्रप्रभ नामा आठमा तीर्थंकर हूआ, पीछें काकंडी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सुग्रीवराजाकी रामा नामक राणी तिनोंका पुत्र श्रीसुविधिनाथ अपर नाम पुष्पदंत नामक नवमा तीर्थंकर हूआ.

यहां तक तो सर्व ब्राह्मण जैनधर्मी श्रावक और आर्य चारों वेदोंके पढने वाले बने रहे, जब नवमें तीर्थंकरका तीर्थ व्यवछेद हो गया, तबसें ब्राह्मण मिथ्यादृष्टि और जैनधर्मके द्वेषी और सर्व जगत्के पूज्य कन्या, भूमि, गोदानादिकके लेने वाले, सर्व जगत्में उत्तम और सर्वके हर्त्ता कर्त्ता मतोंके मालक बन गये क्योंकि सूना घर देखकें कुत्ताभि आटा खा जाता है, और जो जगत्में पाखंड तथा बुरे बुरे देवतादिकोंकी पूजा

है, तथा औरभी जो जो कुमार्ग प्रचलित हूवा है, वे सर्व ऊनांहीने हैं, मानो आदीश्वर भगवानकी रची हूइ सृष्टिरूप अमृतमें जहर डाल्ने वाले हूये, क्योंकि आगे तो जैनमतके और कपिलके मतके विना और कोइ भी मत नहीं था, कपिलके मतवालेभी श्रीआदीश्वर अर्थात् ऋषभदेवकोही देव मानते थे, निदान यह इस हुंडा अवसर्पिणिमें आश्चर्य गिना जाता है.

तीस पीछें भद्दिलपुरनगरमें इक्ष्वाकुवंशी दृढरथराजाकी नंदा नामा राणी तिनोंका पुत्र श्री शीतलनाथ नामा दशमा तीर्थंकर हूआ, इनही तीर्थंकरके शासनमें हरिवंश उत्पन्न हूआ है, तिसकी कथा लिखते हैं.

कौशांबिनगरीमें वीरा नामा कोली रहताथा, तिसकी वनमाला नामा स्त्री अत्यंत रूपवंती थी सो नगरके राजाने छीनकें अपणी राणी बना लेइ, वीरा कोली स्त्रीके विरहसें बावला हो गया, हा वनमाला! हा वनमाला! ऐसें कहता हूआ नगरमें फिरने लगा. एकदा वर्षाकालमें राजा वनमालाके साथ महिलके जरोखेमें बैठा था, तब राजा राणीनें वीरेकों तिस हालमें देखकें बडा पश्चात्ताप करा, अरु विचार करने लगे कि हमने यह बहुत बुरा काम करा, ऊसी वखत वीजली गिरनेंसें राजा राणी दोनो मरके हरिवासक्षेत्रमें युगल स्त्री पुरुष हो गये, तब वीरा कोली राजा राणीका मरण सुनकें राजी हो गया, पीछें तापस बनकें तप करा, अज्ञान तपके प्रभावसें किल्बिष देवता हूआ तब अवधिज्ञानसें राजा राणिकों युगलीये हूये देख कर विचार करा कि यह भद्रक परिणामी और अल्पारंभी है, इस वास्ते मरकें देवता होवेंगे, तो फेर में अपना वैर किससें लेऊंगा? इस वास्ते ऐसा करुं किः—जिससें ये दोनों मरकें नरकमें जावे, ऐसा विचार के तिन दोनोंकों तहांसें उठा करकें भरत क्षेत्रमें चंपा नगरीके इक्ष्वाकुवंशी चंडकीर्त्ति राजा अपुत्रिया मरा था, लोक सब चिंतामें बैठे थे कि कौन यहांका राजा होवेगा? पीछें तिस देवतानें ये दोनो उनकों सोंपे, और कहाकि यह तुमारा हरि नामा राजा हूआ, इसकी यह हरणी नामा राणी है, इनके खाने वास्ते तुमने फलमिश्रित मांस देनां और इनसें शिकारभी करानां तब लोकोंनें तैसेही करा वे दोनों पापके प्रभावसें मरके नरकमें गयें, और उनकी औलाद सब हरिवंशकी कहलायें इसी वंशमें वसुराजा हूआ. इति हरिवंशोत्पत्ति॥ इन श्री शीतलनाथजीकाभी शासन विछेद गया, इसी

तरें पंदरहवें तीर्थंकर तक सात तीर्थंकरोंका शासन विछेद होता रहा, और मिथ्याधर्म वढ गये.

तिस पीछें सिंहपुरी नगरीमें इक्ष्वाकु वंशी विष्णुराजा हूआ तिसकी विष्णुश्री राणी तिनोंका पुत्र श्रीश्रेयांसनाथ नामा इग्यारमा तीर्थंकर हूआ, तिनके समयमें वैताढ्यपर्वतसें श्रीकंठ नामा विद्याधरके पुत्रने वद्मोत्तर विद्याधरकी वेटीकों हरकें अपने वहनोइ राक्षसवंशी लंकाका राजा कीर्त्तिधवलकी शरण गया, तव कीर्त्तिधवलने तीनसो योजन परिमाण वानर द्वीप उनके रहनेकों दीया, तिनोंके संतानोंमेंसें चित्र विचित्र विद्याधरोंने विद्यासें वंदरका रूप वनाया, तव वानर द्वीपके रहनेसें और वानरका रूप वनानेसें वानरवंशी प्रसिद्ध हूये, तिनोंहींकी औलादमें वाली और सुग्रीवादिक हूये हैं.

तथा श्रेयांसनाथके समयमें पहिला त्रिपृष्ट नामा वासुदेव हरिवंशमें हूआ, तिसकी उत्पत्ति ऐसें हैः– पोतनपुर नगरमें हरिवंशी जितशत्रु नामा राजा हूआ, तिसकी धारणी नामा राणी थी, तिसका अचल नामा पुत्र और मृगावती नामा वेटीथी, सो अत्यंत रूपवान् और यौवनवंती थी, उसकों देखकें उसके पिता जितशत्रुने अपणी राणी वना लीनी तव लोकोंने जितशत्रु राजाका नाम प्रजापति रक्खा, अर्थात् अपनी वेटीका पति ऐसा नाम रक्खा, तवहीसें वेदोमें यह श्रुति लिखी गइ "प्रजापतिर्वैस्वा दुहितरमभ्य ध्यायद्दिवनित्यन्यआहुपुरसमित्यन्येतामृश्योभूत्वा तदसावादित्योऽभवत्" इसका भावार्थ यह है किः–प्रजापतिब्रह्मा अपनी वेटीसें विषय सेवनेकों प्राप्ति होता हूआ, हमारे जैनमतवालोंकी तो इस अर्थसें कुछ हानी नहीं, परंतु जिनलोकोंने ब्रह्माजीकों वेदकर्त्ता हिरण्यगर्भके नामसें इश्वर माना हैं, और इस कथाकों पुराणोंमें लिखा है, उनका फजीता तो जरूर दूसरे मतवाले करेंगे? इसमें हम क्या करे? क्योंकि जो पुरुष अपने हाथोंसेंही अपना मुह काला करे, तव उसकों देखने वाले क्योंकर हांसी न करेगे? यद्यपि मीमांसाकें वार्त्तिककार कुमारिलनें इस श्रुतिके अर्थके कलंक दूर करणेकों मनमानी कल्पना करी है, तथा इस कालमें दयानंद सरस्वतीनेभी वेदश्रुतियोंकें कलंक दूर करनेंकों अपनी वनाइ भाष्यमें खूव अर्थोंके जोरू तोड लगाये हैं, परंतु जो पुराणवालेने कथानक

लिखा हें, तिसकों क्योंकर छिपा सकेंगें? इसमें यह मशल मशहूर है किः—बूंदकी वात तो विलायत गइ अव क्यों घडे रुम्हाते हो अवा हमारे मतमेंतो वेदश्रुति और ब्रह्मा (प्रजापति) का अर्थ यथार्थही क्या है. अरु जब त्रिपृष्ट और अचल दोनो योवनवंत हूये तब तिनोंनें त्रिखंडका राजा अश्वग्रीवकों मारकें तीन खंडका राज्य करा.

तिस पीछें चंपा पुरीका इक्ष्वाकुवंशी वसुपूज्य नामा राजा हूआ, तिसकी जया नामा राणी तिनोंका पुत्र श्रीवासुपूज्यनाथ नामा वारहवां तीर्थंकर हूआ, तिनोंके वारें दूसरा द्विपृष्ट वासुदेव और अचल वलदेव हूये. और इनका प्रतिशत्रु रावण समान तारक नामा दूसरा प्रतिवासुदेव हूआ, इन सर्व वासुदेव और चक्रवर्त्ति आदिकोंका संपूर्ण वरनन त्रेशठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां.

तिस पीछें कपिलपुर नगरमें इक्ष्वाकुवंशी कृतवर्मा नामा राजा हूआ, तिसकी श्यामा नामा राणी, तिनोंका पुत्र श्री विमलनाथ नामा तेरहवां तीर्थंकर हूआ, तिनोंके वारें तिसरा स्वयंभु वासुदेव और भद्रनामा वलदेव तथा मेरक नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें अयोध्या नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी सिंहसेन राजा हूआ तिसकी सुयशाराणी तिनोंका पुत्र श्रीअनंतनाथ नामा चौदहवां तीर्थंकर हूआ, तिनके वारें चौथा पुरुषोत्तम नामा वासुदेव और सुप्रभ नामा वलदेव तथा मधुकैटभ नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तिस पीछें रत्नपुरी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी भानु नामा राजा हूआ, तिसकी सुव्रतानामा राणी तिनोंका पुत्र श्रीधर्मनाथ नामा पंदरहवा तीर्थंकर हूआ, तिनके वारे पांचमा पुरुषसिंह नामा वासुदेव और सुदर्शन नामा वलदेव तथा निशुंभ नामा प्रतिवासुदेव हूआ, यहांतक पांच वासुदेव हूये सो पांचोही, अरिहंतोके सेवक अर्थात् जैनधर्मी हूये.

तिस पीछें पंदरहवे धर्मनाथ और शोलवें श्रीशांतिनाथजीके अंतरमें तीसरा मघवा नामा चक्रवर्त्ती और चौथा सनत्कुमार नामा चक्रवर्त्ती हूये.

तिस पीछें हस्तिनापुरी नगरीमें कुरुवंशी विश्वशेन राजा हूआ तिसकी अचिरा राणी तिनका पुत्र श्रीशांतिनाथ नामा हूआ सो पहिला गृहवासमें तो पांचमा चक्रवर्त्ति था पीछे दीक्षालेके केवली होकरशोलवांतीर्थंकर हूआ.

तिस पीछें हस्तिना पुर नगरमें कुरुवंशी सूरनामा राजा हूआ, तिसकी श्रीराणी तिनोंका पुत्र श्रीकुंथुनाथ हूआ, सो प्रथम गृहस्थावस्थामें छठा चक्रवर्त्ति था, अरु दीक्षा लीया पीछें सत्तरहवां तीर्थंकर हूआ.

तिस पीछे हस्तिनापुरनगरीमें कुरुवंशी सुदर्शन नामा राजा हूआ, तिसकी देवी राणी, तिनोंका पुत्र श्रीअरनाथ हूआ, सो गृहस्थावासमें तो सातवां चक्रवर्त्ति था और दीक्षा लीया पीछें अठारहवां तीर्थंकर हूआ.

अठारहवें और उन्नीसवें तीर्थंकरके अंतरमें आठवां कुरुवंशी सुभूम नामा चक्रवर्त्ति हूआ, वह शुभूमके वखतमेंही परशुराम हूआ, इन दोनों का संबंध जैनमतके शास्त्रोंमें जैसें लिखा है तैसें मैं भी यहां लिख देता हूं.

यह कथा योग्य शास्त्रमें ऐसें लिखी है कि, वसंत पुर नामा नगरमें उछन्नवंश नामा अर्थात् जिसका कोइभी संबंधी नहीं था ऐसा अग्निक नामा एक लडका था, सो अग्निक एकदा समये किसी सार्थवाहके साथ देशांतरको जाता हूआ मार्गमें साथसें भूलके जंगलमें एक तापसके आश्रममें गया, तब कुलपति तापसने तिसको अपना पुत्र बनाके रखलीया, पीछें तहां अग्निकने वडाभारी घोर तप करा और वडा तेजस्वी हूआ, जगत्में यमदग्नि तापसके नामसें प्रसिद्ध हूआ. इस अवसरमें एक जैनमति विश्वानर नामा देव और दूसरा तापसोंका भक्त ध्वनंतरी नामा देव, यह दोनो देव परस्पर विवाद करने लगे, तिसमें विश्वानर तो ऐसा कहने लगा कि:- श्रीअर्हंतका कहा धर्म प्रामाणिक है? और दूसरा कहने लगा कि तापसोंका धर्म सच्चा है, तब विश्वानरने कहाकि दोनो धर्मके गुरुओं की परीक्षा कर लो तिसमेंभी अर्हंतधर्मके तो जघन्य गुरु जो होवे तिसकी और तापस धर्मके उत्कृष्ट गुरु जो होवे, तिसका धैर्य देख लो, तब मिथिला नगरीका पद्मरथ राजा नवाही जिन धर्मी हो कर भावयति हूआथा सो चंपानगरीमें गुरुओंके पास दीक्षा लेने वास्ते जाताथा, तिसको पंथमें तिन दोनो देवताओंने देखा, तब रस्तेमें दुःख देनेवाले वहुत कंडे कंकरे बना दीये, तथा रस्तेके सिवाय दूसरे स्थानमें वहुत कीडे आदि जीव हरजगें बना दीये, तब राजा भावयतिके भावोंसें कमल समान कोमल, नंगे पगोंसें उन कांटे कंकरोके उपर चला जाता है, पगोंमेंसुं रुधिरकी ततीरीयां छूटती हैं, तोभी जीवों संयुक्त भूमि उपर नहीं चलता है, तब देवता

थोंने गीत नाटकका वडा प्रारंभ करा तोजी वो राजा
था तव दोनों देवता सिद्धपुत्रोंका रूप करके राजाकों कहने लगे, हे महा
भाग! तेरी आयु अजि वहुत है, तुं स्वछंद जोगवीलास कर क्योंकि यौवनमें
तप करनां ठीक नहीं इस वास्ते जव तूं वृद्ध हो जावेंगा, तव दीक्षा ले
लीजो यह वात सुन कर राजा कहने लगा यदि मेरा वहुत आयु है, तो
व में वहुत धर्म करुंगा क्योंकि जितना ऊंडा पाणी होता है, तितनीही कम
लकी नालिजी वढ जाती है और यौवनमें जो इंद्रियांकों जीतनां है, सोइ अ
सली तप होता है. तव तिन देवताओंने जानां यह तो कदापि चलायमान
न होगा, पीछें वो दोनो देवता मिल कर सर्वसें उत्कृष्ट जमदग्नि तापसके पास
परीक्षा करणेंकों गये, तव तिनोंनें जिसकी वडवृक्षकी जटाकी तरें तो धरतीसें
जटा लग रही है, और पगोंमें सर्पोंकी विंवीयां वन गइ हैं, असें हालमें
जमदग्निकों देखा, तव वो दोनों देवतानें देव मायासें जमदग्निकी दाढीमें
घोंसला वनाकर चिडा और चिडी वनकर घोंसलेमें दोनों वेठ गये पीछें
चिडा चिडीसें कहने लगा में हिमवंत पर्वतमें जाउंगा तव चिडी कहने
लगी में तुझे कजी न जाने देउंगी, क्योंकि तूं तहां जाके किसी और चि
डीसें आसक्त हो जावेंगा, फेर मेरा क्या हाल होवेगा? तव चिडा कहने
लगा कि जो में फिर कर न आउं, तो मुझे गौ घातका पाप लगे, तव
चिडी कहने लगी में तेरी शपथकों नहीं मानती हों, जो में सपथ (सौ
गंद) कहूं वो तूं करे, तो में जाने देउंगी, तव चिडेने कहा तूं कह दे तव
चिडी कहने लगी कि जो तूं किसी चिडीसें यारी करे तो इस जमदग्नि
का जो पाप है, सो तुझकों लगे. चिडा चिडीका असा वचन सुणके जम
दग्निकों क्रोधोत्पन्न हूआ तव दोनों हाथोंसें चिडा चिडीकों पकड लीया
और कहता हूआ कि में तो वडा दुष्कर तप जो पापोंका नाश करने वाला
है, सो कर रहा हों तो फेर मेरेंमें असा कौनसा पाप शेप रह गया है जिस्सें
तुम मुझे पापी वतलाते हो? तव चिडा यमदग्निकों कहता हैं, हे ऋषि!
तूं हमारें उपर कोप मत कर. क्योंकि हमने झूठ नहीं कहा है, और जो
तेरेकों अपने तपका घमंड है, सो तप तेरा निष्फल है, क्योंकि तुमारे
शास्त्रोंमें लिखा है, जो "अपुत्रस्यगतिर्नास्ति" अर्थात् पुत्र रहितकी गति
नहीं यह तुमनें शास्त्रमें नहीं सुना? तो जिसकी शुभगति न हूइ तिस्सें

अधिक और पापी कौन है? तब जमदग्निने शोचा कि हमारे शास्त्रमें तो जैसें चिडेने कहा है तैसेंही है, तब मनमें विचारा जब मेरे स्त्री, और पुत्र नहीं, तब मेरा सर्व तप ऐसा है, जैसा पाणीके प्रवाहमें मूतनां, तैसा है, पीछें जमदग्निके मनमें स्त्रीकी चाहना उत्पन्न हूइ, यह देखके धनंतरि देवता श्रावक जैनधर्मी हो गया अरु उहांसे दोनो देवता अदृश्य हो गये और जमदग्नि तहांसें उठके नेमिक कोष्टक नगरमें पहुंचा तिस नगरमें जितशत्रुराजा था, तिसके बहुत बेटीयां थी तिस राजा पासों एक कन्या मांगु? ऐसा विचार किया? राजाभी आसनसें उठके और हाथ जोरुके कहता हूआ कि आप किस वास्ते आये हो? और मुझे आदेश देउ क्या करुं? तब जमदग्निने कहा मैं तेरे पास तेरी एक कन्या मांगने आया हूं तब राजाने कहा मेरी सौ (१००) पुत्री हैं तिनमेंसूं जो नसी तुमको वांछे सो तुम लेओ, तब जमदग्नि कन्यायोंके महिलमें गया और कहने लगा कि तुममेंसें जिसने मेरी धर्मपत्नी (स्त्री) बननां है, सो कह देवे कि मैं तुमारी स्त्री बनूंगी, तब तिन राजपुत्रीयोंने जटाला और पलित धौलेकेशोंवाला दुर्बल और भीख मांगके खानेवाला जब देखा और उसका पूर्वोक्त वचन सुना तब सबोंने थूंका और कहा कि ऐसी वात कहते हूये तुझको लज्जा नहीं आती है? यह वात सुनकर जमदग्निको वडा क्रोध चढा, तब विद्याके प्रभावसें उन राजपुत्रीयोंको कूबनी और महाकुरूपवान् बना दीया, अरु आप तहांसें निकलके महिलोंके अंगनमें आया, तहां एक छोटी राजाकी बेटी रेणु पुंजमें (मट्टीके ढेरमें) खेल रही थी, तिसको हाथमें बिजोरेका फल ले कर कहने लगा हे रेणुका! तुं मुझको वांछती है? तब तिस बालिकाने बिजोरेको देखके हाथ पसारा तब मुनिने कहा मुझको यह वांछती है ऐसें कहकर मुनिने उसको ले लीया पीछे राजाने कितनीक गौआं और धन देकर उनदोका विवाह उसके साथ विधिसें कर दीया. तब जमदग्निने शालीयोंके स्नेहसें सबै कन्यायोंको अछा कर दीया. और तिस रेणुका भार्याको लेकर अपणे आश्रममें आया पीछें तिस मुग्धा, मधुर आकृति, हरणीसमान लोचनांवालीको प्रेमसें वृद्धि करता भया, जब जमदग्निको अंगुलियों ऊपर दिन गिणतेको वो रेणुका सुंदर यौवन कामके लीला वनको प्राप्त हूइ, तब जमदग्निने

अग्निकी साक्षी करके रेणुकासें फिर विवाह करा, जब रेणुका ऋतुकालको प्राप्ति हूइ, तब जमदग्नि कहने लगा कि मैं तेरे वास्ते चरु साधता हूं, चरु "होममें नालनेकी वस्तुआंकों कहते हैं" जिस्सें सर्व ब्राह्मणोंमें उत्तम प्रताप वाला तेरेकों पुत्र होवेगा, तब रेणुकानें कहा हस्तिना पुरमें कुरुवंशी अनंतवीर्य राजाकों मेरी बहिन व्याही है तिसके वास्ते तूं क्षत्रिय चरुजी साध्य, अर्थात् मंत्रोंसें संस्कार करकें सिद्धकर, पीछे जमदग्निनें ब्राह्मण चरु तो अपणी नार्या वास्ते अरु क्षत्रिय चरु तिस नार्याकी बहिन वास्ते सिद्ध करा तब रेणुकाने मनमें विचार कराकि मैं जैसें अटवीमें हरिणीकी तरें रहती हूं, तो मेरा पुत्रजी वैसेही जंगलोमें रहेगा, इस वास्ते मैं क्षत्रिय चरु नक्षण करुं, जिस्सें मेरा पुत्र राजा होकें इस जंगल वाससें छुट जावे, ऐसा विचारकें क्षत्रिय चरु खा लीया और ब्राह्मण चरु अपनी बहिनकों नक्षण कराया; तब तिन दोनोंके दो पुत्र हूये तिसमें रेणुकाके तो राम नामक पुत्र हुये, और रेणुकाकी बहिनके कृतवीर्य पुत्र हूये, क्रमसें दोनों बडे हूये, राम तो आश्रममें पला, और कृतवीर्य राज महेलोंमें पला, राम तो क्षत्रीतेज अर्थात् क्षत्रिय पणेकी तेजी देखानें लगा, अन्यदा एक विद्याधर अतिसार रोग वाला तिस आश्रममें आ गया, अतिसारके प्रनावसें आकाशगामिनी विद्या नूल गया, तब तिस मांदे विद्याधरकी रामने औषध पथ्यादि करकें नाइकी तरें सेवा करी, पीछे तिस विद्याधरने तुष्टमान होके रामको परशुविद्या दीनी, तब रामनी सरकडेके वनमें जाकर तिस विद्याकों सिद्ध करता हूआ, तिस विद्याके प्रनावसें राम परशुराम नाम करकें जगत्में प्रसिद्ध हूआ, एकदा अवसरमें अपना जमदग्नि पतिकों पूछके रेणुका बडी उत्कंठासें अपणी बहिनके मिलने वास्ते हस्तिना पुरमें गइ, तहां रेणुकाकों अपणी शालि जान कर अनंतवीर्य राजा हंसी मश्करी करने लगा, और रेणुकाका बहुत सुंदर रूप देख कर कामातुर होके उसके साथ निरंकुश हो कर विषय सेवन करने लगा, तब अनंतवीर्यके नोगसें रेणुकाके एक पुत्र जन्मा, पीछे जमदग्नि पुत्र सहित रेणुकाकों आश्रममें ल्याया क्योंकि पुरुष जब स्त्रीयोंका लुब्ध हो जाता है तब बहुतताइसें कोइनी दोष नहीं देखता है, जब परशुरामने अपनी माताकों पुत्र सहित देखा, तब क्रोधमें आकर परशुसें अपनी माताका और तिस अन्

केका दोनोंका शिर काट माला, जब यह वृत्तांत अनंतवीर्य राजाने शुना, तब क्रोधमें जर कर और फौज ले कर जमदग्निका आश्रम जाल फूक तोड फोम गेरा और सर्व तापसोंकों त्रास मान करा, तब तापसोंनें दौ डते हूयां जो रौला करा तिसकों परशुरामनें सुना और सारा वृत्तांत सुनके परशु लेके राजाकी सेना ऊपर दोमा, परशुरामनें परशुसें राजा और राजाकी सेना सुजटोंकों काष्टकी तरे फाडके गेर दीया, आप पीछे आश्रममें चला गया, उधर प्रधान राजपुरुषोंनें अनंतवीर्यके वेटे कृतवीर्यकों राजसिंहासन ऊपर बैठाया, परंतु वो उमरसें छोटा था, एकदिन अपणी माताके मुखसें अपने पिताके मरणेका वृत्तांत सुनकें सर्पके डंसे हूयेकी तरें आ कर जमदग्निकों मार दीया, तब परशुराम अपना पिताका वध देखकें क्रोधमें जाज्वल मान हो कर हस्तिनापुरमें आकें कृतवीर्यकों मारकें आप राजसिंहासन ऊपर बैठ गया, क्योंकि राज्य जो है, सो पराक्रमके आधीन है, तब कृतवीर्यकी तारा नामा गर्जवती राणी परशुरामके जयसें दौमकर किसी जंगलमें तापसोंके आश्रममें गइ, तब तिन तापसोंनें दया करकें तिस राणीकों अपने मठके जोंहरेमें निधानकी तरें छिपाके रक्खा, तहां तिस राणीके चौदह स्वप्न सूचित पुत्र जन्मा तिसका नाम तिसकी माताने सुजूम रक्खा. क्षत्रिय जो जहां मिलता है, तहांही परशुरामका कुहामा जाज्वलमान होजाता है, तब परशुराम परशुसें क्षत्रियोंका शिर काट देता है, अन्यदा परशुराम जिहां छिपी हूइ राणी पुत्रसें रहती थी तिस आश्रममें आया तहां परशुरामका परशु जाज्वलमान हूआ, तब परशुरामनें तापसोंकों पूछा, क्या यहां कोइ क्षत्रिय है, तब तापसोने कहा हम गृहस्थावासमें क्षत्रिय थे, तब परशुरामनेंजी ऋषियोंकों छोमकें सात वार निःक्षत्रिय पृथ्वी करी, अर्थात् सात वार चढाइ करकें अपणी जाणमें कोइजी क्षत्रिय वाकी नहीं छोमा, जैसें अग्नि, पर्वत ऊपर घांसकों नहीं छोमती है, तैसें परशुरामनेजी जो जो क्षत्रिय राजादि प्रसिद्ध थे, तिनोंकों मारकें तिनोंकी दाढासें एक थाल जरा, और परशुरामने छाना निमित्तियेकों पूछा कि मेरा मरणां किसके हाथसें होगा? तब निमित्तियेने कहा कि जो तैंने दाढासें थाल जरा है, सो थाल जिसके देखनेंसें दाढाकी खीर बन जायेगी, और इस सिंहासन ऊपर बैठके जो तिस खीरकों खा

यगा, तिसके हाथसें तेरा मरणा होवेगा, यह सुन कर परशुरामने दान शाला वनाइ, और दानशालाके आगें एक सिंहासन रचाया, तिस ऊपर क्षत्रियोंकी दाढांवाला स्थाल रखवाया, अब इधर तापसोंके आश्रममें प्रतिदिन तापस सूजूम वालककों लाम लमाते, खिलाते, अंगणके वृक्षकी तरें वृद्धि करते हूये रहते है, इस अवसरमें मेघ नामा विद्याधर कोइ निमित्तियेकों पूछने लगा कि मेरी जो पद्मश्री कन्या है, तिसका वर कौन होवेगा? तव तिस निमित्तियेने सुजूम वर वतलाया, और उसका सर्व वृत्तांतजी सुना दीया, तव मेघ विद्याधरनें अपनी वेटी सुजूमकों व्याही, और तिसकाही सेवक वन गया. एकदा कूपके मेंमककी तरें और कंही जानेंमें रहित हूआ होया सुजूम अपनी माताकों पूछनें लगा कि हे माता! इतनाही लोक है, कि जिसमें हम रहते हैं, क्या इस्सें अधिकजी है? तव माता कहने लगी हे पुत्र! लोक तो अनंत है, तिसमें मक्षिके पग जितनी जगामें यह आश्रम है, इस लोकमें वहुत प्रसिद्ध हस्तिना पुर नगर है, तिस नगरीका राजा तेरा पिता कृतवीर्य था, परंतु परशुराम तेरे पिताकों मारके हस्तिना पुरका राजा वन गया है, और तिस परशुरामने निःक्षत्रिय पृथ्वी कर दइ है, तिस परशुरामके जयसें हम यहां आश्रममें छिपे हूये वैठे हैं. अपनी माताका यह कहना सुनके सुजूम जौमकी तरें अर्थात् मंगलके तारेकी तरें लाल हूआ, और तहांसें निकलके सीधा हस्तिना पुरमें आया, तव लोकोंने पूछा कि तूं ऐसा अत्यद्भुत सुंदर किसका वेटा है? तव कहा मैं क्षत्रियका पुत्र हूं. तव लोकोंने कहा तूं यहां ज्वलती आगमें क्यों आया? तव तिसने कहा मैं परशुरामकों मारनेके वास्ते आया हूं, तव लोकोने वालक जानके उसकी वात उपर कुछ ख्याल न करा, अव सुजूम सिंहकी तरें उस पूर्वोक्त सिंहासन उपर जाकें वैठा, और तहां देवताके विनियोगसें दाढाकी क्षीर वन गइ, तिसकों सुजूम खाने लग गया, तव तहां जो रखवाले व्राह्मण थे, वे सर्व सुजूमको मारणेकों उठे, तव मेघनाद विद्याधरने सव व्राह्मणकों मार दीया तव कंपता हूआ और होठोंकों चावता हूआ, क्रोधमें जरा हूआ, ऐसा परशुराम कोहाडा (परशु) लेके सुजूमकों मारने आया. परशुरामने सुजूमके मारणेकों परशु चलाया वो परशु सुजूमतक पहूंचनेंसें पहिलाही आगके अंगारेकी तरें वुझ गया,

विद्या देवी जो थी, सो सुजूमके पुण्य प्रभावसें परशुकों छोरु के भाग गइ तब सुजूमनें शस्त्रके अभावसें थालही उठाके परशुरामकों मारा तिस थालका चक्र बन गया, तिस चक्रने परशुरामका मस्तक काट गेरा तिस चक्रसेंही सुजूम आठवां चक्रवर्त्ति हूआ.

इस कथा उपर लोकोंनें जो यह कथा वना रक्खी, सो ठीक नहीं है, सो कथा कहते हैं. जैसें कि परशुराम परशुसें क्षत्रियोंकों काटता हूआ रामचंद्रजीके पास पहूंचा और परशुसें रामचंद्रजीकों मारने लगा, तब रामचंद्रजीने नरमाइसें पग चंपी करकें उसका तेज हर लीया, तब परशुरामका परशु हाथसें गिर पमा, और फिर न उठा सका, यह श्रीरामचंद्र नहीं था, परंतु यहतो सुजूम नामा आठवां चक्रवर्त्ति था, जिसनें परशुरामका काम तमाम कीया, इस कथाके वनानें वालोनें परशुरामकी हीनता दूर करनेकों श्रीरामचंद्रजीका संबंध लिख दीया है, असली सुजूमचक्रवर्त्ति लिखने वालोंनें यहभी शोचा होगा एक अवतारनें दूसरे अवतारका अंस खींच लीया, इसमें परशुरामकी लघुता न होवेगी, परंतु यह नहीं शोचा होगा कि दोनों अवतार अज्ञानी वन जायेंगे. जब परशुराम आपही अपने अंशकों कोहाडेसें काटने लगा, तब तिसमें और अधिक अज्ञानी कौन वनेगा? जब सुजूम चक्रवर्त्ति आठमा हूआ, तब जैसें परशुरामने सात वार निःक्षत्रिया पृथ्वी करी थी, तैसें सुजूमने पिछले वैरसें इक्कवीश वार निर्ब्राह्मण पृथ्वी करी अपणी जाणमें कोइभी ब्राह्मण जीता नहीं छोडा, इसी वास्ते इन राजायोंकों ब्राह्मणोनें दैत्य, राक्षसके नामसें पुस्तकोंमें लिख दीया है, यह दोनों मरके अधोगतिमें गये ॥ इति परशुराम और सुजूमचक्रवर्त्तिका संबंध संपूर्णः ॥

यह सुजूमचक्रवर्त्तिसें पहिला इसी अंतरेमें छठा पुरुषपुंरुरीक वासुदेव तथा आनंद नामा वलदेव और वलि नामा प्रतिवासुदेव हूये, तथा सुजूमके पीछें इस अंतरेमें दत्त नामा सातमा वासुदेव तथा नंद नामा वलदेव और प्रल्हाद नामा प्रतिवासुदेव हूये.

तीस पीछें मिथुला नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी कुंभ राजा हूआ, तिसकी प्रभावती राणी तिनीकी पुत्री मल्लिनाथ नामा एगुणवीसमा तीर्थंकर हूआ,

तिस पीछें राजग्रह नगरीमें हरिवंशी सुमित्र राजा हूआ, तिसकी

पद्मावती राणी तिनका पुत्र मुनिसुव्रत नामा वीशमा तीर्थंकर हूआ, तिनोंके समयमें महापद्म नामा नवमा चक्रवर्त्ति हूआ, तिसका संबंध त्रेसठ शलाका पुरुष चरित्रसें जान लेनां परंतु तिसके जाइ विष्णु कुमारका जो ऐसा संबंध यहां लिखते है.

हस्तिना पुर नगरमें पद्मोत्तर नामा राजा तिसकी ज्वालादेवी राणी तिनका वडा पुत्र विष्णुकुमार, और छोटा जाइ महापद्म हूआ, तिस अवसरमें अवंती नगरीमें श्रीधर्म नामा राजेके मंत्रि नमुचि अपर नाम बल यह नामके मिथ्यादृष्टि ब्राह्मणने श्रीमुनिसुव्रत तीर्थंकरका शिष्य श्री सुव्रताचार्यके साथ अपनी मतका विवाद करा, वादमें हार गया. तब रात्रिकों तलवार लेकें आचार्यकों मारने चला, रस्तेमें पग थंजगये यह स्वरूप राजानें सुनके अपनें राज्यसें वाहिर निकाल दीया तब नमुचि वह तहांसें चलके हस्तिना पुरमें युवराज महापद्मकी सेवा करने लगा किसी काममें तुष्ट मान होकें महापद्मनें तिसकों यथेछा वर दीया पीछे पद्मोत्तर राजा और विष्णु कुमार दोनोंनें सुव्रत गुरुके पास दीक्षा ले कें पद्मोत्तर मोक्ष गया, और विष्णु कुमार तपके प्रजावसें महालब्धिमान् हूआ इस अवसरमें सुव्रताचार्य फेर हस्तिना पुरमें आये, तब नमुचिवलनें विचारा कि यह वैर लेनेका अवसर है, तब महापद्म चक्रवर्त्तिसें विनति करीकिः—मेंनें जैसें वेदोमें कहा है, तेसें एक महायज्ञ करना है इस वास्ते में पूर्वोक्त वर मांगना चाहाता हूं, तब महापद्मने कहा मांग, तब नमुचिने कहा मुझे कितनेक दिन तक आपनां सर्व राज दे देवो, यह सुनकर महापद्मनें उसके कहे दिन तक सर्व राज उसें दे कर आप अपने अंतेउरोमें चला गया, तब नमुचिवलनें नगरसें निकलके यज्ञ वास्ते यज्ञ पाडा बनाया, उसमें दीक्षा ले के आसन उपर बैठा तब जैनमतके साधु छोडके दूसरे सर्व पाखंमी जिक्षु और गृहस्थ जेटना ले के आये जेट दे के सबोंने नमस्कार करा, तब नमुचिवलने पूछा कि नहीं आया होये, ऐसा तो कोइ रहा नहीं? तब लोकोंनें कहा कि जैनमती सुव्रताचार्य वर्जके सर्व दर्शनी आ गये हैं, तब नमुचिवलने यह छिद्र प्रगट करकें और क्रोधमें नरकें तिनाही वोलानेंकों जेजे, और कहला जेजा कि राजा चाहो कैसाही हो, तो जी सर्वकों मानने योग्य है, उसमेंजी साधुउंकों तो विशेष करकें मान

नां चाहियें, क्यों राजासें उपरांत ऐसें अनाथ लिंगीयोंकी रक्षा करने वाला कौन है? तथा मेरा तुम कुछ करने समर्थ नहीं. और वडे अभिमानी हो, तथा हमारे धर्मके निंदक हो इस वास्ते मेरे राजसें वाहिर हो जाउ. जो रहेगा, उसकों में मार डालूंगा इसमें मुझे पापभी नहीं होगा, तव गुरुने आ कर मीठे वचनसें कहा कि हमारा यह कल्प नहीं जो गृहस्थके कार्यमें जानां, परंतु हम अभिमानसेंही नहीं आये ऐसा मत समझना क्योंकि साधु समभावसें अपने धर्मकृत्यमें लगे रहते हैं, तव नमुचिवल अति शांतिवृत्तिवाले मुनियोंकों कठोर हो कर कहनें लगा कि सात दिनके अंदर मेरे राजसें वाहिर हो जाउ जो रहेगा, सो मारा जायगा, यह सुनके सव साधु अपने तपोवनमें आये, और शोचने लगे कि अव क्या उपाय करीयें? तव एक साधु कहने लगा कि महापद्म चक्रवर्त्तिका वडा भाइ विष्णुमुनि लब्धिपात्र है, अर्थात् वडी शक्तिवाला मेरु पर्वत ऊपर है, तिसके कहनेसें यह नमुचिवल प्रशांत हो जावेगा; इस वास्ते कोइ चारण साधु उसकों यहां वोला ल्यावे तो ठीक है तव एक साधु वोला कि मेरी उहां मेरु पर्वत पर जानेकी तो शक्ति है, परंतु पीछे आवनेकी शक्ति नहीं है तव गुरु कहने लगे कि तुमकों पीछा विष्णु मुनिही यहां ले आवेंगे, तुम जाउ. तव वो साधु लब्धिसें एक क्षणमें तहां गया, और सर्व वृत्तांत सुनाया, तव विष्णु मुनि उस साधुकोंभी साथ ले कर तत्काल गुरुके पास आके वंदना करी, पीछें गुरुकी आज्ञासें एकिलाही राज सभामें आया उहां एक नमुचिवलके विना और सर्व सभाके लोकोंनें उठके वंदना करी तव विष्णु मुनिने धर्मोपदेश देकर कहाकि निःसंगी साधुओंसें वैर करणां, यह महा नरकका कारण है, क्योंकि साधु किसीका कुछ विगाडते नहीं. और जगत् तो और वडे पुरुषोंकों नमस्कार करते हैं, किसी शास्त्रमें मुनि निंदे नहीं है, तो फेर यह आश्चर्य है, कि:—तुछ, क्षणिक राजके पानेंसें अंधे अधम पुरुष अपणेकों साधुओंसें नमस्कार कराया चाहते हे, और नमुचिवलकों कहा तूं इस वुरे कामकों जानेदे जिस्सें साधु सव सुखसें रहे, और तूं क्युं मत्सरमें मगन होके अपणा आप विगाडा चाहता है? साधु चौमासेमें विहार करते नहीं क्योंकि चौमासेमें जीवोंकी वहुत उत्पत्ति हो जाती है और सर्व जगे तेराही राज्य

है, तो सर्व साधु सात दिनमें कहां चले जाय ? तब नमुचिवल कुकाष्ठकी तरें होकर बोला कि बहुत कहनेंसें क्या है ? पांच दिनसें उपरांत जो कोइ तुमारा साधु मेरे राज्यमें रहेगा, तो में उसकों चोरकी तरें वध करुंगा, और तूं हमारे मानने योग्य है, उसी वास्ते तूं जाकर साधुओंकों कहदे जो कि जीवनां चाहते हो तो नमूचिके राज्यसें बाहिर चले जाउ क्योंकि राज्य ब्राह्मणका है, और तेरे मान्यके रहने वास्ते तीन कदम अर्थात् तीन डिंग जगा देता हूं, तिस्सें बाहिर किसी साधुकों देखूंगा तिसका शिरछेद करुंगा, तब विष्णुमुनिने विचारा कि यह साम अर्थात् मीठे वचनोंके योग्य नहीं यह तो बडा पापी साधुओंका घातक है, इसकी जडही उखाडनी चाहियें. तब विष्णुमुनिने कोपमें आ कर वैक्रिय लब्धिसें लाख योजनकी देह बनाइ, एक डिंगसेंतो भरतक्षेत्रादि मापा और दूसरी डिंग पूर्वापर समुद्र उपर धरी और तीसरी डिंग नमुचिवलके शिर ऊपर रखके सिंहासनसें हेठ गेरके धरतीमें घसोड दीया, नमुचि मरकें नरकमें पहुंच गया और विष्णुमुनिकों देवताओंनें कानोमें मधुर गीत सुनाकर शांत करा, तब शरीरकों शंकोचके गुरोंके पास जाकर आलोचना करी, पापका प्रायश्चित्त लेकर विहार कर गया, जप, तप, कर संयम पालकें मोक्षगया.

इस कथासें ऐसा मालूम होता है कि ब्राह्मणोने पुराणोंमें जो लिखा है, कि विष्णु भगवान्नें वामन रूप करकें यज्ञ करते बलिराजाकों छला, सो यही विष्णुमुनि अरु नमुचिकी कथाकों बिगाडके अपने मतके अनुसार औरकी और कथा बना लीनी है, क्योंकि श्रीभगवान्कों क्या गरज थी, कि जो धर्मी बलिराजा यज्ञ करने वालेके साथ छल करता ? यह तो निःकेवल बुद्धि हीनोका काम है, जो अपनी बेटीयोंसें तथा परस्त्रीयोंसें विषय सेवन करा कहनां, तथा भगवान्ने झूठ बोला, औरोंसें बोलाया, चोरी करी, औरोंसें कुशील भगवान्ने सेवन करा, छलसें मारा, कपट करा, इत्यादि कामतो नीचजनोंके करनेके हैं, श्री वीतराग सर्वज्ञ परमेश्वर यह काम कभीभी नहीं करता तो और करने वालेकों परमेश्वर भूलकेभी न माननां चाहियें ॥ इति विष्णुमुनि तथा नमुचिवलका संबंध समाप्त ॥

वीसमें और इक्कीसमें तीर्थंकरके अंतरमें श्री अयोध्या नगरीके दशरथराजाकी कौशल्या राणीका पद्म (रामचंद्र) नामा पुत्र हूवा, सो आ

ठमा वलदेव और दशरथराजाकी सुमित्रा राणीका पुत्र नारायण अपर नाम लक्ष्मण सो आठमा वासुदेव हुआ जिनोंका प्रतिशत्रु रावण प्रतिवासुदेव लंकाका राजा हूआ सो जगत्में प्रसिद्ध है. इन तीनोंका यथार्थ स्वरूप पद्मचरित्रसें जान लेनां, परंतु लौकिक रामायणमें जो रावणके दश शिर लिखे हैं, सो ठीक नहीं है, क्योंकि मनुष्यके स्वाभाविकही दश शिर कदापि नहीं हो शक्ते हैं, पद्मचरित प्रथमानुयोग शास्त्रमें लिखा है कि रावणके वडे वडेरोंकी परंपरायसें एक वडा नव माणिकका हार चला आता था, सो रावणने वालावस्थासें अपने गलेमें पहिर लीये थे और वे नौंही माणक वहुत वडे थे, सो चार माणक एक पासें स्कंधके ऊपर हारमें जडे हूये थे, और पांच माणक दूसरे पासे जडे थे, दोनों स्कंधो उपर नव माणकमें नवमुख दीखते थे, और एक रावणका असली मुख था इस वास्ते दशमुख वाला रावण कहा जाता है; तथा रावणके समयसेंही हिमालयके पहाडसें वद्रीनाथका तीर्थ उत्पन्न हूआ है, तिसकी उत्पत्ति जैनमतके शास्त्रोंसे ऐसे जानी जाती है कि:—यह असली पार्श्वनाथकी मूर्त्तिथी, तिसकाही नाम वद्रीनाथ रक्खा गया है. इसका पूरा स्वरूप गद्यबंद पार्श्वपुरानसें जान लेना.

तिस पीछें मिथुलानगरीमें इक्ष्वाकुवंशी विजयसेनराजाकी विप्रा राणी तिनका पुत्र श्रीनमिनाथ नामा इक्कवीसमा तीर्थंकर हूआ तिनोंके वारें हरिषेणनामा दशमा चक्रवर्त्ति हूआ है; तथा यह इक्कवीसमें और वावीसमें तीर्थंकरके अंतरेमें इग्यारहमा जयनामा चक्रवर्त्ति हूआ.

तिस पीछें सौरीपुर नगरमें हरिवंशी समुद्रविजय राजा तिसकी शिवा देवी राणी तिनका पुत्र श्रीअरिष्टनेमि नामा वावीशमा तीर्थंकर हूआ तिनोंके वारें तिनोंके चाचेके वेटे नवमे कृष्णवासुदेव और राम वलदेव (वलभद्र वलदेव) इनका प्रतिशत्रु जरासिंधु प्रतिवासुदेव हूआ, तिसमें कृष्ण अरु वलभद्र तो जगतमें वहुत प्रसिद्ध हैं क्योंकि लोक श्रीकृष्ण वासुदेवको साक्षात् ईश्वर तथा ईश्वरका अवतार जगत्काकर्त्ता मानते हैं, यह वात कृष्ण वासुदेवके जीते हूयें नहीं हूइ, किंतु उनके मरे पीछें लोक कृष्ण वासुदेवको ईश्वरावतार मानने लगे हैं, तिसका हेतु त्रेसठ सलाका पुरुष चरित्रमें ऐसें लिखाहै कि:—जब कृष्ण वासुदेवनें कुसंवी वनमें शरीर छोडा तब काल क

रकें वालुप्रजा पृथ्वी (पातालमें) गये और वलजद्रजी एक सौ वर्ष जैनदीक्षा पालके पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें गये उहां अवधिज्ञानसें अपने जाइ श्रीकृष्ण कों पातालमें तीसरी पृथ्वीमें देखा, तब जाइके स्नेहसें वैक्रिय शरीर वनाकर श्री कृष्णके पास पहूचा और श्रीकृष्णसें आलिंगन करकें कहा कि में वलज्रद्रनामा तेरे पिठले जन्मका जाई हूं, में काल करकें पांचमें ब्रह्मदेवलोकमें उत्पन्न हूआ हूं, और तेरे स्नेहसें यहां तेरे पास मिलनेकों आया हूं सो में तेरे सुख वास्ते क्या काम करुं? इतना कह कर जब वलजद्रजीनें आपनें हाथों ऊपर कृष्णजीको लीया, तब कृष्णका शरीर पारेकी तरें हाथसें झरके जूमि ऊपर गिर पमा, और मिलकर फेर संपूर्ण शरीर पूर्ववत् हो गया. इसीतरें प्रथम आलिंगन करनेंसें फेर विरतांत कहनेंसें और हाथों ऊपर उठानेसें कृष्णनेजी जान लीयाकि यह मेरे पूर्वजवका अति वल्लज वलजद्र जाई है तब कृष्णजीने संभ्रमसें उठके नमस्कार करा तब वलजद्रजीनें कहा हे भ्राता ! जो श्रीनेमिनाथने कहाथाकि यह विषय सुख महादुःखदाई है सो प्रत्यक्ष तुमकों प्राप्त हूआ और तुऊ कर्मनियंत्रितकों में स्वर्गमेंजी नही ले जा सक्ता हूं परंतु तेरे स्नेहसें तेरे पासमें रहा चाहता हूं तब कृष्णने कहा हे भ्राता ! तेरे रहनेंसेंजी तो मैनें करे हूये कर्मका फल अवश्यमेव जोगनाही है परंतु मुऊकों इस दुःखसें वो दुःख वहुत अधिक है जो में द्वारिका और सकल परिवारके दग्ध होजानेसें एकला कुसंवी वनमें जरा कुमारके तीरसें मरा और मेरे शत्रुओंकों सुख तथा मेरे मित्रोंकों दुःख हूया जगतमें सर्व यदुवंशी वदनाम हूये इस वास्ते हे भ्राता ! तूं जरतखंममें जा कर चक्र, शारंग, शंख, गदाका धरने वाला और पीत (पीले) वस्त्र वाला, तथा गुरुड ध्वजा वाला, असा मेरा रूप वना कर विमानमें वेठ कर लोकोंकों दिखला तथा नीलवस्त्र और तालध्वज अरु हल, मूशल, शस्त्रका धरनेंवाला असा तूं विमानमें वेठके अपना रूप सर्वजगें दिखलाकर लोकोंकों कहो कि राम कृष्ण दोनो हम अविनाशी पुरुष है, और स्वेछा विहारी हैं, जब लोकोंकों यह सत्य प्रतित हो जावेगा तब हमारा सर्व अपयश दूर हो जावेगा यह श्रीकृष्णजीका कहना सर्व श्रीवलजद्रजीने स्वीकार कर लीया, और जरतखंममें आकर कृष्ण वलजद्र दोनोका रूप करकें सर्व जगे विमानारूढ दिखलाया और असे क

हने लागा कि नो लोको ! तुम कृष्ण बलनद्र अर्थात् हमारे दोनोंकी सुं दर प्रतिमा बनाकर ईश्वरकी बुद्धिसें बमे आदरसें पूजो क्योंकि हमही ज गतके रचनेवाले और स्थिति संहारके कर्त्ता हैं और हम अपणी इछासें स्वर्ग (वैकुंठ) सेंयहां चले आते हैं, और पीछें स्वर्गमें अर्थात् वैकुंठमें अपनी इछासें चले जाता हैं और द्वारका हमनेही रची थी तथा हमनेही उसका संहार करा है, क्यों कि जब हम, वैकुंठमै जानेकी इछा करते हैं, तब सर्व अपना वंश द्वारिका सहित दग्ध करके चले जाते है, हमारे उ परांत और कोई अन्य कर्त्ता, हर्त्ता नहीं है ऐसा बलनद्रजीका कहना सु ननेसें सर्व ग्राम (नगर) के लोकोंने कृष्ण बलनद्रजीकी प्रतिमा सर्व ज गे बना कर पूजी तब प्रतिमा पूजनेवालोंको बहुत सुख धनादिसें बलन द्रने आनंदित करा, इस वास्ते बहुत लोक हरिनक्त हो गये, जबसें नक्त हूये तबसें पुस्तकोमें कृष्णजीको पूर्णब्रह्म परमात्मा ईश्वरादि नामोंसें लि खा, क्याजाने जबसें बलनद्रजीनें कृष्णकी पूजा कराई, तबसेंही लोकोने कृष्णकोंही ईश्वरावतार माना हो ? और उस समयकों पांच हजार वर्ष हूये हों, जिस्सें लौकीकमें कृष्ण हूयेकों पांच हजार वर्ष कहते हैं.

बाईसमें अरु तेईसमें तीर्थंकरके अंतरेमें बारमा ब्रह्मदत्तनामा चक्रव र्ती हूआ, तिस पीछे वाणारसी नगरीमें इक्ष्वाकुवंशी अश्वसेन राजा हूआ तिसकी वामादेवी राणी तिनका पुत्र श्रीपार्श्वनाथ नामा तेईसमा तीर्थंकर हूआ तिस पीछें क्षत्रियकुंम नामा नगरमें इक्ष्वाकुवंशी दूसरा नाम सूर्यवं शी सिद्धार्थ नामा राजा हूआ तिसकी त्रिसला नामा राणी तिनका पुत्र श्रीवर्द्धमान महावीरनामा चौवीशमा चरम छेला तीर्थंकर हूआ, आज काल जो जैनमत नरत खंममें प्रचलित है, सो इसही श्रीमहावीरका शासन अ र्थात् उनहीके कहे उपदेशसें चलता है, और जो जैनमतके शास्त्र हैं, वे सर्व इसही श्रीमहावीर नगवंत के उपदेशानुसार रचे गये है यह श्रीमहावीर नगवंतका संपूर्ण वृत्तांत देखना होवे, तदा आवश्यक सूत्रवृत्ति कल्पसूत्र वृत्ति तथा श्रीमहावीर चरितादि ग्रंथोंसें जान लेनां.

इति श्रीतपगछीय मुनिश्रीगणि मणिविजय तछिष्य मुनिबुद्धिविजय तछिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्वादर्शे श्रीऋषनादि महावीर पर्यंत पूर्ववृत्तांत निरूपण नाम एकादश परिछेदः संपूर्णः ॥ १ ॥

अथ द्वादशः परिछेद प्रारंजः ॥

यह परिछेदमें श्रीमहावीर जगवानसें लेकर आजकाल पर्यंत कितनाक वृत्तांत लिखते हें. श्रीमहावीर जगवंतके इग्यारह शिष्य मुख्य, और सर्व साधुओंसें वडे हूये, तिनका नाम कहते हें. १ इंद्रिजूति, अर्थात् गौतम स्वामी, २ अग्निजूति, ३ वायुजूति, ४ व्यक्तस्वामी, ५ सुधर्मस्वामी, ६ मंडिकपुत्र, ७ मौर्यपुत्र, ८ अवकंपित, ९ अचलन्राता, १० मेतार्य, ११ प्रजास, यह इग्यारह वडे शिष्य श्रीमहावीर जगवंतके हूए और सर्व शिष्य तो चौदह हजार साधु हूये, परंतु चौदह हजारसें कदेजी अधिक नही हूये, और साध्वी उत्तीस हजार हूइ, तथा श्रेणिक, उदायन, कोणक, उदायी, वत्सदेशका उदायन, चेटक, नवमल्लिक क्षत्रियजातिके, नवलेठिक क्षत्रिय जातिके, उज्जयनका राजा चंडप्रद्योत, आमलकल्पा नगरीका स्वेत नामे राजा, पोलासपुरका विजय राजा, क्षत्रिय कुंडकानंदिवर्द्धन राजा, वीतनय पट्टनका उदायनराजा, दशार्णपुरका दशार्णन्नद्र राजा, पावापुरीका हस्तिपाल राजा, इत्यादि अनेक राजे श्रीमहावीर जगवंतके सेवक थे, अर्थात् श्रावक थे, और आनंद, कामदेव, संख, पुष्कली प्रमुख श्रावक, और जयंती, रेवती, सुलसा प्रमुख श्राविका तो वाव्यांही थे, तिन श्रावकोंमें एक सत्यकी नामा अविरति, सम्यग्दृष्टि श्रावक हूया हे, तिसका संबंध आवश्यक शास्त्रमें इसी तरें लिखा हे. सो कहते हें:-

विशालानगरीके चेटक राजाकी उठी पुत्री सुज्येष्टा नामा कुमारी कन्यानें दीक्षा लीनी थी अर्थात् जैनमतकी साध्वी हो गइ थी, वो किसी अवसरमें उपाश्रयके अंदर सूर्यके सन्मुख आतापना लेती थी, इस अवसरमें पेढाल नामा परीव्राजक अर्थात् संन्यासी विद्या सिद्ध था, सो आपनी विद्या देनेके वास्ते पात्र पुरुषको देखता था, और उसका विचार असा था कि- यदि ब्रह्मचारणीका पुत्र होवे, तो सुनाय होवेगा. तब तिस संन्यासीने रात्रिमें सुज्येष्टाको नग्न पणे शीतकी आतापना लेतीको देखा, तब धुंध विद्यामें अंधकारमें विमोह अर्थात् अचेत करके उसकी योनिमें अपने वीर्यका संचार करा, तिस अवसरमें सुज्येष्टाको ऋतुधर्म आ गया था, इस वास्ते गर्न रह गया तब सायकी साध्वीयोंमें गर्नकी चर्चा होने लगी, पीछे अति

शय ज्ञानीने कहा कि सुज्येष्ठानें विषयजोग किसीसें नहीं करा. अरु तिस विद्याधरका सर्व वृत्तांत कहा. तब सर्वकी शंका दूर हो गइ पीछें समयमें सुज्येष्ठाके पुत्र जन्मा, तब तिस लडकेकों श्रावकनें अपने घरमें ले जाकें पाला, तिसका नाम सत्यकी रक्खा, एकदा समय सत्यकी साध्वीयोंके साथ श्रीमहावीर जगवानके समवसरणमें गया, तिस अवसरमें एक कालसंदीपक नामा विद्याधर, श्रीमहावीरकों वंदना करकें पूछने लगा कि मुजकों किससें जय है, तब जगवंत श्रीमहावीर स्वामीने कहा कि, यह जो सत्यकी नामा लडका है. इससें तुजकों जय है. तब कालसंदीपक सत्यकीके पास गया, अवज्ञासें कहने लगा कि अरे तूं मुजकों मारेगा? ऐसें कह कर जोरावरीसें सत्यकीकों अपने पगोंमे गेरा तब तिसके पिता पेढालने सत्यकीका पालन करा, और अपणी सर्व विद्यायोंकों सत्यकीकों दे दइ. सत्यकी महारोहिणी विद्याका साधन कर रहा था, इस सत्यकीका यह सातमा जव रोहिणी विद्या साधनमें लग रहा था. रोहिणी विद्याने इस सत्यकी के जीवकों पांच जवमें तो जानसें मार गेरा और छठे जवमें छे महीने शेष आयुके रहनेंसें सत्यकीके जीवने विद्याकी इछा न करी परंतु इस सातमें जवमें तो तिस रोहिणी विद्याकों साधनेका आरंज करा तिसकी विधि लिखते हैं.

अनाथ मृतक मनुष्यकों चितामें जलावे और गीले (आले) चमडेकों शरीर उपर लपेटके पगके वामें अंगूठेसें खमा होकर जहां लग वो चिताका काष्ट जले तहां लग जाप करे, इस विधिसें सत्यकी विद्या साध रहा था, उहां कालसंदीपक विद्याधरजी आ गया, और चितामें काष्ट प्रक्षेप करकें सात दिन रात्री तक अग्नि बुजने न दीनी, तब सत्यकीका सत्य देखकें रोहिणी देवी आप प्रगट हो कर कालसंदीपककों कहने लगी कि मत विघ्न करः—क्योंकि मैं इस सत्यकीके सिद्ध होने वाली हूं, इस वास्ते मैं सिद्ध हो गइ हूं, तब रोहिणी देवीने सत्यकीकों कहा, कि मैं तेरे शरीरमें किधरसें प्रवेश करुं? सत्यकीने कहा मेरे मस्तकमें हो कर प्रवेश कर, तब रोहिणीने मस्तकमें हो कर प्रवेश करा, तिस्सें मस्तकमें खमा पम गया तब देवीने तुष्टमान हो कर तिस मस्तककी जगां तीसरे नेत्रका आकार बना दीया तबसे सत्यकी तीन नेत्रवाला प्रसिद्ध हूआ. पीछें सत्यकीने शोचा कि पेढालने मेरी माता राजाकी कुमारी बेटीकों विगाना है, ऐसा

शोच कर अपने पिता पेढालकों मार दीया, ... रुड (जयानक) रख दीया, क्योंकि जिसने अपना पिता मार दीया उससे और जयानक कौन है? पीछें सत्यकीने विचारा कि कालसंदीपक मेरा वैरी कहां है? जब सुना कि कालसंदीपक अमुक जगामें है, तब सत्यकी तिसके पास पहुंचा, फेर कालसंदीपक विद्याधर तहांसें जाग निकला तोजी स त्यकी तिसके पीछें लगा, तब कालसंदीपक हेठ ऊपर जागता रहा, परंतु सत्यकीने तिसका पीछा न छोमा, फेर कालसंदीपकने सत्यकीके जुलाने वास्ते तीन नगर बनाये, तब सत्यकीने विद्यासें तीनो नगरजी जलादीये तब कालसंदीपक दोमके लवणसमुद्रके पाताल कलशमें चला गया, सत्य कीने तहां जा कर कालसंदीपककों मार माला, तिस पीछे सत्यकी विद्या धर चक्रवर्त्ति हूआ, तीन संध्यामें सर्व तीर्थंकरोंकों वंदना करकें नाटक क रता हूआ, तब इंद्रने सत्यकीका नाम महेश्वर दीया, तिस महेश्वरके दो शिष्य हूये, एक नंदीश्वर, दूसरा नादीया, तिनमें नादीया तो विद्यासें बै लका रूप बना लेता था, और तिस ऊपर चढके महेश्वर अनेक क्रीमा कुतूहल करता था, महेश्वर श्रीमहावीर जगवंतका अविरति सम्यग्दृष्टि श्रावक था, परंतु बमा जारी कामीथा और ब्राह्मणोंके साथ उसका बमा जारी वैर हो गया, तब विद्याके बलसें सैकमों ब्रह्मणोंकी कुमारी कन्या योंकों विषय सेवन करकें बिगामा, और लोक तथा राजा प्रमुखकी बहु बे टीयोंसें काम क्रीमा करने लगा, परंतु उसकी विद्यायोंके जयसें उसे कोइ कुछ कहता नहीं था, जेकर कोइ मनाजी करता था, सो मारा जाताथा, महेश्वरने विद्यासें एक पुष्पक नामा विमान बनाया तिसमें बैठके जहां इछा होती तहां चला जाता था, ऐसें उसका काल व्यतीत होता था, एकदा प्रस्तावें महेश्वर उज्जयन नगरमें गया. तहां चंडप्रद्योतकी एक शिवा नामा राणीकों छोमके दूसरी सर्व राणीयोंके साथ विषय जोग करा, औ रजी सबलोकोंके बहु बेटीयोंकों बिगामनां शुरु करा, तब चंडप्रद्योतकों बमी चिंता हूइ, अरु विचाराकी कोइ ऐसा उपाय करीयें कि जिस्सें इस महेश्व रका विनाश (मरणां) हो जावेः—परंतु तिसकी विद्याके आगें किसीका कोइ उपाय नही चलताया, पीछें तिस उज्जयन नगरमें एक उमा नामा वेश्या बमी रूपवंत रहतीथी, उसका यह कोलथा कि जो कोइ इतना धन

मुझे देवे, सो मेरेसें भोग करे, जो कोइ उसके कहे मूजब धन देता था सो उसके पास जाता था, एक दिन महेश्वर उस वेश्याके घर गया, तब तिस उमावेश्याने महेश्वरके सन्मुख दो फूल करे एक विकशा हूआ दूसरा मिचा हूआ, तब महेश्वरने विकशे फूल (खिडे फूलकी) तर्फ हाथ पसारा तब उमावेश्याने मिचा हूआ कमल महेश्वरके हाथमें दीया, और कहा कि यह कमल तेरे योग्य है, तब महेश्वरने कहा क्यों यह कमल मेरे योग्य है ? तब उमानें कहा इस मिचे हूए कमल समान कुमारी कन्या है, सो तुझकों भोग करने वास्ते वल्लभ है, और मैं खिले हूए फूल समान हों, तब महेश्वरने कहा तूंभी मेरेकों बहुत वल्लभ है, ऐसा कह कर महेश्वर उसके साथ भोग भोगने लगा, और तिसकेही घरमें रहने लगा, तिस उमाने महेश्वरकों अपनें वशमें कर लीया उमाका कहनां महेश्वर उल्लंघन नहीं कर सकता था, ऐसें जब कितनाकि काल व्यतीत हूआ तब चंडप्रद्योतने उमाकों बुलायके उसकों बहुत धन, और आदर सन्मान देकर कहा कि तूं महेश्वरसें यह पूछेकिः—ऐसाभी कोइ काल है कि जिस कालमें तुमारे पास कोइभी विद्या नहीं रहती ? तब उमाने महेश्वरकों पूर्वोक्त रीतिसें पूछा, तब महेश्वरने कहा कि जब मैं मैथुन सेवता हूं तब मेरे पास कोइभी विद्या नहीं रहती, अर्थात् कोइ विद्या चलती नहीं. तब उमाने चंडप्रद्योतराजाकों सर्व कथन सुना दीया, तब राजाने उमासें कहा कि जब महेश्वर तेरेसें भोग करेगा, तब हम इसकों मारेंगे तब उमाने कहाकि मुझकों मत मारना तब चंडप्रद्योतने कहाकि तुझकों नहीं मारेंगे? पीछें चंडप्रद्योतनें अपने सुभटोंकों गुप्त (छाना) उमाके घरमें छिपा रक्खा, जब महेश्वर उमाके साथ विषय सेवनमें मग्न होकें दोनोका शरीर परस्पर मिलकें एक शरीरवत् हो गया, तब राजाके सुभटोंने दोनों हीको काट डाला, और अपने नगरका उपद्रव दूर करा, पीछें महेश्वरकि सर्व विद्यायोंने उसके नंदीश्वर शिष्यकों अपना अधिष्ठाता बनाया जब नंदीश्वरने अपने गुरुकों इस विटंबनासें मारा सुना, तब विद्यासें उज्जयनके उपर शिला बनाइ, और कहने लगाकि हे मेरे दासो! अब तुम कहां जाउगे ? मैं सबकों मारुगा क्योंकि मैं सर्वशक्तिमान् ईश्वर हूं किसीका मारा मैं मरता नहीं हूं, मैं सदा अविनाशी हूं,यह सुनकर बहुत लोक डरे और

सर्वलोक विनती करके पगोंमें पडे, अरु कहने लगेकि, हमारा अपराध क्षमा करो, तव नंदीश्वरनें कहाकि जे कर तुम उसी अवस्थामें अर्थात् उमाकी जगमें महेश्वरका लिंग स्थापन करके पूजो, तो में तुमको जीता छोडेगा, तव लोकोने तैसेही वना कर पूजा करी, पीछे नंदीश्वरनेजी ऐसे ही गाम गाममें नगर नगरमें लोकोंकों डरा डरा करके मंदिर वनवाये तिनमें पूर्वोक्त आकारे जगमें लिंग स्थापन कराके पूजा कराई, यह श्रीमहावीरके अविरतिसम्यगदृष्टि श्रावक महेश्वरकी उत्पत्ति है.

तथा श्रीमहावीर स्वामीके विद्यमान होते राजगृह नगरमें श्रेणिकराजाकी चेलणा राणीके कोणिक नामा पुत्र हूआ, परंतु कोणिकका श्रेणिकके साथ पूर्व जन्मका वैर था, इस वास्ते कोणिक राजानें श्रेणिक राजाकों पकरुके पिंजरेमें दे दीया और राज सिंहासन ऊपर आप वैठा, जव अपनी माता चेलनाके मुखसें सुना कि श्रेणिककों जैसा तूं वल्लज था, ऐसा कोइजी पुत्र वल्लज नहीं था, क्योंकि जव तूं वालक था तव तेरी अंगुली पक गइ थी, तिस्सें तुजे रात्रिमें निंद नहीं आती थी, और तूं सर्व रात्रिमें रोता था, तव तेरा पिता तेरी अंगुलीकों अपने मुखमें ले कर चूसके उसकी राध रुधिरकों थुंकता था, इत्यादि तेरे पितानें तेरे साथ राग (स्नेह) करा है, और तुमने उस उपकारके वदले अपने पिताकों पिंजरेमें वंद कीया, वाह रे पुत्र! तेरी लायकी! यह सुनके कोणिक राजा वडा दुःखी हूआ, और रोता हूआ आप कुहाडा लेकर दोडा कि में अपने हाथसें पिताका पिंजरा काटके वाहिर निकालूंगा और राजसिंहासन ऊपर वैठाउंगा परंतु जव श्रेणिकराजाने देखा कि कोणिक कुहाडा लेकर दौडा आता है, तव विचार करा कि क्याजाने मुजे किस कुमोतसें मारेगा? तव श्रेणिक राजा कुछ खाके मर गया, जव कोणिकने आकर देखा कि पिता तो मर गया तव वहुत रोया पीटा, महाशोकसें दाह लग गया, जव राजगृहके अंदर वाहिर श्रेणिकके मकान महिल सिंहासनादि देखता है, तव वका दिलगीर (शोकवंत) होता है, इस दुःखसें राजगृह नगरकों छोडके चंपा नगरी अपनी राजधानी वनाके रहने लगा, तोजी पिताके वियोगसें सेवा न करनेंसें दुःखी रहने लगा, तव प्रधान (मंत्रीयों)नें मता करके एक छाना पुस्तक वनवाया, उसमें ऐसा कथन लिखवाया किः—जो पुत्र अपने

मरे हूये पिताकों पिंड प्रदान वस्त्र जोडे, आभूषण, शय्या प्रमुख ब्राह्मणोंकों देता है, वो सर्व श्राद्धादि सामग्री उसकें पिताकों प्राप्ति होते हैं, तिस पुस्तककों धुंयेके मकानमें रखकें धुंयेसें पुराने पुस्तकवत् बना दीया, तब कोणिक राजाकों सुनाया कोणिकनेजी पिताकी जक्तिवास्ते पिंड प्रदानादि बहुत धन लगा करके करा, तबहीसें मृतकोंकों पिंड प्रदान श्राद्धादि प्रवृत्त हूये हैं. क्योंकि जगत्में प्रसिद्ध है कि कर्ण राजाने श्राद्ध चलाये हैं, सो इसी कोणिक राजाका नाम लोकोने कर्ण राजा करकें लिखा है.

तथा अन्निका सुत जैनाचार्य अत्यंत वृद्ध गंगा नदी उतरतेकों केवल ज्ञान हूआ, और जहां प्रयाग है, तहां शरीर छोडकें मोक्ष हूआ, तिस जगे देवताओंने तिस मुनिकी महिमा करी तबसें प्रयाग तीर्थकी मानता चली, अर्थात् प्रयाग तीर्थकी उत्पत्ति हूई, महावीर स्वामीके वखतमें जो स्वरूप राजादि व्यवहारोंका था तथा जैनमतका जहां तक विस्तार था सो आवश्यकसूत्र वीरचरित्र तथा बृहद्कल्पादि शास्त्रोंसें जान लेना.

तथा श्रीमहावीरके समयमें राजगृह नगरीका राजा श्रेणिक तिसके पीछें कोणिक हूआ जिसने श्रेणिककें मरनेंसें पीछें चंपानगरीकों अपनी राजधानी बनाई तिसका बेटा उदायी हूआ जिनके कोणिककें मरे पीछें उदासीसें चंपाकों छोडके पाडली पुत्र नगर (पटना) बसाकें अपनी राजधानी बनाया.

श्रीमहावीर जगवंत विक्रम संवतसें (४७०) वर्ष पहिलां पावापुरी नगरीमें हस्तपाल राजाकी पुराणी राजसजामें बहत्तर वर्षकी आयु जोगके कार्त्तिक वदि अमावास्याकी रात्रिके पीछले प्रहरमें पद्मासन अर्थात् चोंकडी मारे हूये, शरीरादि चार कर्मकी सर्व उपाधी छोडकें निर्वाण हूये (मोक्ष पहूंचे) तिस समयमें गौतमस्वामी और सुधर्म स्वामी यह दो बडे शिष्य जीतेथे, शेष नव बडे शिष्य तो श्रीमहावीरजीके जीते हूयेही एक मासका अनशन करकें केवलज्ञान पाके मोक्ष चले गये थे, यह इग्यारहही बडे शिष्य जातिके तो ब्राह्मण थे, चार वेद और छ वेदांगादि सर्वशास्त्रोंके जानकार थे, इन इग्यारहोके चौतालीससे (४४००) विद्यार्थी थे.

इनोंका संबंध ऐसें है.किः– जब जगवंत श्रीमहावीरजीकों केवलज्ञान हूआ, तिस अवसरमें मध्यपापा नगरीमें सोमल नामा ब्राह्मणके यज्ञ करनेका आरंभ करा था, और सर्व ब्राह्मणोंनें श्रेष्ठ विद्वान् जान कर इन पु

वोक्त गोतमादि इग्याराही आचार्योंको वुलायाथा तिस समय तिस यज्ञ पाडाके ईशान कूणमें महासेन नामा उद्यानमें श्रीमहावीर जगवंतका स मवसरण रत्न सुवर्ण रोप्यमय क्रमसें तीन गढ संयुक्त देवोने वनाया ति सके वीचमें बेठके जगवंत श्रीमहावीरस्वामी उपदेश करने लगे, तव आका श मार्गके रस्ते सेंकडो विमनोमें वैठे हूये चार प्रकारके देवता जगवंत श्रीम हावीरके दर्शनकों और उपदेश सुननेकों आते थे, तव तिनों यज्ञ करने वाले ब्राह्मणोने जाना कि यह देव सव हमारे करे हूये यज्ञकी आहुतीयों लेने आये हैं, इतनेमें देवता तो यज्ञ पाडेकों गेरुके जगवानके चरणोंमें जाकर हाजर हूये, तथा और लोकजी श्रीमहावीर जगवंतका दर्शन क रकें और उपदेश सुनकें गोतमादि पंडितोंके आगें कहने लगे, किः—आज इस नगरके वाहिर सर्वज्ञ सर्वदर्शी जगवान् आया है, नतो उसके रूपकी कोई तारीफ कर सक्ता हैं, अरु न कोई उसके उपदेशसें संशय रहता है, और लाखों देवता जिनोके चरणोंकी सेवा करते हैं, ताते हमारें वडे जा ग्योदय हैं, जो असे सर्वज्ञ अरिहंत जगवंतका हमने दर्शन पाया असा जव गोतमजीने सुना कि सर्वज्ञ आया तव मनमें ईर्ष्याकी अग्नि जरुकी अरु असे कहने लगा किः—मेरेसें अधिक और सर्वज्ञ कोन हे? में आज इसका सर्वज्ञ पणा उमा देता हूं? इत्यादि गर्व संयुक्त जगवान् श्रीमहावी रके पास पहुंचा, और जगवान्कों चोत्तिश अतिशय संयुक्त देखा, तथा दे वता, इंद्र, मनुष्योंसे परिवृत देखा, तव वोलनेकी शक्तिसें हीन हुवा जगवं तके सन्मुख जाके खमा हो गया तव जगवंतने कहा किः— हे गोतम इंद्र जूति! तूं आया? तव गोतमजीने मनमें विचाराकि जो मेरा नामजी ये जा नते हैं, तोजी में सर्व जगे प्रसिद्ध हूं मुझे कोन नहीं जानता? तो इन्ने मेरा नाम लीया, इस वातमें कुछ आश्चर्य और सर्वज्ञ इसकों नहीं मानता हूं, किंतु मेरे मनमें जो शंशय हे तिसकों दूर कर देवें तो में इसकों सर्वज्ञ मानुं, तव जगवंतने कहा, हे गोतम! तेरे मनमें यह संशय हेः—जो जीव हे कि नही? और यह संशय तेरेकों वेदोंकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ हे, वो श्रुतियां यह हें सो कहते हें.

"विज्ञानघनएवेतेज्योजूतेज्यः समुछाय तोन्येवानुविनश्यति न प्रेत्य सं ज्ञास्तीतीत्यादि" इस्से विरुद्ध यह श्रुति हेंः— सवे अयमात्मा ज्ञानमय

इत्यादि इन श्रुतियोंका अर्थ जैसा तेरे मनमें जासन होता है, तैसाही प्रथम श्रुतिका अर्थ कहते हैं. नीलादि रूप होनेसें विज्ञानही चैतन्य है, चैतन्य विशिष्ट जो नीलादि तिस्सें जो घन सो विज्ञानघन सो विज्ञानघन इन प्रत्यक्ष परिछियमान रूप पृथ्वी, अप, तेज, वायु, आकाश, इन पांच जूतोंसें उत्पन्न हो कर फेर तिनके साथही नाश हो जाता है. अर्थात् जूतोंके नाश होनेसें उनके साथ विज्ञानघनकाजी नाश हो जाता है, इस हेतुसें प्रेत्यसंज्ञा नही अर्थात् मरके फेर परलोकमें और कोई नर नारकका जन्म नहीं होता, इस श्रुतिमें जीवकी नास्ती सिद्ध होती है, और दूसरी श्रुति कहती है किः—यह आत्मा ज्ञान मय अर्थात् ज्ञान स्वरूप है, इस्सें आत्माकी सिद्धी होती है, अब ये दोनो श्रुतियां परस्पर विरोधी होनेसें प्रमाण नहीं हो शक्ती हैं, और वहुत परस्पर आत्माके स्वरूपमें विरोधी मत है, कोइ कहता है किः—एतावानेवपुरुषो, यावानिंद्रियगोचरः॥ जद्रे वृकपदं पश्य, यद्वदंत्यबहुश्रुता ॥ १ ॥ इस श्लोकका अर्थ चार्वाकमतमें लिख आये हैं यहजी एक आगम कहता है, तथा "न रूपं जिक्षवः पुजलः" अर्थात् आत्मा अमूर्त्ति है, यहजी एक आगम कहता है, तथा "अकर्त्तानिर्गुणोजोक्ताआत्मा" अर्थः—अकर्त्ता सत्व, रज, अरु तम, इन तीनों गुणोंसें रहित सुख दुःखका जोगने वाला आत्मा है, यहजी एक आगम कहता है. अब इनमेंसें किसकों सच्चा और किसकों जूठा माने? परस्पर विरोधी होनेसें सर्व तो कुछ सच्चे होही नहीं शके हैं, तथा युक्ति प्रमाणसेंजी मरके परलोक जाने वाली आत्मा सिद्ध नहीं होती है, ताते हे गौतम! यह तेरे मनमें संशय है, अब इसका उत्तर कहता हूं कि तूं वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है इत्यादि श्रीगौतमजीके संशयकों दूर करा, ये सर्व अधिकार मूलावश्यक और श्रीविशेषावश्यकसें जान लेनां, मैंनें ग्रंथके जारी और गहन हो जानेके सववसें यहां नहीं लिखा क्योंकि सव इग्यारह गणधरोंके संशय दूर करनेका कथनके चार हजार श्लोक हैं. पीछें जव गौतमजीका संशय दूर हो गया, तव गौतमजी पांचसो अपने विद्यार्थीयोंके साथ दीक्षा लेकें श्रीमहावीर जगवंतका प्रथम शिष्य हुआ.

इसीतरें इंद्रजूतिकों दीक्षित सुनके दूसरा जाई अग्निजूति वडे अनिमानमें जर कर चला और कहने लगा किः— मेरे जाईकों इंद्रजालीयेंने छलसें

जीतके अपना शिष्य बना लीया, तो मैं अबी उस इंद्रजालीयेकों जीतके अपने जाईकों पीछा लाता हूं, इस विचारसें जगवंत श्रीमहावीरजीके पास पहुंचा, जब जगवानकों देखा, तब सर्व आड बाड जूल गया मुखसें बोलनेकीजी शक्ती न रही और मनमें बडा अचंजा हूआ क्योंकि ऐसा स्वरूप न उसने कबी सुनाथा और न कबी देखा था, तब जगवानने उसका नाम लीया, अग्निजूतिने विचारा कि यह मेरा मानजी जानते हैं, अथवा में प्रसिद्ध हूं, मुझे कौन नहीं जानता है? परंतु मेरे मनका संशय दूर करे तो मैं इसकों सर्वज्ञ मानुं, तब जगवंतने कहा हे अग्निजूति! तेरे मनमें यह संशय है कि:– कर्म है किंवा नहीं ? यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदोंसें हूआ है, क्योंकि तूं वेद पदोंका अर्थ नहीं जानता है, वे वेदपद यह हैं- "पुरुषएवेदंग्निंसर्वंयद्भूतं यच्च जाव्यं उतामृतत्वस्येशानोयदन्नेनाऽतिरोहति यदेजति यन्नैजति यद्दूरेयदुअंतिके यदंतरस्य यडुत सर्वस्यास्य बाह्यतइत्यादि" इस्सें विरुद्ध यह श्रुति हैः– "पुण्यःपुण्येनेत्यादि" और इनका अर्थ तेरे मनमें ऐसा जासन होता है कि:– पुरुष अर्थात् आत्मा एव शब्द अवधारणके वास्ते है, सो अवधारण कर्म और प्रधानादिकोंके व्यवच्छेद वास्ते हैं, "इदं सर्वं" अर्थात् यह सर्व प्रत्यक्ष वर्त्तमान चेतन अचेतन वस्तु "ग्निं" यह वाक्यालंकारमें है, यद्भूतं अर्थात् जो पीछे हूआ है और आगेकों होवेगा जो मुक्ति तथा संसार सो सर्व पुरुष आत्मा ब्रह्महीहैं, तथा उतशब्द अतिशब्दके अर्थमें है और अपि शब्द समुच्चय अर्थमें है. अमृतत्वस्य अमरणजावका अर्थात् मोक्षका ईसानःप्रजुः अर्थात् स्वामी (मालक) है, "यदिति यच्चेति" च शब्दके लोप होनेसें यदिति बना इसका अर्थ जो अन्न करके वृद्धिकों प्राप्त होता है, "यदेजति" जो चलता है ऐसे पशुआदिक और जो नहीं चलता है ऐसें पर्वतादिक और जो दूर हैं मेरु आदिक "यतुअंतिके" उ शब्दअवधारणार्थमें है जो समीप अर्थात् नेडे है, सो सर्व पूर्वोक्त पदार्थ पुरुष अर्थात् ब्रह्मही है, इस श्रुतिसें कर्मका अजाव होता है. अरु दूसरी श्रुतिसें तथा शास्त्रांतरोंसें कर्मसिद्ध होते हैं, तथा युक्तिसें कर्मसिद्ध होते नहीं क्योंकि अमूर्त्ति आत्माको मूर्त्ति कर्म लगते नहीं, इस वास्ते में नहीं जानता कि कर्म है वा नहीं यह संशय तेरे मनमें है, ऐसा कह कर जगवानने वेदश्रुतियोंका अर्थ

बराबर करके तिसका पूर्वपक्ष खंमन करा, सो विस्तारसें मूलावश्यक तथा विशेषावश्यकसें जानलेनां. अग्निनूतिनेनी गौतमवत् दीक्षालीनी॥२॥

अग्निनूतिकी दीक्षा सुनके तीसरा वायुनूति आया परंतु आगे दोनो नाईयोंके दीक्षा ले लेनेसें इसकों विद्याका अभिमान कुछनी न रहा, मनमें विचार कराकि मैं जा कर नगवानकों वंदना (नमस्कार) करुंगा ऐसा विचारके, आया आ कर नगवंतकों वंदना (नमस्कार) करी तव नगवंतने कहा तेरे मनमें संशयतो है परंतु क्षोनसें तूं पूछ नही शक्ता है. संशय यह है किः—जो जीव है सो देहही है और यह संशय तेरेकों विरुद्ध वेदपदश्रुतिसें हूआ है, और तूं तिन वेदपदोंका अर्थ नहीं जानता है वे वेद पद ये हैंः—"विज्ञानघनइत्यादि" पहिले गणधरकी श्रुति जाननी इस्सें देहसें न्यारा जीव (आत्मा) सिद्ध नहीं होता है, और इस श्रुतिसें विरुद्ध यह श्रुति है,:—"सत्येन लन्यस्तपसा ह्येपब्रह्मचर्येण नित्यज्योतिर्मयो हिशुद्धोयं पश्यंति धीरायतयः संयतात्मानइत्यादि" इस श्रुतिसें देहसें निन्न आत्मा सिद्ध होती है, इस वास्ते तुऊकों संशय है, पीछें नगवानने यह सर्व संशय दूर करे, तव तीसरा वायुनूतिनेनी अपने पांच सौ विद्यार्थीयोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ३ ॥

वायुनूतिकी तरें शेप आठ गणधर क्रमसें आये, तिसमें चौथा अव्यक्तजी आया तिनके मनमें यह संशयथा किः—पांचनूत हैं कि नही ? यह संशय विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ, वे परस्पर विरुद्ध श्रुतियों यह हैंः— "स्वप्नोपम वै सकलमित्येव ब्रह्मविधिरंजसाविज्ञेयइत्यादीनि" तथा इससें विरुद्ध यह श्रुति है—"द्यावापृथिवी जनयन्देवइत्यादि" तथा पृथिवीदेवता, आपो देवता, इत्यादीनि इनका अर्थ तेरे मनमें ऐसा नासन होता हैः—अर्थ—स्वप्न सरीखा वैनिपात अवधारणार्थे संपूर्ण जगत है "एप ब्रह्मविधि" अर्थात् यह परमार्थ प्रकार है, अंजसा सीधेन्यायसें जाननां योग्य है, यह श्रुति पांचनूतका अनाव कहती हैं, और श्रुतियां पांचनूतकी सत्ताकों कहतीयों हैं, इस वास्ते तेरेकों संशय है, तेरे मनमें यहनी है किः—युक्तिसें पांचनूत सिद्ध नहीं होते हैं. पीछें नगवानने इसका पूर्वपक्ष खंडन करा वेद पदोंका यथार्थ अर्थ कराये, यह अधिकार उक्त ग्रंथोंसें जान लेनां यह सुन कर चौथा वायुनूतिनेनी अपने पांचसौ शिष्योंके साथ दीक्षा लीनी ॥४॥

तब पांचमा सुधर्म नामा गणधर आया इसकाजी उसी तरें सर्वाधि कार जानलेनां, यावत् तेरे मनमें यह संशय है किः—मनुष्यादि सर्व जैसें इस जवमें हैं तैसेंही अगले जन्ममें होते हैं ? कि मनुष्य कुछ थोर पशुआदिजी बन जाते हैं ? यह संशय तेरेकों परस्पर विरुद्ध वेद श्रुतियोंसें हूआ है सो वेद श्रुतियों यह हैः—"पुरुपोवैपुरुपत्वमश्नुते पशवः पशुत्वं इत्यादीनि" यह श्रुति जैसा इस जन्ममें पुरुप स्त्री आदि हैं वे पर जन्ममेंजी ऐसेही होवेंगे इस्सें विरुद्ध यह श्रुति हैं—" श्रगालोवैएपजाहते यः सपुरीपोदह्यतइत्यादि इन सर्व श्रुतियोंका जगवानने अर्थ करकें संशय दूर करा, तब अपने पांच सो शिष्यके साथ दीक्षा लीनी ॥ ५ ॥

तिस पीछें उठा मंडिक पुत्र आया, तिसके मनमें यह संशय था, कि बंध मोक्ष है, वा नही है ? यह संशयजी विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ है, सो श्रुतियों यह हैः—"स एप विगुणोविजुर्न बध्यते, संसरति वा न मुच्यते मोचयति वा ॥ एप वाह्यमज्यंतरं वा वेदइत्यादीनि" इस श्रुतिका ऐसा अर्थ तेरे मनमें जासन होता है, "एपअधिकृतजीवः" अर्थात् यह जीव जिसका अधिकार है "विगुणः" अर्थात् सत्वादि गुण रहित सर्वगत सर्वव्यापक पुण्य पाप करकें इसकों बंध नहीं होता है, और संसारमें ज्रमणजी नहीं करता है, और कर्मोंसें छूटताजी नहीं है, बंधके अजाव होनेसें इसरेकों कर्मबंधसें छुडाताजी नहीं है, इस कहनेसें आत्मा अकर्ता है, सोई कहता है।— यह पुरुप अपणी आत्मासें बाहिर महत् अहंकारादि और अज्यंतर स्वरूप अपना जानता नही क्योंकि जानना ज्ञानसें होता है, और ज्ञान जो है,सो प्रकृतिका धर्म है, और प्रकृति अचेतन है, बंध मोक्ष नही इस श्रुतिसें बंध मोक्षका अजाव सिद्ध होता है, अब इस्सें विरुद्ध श्रुति यह है सो कहते हैंः—"नही वैसशरीरस्य, प्रिया प्रिययोरपहतिरस्ति अशरीरं वा वसंतं प्रिया प्रिये नस्पृशत इत्यादीनि" इसका अर्थ कहते हैंः— सशरीरस्य अर्थात् शरीर सहितकों सुख दुःखका अजाव कदापि नहीं होता हैं, तात्पर्य यह है किः—संसारी जीव सुख दुःखसें रहित नहीं होता है, और अमूर्त्त आत्माकों कारणके अजावसें सुख दुःख स्पर्श नहीं कर शके हैं, इस श्रुतिसें बंध मोक्ष सिद्ध होते हैं, तथा तेरे मनमें यहजी बात हैः— किः—युक्तिसेंजी बंध मोक्ष सिद्ध नहीं होते हैं इत्यादि संशय कह कर जग

वान्ने तिसके पूर्वपक्षोंको खंडन करके संशय दूर करा, तब मंडितपुत्र साढे तीनसौ विद्यार्थियोंके साथ दीक्षित नया ॥ ६ ॥

७ तिस पीछें सातवां मोर्यपुत्र आया तिसके मनमें यह संशय था किः–देवता हैं किंवा नही है? यह संशय परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंसें हूआ जो श्रुतियों यह हैंः–सएपयज्ञायुधीयजमानोंज सात्वर्गलोकं गछति इत्यादि श्रुतियों स्वर्ग तथा देवताओंकी सिद्धि करतीयों हैं. इस्सें विरुद्ध श्रुति यह हैः–अपामसोमं अमृता अनूम, अगमामज्योतिर्विंदामदेवान् ॥ किंनूनम स्मान्तृणवदरातिः किमुधूर्त्ति रमृतमर्त्यस्येत्यादीनि " तथा कोजानाति मा योपमान् गीर्वाणानिं इयमवरुणकुवेरादीन् इत्यादि" इनका ऐसा अर्थ तेरे मनमें जासन होता है किः– पाणीको पीते हूये एतावता सोमलताका रस पीते हूये अमृत (अमरण) धर्मवाले हम हूये हैं, ज्योति स्वर्ग और देवताको हम नही जानते हैं तथा देवता हम हूये हैं, यहजी नहीं जान ते देवता तृणेकी तरें हमारा क्या कर शके हैं? यह श्रुति अजाव प्रति पादन करती है, और यह जावकी प्रतिपादक है, " धूर्त्तिजराअमृतमर्त्य स्य" अमृतत्व प्राप्त पुरुपको क्या कर सक्ती है? इन श्रुतियोंका यथार्थ अर्थ करके और तिसका पूर्वपक्ष खंडन करके जगवंतने इनका संशय दूर करा, तब यहजी साढे तीनसो गत्रोंके साथ दीक्षित जया ॥ ७ ॥

८ तिस पीछें आठमा अकंपिक आया उसके मनमेंजी वेदकी परस्पर विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसें नरकवासी है कि नही? यह संशय उत्पन्न हूआ था, वो परस्पर विरुद्ध श्रुतियों लिखते हैंः–"नारको वै एप जायतेयः शूद्रान्न मश्नाति इत्यादि" इसका अर्थः– यह ब्राह्मण नारक होवेगा जो शूद्रका अन्न खाता है, इस श्रुतिसें नरक सिद्ध होता है, तथा "नह वैप्रेत्यनरके नारकाः संतीत्यादि सुगमार्थः इस श्रुतिसें नरकका अजाव सिद्ध होता है इनका अर्थ करकें और पूर्वपक्ष खंडन करकें जगवान्ने तिसका संशय दूर करा तब अकंपिकनेजी तीन सौ गत्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ ८ ॥

९ तिस पीछें नवमा अचलब्राता आया तिसकोंजी परस्पर वेदकी विरुद्ध श्रुतियोंके पदोंसें पुण्य पाप है, कि नही? यह संशय था, सो वेद पद यह हैंः–"पुरुपएवेदंग्निसर्वं इत्यादि दूसरे गणधर वत् इस्सें विरुद्धपद यह हैंः–"पुण्य पुण्येन कर्मणा जवति, पापं पापेन कर्मणा जवति इत्यादि" इस्सें

पुण्यपाप सिद्ध होते हैं, यह संशयभी भगवान्ने दूर करा; तब य
तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षित भया ॥ ९ ॥

१० तिस पीछे दशमा मेतार्य आया उसकोंभी वेदकी परस्पर वि
श्रुतियोंसें यह संशय हूआ था, कि:–परलोक है किंवा नहीं है? वो श्रुति
यह हैं:–"विज्ञानघन इत्यादि प्रथम गणधरवत् अभाव कथक श्रुति
जननी" तथा "स वैअयं आत्मा ज्ञानमय इत्यादि" परलोक भाव प्र
पादक श्रुति जाननी इनका तात्पर्य भगवान्ने कहा तब मेतार्यजीने
निःशंक होके तीन सौ छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी ॥ १० ॥

११ तिस पीछे इग्यारहवा प्रभास नामा गणधर आया, तिसके मनमें
वेद श्रुतियोंके परस्पर विरुद्ध होनेसें यह संशय था कि निर्वाण है कि न
है? वो श्रुतियां यह हैं:–"जरामर्यं वा एतत्सर्वं यदग्नि होत्रं" इससें वि
रुद्ध श्रुति यह है:–"द्वेब्रह्मणी वेदितव्ये परमपरं च तत्र परं सत्यं ज्ञा
मनंतंब्रह्मेति" इनका यह अर्थ तेरी बुद्धिमें भासन होता है कि:–अ
होत्र जो है, सो जीव हिंसा संयुक्त है, और जरा मरणका कारण है
अरु वेदमें अग्नि होत्र निरंतर करणां कहा है, तब ऐसा कौनसा का
है, कि जिसमें मोक्ष जानेका कर्म करीयें? इस वास्ते आत्माकों मोक्ष
(निर्वाण) कदापि नहीं हो शक्ता है, अरु दूसरी श्रुति मोक्ष प्राप्तिभी क
हती है, इस वास्ते संशय हूआ है इसका जब भगवान्ने उत्तर दे के निः
क करा तब तीनसो छात्रोंके साथ दीक्षा लीनी.

यह श्रीमहावीर भगवंत के वैशाखशुदि दशमीके दिनमध्यपापा नग
रीके महासेन वनमें (४४००) शिष्य हूये. तिस पीछे राजपुत्र श्रेष्ठिपुत्रादि
तथा राजपुत्री श्रेष्ठिपुत्री राजाकी राणीयां आदिकने दीक्षा लीनी. तथा
जब भगवंत श्रीमहावीरजी पावापुरीमें मोक्ष गये, तिसही रात्रिमें इंद्र
भूति अर्थात् गौतमगणधरकों केवल ज्ञान हूआ, तब इंद्रोंने निर्वाण म
होत्सव करा, और सुधर्मास्वामीजीकों श्रीमहावीर स्वामीजीकी गद्दी ऊपर
बैठाया श्रीगौतमजीकों गद्दी इस वास्ते न हूइ की केवलज्ञानी पुरुष
कोइ पाट ऊपर नहीं बैठता है, क्योंकि केवली तो जो पूछे उसका उत्तर
अपने ज्ञानसेही देता है, परंतु ऐसा नहीं कहता है कि:–मैं अमुक तीर्थ
करके कहनेसें कहता हूं, इस वास्ते केवलज्ञानी पाट ऊपर नहीं बैठता

हे, जेकर बैठे तो तीर्थंकरका शासन दूर हो जावे, यह कभी हो न शक्ती जो अनादि रितिकों केवली भंग करे, इस वास्ते श्रीगोतमजी केवल ज्ञानी था सो गद्दी ऊपर नही बैठे और सुधर्म स्वामी बैठे.

१ श्रीसुधर्म स्वामी पचास वर्ष तो गृहस्थावास (घरमें) रहे, और तीस वर्ष श्रीमहावीर भगवंतकी चरण सेवा करी, जब श्रीमहावीर निर्वाण हूआ, तिस पीछें बारां वर्ष तक छद्मस्थ रहे, और आठ वर्ष केवली रहे, क्योंकि श्रीमहावीर अर्हतके पीछें केवली हो कर बारां वर्ष श्रीगोतमजी जीते रहे, और श्रीगोतमजीके निर्वाण पीछें श्रीसुधर्म स्वामीजीकों केवलज्ञान हूआ, केवली हो कर आठ वर्ष जीते रहे, श्रीसुधर्म स्वामीजीकी सर्वायु एक सो (१००) वर्षकी थी, सो श्रीमहावीरजीके पीछें बीश वर्ष मोक्ष गये. १

२ श्रीसुधर्म स्वामी के पाट ऊपर श्रीजंबूस्वामी बैठे सो राजगृह नगरका वासी श्रीऋषभदत्तश्रेष्ठिकी धारिणी नामा स्त्रीसें जन्मेये निनानवे क्रोड सोनइये और आठ स्त्रीयोंकों छोड कर दीक्षा लेता भया, शो लां वर्ष गृहस्थ वासमें रहे, बीश वर्ष व्रतपर्याय, और चौतालीस वर्ष केवलपर्याय पालके श्रीमहावीरके निर्वाण पीछें चौशठमें वर्ष मोक्ष गये.

यह श्रीजंबूस्वामीके पीछें भरतक्षेत्रमें दश बातें विछेद हो गइ तिसका नाम लिखते हैं- १ मनःपर्याय ज्ञान, २ परमावधि ज्ञान, ३ पुलाक लब्धि, ४ आहारकशरीर, ५ क्षपकश्रेणि, ६ उपशमश्रेणि, ७ जिनकल्पमुनिकी रीति, ८ परिहारविशुद्धिचारित्र, तथा सूक्ष्मसंपराय और यथाख्यात, यह तीन तरेके संयम, ९ केवलज्ञान, १० मोक्ष होनां, यह दश वस्तु विछेद हो गइ, श्रीमहावीर भगवंतके केवली हूये पीछें जब चौदह वर्ष बीते थे, तब जमाली नामा, प्रथम निन्हव हूआ, और शोलां वर्ष पीछें तिष्य गुप्त नामा दूसरा निन्हव हूआ. श्री जंबुस्वामीकी आयु एंसी वर्षकी थी.

३ जंबूस्वामीके पाट ऊपर प्रभवा स्वामी बैठे. तिनकी उत्पति ऐसें हैः- विंध्याचल पर्वतके पास जयपुर नामा पत्तन था. तिसका विंध्य नामा राजा था तिसके दो पुत्र थे एक बडा प्रभव दूसरा छोटा प्रभु, विंध्यराजाने किसी कारणसें छोटे पुत्र प्रभुकों राज तिलक दे दीया, तब बडा बेटा प्रभव गुस्सें हो कर जयपुर पत्तनसें निकल कर विंध्याचलकी विषम जगामें गाम बसा कर रहने लगा. और तालुघाटन, अवस्वापिनी,

रस्ते लूंटनादि, अनेक तरेंकी चोरीयांसें अपने परिवारकी आजीविका क
रता था, एक दिन पांच सो चोरोंकों ले कर राजगृह नगरमें जंबूजीके घ
रकों लूटनें आया, तहां जंबूस्वामीने तिसकों प्रतिबोध करा, तब तिसने
पांच सो चोरोंके साथ दीक्षा श्रीजंबूजीके साथ लीनी. इत्यादि जंबूजीका
और प्रजवजीका अधिकार जंबूचरित्र तथा परिशिष्ट पर्वादि ग्रंथांसें जान
लेनां. प्रजव स्वामी तीस वर्ष गृहस्थ पर्याय, चौतालीश वर्ष व्रतपर्याय,
तथा एकादश वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्व पंचाशी वर्षकी आयु पूरी करकें
श्री महावीरसें पंचहत्तर वर्ष पीछें स्वर्ग गया.

४ श्रीप्रजवस्वामीके पाट ऊपर श्रीशय्यंजव स्वामी बैठे, जिनोने म
नक साधुके वास्ते दशवैकालिक सूत्र बनाया, तिनकी उत्पत्ति ऐसें हैः
एकदा प्रस्तावें प्रजवस्वामीनें रात्रिमें विचार कराकि मेरे पाट ऊपर कौन
बैठेगा? पीछें ज्ञान बलसें अपणे सर्वसंघमें पाट योग्य कोइ न देखा, तब
परदर्शनीयांकों ज्ञान बलसें देखने लगा तब राजगृह नगरमें शिय्यंजव ब्रा
ह्मणकों यज्ञ करते हूयेकों अपने पाट योग्य देखा, पीछें प्रजव स्वामी वि
हार करकें सपरिवार राजगृह नगरमें आये उहां दो साधुओंकों आदेश
दीयाकि तुम यज्ञ पाडेमें जाकर जिक्षाके वास्ते धर्म लाज कहो, और
यज्ञ करने वालोंकों ऐसे कहोः– " अहोकष्ट महोकष्ट तत्वं विज्ञायते
नहि " तब तिन साधुओनें पूर्वोक्त गुरुका कहना सर्व कीया, जब ब्राह्म
णोनें " अहोकष्ट " इत्यादि सुना और तिस यज्ञ वाडेमें शिय्यंजव ब्रा
ह्मणने यज्ञ दीक्षा लीनी थी, तिसने यज्ञ वाडेके दरवाजेमें खडेनें अहो
कष्टं इत्यादि मुनियोंका कहनां सुनके विचार करनें लगा कि ऐसा उप
शम प्रधान साधु होते हें, इस वास्ते यह असत्य (जूठ) नहीं बोलते
हें, इस्सें मनमें संशय होगया, तब उपाध्यायकों पूछा कि तत्त्व क्या है?
तब उपाध्यायने कहा कि चार वेदमें जो कथन करा है, सो तत्त्व है,
क्योंकि वेदोंके शिवाय और कोइ तत्त्व नहीं है? तब शिय्यंजवने कहा
कि तूं दक्षिणाके लोजसें मुझकों तत्त्व नहीं बतलाता है, क्योंकि राग
द्वेष रहित, निर्मम, निःपरिग्रह, शांत, दांत, महांत मुनियोंका कहनां जूठ
नहीं होता है, और तूं मेरा गुरु नहीं तेनें तो जन्मसें इस जगत्कों ठग
नांही सीखा है, इस वास्ते तूं शिक्षाके योग्य है इस वास्ते यातो मुझे

तत्व कह दे? नहीं तो तलवारसें तेरा शिर छेद करूंगा ऐसें कहके जब मियानसें तलवार काढी तब उपाध्यायने प्राणांत कष्ट देखकें कहा हमारे वेदोंमेंजी ऐसें लिखा है और हमारी आम्नायजी यही है, जब हमारा कोइ शिर छेदे, तब तत्त्व कहनां, नहीं तो नहीं कहनां तिस वास्ते मैं तुम कों तत्त्व कह देता हूं कि इस यज्ञ स्थंजकें हेठ अर्हंतकी प्रतिमा स्थाप न करी है, और नीचेही तिसकों प्रछन्न हो कर पूजते हैं, तिसके प्रजावसें यज्ञके सर्व विघ्न दूर हो जाते हैं, जेकर यज्ञस्थंजके नीचे अर्हंतकी प्रतिमा न राखें तो महातपा सिद्ध पुत्र और नारद ये दोनो यज्ञकों विध्वंस कर देते हैं, पीछें उपाध्यायने यज्ञ स्थंज उखाडके अर्हंतकी प्रतिमा दिखाइ और कहा कि यह प्रतिमा जिस देवकी है, तिस अर्हंतका कहा हुआ धर्म जीवदया रूप तत्त्व है, और यह जो वेद प्रतिपाद्य यज्ञ हैं, वे सर्व हिंसात्मक रूप होनेसें विडंवना रूप हैं, परंतु क्या करें? जेकर हम ऐसें न करें तो हमारी आजीविका नहीं चलती है, अब तूं तत्त्व जानले और मुऊकों छोड दे अरु तुं परमार्हत होजा क्योंकि मैंनें अपने पेटके वास्ते तुऊकों वहुत दिन वहकाया है, तब शिय्यंजवने नमस्कार करकें कहा तूं यथार्थ तत्त्वके प्रकाश करनेसें सच्चा उपाध्याय है, ऐसा कह कर शिय्यंजवने वुद्दमान हो कर यज्ञकी सामग्री जो सुवर्णपात्रादि थे, वे सर्व उपाध्यायकों दे दइ, और प्रजवस्वामीके पास जा कर तत्त्वका स्वरूप पूछ कर दीक्षा ले लीनी, शेष इनका वृत्तांत परिशिष्टपर्व ग्रंथसें जान लेनां. शिय्यंजवस्वामी अठाइस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, इग्यारह वर्ष सामान्य साधु व्रत में रहे, और तेइस वर्ष युगप्रधानाचार्य पदवीमें रहे, इसीतरें सर्वायु बासठ वर्ष जोगकें श्रीमहावीर जगवंतके अठानवे वर्ष पीछें स्वर्ग गये.

५ श्रीशिय्यंजवस्वामीके पाट उपर यशोजद्र स्वामी वैठे, सो वावीश वर्ष गृहस्थावासमें रहे, और चौदह वर्ष व्रत पर्यायमें रहे अरु पंचास वर्ष तक युगप्रधान पदवीमें रहे, इसीतरें सर्वायु छयासी वर्षकी जोगकें श्रीमहावीरसें एक सौ अडतालीश (१४८) वर्ष पीछें स्वर्गमें गये.

६ श्रीयशोजद्रस्वामीके पाट उपर एक संजूतविजय और दूसरे श्रीजद्रवाहु, यह दोनो वैठे, तिनमें संजूतविजय तो वेतालीस वर्ष तक गृहस्थ रहे, और चालीश वर्ष व्रत पर्याय तथा आठ वर्ष युगप्रधान पदवी, स

र्षायु नवे वर्ष जोगके स्वर्गमें गये, और नद्रबाहुस्वामीनें १ आवश्यक निर्युक्ति, २ दशवैकालिकनिर्युक्ति, ३ उत्तराध्ययन निर्युक्ति, ४ आचारांगकी निर्युक्ति, ५ सूत्रकृदंग निर्युक्ति, ६ सूर्यप्रज्ञप्ति निर्युक्ति, ७ ऋषिनाषित नि र्युक्ति, ८ कल्प निर्युक्ति, ९ व्यवहार निर्युक्ति, १० दशा निर्युक्ति, ये दश निर्युक्तियां और १ कल्प, २ व्यवहार, ३ दशाश्रुतस्कंध, यह नवमे पूर्वसें उ द्धार करके बनाये और एक बहुत बडा नद्रबाहु नामे संहिता ज्योतिष शास्त्र बनाया, उपसर्गहर स्तोत्र बनाया, जैनमतीयों उपर बहुत उपकार करा इनही नद्रबाहुजीका सगा नाइ वराहमेहर हूआ, वो पहिलें तो जैनमतका साधु हूआ था, फेर साधुपणां छोडके वराही संहिता बनाइ और जो वराहमिहर विक्रमादित्यकी सन्नाका पंडित था, वो दूसरा वरा हमिहर था, संहिता कारक वो नहीं हूआ, इसका संपूर्ण वृत्तांत परिशिष्ट पर्वसें जान लेनां. श्रीनद्रबाहुस्वामी गृहस्थावासमें पेंतालीश वर्ष रहे, स त्तरे वर्ष व्रतपर्याय, अरु चौदह वर्ष युगप्रधान, सब मिल कर बहुत्तर वर्ष की आयु नोगकें श्रीमहावीरसें एकसो सत्तर (१७०) वर्ष पीछें स्वर्ग गये.

७ यह श्रीसंनूतविजय अरु नद्रबाहुस्वामीके पाट ऊपर श्रीस्थूलनद्र स्वामी बेठे इनका बहुत वृत्तांत है, सो परिशिष्टपर्वग्रंथसें जान लेनां, १ प्रनवस्वाम, २ शिय्यंनवस्वामी, ३ यशोनद्रस्वामी, ४ संनूतविजय, ५ नद्रबाहुस्वामी, ६ स्थूलनद्र, यह छहों आचार्य चौदह पूर्वके वेत्ता थे, श्रीस्थूलनद्रस्वामी तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे, चोवीश वर्ष व्रतपर्याय, अरु पेंतालीस वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्वायु निनानवें वर्षकी नोगकें श्री महावीरके पीछे (२१५) वर्ष स्वर्ग गये श्रीमहावीरसें दोसो चौदह वर्ष पीछें आषाढाचार्यके शिष्य तीसरे निन्हव हूये.

स्थूलिनद्रके वखतमें नवनंदोंका एक सौ पंचावन (१५५) वर्षका राज्य उछेद करकें चाणाक्य ब्राह्मणने चंद्रगुप्तराजाकों राजसिंहासन उ पर बेठाया, और चंद्रगुप्तके संतानोंनें एक सौ आठ वर्ष तक राज्य कीया चंद्रगुप्त मोरपालका बेटा था, इस वास्ते चंद्रगुप्तका मौर्यवंश क हते हैं. यह चंद्रगुप्त जैनमतका धारक श्रावक राजा था, यह चंद्रगुप्त तथा नवनंदका वृत्तांत देखनां होवे, तदा परिशिष्ट पर्व, उत्तराध्ययन वृत्ति तथा आवश्यक वृत्तिसें देख लेनां.

श्री स्थूलभद्रस्वामीके पीछे उपरले चार पूर्व, प्रथम संहनन, प्रथम संस्थान, व्यवछेद हो गये, तथा श्रीमहावीरसें दोसौ वीस (२२०) वर्ष पीछे अश्वमित्र नामा चौथा क्षणिकवादि निन्हव हूआ, और श्री स्थूलभद्रजीके समयमें बारां वर्षका दुर्भिक्ष (काल) पडा उस समयमें चंद्रगुप्तका राज था. तथा श्री महावीरके पीछे (२२८) वर्ष व्यतीत हूए गंग नामा पांचमा निन्हव हूआ.

८ श्री स्थूलभद्रके पीछे श्री स्थूलभद्रजीके दो शिष्य एक आर्यमहागिरि, और दूसरा सुहस्ति सूरि, आठमें पाट उपर बैठे, तिसमें आर्यमहागिरिके शिष्य १ बहुल, २ बलिस्सह, फेर बलिस्सहका शिष्य श्री उमास्वातीजी जिसनें तत्त्वार्थादि सूत्र रचे हैं, और उमास्वातीका शिष्य श्यामाचार्य जिसने प्रज्ञापना (पन्नवणासूत्र) बनाया, यह श्यामाचार्य श्रीमहावीरसें तीन सौ छिहत्तर वर्ष पीछें स्वर्ग गया, और आर्य महागिरिजी तीस वर्ष गृहवासमें रहे, चालीस वर्ष व्रत पर्याय अरु तीस वर्ष युगप्रधान पदवी, सर्वायु एक सौ वर्षकी भोगके स्वर्ग गया.

और दूसरा आठमें पाटवाला सुहस्तिसूरि, जिसनें एक भिखारीकों दीक्षा दीनी वो भिखारी काल करके चंद्रगुप्तका बेटा बिंदुसार और बिंदुसारका बेटा अशोक और अशोकका बेटा कुणाल तिस कुणालका बेटा संप्रति राजा हूआ, तिस संप्रति राजाने जैनधर्मकी बहुत वृद्धि करी, क्यां कि कल्प सूत्रके प्रथम उद्देसेमें श्रीमहावीरके समयमें अबकी निसबत बहुत थोडे देशोंमें जैनधर्म लिखा है, मारवाड. गुजरात, दक्षिण, पंजाब वगैरे देशोमें जो जैनधर्म है, सो संप्रति राजाहीसें फैला है, यद्यपि इस कालमें जैनी राजाके न होनेसें जैनधर्म सबे जगें नही, परंतु संप्रतिराजाके समयमें बहुत उन्नति पर था. क्योंकि संप्रति राजाका राज्य मध्यखंड और गंगापार और सिंधु पारके सर्व देशोंमें था. संप्रति राजाने अपने नौकरोंको जैनके साधुओंका वेष बना कर अपने सेवक राजाओंके जो शक. यवन. फारसादि देशों थे, तिन देशोंमें भेजे. तिनोने तिन राजाओंको जैनके साधुओंका आहार विहार आचारादि सर्व बताया, और समझाया पीछेसे साधुओंका विहार तिन देशोंमें कराकर ओकोंको जैन धर्मी करा. और संप्रति राजाने (९९०००) निनानवे हजार जीर्ण (पु

राने) जिनमंदिरोंका उद्धार कराया अर्थात् पुरानें टूटोफूटोंकों नवा ब नाया, और छवीस हजार (२६०००) नवीन जिनमंदिर वनवाये, और सो ने, चांदी, पीतल, पाषाण, प्रमुखकी सवा क्रोड प्रतिमा वनवाइ, तिसके वनवायें मंदिर नमोल, गिरनार, शत्रुंजय, रतलाम, प्रमुख अनेक स्था नोंमें खडे हमनें अपनी आंखोसें देख हें, और संप्रतिकी वनवाइ जि नप्रतिमा तो हमने सेंकमो देखी हें, इस संप्रति राजाका वृत्तांत परि शिष्ट पर्वादि ग्रंथोंसें समग्र जान लेनां.

तिसही सुहस्ती सूरि आचार्यने उजयनकी रहने वाली जद्रसेठानीका पुत्र अवंती सुकुमालकों दीक्षा दीनी. और जहां उस अवंती सुकुमालने काल करा था, तिस जगे तिस अवंती सुकुमालके महाकाल नाम पुत्रने जिनमंदिर वनवाया, और तिस मंदिरमें अपने पिताके नामसें अवंति पार्श्वनाथकी मूर्त्ति स्थापन करी, कालांतरमें ब्राह्मणोने आपना जोर पा कर तिस मंदिरमें मूर्त्तिकों हेठ दाव कर उपर महादेवका लिंग स्थापना करकें महाकाल (महादेवका) मंदिर प्रसिद्ध कर दीया, पीछे जव राजा विक्रम उजयनमें राजा हूआ, तिस अवसरमें कुमुदचंद्र अर्थात् सिद्धसे न दिवाकर नामा जैनाचार्यने कल्याणमंदिर स्तोत्र वनाया, तव शिवका लिंग फटकर वीचमेंसुं पूर्वोक्त पार्श्वनाथकी मूर्त्ति फिर प्रगट हूइ.

इसका संवंध ऐसा हे किः–विद्याधर गछमें स्कंदिलाचार्य तिनका शिष्य वृद्धवादि आचार्य था, तिस अवसरमें उजयनका राजा विक्रमादित्य था, तिसका मंत्री कात्यायन गोत्री देवऋषिनामा ब्राह्मण तिसकी देवसिका नामा स्त्री, तिनका पुत्र सिद्धसेन सो विद्याके अभिमानसें सारे जगतके लोकोंकों तृणवत् (घासफुसशमान) समझता था, और ऐसा जानता था किः–मेरे समान वुद्धिमान् कोइभी नहीं, और जो मुझकों वादमें जींत लेवे, तो मैं उसकाही शिष्य वन जाउंगा पीछें तिसने वृद्धवादीकी वहुत कीर्त्ति सुनी उनके सन्मुख जाने वास्ते सुखासन ऊपर वेठके भृगु कछ (भरौंच) की तरफ चला जाता था, तिस अवसरमें वृद्धवादीजी रस्तेमें सन्मुख आता हूआ मिला, तव आपसमें दोनोका आलाप संलाप हूआ पीछें सिद्धसेनजीने कहा कि मेरे साथ तुम वाद करो, तव वृद्धवादीने कहा कि वाद तो करुं, परंतु इस जंगलमें जींते हारेका कहनेवाला कोइ शाक्षी

नहीं, तव सिद्धसेनजीने कहा कि यह जो गौ चरानेवाले गोप हैं, येही मेरे तुमारे साक्षी रहे, ये जिसकों कहदेंगे हारा सो हारा, तव वृद्धवादीने कहा वहुत अछा, येही साक्षी रहे, अव तुम वोलो तव सिद्धसेनजीने वहुत संस्कृत नाषा वोली और चुप करी तव गोपोंने कहा यह तो कुछनी नहीं जानता, केवल ऊंचा वोलके हमारे कानोंकों पीडा देता है, तव गोप कहने लगे हे वृद्ध ! तूं वोल ? पीछें वृद्धवादी अवसर देख कें कछा वांध कर तिन गोपोंकी नाषामें कहने लगे, और थोडे थोडे कूदनेनी लगे, जो छंद उच्चारा सो कहते हैं. "नविमारिये नविचोरियें, परदारागमणनिवारियें ॥ थोवाथोवंदाइयें, सग्गिमट्टेमट्टेजाइयें ॥ १ ॥ फेरनी वोले और नाचने लगे ॥ छंद ॥ कालो कंवल नीचोवट्ट, छाछें नरिउ दीवडो थट्ट ॥ एवरु पडीउ नीले जाड, अवरकिसोछे सग्ग निलाड ॥ २ ॥ यह सुनकर गोप वहुत खुशी हूये और कहने लगेकि वृद्धवादी सर्वज्ञ है, इसने कैसा मीठा कानोंकों सुखदायी हमारे योग्य उपदेश कहा, और सिद्धसेन तो कुछ नहीं जानता तव सिद्धसेनजीने वृद्धवादीकों कहा कि हे नगवन्! तुम मुजकों दीक्षा देकें अपना शिष्य वनाउ क्योंकि मेरी प्रतिज्ञा थी के जो गोप मुझे हारा कहेंगे, तो मैं हारा, और तुमारा शिष्य वनूंगा यह सुनकर वृद्धवादीने कहा कि नृगुपुरमें राजसनाके वीच तेरा मेरा वाद होवेगा, परंतु यह गोपोंकी सनामें वादही क्या है ? तव सिद्धसेनने कहा मैं अवसर नहीं जानता, तुम अवसरके ज्ञाता हो, इस वास्ते मैं हारा पीछें वृद्धवादीने राजसनामें उसको पराजय करा, तव सिद्धसेनने दीक्षा लीनी, गुरुने उनका नाम कुमुदचंद्रजी दीया, पीछें जव आचार्य पदवी दीनी, तव फिर सिद्धसेन दिवाकर नाम रखा. पीछें वृद्धवादी तो और कहीकों विहार कर गये, और सिद्धसेन दिवाकर अवंती (उज्जयनमें) गये, तव उजयनका संघ सन्मुख आया, और सिद्धसेन दिवाकरकों सर्वज्ञ पुत्र असा विरुद दीया, असा विरुद वोलते हूए अवंती नगरीके चौंकमें लाये, तिस अवसरमें राजाविक्रमादित्य हाथी ऊपर चढा हूआ सन्मुख मिला तव राजानें सर्वज्ञ पुत्र असा विरुद सुनके तिनकी परिक्षा वास्ते हाथी ऊपर वैठेहीनें मनसें नमस्कार करा तव आचार्यने धर्मलान कहा, तव राजाने पूछाकि विनाही वंदना करे, आप मेरेकों धर्मलान क्यों कर कहा ? क्या यह

धर्मलाभ बहुत सस्ता है ? तब आचार्यने कहा यह धर्मलाभ कोडचिंता मणि रत्नोंसेंभी अधिक है. जो कोइ हमकों वंदना करता हैं, उसकों हम धर्मलाभ कहते हैं. और ऐसेंभी नहीं, जो तुमने हमकों वंदना नहीं करी ! तुमनेभी अपने मनसें वंदना करी, तो मनही सर्व कार्योंमें प्रधान है, इस वास्ते हमने धर्मलाभ कहा है, और तुमनेंभी मेरी परीक्षा वास्तेही मनमें नमस्कार करा है, तब विक्रमराजा तुष्टमान हो कर हाथीसें नीचें उतर कर सर्वसंघकी समक्ष वंदना करी, और एक क्रोड अशर्फी दीनी परंतु आचार्यने अशर्फीयों नही लीनी क्योंकि वे त्यागी थे, और राजाभी पीछा नहीं लेता, तब आचार्यकी आज्ञासें संघपुरुषोने जीर्णोद्धारमें लगा दीनी, राजाके दफतरमें तो ऐसा लिखा है ॥श्लोक॥ धर्मलाभ इतिप्रोक्ते, दूरादुच्छ्रि तपाणये ॥ सूरये सिद्धसेनाय, ददौकोटिं धराधिपः ॥ १ ॥ श्रीविक्रमराजाके आगें सिद्धसेन दिवाकरने ऐसेभी कहा था कि ॥गाथा॥ पुन्ने वास सहस्से, सयंमि वरिसाण नवनवइकलिए ॥ होइ कुमर नरिंदो, तुहविक्कम राय सारिच्छो ॥ १ ॥ अन्यदा सिद्धसेन चित्रकूटमें गये तहां बहुत पुराने जिनमंदिरमें एक बडा मोटा स्थंभ देखा, तब किसीकों पूछाकि यह स्थंभ किसतरांका है ? यह सुन कर किसीने कहा कि यह स्थंभ औषध द्रव्यमय जलादि करकें अभेद्य वज्रवत् है. इस स्थंभमें पूर्वाचार्योंनें बहुत रहस्य विद्याके पुस्तक स्थापन करे है, परंतु किसीसें यह स्थंभ खुलता नहीं, यह सुन कर सिद्धसेन आचार्यने तिस स्थंभकों सूंघा तिसकी गंधसें तिसकी प्रतिपक्षी औषधीयोंका रस छांटा तिसें वो स्थंभ कमलकी तरें खिड गया, तब तिसमें पुस्तक देखा तिनमेंसुं एक पुस्तक ले कर वांचा, तिसके प्रथम पत्रमें दो विद्या लिखी पाइ, एक सरसों विद्या और दूसरी सुवर्णविद्या, तिसमें सरसों विद्या उसको कहते है, कि जो काम पडे तब मंत्रवादी जितनें सरसोंके दाने जपके जलाशयमें गेरे उतनेही अश्वार वेतालीश प्रकारके आयुधों सहित बाहिर निकलके मेदानमें खडे हो जाते हैं, तिनोंसें शत्रुकी सेना भंग हो जाती है, पीछे जब वो कार्य पुरा हो जाता है, तब अश्वार अदृश्य हो जाते हैं, और दूसरी हेमविद्यासें विनामेहनतके जितना चाहे, उतना सुवर्ण हो जाता है, ये दो विद्या सिद्धसेननें लेइनी, पीछे जब आगे वांचने लगा तब

स्थंत्त मिल गया सर्व पुस्तक बीचमें रह गये और आकाशसें देव वाणी हूइ कि तूं इन पुस्तकोंके वाचने योग्य नहीं आगे मत वांचनां, वांचेंगा तो तत्काल मर जायगा तब सिद्धसेनने डरके विचार करा कि दो विद्या मिली सोही सही. पीछें चित्रोमसें विहार करके पूर्वदेशमें कुमार पुरमें गये, तहां देवपाल राजा था तिसकों प्रतिबोधके पक्का जैनधर्मी करा, तहां वो राजा सिद्धांत श्रवण करता है, जब ऐसे कितनाक काल व्यतीत हूआ, तब एकदा समय राजा छाना आया, और आंसुसें नेत्र भर कर कहने लगा कि:–हे भगवन्! हम बडे पापी हैं, क्योंकि आपकी ऐसी उत्तम गोष्ठिका रस नहीं पीसक्के हैं? कारण कि हम बडे संकटमें पडे हैं, तब आचार्यने कहा तुमकों क्या संकट हूआ? राजा कहने लगा कि बहुत मेरे वैरीराजे एकिठे हो कर मेरा राज्य छीना चाहते हैं, तब फेर आचार्यने कहा कि हे राजन्! तूं आकुल व्याकुल मत हो, जब मैं तेरा साहायक हां तो फेर तुझे क्या चिंता है? यह बात सुन कर राजा बहुत राजी हूआ, पीछें आचार्यने राजाकों पूर्वोक्त दोनो वियायोंसें समर्थ कर दीया, तिन वियायोंसें परदल भंग हो गया, तिनका डेरा डंडा सर्व राजानें लूंट लीया, तब राजा आचार्यका अत्यंत भक्त हो गया उस्सें आचार्य सुखोंमें पडके शिथिलाचारी हो गया यह स्वरूप वृद्धवादीजीनें सुना, पीछें दया करकें तिनका उद्धार करने वास्ते तहां आये, दरवाजे आगें खडे हो कर कहला भेजा कि एक बूढा वादी आया है, तब सिद्धसेननें बुला कर अपनें आगे बैठाया, वृद्धवादी सर्व अपना शरीर वस्त्रसें ढांक कर बोले:–"अणफुल्लियफुल्लमतोमहिं, मारोवामो मिहिंमणकुसुमेहिं ॥ अच्चिनिरंजणंजिण, हिंमहिकाइवणेणवण ॥१॥ इस गाथाकों सुणकर सिद्धसेनने विचारभी करा परंतु अर्थ न पाया तब विचार करा कि क्या यह मेरे गुरु वृद्धवादी हैं? जिनके कहेका मैं अर्थ नही जानता हूं पीछें जब बार बार देखने लगा तब जाना कि यह मेरा गुरु है पीछे नमस्कार करकें क्षामापन मांगा, और पूर्वोक्त श्लोकका अर्थ पूछा, तब वृद्धवादी कहने लगे "अणफुल्लियेत्यादि" अणफुल्लियफूल्ल प्राकृतके अनंत होनेंसें अप्राप्त फूल फलोंको मत तोड, भावार्थ यह है कि योग जो है, सो कल्पवृक्ष है, किस तरें कि जिस योग रूप वृक्षमें यम नियम तो मूल है, और ध्यान रूप बडा स्कंध है, तथा समतापणां, कवि

पणां, वक्तापणां, यश, प्रताप, मारण, उच्चाटन, स्तंभन, वशीकरणादि सिद्धियों कि जो सामर्थ सो फूल है, अरु केवलज्ञान फल है, अभी तो योगकल्पवृक्षके फूलही लगे हैं सो केवल ज्ञानरूप फल करके आगे फ लेंगे इस वास्ते तिन अप्राप्त फल पुष्पोंकों क्यों तोडता है? अर्थात् मत तोम ऐसा भावार्थ है, तथा "मारोवा मोमिहिं" जहां पांच महाव्रत आ रोपा है तिनकों मत मरोम " मणुकुसुमेत्यादि " मनरूप फूलें करी निरं जनं जिनं पूजय (निरंजन जिनकों पूज) " वनात् वनंकिंहिंमसे" राजसे वादि बुरे नीरस फल क्यों करता है? इति पद्यार्थ. तव सिद्धसेनसूरिने गुरु शिक्षाकों अपने शिर उपर धरके और राजाकों पूछके वृद्धवादी गुरुके साथ विहार करा, और निविड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योंसें पूर्वोक्त ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवास हूए पीछे एकदा सिद्धसेनजीने सर्वसंघ एकठा करके कहा कि जेकर तुम कहोतो सर्वागमोंकों में संस्कृतभाषा में करदेउं तव श्रीसंघने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नही जानते थे? जो तिनहोंनें अर्द्धमागधीभाषामें आगम करे? ऐसी वात कहनेसें तुमकों पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसें क्या कहें? तुम आपही जानते हो, तव सिद्धसेनने विचार करके कहा कि, में मौन कर कें वारांवर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेके गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोह रणादि लिंग करकें और अवधूत रूप धारके फिरुंगा, ऐसें कह कर गछकों छोडके नगरादिकोंमें पर्यटन् करने लगे, वारां वर्षके पर्यंतमें उज्जयन नगरी में महाकालके मंदिरमें शेफालिकाके फूलों करकें वस्त्ररंगे पहने हूए सिद्ध सेनजी जाके वेठा तव पूजारी प्रमुख लोकोंने कहा तुम महादेवकों नम स्कार क्यों नही करता? सिद्धसेन तो वोलतेही नहीं हें? ऐसें लोकोंकी परंपरासें सुन कर विक्रमादीत्यनेभी तहां आ कर कहा " क्षीरलिविझो भिक्षोकिमितित्वयादेवोनवंद्यते " तव सिद्धसेनने कहा मेरे नमस्कारसें तु मारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमकों महादुःख होवेगा में इस वा स्ते नमस्कार नही करता हूं तव राजाने कहा लिंग फटे तो फट जानेदो परंतु तुम नमस्कार करों, पीछें सिद्धसेनजी पद्मासन वेठके कहने लगा, सुनो तव द्वात्रिंशका करकें देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥श्लोक॥ इंद्रवज्रवृत्तम् ॥ स्वयंभूवं भूतसहस्रनेत्र, मनेकमेकाक्षरभावलिंगं अव्यक्तम

व्याहत विश्वलोक, मनादिमध्यांतमपुण्यपापं ॥१॥ इत्यादि प्रथमही श्लोक पढनेसें लिंगमेंसे धूआं निकला तब लोक कहने लगे शिवजीका तीसरा नेत्र खुला है, अब इस भिक्षुकों अग्निनेत्रसें जस्म करेगा तबतो विजलीके तेजकी तरें तमतमाट करता प्रथम अग्नि निकला पीछें श्रीपार्श्वनाथजीका विंव प्रगट हूआ, तब वादी सिद्धसेननें कल्याण मंदिरादि स्तवनों करी स्तवन करकें क्षमापन मागा, तब राजा विक्रमादित्य कहने लगाकि हे भगवन्! यह क्या अदृश्यपूर्व देखनेमें आया? यह कौनसा नवीन देव है? और यह प्रगट क्यों कर हूआ? तब सिद्धसेनजीनें अवंतीसुकुमाल और तिसके पुत्र महाकालने पिताके नामसें अवंती पार्श्वनाथका मंदिर और मूर्त्ति वनाइ स्थापन करी, तिसकी कितनेक वर्ष लोकोंने पूजा करी अवसर पाकर ब्राह्मणोंने जिनप्रतिमाकों ढेठ दावके ऊपर यह शिवलिंग स्थापन करा इत्यादि सर्व वृत्तांत कहा, और हे राजन्! इस मेरी स्तुतिसें शासनदेवताने शिवलिंग फाडके वीचमेंसें यह प्रतिमा प्रगट कर दीनी, अब तूं सत्यासत्यका निर्णय कर ले तब विक्रमादित्यने एक सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये, और देवके समक्ष गुरु मुखसें वारां व्रत ग्रहण करे, और सिद्धसेनकी वहुत महिमा करी, अपने स्थानमें गया और वादींद्र (सिद्धसेन दिवाकरकों) संघने जिनधर्मकी प्रजावनासें तुष्टमान होकर संघमें लीया. अरु पूर्ववत् आचार्य वनाया.

एकदा प्रस्तावे सिद्धसेन दिवाकर विहार करते हूये मालवेके देशमें जो ॐकारनामें नगर है, तहां गये, तिस नगरके जक्त श्रावकोनें आचार्यकों विनती करी, जैसें हे जगवन्! इसी नगरके समीप एक गाम था, तिसमें सुंदर नामा राजपुत्र ग्रामणी था, तिसकी दो स्त्रीयां थी, एक स्त्रीके प्रथम पुत्री जन्मी वो स्त्री मनमें खीजी तिस अवसरमें उसकी सौकनजी प्रसूत होने वाली थी, तब तिस वेटीवालीनें विचारा कि इसके पुत्र न होवे, तों ठीक है, क्योंकि नही तो यह पतिकों वल्लज हो जावेगी, तब दाइसें मिलके उससें पैदा हूआ पुत्रकों वाहिर गिरा दीया, और तत्कालका मरा हूआ लमका उसके आगें रख दीया पीछें जौनसा लमका वाहिर गेरा गया था, उसकों कुलदेवीनें गौका रूप करकें पाला जब आठ वर्षका हूआ तब इस ॐकार नगरके शिवजवनके अधिकारी जरटनें देखा और अपना चेला वना लीया. एकदा प्रस्तावे

पणां, वक्तापणां, यश, प्रताप, मारण, उच्चाटन, स्तंजन, वशीकरणादि सिद्धियों कि जो सामर्थ सो फूल हे, अरु केवलज्ञान फल हे, अबी तो योगकल्पवृक्षके फूलही लगे हें सो केवल ज्ञानरूप फल करके आगे फलेंगे इस वास्ते तिन अप्राप्त फल पुष्पोंकों क्यों तोडता हे? अर्थात् मत तोम अैसा जावार्थ हे, तथा "मारोवा मोम्मिहिं" जहां पांच ..१. .. रोपा हे तिनकों मत मरोम " मणुकुसुमेत्यादि " मनरूप फूलें करी निरंजनं जिनं पूजय (निरंजन जिनकों पूज) " वनात् वनंकिंहिंमसे" राजसेवादि बुरे नीरस फल क्यों करता हे? इति पद्यार्थं. तव सिद्धसेनसूरिने गुरु शिक्षाकों अपने शिर उपर धरके और राजाकों पूठके वृद्धवादी गुरुके साथ विहार करा, और निविड चारित्र धारण करा, अनेक आचार्योसें पूर्वोका ज्ञान सीखा, वृद्धवादी स्वर्गवास हूए पीछे एकदा सिद्धसेनजीने सर्वसंघ एकिठा करकें कहा कि जेकर तुम कहोतो सर्वागमोंकों में संस्कृतजाषा में करदेउं तव श्रीसंघने कहा क्या तीर्थंकर गणधर संस्कृत नही जानते थे? जो तिनहोंनें अर्द्धमागधीजाषामें आगम करे? अैसी वात कहनेसें तुमकों पारांचिक नाम प्रायश्चित्त आवेगा हम तुमसें क्या कहें? तुम आपही जानते हो, तव सिद्धसेनने विचार करकें कहा कि, में मौन करकें वारांवर्षका पारांचिक नाम प्रायश्चित्त लेके गुप्त मुख वस्त्रिका, रजोहरणादि लिंग करकें और अवधूत रूप धारके फिरुंगा, अैसें कह कर गछकों छोडके नगरादिकोंमें पर्यटन् करने लगे, वारां वर्षके पर्यंतमें उज्जयन नगरी में महाकालके मंदिरमें शेफालिकाके फूलों करकें वस्त्ररंगे पहने हूए सिद्धसेनजी जाके वेठा तव पूजारी प्रमुख लोकोंने कहा तुम महादेवकों नमस्कार क्यों नही करता? सिद्धसेन तो वोलतेही नहीं हें? अैसें लोकोंकी परंपरासें सुन कर विक्रमादीत्यनेजी तहां आ कर कहा " क्षीरलिलिहो जिक्षोकिमितित्वयादेवोनवंद्यते " तव सिद्धसेनने कहा मेरे नमस्कारसें तुमारे देवका लिंग फट जायगा फेर तुमकों महाफुःख होवेगा में इस वास्ते नमस्कार नही करता हूं तव राजाने कहा लिंग फटे तो फट जानेयो परंतु तुम नमस्कार करों, पीछे सिद्धसेनजी पद्मासन वेठके कहने लगा, सुनो तव द्वात्रिंशका करकें देवका स्तवन करने लगा, तथा हि ॥श्लोक॥ इंद्रवज्रवृत्तम् ॥ स्वयंभूवं जूतसहस्रनेत्र, मनेकमेकाक्षरजावलिंगं अव्यक्त

सेनकी गछ पास खवर करनेकों भेजा, तिस भट्टने सूरियोंकी सभामें आधा श्लोक पढा और वार वार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह हैः–स्फुरंति वादिखद्योताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जव वार वार यह अर्द्ध श्लोक सुना तव सिद्धसेनकी वहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा "नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥" पीछे तिस भट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तव संघकों वडा शोक हूआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संवंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा छेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सव मिलकर एक सौ वर्षकी आयु भोगके श्रीमहावीरसें पीछें दोसौ एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए. ए श्रीसुहस्तीसूरिके पाट ऊपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिवद्ध नामा दो शिष्य वैठे, तिनोंने क्रोडों वार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गछका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्खा, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगछ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट ऊपर श्रीइंद्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्दभिल्लराजाकें उछेद करणेंवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीछे भृगुकछ (भरौंचमें) श्रीआर्य खपुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ, इनका प्रवंध श्रीप्रवंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिभद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रभावक चरित्रमें ऐसा लिखा है किः–श्रीमहावीरसें (४८४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमंगु,वृद्धवादि,पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता ऊपर जिसका प्रवंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोने विक्रमादित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हूए हैंः–जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवंति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याभिषेक हूआ, यह पालक चंडप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीछें श्रेणिकका वेटा कोणिक और कोणिकका वेटा उदायी जव नि.

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग् विजय करा तब रात्रिमें उस ठोटे चेलेकों शिवजक्त व्यंतर देवताने कहा जोगराजाकों देनां, उसकी आंख अच्छी हो जावेंगी, तैसेही करा आंख अच्छी हो गइ तब राजाने सो गाम मंदिरके खरच वास्ते दी. बमा ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोजी उसीनें बनवाया, और हम इस नगरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेंसें हम जिनमंदिर नही पाते हैं, इस वास्ते आपसें विनति करते हैं, कि इस मंदिरसें अधिक हमारा मंदिर यहां बने तो ठीक है, और आप सर्वतरेंसे सामर्थ हो. तिनका वचन सुनकर वादिंद्रने अवंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्रमादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया "दिदृक्षुर्भिक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकःउतागच्छतुगच्छतु॥१॥ तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेंका श्लोक लिखकर जेजा" दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः,उतागच्छतु गच्छतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा जेजा कि जिक्षुक मरां मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुलवाये और पिठानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तब आचार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेंसें बहुत दिन हूये फिरसें आना हूया अब चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, जवताशिक्षिता कुतः ॥ मार्गणौघः समन्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्त्रे, लक्ष्मीकरसरोरुहे ॥ कीर्त्तिःकिंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजातजाड्येव, चतुरंबोधिमज्जनात ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तंडमंडलं ॥ ३ ॥ सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनैः ॥ नारयोलेभिरे पृष्ठं, नवक्षः परयोषितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनकें राजा बहुत खुश हूया, और आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदउं तब आचार्यनें कहा मुकेतो कुछजी नही चाहिता, परंतु उंकार नगरमें चतुर्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें उंचा बनाउ और प्रतिष्ठाजी कराउ तब राजानें वैसेंही करा तब जिनमत प्रजावना देखकें संघ तुष्टमान हूया, इत्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रजावना करते हूए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें जा कर अनशन करके देवलोक गये, तब तहांसें संघने एक जहकों सिद्ध

सेनकी गछ पास खबर करनेकों भेजा. तिस भट्टने सूरियोंकी सभामें आधा श्लोक पडा और वार वार पडताही रहता है. वो आधा श्लोक यह हैः—स्फुरंति वादिखद्योताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब वार वार यह अर्द्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मं त्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा "नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥" पीछे तिस भट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बडा शोक हूआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा छेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सो वर्षकी आयु भोगके श्रीमहावीरसें पीछें दोसो एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए. ए श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोने क्रोडों वार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गछका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्खा, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगछ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसो त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्दभिल्लराजाके उछेद कर णेवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीछे भृगुकछ (भरोंचमें) श्रीआर्य ख पुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिभद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रभावक चरित्रमें ऐसा लिखा है किः—श्रीमहावीरसें (४८४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमंगु,वृद्धवादि,पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोने विक्रमा दित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हूए हैंः—जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवंति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याभिषेक हूआ, यह पालक चंडप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, ति सके पीछें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि.

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग् [illegible]
करा तब रात्रिमें उस छोटे चेलेकों शिवभक्त व्यंतर देवतानें कहा
भोगराजाकों देनां,उसकी आंख अच्छी हो जावेंगी,तेसेंही करा [illegible]
आंख अच्छी हो गइ तब राजाने सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये
बमा ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोजी उसीनें बनवाया, और हम इस न
गरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेंसें हम जिनमंदिर बनावे
नही पातेहें, इस वास्ते आपसें विनति करते हें, कि इस मंदिरसें अधिक ह
मारा मंदिर यहां बने तो ठीक है,और आप सर्वेतरेंसे सामर्थ हो. तिनका
वचन सुनकर वादिंद्रने अवंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक
मादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया "दिदृक्षु
र्भिक्षुरायातस्तिष्ठति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकःउतागछतुगछतु॥१॥
तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेंका श्लोक लिखकर भेजा"
दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः,उतागछतु
गछतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा भेजा कि भिक्षु तु
मकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजानें सन्मुख बुलवाये
और पिछानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तब आ
चार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेंसें बहुत दिन हूये फिरसें आना हूआ अब
चार श्लोक तुम सुनो॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, भवताशिक्षिता कुतः॥ मार्गणौघः
समभ्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्त्रे, लक्ष्मीःकरसरो
रुहे ॥ कीर्तिःकिंकुपिता राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्तिस्तेजातजा
ड्येव, चतुरंभोधिमज्जनात ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्तंडमंडलं ॥ ३ ॥
सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनेः ॥ नारयोलेभिरे पृष्ठं, नवक्षःपर
योषितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनके राजा बहुत खुश हूआ, और
आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदउं तब
आचार्यनें कहा मुझेतो कुछभी नही चाहिता, परंतु "ॐकार नगरमें चतु
र्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें ऊंचा बनाउ और प्रतिष्ठाभी कराउ तब रा
जानें वैसेंही करा तब जिनमत प्रभावना देखके संघ तुष्टमान हूआ, इ
त्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रभावना करते हूए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें
जा कर अनशन करके देवलोक गये, तब तहांसें संघने एक भट्टकों सिद्ध

सेनकी गछ पास खबर करनेकों भेजा, तिस भट्टने सूरियोंकी सभामें आधा श्लोक पढा और वार वार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह है:–स्फुरंति वादिखद्योताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब वार वार यह अर्द्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मं त्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा "नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥" पीछे तिस भट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बडा शोक हुआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा छेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सो वर्षकी आयु भोगके श्रीमहावीरसें पीछें दोसौ एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये. ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए. ए श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बैठे. तिनोंने क्रोडों वार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गछका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्खा, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगछ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्दभिल्लराजाके उछेद कर णेवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीछे भृगुकछ (भरोंचमें) श्रीआर्य ख पुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ. इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिभद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रभावक चरित्रमें ऐसा लिखा है कि:–श्रीमहावीरसें (४८४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमंगु,वृद्धवादि,पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोने विक्रमा दित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हूए है:–जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवंति नगरीमें पालक नामा राजेको राज्याभिषेक हूआ, यह पालक चंडप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, ति सके पीछे श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग्
करा तव रात्रिमें उस छोटे चेलेकों शिवभक्त व्यंतर देवतानें कहा
भोगराजाकों देनां,उसकी आंख अछी हो जावेंगी,तैसेही करा
आंख अछी हो गइ तव राजानें सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते
वडा ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोभी उसीनें वनवाया, और हम
गरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके वलवान् होनेंसें हम जिनमंदिर
नही पातेहैं, इस वास्ते आपसें विनति करते हैं, कि इस मंदिरसें अधिक
मारा मंदिर यहां वने तो ठीक है, और आप सर्वतरेंसे सामर्थ हो. तिनका
वचन सुनकर वादिंद्रने अवंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्र
मादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया "दिदृ
भिक्षुरायातस्तिष्टति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकःउतागछतुगछतु॥१
तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें वदलेंका श्लोक लिखकर भेजा
दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः,उतागछतु
गछतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा भेजा कि भिक्षु तु
मकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तव राजाने सन्मुख बुलवाये
और पिठानके कहने लगा कि गुरुजी वहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तव आ
चार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेंसें वहुत दिन हूये फिरसें आना हूआ अव
चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, भवताशिक्षिता कुतः ॥ मार्गणौघः
समभ्येति, गुणोयाति दिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्रे, लक्ष्मीकरसरो
रुहे ॥ कीर्त्तिःकिंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजातजा
ड्येव, चतुरंभोधिमज्जनात ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तंडमंडलं ॥ ३ ॥
सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनैः ॥ नारयोलेभिरे पृष्ठं, नवक्षःपर
योषितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनकें राजा वहुत खुश हूआ, और
आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदउं तव
आचार्यनें कहा मुझेतो कुछभी नही चाहिता, परंतु ॐकार नगरमें चतु
र्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें ऊंचा वनाउ और प्रतिष्ठाभी कराउ तव रा
जानें वैसेंही करा तव जिनमत प्रभावना देखकें संघ तुष्टमान हूआ, इ
त्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रभावना करते हूए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें
जा कर अनशन करके देवलोक गये, तव तहांसें संघने एक भट्टकों सिद्ध

सेनकी गछ पास खबर करनेकों भेजा, तिस भट्टने सूरियोंकी सभामें आधा श्लोक पढा और वार वार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह हैः—स्फुरंति वादिखद्योताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब वार वार यह अर्द्ध श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा "नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥" पीछे तिस भट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बडा शोक हूआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा छेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु भोगके श्रीमहावीरसें पीछें दोसौ एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए. ए श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोंने क्रोडों वार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गछका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्खा, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगछ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसो त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्दभिल्लराजाकों उछेद करणेवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीछे भृगुकछ (भरोंचमें) श्रीआर्य खपुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिभद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रभावक चरित्रमें ऐसा लिखा है किः—श्रीमहावीरसें (४७४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोंने विक्रमादित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हूए हैंः—जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवंति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याभिषेक हूआ, यह पालक चंडप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीछें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब नि-

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग्...
करा तब रात्रिमें उस छोटे चेलेकों शिवभक्त व्यंतर देवतानें कहा
जोगराजाकों देनां,उसकी आंख अछी हो जावेंगी,तैसेही करा...
आंख अछी हो गइ तब राजाने सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये
बमा ऊंचा जो शिवका मंदिर है सोजी उसीनें बनवाया, और हम
गरमें रहते हें परंतु मिथ्यादृष्टियोंके बलवान् होनेंसें हम जिनमंदिर बनाने
नही पातेहें,इस वास्ते आपसें विनति करते हें, कि इस मंदिरसें अधिक ह
मारा मंदिर यहां बने तो ठीक है,और आप सर्वतरेंसे सामर्थ हों. तिनका
वचन सुनकर वादिंद्रने अवंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर विक्र
मादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया "दिदृ
क्षुर्भिक्षुरायातस्तिष्टति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकःउतागछतुगछतु॥१॥"
तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें बदलेंका श्लोक लिखकर जेजा"
दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः,उतागछतु
गछतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा जेजा कि भिक्षु तु
मकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बुलाये
और पिछानके कहने लगा कि गुरुजी बहुत दिनों पीछें दर्शन दीया तब आ
चार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेंसें बहुत दिन हूये फिरसें आना हूया अब
चार श्लोक तुम सुनो ॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, जवताशिक्षिता कुतः॥ मार्गणौघः
समन्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्रे, लक्ष्मीकरसरो
रुहे ॥ कीर्त्तिःकिंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजांतया
ब्धेव, चतुरंजोधिमज्जनात ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तंडमंडलं ॥ ३ ॥
सर्वदासर्वदोसीति, मिथ्या संस्तूयसे जनैः ॥ नारयोलेजिरे पृष्ठं, नवक्षः
परयोषितः ॥ ४ ॥ यह चारों श्लोक सुनकें राजा बहुत खुश हूया, और
आचार्यकों कहने लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदउं तब
आचार्यनें कहा मुजेतो कुउजी नही चाहिता, परंतु उंकार नगरमें चतु
र्द्वार जैनमंदिर शिवमंदिरसें उंचा बनाउ और प्रतिष्ठाजी कराउ तब रा
जानें वैसेंही करा तब जिनमत प्रजावना देखकें संघ तुष्टमान हूया, इ
त्यादि प्रकारसें जैनधर्मकी प्रजावना करते हूए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें
जा कर अनशन करके देवलोक गये, तब तहांसें संघने एक जटकों लिख

सेनकी गछ पास खबर करनेकों भेजा, तिस भट्टने सूरियांकी सभामें आधा श्लोक पढा और वार वार पढताही रहता है, वो आधा श्लोक यह हैः–स्फुरंति वादिखद्योताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब वार वार यह अर्द्ध श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा "नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनोदिवाकरः ॥१॥" पीछे तिस भट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बमा शोक हूआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा छेतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु भोगके श्रीमहावीरसें पीछें दोसो एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए. ए श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बेठे, तिनोंने क्रोडों वार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गछका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्खा, क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगछ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसौ त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्दभिल्लराजाकें उछेद करणेंवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ, इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीछे भृगुकछ (भरोंचमें) श्रीआर्य खपुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ, इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिभद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रभावक चरित्रमें ऐसा लिखा है किः–श्रीमहावीरसें (४७४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमंगु,वृद्धवादि,पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोने विक्रमादित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हूए हैंः–जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवंति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याभिषेक हूआ, यह पालक चंडप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा, तिसके पीछें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी जब वि

कन्य कुब्ज देशका राजा आंखोंसें आंधाने दिग् विजय ...
करा तब रात्रिमें उस छोटे चेलेकों शिवभक्त व्यंतर देवतानें कहा ...
भोगराजाकों देनां,उसकी आंख अछी हो जावेंगी,तैसेंही करा तिस्सें ...
आंख अछी हो गइ तब राजाने सौ गाम मंदिरके खरच वास्ते दीये और ...
वमा ऊंचा जो शिवका मंदिर हे सोभी उसीनें वनवाया, और हम इस न
गरमें रहते हैं परंतु मिथ्यादृष्टियोंके वलवान् होनेंसें हम जिनमंदिर बनाने
नही पातेहैं, इस वास्ते आपसें विनति करते हैं, कि इस मंदिरसें अधिक ह
मारा मंदिर यहां वने तो ठीक है, और आप सर्वतरेंसे सामर्थ हो. तिनका
वचन सुनकर वादिंद्रने अवंतीमें आकर चार श्लोक हाथमें ले कर वि
मादित्यके द्वार पास आये दरवाजे दारके मुखसें राजाकों कहाया ...
भिक्षुरायातस्तिष्ट ति द्वारवारितः हस्तन्यस्तचतुः श्लोकःउतागछतुगछतु॥
तिस श्लोककों सुनकर विक्रमादित्यनें वदलेंका श्लोक लिखकर भेजा
दत्तानिदशलक्षाणि, शासनानिचतुर्दश ॥ हस्तन्यस्तचतुः श्लोकः,उत ...
गछतु ॥ २ ॥ तिस श्लोककों सुनकर आचार्यने कहा भेजा कि भिक्षु ...
मकों मिला चाहता है, परंतु धन नहीं लेता तब राजाने सन्मुख बु...
और पिछानके कहने लगा कि गुरुजी वहुत दिनों पीछें दर्शन दीया ...
चार्य कहने लगे धर्मकार्यके करनेंसें वहुत दिन हूये फिरसें आना हूआ अ
चार श्लोक तुम सुनो॥ अपूर्वेयं धनुर्विद्या, भवताशिक्षिता कुतः॥ मार्गणौघः
समन्भ्येति, गुणोयातिदिगंतरे ॥ १ ॥ सरस्वतीस्थितावक्के, लक्ष्मीकरसरो
रुहे ॥ कीर्त्तिःकिंकुपित राजन्, येन देशांतरंगता ॥ २ ॥ कीर्त्तिस्तेजातज्रा
ड्येव, चतुर ... ॥ आतपायधरानाथ, गतामार्त्तंडमंडलं ॥ ३ ॥
स ... मिथ्या संस्तूयसे जनैः ॥ नारयोलेभिरे पृष्ठं, नवक्षपर
... यह चारों श्लोक सुनकें राजा वहुत खुश हूआ, और
... लगा जो मेरा राज्यमें सार है, सो मांगो तो देदउं तब
कहा मुझेतो कुछभी नही चाहिता, परंतु ॐकार नगरमें चतु
... दिर शिवमंदिरसें उंचा वनाउं और प्रतिष्ठाभी कराउं तब रा
... वैसेंही करा तब जिनमत प्रभावना देखकें संघ तुष्टमान हूआ, इ
... प्रकारसें जैनधर्मकी प्रभावना करते हूए दक्षिणदेशमें प्रतिष्ठानपुरमें
जा कर अनशन करके देवलोक गये, तब तहांसें संघने एक भट्टकों सिद्ध

सेनकी गछ पास खबर करनेकों भेजा, तिस भट्टने सूरियोंकी सभामें आधा श्लोक पढा और बार बार पढताही रहता है; वो आधा श्लोक यह हैः—स्फुरंति वादिखद्योताः, सांप्रतं दक्षिणापथे ॥ जब बार बार यह अर्द्धा श्लोक सुना तब सिद्धसेनकी बहिन साधवीनें सिद्ध सारस्वत मंत्रसें अर्द्ध श्लोक पूरा करा "नूनमस्तगतोवादी, सिद्धसेनो दिवाकरः ॥१॥" पीछे तिस भट्टने सर्ववृत्तांत सुनाया तब संघकों बडा शोक हूआ ॥ इति सिद्धसेन दिवाकरका प्रसंगसें संबंध कथन करा ॥

यह सुहस्ति आचार्य तीस वर्ष गृहस्थावासमें रहे और चौवीस वर्ष व्रत पर्याय, तथा छैतालीश वर्ष युगप्रधान पदवी, सब मिलकर एक सौ वर्षकी आयु भोगके श्रीमहावीरसें पीछें दोसौ एकानवे (२९१) वर्ष पीछे स्वर्ग गये. ये आठमें पाट आर्यमहागिरि और सुहस्ति आचार्य हूए. ९ श्रीसुहस्तीसूरिके पाट उपर श्रीसुस्थित और सुप्रतिबद्ध नामा दो शिष्य बैठे, तिनोंने क्रोडों बार सूरिमंत्रका जाप करा, इसवास्ते गछका कोटिक ऐसा दूसरा नाम श्रीसंघने रक्खा; क्योंकि सुधर्मस्वामीसें ले कर आठपाट तक तो अनगार निर्ग्रंथगछ नाम था पीछे दूसरा कोटिक नाम हूआ.

१० श्रीसुस्थितसूरिके पाट उपर श्रीइंद्रदिन्नसूरि हूआ इस अवसरमें श्री महावीरसें चारसो त्रेपन (४५३) वर्ष पीछे गर्द्दभिल्लराजाके उछेद कर णेंवाला दूसरा कालिकाचार्य हूआ; इसकी कथा कल्पसूत्रमें प्रसिद्ध है, और श्रीमहावीरसें (४५३) वर्ष पीछे भृगुकछ (भरोंचमें) श्रीआर्य ख पुटाचार्य विद्याचक्रवर्त्ती हूआ; इनका प्रबंध श्रीप्रबंधचिंतामणिग्रंथ तथा हारिभद्री आवश्यककी टीकासें जान लेना. और प्रभावक चरित्रमें ऐसा लिखा है किः—श्रीमहावीरसें (४८४) वर्ष पीछे खपुटाचार्य और (४६४) (४६७) वर्ष पीछे आर्यमंगु, वृद्धवादि, पादलिप्त तथा कल्याण मंदिरका कर्त्ता उपर जिसका प्रबंध लिख आये सो सिद्धसेन दिवाकर हूआ जिनोंने विक्रमा दित्यको जैनधर्मी करा सो विक्रमादित्य श्रीमहावीरसें (४७०) वर्ष पीछे हूआ सो (४७०) वर्ष ऐसे हूए हैंः—जिस रात्रिमें श्रीमहावीरजी निर्वाण हूए उस दिन अवंति नगरीमें पालक नामा राजेकों राज्याभिषेक हूआ, यह पालक चंडप्रद्योतका पोता था तिसका राज्य (६०) वर्ष रहा; ति सके पीछें श्रेणिकका बेटा कोणिक और कोणिकका बेटा उदायी नव वि

ना पुत्रके मरा तब तिसकी गद्दी ऊपर नंद नामा नाइ वैठा, तिनकी ग
में सर्व नंदनामा नव राजे हूए तिनका राज्य (१५५) वर्ष तक रहा
वमें नंदकी गद्दी ऊपर मौर्यवंशी चंद्रगुप्त राजा हूआ तिसका वेटा विं
सार तिसका वेटा अशोक तिसका वेटा कुणाल तिसका वेटा संप्रति
हाराजादि हूए, इन मौर्यवंशीयोंका सर्व राज (१०८) वर्ष तक रहा य
पूर्वोक्त सर्वराजे प्रायें जैनमत वाले थे तिनके पीछे तीस वर्ष तक पु
मित्र राजाका राज्य रहा, तिस पीछें वलमित्र, भानुमित्र, यह दोनो
जाका राज्य (६०) वर्ष तक रहा, तिस पीछे नभवाहन राजाका रा
(४०) वर्ष तक रहा, तिस पीछें तेरां वर्ष गर्दभिल्लीका राज्य रहा, औ
चार वर्ष शकोंका राज्य रहा, पीछे विक्रमादित्यनें शकोकों जीतके अ
ना राज्य जमाया यह सर्व (४७०) वर्ष हूए.

११ श्रीइंद्रदिन्न सूरिके पाट ऊपर श्री दिन्नसूरि हूये. १२ दिन सूरिके पा
ऊपर श्रीसिंहगिरि सूरि हूये. १३ श्रीसिंहगिरिजीके पाट ऊपर श्रीव
स्वामी हूये, जिनकों वाल्यावस्थासें जातिस्मरण ज्ञान था, जिनकों आक
शगमन विद्याभी थी, जिनोंने दूसरे वारां वर्षी कालमें संघकी रक्षा करी
तथा जिनोंने दक्षिणपथमें वौधोंके राज्यमें श्रीजिनेंद्रपूजा वास्ते फूल लावे
दीये, वौद्धराजाकों जैनमती करा, यह आचार्य पीछला दशपूर्वका पाठ
हूआ, जिनोंसें हमारी वज्री शाखा उत्पन्न हूइ, इनका प्रबंध आवश्यक
त्तिसें जान लेनां. सो वज्रस्वामी श्रीमहावीरसें पीछें चार सो छानवे औ
विक्रमादित्यकें संवत छवीसमें जन्मे, और आठ वर्ष घरमें रहे, चौतालीस
वर्ष समान साधुव्रतमें रहे और छत्तीस वर्ष युगप्रधान पदवीमें रहे, सर्वायु
अठाशी वर्षकी भोगी, तथा इन आचार्यके समयमें जावडशाह सेठने श्री
शत्रुंजय तीर्थका संवत् (१०८) में तेरहवा वडा उद्धार करा, तिसकी श्री
वज्र स्वामीने प्रतिष्ठा करी यह श्रीवज्र स्वामी श्रीमहावीरसें (५८४) वर्ष
पीछें स्वर्ग गये, इन श्रीवज्र स्वामीके समयमें दशमा पूर्व और चौथा सं
हनन् और चौथा संस्थान व्यवछेद होगये, यहां श्रीसुहस्ती सूरि आठमें
और श्रीवज्र स्वामी तेरहवे पाटके वीचमें अपर पटावलियोंमें १ श्रीगुण
सुंदरसूरि, २ श्रीकालिकाचार्य, ३ श्रीस्कंधिलाचार्य, ४ श्रीरेवतमित्रसूरि
५ श्रीधर्मसूरि, ६ श्रीभद्रगुप्ताचार्य, ७ श्रीगुप्ताचार्य, यह सात क्रमसें युग

प्रधान आचार्य हुये तथा श्रीमहावीरसें पांचसौ तेतीस (५३३) वर्ष पीछे श्रीआर्यरक्षितसूरिने सर्व शास्त्रोंका अनुयोग पृथक् पृथक् कर दीये, ये प्रबंध आवश्यक वृत्तिसें जान लेना. तथा श्रीमहावीरसें (५४०) में वर्षे त्रैराशिके जीतने वाले श्रीगुप्त सूरि हुये, तिनका प्रबंध उत्तराध्ययनकी वृत्ति तथा श्रीविशेषावश्यकसें जान लेना, जिसने त्रैराशिक मत निकाला तिसका नाम रोहगुप्त था, वो श्रीगुप्तसूरिका चेलाथा, जिसका उलूक गोत्र था जब रोहगुप्त गुरुके आगे हारा, और मत कदाग्रह न छोडा, तब अंतरंजिका नगरीके बलश्रीराजाने अपने राज्यसें बाहिर निकाल दीया, तब तिस रोहगुप्तनें कणाद नाम शिष्य करा, उसकों १ द्रव्य, २ गुण, ३ कर्म, ४ सामान्य, ५ विशेष, ६ समवाय. इन षट् पदार्थोका स्वरूप बतलाया, तब तिस कणादनें वैशेषिक सूत्र बनाये, तहांसें वैशेषिक मत चला.

१४ श्रीवज्र स्वामीके पाट ऊपर चौदवें श्रीवज्रसेन सूरि बैठे; वे दुर्भिक्षमें श्रीवज्र स्वामीके वचनसें सोपारक पत्तनमें गये तहां जिनदत्तके घरसें ईश्वरी नाना तिसकी भार्याने लाख रूपकके खरचनेसें एक हांनी अन्नकी रांधी, जिसमें विष (जहर) घालने लगी, क्योंकि उनोंनें विचाराथा कि अन्न तो मिलता नहीं तिस वास्ते जहर खाके सर्व घरके आदमी मर जायेंगे. तिस अवसरमें श्रीवज्रसेन सूरि तहां आये. वो उनकों कहने लगे कि तुम जहर मत खाओ कलकों सुगाल हो जावेगा तैसेंही हूआ तब तिन शेठके चार पुत्रोनें दीक्षा लीनी, तिनके नाम लिखते हैंः— १ नागेंद्र, २ चंद्र, ३ निवृत्त, ४ विद्याधर, तिन चारोंसें स्व स्व नामके चार कुल बने. यह वज्रसेन सूरि नव वर्ष तक गृहस्थावासमें रहे और (११६) वर्ष समान साधुव्रतमें रहे तथा तीन वर्ष युग प्रधान पदवीमें रहे सर्वायु (१२८) वर्षकी जोगके श्री महावीरसें (६२०) वर्ष पीछे स्वर्ग गये, यहां श्रीवज्रस्वामी औ वज्रसेन सूरिके बीचमें आर्य रक्षित सूरि तथा श्री दुर्बलिका पुष्य सूरि. यह दोनो युग प्रधान हूये. श्रीमहावीरसें (५८४) वर्ष पीछे सातवा निन्हव हूआ, तथा श्रीमहावीरसें (६०९) वर्ष पीछे श्री कृष्ण सूरिका शिष्य शिवभूति नामे था तिने दिगंबर मत प्रवृत्त करा. सो अधिकार विशेषावश्यकादिकोंसें जान लेना.

१५ श्रीवज्रसेन सूरिके पाट ऊपर श्रीचंद्रसूरि बैठा. तिनकेनामसें गछ

का तीसरा नाम चंद्रगछ हूआ, १६ श्रीचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री सामंतभद्रसूरि हूये, वे पूर्वगत श्रुतके जानकार थे, वैरागके रंगसें निर्मल हूए, जंगलोंमें रहते थे, तब लोकोंनें चंद्रगछका नाम वनवासी गछ रक्खा. १७ श्रीसामंतभद्र सूरिके पाट ऊपर श्रीवृद्धदेव सूरि हूये, तथा श्रीमहावीरसें (५९५) वर्ष पीछें कोरंट नगरमें नाहड नामा मंत्रीनें तथा सत्यपुरमें नाहडमंत्रीने मंदिर बनवाया, प्रतिमाकी प्रतिष्ठा जज्जक सूरिनें करी, प्रतिमा श्री महावीरकी स्थापन करी जिसकों "जयउवीरसचउरिमंडण" कहते हैं. १८ श्रीवृद्धदेव सूरिकें पाट ऊपर श्री प्रद्योतन सूरि हूये.

१९ श्री प्रद्योतन सूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव सूरि हूये, इनके सूरिपद स्थापनावसरमें दोनो स्कंधोंपर सरस्वती और लक्ष्मी साक्षात् देखकें यह चारित्रसें भ्रष्ट हो जावेगा? ऐसें विचार करकें खिन्नचित्त गुरुकों जानकें गुरुके आगें ऐसा नियम करा कि:– भक्तिवाले घरकी भिक्षा और दूध, दही, घृत, मीठा, तेल, अरु सर्व पक्वान्नका, त्याग कीया, तब तिनके तपके प्रभावसें नडोल पुर जो पालीके पास है तिसमें १ पद्मा, २ जया, ३ विजया, ४ अपराजिता, ए चार नामकी चार देवी सेवा करती देखी, कोइ मूर्ख कहने लगाकि ए आचार्य स्त्रीयोंका संग क्यों करता है? तब तिन देवीयोंनें तिसकों शिक्षा दीनी, तथा तिसके समयमें तक्षिला (गजनी) नगरीमें बहुत श्रावक थे तिनमें मरीका उपद्रव हूआ तिसकी शांतिके वास्ते श्री मानदेव सूरीने नडोल नगरीसें शांतिस्तोत्र बना कर भेजा.

२० श्री मानदेव सूरिके पाट ऊपर श्री मानतुंग सूरि हूये जिनोने भक्तामर स्तवन करकें बाण अरु मयूर पंडितोंकी विद्या करकें चमत्कृत हूआ जो वृद्ध भोजराजा तिनकों प्रतिबोधा, और भयहर स्तवन करकें नागराजा वश करा, तथा भत्तिब्भरेत्यादि स्तवन जिनोनें करे हैं, प्रभावक चरित्रमें प्रथम श्रीमानतुंग सूरिका चरित्र कहा, और पीछें देवसूरिका शिष्य श्री प्रद्योतनसूरि तिनका शिष्य श्रीमानदेव सूरिका प्रबंध कहा. परंतु तहां संका न करनी चाहियें क्योंकि प्रभावक चरित्रमें औरभी कइ प्रबंध आगे पीछे कहे हैं.

२१ श्रीमानतुंगसूरिके पाट ऊपर श्रीवीरसूरि भेगा, सो वीरसूरिनें श्री महावीरसें (७७०) वर्षमें तथा विक्रम संवत्के तीन सौ वर्ष पीछें नागपुरमें श्रीनमि अर्हंतकी प्रतिमाकी प्रतिष्ठा करी, यदुक्तं॥ आर्या॥ नाग पुरे

नमिजवन, प्रतिष्ठयामहितपाणिसोजाग्यः॥ अजवधीराचार्ये, त्रिजिः शतैः साधिके राज्ञः ॥ १ ॥

२२ श्रीवीरसूरिके पाट ऊपर श्रीजयदेवसूरि बैठे. २३ श्रीजयदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीदेवानंदसूरि बैठे, इस अवसरमें श्रीमहावीरसें (७४५) वर्ष पीछे वलजी नगरी जंग हूइ, तथा (७७२) वर्ष पीछे चैत्येस्थिति तथा (७७६) वर्ष पीछे ब्रह्मद्विपिका. २४ श्रीदेवानंदसूरिके पाट ऊपर श्रीविक्रमसूरि बैठे. २५ श्रीविक्रमसूरिके पाट ऊपर श्रीनरसिंहसूरि बैठे, यतः॥ नरसिंहसूरिरासी, दतोऽखिलग्रंथपारगोयेन॥ यक्षोनरसिंहपुरे, मांस रतिंस्त्याजितास्वगिरा ॥ १ ॥ २६ श्रीनरसिंहसूरिके पाट ऊपर श्रीसमुद्रसूरि बैठा॥श्लोक॥ वसंततिलकावृत्तम्॥ खोमीणराजकुलजोपि समुद्रसूरि, गेच्छं शशास किल यः प्रवणः प्रमाणी॥ जित्वातदाक्षपनकान् स्ववशं वितेने, नागह्रदेज़ुजगनाथनमस्यतीर्थम्॥ १॥ २७ श्रीसमुद्रसूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव सूरि हूए॥श्लोक॥वसंततिलकावृत्तम्॥ विद्यासमुद्रहरिजद्रमुनींद्रमित्रं, सूरिर्बजूव पुनरेव हि मानदेवः॥ मांद्यात्प्रयातमपियोनवसूरिमंत्रं, लेजेंबिकामुखगिरा तप सोज्झयंते ॥ १ ॥ श्री महावीरसें एक हजार वर्ष पीछें सत्यमित्र आचार्यके साथ पूर्वोका व्यवछेद हूआ, यहां १ श्रीनागहस्ति, २ रेवतीमित्र, ३ ब्रह्मद्वीप, ४ नागार्जुन, ५ जूतदिन्न, ६ श्रीकालकसूरि, ये छे युगप्रधान यथाक्रमसें श्रीवज्रसेनसूरि और सत्यमित्रके बीचमें हूए. इन पूर्वोक्त छे युगप्रधानोंमेंसे शक्रानिवंदित और प्रथमानुयोग सूत्रोंका सूत्रधार कल्प श्रीकालिकाचार्य श्रीमहावीरसें (९९३) वर्ष पीछें पंचमीसें चोथकी संवत्सरी करी. तथा श्रीमहावीरात् (१०५५) वर्ष पीछे और विक्रमादित्यसें (५८५) वर्ष पीछे यकनी साधवीका धर्मपुत्र श्रीहरिजद्र सूरि स्वर्गवास हूए, तथा (१११५) वर्ष पीछे श्रीजिनजद्रगणि युगप्रधान हूआ. और यह जिनजद्रीय ध्यानशतकका कर्ता होनेसें और हरिजद्रसूरिके टीका करनेसें दूसरा जिनजद्र है, यह कथन पट्टावलिमें है, परंतु श्रीजिनजद्रगणिक्षमाश्रमणकी आयु (१०४) वर्षकी थी, इस वास्ते जे कर हरिजद्रसूरिके वखतमें जीते होवें तोजी विरोध नहीं.

२८ श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविबुधप्रजसूरि हूआ. २९ श्रीविबुधप्रजसूरिके पाट ऊपर श्रीजयानंदसूरि हूआ. ३० श्रीजयानंदसूरिके पा

ट ऊपर श्रीरविप्रभसूरि हुआ, सो महावीरसें पीछें (११७०) वर्ष और विक्रमसंवत्सें (७००) वर्ष पीछें नफोल नगरमें श्रीनेमिनाथका प्रासाद (मंदिरकी) प्रतिष्ठा करी तथा श्रीवीरात् (११९०) वर्ष पीछें उमास्वाति युगप्रधान हुआ. ३१ श्रीरविप्रभसूरिके पाट ऊपर श्रीयशोदेव सूरि बैठे, य हां श्रीमहावीरसें (१२७२) वर्ष पीछें और विक्रम संवतसें (८०२) के सालमें अणहल पुर पट्टन वनराज राजेने वसाया वनराज जैनी रा जा था, तथा श्रीवीरात् (१२७०) और विक्रमादित्यके संवत् (८००) के सालमें भाद्रपद शुक्ल तीजके दिन बप्प भट्ट आचार्यका जन्म हुआ, जिस ने ग्वालियरके आम नाम राजाको जैनी बनाया. इनका विशेष चरित्र प्रबंधचिंतामणि ग्रंथसें जान लेनां.

३२ श्रीयशोदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीप्रद्युम्नसूरि हुआ. ३३ श्रीप्रद्युम्न सूरिके पाट ऊपर श्रीमानदेव सूरि उपधानवाच्यग्रंथका कर्त्ता हुआ. ३४ श्रीमानदेवसूरिके पाट ऊपर श्रीविमलचंद्र सूरि हुआ. ३५ श्रीविमलचंद्र सूरिके पाट ऊपर श्रीउद्योतनसूरि हुआ, सो उद्योतनसूरि अर्बुदाचल (आबू) के पहाड ऊपर यात्रा करणे आये थे, उहां टेली गामके पास बडी वडवृक्षकी छायामें बैठोनें अपने पाटकी वृद्धि वास्ते अच्छा मुहूर्त देख करके श्रीमहावीरसें (१४६४) वर्ष और विक्रमसें (९९४) वर्ष पीछें अपने पाट ऊपर श्रीसर्वदेव प्रमुख आठ आचार्य स्थापे कोइ एकले सर्वदेव सूरिकोंही कहते हैं, वडे वृक्षके हेठ सूरि पदवी देनेसें तहांसें वन वासी गच्छका पांचमा नाम वडगच्छ हुआ, "प्रधानशिष्यसंतत्या, ज्ञानादि गुणैः प्रधानचरितैश्च बृहत्वा बृहद्गच्छश्चापि "

३६ श्री उद्योतनसूरिके पाट ऊपर श्रीसर्वदेवसूरि हुए, यहां कोइक तो श्रीप्रद्युम्नसूरि और उपधान ग्रंथका कर्त्ता श्रीमानदेवसूरि इन दोनोंको पट्टधर नहीं मानते हैं, तिनके अभिप्रायमें सर्वदेवसूरि चौतीसमें पाट हु आ, सो सर्वदेवसूरि श्रीगौतमस्वामीकी तरें सुशिष्य लब्धिमान विक्रम सं वत्से (१०१०) वर्ष पीछें रामसैन्य पुरमें श्रीऋषभचैत्य तथा चंद्रप्रभचैत्यकी प्रतिष्ठा करी, तथा चंद्रावतीमें कुंकणमंत्रिकों प्रतिबोधके दीक्षा दीनी, जि सनेही चंद्रावतीमें जैनमंदिर बनवाया था, तथा विक्रमसें (१०२९) वर्ष पीछें धनपाल पंडितने देशी नाम माला बनाइ तथा विक्रमसें (१०७३)

वर्ष पीछे श्रीउत्तराध्ययनकी टीका करने वाला थिरापद्रीयगछमें वादी वैताल श्री शांति सूरि हूये.

३७ श्री सर्वदेवसूरिके पाट ऊपर श्री देवसूरिके रूपश्री ऐसा राजानें बिरुद दीया. ३८ श्री देवसूरिके पाट ऊपर फिर श्री सर्वदेवसूरि नामा हूये जिनने यशोभद्र नेमिचंद्रादि आठ आचार्योंकों आचार्य पदवी दीनी, तथा श्री महावीरसें (१४७६) वर्ष पीछें तक्षिलाका नाम गजनी रक्खा गया. ३९ श्री सर्वदेवसूरिके पाट ऊपर श्री यशोभद्र अरु नेमिचंद्र ये दो गुरु भाइ आचार्य हूये, तथा विक्रमसें (११३५) वर्ष पीछें कोइ कहता है, (११३९) वर्ष पीछें नवांगीवृत्ति करनें वाला श्री अभयदेवसूरि स्वर्ग वास हूये. तथा कूर्चपुरगछीय चैत्यवासि जिनेश्वरसूरिका शिष्य श्री जिन वल्लभसूरिनें चित्रकूटमें श्री महावीरके षट् कल्याणक प्ररूपे.

४० श्री यशोभद्रसूरि तथा श्री नेमिचंद्रसूरिके पाट ऊपर श्री मुनिचंद्र सूरि हूये, जिनोंने जावज्जीव एकसौवीर पाणी पीना रक्खा, और सर्व विगयका त्याग करा, तथा जिनोंनें श्रीहरिभद्रसूरिकृत अनेकांत जयपताकादि अनेक ग्रंथोंकी पंजिका करी, उपदेशपदकी वृत्ति, योगबिंदुकीवृत्ति, इत्यादिकोंके करनेसें तार्किक शिरोमणि जगत्में प्रसिद्ध हूआ, और यह आचार्य बडा त्यागी निस्पृह हूआ. यहां विक्रम राजासें (११५९) वर्ष पीछें चंद्रप्रभसें पौर्णिमीयक मतोत्पति हुइ तिस चंद्रप्रभके प्रतिबोधने वास्ते श्री मुनिचंद्रसूरिजीने पाक्षिक सप्ततिका करी है, तथा श्री मुनिचंद्रसूरिका शिष्य श्री अजितदेवसूरि वादी अरु श्री देवसूरि प्रमुख हूये तहां वादी श्री अजितदेव सूरिजीनें अणहल पुर पाटणमें श्रीजयसिंह देवराजाकी सभामें अनेक विद्वज्जन संयुक्त चोराशी वाद वादियोंसें जीते, दिगंबरमतका चक्रवर्त्ती कुमुदचंद्र आचार्यकों जिनोंनें वादमें जींता, और दिगंबरोंका पट्टनमें प्रवेश करनां बंद कराया, सो आज तक प्रसिद्ध है. तथा विक्रमसें (१२०४) वर्ष पीछें फलवर्द्धिग्राममें चैत्यबिंबकी प्रतिष्ठा करी, सो तीर्थ आजभी प्रसिद्ध है, तथा आरासणेमें श्री नेमिनाथकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंनें (८४०००) चोरासी हजार श्लोक प्रमाण स्याद्वादरत्नाकर नामा ग्रंथ बनाया, तथा जिनोंसें बडे नामावर चौवीश आचार्योंकी शाखा हूइ, इनोंका जन्म संवत् (११३४) में हूआ, (११५२) में दीक्षा लीनी, (११७४) में सूरिपद

मिला, (१२२०) की श्रावणकृष्णसप्तमी गुरुवारें स्वर्गकों प्राप्त हूये, तिनोंके समयमें श्री देवचंद्रसूरिका शिष्य तीन क्रोम ग्रंथका कर्त्ता, कलिकालमें सर्वज्ञ विरुदका धारक, पाटणके राजा कुमारपालका प्रतिबोधक, सवा लक्ष श्लोक प्रमाण पंचांग व्याकरणका कर्त्ता, श्री हेमचंद्रसूरि विद्या समुद्र हूआ, तिनका विक्रमसंवत् (११४५) में जन्म (११५०) में दीक्षा (११६६) में सूरिपद अरु (१२२९) में स्वर्गवास हूआ, इनोंका संपूर्ण प्रबंध देखनां होवे, तदा श्री प्रबंध चिंतामणि तथा कुमारपाल चरित्रसें देख लेनां. ४१ श्री मुनिचंदसूरिके पाट ऊपर श्री अजितदेव सूरि हूये, तिनोंके समयमें संवत् (१२०४) में खरतरोत्पत्ति, संवत् (१२३३) वर्षे आंचलिकमतोत्पत्ति, संवत् (१२३६) वर्षे सार्द्धपौर्णिमीयक मतोत्पत्ति, संवत् (१२५०) वर्षे आगमिक मतोत्पत्ति हूइ, तथा श्री वीरजगवानसें (१६७२) वर्षे वागजट मंत्रीने शत्रुंजयका चौदहमां उद्धार कराया, साढे तीन क्रोम रूपक लगाया.

४२ श्री अजितदेव सूरिपट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये, जिनोंनें विवेकमंजरी शुद्ध करी, जिनोका वमा शिष्य श्री सोमप्रज सूरि शतार्थितया अर्थात् जिनोके वनाये एकेक श्लोकोंके सौ सौ तरेंके अर्थ निकलें और दूसरा मणिरत्न सूरिथा. ४३ श्री विजयसिंह सूरिपट्टे श्री सोमप्रज सूरि और मणिरत्न सूरि हूये. ४४ श्री सोमप्रज तथा श्री मणिरत्न सूरिके पाट ऊपर श्री जगचंद्रसूरि हूये, जिनोंनें अपणें गच्छकों शिथिल देखकें और गुरुकी आज्ञासें वैराग्य रसका समुद्र चैत्रवालगच्छीय श्री देवजद्र उपाध्यायके सहायसें क्रिया उद्धार कीया, और हीरलाजगचंद सूरि विरुद पाया, क्योंकि जिनोंनें चितोमके राजाकी राजधानी अघाट अर्थात् (अहमनें) बत्तीस दिगंबराचार्योंके साथ वाद करता हूआ, हीरेकी तरें अजेय रहा, तव राजाने हीरलाजगचंद्र सूरि ऐसा विरुद दीया तथा जिनोने यावज्जीव आचाम्लतपका अजिग्रह करा तव वारा वर्ष तप करता हूआ तव चितोमके राजाने तपा विरुद दीया, संवत् (१२८५) के वर्षमें वमगच्छका नाम तप गछ हूआ, यह वठा नाम हूआ. १ निर्ग्रंथ, २ कोटिक, ३ चंद्र, ४ वनवासी, ५ वडगछ, ६ तपागछ, इन वहों नामोंके प्रवृत्त होनेके ठे आचार्य हेतुरूप हूये हें, तिसका नाम अनुक्रमसें लिखते

हैः– १ श्री सुधर्मस्वामी, २ सुस्थित सूरि, ३ श्रीचंद्र सूरि, ४ सामंतभद्र सूरि, ५ श्रीसर्वदेव सूरि, ६ श्रीजगच्चंद्र सूरि.

४५ श्री जगच्चंद्र सूरि पट्टे श्री देवेंद्र सूरि हूये, सो मालवेकी उज्जयनी नगरीमें जिनचंद्र नामा बडे शेठका वीरधवल नामा पुत्र तिसके विवाह निमित्त महोत्सव हो रहा था, तब वीरधवल कुमारको प्रतिबोध करके संवत् (१३०२) वर्षमें दीक्षा दीनी, तिस पीछें तिसके भाइकोंभी दीक्षा देकर चिरकाल तक मालव देशमें विचरे, तिस पीछें गुर्जर देशमें देवेंद्र सूरि श्री स्तंभ तीर्थमें आये, तहां पहिलां श्री विजयचंद्र सूरि गीतार्थोंको पृथक् पृथक् वस्त्रके पोटले देता है, और नित्य विगय खानेकी आज्ञा देता है, और वस्त्र धोनेकी तथा फल, शाक लेनेकी और निर्विकृतके प्रत्याख्यानमें विगयगतका लेना कहता है. और आर्याका ल्याया आहार साधु लावे, यह आज्ञा देता है, और दिनप्रत्यें द्विविध प्रत्याख्यान और गृहस्थोंके आवर्जिने वास्ते प्रतिक्रमण करणेकी आज्ञा देता है, और संविभागके दिनमें तिसके घरमें गीतार्थ जावे, लेपकी संनिधि रखनी, तत्कालोष्णोदकका ग्रहण करणां इत्यादि काम करनेसें कितनेक साधु शिथिलाचार्योंको साथ लेकर सदोष पौषधशालामें रहा.

इन विजयचंद्राचार्यकी उत्पत्ति ऐसें है. मंत्री वस्तुपालके घरमें विजयचंद्र नामा दफतरी था, सो किसी अपराधसें जेहलखानेमें कैद हुआ, तब श्री देवभद्र उपाध्यायने दीक्षा देनेकी प्रतिज्ञा करवा कर छुडा दीया, पीछें तिसने दीक्षा लीनी, सो बुद्धिबलसें बहुश्रुत हो गया, तब मंत्री वस्तुपालनें कहाकि ये अभिमानी है, इस वास्ते सूरिपदके योग्य नहीं है. इस तरें मने करते हुए तोभी श्री जगचंद्र सूरिजीने श्री देवभद्र उपाध्यायके कहनेसें सूरिपद दे दीया, क्योंकि यह देवेंद्र सूरिका सहायक होवेगा ऐसा जान कर सूरिपद दीया. पीछें वो विजयचंद्र बहुत काल तक श्री देवेंद्र सूरिके साथ विनयवान् शिष्यकी तरें वर्त्तता रहा परंतु जब मालव देशमें श्री देवेंद्र सूरि आये. तब वंदना करनेकोभी नहीं आया, तब देवेंद्र सूरिजीने कहला भेजा कि एक वस्तिमें तुम बारां वर्ष कैसें रहे? तब विजयचंद्रने कहाकि मान सांतको बारां वर्ष एक जगोंमें रहनेमें कुछ दोष नहीं. संविग्नसाधु सर्व देवेंद्र सूरिके साथ रहे, और देवेंद्र सूरिजी भी अनेक सं

विग्न साधुके समुदाय साथ उपाश्रयमें रहे, तव लोकोंने वमीशालामें रह नेसें विजयचंद्रसूरिके समुदायका नाम वृद्धपोशालिक रक्खा और देवेंद्र सूरिजीके समुदायका लघुपोशालिक नाम दीया, और स्थंजतीर्थके चौकमें कुमारपालके विहारमें धर्मदेशा नामे मंत्रि वस्तुपालने चारोवेदोंका नि र्णय दायक स्वसमय परसमयके जानकार श्रीदेवेंद्रसूरिजीकों वंदना देके बहुमान दीया, और श्रीदेवेंद्रसूरिजी विजयचंद्रकी उपेक्षा करके विचरते हूए क्रमसें पाल्हणपुरमें आये, तहां चौरासी इन्यसेठ अनेक पुरुषोंके साथ परिवरे, सुखासन उपर वैठे हूए शास्त्रके वडे श्रोता व्याख्यान सुनने आते थे, और पाल्हनपुरके विहारमें रोजकी रोज एक मूढक प्रमाण अ क्षत और सोलां मण सोपारी दर्शन करनेवाले श्रावकोंकि चढाइ चढती होती थी, इत्यादि वके धर्मी लोकोंनें गुरुकों विनति करी कि हे जगवन्! यहां आप किसीकों आचार्य पदवी देउ हमारा मनोरथ पूरो तव गुरुने उचित जानके पाल्हनपुरमें विक्रम संवत् (१३२३) में वर्ष श्रीविद्यानंद सूरि नाम देकें वीरधवलकों सूरिपद दीनां, और तिसके अनुज जीमसिं हकों धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकी पदवी दीनी, तिस अवसरमें प्रल्हादनविहा रके सौवर्ण कपिशीर्ष मंमपसें कुंकुमकी वर्षा हूइ, तव सर्व लोकोंकों वमा आश्चर्य हूआः–श्री विद्यानंद सूरिजीने विद्यानंद नाम नवीन व्याकरण वनाया॥ यडुक्तं॥ विद्यानंदाजिधं येन, कृतं व्याकरणं नवं ॥ जाति सर्वोत्त मं स्वल्प, सूत्रं वह्वर्थसंग्रहं ॥ १॥ पीछें श्री देवेंद्र सूरिजी फेर मालवेकों गये श्री देवेंद्र सूरिजीके करे हूये ग्रंथोंका नाम लिखते हैं. १ श्राद्धदिन कृत्यसूत्रवृत्ती, २ नव्यकर्मग्रंथपंचकसूत्रवृत्ती, ३ सिद्धपंचाशिकासूत्रवृत्ती, ४ धर्मरत्नवृत्ती, ५ सुदर्शनचरित्र, ६ तीनजाष्य, ७ वृंदारवृत्ती, ८ सिरिउ सहवद्धमाण प्रमुख स्तवन, कोइ कहते हैं कि श्राद्धदिनकृत्यसूत्रतो चि रंतन आचार्योंका करा है. विक्रक संवत् (१३२७) में वर्ष मालवदेशमें देवेंद्र सूरि स्वर्गवास हूये, देवयोगसें विद्यापुरमें तेरह दिनों पीछें श्रीविद्यानंद सू रिजी स्वर्गवास हूये, तव छे मास पीछें सगोत्र सूरिने श्रीविद्यानंद सूरिके जा इ श्री धर्मकीर्त्ति उपाध्यायकों सूरिपद देकें धर्मघोष सूरि नाम दीया.

४६ श्री देवेंद्र सूरि पट्टे श्री धर्मघोष सूरि हूये, जिनोंने मंमपाचलमें शा० श्री पृथ्वीधरकों पंचमाणुव्रत लेतेकों ज्ञानसें निषेध करा, क्योंकि

आचार्यने ज्ञानसें जाना कि यह पुरुषके व्रत भंग होजावेंगा ? इस जयसें निषेध करा. पीछे वो पृथ्वीधर, मंडपाचलके राजाका मंत्री हूआ, और धन करकें तो धनद समान हो गया. पीछें तिसने चौरासी जिनमंदिर और सात ज्ञानके पुस्तकोंके भंडारे बनाये और श्री शत्रुंजयमें इक्कीस धडी प्रमाण सोना खरचकें रूपे मय श्री ऋषभदेवजीका मंदिर बनवाया. कोइ कहते हैं कि छप्पन धडी सुवर्ण खरचकें इंद्रमाला पहरि तथा धरती नगरमें कित्ती साधर्मीनें ब्रह्मचारीका वेष देनेंके अवसरमें पृथ्वीधरको महाधनाढ्य जानकें तिसकी भेट करा, तब पृथ्वीधरने वोही वेष लेकर तिस दिनसें बत्तीस वर्षकी उमरमें ब्रह्मचर्य व्रत धारण करा, तिसके एकही जांजण नाम पुत्र था, जिसने श्री शत्रुंजय, उज्जयंतगिरिके शिखर उपर बारह योजन प्रमाण सुवर्ण रूप्यमय एकही ध्वज चडाइ, जिसनें सारंगदेव राजासें कर्पूरका महसूल छुडाया, तथा जिसनें मंडपाचलमें बहत्तर हजार (७२०००) रूपक गुरुके प्रवेशके उत्सवमें खरच करे.

तथा श्री धर्मघोष सूरिने देवपत्तनमें शिष्योंके कहनेसें मंत्रमय स्तुति बनाइ तथा देवपत्तनमें जिनोंके ध्यानके बलसें नवीनोत्पन्न हूये कपर्दी यक्षनें वज्र स्वामीके महात्मसें पुरानें कपर्दी मिथ्यादृष्टिको निकालाथा, इनोंने उसको प्रतिबोधकें श्री जैनबिंबोंका अधिष्ठाता करा, तथा जिनों आगें समुद्रके अधिष्ठातानें अपने समुद्रके तरंगोसें रत्न ढोकन करे, एकदा समय कित्ती दुष्टस्त्रीनें कार्मण संयुक्त वडे बनाकर साधुओंको दीए परं श्री धर्मघोष सूरिजीनें वे वडे धरती उपर गिराए, अरु उस स्त्रीको मंत्रसें पकडा पीछें जब बहु दुःखी हूइ, तब दया करकें छोड दीनी, तथा विद्यापुरमें पक्षांतरीयोंकी स्त्रीयोंनें धर्मघोषजीके व्याख्यान रसके भंग करने वास्ते कंठमें मंत्रसें केश गुच्छक कर दीया पीछे श्री धर्मघोष सूरिजीने जब जाना, तब तिन स्त्रीयोंको स्तंभन कर दीया, तब तिन स्त्रीयोंनें विनति करी कि आज पीछे हम तुमारे गछको उपद्रव न करेंगे, तब गुरुजीने श्री संघके बहुत आग्रहसें छोडी, तथा उज्जयनीनें एक योगी जैनके साधुओंको रहने नहीं देता था. जब श्री धर्मघोष सूरि तहां आये तब उस योगीनें साधुओंको कहा कि अब तुम इहां आये हो सो तकडे हो कर रहनां तब साधुओंने कहा हमभी देखेंगे कि तूं क्या करेगा ? पीछे उसनें साधु

ओंकों दांत दिखलाये, तब साधुओंनें कफोणि (कूहनी) दिखलाइ पीछे साधुओंने जा कर यह सर्व समाचार अपने गुरुकों कहा, उहां योगी नेंभी धर्मशालामें विद्याके बलसें बहुत चूहे बनादीये, तब साधु बहुत डरे पीछे गुरुजीनें घडेका मुख, वस्त्रसें ढांकके ऐसा मंत्र जपा कि जिस्सें योगी आराटि करता हूआ आके पाऊमें पमा, और अपने अपराधका क्षमापना मांगा, तथा किसी नगरमें शाकनीयोंके भयसें मंत्रके कपाट दीये जाते थे, एक दिन बिना मंत्रे कपाट दीये गये, तब रात्रिकों शाकनीयोंनें उपद्रव करा, गुरुने उनकों विद्यासें स्तंभित करा, एकदा रात्रिमें गुरुकों सर्पके काटनेसें जब जहर चढा, तब गुरुने संघकों विधुर देखकें कहा कि दरवाजेमें किसी पुरुषके मस्तकोपरि काष्ठकी भरीमें विषापहार एक वेलडी आवेगी वो वेलडी घसके डंकमें देदेनी उस्सें जहर उतर जायगा, संघनें तैसेंही करा गुरु राजी हो गये, पीछे तिस दिनसें जावज्जीव छे विगयका त्याग करा, और सदा जुवारकी रोटी नीरस जानके खाते रहे, श्री धर्मघोष सूरिजीके करे ये ग्रंथ हैः— सो कहते हैः—१ संघाचारभाष्यवृत्ती, २ सुअधम्मेतिस्तव, ३ कायस्थिति भवस्थिति, ४ चौवीश तीर्थंकरोंके चौवीश स्तवन, तथा ५ स्स्ताशर्मेत्यादिस्तोत्र, ६ देवेंद्रैरनिशंइति श्लेषस्तोत्रं, ७ यूयं युवात्वमिति श्लेषस्तुतीयां, ८ जयवृपभेत्यादि स्तुति, यह जयवृपभेत्यादि स्तुति करणेका यह निमित्त था किः-एक मंत्रीने आठयमक काव्य कह करकें कहा, कि ऐसें काव्य अब कोइ नहीं बना सक्ता तब गुरुने कहाकि नास्ति नहीं तब तिसने कहा तो हमकों कर दिखलाओ तब गुरुजीनें जयवृपभेत्यादि छे स्तुति एक रात्रिमें बना कर भीतोंपर लिखकें दिखाइ तब तिसने बडा चमत्कार पाया, गुरुजीने तिसकों प्रतिबोधके जैनी करा, ये श्री धर्मघोष सूरि विक्रम संवत् (१३५७) में स्वर्ग गये.

४८ श्री धर्मघोष सूरि पट्टे श्री सोमप्रभ सूरि हूये, जिनोंनें नमि सूरि स्व भणइएवमित्यादि आराधना सूत्र करा, तिनका संवत् (१३१०) रिभी स्जन्म, (१३२१) में दीक्षा, (१३३२) में सूरिपदं, जिनोके इग्यारह श्री · सूत्रार्थ कंठ थे, तथा "गुरुभिर्गीयमानायां मंत्रपुस्तकायां यछतचरित्रि ४६ ·न्तिकां च " ऐसा कह कर तिसमंत्र पुस्तकाकों ग्रहण करा, क्योंकि शा० श्री पुष्प... योग्य नहीं था यहो श्री सोमप्रभ सूरिने जलकुंकणदेशमें अ

प्रायश्चके विराधनाके नयसें और मरुदेशमें शुद्धजलकी दुर्लभतासें साधुओं का विहार निषेध करा तथा श्रीमपल्लीमें दो कार्त्तिक मास हूये तब सोमप्रभजी प्रथम कार्तिककी एकादशीकों विहार कर गए क्योंकि उनोंनें जानाकी श्रीमपल्लीका भंग होगा अरु भंग हूए पीछें जो रहे वो, दुःखी हूए, सोमप्रभ सूरिके करे ग्रंथ जितकल्पसूत्र, यत्राखिलेत्यादि स्तुतीयां, जितेन येनेतिस्तुतीयां, श्री नकस्मेंत्यादि, तिनके करे वडे शिष्य विमलप्रभ सूरी, श्री परमानंद सूरि, श्री पद्मतिलक सूरि, अरु श्री सोमतिलक सूरि थे, जिस दिन पूर्वोक्त श्री धर्मघोष सूरि, देवगत हूए तिस दिनही (१३५७) वर्षे श्री सोमप्रभ सूरिजीने श्री विमलप्रभ सूरिकों सूरिपद दीया क्योंकि तिनोंने अपना स्वल्पही आयु जानां श्री सोमप्रभजी (१३७३) वर्षे देवलोक गए.

४७ श्रीसोमप्रभसूरि पट्टे श्रीसोमतिलकसूरि हूए, तिनोका (१३५५) में वर्षे माघे जन्म, (१३६९) वर्षे दीक्षा, (१३७३) वर्षे सूरिपदं, (१४२४) वर्षे स्वर्गगमनं, सर्वायु (६९) वर्षकी जाननी, तिनके करे ग्रंथ लिखते हैंः—१ बृहन्नव्यक्षेत्रसमास सूत्र, सचरित्तयठाणं, यत्राखिलजयवृषभसत्तारार्सं० प्रमुखकी वृत्ति, श्रीतीर्थराज०, चतुरर्थीस्तुतिवृत्ति, शुभभावानत० श्रीमद्वी रस्तुवेदित्यादिकमलबंधस्तवः शिवशिरसि श्रीनाभिसंभव० श्रीशैवेय० इत्यादि स्तवन. श्रीसोमतिलकसूरिकेनकरके १ श्रीपद्मतिलकसूरि, २ श्रीचंद्रशेखरसूरि, ३ जयानंदसूरि, ४ श्रीदेवसुंदरसूरियोंको सूरि पद दीया, तिनमें श्रीपद्मतिलक सूरि, सोमतिलक सूरिसे पर्यायमें वडे थे, सो एक वर्ष जीते रहे; और वडे वैरागी थे तथा श्रीचंद्रशेखर सूरि, विक्रमसंवत (१३७३) में जन्मे, (१३८५) में दीक्षा, (१३९३) में सूरिपद, इनके करे ग्रंथः—१ उषितभोजनकथा, यवराजर्षि कथा, श्रीमत्स्तंभकहारबंधादिस्तवन है, जिनोंके मंत्रों सों मंत्री रजहरे से जिनतेंकी उपद्रव करनेवाले ग्रह, हरिको, दुर्धर मृगराज, व्यान, सुरिनि दूर हो जाते थे तथा श्रीजयानंदसूरिका विक्रम संवत् (१३८०) वर्षे जन्म, (१३९२) वर्षे आषाढ सुदिसातम शुक्रवारकेदिन धारानगरीमें व्रतग्रहण, (१४२०) में सूरिपद, (१४४१) में स्वर्ग गये. तिनके करे ग्रंथ १ श्री स्थूलभद्र चरित्रं, २ देवाःप्रभोयं प्रमुख स्तवन हैं.

४८ श्री सोमतिलक सूरि पट्टे श्री देवसुंदर सूरि हूए, तिनका (१३९६) में जन्म, (१४०४) वर्षे दीक्षा, (१४२०) वर्षे अणहिल्लपत्तनमें सूरिपदं,

यह देवसुंदर सूरी बडा योगाभ्यासी और मंत्र तंत्रकी ऋद्धिका मंदिर, स्थावर जंगमविषापहारी, जनानल, व्याल अरु हरि, जयका तोडनेवाला, अतीतानागत निमित्तका वेत्ता, राजमंत्रि प्रमुखोंका पूज्यनीक, यह श्री देव सुंदर सूरिके शिष्य १ श्रीज्ञानसागर सूरि,२श्री कुलमंडन सूरि,३ श्री गुणरत्न सूरि, ४ श्री सोमसुंदर सूरि, ५ श्री साधुरत्न सूरि, यह पांच बडे शिष्य थे, तिनमें श्री ज्ञानसागरजीका (१४०५) में वर्षे जन्म, (१४१७) में दीक्षा, (१४४१) में सूरिपदं, (१४६०) में स्वर्गगमनं, तिनके करे ग्रंथ श्री आवश्यक, ओघनिर्युक्त्यादि अनेक ग्रंथावचूरी, श्री मुनिसुव्रत स्तवन, घनौघनवखंड पार्श्वनाथादि स्तवन, दूसरा श्री कुलमंडन सूरिजीका (१४०९) में जन्म, (१४१७) में दीक्षा, (१४४२) में सूरिपदं, (१४५५) में स्वर्गगमनं, जिनोंके करे ग्रंथ सिद्धांतालापकोद्धार, विश्वश्रीधरेत्यादि, अष्टादशारचक्रस्तव, गरीयो और हारस्तवादय है, तीसरा श्री गुणरत्न सूरि तिनके करे ग्रंथ १ क्रियारत्न समुच्चय, २ षड्दर्शनसमुच्चय बृहद्वृत्ति है, चौथा श्री साधुरत्न सूरिजीके करे ग्रंथः— १ यतिजीतकल्पवृत्ति है.

५० श्री देवसुंदर सरि पट्टे श्री सोमसुंदर सूरि हुए तिनका (१४३०) में जन्म, (१४३७) में दीक्षा, (१४५०) में वाचक पद, (१४५७) में सूरिपदं, जिसके (१०००) अठारहसो साधु क्रिया पात्र परिवार देखके कितनेक लिंगी पाखंडीयोंनें पांचसो (५००) रूपक देके एक सहस्र पुरुषोंकों उनके वध करनें वास्ते भेजे, तब वे जिस मकानमें गुरु थे तिस मकानमें रातकों ठीप रहे, जब मारनेकों उद्यत हूए तब चंद्रमाके उद्योतमें श्री गुरुजीनें रजोहरणसें पूंजके जब पासा पलटा, तब देखके तिनके मनमें असा विचार आया किः— ए नींदमेंभी क्षुद्र प्राणियोंकी दया करते हें, और हम इनकों मारने आए हें, यह कितना अंतर है ? तब मनमें डरे और गुरुके पायोंमें पडके अपराध क्षमा कराया, इनोंके करे ग्रंथः— योगशास्त्र, उपदेशमाला, षडावश्यक, नवतत्त्वादि बालावबोध, भाष्यावचूर्णी, कल्याणिकस्तोत्रादि. जिनोंके शिष्य श्री मुनिसुंदर सूरि, कृष्णसरस्वती बिरुद धारक श्री जयसुंदर सूरि, और महाविद्या विडंबन टिप्पनक कारक श्री भुवन सुंदर सूरि,जिनके कंठ एकादशांगी सूत्र थे थे, और चौथा जिनसुंदर सूरि ये चार जिनके प्रतापी शिष्य हूए, जिनोंने

राणक पुरमें श्री धनकृत चौमुखविहारेमें ऋषभादि अनेक शत बिंब प्रतिष्ठित करी, ये विक्रम संवत् (१४९९) में स्वर्ग गये.

५१ श्री सोमसुंदर सूरि पट्टे श्री मुनिसुंदर सूरि हूये, जिनोंनें अनेक प्रसाद, पद्मचक्र, षट्कारक, क्रियागुप्तक, अर्द्धभ्रम, सर्वतोभद्र, मुरज, सिंहासन, अशोक, भेरी, समवसरण, सरोवर, अष्टमहाप्रातिहार्यादि नवीन त्रिशतिबंध तर्क प्रयोगादि अनेक चित्राक्षर, द्व्यक्षर, पंचवर्ग परिहारादि अनेक स्तवमय त्रिदशतरंगिणीनामा एक सो आठ हाथ लंबी पत्रिका लिखकें श्री गुरुकों भेजी तथा चातुर्वेद्यविशारद्य निधि, उपदेश रत्नाकर प्रमुख अनेक ग्रंथोका कर्त्ता, तथा जिनकों श्री स्तंभतीर्थमें दफतर खानें वादी गोकुलसंड, ऐसा नाम कहा, तथा जिनोंनें दक्षिणसें कालसरस्वती ऐसा विरुद पाया, आठ वर्ष गणनायक, पीछे तीन वर्ष युगप्रधान पद, लोकोंनें प्रसिद्ध करा. एक सौ आठ वर्त्तुलिकानादोपलक्षक, बाल्यावस्था मेंभी एक सहस्र श्लोक नवीन कंठ कर लेते थे तथा संतिकर नामा समहिम स्तवन करनेंसें योगिनी कृत मरीका उपद्रव दूर करा चौवीश वार विधिसें सूरि मंत्रकों आराधा, तिनमेंभी चौदह वार जिनके उपदेशसें धारादि नगरीयोंके स्वामी पांच राजाओंने अपने अपने देशोंमें अमारिका ढंढोरा फिराया, तथा सिरोही देशमें सहस्रमल्लराजानेंभी अमार प्रवृत्त करी तीडका उपद्रव टाला, इनका विक्रम संवत् (१४३६) में जन्म, (१४४३) में दीक्षा, (१४६६) में वाचक पद, (१४७८) में बत्तीस सहस्र रूपक खरचकें वृद्धनगरीके शाह देवराजने सूरिपदका महोत्सव करा, (१५०३) वर्षे कार्त्तिकशुदि पडिवाके दिन स्वर्गवास हूआ.

५२ श्री मुनिसुंदर सूरि पट्टें श्री रत्नशेखर सूरि हूए, तिनका (१४५७) वर्षे जन्म, (१४६३) वर्षे दीक्षा, (१४८३) वर्षे पंडितपद, (१४९३) वर्षे वाचकपद, (१५०२) वर्षे सूरिपद, (१५१७) वर्षे पोषवदि६ दिनें स्वर्गवास हूआ, जिसका स्तंभतीर्थमें बांबी नामा भट्टनें बाल सरस्वती नाम दीया, तिनके करे ग्रंथः-श्राद्धप्रतिक्रमणवृत्ति, श्राद्धविधिसूत्रवृत्ति, लघुक्षेत्र समास, तथा आचारप्रदीपादि अनेक ग्रंथ जान लेनां, तथा जिनोंके समयमें लुंका नामक लिखारीने संवत् (१५०८) में जिनप्रतिमाका उत्थापक लुंका नामा मत चलाया और तिसके मतमें वेषका धर

ने वाला संवत् (१५३३) में भाणा नामा प्रथम साधु हूआ, इस
उत्पत्ति असें हूइ है, सो लिखते हैं:-

गुजरात देशमें अहमदावादमें जातिका दशाश्रीमालि लुंका नामें (
खारी वसता था, सो ज्ञानजी जतीके ऊपाश्रयमें पुस्तक लिख कर उसव
आमदनीसें गुजारा करताथा, एक दिन एक पुस्तककों लिख रहा था, (
समेंसें सात पत्रे विना लिखे छोड दीये, जब पुस्तक वालेनें पुस्तक देख
तब पूछाकि इस पुस्तकके सात पत्रे क्यों छोड दीये ? तब लुंका उसं
साथ लडने लगा तिस वखत लोकोंनें मार पीटके उपाश्रयसें बाहिर नि
काल दीया, और नगरमें कह दीयाकि इस्सें कोइ भनजी पुस्तक न लि
खावे, तब लुंका लाचार और क्रोधमें भरकर अहमदावादसें छेतालीस क
सके लग भग नींबडी गाममें चला गया, उस गाममें लुंकेकी विरादरीक
एक लखमसी नामा वणिया राजमें कारभारी था, तिसके आगे बहुत रोया
पीटा, जब तिसने पूछा क्या हूआ ? तब लुंकेने कहाकि मैं भगवानका सच
मत कहने लगा था, तब तपगछके श्रावकोंने मुझे पीटा, अब मैं तेरे पास
आया हूं, जेकर तूं मेरा मददकार बने, तो मैं सच्चामत प्रगट करूं, तब
तिस लखमसीने कहाकि नींबडीके राज्यमें तूं बेशक अपणे सच्चे मतको
प्रकट कर, मैं तेरा मददगार हूं, खाने पीनेकोंभी देउंगा, और तेरा शास्त्र
सुनुंगा, तब लुंका तो श्रीमहावीरके साधुओंकी और श्रीजिनप्रतिमाकी उ
थापना करने लगा, अरु कहने लगा कियह साधु नहीं है, भ्रष्टाचारी हैं, नि
र्दयी हैं, उलटाज्ञान सुनाते हैं,इत्यादि जो आपके मनमानी सो निंदा करी
और शास्त्रोंमेंसेंभी जिन जिन शास्त्रोंमें जिनप्रतिमाका जिकर नहीं था वो
शास्त्रकों सच्चे माने,और जिनोमें थोडासा जिनप्रतिमाका कथन था,तिन पा
ठोंके अर्थ कुयुक्तिसें औरके और सुनाने लगा, अरु कहने लगा कि एकतीस
शास्त्र सच्चे हैं, तिनमेंभी आवश्यकसूत्रकों तो बिलकुल विगाडके लोकोंने
स्वकपोलकल्पित औरका और बना दीया है, क्योंकि श्रीआवश्यकमें बहुत
जगें जिनप्रतिमाका अधिकार चलता है, पीछें एक दिन तिस लुंकेकों कि
सीने कहा कि विना जैनदीक्षाके लीए शास्त्र पढनेका तो व्यवहारसूत्रमें नि
षेध करे हैं, तो फेर तुम गृहस्थ हो कर शास्त्र क्यों कर पढते हो ? तब
लुंकेने कहा मैं व्यवहारसूत्रकोंही सच्चा नहीं मानता हूं ? इत्यादि प्ररूपणा

पचीस वर्ष तक करी, परंतु लुंकेके उपदेशसें साधु कोइभी न हूआ, जब संवत् (१५३३) का शाल आया तब, एक भाणा नामा बनीयेके बेटेनें लुंकेके उपदेशसें वेष पहना, उसको ऋषिभूणा नाम दीना, तिसका शिष्य संवत् (१५६८) में रूपजी हूआ, तिसका शिष्य संवत् (१५७८) में जीवाजीऋषि हूआ, तिसका शिष्य (१५८७) में वृद्धवरसिंहजी हूए, तिसका शिष्य संवत् (१६०६) में वरसिंहजी हूआ, तिसका शिष्य संवत् (१६४९) में जसवंतजी हूआ, इस लुंपक मतके तीन नाम हूए, १ गुजराती, २ नागोरी, ३ उतराधी. ॥ इति लुंपक मतोत्पति ॥

५३ श्रीरत्नशेखरसूरि पट्टे श्रीलक्ष्मीसागरसूरि हूए, तिनका (१४६४) में वर्षे जन्म, (१४९०) में वर्षे दीक्षा, (१५०१) वर्षे वाचक पद, (१५०८) में सूरिपद. ५४ श्रीलक्ष्मीसागरसूरि पट्टें श्रीसुमतिसाधुसूरि हूआ. ५५ श्रीसुमतिसाधुसूरि पट्टे श्रीहेमविमलसूरि हूए, शिथिलसाधुओंके बीचमेंभी रहे, तोभी जिनोंनें साधुका आचार उल्लंघन न करा, तब कितनेक दिन पीछें बहुत साधुओंनें शिथिलपणां छोड़ा, तथा ऋषिहरगिरि, ऋषिश्रीपति, ऋषिगणपति, प्रमुख बहुत जनोंनें लुंपक मत छोड के श्रीहेमविमलसूरिके पास दीक्षा लीनी, तिस अवसरमें संवत् (१५६२) में कडुवे नामक एक वणियेनें कडुयामत निकाला और तीन थूइ मानी अरु इस कालमें साधु कोइभी नहीं दीखता, औसा पंथ निकाला, परंतु इसग्रंथके लिखनेवालेके समयमें ये मत नहीं है, व्यवछेद हो गया है, तथा संवत् (१५७०) में लुंका मतसें निकलके बीजा नामा वेषधरने बीजामत चलाया, जिसको लोक विजय गछ कहते हैं तथा संवत् (१५७२) वर्षे नागपुरीया तपगछसें निकलके उपाध्याय पार्श्वचंद्रनें अपने नामका मत अर्थात् पासचंदीया मत चलाया.

५६ श्रीहेमविमलसूरि पट्टे श्रीसुविहितमुनि चूडामणि कुमत तमके मथनेको सूर्यसमान श्रीआनंदविमलसूरि हूआ तिसका विक्रम संवत् (१५४७) में जन्म (१५५२) में दीक्षा (१५७०) में सूरि पद तथा आनंदविमलसूरिके साधु शिथिलाचारीभी थे. तोभी तिनके वैरागरंगका भंग नहीं हूआ और जब उनोंनें देखाकि जिनप्रतिमाके निषेधने वाले बहुत बढे और शुद्ध साधु तुछमात्र रह गए अरु उत्सूत्र प्ररूपक रूप जलमें भव्यजन बह चले तब मनमें दयादृष्टि लाके और अपने गुरुकी आज्ञासें

कितनेक संविग्न साधुओंकों साथ ले कर संवत् (१५८२) में परिहार रूप क्रियाउद्धार करा,देशमें विचरके बहुत भव्यजनोंका उद्धार और अनेक इभ्योंके पुत्रोंकों धन कुटुंबका मोह त्याग कराके दीक्षा और सोरठके राजा पासों खत लिखवाया कि जो जीते सो मेरे देशमें रहे अरु जो हारें सो निकाला जावे,तूणसिंह नामा श्रावक जिसकों बादशाहनें बेठने वास्ते पालकी दीनी हूइथी, और बादशाहनें जिसकों मलिक श्रीनगर खिताब दीयाथा असा तूणसिंह श्रावकने गुरुकों विनति करीकि साधुओंकों सोरठदेशमें विहार कराउ,तब श्रीगुरुजीनेगणि जगर्षिकोंसाधुओंकेसाथ सोरठदेशमें विहार कराया, तथा जेसलमेरादि मारवाम देशमें जल दुर्लभ मिलता है, इस वास्ते पूर्वे श्रीसोमप्रभ सूरिनें साधुओंकों मने कर दीया था कि मारवाडमें न जानां, सो विहार कुमतिव्यास न हो जावें, तिन जीवोंकी अनुकंपा कर के और लाभ जान कर साधुओंकों आज्ञा दीनी कि तुम मारवाडमें जा कर कुमतिमतकों खंडन करो, तब लघु वयमें शील करके श्रीस्थुलिभद्रसमान वैराग्यनिधि निस्पृहावधि जावज्जीव जघन्यसें जघन्य जी षष्ठ अर्थात् दो दिनका उपवास करणां अरु पारणेके दिन आंबिल करणां असे अभिग्रहधारी महोपाध्यायश्री विद्यासागरगणिनें मारवाडदेशमें विहार करा, तिनोंनें जेसलमेरादिकोंमें खरतरांकों और मेवात देशमें बीजामतियोंकों और मोरवी आदिकमें लुंकामतीयोंकों प्रबोधके श्रावक बनाए सो आजतक प्रसिद्ध है, तथा पार्श्वचंद्रके व्युदग्राहे वीरमगाममें पार्श्वचंद्रके साथ वाद करकें पार्श्वचंद्रकों निरुत्तर करा, तब बहुत जनोंनें जैनधर्म अंगीकार करा, असेही मालवेमें अरु उज्जयनी प्रमुख देशोंमें फिरके धर्मकी प्रवृत्ति करी, यह श्रीविद्यासागर उपाध्यायजीने तपगछकी फिरशुद्धि करी, और क्रियाउद्धार करा पीछे श्रीआनंदविमलसूरिजी चौदह वर्ष तक जघन्यसेंभी नियत तप बजेके बेलेसें कम तप नहीं करा, तथा जिनोंनें चतुर्थ, षष्ठ तप करकें वीश स्थानककी आराधना करी, यह संवत् (१५९६) वर्ष नवदिनका अनशन करिके स्वर्ग गए.

५७ श्रीआनंदविमलसूरि पट्टे श्रीविजयदानसूरि हूआ, जिनोंनें स्तंभ तीर्थ, अहमदावादपत्तन, महीशानकगाम, गंधार बंदिरादिमें महा महोत्सव पूर्वक अनेक जिनबिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके उपदेशसें बादशाह

अहमदका मान्य मंत्री गलराजा दूसरा नाम मलिक श्रीनगदलनें श्रीशत्रुंज यका बडा संघ निकाला. तथा जिनोंके उपदेशसें गांधार नगरके श्रावक रामजीने तथा अहमदावादी साह कुंअरजी प्रमुखोंनें श्रीशत्रुंजय चौमुख अष्टापदादि जिनमंदिर बनवाए, गिरनार ऊपर जीर्ण प्रासादोद्धार करा तथा जिनके सूर्यकी तरें उदय होनेंसें वादी रूपीये तारे अदृश्य हो गये, श्रीविजयदान सूरि सर्व सिद्धांतका पारंगामी, अखंमित प्रताप वाला तथा अप्रमत्त पणे रूप करकें श्रीगौतममुनिवत् था, तथा गूर्जर, मालवक, कछ, मरुस्थली, कुंकणादि देशोमें अप्रतिबद्ध विहार करता हूआ, महातपस्वी, आवजीव एक घृतविगय विना सर्व विगयका त्यागीथा, जिनोंने एकादशांग सूत्र अनेक वार शुद्ध करे, और जिनोंने बहुत जीवोंकों धर्मप्राप्त करा, तिनका संवत् (१५५३) वर्षे जामलामें जन्म, (१५६२) वर्षे दीक्षा, (१५८७) में सूरिपदं, (१६२२) वर्षे, वटपल्लीमें अनशनें स्वर्ग प्राप्त हूआ.

५८ श्री विजयदान सूरिपट्टे श्री हीरविजय सूरि हूआ, जिनका संवत् (१५८३) वर्षे मार्ग्गशीर्षशुदि नवमी दिनें प्रल्हादन पुरका वासी ऊके जांती सा० कूंरा जार्या नाथी ग्रहे जन्म हूआ, (१५९६) वर्षे कार्तिकवदि दूज दिनें पत्तन नगरें दीक्षा,(१६०७) वर्षे नारदपुरीमें श्रीऋषज देवके मंदिरमें पंमित पदं, (१६०८) माघशुक्लपंचमीदिने नारदपुरीमें श्री वरकाणक पार्श्वनाथसनाथे नेमिजिन प्रासादें वाचकपदं, (१६१०) वर्षे सिरोही नगरे सूरिपदं, तथा जिनका सौजाग्य वैराग्य निःस्पृहतादि गुणोंकों वचन गोचर करनेंकों वृहस्पतिज्ञी चतुर नहींथा तथा श्री स्तंजतीर्थमें जिनोंके रहनेसें श्रद्धावानोंने एक क्रोड रूपक प्रजावनादि धर्मकृत्योंमें खरच करा, तथा जिनोंके चरण विन्यासके प्रतिपदमें दो मोहर अरु एक रूपक मोचन करा,और जिनोंके आगें श्रद्धालुओंने मोतीयोंसें साथीये करे,तथा जिनोंनें सिरोही नगरमें श्री कुंथुनाथ विंबोकी प्रतिष्ठा करी तथा नारदपुरमें अनेक सहस्रविंबोंकी प्रतिष्ठा करी, तथा जिनोंके विहारादिमें युगप्रधान अतिशय देखनेमें आती थी, तथा अहमदावादमें लुंके मतका पूज्य ऋषि मेघजी नामा था तिसने अपने लुंके मतकों दुर्गतिका हेतु जान कर रजकी तरें आचार्य पद छोमके पच्चीश यतियोंके साथ सकल राजाधिराज बादशाह श्रीअकब्बर राजाकी आज्ञा पूर्वक बादशाही वाजंत्र व

जते हूये, महामहोत्सवसें श्री हीरविजय सूरिजीके पास दीक्षा ऐसा किसी आचार्यके समयमें नहीं हूआ था, तथा जिनोंके अकब्बर वादशाहनें अपने सर्व राज्यमें एक वर्षमें छे महिनें तक हिंसा बंद करी, जिजय छोडाया, इसका विशेष स्वरूप देखनां होवे, तो हीरसौजाग्यकाव्यमेंसें देख लेनां.

और संक्षेपसें यहांजी लिखते हैं:– एकदा कदाचित् प्रधान पुरुषोंके मुखसें अकब्बरशाहनें श्री हीरविजय सूरिके निरुपम शमदम संवेग वैराग्यादि गुणो सुणके वादशाह श्री अकब्बरनें अपनें नामांकित फुरमान भेज कें बहुमान पुरस्सर गंधार बंदिरसें आगरेके पास फतेपुर नगरमें दर्शन करनेकों बुलाया, तब गुरुजी अनेक जव्यजीवोंकों उपदेश देते हूये, क्रमसें विहार करते हूये विक्रम संवत् (१६३९) वर्षे ज्येष्ठवदि त्रयोदशी दिनें तहां आए तिसमें वादशाह शिरोमणी प्रधान अबुल फजल नाम द्वारा उपाध्याय श्री विमलहर्षगणि प्रमुख अनेक मुनियोंसें परिवरे हूये वादशाहकों मिले तिस अवसरमें वादशाहने बडी खातरसें अपनी सनामें बेठाए, और परमेश्वरका स्वरूप गुरुका स्वरूप अरु धर्मका स्वरूप पूछा, और परमेश्वर कैसे प्राप्त होवे ? इत्यादि धर्मविचार पूछा, तब श्री गुरुनें मधुर वाणीसें कहा कि जिसमें अढारह दूषण न होवें, सो परमेश्वर है, तथा पंचमहाव्रतादि धारक गुरु है, और आत्माका शुद्धस्वजाव जो ज्ञान, दर्शन, चारित्ररूप है, सो धर्म है; तब अकब्बरशाहने ऐसा धर्मोपदेश सुनके आगरासें अजमेर तक प्रतिकोश कूवा मनार सहित बनाए, और जी बहिंसा छोडकें दयावन् हो गया, तब अकब्बरशाह अतीव तुष्टमान होकें कहनें लगा कि हे प्रजु! आप पुत्र, कलत्र, धन, स्वजन, देहादिमेंजी ममत्व रहित हो, इस वास्ते आपकों सोनां, चांदी, देनां तो ठीक नहीं, परंतु मेरे मकानमें जैनमतके पुराने पुस्तक बहुत हैं, सो आप लीजीये, और मेरे ऊपर अनुग्रह करीयें जब वादशाहका बहुत आग्रह देखा, तब श्री गुरुजीनें सर्व पुस्तक ले कें श्री आगरा नगरके ज्ञानजंमारमें स्थापन कर दीए, तब एक प्रहर तक गुरुजी धर्मगोष्टि करकें वादशाहकी आज्ञा लेकें बडे आमंबरसें उपाश्रयमें आए, उस वखतमें लोकोंमें जैनमतकी उन्नति स्फीती हूइ, तिस वर्षमें आगरे नगरमें चौमासा करकें सौरीपुर न

करके श्री नेमिजिनकी यात्रा वास्ते गये, तहां श्री ऋषभदेव और नेमिना थजीकी बडी और बहुत पुरानी दोनो प्रतिमा और उस तत्कालके ब ना श्री नेमिनाथके चरणोंकी प्रतिष्ठा करी, फिर आगरेमें शा० मानसिंह धनाढ्यमल्लका कराया (बनवाया) श्री चिंतामणि पार्श्वनाथादि बिंबोंकी प्रतिष्ठा करी, सो आज तक आगरेमें श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ प्रसिद्ध है. पीछें श्री गुरुजी फेर फतेपुर नगरमें गए और अकब्बर बादशाहसें मिले तहां एक प्रहर धर्मगोष्टि धर्मोपदेश करा, तब बादशाह कहने लगा कि:– मैनें आपको दर्शनके उत्कंठित हो कर दूरदेशसें बुलाए है, और आप हमसें कुछभी नहीं लेते हो, इस वास्ते आपको जो रुचे सो मेरेसें मांगना चाहियें, जिस्सें मेरे मनका मनोरथ सफल होवे, तब सम्यग्वि चार करकें गुरुजीने कहा कि तेरे सर्वराज्यमें पर्यूषणोंके आठ दिनोंमें कोइ जानवर न मारा जाय और बंदिजन छोडे जाय मैं यह मागा चाहता हूं, तब बादशाहने गुरुको निर्लोभी, शांत, दांत, जान करके कहा कि आठ दिन तुमारी तर्फसें और चारदिन मेरी तर्फसें सर्व मिलकर बारहदिन तक अर्थात् भाद्रवावदि दशमीसें ले कर भाद्रवाशुदि ६ तक कोइ जानवर न मारा जायगा, पीछें बादशाहने सोनेके हर्फोसें लिखवा कर ६ फ़रमान श्री गुरुजीकों दीए, ६ फ़रमानकी व्यक्ति ये हैः–प्रथम श्री गूर्जरदेशका, दूसरा मालवेदेशका, तीसरा अजमेरदेशका, चौथा दिल्लीफतेपुरके देशका, पांचमा लाहोर मुलतान मंडलका, और छठा श्री गुरुके पास रखनेका, पूर्वोक्त पांचोदेशका साधारण फ़रमान पांच, सो तिन तिन देशोंमें भेजकें अमारि पटह बजवा दीया, तब तो बादशाहकी आज्ञासें जो नहीं भी जा नते थे ऐसे सर्व आर्य अनार्य कुछ मंडपमें दयारूपिणी बेलडी विस्तार मान हो गइ, और बंदिवान जनभी बादशाहने गुरुपाससें उठ कर तत्काल छोड दीए, और एक कोशका झील अर्थात् तलावमें आप जा कर बादशाहने अपने हाथसें नानाजातिके नानादेशवालोंने जो जो जानवर बादशा हको भेट कर हुए थे. वे सर्व छोड दीए, बादशाहसें गुरुजी अनेकवार मिले और अनेक जिनमंदिर अरु उपाश्रयोंके उपद्रव दूर करे, और जब श्री हीरविजय सूरि अपर देशको जाने लगे, तब बादशाहसें थेला [illegible] लिखा है तब, तिनकी नकल में [illegible] लिखता हूं

जलालुदीन बादशाह.
अकब्बर बादशाह.
गाजीका फ़ुरमान.

अकब्बरमोहरकी वंशावली.
जलालुदीनअकब्बर बादशाह.
हुमायुन बादशाहका बेटा.
बाबरशाहका बीन बेटा.
उमरशेख मीरजांका बेटा.
सुलतान अबुस इदका बेटा.
सुलतान महम्मदशाहका बेटा
मीर शाहका बेटा.
अमीर तैमुरसाहि किरानका बेटा.

सूबे मालवा तथा अकब्बराबाद, लाहोर, मुलतान, अहमदाबाद, अजमेर, मीरत, गुजरात, बंगाला, तथा और जो हाल मेरे ताबेके मुलक हें तथा आंयदा, मुतसद्दी, सूबा, करोरी तथा जगीरदार इन सबोंकों मालुम रहे, कि जो हमारा पूरा इरादा यह हे कि सर्व रइयतका मन राजी रखनां, क्योंकि रइयतका जो मन हे सो परमेश्वरकी एक बमी अनामत हे, और विशेष करकें वृद्ध अवस्थामें मेरा यही इरादा हे, किः– मेरा जला वांछने वाली रइयत सुखी रहे तिस वास्ते हरेक धर्मके लोकोंमेंसें जो अछे विचार वाले परमेश्वरकी नक्ति करनेमें अपनी उमर पूरी करते हें, तिनकों दूर दूर देशोंसें मेंने अपने पास बुलवाये, और तिनकी परीक्षा करकें अपनी सोबतमें रखता हूं, और तिनकी बाते सुनके में बहुत खुश होता हूं, तिस वास्ते हमारे सुननेमें आया हे कि श्रीहीरविजय सूरि जैन श्वेतांबरमतका आचार्य गुजरातके बंदरोमें परमेश्वरकी नक्ति करता हे, मेंने तिनकों अपनें पास बुलवाया, और तिनकी मुलाकात करकें हम बहुत खुश हूए, कितनेक दिन पीछें जब तिनोंनें अपने वतन जानेकी रजा मांगी, तब अरज करी कि जो गरीबपरवरकी मरजीसें असा हुकुम होना चाहियें किः– सिद्धाचलजी, गिरनारजी, तारंगाजी, केसरीआनाथजी, तथा आबुजीका पहाम, जो गुजरातमें हे, तथा राजगृहके पांच पहाम तथा समेत शिखर उरफे पार्श्वनाथजी जे बंगालके मुलकमें हें, तथा पहाड हेठली सर्व मंदिरोंकी कोठीयां तथा सर्व नक्ति करनेकी जगायांमें, तथा तीर्थकी जगायांमें जो जैनश्वेतांबरी धर्मकी जगायां सर्व मेरे ताबेके मुलकोंमें जिस ठिकाने होवे, इन पहाडों तथा मंदिरोंकी आस पास कोइनी आदमी, कोइ जानवरकों न मारे, यह अरज

...ये बहुत दूरसें हमारे पास आये हैं. और इनकी अरज वाजवी
...) है, यद्यपि यह अरज मुसलमानी मजहबसें (मतसें) विरुद्ध मालुम
...है, तोभी परमेश्वरके पिछाननेवाले आदमियोंका यह दस्तूर होता है,
...कि — कोइ किसीके धर्ममें दखल न देवे, और तिनोंके रिवाज बहाल रखे
इस वास्ते यह अरज मेरी समझमें सच्ची मालुम हुइ, जे सर्व पहाड तथा
पूजाकी जगा बहुत अरसेंसें जैनश्वेतांबरी धर्मवालोंकी है, तिस वास्ते इ
नकी अरज कबूल करी गइ कि, सिद्धाचलका पहाड, तथा गिरनारका पहाड,
तथा तारंगाजीका पहाड, तथा केसरीयाजीका पहाड, तथा आबुका पहाड,
जो गुजरातके मुलकमें है तथा राजगृहके पांच पहाड तथा समेतशिखर
उर्फे पार्श्वनाथका पहाड, जो बंगालके मुलकमें है, ये सर्व पूजायोंकी ज
गायों तथा पहाड नीचे तीर्थकी जगायों जो मेरे राज्यमें है, चाहो किसी
ठिकाने जैन श्वेतांबरी धर्मकी जगायां होवे, सो हीरविजय जैन श्वेतांबरी आचा
र्यको देनेमें आइ है, और इनोंने अच्छीतरेंसें परमेश्वरकी भक्ति करनी चाहिये.

और एक बात यहभी याद रखनी चाहियें जो कि ये जैनश्वेतांबरी ध
र्मकी पहाड तथा पूजाकी जगा तथा तीर्थकी जगा, जे मैनें श्रीहीरविजय
सूरि आचार्यकों दीनी हैं, परंतु हकीकतमें ये पूर्वोक्त सर्व जगायों जैन
श्वेतांबर धर्मवालोंकीही हैं, और जहांतक सूर्यसें दिन रोशन रहे, तथा
जहांतक चंद्रमासें रात रोशन रहे, तहां तक इस फुरमानका हुकम जैन
श्वेतांबरी धर्मके लोकमें सूर्य तथा चंद्रमाकी तरें प्रकाशित रहे, और
कोइ आदमी तिनकों हरकत न करे, और किसी आदमीने तिन पहाडों
ऊपर तथा तिनके नीचे तथा तिनकी आस पास पूजाकी जगायोंमें तथा
तीर्थकी जगायोंमें जानवर नहीं मारनां, और इस हुकम ऊपर अमल क
रनां, इस हुकमसें फिरनां नहीं, तथा नवीन सणंद मांगनी नहीं. लिखा
तारीक ७ मी माह उरदी बहेस्त मुताबेक माह रबीयुल अवल सन् ३७
जुलसी. यह अकब्बर बादशाहके दीये फुरमानकी नकल है.

तथा थानसिंघकी कराइ अपर साह दूजणमलकी कराइ श्रीफतेपुरमें
अनेक लाख रुपइये लगाके वडे महोत्सवसें श्री जिनप्रतिमाकी प्रतिष्ठा
करी, प्रथम चातुर्मास आगरेमें करा दूसरा फतेपुरमें करा तीसरा सिरो...
नाम नगरमें करा, चौथा फेर आगरेमें करा, फेर वहां बादशाहकी मो...

श्रीशांतिचंद्र उपाध्यायकों छोड गये, और आप गुरुजी मेहडते, नागपुर चौमासा करके सिरोही नगरमें गये, तहां नवीन चतुर्मुख प्रासादमें श्री आदिनाथके बिंब तथा श्री अजितनाथके प्रासादमें श्री अजितनाथके बिंबोकी प्रतिष्ठा करके अर्बुदाचलमें यात्रा करनेंकों गये, और पीछे श्री शांतिचंद्र उपाध्यायने नवीन कृपारस कोश नामा ग्रंथ बनाके अकब्बर बादशाहकों सुनाया, तिसके सुननेंसें बादशाहनें दयाकी बहुत वृद्धि करी, तिसका स्वरूप यह है कि:– बादशाहके जन्मके दिनसें एक मास अरु पर्यूषणाके बारां दिन, तथा सर्व रविवार, तथा सर्वसंक्रांतिके दिन, नवरोजका मास, सर्व इदके दिन, सर्व मिहर वासरा, सर्व सोफी अनादिन इत्यादि सब मिलकर एक वर्षदिनमें छे महीनें तक जीवहिंसा बंद कराइ, तिसके फुरमान लिखवाए सो फुरमान अबतक हमारें लोकोंके पास हें, इसमें कुछ शंका नहीं कि श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि और उन्नति बहुत करी ? मुसलमानोंकोंजी जिनोनें दयावान् करा तथा स्थंजतीर्थे संवत् (१६४६) में स्थंजतीर्थवासी शा० तेजपालके बनवाये मंदिरकी प्रतिष्ठा करी.

५ए श्री हीरविजय सूरि पट्टे श्री विजयसेन सूरि हूए इनका (१६०४) वर्षे जन्म (१६१३) वर्षे मातापिता सहित दीक्षा, (१६२६) वर्षे पंमित पद, (१६२०) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६५१) वर्षे जट्टारक पद, (१६७१) वर्षे स्थंजतीर्थे स्वर्गवास. जिनके वेखहरख, अरु परमानंद ये दो शिष्योनें अकब्बर बादशाहके बेटे जाहांगीरकों धर्म सुनाके प्रतिबोधा, और जाहांगीर बादशाहसें फुरमान कराया तिसकी नकल यह है.

नुरुदीन महम्मद.
जहांगीर बादशाह.
गाजीका फुर
मान.

जहांगीरकी मोहरमें वंशावलि.
नुरदीनमहम्मद जहांगीर बादशाह.
अकब्बर बादशाह.
हुमायुन बादशाह.
बाबर बादशाह.
मीरजा उमरशेष.
सुलतान अबुसइस.
सुलतान मीरजामोहम्मशाह. मीरांशाह.
अमीरतेमुर साहिब. किरान.

मेरे सर्वराजके विशेष करकें गुजरातके सूबे, मोटे हाकिम तथा कीफायत करने वाले आमील तथा जांगीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोंके कार कुनोंको मालुम होवे कि जो परमेश्वरके पिछानने वाले लोक हैं, तिनका यह दस्तूर हैं, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नही बलकि सर्व जीव सुखी रहें, और अब वेलहरख तथा परमानंद यतीयोंनें डुनी यांकी रक्षा करने वालोंकी दरबारमें आकर तखतके पास खडेरहनें वालोंसें अरज करी कि विजयसेन सूरि तथा विजयदेव सूरि और जे अछी बुद्धि वाले लोक हैं, तिनकी हरेक जगें तथा हरेक सहरोमें देहरा अर्थात् जिन मंदिर तथा धर्मशाला है, तिनमें ये लोक ईश्वरकी भक्ति करते हैं औ प्रार्थना करतें हैं, और वेलहरख तथा परमानंद यतीकी परमेश्वरकों राजी रखनेंकी हकीगत हमने अछी तरेंसें जान लीनी है, तिस वास्ते डुनीयांकों तावे करने वाला हुकम हूआ किः—कोइ आदमीने इन जैनलोकोंके मंदिर तथा धर्मशालामें उतरना नही तथा कारन विना अडचल नही करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा बनाया चाहेंतो तिनकों किसीतरेंकी मनाइ तथा हरकत नही करणी और तिनके साधुओंके उपाश्रयोंमें कोइनेभी उतरणां नहीं, और जो ये लोक सोरठके मुलकमें शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करने वास्ते जावें तो कोइभी आदमी तिन यात्रालुओंसे कुछ न मांगे ला बच न करे, और पूर्वोक्त वेलहरख अरु परमानंद यतिकि अरज तथा साहि स उपर हुकम वडा भारी हूआ कि दर अठवाडेमें रविवार तथा गुरुवार तथा दर महिनेंमें शुदि पडिवाका रोज तथा इदके दिन तथा दर वर्षमें न वरोज तथा माहशहरयुरना जे हमारा मुबारक दिन है तिनमें एक एक व र्षके हिसाब प्रमाण मेरे सर्व राज्यमें कोइ जीवकी हिंसा न होवे, तथा शि कार करना तथा पक्षीयोंका पकडनां, मारनां, तथा मछलीयोंका मारनां, ये बंद कीया जावे तथा इस तरेंके औरभी काम इन पूर्वोक्त दिनोंमें न होने चाहियें, ये बात जरूर है, जे पुर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशां चलानेकी को शिक करकें मेरे फुरमानके हुकमसें कोइ फिरे नहीं, विरुद्ध चले नहीं लि खा ता० माह सदर सुरनें सन् २ जुलसी. यह फुरमान खाजांहांनके चो पानीयां तथा सेवक अली तकीके वर्त्तमान पत्रमें दाखल हूआ तरजुमा करनेवाला मुनशी तहवर अबदुलानीयां साहिब जरंजी.

श्रीशांतिचंद्र उपाध्यायकों छोड गये, श्रोर श्राप ग
चौमासा करकें सिरोही नगरमें गये, तहां नवीन
दिनाथके विंव तथा श्री श्रजितनाथके प्रासा
प्रतिष्ठा करकें श्रर्बुदाचलमें यात्रा करनेंकों
ध्यायने नवीन कृपारस कोश नामा
नाया, तिसके सुननेंसें वादशाह
यह है कि:– वादशाहके ज
दिन, तथा सर्व रविवार, त
के दिन, सर्व मिहर वासरा, स
वर्षदिनमें छे महीनें तक जीवहिंस
सो फुरमान श्रवतक हमारें लोकोंके प
श्री हीरविजय सूरिजीने जैनमतकी वृद्धि श्र
लमानोंकोंभी जिनोंनें दयावान् करा तथा स्थंभ
में स्थंभतीर्थवासी शा० तेजपालके वनवाये मंदिरकी

५७ श्री हीरविजय सूरि पट्टे श्री विजयसेन सूरि हुए
वर्षे जन्म (१६१३) वर्षे मातापिता सहित दीक्षा, (१६२६
कित पद, (१६२७) वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक श्राचार्य पद, (१६५
भट्टारक पद, (१६७१) वर्षे स्थंभस्तीर्थे स्वर्गवास. जिनके वेखहरख, श्रा
रमानंद ये दो शिष्योनें श्रकव्वर वादशाहके वेटे जाहांगीरकों धर्म सुनाकें प्र
तिवोधा, श्रोर जाहांगीर वादशाहसें फुरमान कराया तिसकी नकल यह है.

नुरुदीन महम्मद. जहांगीर वादशाह. गाजीका फुरमान.	जहांगीरकी मोहरमें वंशावलि. नुरदीनमहम्मद जहांगीर वादशाह. श्रकव्वर वादशाह. हुमायुन वादशाह. वावर वादशाह. मीरजा उमरशेष. सुलतान श्रवुसइस. सुलतान मीरजामोहम्मशाह. मीरांशाह. श्रमीरतेमुर साहिव. किरान.

मेरे सर्वराजके विशेष करकें गुजरातके सूबे, मोटे हाकिम तथा कीफायत करने वाले आमील तथा जांगीरदार तथा करोरी तथा सर्व खातोंके कार कुनोंकों मालुम होवे कि जो परमेश्वरके पिछानने वाले लोक हैं, तिनका यह दस्तूर हैं, कि हरेक मत तथा कोमके लोक इतनाही नही वलकि सर्व जीव सुखी रहें, और अव वेखहरख तथा परमानंद यतीयोंनें दुनी यांकी रक्षा करने वालोंकी दरवारमें आकर तखतके पास खडेरहनें वालोंसें अरज करी कि विजयसेन सूरि तथा विजयदेव सूरि और जे अछी वुद्धि वाले लोक हैं, तिनकी हरेक जगें तथा हरेक सहरोमें देहरा अर्थात् जिन मंदिर तथा धर्मशाला है, तिनमें ये लोक ईश्वरकी भक्ति करते हैं औ प्रार्थना करतें हैं, और वेखहरख तथा परमानंद यतीकी परमेश्वरकों राजी रखनेंकी हकीगत हमने अछी तरेंसें जान लीनी है, तिस वास्ते दुनीयांकों तावे करने वाला हुकम हूआ किः–कोइ आदमीने इन जैनलोकोंके मंदिर तथा धर्मशालामें उतरना नही तथा कारन विना अडचल नही करनी और जेकर ये लोक फिरकर नवा वनाया चाहेंतो तिनकों किसीतरेंकी मनाई तथा हरकत नही करणी और तिनके साधुओंके उपाश्रयोंमें कोइनेभी उतरणां नहीं, और जो ये लोक सोरठके मुलकमें शत्रुंजय तीर्थकी यात्रा करने वास्ते जावें तो कोइभी आदमी तिन यात्रालुओंसे कुछ न मांगे ला वच न करे, और पूर्वोक्त वेखहरख अरु परमानंद यतिकि अरज तथा खाति र ऊपर हुकम वडा भारी हूआ कि दर अठवाडेमें रविवार तथा गुरुवार तथा दर महिनेंमें शुदि पडिवाका रोज तथा इदके दिन तथा दर वर्षमें न वरोज तथा माहशहरयुरमा जे हमारा मुवारक दिन है तिनमें एक एक व र्षके हिसाव प्रमाण मेरे सर्व राज्यमें कोइ जीवकी हिंसा न होवे, तथा श कार करना तथा पक्षीयोंका पकडनां, मारनां, तथा मछलीयोंका मारनां, ये वंद कीया जावे तथा इस तरेंके औरभी काम इन पूर्वोक्त दिनोंमें न होने चाहियें, ये वात जरूर है, जे पूर्वोक्त हुकम प्रमाण हमेशां चलानेकी को शिक करकें मेरे फुरमानके हुकमसें कोइ फिरे नहीं, विरुद्ध चले नहीं लि खा ता० माह सहर युरमें सन् ३ जुलसी. यह फुरमान खाजांहांनके चो पानीयां तथा सेवक अली तकीके वर्त्तमान पत्रमें दाखल हूआ तरजुमा करनेवाला मुनशी सइयद अवदुलामीयां साहिव उरैजी.

करके फिरके गुजरात देशसेंही निकले हैं. पीछे तिस लवजीका शिष्य अहम दावादके कालुपुरेका वासी उंसवाल सोमजी हूआ, तिसने सूर्यकी आत पना बहुत करी. तिसके चेलोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गि रधरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और लुंकेमति कुंवरजीके चेलेजी इनके शिष्य बने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जी वाजी, ६ समरथ, ७ तोमुजी, ८ मोहनजी, ९ सदानंदजी, १० गोधा जी थे, एक गुजरातका वासी धर्मदास छींपीनें मुंहमुंहाके मुख ऊपर पट्टी बांधके अपने आपकों ढूंढिया साधु मशहूर कीया, तिनमें हरिदासका चेला वृंदावन हूआ. और वृंदावनका चेला भुवानीदास हूआ, और भु वानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचंद हूआ, मलूकचंदका महा सिंघ, और महासिंघका कुशालराय और कुशालरायका छजमल, और छ जमलका रामलाल. और रामलालके शिष्य रामरत्न. और अमरसिंह, ये दोनों मेंनें देखे हैं. अब इन दोनोंके चेले वसंनराय. और रामबकस वगेरे जीते हैं. ये पंजाब देशमें आज काल पडे फिरते हैं.

और जीवाजीका चेला लालचंद हूआ. लालचंदका अमरसिंह हूआ सो मारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोंके चेले अब अजमेर अरु कृष्णगडके जिल्लेमें बहुत रहते हैं. और स्वामिदास जि नोंके परिवारके कन्हीराम. सेवराज. नवनमल. प्रमुख अब मारवाडमें रहते हैं. और जो कोटबूंदीमें तथा मालवेमें लालचंद. गणेशजी. गोविं दरामजी. हूये, तथा अमीचंद. हुकमचंद. उदयचंद. फतेचंद. ग्यानजी, छ गन, मगन. देवकरण. अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते हैं. येभी हरिदास केही चेले हैं. तथा अमरसिंघका चेला दीपचंद. दीपचंदका चेला धर्म दास. धर्मदासका जोगराज. जोगराजका हजारीमल्ल. हजारीमल्लका ला लजीराम. लालजीरामका गंगाराम. गंगारामका जीवणमल्ल. जो इस व खत दील्लीके आसपासके गामोंमें फिरते हैं. तथा अमरसिंघके परिवा रमें धनजी. मनजी. नानुराम अरु नागचंदादि [illegible]. जिनोंके चेले रतीराम. नंदलाल. इनमें नंदलालका चेला रूपचंद. रूपचंदका विहारी. जोकि पंजाबमें कोट जगरावादि गामोंमें रहते हैं. तथा कानजी और ध र्मदास छींपीके चेलोंमेंसे रामचंद [illegible]पालजी प्रमुख ये ओमनी. यह

६० श्री विजयसेन सूरि पट्टे श्री विजयदेव सूरि हूये तिनका (१६३ वर्षे जन्म, (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५५) वर्षे पंडित पदं, (१६५६ वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग. श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये तिनका (१६४४) जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७२) वर्षे वाचक पद, (१६७२) सूरि पदं, (१७०८) वर्षे स्वर्गगतं. ६२ श्री विजयसिंह तथा श्री विजयदे सूरि पट्टे श्री विजयप्रज्ञ सूरि हूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६८ वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंडित पदं, (१७१०) वर्षे उपाध्याय प (१७१३) वर्षे भट्टारक पदं, (१७४९) वर्षे स्वर्गगमनं, इनोंके समयमें हवधे ढूंढीयोंका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं–

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साहुकार दशाश्रीमालि वसता था, सकी फूलां नामें वालविधवा एक वेटीथी, तिसने एक लवजी नामा रुका गोदी लीया, तिस लवजीकों लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते भेज तहां यतीयोंकी संगतसें वैराग्य उत्पन्न हूआ, और लुंकेके यती वजरं जीका शिष्य हूआ, तव दो वर्ष पीछें अपने गुरुकों कहने लगा कि जेस शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नहीं पालते हो? तब गुरु कहा पंचमकालमें शास्त्रोक्त सर्व क्रिया नहीं हो सक्ति है, तव लवजी कहा तुम भ्रष्टाचारी मेरे गुरु नहीं मैंतो आपही संयम फेरकें लेऊंगा श तरेंका क्लेश करकें ऋषि लवजीने लुंके मतकी गुरु शिक्षा छोडके अपने सा दो यति और लीए तिसमें एकका नाम थूणा, दूसराका नाम सुखजी इन नोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा. और मुंहके ऊपर कपडेकी पट वांधी, तव इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी श्रावकने इन रहनेकों जगा न दीनी, तव ये उजडे हूये मकानोंमें जा रहें, गुजरात देश फूटे टूटे मकानकों ढूंढ कहते है, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम ढूंढि रक्खा, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें वडे वडे क्लेश भोगने पडे परंतु इनके त्यागकों देखकें कितनेक लुंकेमति इनकों माननेभी लगे, क्योंकि यह भेरुव ल जगत्‌में प्रसिद्ध है, और भोले लोक तो ऊपरली वूठां फूफां देखकें रागी हो जाते हैं, और गुजरातके वहुत लोक ऐसें हव ग्राही हैं कि:–जो वात प कड लेवे उस वातकों वहुत मुसकलसें छोडते हैं, इसी वास्ते जैनमतमें

कर फिरके गुजरात देशसेंही निकले हैं. पीछे तिस लवजीका शिष्य अहम दाबादके कालुपुरेका वासी उसवाल सोमजी हूआ, तिसने सूर्यकी आत पना बहुत करी. तिसके चेलोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गि रधरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और लुंकेमति कुंवरजीके चेलेजी इनके शिष्य बने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जी वाजी, ६ समरथ, ७ तोळजी, ८ मोहनजी, ९ सदानंदजी, १० गोधा जी थे, एक गुजरातका वासी धर्मदास छींपीनें मुंहमुंहाके मुख ऊपर पट्टी बांधके अपने आपकों ढूंढिया साधु मशहूर कीया, तिनमें हरिदासका चेला वृंदावन हूआ, और वृंदावनका चेला भुवानीदास हूआ, और भु वानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचंद हूआ, मलूकचंदका महा सिंघ, और महासिंघका कुशालराय और कुशालरायका छजमल, और छ जमलका रामलाल, और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिंह, ये दोनों मैनें देखे हैं. अब इन दोनोंके चेले वसंतराय, और रामबकस वगैरे जीते हैं. ये पंजाब देशमें आज काल पडे फिरते हैं.

और जीवाजीका चेला लालचंद हूआ, लालचंदका अमरसिंह हूआ जो मारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोंके चेले अब अजमेर अरु कृष्णगढके जिल्लेमें बहुत रहते हैं, और स्वामिदास जि नोंके परिवारके कन्हीराम, लेखराज, तखतमल, प्रमुख अब मारवाडमें रहते हैं. और जो कोटेबूंदीमें तथा मालवेमें लालचंद, गणेशजी, गोविं दानजी, हूये, तथा अमीचंद, हुकमचंद, उदयचंद, फतेचंद, ग्यानजी, छ गन, मगन, देवकरण, अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते हैं, येभी हरिदास ही चेले हैं. तथा अमरसिंघका चेला दीपचंद, दीपचंदका चेला धर्म दास, धर्मदासका जोगराज, जोगराजका हजारीमल्ल, हजारीमल्लका ला लजीराम, लालजीरामका गंगाराम, गंगारामका जीवणमल्ल, जो इस व खत दील्लीके आसपासके गामोंमें फिरते हैं, तथा अमरसिंघके परिवा रमें धनजी. मनजी. नाथुराम. अरु ताराचंदादि हूये, हैं, जिनोंके चेले जीराम, नंदलाल, हूये. नंदलालका चेला रूपचंद, रूपचंदका विहारी, जोकि पंजाबमें कोट जगरावादि गामोंमें रहते हैं. तथा कानजी और ध र्मदास छींपीके चेलेयोंमेंसे दीपचंद. गुलाबजी प्रमुख ये ओसमें, वड

६० श्री विजयसेन सूरि पट्टे श्री विजयदेव सूरि हूये तिनका (.. वर्षे जन्म, (१६४३) वर्षे दीक्षा, (१६५५) वर्षे पंडित पदं, (१६५ वर्षे उपाध्याय पद पूर्वक आचार्य पद, (१६७१) वर्षे स्वर्ग. श्री विजयदेव सूरि पट्टे श्री विजयसिंह सूरि हूये तिनका (१६४४) जन्म, (१६५४) में वर्षे दीक्षा, (१६७२) वर्षे वाचक पद, (१६७२) सूरि पदं, (१७००) वर्षे स्वर्गगतं. ६२ श्री विजयसिंह तथा श्री विजय सूरि पट्टे श्री विजयप्रज्ञ सूरि हूये, तिनका (१६७५) वर्षे जन्म, (१६७ वर्षे दीक्षा, (१७०१) वर्षे पंडित पदं, (१७१०) वर्षे उपाध्याय प (१७१३) वर्षे भट्टारक पदं, (१७४९) वर्षे स्वर्गगमनं, इनोंके समयमें हूयये ढूंढीयोंका पंथ निकला तिसकी उत्पत्ति ऐसे हैं–

सुरत नगरमें वोहरा वीरजी साहुकार दशाश्रीमालि वसता था, सकी फूलां नामें बालविधवा एक बेटीथी, तिसने एक लवजी नामा का गोदी लीया, तिस लवजीकों लुंकेके उपाश्रयमें पढने वास्ते भेज तहां यतीयोंकी संगतसें वैराग्य उत्पन्न हूआ, और लुंकेके यती वजर जीका शिष्य हूआ, तब दो वर्ष पीछें अपने गुरुकों कहने लगा कि जै शास्त्रोंमें साधुका आचार है वैसा तुम क्यों नहीं पालते हो? तब गुरु कहा पंचमकालमें शास्त्रोक्त सर्व क्रिया नहीं हो सक्ति है, तब लवजी कहा तुम भ्रष्टाचारी मेरे गुरु नहीं मैंतो आपही संयम फेरकें लेऊंगा इ तरेंका क्लेश करकें ऋषि लवजीने लुंके मतकी गुरु शिक्षा छोडके अपने सा दो यति और लीए तिसमें एकका नाम चूणा, दूसराका नाम सुखजी इन नोंहीने अपने आपहीको दीक्षित करा. और मुंहके ऊपर कपडेकी प बांधी, तब इनका नवीन वेष देखकें गामोंमें किसी श्रावकने इन रहनेकों जगा न दीनी, तब ये उजडे हूये मकानोंमें जा रहे, गुजरात देश फूटे टूटे मकानकों ढूंढ कहते है, इस वास्ते लोकोंने इनका नाम ढूंढि रक्खा, इन तीनोंको नवे मत चलानेमें बडे बडे क्लेश भोगने पडे परंतु इन त्यागकों देखकें कितनेक लुंकेमति इनकों माननेभी लगे, क्योंकि यह भरत ख जगत्में प्रसिद्ध है, और भोले लोक तो ऊपरली त्यागं फूकां देखकें राग हो जाते है, और गुजरातके बहुत लोक ऐसें हठ माही है कि:–जो बात कट लेवे उस बातकों बहुत मुसकलसें छोडते है, इसी वास्ते जैनमत

के फिरके गुजरात देशसेंही निकले हैं. पीछें तिस लवजीका शिष्य अहम दावादके कालुपुरेका वासी ढेलवाला सोमजी हूआ. तिसने सूर्यकी आतापना बहुत करी. तिसके चेलोंका नाम १ हरिदासजी, २ प्रेमजी, ३ गिरधरजी, ४ कान्हजी, प्रमुख और लुंकेमति कुंवरजीके चेलेजो इनके शिष्य बने तिनके नाम १ श्रीपाल, २ अमीपाल, ३ धर्मसी, ४ हरजी, ५ जीवाजी, ६ समरथ, ७ तोरजी, ८ मोहनजी, ९ सदानंदजी, १० गोधाजी थे, एक गुजरातका वासी धर्मदास छींपीनें मुंहमुंहाके मुख उपर पट्टी बांधके अपने आपकों ढूंढिया साधु मशाहूर कीया, तिनमें हरिदासका चेला वृंदावन हूआ, और वृंदावनका चेला भुवानीदास हूआ, और भुवानीदासका चेला लाहोरका वासी मलूकचंद हूआ, मलूकचंदका महासिंघ, और महासिंघका कुशालराय और कुशालरायका छजमल, और छजमलका रामलाल, और रामलालके शिष्य रामरत्न, और अमरसिंह, ये दोनों मेनें देखे हैं. अब इन दोनोंके चेले वसंतराय, और रामबकस वगेरे जीते हैं. ये पंजाब देशमें आज काल पडे फिरते हैं.

और जीवाजीका चेला लालचंद हूआ, लालचंदका अमरसिंह हूआ सो मारवाड देशमें आया तिसके परिवारमें नानकजी जिनोंके चेले अब अजमेर अरु कृष्णगढके जिल्लेमें वहुत रहते हैं, और स्यामिदास जिनोंके परिवारके कन्हीराम, लेखराज, तखतमल, प्रमुख अब मारवाडमें रहते हैं. और जो कोटेबूंदीमें तथा मालवेमें लालचंद, गणेशजी, गोविंदरामजी, हूये, तथा अमीचंद, हुकमचंद, उदयचंद, फतेचंद, ग्यानजी, छगन, मगन, देवकरण, अरु पन्नालाल प्रमुख फिरते हैं, येभी हरिदासकेही चेले हैं. तथा अमरसिंघका चेला दीपचंद, दीपचंदका चेला धर्मदास, धर्मदासका जोगराज, जोगराजका हजारीमल्ल, हजारीमल्लका लालजीराम, लालजीरामका गंगाराम, गंगारामका जीवणमल्ल, जो इस वखत दील्लीके आसपासके गामोंमें फिरते है, तथा अमरसिंघके परिवारमें धनजी, मनजी, नाथुराम, अरु ताराचंदादि हूये, हैं, जिनोंके चेले रतीराम, नंदलाल, हूये. नंदलालका चेला रूपचंद, रूपचंदका विहारी, जोकि पंजाबमें कोट ज़गरावांदि गामोंमें रहते हैं. तथा कानजी और धर्मदास छींपीके चेलेयोंमेंसें दीपचंद, गुपालजी प्रमुख ये लींमडी, वढ

वाण, मोरवी, गांमल, जेतपुर, राजकोट, अमरेली, धांगधरा, प्रमुख झा लावाड, काठीयावाड, मछुकांठा प्रमुख देशोंके गामोंमें फिरते रहते हैं. और धर्मदास छींपिका चेला धनाजी, धनाजीका चूदरजी, चूदरजीका रघुनाथजी, जैमलजी, गुमानचंद, डुर्गदास, कन्हीराम, रत्नचंद, हमीरमल्ल, कचोमी मल्ल प्रमुख जो अब मारवाडदेशमें रहते हैं सो प्रसिद्ध है.

और रघुनाथजीका चेला जीखमजी संवत् (१८१८) में हूआ, जिसने तेराहपंथ निकाला तिसके चेले जारमल, हेमजी, रायचंद, जीतमल्ल, जीतमल्लकी गद्दी उपर अब मेघजी हैं, ये पट्टीबंध जितने साधु हैं, इनका पंथ संवत् (१७०९) के सालसें चला है, और इनका मत जबसें निकला है, तबसें ले कर आजपर्यंत इनके मतमें कोइनी विद्वान् नहीं हूआ है, क्योंकि ये लोक कहते हैं किः– व्याकरण, कोश, काव्य, छंद, अलंकार, पढनेंसें तथा तर्कशास्त्र पढनेंसें बुद्धि मारी जाती है, इस वे इलमीकेंही सबबसें ये लोक परस्पर बमा द्वेष रखते हैं, केइ मनमानी कल्पित बातें बना लेते हैं, एक दूसरेके पग नही जमने देते, मनमें जानते हैं किः– मेरे गृहस्थ चेलोंकों वह लेवेगा? इत्यादि मेरे लिखनेमें किसीकों शंका होवे तो मारवाममें जाकर प्रत्यक्ष देख लेवे, इनका आचार, व्यवहार, वेष, श्रद्धा, प्ररूपणा, प्रमुख है सो जैनमतके शास्त्रानुसार नहीं है, और दूसरे मतोंवालेजी जो बहुत जैनमतकों बूरा जानते हैं, वो इन ढूंढीयोंके हीके आहार व्यवहारके देखनेसें जानते हैं. परंतु यह लोक तो सर्व जैन मतसें विपरीत चलने वाले हैं, इति ढुंढकमतोत्पत्ति ॥

६३ श्रीविजयप्रज्ञसूरिपट्टे श्रीविजयरत्न सूरि हूए. ६४ श्रीविजय रत्नसूरिपट्टे श्रीविजयक्षमासूरि हूए. ६५ श्रीविजयक्षमा सूरिपट्टे श्रीवि जयदयासूरि. ६६ श्रीविजयदयासूरिपट्टे श्रीविजयधर्मसूरि, ६७ श्री विजयधर्मसूरिपट्टे श्रीजिनेंद्रसूरि. ६८ श्रीजिनेंद्रसूरिपट्टे श्रीदेवेंद्रसूरि. ६९ श्रीदेवेंद्रसूरिपट्टे श्रीविजयधरणेंद्रसूरि, जोकि इस वर्त्तमान कालमें विद्यमान विचरते हैं.

तथा एकसठमे पाटें जो श्रीविजयसिंह सूरि थे तिनका शिष्य श्रीसत्य विजयगणि हूए और महोपाध्याय षटशास्त्रवेत्ता, न्यायविशारद विरुद धारक महावैय्याकरण, तार्किकशिरोमणि, बुद्धिका समुद्र महोपाध्याय श्री

यशोविजयगणि इन दोनोंने श्रीविजयसिंहसूरिकी आज्ञा लेके गछमें क्रियाशिथिल साधुओंकों देखके और ढूंढकमतके पाखंड अंधकारके दूर करणे वास्ते क्रिया उद्धार करा, और जिनोंनें काशीकें पंडितोंसें जयपताकाका झंडा पाया, और गुजरात प्रमुख देशोंसें प्रतिमा उत्थापक कुलिंगीयोंके मतरूप अंधकारकों दूर करा, और जिनोंके रचे हूये (१००) ग्रंथ अध्यात्मसार, स्याद्वादकल्पलता, शास्त्रसमुच्चयकीवृत्ति, मल्लवादी सूरिकृत नयचक्र उद्धारादि, अनेक वडेवडे एक सौ ग्रंथ है.

श्रीगणिसत्यविजयजी क्रिया उद्धार करके श्रीआनंदघनजीके साथ वहुत वर्ष लग वनवासमें रहे, और वडी तपस्या योगाभ्यासादि करा, जव वहुत वृद्ध हो गए, जंघामें चलनेका वल न रहा, तव अणहिल पट्टनमें जा रहे तिनके उपदेशसें तिनके दो शिष्य हूए, एक गणिकपूरविजय पंडित, और दूसरा पंडित कुशलविजयजी, तिनमे गणिकपूरविजयजीनेंतो अनेक अर्हंत विंवोंकी प्रतिष्ठा करी, और अनेक ग्राम नगरोंमें धर्मकी वृद्धि करी, वडे प्रभावक हूए, श्रीगणिकर्पूरविजयजीके दो शिष्य हूए, एक पंडित वृद्धिविजय गणि, दूसरा पंडित क्षमाविजयगणि, श्रीपंडित क्षमाविजयगणिके शिष्य पंडित श्री जिनविजय गणि, तिनका शिष्य पंडित उत्तमविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित पद्मविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित रूपविजयगणि, तिनका शिष्य पंडित कीर्त्तिविजयगणि तिनका शिष्य पंडित कस्तूरविजयगणी, तिनका शिष्य मुनिमणिविजयगणि,तिनका शिष्य मुनि वुद्धिविजय गणि, तिनका शिष्य पंडित मुक्तिविजय गणि, तिनोंके हाथका दीक्षित लघु गुरु भ्रातृ इस जैनतत्त्वादर्शग्रंथके लिखनेवाला मुनि आत्माराम आनंदविजय नामक हूं. इतिगुरावलिसंपूर्ण ॥

अव इस ग्रंथके लिखनेवालेके समयमें इतने नवीनपंथ निकले हैं सो लिखते हैंः— गुजरातदेशमें स्वामी नाराणका पंथ, और वंगालदेशमें ब्रह्मसमाजीयोंका पंथ, और पंजावदेशमें लोदीहानेंसें दश कोशके थंतरे एक भयणी नामा गाम है तिसमें रहनेवाला जातिका ब्रह्मणसिख्ख तिसके उपदेशसें कूका नामे पंथ, और कोइलमे मोलवी अहमदशाहका नवीन फिरका, तथा दयानंदसरस्वतीस्वामीका निकाला आर्यसमाजका पंथ, इत्यादि अनेकमत पुराने मतोंको तोडके निकाले है, क्योंकि इनोंनें अ

पनी बुद्धि समान प्राचीनोंके करे पुस्तक तथा वेदार्थोंको नही समजा, जेकर इसीतरें नवीन नवीन मत निकसते रहेतो कोइकदिनमें ब्राह्मणादि मताधिकारीयोंकी रोजी मारी जायगी, ओर धर्म अरु नियम किसिकि सिका कायम रहेगा ?

इति श्रीतपगछीय मुनिगणिश्री मणिविजय तछिष्य मुनि श्रीबुद्धिविजय छिष्य मुनि आत्माराम आनंदविजय विरचिते जैनतत्त्वादर्शे गुरुआवलि कथन रूप द्वादशः परिछेदः संपूर्णः ॥ १२ ॥

॥ इति मुनि श्री आत्माराम आनंद विजयजी विरचित द्वादश परिछेद रूप जैनतत्त्वादर्श ग्रंथः समाप्तः ॥